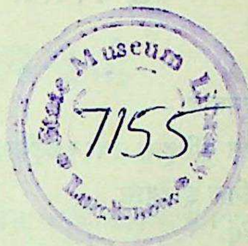
विश्व की प्राचीन सभ्यताएं



विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ

(Civilization of Ancient World)



लेखक

विनोद चन्द्र पांडे एवं के० सिंह



(मूल्य रु० 8·00 मात्र)



प्रकाशन केन्द्र, न्युबिल्डिंग्स

अमीनाबाद, लखनऊ।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. राजनीति शास्त्र : सुरेश चन्द्र पन्त
2. राजनीति में विभिन्नवाद : सुरेश चन्द्र पन्त
3. भारत का संवैधानिक इतिहास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन : आर० एन० सिंह
4. इंग्लैण्ड का संवैधानिक इतिहास : सुरेश चन्द्र पन्त
5. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध : श्रीमती विभा रानी शुक्ला
6. लोक प्रशासन : सुरेश चन्द्र पन्त
7. अन्तर्राष्ट्रीय विधि : श्रीमती उषा सक्सेना
8. हिन्दू राज्य शास्त्र : सुरेश चन्द्र पन्त
9. पाश्चात्य राजदर्शन, भाग 1 (प्लेटो से वर्क तक) : विन्ध्यालय जोशी
10. पाश्चात्य राज दर्शन, भाग 2 (वेन्थम से आज तक) : विन्ध्यालय जोशी
11. पाश्चात्य राजदर्शन सम्पूर्ण : विन्ध्यालय जोश
12. पाश्चात्य राजदर्शन : विन्ध्यालय जोशी
(गोरखपुर विश्वविद्यालय के द्वितीय वर्ष के पाठ्यक्रमानुसार)
13. पाश्चात्य राजदर्शन : विन्ध्यालय जोशी
14. विधि शास्त्र : रघुनाथ प्रसाद श्रीवास्तव
15. आधुनिक भारतीय सामाजिक तथा राजनैतिक दर्शन : यू० शुक्ला एवं वी० शुक्ला
16. संयुक्त राष्ट्र संघ : यू० शुक्ला
17. भारतीय संविधान : यू० एस० खत्री
18. फ्रान्स का पंचम संविधान : यू० एस० खत्री
19. स्विट्जरलैण्ड का संविधान : यू० एस० खत्री
20. सोवियत संघ का संविधान : यू० एस० खत्री

---

* प्रकाशक : प्रकाशन केन्द्र, न्यू बिल्डिंग्स, अमीनाबाद, लखनऊ
* संस्करण : द्वितीय
* मूल्य : आठ रुपया (रु० 8·00) मात्र

विषय-सूची

———

अध्याय | 1

प्राचीन सभ्यता का विकास--पूर्वैतिहासिक युग
(DEVELOPMENT OF ANCIENT CIVILISATION PREHISTORIC AGE)

प्रश्न 1—नदियों के काठे ही क्यों एशिया की प्राचीन सभ्यताओं के लिये विशेषकर उपयुक्त रहे ? उदाहरण देकर समझाइये।

(लखनऊ विश्वविद्यालय)

(Explain and illustrate why river valleys were specially suitable for the development of ancient civilizations in Asia.)

(Lucknow University)

प्रश्न 2—नदी घाटियों में पुरातन एशियाई सभ्यताओं की उत्पत्ति का कारण लिखिए। (गोरखपुर विश्वविद्यालय)

(Explain the reasons for the development of ancient Asian Civilization in river valleys.) (Gorakhpur University)

प्रश्न 3—पूर्व-पाषाण काल में मानव और उसकी सभ्यता के स्वरूप के विषय में आप क्या जानते हैं ? (गोरखपुर विश्वविद्यालय)

(What do you know about the man and the nature of his Civilization in Paleolithic Age ?)

प्रश्न 4—किन कारणों से पूर्व-पाषाण कालीन सभ्यता के आधार पर उत्तर-पाषाण काल की उच्चतर सभ्यता का विकास हुआ।

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

(On what grounds the greater Neolithic civilization developed in place of animal civilization of Paleolithic Age ?)

(Gorakhpur University)

प्रश्न 5—ताम्र युग में आदि मानव की उपलब्धियों का विवरण दीजिए। (गोरखपुर विश्वविद्यालय)

(Give an account of the achievements of ancient man during Copper Age.) (Gorakhpur University).

नदियों की घाटियाँ और मानव-सभ्यता

मानव-सभ्यता के विकास का इतिहास जितना अधिक महत्वपूर्ण है उतना ही अधिक रोमांचकारी। वह किसी एक देश, जाति अथवा काल की देन नहीं है; वरन् आधुनिक सभ्यता का विकसित रूप मानव-जाति की सतत साधना का परिणाम है। सभ्यता का विकास शनैः शनैः हुआ है। इस सभ्यता के विकास में नदियों की घाटियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। प्राचीन काल में जितनी भी सभ्यताएँ विकसित हुईं उनमें से अधिकतर का विकास नदियों की घाटियों में ही हुआ है। एशिया की सभ्यताओं के विकास में तो नदियों की घाटियों ने बहुत बड़ी भूमिका अदा की है। मिस्र और सिन्धु घाटी की सभ्यताएँ आज भी प्राचीन काल में मानव द्वारा की गई प्रगति की याद दिला रही हैं। ये सभ्यताएँ नदियों के काठों में ही विकसित हुईं। प्राचीन काल की सभ्यताओं के नदियों के काठों में ही विकसित होने के निम्नलिखित कारण थे :—

(1) चरागाहों को सुविधा—अपनी सभ्यता के आरम्भिक काल में मनुष्य जानवरों का उपयोग केवल मारकर खाने और उनकी खाल को पहनने के लिये ही करता था, परन्तु कालान्तर में उसने इन जानवरों को पालना प्रारम्भ कर दिया। इन जानवरों के भोजन के लिये उसे चरागाहों की आवश्यकता हुई। नदियों के किनारे ही मवेशियों के लिये हरे-भरे चरागाहों की बहुतायत थी। अब मानव को अपने मवेशियों को चराने के लिये इधर-उधर नहीं जाना पड़ता था। पहले निरन्तर मवेशियों को चराने के कारण वह एक स्थान पर स्थिर नहीं रह सकता था; परन्तु नदियों के किनारे उसके जीवन में स्थायित्व आया और वह अपने जानवरों के सुख-सुविधा की दृष्टि से नदियों के किनारे ही रहने लगा।

(2) जल की सुविधा—नदियों के किनारे केवल मवेशियों के लिये हरी-भरी घास ही नहीं मिलती थी बल्कि पीने का जल भी बराबर प्राप्त होता रहता था। नदियों के किनारे न रहने में मनुष्य को जल लाने के लिये बहुत दूर जाना पड़ता, अतः इस सुविधा के कारण भी उसने नदियों के किनारे रहना अधिक उचित समझा।

(3) कृषि कार्य में सुगमता—आरम्भ में मनुष्य जंगली जीवन व्यतीत करता था और जानवरों के मांस और कंद-मूल आदि को अपना आहार बनाता था। कालान्तर में उसने खेती करना भी सीख लिया। इस कृषि कार्य के लिये नदियों का किनारा बहुत उपयुक्त स्थल था। नदियों के किनारे की मिट्टी बहुत अधिक उपजाऊ और नरम थी। इस मिट्टी में ही वह गेहूँ, चावल, जौ, दाल आदि की खेती करने लगा था और अपना जीवन-यापन सुगमता से करने लगा। नदियों के किनारे खेती ने उसकी एक बहुत बड़ी समस्या का समाधान कर दिया था। अब उसे भोजन के लिये केवल शिकार पर ही निर्भर नहीं रहना पड़ता था। खेती उसकी जीविका का मुख्य साधन बन गई थी।

नदियों के किनारे रहने के कारण जल की कोई कमी थी ही नहीं और धीरे-धीरे उसने नहरें बनाना भी सीख लिया। इस प्रकार खेतों की सिंचाई की समुचित व्यवस्था हो गई।

(4) बर्तन आदि का प्रबन्ध—ज्यों-ज्यों मानव की बुद्धि परिपक्व होती गई त्यों-त्यों उसकी आवश्यकताएँ भी बढ़ने लगीं। घरेलू कार्यों के लिये मानव को बर्तनों की आवश्यकता पड़ी। यह कार्य भी वह नदियों के निकट रहकर अधिक सुगमता से कर सकता था। नदियों की मिट्टी से वह अपने घरेलू कार्यों के लिये वर्तन बना लेता था।

(5) रहने की सुविधा—नदियों के किनारे मानव को रहने की सुविधा भी प्राप्त हुई। धीरे-धीरे मानव ने झोपड़ी बनाना सीख लिया। नदियों के किनारे उगने वाले पेड़ों की टहनियों के द्वारा वह अपनी झोपड़ी बना लेता था। कुछ समय पश्चात् उसने नदियों की गीली मिट्टी के द्वारा ईंटें बनाना भी सीख लिया। इन ईंटों को सुखाकर मकान बनाना प्रारम्भ किया। इस कला का आविर्भाव सर्वप्रथम बैबिलोनिया और सुमेरिया में हुआ। धीरे-धीरे पक्की ईंटें भी बनने लगीं और इस प्रकार पक्के मकान बनने लगे। पक्की ईंटों के, सिन्ध-घाटी के लोगों ने बड़े सुन्दर मकान बनाए हैं। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के मकान इस कला के सुन्दर नमूने हैं।

(6) मछली पकड़ने का धन्धा—नदियों के निकट रहने में मानव को मछली पकड़ने के धन्धे में भी सुविधा मिली। नदियों से मानव को पर्याप्त मात्रा में मछलियाँ मिलने लगीं जिससे उसकी खाद्य समस्या का समाधान हो गया।

(7) व्यापारिक कारण—नदियों के किनारे ही सभी सभ्यताओं के विकसित होने का एक अन्य कारण व्यापारिक सुविधा था। धीरे-धीरे मानव ने नाव बनाना सीख लिया। इन नावों के द्वारा वह मछलियों का शिकार तो करता ही था साथ ही अन्य स्थानों के निवासियों से सम्पर्क भी स्थापित करता था। इस प्रकार विभिन्न देशों के बीच व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हुये।

(8) कला की अभिव्यक्ति—नदियों की घाटियाँ ही मानव-सभ्यता का सर्वप्रथम केन्द्र इसलिये बनीं कि नदियों के किनारे मानव को अपनी कला की अभि-व्यक्ति में सुविधा मिली। मानव नदियों की गीली मिट्टी के द्वारा पक्की ईंटों के मकान बनाने ही लगा था, साथ ही उसने ईंटों पर नेजे के कलमों के द्वारा लिखना भी प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार लेखन-कला का विकास हुआ। बेबिलोनिया और सुमेरिया में इस प्रकार के सैकड़ों लेख पाये गये हैं। सिन्ध-घाटी की सभ्यता में भी इस प्रकार के लेख मिले हैं।

कालांतर में सभ्यता के विकास के साथ मानव ने नदियों की घाटियों को चित्र-कला, काव्यकला आदि की अभिव्यक्ति के लिए अधिक उचित समझा। ऋग्वेद आदि ग्रन्थों की रचनाएँ नदियों के किनारे बने आश्रमों में हुईं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा, साहित्य, कला, संगीत, धर्म तथा दर्शन का विकास भी नदियों की घाटियों में ही हुआ। भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ मानव संस्कृति का समुचित विकास इन्हीं घाटियों में हुआ। इन घाटियों में मानव की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी अतः मानव ने इन्हें ही अपनी सभ्यता के विकास का क्रीड़ास्थल बनाया।

मानव-सभ्यता का विकास

मानव का जन्म कैसे हुआ यह एक अत्यन्त पेचीदा प्रश्न है और इस सम्बन्ध में विभिन्न विद्वान अपने विभिन्न मत व्यक्त करते हैं। हमारा इस विषय से कोई सम्बन्ध नहीं है। हम तो केवल इस बात का विवेचन करेंगे कि संसार में आने के पश्चात् मानव ने अपनी सभ्यता का विकास किस प्रकार किया ? मनुष्य ने अपने हथियारों के निर्माण में जिन चीजों का उपयोग किया उनके आधार पर विद्वानों ने प्राचीन मानव-सभ्यता के इतिहास को दो भागों में विभाजित किया है :—(1) पाषाण युग और (2) धातु युग। पाषाण युग को पुनः तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है :—

(1) पूर्व-पाषाण युग (Paleolithic Age)
(2) मध्य-पाषाण युग (Mesolithic Age)
(3) उत्तर-पाषाण युग (Neolithic Age)

(1) पूर्व-पाषाण युग (Paleolithic Age)

पूर्व पाषाण युग को भी विद्वानों ने तीन कोटियों में विभाजित किया है :—

(क) प्रारम्भिकपूर्व-पाषाण युग।
(ख) मध्य-पूर्व-पाषाण युग।
(ग) परवर्ती-पूर्व-पाषाण युग।

(क) प्रारम्भिक पूर्व-पाषाण युग—आरम्भ में मानव जंगली अवस्था में रहता था। वह पूर्ण रूप से असभ्य था और जंगलों एवं कन्दराओं में रहकर, जंगली जानवरों का शिकार कर अपना जीवन निर्वाह करता था। जंगली जानवरों की खाल ही उसका वस्त्र था और कंद-मूल उसका मुख्य आहार। वह कृषि-कर्म और पशु-पालन से बिल्कुल अनभिज्ञ था। पूर्व-पाषाण काल में मानव औजार और हथियार बनाने के लिये प्रस्तर खण्डों, लकड़ियों और अस्थियों का प्रयोग करता था। इनमें से अधिकतर हथियार पत्थर के ही होते थे। प्रारम्भिक पूर्व-पाषाण काल में जिसका काल मानव के जन्म से लेकर लगभग 35,000 वर्ष तक माना जाता है, हथियार अत्यन्त भद्दे और बेडौल होते

थे। कुछ स्थानों पर पत्थर के टुकड़ों के ऊपर से छिलके का फलक को उतार कर आन्तरिक भाग को नुकीला कर दिया जाता था और बादाम जैसी आकृति का एक हथियार बनाया जाता था जिसे मुष्ठि-छुरा (Coup-de-Poing) के नाम से पुकारा जाता था। वास्तव में यह एक हाथ की कुल्हाड़ी थी। यह एक ओर से नुकीली और दूसरी ओर से गोलाकार होती थी तथा हथौड़े, छेनी, चाकू आदि सभी का कार्य करती थी।

प्रारम्भिक पूर्व-पाषाण काल के मानव-जीवन पर प्रकाश डालने वाले बहुत कम तथ्य प्राप्त हुये हैं। केवल इतना हो कहा जा सकता है कि उस युग में मनुष्य खुले आकाश के नीचे रहते थे तथा नदियों तथा झीलों के किनारे विचरण करते थे। सम्भवतः आग से भी वे परिचित न थे।

(ख) मध्य-पूर्व-पाषाण युग—मध्य-पूर्व-पाषाण काल में मानव प्रारम्भिक पूर्व-पाषाण काल की अपेक्षा अधिक सभ्य हो गया था। उसने परतदार प्रस्तर खण्डों को छीलकर चिकना बनाना प्रारम्भ कर दिया। वह जानवरों आदि से अपनी रक्षा के लिये गुफाओं में रहने लगा और इस काल में उसे अग्नि का भी ज्ञान हो गया। जानवरों और शीत से रक्षा में अग्नि ने भी उसे सहायता पहुँचाई।

मध्य-पूर्व-पाषाण काल में मानव पूर्ण रूप से प्रकृतिजीवी था। उसका भोजन या तो जंगली फल थे या शिकार किये गये पशुओं का मांस। ऐसा प्रतीत होता है कि मध्य-पूर्व-पाषाण काल में मानव समूहों में रहने लगा था। समूह में अधिकतर संख्या स्त्रियों और बच्चों की होती थी। यह भी ज्ञात होता है कि प्रत्येक समूह का एक मुखिया होता था और मुखिया पद के लिये अक्सर आपस में संघर्ष हो जाया करता था।

मध्य-पूर्व-पाषाण काल में मानव ने मृतकों का आदर करना भी सीख लिया था। अब वह मृतकों को बड़े सम्मान के साथ दफना देता था। मृतकों को विशेष मुद्राओं में लिटाया जाता था और उनके साथ खाद्य-सामग्री और हथियार भी रख दिये जाते थे।

(ग) परवर्ती-पूर्व-पाषाण-काल—परवर्ती-पूर्व-पाषाण काल में मानव मध्य-पूर्व-पाषाण काल की अपेक्षा अधिक सभ्य हो गया था और यह काल पूर्व-पाषाण की चरम उन्नति का काल माना जाता है। यहाँ हम परवर्ती-पूर्व-पाषाण काल के मानव की विभिन्न बातों का चित्रण संक्षेप में कर रहे हैं:—

(1) नवीन उपकरण—मध्य-पूर्व-पाषाण काल नियण्डर्थल जाति की उन्नति का काल था। परन्तु परवर्ती पूर्व-पाषाण काल में योरप की कुछ नवीन जातियों ने उनकी अपेक्षा अधिक उन्नति कर ली थी। योरप की इन जातियों का जीवन नियण्डर्थलों से अधिक जटिल था और इसलिये उन्होंने अपने हथियार बनाने के लिये पत्थरों के साथ ही हाथी दाँत, सींग और अस्थियों का भी प्रयोग किया।

(2) आवास, वस्त्र और भोजन—परवर्ती-पूर्व-पाषाण काल में मानव गुफाओं में रहता था। जहाँ गुफाएँ उपलब्ध नहीं होती थीं वहाँ वे शीत से बचने के लिये खाल का तम्बू तान देते थे। घरों को गर्म रखने के लिये अस्थियाँ भी जलाई जाती थीं। वे खाल के बने हुये वस्त्रों को सीकर पहनते थे। आग में वे अपना भोजन भी पकाने लगे थे। उनका आहार मांस ही था। साथ ही वे फलों आदि का सेवन करते थे।

(3) कला—ऐसा प्रतीत होता है कि परवर्ती-पूर्व-पाषण काल में मानव में कलात्मकता भी आ गई थी। वह भित्त चित्र तो बनाता ही था साथ ही सींगों से निर्मित औजारों तथा हथियारों पर नक्काशी भी करता था। परवर्ती-पूर्व-पाषाण काल में नारी मूर्तियों को बनाने की परम्परा भी चल गई थी। शरीर को लाल रंग से रंग दिया जाता था। लाल रंग रक्त का प्रतीक है। शायद उनका यह विश्वास था कि मृतक के शरीर को लाल रंग से रंग देने पर उसमें जीवन की लालिमा पुनः वापस आ जायगी।

(4) ज्ञान-विज्ञान—परवर्ती-पूर्व-पाषाण कालीन मानव ने अप्रत्यक्ष रूप से काफी ज्ञान अर्जित कर लिया था। अग्नि के प्रयोग से यह स्पष्ट है कि वैज्ञानिक प्रगति का बीजारोपण इसी युग में हुआ। पशुओं के चित्र बनाने से यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन मानव शरीर रचना का भी प्रयत्न करता था। कौन पदार्थ खाने योग्य है और कौन पदार्थ विषाक्त है, खाद्य पदार्थ किस स्थान पर और किस रूप में मिलता है और कौन से खाने योग्य पशु कहाँ पाये जाते हैं, यही तत्कालीन मानव का ज्ञान-विज्ञान था और इन्हीं से कालान्तर में प्राणि-शास्त्र, वनस्पति विज्ञान, ऋतु विज्ञान, रसायन विज्ञान और भौतिक विज्ञान आदि विज्ञानों का जन्म हुआ। गार्डेन एण्ड चाइल्ड ने ठीक ही लिखा है :—

"In jungle lore the roots of botany and zoology, of astronomy and climatology, while the control of fire and the manufacture of tools initiate the traditions that emerge as physics and chemistry." —Gorden and Childe.

(2) मध्य-पाषाण काल (Mesolithic Age)

पूर्व-पाषाण काल और उत्तर-पाषाण काल के बीच के युग को मध्य-पाषाण काल के नाम से पुकारा जाता है। यह काल विभिन्न प्रकार के परिवर्तनों का काल था। दूसरे शब्दों में इसे संक्रान्ति काल के नाम से पुकार सकते हैं। इस काल में छोटे-छोटे पत्थरों के हथियार बनाये जाते थे। इसके साथ ही बड़े हथियार बनाने में पत्थर के टुकड़ों में लकड़ी या हड्डी के डण्डे लगाये जाते थे। मध्य-पाषाण काल के मानव का आहार भी मांस और कन्द-मूल था। परन्तु इस काल में शिकार की प्रणाली में अन्तर हो गया था। पूर्व-पाषाण काल में मानव विशालकाय पशुओं का शिकार करता था

और फलस्वरूप वह बड़े-बड़े समूहों में रहता था। मध्य-पाषाण काल में वे छोटे-छोटे पशुओं जैसे खरगोश, बारहसिंहा, हिरन आदि का शिकार अकेले या छोटे-छोटे समूहों में करते थे। मध्य-पाषाण काल में हम मानव को छोटे-छोटे विभिन्न समूहों में बिखरा हुआ पाते हैं। इस काल के शिकार की एक बहुत बड़ी विशेषता यह थी कि इस काल का मानव, शिकार में कुत्तों का सहयोग प्राप्त करता था।

(3) उत्तर-पाषाण काल (Neolithic Age)

इस युग को नव-पाषाण काल के नाम से भी पुकारा जा सकता है। उत्तर-पाषाण काल में पूर्व-पाषाण काल की असभ्यता के स्थान पर उच्चतर सभ्यता का विकास हुआ। पूर्व-पाषाण काल के मानव बहुत हद तक जानवरों का सा जीवन ही व्यतीत करते थे। वे कच्चे मांस का सेवन करते थे और कृषि-कर्म से अनभिज्ञ थे। वे पशुओं की खाल ही धारण करते थे और अधिकांशतः खुले आकाश में अपना जीवन व्यतीत करते थे। मध्य-पाषाण काल में भी उनकी स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन न हुआ। परन्तु उत्तर-पाषाण काल का मानव अत्यधिक सभ्य प्रतीत होता है।

पूर्व-पाषाण कालीन असभ्यता के स्थान पर उत्तर पाषाण काल की उच्चतर सभ्यता के विकसित होने के विभिन्न कारण थे। यहाँ हम इन कारणों की चर्चा संक्षेप में कर रहे हैं :—

(1) खाद्य पदार्थ प्राप्त होने में कठिनाई—जैसा कि हम पहले उल्लेख कर चुके हैं कि पूर्व-पाषाण काल का मानव अधिकतर मांस का सेवन करता था। शनैः शनैः उसे शिकार में कठिनाई का अनुभव होने लगा और उसने मांस के अतिरिक्त कुछ अन्य वस्तुओं को अपनी खाद्य सामग्री बनाना चाहा।

(2) असुरक्षा—पूर्व-पाषाण काल का मानव पूर्णतः असुरक्षित था। उसके रहने के लिये कोई ठीक स्थान नहीं था और फलस्वरूप उसे जंगली पशुओं और विरोधियों का हर समय भय बना रहता था। इस असुरक्षा को दूर करना भी उसके लिये आवश्यक था।

(3) जल की कठिनाई—जल मानव के लिये अत्यन्त आवश्यक है। पूर्व-पाषाण काल का मानव कभी-कभी पशुओं का शिकार करते हुये ऐसे स्थानों पर पहुँच जाता था जहाँ उसे जल की बहुत अधिक कठिनाई पड़ती थी। इस हेतु उसने आवश्यक समझा कि अपने को नदियों के आसपास सीमित रखे और यही कारण था कि पूर्व-पाषाण कालीन असभ्यता के स्थान पर उत्तर-पाषाण की उच्चतर सभ्यता का विकास हुआ।

(4) बड़े-बड़े समूहों में रहने में कठिनाई—पूर्व-पाषाण काल का मानव जंगली जानवरों से भय के कारण और उनके शिकार के लिये बड़े-बड़े समूह बनाकर रहता था। इन बड़े-बड़े समूहों के फलस्वरूप अक्सर आपसी झगड़े भी उत्पन्न हो जाते

थे और मुखिया बनने की इच्छा प्रत्येक व्यक्ति में रहती थी। इस कठिनाई को दूर करने के लिये मानव के लिये यह आवश्यक था कि वह छोटे-छोटे समूह बनाकर रहे। उत्तर पाषाण काल में हम पूर्व पाषाण काल के इन बड़े-बड़े समूहों के स्थान पर छोटे-छोटे समूह ही पाते हैं।

(5) मानव-मस्तिष्क का स्वाभाविक विकास—मानव मस्तिष्क के स्वाभाविक विकास ने भी मानव को पूर्व-पाषाण कालीन असभ्यतामय जीवन को छोड़कर सभ्य जीवन व्यतीत करने के लिये प्रेरित किया। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया मानव मस्तिष्क का विकास होता गया और वह अपनी सुख-सुविधाओं को खोजने के लिये प्रयत्नशील होने लगा। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप ही उत्तर-पाषाण कालीन सभ्यता का विकास हुआ।

(6) उत्तर-पाषाण कालीन प्रगति—जैसा कि हमने ऊपर उल्लेख किया है कि उत्तर-पाषाण काल में बहुत अधिक प्रगति हुई और मानव के रहन-सहन में अत्यधिक अन्तर आ गया। यहाँ हम उत्तर-पाषाण कालीन उपलब्धियों और इस युग में विभिन्न क्षेत्रों में हुई प्रगति की चर्चा संक्षेप में कर रहे हैं :—

(क) कृषि-कर्म—पूर्व-षाषाण कालीन मनुष्य प्रकृतिजीवी था ; परन्तु उत्तर-पाषाण युग में मानव ने अपने बौद्धिक विकास के द्वारा कृषि-कर्म प्रारम्भ किया। रूसी विद्वान वेविलोव के मतानुसार सर्वप्रथम अफगानिस्तान और चीन में कृषिकर्म का श्री गणेश हुआ। उत्तर-पाषाणकालीन मानव गेहूँ, जौ, मक्का, बाजरा और अनेक प्रकार के फल और शाक उत्पन्न करता था। खेती में वह हल का प्रयोग भी करता था। हल काठ के बने होते थे। पौधे काटने के लिये हँसिये का भी प्रयोग क्रिया जाता था। अनाज पीसने की चक्की का निर्माण भी हो चुका था।

(ख) पशु-पालन—पूर्व-पाषाण काल में मानव पशुओं से परिचित था; परन्तु अधिकतर वह पशुओं का आखेट ही करता था। उत्तर-पाषाण काल में पशु पालने की प्रथा का विकास हुआ। पालतू पशुओं में गाय, बैल, भैंस, बिल्ली, भेड़, बकरी, कुत्ता और घोड़ा आदि प्रमुख थे।

(ग) मृण्भाण्ड कला—पूर्व-पाषाणकालीन मनुष्य प्रस्तर सामग्री तो बनाता था; परन्तु वह मिट्टी की सामग्री नहीं बनाता था। उत्तर-पाषाण काल में ही सर्व-प्रथम इस कला को अपनाया गया। इस युग में चाक का निर्माण नहीं हुआ था। अनेक प्रकार के भाण्ड और पात्र मनुष्य अपने हाथ ही से बनाता था और उन्हें तरह-तरह से अलंकृत करता था। इस युग के बने हुये अनेक प्रकार के मिट्टी के बर्तन मिले हैं। इस कला के सम्बन्ध में विल ड्यूराण्ट महोदय लिखते हैं "उन लोगों ने मिट्टी को सौन्दर्य प्रदान किया, बर्तनों को कलात्मक ढंग से सजाया; अतः प्रायः आरम्भ से ही वस्तु निर्माण एक उद्योग नहीं वरन् कला रही।"

......'he fashioned clay into forms of beauty as well as decorated it with simple designs, and made pottery, almost at the outset, not only an industry but an art.' —Will Durrant

(घ) गृह-निर्माण कला—उत्तर-पाषाण काल में गृह-निर्माण कला का भी श्री गणेश हो चुका था। पूर्व-पाषाणकालीन मानव कन्दराओं और पशु-चर्मों के बने हुये तम्बुओं में रहता था। उत्तर-पाषाण काल में मनुष्य झोपड़ियों में रहने लगा। इन झोपड़ियों की दीवालें लट्ठे और नरकुल की बनी होती थीं और उन पर मिट्टी का लेप किया जाता था। झोपड़ियों का फर्श कच्चा होता था तथा छतें पत्तों, लकड़ी और छालों की बनी होती थीं।

(ङ) वस्त्र-निर्माण—पूर्व-पाषाण काल ही में मनुष्य वस्त्रों का प्रयोग करने लग गया था। यह वस्त्र तृण-पत्रों, तथा पशु-चर्म के होते थे। उत्तर-पाषाण काल में पौधों के रेशों और ऊन के धागों द्वारा वस्त्र निर्माण किया गया। धातु रसों की सहायता से इन वस्त्रों को रँगा भी जाता था। कताई, बुनाई और रंगाई तीनों कार्य इस युग में प्रारम्भ हो चुके थे।

(च) अस्त्र-शस्त्र आदि का निर्माण—पूर्व-पाषाण काल के अस्त्र बेडौल, खुरदरे और असुन्दर होते थे। इस युग में पाषाण-खंडों को रगड़-रगड़ कर चिकना और सुन्दर बनाया गया। केवल आखेट-सम्बन्धी ही औजार इस युग में नहीं बनते थे; बल्कि जीवनोपयोगी अन्य औजारों का निर्माण किया जाता था। बरछी, भाले, तलवार, चाकू, कुल्हाड़ी आदि के साथ ही हल, हँसिया, पहिया, घिरनी, डोंगी, तकली, करघे आदि भी इस युग में बनाये गये। यह समस्त सामग्री जीवनोपयोगी के साथ ही सुन्दर भी थी।

(छ) व्यापार एवं आवागमन—व्यापार एवं आवागमन के क्षेत्र में भी उत्तर-पाषाण युग में बहुत अधिक परिवर्तन हुये। इस युग में सर्वप्रथम डोंगियों का निर्माण किया गया जिनसे व्यापारिक आयात-निर्यात में बहुत अधिक सुविधा मिली। इस युग में इन्हीं डोंगियों की सहायता से अन्तः प्रादेशिक गमनागमन भी होता था। सीढ़ी का निर्माण भी इसी युग में हुआ।

(ज) पालिशदार उपकरण—पूर्व-पाषाणकालीन मानव के औजार और हथियार अत्यन्त बेडौल और खुरदरे होते थे। उत्तर-पाषाण काल में मानव ने उनके स्थान पर चिकने और चमकदार औजार और हथियार बनाये। इनमें कठोर पत्थर के एक टुकड़े को घिस कर धारदार बनाया जाता था और दूसरी ओर लकड़ी या सींग की मूठ लगा दिया जाता था। उत्तर-पाषाण काल में काष्ठ कला भी प्रकाश में आई।

नवीन आविष्कारों का प्रभाव—उत्तर-पाषाण काल में मानव के प्रगति कर लेने और नवीन आविष्कारों के फलस्वरूप अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। यहाँ इन परिवर्तनों की चर्चा हम संक्षेप में कर रहे हैं—

(1) जनसंख्या में वृद्धि—पूर्व-पाषाण काल एक लम्बे समय तक चला। परन्तु इस युग में मनुष्य सदैव प्रकृति पर निर्भर रहा और उसे सदैव उदरपूर्ति की ही चिन्ता रही। फलस्वरूप जनसंख्या में वृद्धि न हुई। कृषि-कार्य और पशुपालन के फलस्वरूप मानव ने इधर-उधर भटकना बन्द कर दिया और इसलिये जनसंख्या में अधिक वृद्धि हुई। मानव की जनसंख्या के साथ ही पशुओं की जनसंख्या में भी तेजी से वृद्धि हुई। खेती के लिये पशुओं की संख्या बढ़ाना मनुष्य के लिये आवश्यक था। परिणाम यह हुआ कि पूर्व-पाषाण काल में जिन स्थानों पर मानव का अस्तित्व बिल्कुल न था वहाँ भी वह रहने लगा।

(2) स्थायी जीवन को प्रोत्साहन—कृषि-कार्य के फलस्वरूप एक स्थान पर घर बनाकर वहाँ स्थायी रूप से रहने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला। सीढ़ी, घिरनी और चूल आदि के फलस्वरूप स्थायी मकानों के निर्माण में सहायता मिली। स्विटजरलैण्ड में झीलों पर बनाये गए मकान विशेष रूप से वर्णनीय हैं। इन मकानों का निर्माण लकड़ी के लट्ठों को झील में गाड़कर किया गया था और इनमें सीढ़ियों का भी प्रबन्ध किया गया था।

(3) सामाजिक व्यवस्था में सुधार—उत्तर-पाषाण काल में सामाजिक व्यवस्था में बहुत अधिक सुधार हुआ। इस काल में अधिकांश आविष्कार स्त्रियों ने किये। ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तर-पाषाण काल में पूर्व-पाषाण काल की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक सम्मान दिया गया और वे सूत कातने, कपड़ा बुनने, आभूषण और बर्तन बनाने आदि का कार्य करती थीं। पुरुषों का कार्य शिकार करना और औजार एवं हथियार बनाना था। श्रम विभाजन के फलस्वरूप स्त्रियों और पुरुषों दोनों की दशा में सुधार हुआ। उत्तर-पाषाण युग के विषय में यह भी उल्लेखनीय है कि इस युग का सामाजिक जीवन अत्यन्त व्यवस्थित हो गया था। सामाजिक जीवन को व्यवस्थापित करनेवाली शक्ति कौन थी इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। सम्भवतः उत्तर-पाषाण युग में समाजिक संगठन की इकाई कबीला थी और प्रत्येक कबीले का एक चिह्न होता था। कुछ विद्वानों का मत है कि इस युग में राजा भी अस्तित्व में आने लगा था।

(4) कला, धर्म और ज्ञान-विज्ञान की उन्नति—विभिन्न आविष्कारों के फलस्वरूप उत्तर-पाषाण काल में कला, धर्म और ज्ञान-विज्ञान की बहुत अधिक उन्नति हुई। उत्तर-पाषाण की कलाकृतियाँ बहुत थोड़ी थीं परन्तु वे अतीव सुन्दर थीं। उस युग की मूर्तियों में कुछ नारी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। अधिकांश उत्तर-पाषाण-कालीन समूह अपने मृतकों को घरों या कब्रिस्तानों में गाड़ते थे और उनके साथ हथियार, वर्तन और खाद्य सामग्री भी रखते थे। विभिन्न संस्कारों के पालन में भी वे पूर्व-पाषाणकालीन मानव से अधिक सावधानी बरतते थे। उत्तर-पाषाण काल में पूर्व-पाषाण काल की अपेक्षा ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भी मानव बहुत अधिक उन्नति कर गया था। मिट्टी पकाने के

लिये रसायन शास्त्र, खाना पकाने के लिये जीव शास्त्र और विभिन्न प्रकार के अनाज आदि उत्पन्न करने के लिये कृषि-शास्त्र से मानव का परिचय हो गया था। कदाचित् जलवायु आदि का पता लगाने के लिये वे सूर्य, चाँद, सितारों की गति-विधि भी देखने लगे थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उत्तर-पाषाण काल मानव-सभ्यता के विकास का अत्यन्त महत्वपूर्ण और क्रान्तिकारी युग है। मानव-सभ्यता के महल की नींव इस युग में ही परिलक्षित होती है।

ताम्र युग

उत्तर-पाषाण काल में मानव-सभ्यता का बहुत अधिक विकास हुआ; परन्तु धातु-प्रयोग ने सभ्यता के विकास की ओर अधिक गति प्रदान की। नवीन धातुओं का प्रयोग मानव बुद्धि के विकास का परिचायक है। धातुओं के प्रयोग ने पाषाण के घिसने आदि की कठिनाई को बहुत हद तक दूर कर दिया। मानव ने दूरस्थ प्रदेशों में जाकर धतुओं की खोज की और इन धातुओं को पिघलाकर जीवनोपयोगी सामग्री का निर्माण किया।

धातुओं में सर्वप्रथम प्रयोग ताँबे का हुआ। मेसापोटामिया में ताँबे का प्रयोग 4500 ई० पू० और मिस्र में 4000 ई० पू० में हुआ। भारत में इसका प्रयोग कब हुआ इसके बारे में कोई भी निश्चित मत नहीं है। इस तांबे को पिघलाने के लिये उच्च-तापमयी भट्टियों और धातु को विभिन्न आकार देने के लिये विभिन्न प्रकार के साँचों की आवश्यकता पड़ी। इस कार्य को पूर्ण करके मानव ने अपने बौद्धिक विकास का परिचय दिया। ताँबे की चद्दरें बनाई गईं और अनेक छोटी-बड़ी वस्तुओं का निर्माण किया गया। यह वस्तुएँ पाषाण की बनी हुई वस्तुओं की अपेक्षा अधिक सुडौल और सुन्दर थीं। परन्तु इसके यह अर्थ नहीं हैं कि इस युग में पत्थर का प्रयोग बन्द हो गया। नवीन धातु के आविष्कार के पश्चात भी बहुसंख्यक वस्तुएँ पाषाण की ही बनाई जाती थीं।

ताम्र युग की विशेषताएँ

उत्तर-पाषाण युग ने यदि मानव-सभ्यता के विकास की नींव डाली तो ताम्र युग ने उसे और अधिक विकसित किया। इस युग की अनेक विशेषताएँ हैं जिनकी चर्चा हम संक्षेप में कर रहे हैं—

(क) ताम्र की बनी हुई घरेलू वस्तुओं का निर्माण—जैसा पहले कहा जा चुका है कि इस युग में पाषाण के साथ ही ताम्र की बनी हुई घरेलू वस्तुओं का निर्माण किया गया। यह वस्तुएँ अपेक्षाकृत अधिक सुदृढ, सुडौल और सुन्दर होती थीं।

(ख) पशुओं और गाड़ियों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग—इस युग में पशुओं और गाड़ियों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया। ताम्र की खानें कुछ निश्चित स्थानों पर ही थीं। इन स्थानों से ताम्र निकालकर दूर-दूर तक पहुँचाया जाता था। इस कार्य के लिये पशुओं और गाड़ियों की आवश्यकता होती थी। पशुओं में सर्वप्रथम मानव ने बैल का प्रयोग किया। इस सम्बन्ध में गार्डन और चाइल्ड ने लिखा है, "बैल को भाप के इंजन और पेट्रोल के मोटर कार का आरम्भिक पग कहा जा सकता है।"

"The ox was the first step to the steam engine and petrol motor." —Gorden and Childe,

बैल के साथ ही गधा, घोड़ा, ऊँट आदि जानवर भी प्रयोग में लाये जाते थे। उत्तर-पाषाण काल में ही पहियेदार गाड़ियों और नावों का निर्माण हो चुका था। इस युग में इनसे बहुत अधिक लाभ उठाया गया।

(ग) कृषि क्षेत्र में अपूर्व उन्नति—उत्तर-पाषाण काल में हलों का प्रयोग होता था या नहीं इस विषय में विद्वान एकमत नहीं हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि पूर्व-पाषाण काल में खेतों की जुताई का कार्य स्त्रियाँ अपने हाथों से ही करती थीं। ताम्र काल में हलों का प्रयोग होने लगा इसमें किसी को भी संदेह नहीं। हल में बैलों को जोता जाता था और उनके खाने के लिये घास, कर्बी, मोटे अनाज आदि की खेती भी की जाती थी। गोबर के प्रयोग ने खाद्य समस्या का समाधान कर दिया था। इस प्रकार इस युग में कृषि क्षेत्र में महान परिवर्तन हुए।

(घ) व्यावसायिक विशेषज्ञों और समष्टिगत भावना का उदय—ताम्र का व्यापार करने के लिये व्यवसायियों का दक्ष होना अनिवार्य था। उनका सम्पूर्ण समय इसी कार्य में व्यतीत होता था। अतः व्यावसायिक विशेषज्ञों का उदय इसी युग में हुआ। शिल्प समुदाय भी इसी युग में निर्मित हो चुके थे। उनके पास मोहरें होती थीं। वे कृषकों और व्यवसायियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे और उनसे जीवनोपयोगी वस्तुओं की प्राप्ति करते थे। इस प्रकार मनुष्य का जीवन समष्टिगत हो गया। आदान-प्रदान के कारण मानव में सहयोग की भावना का उदय हुआ।

(ङ) शासक और शासित की भावना का उदय—ज्यों-ज्यों मानव का जीवन समष्टिगत होता गया समाज में शासक और शासित की भावना अंकुरित होती गई। बलवान की सहायता के लिये समाज के अन्य व्यक्ति उपस्थित होने लगे। कदाचित यही भावना आगे चलकर राजा और प्रजा के रूप में विकसित हुई।

(च) यातायात के साधनों का विकास—इस युग में यातायात के साधनों का बहुत अधिक विकास हुआ। भार ढोने के लिये बैलों के साथ ही गधों का प्रयोग

भी किया जाता था। यातायात के क्षेत्र में सबसे अधिक क्रान्तिकारी आविष्कार पहिए का था। इस काल में बैलगाड़ियों का प्रयोग होता था। नाव की विधि का आविष्कार नव-पाषाण काल में ही हो चुका था। इस युग में मानव ने पाल का आविष्कार किया।

(छ) गृह-निर्माण कला का विकास—ताम्र-काल में गृह-निर्माण कला का भी विकास हुआ। धूप और आग में पकी हुई ईंटों का प्रयोग इसी युग में किया गया। पक्के मकान भी इसी युग में सबसे पहले बने। अन्न संग्रह के लिये बड़े-बड़े मृभाण्ड भी इसी युग में बने।

(ज) अन्य कलाओं का विकास—ताम्र-युग में कताई और बुनाई का कार्य भी और अधिक विकसित रूप में होने लगा। अपनी सौंदर्य भावना की तुष्टि के लिये मानव ने ताँबे और पत्थर के बने हुए आभूषणों का निर्माण किया। रंगीन वस्त्रों आदि का भी प्रयोग भी इस युग में प्रचुर मात्रा में होने लगा। समाज के संगठन के साथ धार्मिक भावना भी विकसित हुई। ताम्रकालीन तावीजें और मोहरें आदि भी मिली हैं जिन पर पशुओं के चित्र अंकित हैं। कदाचित इसका प्रयोग टोना-टोटका के लिये किया जाता था।

ताम्रकालीन सभ्यता एलाम, मेसोपोटामिया और मिस्र में विकसित हुई। समस्त भूमध्य सागरीय देशों में इस सभ्यता का प्रसार हुआ।

काँस्य युग

शनैः शनैः मानव को यह प्रतीत हुआ कि ताँबा एक निर्बल धातु है। उसने किसी कठोर धातु की खोज प्रारम्भ की। ताँबे और टीन के समिश्रण से एक नवीन धातु काँसे का आविष्कार किया गया। इस काँसे को ही जीवनोपयोगी वस्तुओं के निर्माण के लिये अपनाया गया। इसका प्रयोग मिस्र में 2800 ई० पू० और ट्राय में 2000 ई० पू० में किया गया। मध्य अफ्रीका और दक्षिणी भारत आदि में काँस्य काल का आविर्भाव नहीं हुआ। यहाँ के लोगों ने आगे चलकर लोहे को ही अपनाया।

लौह युग

धीरे-धीरे मानव ने अपने बुद्धि कौशल से एक ऐसी धातु का प्रयोग करना सीखा जिसने मानव संस्कृति के विकास में एक नया मोड़ ला दिया। 1300 ई० पू० में हिट्टाइट जाति ने लौह का सर्वप्रथम प्रयोग किया। मिस्र में इसका प्रयोग रेमेजज द्वितीय के शासन काल में हुआ। इस लौह प्रयोग के साथ ही काँसे का प्रयोग भी प्रचलित रहा। इसका कारण यह था कि काँसा लोहे की अपेक्षा अधिक सुन्दर था। भारत में लौह प्रयोग कब प्रारम्भ हुआ इस विषय में भी विद्वान एक मत नहीं हैं।

परन्तु इसमें किंचित मात्र भी संदेह नहीं कि भारतीय सभ्यता का इस युग में बहुत अधिक विकास हुआ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि असभ्य और जंगली की तरह जीवन व्यतीत करने वाला मानव धीरे-धीरे सभ्य और सुसंस्कृत होने लगा। भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के पश्चात् जब वह सामाजिक उन्नति की ओर अग्रसर हुआ तो उसका सांस्कृतिक विकास हुआ। नदियों की घाटियाँ ही उसकी सभ्यता और संस्कृति के विकास की कहानी प्रदर्शित कर रही हैं। इन घाटियों में ही मानव की प्राचीनतम सभ्यता विकसित हुई।

सारांश

मानव-सभ्यता के विकास का प्रथम युग पूर्व-पाषाण-युग के नाम से पुकारा जाता है। इस युग में मानव जंगली जीवन व्यतीत करता था। उत्तर-पाषाण-युग में मानव धीरे-धीरे सभ्य हुआ। सबसे पहले चरवाहा युग आया। इसी युग में नदियों के काठों को मानव ने अपने निवास के लिये उपयुक्त समझा। नदियों के किनारे रहने में मानव को निम्नलिखित सुविधाएँ उपलब्ध हुईं—

(1) चरागाहों की सुविधा
(2) जल की सुविधा
(3) कृषि-कार्य में सुगमता
(4) बर्तन आदि का प्रबन्ध
(5) रहने की सुविधा
(6) मछली पकड़ने की सुविधा
(7) व्यापारिक सुविधा
(8) मानसिक सन्तोष

उत्तर-पाषाण-युग में मानव ने विभिन्न प्रकार के धन्धों और कलाओं को सीखा।

इसके पश्चात् ताम्र युग आया। इस युग में मानव-सभ्यता का और अधिक विकास हुआ। कृषि-कार्य में अब मानव को और अधिक सुगमता हुई। इसके पश्चात् कांस्य और लौह युग आये। भारतीय सभ्यता का विकास लौह युग में बहुत अधिक हुआ। इन्हीं युगों में मानव सभ्यता का विकास हुआ। इस सम्बन्ध में यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि समस्त सभ्यताएँ नदियों के किनारे विकसित हुई हैं। नदियों के काठे ही विश्व की प्राचीन सभ्यताओं के लिये विशेषकर उपयुक्त रहे हैं।

———

मेसोपोटेमिया की सभ्यता और संस्कृति

MESOPOTOMIAN CIVILIZATION AND CULTURE

अध्याय | 2

सुमेरीय सभ्यता एवं संस्कृति
(SUMERIAN CIVILIZATION AND CULTURE)

प्रश्न—आप सुमेरीय लेखन-कला और साहित्य के बारे में क्या जानते हैं—लिखिये।

(लखनऊ विश्वविद्यालय)

State what do you know of Sumerian system of writing and literature. (Lucknow University)

सुमेरियन जाति के विषय में आप क्या जानते हैं ?

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

What do you know about the Sumerians ?

(Allahabad University)

इतिहास हमें सुमेर जाति के बारे में क्या बताता है ? उनकी शासन-प्रणाली किस प्रकार की थी ?

(लखनऊ विश्वविद्यालय)

What does History tell us about the Sumerians ? What was their system of administration ?

(Lucknow University)

सुमेरियन धर्म तथा साहित्य का वर्णन कीजिये।

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

Describe the Sumerian religion and literature.

(Gorakhpur University)

"मेसोपोटामिया की सभ्यता किसी अन्य जाति की अपेक्षा सुमेरियन जाति की अधिक ऋणी है" इस कथन पर प्रकाश डालिये।

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

"Mesopotamian civilization is more indebted to Sumerians than any other tribe" throw light on this statement. (Gorakhpur University)

'मेसोपोटेमिया' शब्द का अर्थ है—दो नदियों के बीच का प्रदेश। ईसा से लगभग 3000 वर्ष पूर्व दजला और फरात नदियों के बीच एक सभ्यता का विकास हुआ जिसे हम मेसोपोटेमिया की सभ्यता के नाम से पुकारते हैं। यह सभ्यता प्राचीन-काल की उन्नततम सभ्यताओं में से एक थी। मेसोपोटेमिया के उत्तर में अरामी पर्वत; पूर्व में इलाम की पहाड़ियाँ; पश्चिम में अरब का रेगिस्तान और दक्षिण में ईरान की खाड़ी थी। यह प्रदेश कृषि के लिए बहुत अच्छा था। यहाँ की पृथ्वी सोना उगलती थी। स्टेगो के अनुसार; 'जौ की उपज वहाँ तीन सौ गुनी होती थी। स्वादिष्ट और अच्छे प्रकार के खजूर अत्यधिक मात्रा में उपलब्ध होते थे।' प्लीनी का मत है—"गेहूँ की खेती वहाँ १५० गुनी अधिक होती थी।" लाफ्तू ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है,

"वहाँ की पृथ्वी नील के किनारे की मिस्र की पृथ्वी की तरह अधिक उपजाऊ थी। विभिन्न प्रकार के साग, तरकारियाँ, सेब, अंजीर, खुबानी, पिस्ता, अंगूर, बादाम और अन्य मेवे अत्यधिक मात्रा में पाए जाते थे। विभिन्न प्रकार के सुन्दर और खुशबूदार फूल होते थे। नदियाँ मछलियों से परिपूर्ण रहता थीं। गाय, बैल, गधे, बकरी, भेड़, सुअर, ऊँट इत्यादि पशु पाले जाते थे।"

इस प्रकार खेती के लिये यह प्रदेश बहुत अच्छा था। साथ ही इस प्रदेश में विभिन्न प्रकार कीं सुविधाएँ उपलब्ध थीं। सभ्यताओं का विकास नदियों के किनारे ही होता है क्योंकि वहाँ मानव-जीवन के लिए सभी प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं। 'मेसोपोटेमिया' की सभ्यता भी दजला और फरात नदियों के बीच की सभ्यता है। इस सभ्यता के अन्तर्गत सुमेरियन; बेबिलोनियन; असीरियन तथा कैल्डियन चार सभ्यताएँ आती हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि यह चारों सभ्यताएँ एक ही सभ्यता के विभिन्न रूप हैं। 'खाल्दी सभ्यता' का अध्ययन 'बेबिलोनियन सभ्यता' के अन्तर्गत ही किया जा सकता है। मेसोपोटेमिया की सभ्यता का वास्तविक प्रतिनिधित्व सुमेरियन सभ्यता ही करती है। मेसोपोटेमिया की सभ्यता को सुमेर जाति की महान देन है। एक विद्वान ने ठीक ही लिखा है; "मेसोपोटमिया की सभ्यता किसी अन्य जाति की अपेक्षा सुमेर जाति की अधिक ऋणी है।"

सुमेर की स्थिति और उसकी सभ्यता की प्राचीनता

प्राचीनकाल में सुमेर और अक्काद के मध्य कोई सीमा निर्धारित नहीं थी। साधारणतः लोग निप्पुर नगर के दक्षिण भाग को सुमेर और उत्तरी प्रदेश को अक्काद कहते थे। प्राचीन काल में सुमेर का क्षेत्रफल बहुत कम था। सुमेर के निवासी नाटे कद के होते थे।

सुमेर की सभ्यता कितनी प्राचीन है इस विषय में पर्याप्त मतभेद है। कुछ विद्वानों का मत है कि इस सभ्यता का काल वही है जो नील नदी के किनारे की मिस्र की सभ्यता का और सिन्धु नदी के किनारे सिन्धु-घाटी की सभ्यता का था। परन्तु कुछ अन्य विद्वान इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते। मिस्र की सभ्यता और सुमेर की सभ्यता में काफी अन्तर था। सुमेर की सभ्यता अनेक जातियों की सभ्यता है। मिस्र के लोग एकेश्वरवाद के मानने वाले थे परन्तु सुमेर के लोग एकेश्वरवाद में विश्वास नहीं करते थे। सुमेर और सिन्धु घाटी की सभ्यताएँ बहुत निकट आती हैं। ईराक में उर के पास 'अल-उबेद' के एक गाँव में भारत की अबरख मिट्टी के बने हुये बर्तन मिले हैं। मोहनजोदड़ो में एक मूर्ति प्राप्त हुई जिसका रूप सुमेरियनों के 'पवित्र वृषभ' से मिलता है। हड़प्पा में एक सिंगारदान मिला है जिसकी बनावट वैसी ही है जैसी कि उर में प्राप्त हुए एक सिंगारदान की है। मोहनजोदड़ो और सुमेर की लिपि भी एक दूसरे से मिलती है। कुछ घड़े एवं अन्य वस्तुएँ भी ऐसी प्राप्त हुई हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि सिन्धु-घाटी की सभ्यता और सुमेर की सभ्यता का समय एक ही है। इस सम्बन्ध में **सर जान मार्शल (Sir John Marshall)** ने लिखा है—

"इस प्रकार की मिलती-जुलती वस्तुओं की सूची बहुत बढ़ाई जा सकती है और यह वस्तुएँ इस बात को प्रमाणित करने के लिये यथेष्ट हैं कि इस जमाने में अर्थात् सम्राट सारगोन के पूर्व या सारगोन के समय में, भारत और सुमेर में आना-जाना, लेना-देना और सभ्यता का अन्य बातों में घनिष्ठ सम्पर्क था।"

सर जान मार्शल यह भी लिखता है कि—**'इन पुराने देशों में मिट्टी के बरतनों के जो नमूने मिले हैं उनसे सिद्ध होता है कि सिन्ध, बलूचिस्तान, और ईराक की संस्कृतियों का एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध था।'**

इन समस्त तथ्यों के आधार पर हम सुमेर की सभ्यता का आरम्भ लगभग 3500 ई० पू० मान सकते हैं।

सुमेरियन जाति

सुमेरियन जाति के विषय में पर्याप्त जानकारी नहीं है। केवल इतना ही ज्ञात है कि अति प्राचीन काल में बेबिलोनिया में दो जातियाँ निवास करती थीं। अक्काद में सेमेटिक और सुमेर में सुमेरियन। सुमेरियनों का सम्बन्ध किस जाति से था इस विषय में भी कुछ नहीं कहा जा सकता। ये लोग मूल रूप से सुमेर के ही रहने वाले थे अथवा अन्य कहीं से आकर बस गए थे इस सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न मत हैं। यह भी कहना कठिन है कि प्राचीनतम सुमेरियन जाति और एलम निवासियों का क्या सम्बन्ध था। 'द मौर्गा' नामक विद्वान का मत है कि एलमियों और सुमेरियनों की एक

ही जाति थी। ऐसा मालूम पड़ता है कि अपने स्थानान्तरण के समय सुमेरियनों ने कुछ काल तक एलम में निवास किया और वहाँ अपनी सभ्यता की छाप छोड़ी। कुछ विद्वानों का मत है कि–मूलतः सुमेरियन सिन्धु-घाटी के निवासी थे। वहाँ से बलूचिस्तान और फारस होते हुए दजला और फरात नदियों के बीच के भाग में आकर बस गए। परन्तु इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। वेडेल ने सुमेरियनों को आर्य जाति का माना है। साइक्स भी उनका सम्बन्ध इण्डो-यूरोपियन परिवार से मानता है। पिजॉन तथा वॉल के मतानुसार वे मंगोलॉयड परिवार के थे। प्रोफेसर इलियट स्मिथ का मत है कि ये लोग सुमेर के ही मूल निवासी थे। परन्तु उनका मत भी समीचीन प्रतीत नहीं होता।

कुछ विद्वानों का मत है कि पहले सुमेर में भी सेमाइट जाति के लोग निवास करते थे। बाहर से आई हुई एक जाति ने इनको आकर पराजित किया और कालान्तर में यही विजित जाति सुमेरियन के नाम से पुकारी जाने लगी।

सुमेर का राजनीतिक इतिहास

पौराणिक युग—3200 ई॰ पू॰ के पहले के सुमेर के राजनीतिक इतिहास के विषय में अधिक जानकारी नहीं है। बेरोसाँस के पौराणिक ग्रन्थ एवं कुछ अभिलेखों से उस समय का इतिहास अवश्य ज्ञात होता है। परन्तु यह जानकारी भी प्रामाणिक नहीं कही जा सकती। बेरोसाँस के ग्रन्थ के अनुसार बेबिलोनिया के निवासियों को ओआँनिज नाम के एक देवता ने सबसे पहले खेती करना, लिखना और अन्य कलाएँ सिखाईं। उस देवता ने ही सबसे पहले सुमेर पर शासन किया। उसके पश्चात् आलारोस उसका उत्तराधिकारी बना। इस वंश के अन्तिम शासक एक्सीयूथ्रास के शासन-काल में जलप्रलय हुआ।

बेरोसॉस के ग्रन्थ के अतिरिक्त कुछ अभिलेखों से जो कि कीलाक्षर लिपि में लिखे हुये हैं सुमेर और अक्काद के पौराणिक इतिहास की जानकारी होती है। इन अभिलेखों के अनुसार 'जिसद्' के शासन-काल में जलप्रलय हुआ।

ऐतिहासिक युग—सुमेर के नगर-राज्य—3200 ई॰ पू॰ से सुमेर के इतिहास की विधिवत जानकारी प्राप्त होती है। कुछ अभिलेखों के अनुसार जलप्रलय के बाद सुमेर में किश, एरेक और उर नगर राज्यों का शासन हुआ। कहा जाता है कि किश और एरेक का प्रभुत्व काफी समय तक चला। परन्तु यह सब इतिहास कल्पना से युक्त प्रतीत होता है और इसे पूर्ण रूप से प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। उर के इतिहास का अवश्य ही ऐतिहासिक महत्व है। उर के चार राजाओं ने 177 वर्ष तक शासन किया और उर के प्रथम वंश को ही सुमेर का प्रथम ऐतिहासिक वंश माना जाता है। इसका समय 3200 ई॰ पू॰ था। उर के पहले राजकुल के पश्चात् अवनि के पटेसियों ने आसपास के इलाके पर अधिकार कर लिया। परन्तु वे लोग भी शासन

को बहुत दिनों तक अपने हाथ में न रख सके। उनमें 9 राजकुल हुये और सबने थोड़े-थोड़े समय तक शासन किया। इसके पश्चात् उरु-कगिना और लूगल जग्सिसी का काल आया। तत्पश्चात् सुमेर पर किश और अक्काद के सेमाइटों का प्रभुत्व स्थापित हुआ।

सारगोन प्रथम—सारगोन प्रथम सुमेर का सबसे पहला शक्तिशाली सम्राट माना जाता है। उसकी गणना विश्व के महानतम् विजताओं में की जाती है। सारगोन प्रथम के माता-पिता के विषय में कोई जानकारी नहीं है। वह राज-परिवार से सम्बन्धित नहीं था। उसके विषय में विल ड्यूराण्ट ने लिखा है :—

'His origin was not royal, history could find no father to him and no other mother than a temple prostitute—Will Durrant.

सबसे पहले सारगोन अगादे शहर का पटेसी बना। तत्पश्चात् उसने समस्त सुमेर पर अपना अधिकार जमा लिया और वहाँ दृढ़ता पूर्वक शासन करना प्रारम्भ किया। उसका राज्य पूर्व में इलाम की पूर्वी सीमा तक तथा उत्तर और पश्चिम में रूम सागर के किनारे तक फैला था। समस्त शाम भी उसके राज्य के अन्तर्गत आता था।

सारगोन के शासन-काल में सुमेर की बहुत अधिक सांस्कृतिक उन्नति हुई। उसने अनेक महल और मन्दिर बनवाये। इन मन्दिरों में निप्पर नगर में 'बेल' देवता का मन्दिर और अगादे में 'अनुलिल' देवता का मन्दिर प्रसिद्ध हैं। सारगोन के प्रयासों के फलस्वरूप ही सुमेरियन कानूनों और धार्मिक-पुस्तकों को संगृहीत और सेमेटिक भाषा में अनूदित किया गया। उसने समस्त साम्राज्य में संदेश-संचार-प्रणाली को भी व्यवस्थित किया। सारगोन की सफलताओं के कारण ही सुमेर पर अक्काद वंश के काल को 'सारगोन युग' के नाम से पुकारा जाता है। सारगोन ने 55 वर्ष तक राज्य किया। उसका एक अभिलेख भी मिलता है, जिस पर लिखा है—

'मैं अगादे का बहादुर सम्राट सारगोन हूँ। मेरी माँ बहुत ही गरीब थी और मुझे अपने बाप का पता नहीं। मेरे चाचा पहाड़ पर भेड़ें चराया करते थे। मैंने फिरात नदी के किनारे अजुरपिरानो गाँव में जन्म लिया। मेरी माँ ने जो बहुत गरीब थी मुझे चुपचाप पैदा किया और एक टोकरी में रखकर नदी में प्रवाहित कर दिया। अनुकूल भाग्य के कारण किसी गाँव के एक दयावान व्यक्ति ने मुझे नदी से निकालकर बचा लिया।'

सम्राट नरामसिन—सारगोन की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र नरामसिन गद्दी पर बैठा। उसने भी अपने पिता की भाँति 55 वर्ष तक राज्य किया। निप्पर में उसने शहर की चहारदीवारी बनवाई। उसने अपनी राजधानी उर से हटाकर अगादे रखी परन्तु उर भी व्यापार और धर्म का केन्द्र बना रहा।

इस वंश का अन्तिम सम्राट शारगलेस्वर था जिसने 24 वर्ष तक राज्य किया।

गुटियम का राजकुल—अगादे के पश्चात् 'शिरपुरला' सुमेर की राजधानी बनी। इस पर गुटियम वंश के शासकों ने शासन किया। इनका शासन 155 वर्ष तक रहा। इस वंश का सबसे प्रतापी सम्राट गुडीअ था। उसकी तुलना सारगोन महान से की जाती है। उसके शासन-काल में कला-कौशल और वाणिज्य की बहुत अधिक उन्नति हुई। इसके शासन-काल की 18 मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। गुटियम राजकुल को समाप्त करने का श्रेय एरेक के एक राजा को है।

उर का तृतीय राजवंश—निरन्तर संघर्षों के पश्चात् उर एक बार पुनः सुमेर की राजधानी बना। इस कुल में उर-नाम्मु नाम का एक प्रसिद्ध राजा हुआ। शिला-लेखों में उसे सुमेर और अक्काद का राजा कहा गया है। उसने उर में 'चन्द्रदेव का मन्दिर', एरेक में 'बिना देवी का मन्दिर', लारसा में 'सूर्यदेव का मन्दिर' और निप्पर में 'सिग्गुरात मन्दिर' बनवाया।

उर-नाम्मु के पश्चात् उसका पुत्र दुङ्गी गद्दी पर बैठा। वह भी अपने पिता की भाँति एक सुयोग्य शासक था। उसने सुसा में 'शुशिनाग' देव का मन्दिर बनवाया। इसके अतिरिक्त उसने सुमेर में अनेक मन्दिर बनवाये। उसके शासन-काल में एक 'विधि-संहिता' भी बनी। पहले कुछ विद्वानों का मत था कि यह विश्व की प्राचीनतम विधि-संहिता है परन्तु सुमेर में इससे भी अधिक प्राचीन विधि संहिताएँ प्राप्त हुई हैं। हाँ, यह अवश्य है कि परवर्ती बैबिलोनियन शासक हम्मूरबी की विश्व-विख्यात 'विधि-संहिता' दुङ्गी की 'विधि-संहिता' का परिवर्तित और संशोधित संस्करण मात्र थी।

सुमेर का पतन—दुङ्गी के बाद उसके पुत्र वरसेन ने थोड़े समय तक राज्य किया परन्तु दुङ्गी की मृत्यु के लगभग 43 वर्ष बाद उर के नेतृत्व का अन्त हो गया। एलमी के शासक ने उर पर आक्रमण किया और दुङ्गी के उत्तराधिकारी को बन्दी बनाकर एलम ले गया। इसके पश्चात् सुमेर पर एलम के आक्रमण निरन्तर होते रहे। इस युद्ध का वर्णन निप्पर के एक शिला लेख में इस प्रकार मिलता है—

'उन्होंने देश को बरबाद कर दिया और शासन-प्रबन्ध को नष्ट कर दिया। वे तूफान की भांति आये और समस्त दिशाओं में तबाही फैला गये। मेरे प्यारे सुमेर! उन्होंने तुम्हें क्या से क्या बना दिया। पवित्र राजकुल के उत्तराधिकारी को उन्होंने निर्वासित कर दिया। शहर को धूल में मिला दिया और मन्दिरों को गिरा दिया।'

इसके पश्चात् इसित् नगर में एक नये राजवंश की स्थापना हुई जिसने एलम के आक्रमणों को रोकने का प्रयास किया और225 वर्ष तक शासन किया। इसी बीच

पश्चिमी सेमेटिक अथवा अमोराइट जातियों ने भी सुमेर पर आक्रमण कर दिया। इन निरन्तर आक्रमणों के फलस्वरूप सुमेर का पतन हुआ और 21 वीं शताब्दी ई० पू० में मोसेपोटेमिया में एक नई सभ्यता का आरम्भ हुआ जिसे हम बेबिलोनिया की सभ्यता के नाम से पुकारते हैं।

राजनीतिक संगठन एवं प्रशासन

(1) नगर राज्य—3000 ई० पू० में सुमेर छोटी-छोटी राजनीतिक इकाइयों में बँटा हुआ था। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि सुमेर में छोटे-छोटे नगर राज्य थे। हर राज्य में एक नगर होता था तथा दो-तीन कस्बे या गाँव होते थे। प्रधान नगर के चारों ओर खेती करने के लिये भूमि होती थी। इस युग के अनेक राजाओं ने अनेक बार नगर-राज्यों को संगठित करके एक संयुक्त राष्ट्र-राज्य की स्थापना का प्रयास किया परन्तु केन्द्रीय सत्ता के दुर्बल होते ही पुनः नगर-राज्य बन गए।

इन नगर राज्यों में शासन का भार नागरिकों पर होता था। हर नगर में एक संसद होती थी जिसके दो सदन होते थे। एक सदन में नगर के सभी वयस्क नागरिक रहते थे और दूसरे में कुछ इने-गिने अनुभवी वृद्ध पुरुष रहते थे। राजा को इस संसद के परामर्शानुसार ही शासन करना होता था। इस प्रकार आरम्भ में सुमेर में प्रजातान्त्रिक प्रणाली को अपनाया गया था। अतएव सुमेरियनों को प्रजान्तत्र का जनक कहा जाना चाहिये। यूनान के नगर-राज्यों की प्रजान्तत्रात्मक व्यवस्था के लगभग 2500 वर्ष सुमेर में इस प्रकार की व्यवस्था मिलना निसन्देह आश्चर्यजनक है।

3000 ई० पू० के बाद सुमेर से प्रजान्तत्र की भावना समाप्त होने लगी। इस प्रजातान्त्रिक प्रणाली का सबसे बड़ा दोष यह था कि किसी बात का निर्णय बहुत देर में होता था। अतः संकटकालीन अवसर के लिये एक अधिकारी की नियुक्ति की गई जिसे 'पटेसी' या 'लूगल' कहते थे। आरम्भ में यह पद अस्थायी रखा गया था, परन्तु बाद में स्थायी हो गया। कुछ नगरों में मन्दिरों के पुरोहित 'लूगल' बन बैठे। ये लोग जनता को सताने भी लगे। उनको कालान्तर में 'एनसी' के नाम से पुकारा गया। ये राज्य की सैनिक शक्ति का प्रयोग अपने हित के लिये करने लगे और इन्होंने कर आदि बढ़ा दिये। इन सब बातों के फलस्वरूप नगर सभाओं की शक्ति बहुत कम हो गई, अतएव लगश के तत्कालीन शासक उरु-कगिना ने इस व्यवस्था को समाप्त कर दिया। जब उम्मा के शासक लूगल जग्गिसी ने उरु-कगिना को परास्त कर दिया तो सुमेर के लोगों ने राजनीतिक एकता की आवश्यकता महसूस की। राजनीतिक एकता के लिये आवश्यक था कि किसी एक ही व्यक्ति के हाथ में शासन की सत्ता हो। अतएव प्रजातान्त्रिक प्रणाली के स्थान पर राजतन्त्र की स्थापना हुई।

सरगोनी राजाओं ने इस प्रणाली का पूर्ण लाभ उठाया और देश में राजनीतिक एकता स्थापित की। इस प्रकार सुमेर की शासन-प्रणाली ने साम्राज्यवादी रूप धारण किया।

(2) **युद्ध कला**—पटेसी युद्ध काल में सेना का संचालन करते थे। नगर-राज्य के सभी व्यक्ति पटेसी के नेतृत्व में युद्ध करने को तत्पर रहते थे। ये लोग पंक्ति-बद्ध होकर शत्रुओं पर आक्रमण करते थे। युद्ध में अपनी रक्षा के लिये यह लोग ढाल और शिरस्त्राणों का प्रयोग करते थे। रथों का प्रयोग अधिक मात्रा में किया जाता था जिनमें गधे जोते जाते थे। घोड़े और धनुष बाण का प्रयोग शायद सुमेरियन आरम्भ में नहीं करते थे। धनुष का प्रयोग इन्होंने अक्कादी सेमाइटों से सीखा। आरम्भ में इनका प्रमुख अस्त्र तलवार ही था। कालान्तर में साम्राज्यवादी व्यवस्था के अन्तर्गत सेना का सम्पूर्ण नेतृव सम्राट ही करने लगा।

(3) **न्याय एवं दण्ड-व्यवस्था**—प्रारम्भ में सुमेर में न्याय के लिये रीति-रिवाजों और परम्पराओं का आश्रय लिया जाता था। परन्तु ज्यों-ज्यों साम्राज्य की शक्ति बढ़ती गई रीति-रिवाजों और परम्पराओं के अनुसार न्याय करना दुष्कर हो गया। अतः एक विधि-संहिता की आवश्यकता महसूस हुई। उर के तृतीय राजवंश के संस्थापक उर-नम्मु ने एक विधि-संहिता की रचना करवाई जो बड़ी खण्डितावस्था में प्राप्त हुई है। अतएव उसके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। उर-नम्मु के पुत्र दुङ्गी की विधि-संहिता अपेक्षाकृत अच्छी अवस्था में मिली है। इस संहिता में तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि आगे चलकर बैबिलोनियन शासक हम्मूरबी ने दुङ्गी की विधि-संहिता को ही परिवर्धित एवं संशोधित कराकर उसे ही एक नवीन रूप में प्रस्तुत किया।

(क) **न्यायालय और उसका संगठन**—सुमेरियन कानून-व्यवस्था में न्यायालय का वही स्थान था जो आजकल के न्यायालयों का है। इस न्याय-व्यवस्था का मन्दिरों से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था और पुजारी वर्ग ही मुख्यतः न्यायाधीश होता था। अदालतें दो प्रकार की होती थीं—(1) साधारण, (2) धार्मिक।

इन न्यायालयों के न्यायाधीश पुरोहित ही होते थे। साथ राजा को भी न्यायाधीश नियुक्त करने का अधिकार था। नगर के नगरपति, पटेसी और गवर्नर भी मुकदमों का निर्णय करने के अधिकारी थे। मुकदमेबाजी की प्रथा को कम करने के लिये पंचों की भी नियुक्ति की गई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि इस युग में वकीलों की प्रथा नहीं थी। वादी और प्रतिवादी अपने आप अपनी वकालत करते थे। अदालत में मुकदमा ले जाने के पहले वादी को एक सरकारी पंच 'मशकिम' के

सामने मुकदमा पेश करना होता था जो उसका निर्णय करने का प्रयास करता था। अगर वह इस कार्य में असफल होता तो मुकदमा दिकुद (जज) के सामने जाता था। वादी और प्रतिवादी राजा के नाम पर शपथ लेकर अपना बयान देते थे। छोटी अदालत के बाद मुकदमा ऊपर की अदालत में भी ले जाया जा सकता था। ऊँची अदालत नीचे की अदालत का निर्णय रद्द कर सकती थी।

प्राचीन सुमेर में न्याय-व्यवस्था बहुत सस्ती थी। किसी भी प्रकार की कोर्ट फीस नहीं ली जाती थी। अतः गरीब से गरीब आदमी न्यायालय की शरण ले सकता था। झूठी गवाही या साक्षी देने वालों को कठोर दण्ड दिया जाता था।

(ख) दण्ड-व्यवस्था—सुमेर की दण्ड-व्यवस्था बड़ी उदार थी। जायदाद के बेचने, खरीदने, ऋण, तलाक, शादी आदि के लिये विधिवत् कानून बने हुये थे। जिसका पालन प्रत्येक व्यक्ति को करना पड़ता था। यहाँ की दण्ड नीति **'शठे शाठ्यं समाचरेत'** सिद्धान्त पर आधारित थी। यदि कोई व्यक्ति किसी का दाँत तोड़ देता तो उसका भी दाँत तुड़वा दिया जाता था। यह कार्य उसी व्यक्ति के द्वारा किया जाता था जिसका दाँत तोड़ा गया था। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि वादी द्वारा ही प्रतिवादी को दण्ड दिया जाता था।

सुमेरियन कानून में बच्चे को पिता की और पत्नी को पति की सम्पत्ति माना गया था। पति व्यभिचारिणी स्त्री को तलाक नहीं दे सकता था परन्तु उसे पुनर्विवाह करने की अनुमति प्रदान की जा सकती थी। निकाले हुये दासों को शरण देने पर जुर्माना किया जाता था। यदि कोई दास अपने स्वामी की आज्ञा न माने तो उसे बेच दिया जाता था।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कुछ बातों को छोड़कर सुमेर की दण्ड-व्यवस्था उदारवादी दृष्टिकोण को लेकर चली थी। यदि कोई व्यक्ति अनजाने में दूसरे व्यक्ति की हत्या कर देता था तो उसे उस व्यक्ति के परिवार वालों को धन देना होता था, जिसकी हत्या वह करता था।

सामाजिक संगठन

(1) वर्ग-व्यवस्था—सुमेरियन समाज को तीन वर्गों में विभाजित किया गया था—

1. उच्च
2. मध्यम
3. निम्न

राजपुरुषों, पुरोहितों और राज्य के अन्य उच्च कर्मचारियों को उच्च श्रेणी में रक्खा जाता था। मध्यम श्रेणी के अन्तर्गत सामन्त, व्यापारी एवं अन्य स्वतन्त्र

नागरिक आते थे। दासों और सर्फों को निम्न वर्ग के अन्तर्गत रखा गया था। उच्च वर्ग के लोग बड़े सम्मान से देखे जाते थे। दण्ड देते समय अपराधी की सामाजिक प्रतिष्ठा का ध्यान रखा जाता था। सुमेरियन समाज की सबसे सुन्दर व्यवस्था यह थी कि दासों की अवस्था अपेक्षाकृत अच्छी थी। इन दासों को दूसरों के हाथ बेचा जा सकता था परन्तु इनके साथ बुरा व्यवहार नहीं किया जा सकता था। सुमेरियनों का यह विश्वास था कि मनुष्य परिस्थितियों का दास है। एक ऐसा समय आ सकता है जब कोई भी व्यक्ति गुलाम बन सकता है। यह गुलामी सबसे अधिक निकृष्ट चीज है। प्रसिद्ध इतिहास लेखक वूली ने ठीक ही लिखा है—

'अमरीका के लोग अपने हब्शी गुलामों को समाज से बाहर समझते थे और यूनानी समस्त असभ्य जातियों को जन्म से गुलाम मानते थे। लेकिन सुमेरियनों के अनुसार गुलामी एक मुसीबत थी, एक दुर्भाग्य थी जिसमें कोई भी व्यक्ति किसी समय फँस सकता था।'

सुमेर की समाज-व्यवस्था में कोई गुलाम कभी भी मध्यम श्रेणी का व्यक्ति बन सकता था। उदाहरण के लिये यदि कोई व्यक्ति किसी दासी को रख ले और उसकी मृत्यु हो जाय तो वह दासी और उसके बच्चे स्वतन्त्र नागरिक माने जाते थे। यह ठीक है कि सुमेर में निरन्तर संघर्ष हुआ करते थे और परतन्त्र व्यक्तियों को दास बना लिया जाता था परन्तु दासों के साथ अभद्र व्यवहार करने का अधिकार किसी को नहीं था। दासों की दशा के विषय में ग्राउट महोदय ने लिखा है, "सुमेर में दासों की दशा रोम से उत्तम थी।"

'The condition of slaves in Sumair was much better than in Rome."

उच्च वर्ग के लोगों की हत्या करना जघन्य अपराध माना जाता था और साधारण नागरिकों की हत्या करना दासों की हत्या से बड़ा अपराध माना जाता था। इतना होते हुए भी उच्च वर्ग से यह आशा की जाती थी कि वह अधिक नैतिकता का व्यवहार करेगा। अतः किसी उच्च वर्ग के व्यक्ति को कोई अनैतिक कार्य करने पर निम्न वर्ग के व्यक्ति की अपेक्षा अधिक दण्ड दिया जाता था।

(2) स्त्रियों की दशा—सुमेरियन समाज में स्त्रियों का स्थान काफी ऊँचा था। यद्यपि कानून द्वारा पति को यह अधिकार दिया गया था कि वह अपनी पत्नी और बच्चों को बेच सकता था परन्तु ऐसी घटनाएँ बहुत कम होती थीं। सुमेर की स्त्रियों को कुछ बड़े महत्वपूर्ण अधिकार दिये गये थे। दहेज पत्नी की सम्पत्ति समझी जाती थी। पत्नी को स्वतन्त्र रूप से व्यापार करने और दासियाँ रखने का अधिकार था। पत्नी के सम्मान और मर्यादा का ख्याल रक्खा जाता था। विवाह घर के बड़े-बूढ़ों द्वारा तय किये जाते थे और विवाह की शर्तें तख्ती पर लिखकर गवाहों के हस्ताक्षर करवा

लिये जाते थे। दहेज की सारी रकम पत्नी को ही मिलती थी और अपनी मृत्यु से पहले वह उसे अपने बच्चों को दे सकती थी। परन्तु यदि वह ऐसा नहीं करती थी तो उसकी मृत्यु पर यह रकम उसके पिता या भाई को मिल जाती थी। यदि विवाह से पहले पति ने किसी महाजन से कुछ ऋण लिया होता था तो वह पत्नी की सम्पत्ति द्वारा नहीं चुकाया जा सकता था। परन्तु विवाह के उपरान्त लिये हुये ऋण के लिये पति और पत्नी दोनों ही उत्तरदायी होते थे।

पति की मृत्यु के उपरान्त पत्नी को पति की सम्पत्ति से लड़कों के बराबर हिस्सा मिलता था। पति की मृत्यु पर पत्नी पुनर्विवाह कर सकती थी। पत्नी के कोई पुत्र न होने पर सन्तानोत्पत्ति के लिये पति दूसरा विवाह कर सकता था। परन्तु पहली पत्नी का निरादर नहीं किया जाता था। बच्चों को बेचा या गिरवीं रखा जा सकता था। रखैल रखने की प्रथा भी थी और रखैल की सन्तान को भी उतना ही सम्मान मिलता था जितना कि विवाहित पत्नी की सन्तान को। गोद लेने की प्रथा भी थी। अधिकतर मन्दिरों में रहने वाली देवदासियों के बच्चों को उच्च वर्ग के लोग गोद ले लेते थे। मन्दिरों में देवदासियाँ होती थीं जिनको हीन दृष्टि से नहीं देखा जाता था।

(3) **भोजन**—सुमेर के लोग अधिकतर गेहूँ, जौ और खजूर खाते थे। ये लोग मांस और मदिरा का प्रयोग भी करते थे। अंगूर भी खाते थे। अमीर लोग मछली-मांस का सेवन अधिक करते थे परन्तु गरीबों के यहाँ विशेषकर त्योहारों पर ही मांस पकता था।

(4) **वेषभूषा एवं आभूषण**—सुमेर के निवासियों की वेषभूषा अच्छी थी। पुरुष अधिकतर लुङ्गी पहनते थे और आरम्भ में अधिकतर उनके ऊपर का भाग खुला रहता था। परन्तु बाद में शरीर को गर्दन तक ढकने की प्रथा चल गई थी। स्त्रियों के वस्त्र बड़े आकर्षक होते थे। उच्च वर्ग की स्त्रियाँ निम्न वर्ग की स्त्रियों की अपेक्षा अधिक अच्छे वस्त्र पहनती थीं। देवदासियों के वस्त्र भी अच्छे होते थे। उच्च वर्ग की स्त्रियाँ अत्यन्त सुन्दर आभूषणों को धारण करके विलासिता का जीवन व्यतीत करती थीं।

यहाँ की खुदाई में शृंगार के बहुत से आभूषण प्राप्त हुये हैं जिनमें अँगूठी, कंठहार, कर्णफूल, कड़े आदि मुख्य हैं। रानी शुबअद की समाधि से एक पेटिका मिली है जो सोने के तारों से युक्त है। इसमें सोने की पिन है और इसकी घुंडियाँ नीलम की हैं। इस पेटिका में एक छोटा चंमच है जो सम्भवतः गालों की लाली के लिये होता था। साथ ही खाल को ठीक करने के लिये एक छड़ी और भौंहों आदि को बनाने के लिये एक छोटी सी चिमटी भी मिली है। रानी की जो अँगूठी प्राप्त हुई है उसमें नीलम जड़ा हुआ है। इसके साथ ही एक कण्ठहार भी प्राप्त हुआ है।

(5) मृतक संस्कार—सुमेरियन समाज में मृतक को दफनाने की प्रथा प्रचलित थी। सामान्य जनों को दफनाने की विधि बहुत साधारण थी। कब्र बनाकर उसमें मृतक को लिटा दिया जाता था। साथ ही दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाली आवश्यक सामग्री भी रख दी जाती थी। उर की राजसमाधि की खुदाई में राजा के अस्त्र-शस्त्रों, आभूषणों, उसकी दासियों और रानियों के अवशेष प्राप्त हुये हैं। यह कार्य इसलिये किया जाता था कि मृतक को मरने पर कष्ट न हो।

आर्थिक व्यवस्था

(1) कृषि—आर्थिक दृष्टि से भी सुमेर ने बहुत अधिक उन्नति की थी। खेती और व्यापार ही मुख्य धन्धे माने जाते थे। खेती के लिये सिंचाई की अच्छी व्यवस्था थी। दलदलों को सुखाकर यहाँ के लोगों ने समस्त देश में नहरों का जाल बिछा दिया था। शासकवर्ग इसमें बहुत अधिक अभिरुचि रखता था। खेत के चारों ओर मेड़ें बना दी जाती थीं।

कृषि ही यहाँ के लोगों का मुख्य कर्म था। यह लोग गेहूँ, जौ, खजूर आदि की खेती करते थे। फलों के बाग भी लगाये जाते थे। हलों में बैल जोतने की प्रथा प्रचलित थी। सन् 1949-50 में निप्पुर में एक अभिलेख मिला था। अनेक विद्वान इसे 'विश्व का प्रथम कृषि-पंचाङ्ग' मानते हैं। इससे यह पता लगता है कि कृषि के क्षेत्र में ये लोग कितनी अधिक उन्नति कर चुके थे। इस पंचांग में एक किसान ने अपने पुत्र को बताया है कि वह किस तरीके से खेती करे कि खेतों की पैदावार बढ़ जाय।

(2) पशु-पालन—पशु-पालन यहाँ के लोगों का दूसरा प्रमुख धन्धा था। यहाँ के लोग गाय को देवी के रूप में पूजते थे। गाय को वे पशु-जगत की रक्षक देवी मानते थे। उर में गौ देवी की सुन्दर सोने की मूर्ति प्राप्त हुई है जिससे यहाँ के दूध उद्योग की समुचित जानकारी प्राप्त होती है। गाय के अतिरिक्त ये लोग भेड़ें और बकरियाँ पालते थे। हलों के लिये बैलों और गाड़ी खींचने के लिये गधों का प्रयोग किया जाता था। सम्भवतः ये लोग घोड़े से परिचित नहीं थे।

(3) कताई बुनाई—सुमेर में चर्खे से सूत कातकर बारीक कपड़ा बुना जाता था। ऊनी कपड़ा भी बनाया जाता था। मोसल, जो सुमेर के उत्तर में दजला नदी के किनारे एक पुराना शहर है, की मलमल बहुत अधिक प्रसिद्ध होती थी।

(4) अन्य उद्योग धन्धे—सुमेर में विभिन्न प्रकार के उद्योग-धन्धे प्रचलित थे। ये लोग कांसा बनाना जानते थे और सोने, चाँदी तथा शीशे से भली भाँति परिचित थे। रथ बनाना इनका प्रमुख उद्योग-धन्धा था। रथों के पहिये लकड़ी के बने होते थे और उन पर ताँबे तथा चमड़े के तार लगाये जाते थे। फर्नीचर आदि बनाने का

कार्य भी यहाँ प्रचलित था। बढ़ई, जुलाहे और लुहार आदि सभी अपने कार्यों में अति निपुण होते थे। ताँबे को पीटकर वे विभिन्न प्रकार की मूर्तियाँ और अस्त्र-शस्त्र बनाते थे।

(5) **व्यापार**—सुमेर व्यापार का प्रमुख केन्द्र था। यहाँ से अन्य देशों को कपड़ा, विलासिता का सामान और खजूर आदि का निर्यात होता था। आयात और निर्यात दोनों ही बड़ी व्यापक मात्रा में होते थे। पर्वतीय प्रदेशों से चाँदी, अफगानिस्तान से वैदूर्य, सीरिया और एशिया से टीन आदि आता था।

व्यापार अधिकतर मन्दिरों के सदस्य, व्यापारियों और सौदागरों के हाथ में था। ये सौदागर सुमेर का माल बाहर ले जाते थे और बाहर से मन्दिरों के उपयोग में आने वाला माल जैसे सोना, चाँदी आदि लेकर आते थे। पूर्व में इनके व्यापारिक केन्द्र सिन्धु-घाटी तक और भूमध्य सागर के पूर्वी तट तक थे। मन्दिरों के अलावा व्यक्तिगत व्यापार भी होता था।

व्यापार के लिये अधिकतर ऊँट के काफिलों, गधों और नावों का प्रयोग होता था। आरम्भ में सुमेर के लोग मुद्रा-प्रणाली से अनभिज्ञ थे, अतः खाद्य-सामग्री और आवश्यक वस्तुओं के रूप में आदान-प्रदान होता था। बाद में रजत-शेकेल का प्रयोग किया जाने लगा था जो आधुनिक युग के दो डालर के बराबर होती थी। इन व्यापारियों में कमीशन की प्रथा भी प्रचलित थी। छोटे व्यापारी अपना माल बड़े व्यापारियों को दे देते थे जो उसको बेचकर अपना कमीशन काट लेते थे। व्यापारिक समझौतों में साक्षियों के हस्ताक्षर भी आवश्यक होते थे।

धर्म एवं धार्मिक विश्वास

सुमेरवासियों के धार्मिक विश्वासों का पता खुदाई में प्राप्त कुछ मन्दिरों से चलता है। इनके मन्दिर ऊँचे स्थान पर बनाये जाते थे। हर नगर के अपने-अपने देवता होते थे। ये मन्दिर नगर की हलचल के मुख्य केन्द्र होते थे। इन मन्दिरों के अवशेषों द्वारा सुमेर के लोगों के धर्म के विषय में निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं—

(1) **बहुदेववाद**—सुमेर के निवासी बहुदेववाद में विश्वास करते थे। कुछ इतिहासकारों का मत है कि सुमेर के लोग आरम्भ में एकेश्वरवादी थे परन्तु कालान्तर में अनेक देवताओं पर विश्वास करने लगे थे। आरम्भ में ये आकाशदेव अन को, जिसे बैबिलोनिया युग में अनु कहा गया है, सर्वोच्च देवता मानते थे। एरेक में उसका प्रसिद्ध मन्दिर था। 3000 ई० पू० तक उसका महत्व कम हो गया। देवताओं में एनेलिल (Enlil) जो वायु और वर्षा का देवता था और शमश (Shamash) जो प्रकाश का देवता सूर्य था, प्रमुख थे। इनके अतिरिक्त चन्द्रमा भी इनका प्रमुख देवता

था। ये लोग समुद्र देव और आकाश देव की भी पूजा करते थे। इनका विश्वास था कि इन समस्त देवताओं के ऊपर एक देवता है जिसको ये लोग इल्ल के नाम से पुकारते थे। सुमेर की एक त्रिमूर्ति में सिन (चन्द्रमा), सन (सूर्य) और वृत (वायु) सम्मिलित हैं। सुमेर के ग्रन्थों में अप्सु (जल) को समस्त सृष्टि का पिता और तियमत को सबकी माता माना गया है। ये लोग 'अनु' को स्वर्ग का राजा, 'एनेलिल' को मृत्युलोक का राजा और 'इया' को समुद्रों का राजा मानते थे।

(2) **ग्रहों पर विश्वास**—उपर्युक्त देवताओं के अतिरिक्त ये लोग पाँच ग्रहों पर भी विश्वास करते थे। बार (शनि) योद्धाओं का देवता था। बेल (बुद्ध) न्याय का देवता था तथा नरगल (मङ्गल) आखेट, आँधी और युद्ध का देवता था। ईश्तर अथवा नाना (शुक्र) को बड़े सम्मान से देखा जाता था। नेबो (वृहस्पति) ज्ञान और विज्ञान के देवता माने जाते थे।

(3) **देवियों पर विश्वास**—इन लोगों का विश्वास था कि प्रत्येक देवता के एक पत्नी होती है जो छाया की तरह उसके साथ रहती है। अनु की पत्नी का नाम अनुता था जिसके दो पुत्र थे—वुल और मतु। एनेलिल की पत्नी का नाम अन्नता था जो अनाज की देवी मानी जाती थी। इया की पत्नी का नाम देवकिना था। इसके एक पुत्र था जिसका नाम मार्दुक था। एनेलिल का सबसे बड़ा पुत्र सिन था। मार्दुक की पत्नी का नाम सिनू-बनित, नर्गल की पत्नी का नाम लाज और नेबो की पत्नी का नाम वमित था। पृथ्वी देवी को यह लोग निन्माह कहते थे।

(4) **देवताओं का मानवीकरण**—सुमेर के लोगों का विश्वास था कि देवता अमर हैं। वे मानवीय गुणों से युक्त हैं और उनमें भी मानव की भाँति वासनाएँ होती हैं। इन देवताओं का निवास एक पर्वत पर माना जाता था।

(5) **दानवों की कल्पना**—ये लोग दानवों पर भी विश्वास करते थे। इनका मत था कि यद्यपि दानवों की शक्ति देवताओं की शक्ति से कम है परन्तु फिर भी यह दानवीय शक्तियाँ मनुष्यों को बुरे रास्ते पर ले जाती हैं।

(6) **निराशावाद**—सुमेर के निवासियों का धर्म आशावादी धर्म नहीं था। वे निराशावादी थे। उनका कहना था कि मृत्यु के पश्चात् हमारी आत्मा शियोल (Sheol) नामक स्थान में जाती है जहाँ सर्वत्र अंधकार है और जहाँ सुख नाम की कोई चीज नहीं है। यही कारण था कि सुमेर के लोग मृत व्यक्ति पर अधिक ध्यान नहीं देते थे। मृत व्यक्ति के साथ कुछ खाने की वस्तुयें और दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाला सामान रख देते थे क्योंकि इनका विश्वास था कि यदि ऐसा नहीं किया जायगा तो मृत व्यक्ति भूत बनकर सबको खा जायगा। इन लोगों का विश्वास था कि स्वर्ग देवताओं के लिये ही है। वहाँ विरले मनुष्य ही पहुँच सकते हैं।

(7) बलि की प्रथा—सुमेर में बलि की प्रथा भी प्रचलित थी। देवताओं को बलि चढ़ाई जाती थी और आशा की जाती थी कि देवता इससे प्रसन्न होकर मनुष्य का कल्याण करेंगे। वृष्टि के देवता को बहुत अधिक बलि चढ़ाई जाती थी।

(8) पाप-पुण्य—यहाँ के लोगों का विश्वास था कि मनुष्य को अपने किये का फल इसी जन्म में मिल जाता है। मनुष्य यदि देवताओं की पूजा नहीं करेगा तो उसका कल्याण नहीं होगा। स्वर्ग के दूत "सबितू" ने "गिल्गमेश" से कहा था—

'जब देवताओं ने मानव-समाज की रचना की तो मृत्यु को मनुष्य को देकर अमृत को अपने लिये सुरक्षित रखा।'

'हर मनुष्य को किसी न किसी देवता की पूजा करनी चाहिये। जिसका कोई देवता नहीं शिर-पीड़ा उसके माथ को इस तरह ढक लेती है जिस तरह कपड़ा देह को।'

(श्री विश्वम्भर पांडे द्वारा लिखित "विश्व का सांस्कृतिक इतिहास" मेसोपोटामिया से उद्धृत)

इन लोगों के अनुसार पाप 8 प्रकार का होता था—

(1) ईश्वर और देवताओं के प्रति श्रद्धा न रखना।

(2) झूठ बोलना।

(3) पड़ोसियों को धोखा देना।

(4) आपसी फूट फैलाना।

(5) व्यभिचार करना।

(6) पड़ोसी के साथ दुर्व्यवहार करना।

(7) लड़ाई करना।

(8) व्यापार में बेईमानी करना।

पाप से छुटकारा पाने के लिये देवता की आराधना ही एकमात्र साधन है। इनका कहना था कि देवता की प्रार्थना पाप से बचाती है और बलिदान जीवन बढ़ाता है।

(9) कर्म-काण्ड—सुमेरियन धर्म में कर्म काण्ड को विशेष महत्व प्रदान किया गया था। इनके अनुसार धार्मिक अनुष्ठानों को करने वाला बुरा व्यक्ति भी धार्मिक बन सकता है। देवताओं को बलि देने वाला सदैव प्रसन्न रहता है। यह लोग पूजा-पाठ पर विशेष ध्यान देते थे। जब कोई व्यक्ति मन्दिर में मक्खन, रोटी, घी, दूध, मदिरा आदि लेकर जाता था तो पुजारी उसकी ओर से पूजा करता था और देवता को भोग लगाता था। ढोंग की मात्रा बहुत अधिक थी।

(10) धर्म का उद्देश्य—सुमेर के निवासियों के धर्म का एकमात्र उद्देश्य सांसारिक सुखों की प्राप्ति था। भौतिक उन्नति करना मात्र ही वे धर्म का लक्ष्य मानते थे। वे स्वर्ग और नरक में विश्वास नहीं करते थे। विल ड्यूराण्ट ने लिखा है—

"They had not yet conceived Heaven and Hell as eternal reward punishment, they offered prayer and racrifice not for eternal life, but for tangible advantages here on the Earth."

— Will Durrant.

उनका धर्म, कर्मकाण्ड प्रधान था। धर्म मनुष्य को शान्त्वना प्रदान करने का साधन न होकर वाणिज्य, व्यापार और कृषि में उन्नति कराने वाला समझा जाता था।

सुमेर के निवासियों के धार्मिक विश्वासों का पता उनकी सृष्टि की रचना सम्बन्धी और बाढ़ सम्बन्धी कथाओं से भी चलता है। उनके मतानुसार आरम्भ में संसार में चारों ओर जल ही जल था। इस जल की कल्पना उन्होंने नम्मू देवी के रूप में की है। उससे "की" नाम की एक देवी और "अन" नाम का एक देवता बना। उसके पश्चात् "की" ने ऐनेलिल को जन्म दिया जिसने पृथ्वी, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा एवं अन्य ग्रहों को जन्म दिया। इस प्रकार यह लोग ऐनेलिल को ही मानव सृष्टि का रचयिता मानते हैं।

सृष्टि सम्बन्धी अन्य कहानी में साहसहीन देवताओं पर मार्दुक (**Marduk**) की विजय को चित्रित किया गया है।

बाढ़ सम्बन्धी कथा यह है कि एक बार देवताओं ने अप्रसन्न होकर समस्त मानव जाति को नष्ट करना चाहा। सात दिनों तक समस्त पृथ्वी जल में डूबी रही जिससे देवता स्वयं ही व्याकुल हो गये। एक मानव ने अपनी रक्षा के लिये एक देवता को प्रसन्न किया जिसने उसको रक्षा की युक्ति बता दी। इस प्रकार अन्त में मानव की विजय हुई।

(ii) सुमेरियनों के देवालय एवं पुरोहित—सुमेरियनों के प्रत्येक नगर में एक बहुत बड़ा देवालय होता था जिसे जिगुरत (Ziggurat) कहा जाता था। यह मंदिर बहुत ऊंचे होते थे। देवालय सभी प्रकार के अनाज और धन-धान्य से पूर्ण रहते थे। विल ड्यूराण्ट ने लिखा है कि अधिकतर वस्तुयें ऋणों द्वारा समर्पित की जाती थीं।

इन मंदिरों में एक पुरोहित होता था और मंदिरों के पुरोहितों में से एक को ही मुख्य पुरोहित या (पटेसी) चुन लिया जाता था। इस प्रकार सुमेर में धर्म और राजनीति साथ-साथ चलते थे। हेज और मून ने बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा है :—

Religion and Politics went hand in hand.

—Hayes and Moon.

तीन अन्य प्रकार के पुरोहित भी मन्दिरों में होते थे—(1) गाने वाले (2) जादू जानने वाले (3) भविष्य वाणी करने वाले। इन पुरोहितों का समाज पर बहुत अधिक प्रभाव रहता था।

दर्शन

सुमेरियन दर्शन को दो रूपों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) राजनीतिक दर्शन

(2) नैतिक दर्शन

(1) राजनीतिक दर्शन—आज के युग में राज्य की जो परिभाषा की जाती है, सुमेरिया के निवासियों के अनुसार राज्य की परिभाषा उससे भिन्न थी। आज की परिभाषा के अनुसार राज्य वह सार्वभौम सत्ता से युक्त और वाह्य नियन्त्रण से युक्त मनुष्यों का समुदाय है जिसकी सीमाएँ निश्चित हों और जो मनुष्यों के कल्याण के लिये हों। सुमेरिया के निवासियों का मत था कि सम्पूर्ण संसार का राज्य ही एक ऐसा राज्य हो सकता है जो वाह्य नियन्त्रण से मुक्त हो और सार्वभौम सत्ता सम्पन्न हो। जहाँ तक कल्याण का प्रश्न है इन लोगों का विश्वास था कि कोई संस्था मनुष्य का कल्याण नहीं कर सकती। मानव का कल्याण केवल देवता ही कर सकते हैं। अतः सुमेर में नगर राज्यों की स्थापना की गई थी जिनका उद्देश्य मानव का कल्याण न करके देवता और उसके प्रतिनिधि का कल्याण करना था।

इन नगर राज्यों में राज्य का केन्द्र नगर ही होता था तथा नगर का केन्द्र नगर देवता का मन्दिर माना जाता था। यह भी विश्वास था कि नगर राज्य की बहुत बड़ी भूमि पर मन्दिरों का अधिकार होता था। देवता की जागीर का मैंनेजर 'एनसी' कहलाता था। वास्तव में वह देवता का प्रतिनिधि होता था और यह भी विश्वास किया जाता था कि वह प्रत्येक कार्य देवता की आज्ञा लेकर करता है। किसी कार्य के लिये वह देवता की इच्छा तीन प्रकार से पूरी करता था—

(क) ज्योतिषि की सहायता से

(ख) पशु बलि देकर देवता को सन्तुष्ट करके

(ग) प्रत्यक्ष स्वप्न द्वारा

नगर राज्य की यह कल्पना सुमेरिया के राजनीतिक जीवन के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हुई। इससे आपस में एकता बनी रही। देवता के नाम पर बहुत से झगड़े बिना किसी दिक्कत के तय हो जाते थे।

कालान्तर में इस विचारधारा में परिवर्तन हुआ। यह विचारधारा तभी तक उपयोगी रही जब तक कि सुमेर में छोटे-छोटे नगर राज्य रहे। तीन हजार ई० पू० के लगभग जब 'सारगोन' ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की तो सुमेर के लोगों की विचारधारा में परिवर्तन हुआ। नगर राज्य की जगह राष्ट्र राज्य की स्थापना देवता की इच्छानुसार की गई। सम्राट को ईश्वर का प्रतिनिधि समझा जाता था और उसके प्रत्येक कार्य को उचित माना जाता था। यह व्यवस्था भी शासन की दृष्टि से उपयोगी सिद्ध हुई।

(2) नैतिक दर्शन—सुमेर के निवासियों के अनुसार अनुशासित और विनयशील जीवन ही सर्वश्रेष्ठ जीवन था। देवता और उनकी शक्तियाँ सदैव न्यायप्रिय होती हैं अतः उनका पालन करना मानव का कर्त्तव्य है। मनुष्य को अपने पिता, माता, बड़े भाई और बड़ी बहिन की आज्ञा मानना चाहिये और विनयशीलता को धारण करना

चाहिये। मनुष्य देवता का दास है और सफलता प्राप्त करना उसके हाथ में नहीं है। जो व्यक्ति देवता की पूजा करते हैं वे स्वास्थ्य, पुत्र, एवं धन आदि की प्राप्ति करते हैं। मनुष्य को, जीवन में सम्मान भी देवता की इच्छा से मिलता है। दुःख और सुख की प्राप्ति भी देवता की इच्छानुसार होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं सुमेर का धर्म और दर्शन मानव की भौतिक उन्नति के लिये था। वे मानव की आध्यात्मिक उन्नति के लिये इतने चिन्तित नहीं थे जितने कि भौतिक उन्नति के लिये।

लिपि एवं शिक्षा

(1) **लिपि**—हेज तथा मून का मत है कि सुमेरियन लेखन-कला उतनी ही प्राचीन है जितनी कि मिस्र की लेखन कला। आरम्भ में सुमेरियन लिपि में केवल चित्र ही होते थे परन्तु कालान्तर में इन चित्रों के बजाय अक्षरों का प्रयोग किया जाने लगा। सुमेरियन लिपि में लगभग 550 वर्ण थे और प्रत्येक लेखक को कम से कम 300 वर्णों का ज्ञान होना आवश्यक था। यही कारण है कि सुमेर में पेशेवर लिपिक होते थे।

आरम्भ में सुमेर के निवासी पत्थरों पर लिखते थे परन्तु पत्थरों की कमी होने पर उन्होंने मिट्टी की पट्टियों पर लिखना प्रारम्भ किया। पट्टियों पर वे नरकुल या सेठे की कलम से लिखते थे। प्रारम्भ में वे हल्के चिह्नों की लिखावट का प्रयोग करते थे परन्तु बाद में उन्होंने गहरी खुदाई की लिपि को अपनाया। गीली मिट्टी की पाटी पर पत्र लिखने के बाद उस पर सूखी मिट्टी का चूर्ण बिखेर दिया जाता था और फिर उसे मिट्टी के बने हुये लिफाफों में रख दिया जाता था जिन पर बीच में चूर्ण डाल देने के फलस्वरूप पत्र के चिपकने की सम्भावना नहीं रहती थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सुमेरियनों ने लेखन कला में बहुत अधिक उन्नति की थी। जैसा कि हमने पहले ही उल्लेख किया है कि प्रारम्भ में वे चित्रात्मक या प्रतीकात्मक लिपि का प्रयोग करते थे। सुमेर के प्राचीन अभिलेखों में गधे का चित्र व्यापक मात्रा में देखने को मिलता है जिससे स्पष्ट है कि उस युग में गधे का उपयोग बहुत अधिक होता था। यह भी सम्भव है कि गधे का चित्र मूर्ख व्यक्ति की उपमा देने के लिये बनाया जाता हो।

चित्रात्मक लिपि के द्वारा बहुत सी वस्तुओं की अभिव्यक्ति सम्भव नहीं थी। फलस्वरूप चित्रों के साथ ही संकेतों का प्रयोग भी प्रारम्भ हो गया। कालान्तर में संकेत और चित्र कम होने लगे और वर्णों का प्रयोग होने लगा परन्तु यह वर्ण माला आधुनिक युग की तरह विशुद्ध नहीं थी। वास्तव में वह शब्दांश चित्रों का ही थोड़ा सा परिवर्तित रूप थी। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि सुमेर निवासियों की लिपि

शब्दांश—चित्रों तक ही सीमित रही और वे उन्हें सरल करके व्यंजनों आदि का आविष्कार नहीं कर सके।

सुमेर के निवासी अंकों को भी लिखना जानते थे। 10 के लिये वे लम्ब रूपी नरकट वृक्ष का प्रयोग करते थे वे दाहिनी ओर से बाईं ओर ही लिखते थे। विल ड्यूरटां ने लिखा है :—

"Sumerian writing reads from right to left, the Babylonians were, so far as we know, the first people to write from left to right."
—Will Durrant.

सुमेर की लिपि का विशेष महत्व है। सुमेरियन लिपि पश्चिमी एशिया की प्राचीनतम ज्ञात लिपि है। असोरियनों और कैल्डियनों ने भी इस लिपि में ही अपने लेखों को उत्कीर्ण कराया। कालान्तर में हित्तियों ने भी अपनी राष्ट्रीय चित्राक्षर लिपि के साथ इस लिपि का प्रयोग किया। दूसरी सहस्राब्दी ई० पू० में पश्चिमी एशिया और मिस्र के राज्यों के द्वारा इस लिपि का प्रयोग अन्तर्राष्ट्रीय लिपि के रूप में किया गया। सुमेरियन ज्ञान विज्ञान और साहित्य का प्रसार इसी लिपि में हुआ। इसलिये इस लिपि का विशेष महत्व है।

(2) शिक्षा—सुमेर में शिक्षा की भी व्यवस्था की गई थी। 3000 ई० पू० के लगभग सुमेरियन नगरों में कीलाक्षर लिपि की शिक्षा देने वाली पाठशालायें अस्तित्व में आयीं और इस सहस्राब्दी के अन्तिम पद के बहुत से ऐसे अभिलेख प्राप्त हुये हैं जिनका प्रयोग पाठ्य पुस्तकों के रूप में किया जाता होगा। इनमें से कुछ अभिलेख पाठशालाओं के पाठ्यक्रम और प्रशिक्षण-विधि के सम्बन्ध में भी प्रकाश डालते हैं। दूसरी सहस्राब्दी ई० पू० के अभिलेखों से सुमेरियन शिक्षा के उद्देश्यों पर भी प्रकाश पड़ता है। इनसे पता चलता है कि सुमेरियन पाठशालाओं का उद्देश्य राज्य कार्यालयों, मन्दिरों और व्यापारियों आदि की आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु लिपिकों को प्रशिक्षण देना था। इस उद्देश्य के बावजूद कालान्तर में ये पाठशालायें विद्या और संस्कृति का प्रमुख केन्द्र बन गईं और सुमेर के विद्वान ज्ञान-विज्ञान को समुन्नत बनाने के हेतु प्रशिक्षण-कार्य भी करने लगे।

सुमेर की पाठशालाओं में अधिकतर धनवान व्यक्ति ही शिक्षा ग्रहण करते थे। निर्धन व्यक्ति पाठशाला का व्यय नहीं उठा पाते थे। स्त्रियों को शिक्षा के लिये प्रोत्साहित नहीं किया जाता था। पाठशाला के प्रधान अध्यापक को 'उम्मिया' के नाम से पुकारा जाता था। वह अन्य अध्यापकों की सहायता से शिक्षा प्रदान करता था।

साहित्य

सुमेर में धार्मिक और लौकिक दोनों प्रकार का साहित्य लिखा गया परन्तु साहित्य का अधिकतर भाग धार्मिक और पौराणिक आख्यानों से युक्त है। इन आख्यानों में **'इनन्ना का पाताल अवतरण', 'एनेलिल, निनलिल तथा चन्द्रमा की उत्पत्ति', 'एनकी की विश्व व्यवस्था'** आदि मुख्य हैं। इस धार्मिक साहित्य में कुछ वीरों के जीवन से सम्बन्धित आख्यान भी मिलते हैं। एन्मरकर, लूगलबन्द और गिल्गामेश प्रसिद्ध वीर माने जाते थे। इनके जीवन के आख्यान भी मिलते हैं जिसमें गिल्गामेश विषयक आख्यान बहुत प्रसिद्ध है जिसका बाद में बेबिलोनियन रूपान्तर भी हुआ। जलप्रलय की कथा भी प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि यहूदी बाइबिल पर सुमेरियन आख्यानों का प्रभाव है।

लौकिक साहित्य बहुत कम मात्रा में मिलता है। इस युग के लोग इतिहास से अपरिचित थे और उनका लौकिक काव्य भी नहीं मिलता। कुछ पूजा गीत अवश्य मिलते हैं और दो प्रेम गीत प्राप्त हुये हैं। इस युग के साहित्यकार विरोधी तत्वों पर वाद-विवाद करके उनके गुणों और अवगुणों को प्रकाश में लाते थे। जब बात बहुत बढ़ जाती थी तो कोई देवता आकर दोनों को उसका महत्व समझाता था। **'अनन्ना देवी'** तथा **'गड़रिया और कृषक'** नामक आख्यान प्रसिद्ध हैं।

सुमेर में मुहावरों और कहावतों का प्रयोग बहुत अधिक होता था। ये मुहावरे और कहावतें बहुत अच्छी होती थीं। मेहनत न करने वाले आदमी के लिये एक मुहावरा प्रयुक्त होता था—'क्या कोई बिना खाये मोटा हो सकता है।' एक अन्य मुहावरा था—'दोस्ती एक दिन की, रुधिर सम्बन्ध जन्म भर का।' जिसके लिये अंग्रेजी में कहा है—**"Blood is thicker than water."**

विज्ञान

सुमेर के लोगों का मुख्य आधार कृषि-कर्म था अतः प्रत्येक पिता अपने पुत्र को पौधों की रक्षा करने आदि का विज्ञान भली भाँति समझाता था। वह उन्हें किस ऋतु में कौन सी फसल बोनी चाहिये आदि बातें बतलाता था। ज्योतिष और ज्यामिति की आवश्यकता भी कृषि-कर्म के लिये पड़ती थी। ऋतुओं के भली प्रकार ज्ञान के बिना कृषकों का कार्य नहीं चल सकता था। सुमेर के चान्द्र वर्ष में 360 दिन होते थे। चान्द्र और सौर्य वर्षों में सामञ्जस्य लाने के लिये आगामी वर्ष में एक माह जोड़ दिया जाता था। वर्ष का नामकरण उस वर्ष की सबसे प्रमुख घटना के आधार पर किया जाता था।

सुमेरियन कृषि के अतिरिक्त व्यापार भी करते थे। इसमें अंकगणित की भी आवश्यकता होती थी। उनकी गणना-प्रणाली षष्टिक और दशमलव प्रणालियों से

मिली हुई थी। इकाई, दहाई का प्रयोग आधुनिक युग की ही भाँति होता था। परन्तु यह गणना 60 तक ही होती थी। आधुनिक सैकड़ा उस युग का 60 था। अगर उन्हें 600 कहना होता तो वह दस 60 कहते थे। इनकी भार इकाई 'मीना' थी जो 60 शैक्ल के बराबर थी। एक टैलेण्ट में 60 मीना होते थे।

सुमेरियनों ने चिकित्सा शास्त्र में विशेष उन्नति नहीं की थी। अधिकतर जादू-टोने द्वारा ही रोगों का निदान किया जाता था। परन्तु वैद्यों का एक वर्ग स्थापित हो चुका था जिन्होंने चिकित्सा शास्त्र को वैज्ञानिक रूप देने का प्रयास किया था। इन वैद्यों में 'लुलु' का नाम बहुत अधिक प्रसिद्ध है जो ईसा से लगभग 2700 वर्ष पूर्व हुआ था। 3000 ई० पू० का एक शिलालेख मिला है जिसमें इस युग में प्रचलित वैद्यक के नुस्खे मिले हैं।

कला

कला के क्षेत्र में सुमेरियनों की विशेष देन है। वास्तु-कला, स्थापत्य कला, मुद्रा निर्माण कला आदि विभिन्न प्रकार की कलाओं के क्षेत्र में सुमेर के निवासियों ने काफी उन्नति की थी परन्तु इनकी कला की तुलना मिस्र और चीन की कला से नहीं की जा सकती।

वास्तु कला—इन लोगों की वास्तु कला, दो रूपों में मिलती है—

(क) राज प्रासादों एवं अन्य भवनों के रूप में।

(ख) मन्दिरों के रूप में।

(क) राज-प्रासाद एवं अन्य भवन—भवन-निर्माण कला में सुमेर के निवासी बहुत अधिक चतुर नहीं थे। इसका मुख्य कारण पत्थरों का अभाव था। पहले तो सुमेरवासियों के मकान खजूर के पेड़ की तख्तियों के बने होते थे परन्तु कालान्तर में वे धूप में सुखायी हुई ईंटों का प्रयोग करते थे। सामन्तों के मकानों में एक विशाल हाल होता था जिससे होकर अन्य कक्षों में जाने का प्रबन्ध रहता था। आगे चलकर इस कक्ष के स्थान पर खुला आंगन बनने लगा था। यह मकान मिट्टी के टीलों पर बनाये जाते थे। मकानों में वातायन बहुत कम होते थे, दीवालों पर प्लास्टर होता था।

सुमेर के भवनों में स्तम्भों और मेहराबों का प्रयोग अधिक होता था। निप्पुर की खुदाई में 3000 ई० पू० की एक मेहराब प्राप्त हुई है। उर के राज-समाज में जो मेहराब प्रयुक्त है वह और अधिक पुरानी प्रतीत होती है।

सुमेर के भवन एक आधार योजना रखकर बनाये जाते थे। आधुनिक भवनों की ही तरह इनमें सोने, खाने और अतिथि-सत्कार के लिये अलग-अलग कक्ष होते थे। नालियाँ भी पक्की और सुविधाजनक होती थीं।

(ख) मन्दिर एवं ज़िगुरत (Ziggurat)—जैसा पहले ही बताया जा चुका है कि सुमेर-सभ्यता के केन्द्र नगर थे। नगर के केन्द्र मन्दिर होते थे। सुमेर के मन्दिर काफी बड़े होते थे। इनमें भाण्डार-गृह और अन्य स्थान भी होते थे। मन्दिर का सबसे महत्वपूर्ण भवन ज़िगुरत होता था। ज़िगुरत का अर्थ होता है—'स्वर्ग का पर्वत।' ऐसा विश्वास किया जाता है कि सुमेर के निवासियों ने अपने देवताओं के लिए पर्वतकार भवनों का निर्माण किया था और उनको वे ज़िगुरत के नाम से पुकारते थे। ज़िगुरत की चार या सात मंजिल होती थी। नीचे की मंजिल सबसे लम्बी होती थी और ऊपर की मंजिलें क्रम से छोटी होती जाती थीं। यह ज़िगुरत मिस्र के पिरामिड की भाँति गगन-चुम्बी होती थी। इसकी चोटी पर देवता का स्थान होता था। उर नाम्मु का बनवाया हुआ ज़िगुरत बहुत प्रसिद्ध है। यह नीचे की ओर लगभग 169 फुट लम्बा तथा 130 फुट चौड़ा था। ज़िगुरत के अन्दर पुरोहित और पुजारियों के रहने की भी व्यवस्था होती थी। सुमेर के वे निवासी जो ऊपर चढ़ने में असमर्थ होते थे नीचे ही पूजन कर लेते थे। मन्दिर के बाहर कई वेदियाँ होती थीं। यहीं पर बलि दी जाती थी।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि ज़िगुरत की सात मंजिलें सात ग्रहों की होती थीं। सबसे नीचे की मंजिल 'शनि' की होती थी जिसका रंग काला होता था। दूसरी नारंगी रंग की मंजिल 'वृहस्पति' की, तीसरी लाल रंग की मंजिल 'मंगल' की और चौथी मंजिल 'सूर्य' की होती थी। सूर्य की मंजिल पर सोने की चादर चढ़ी रहती थी। पीले ईंटों से बनी पाँचवी मंजिल 'शुक्र' की और नीले रंग से पुती छठीं मंजिल 'वुध' की होती थी। चारों ओर चाँदी से मढ़ी हुई साँतवी मंजिल 'चन्द्रमा' की मानी जाती थी। इस प्रकार यह ज़िगुरत रंग बिरंगा होता था। यह सोने, चाँदी, हीरे, जवाहरातों से भरा रहता था। ऊपर की मंजिल में सबसे अधिक बहुमूल्य रत्न होते थे। ऊपर की मंजिल के बाहर भी बलि के लिये वेदियाँ बनी होती थीं। कुछ ज़िगुरतों में समतल छज्जे होते थे जहाँ हरियाली रहती थी। देवताओं का निवास सबसे ऊपर की मंजिल में खुले प्रांगण में और उसके पीछे माना जाता था।

ज़िगुरत के पास ही देवी का मन्दिर होता था जिसे 'गिग-परकु' कहते थे।

इतिहासकारों का मत है कि उर नाम्मु का ज़िगुरत एक आश्चर्यजनक वस्तु है। यह ज़िगुरत बहुत कुछ भारतीय द्रविड़ 'विमान' से मिलते-जुलते होते थे। यद्यपि अपनी भव्यता के कारण इन ज़िगुरतों का विशेष महत्व है परन्तु इनमें उस कलात्मकता के दर्शन नहीं होते जो मिस्र के पिरामिडों में पाई जाती है।

स्थापात्य कला—सुमेरियनों की स्थापत्य कला के प्राचीनतम रूप के दर्शन उस प्रथम राजवंश की समाधियों के रूप में होते हैं। एक स्थल पर वृषभ की मूर्ति और दूसरे स्थल पर सिंहमुखी चील की मूर्ति इनकी स्थापत्य कला का निश्चित रूप हमारे

सम्मुख रखती है। पत्थर पर खींचे गए एक चित्र में दूध-उद्योग पर प्रकाश डाला गया है। स्थापत्य कला का सर्वश्रेष्ठ नमूना 'उर की पताका' है। इसमें उर को शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके लौटते हुए दिखाया गया है। अन्य चित्र भी चित्रित हैं जिनसे तत्कालीन सम्राटों के जीवन पर प्रकाश पड़ता है।

इयन्नातुम का 'गृध्र-पाषाण' तथा 'नरामसिन-पाषाण' भी इस युग की कला के सुन्दर नमूने हैं। प्रथम में 'इयन्नातुम' को सैनिकों का नेतृत्व करते हुये दिखाया गया है। वह गधों के रथ पर सवार है। साथ ही पाषाण के एक भाग में 'निन्गिरशु' देवता चित्रित हैं जो लगश का राजचिह्न धारण किये हुये हैं। इस पाषाण का नाम 'गृध्र-पाषाण' इसलिये पड़ा कि इसमें गृध्रों को शत्रुओं का मांस खाते हुये भी चित्रित किया गया है। 'नरामसिन-पाषाण' में नरामसिन की लुल्लुबी नामक पर्वतीय प्रदेश के राजा सतुनी पर विजय का चित्रण किया गया है। इस पाषाण में मनोभावों का चित्रण बड़ी सजीवता से किया गया है।

मुद्रा निर्माण कला—पत्थरों को तराश कर मुद्राएँ बनाने में सुमेर के निवासी बहुत पटु थे। आधुनिक स्टाम्प प्रणाली पर सुमेर की मुद्रा प्रणाली की छाप है। ये मुद्राएँ वर्गाकार, गोल एवं अण्डाकार होती थीं कुछ मुद्राओं पर पौराणिक आख्यान भी चित्रित किये जाते थे। इन मुद्राओं का वही महत्व था जो आजकल 'ब्लाटिंग रॉलरे' का होता है। व्यापारी इन्हें आधुनिक सीलों की भाँति प्रयुक्त करते थे।

स्वर्णकार की कला—उस युग की स्वर्णकारी की कला के भी दर्शन होते हैं। एक समाधि में एक राजकुमार के सिर पर सोने का बना हुआ एक सुन्दर मुकुट है। कमरे में सोने की तलवार और साथ ही उसका कोष है। लगश में प्राप्त चाँदी के एक बर्तन पर बहुत सुन्दर नक्काशी की हुई है। इस पर एक सिंहमुखी चील बनी है। चील अपने दो पंजों पर दो सिंहों को और सिंह अपने पंजों में एक-एक जंगली बकरे को पकड़े हुये है। विद्वानों का मत है कि यह लगश का राजचिह्न था।

यद्यपि यह ठीक है कि सुमेर में कला के कुछ उत्कृष्ट नमूने मिलते हैं परन्तु सुमेर की कला का उतना महत्व नहीं है जितना कि सुमेरियन विचारधारा का।

सांस्कृतिक उन्नति में सुमेरियनों का योगदान और सांस्कृतिक इतिहास में उनका स्थान—उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि विश्व की प्राचीन सभ्यताओं में सुमेर की सभ्यता का विशिष्ट स्थान है। पश्चिमी एशिया के इतिहास की दृष्टि से तो सुमेरियनों को सभ्यता का जनक कहा जाता है। ज्यों-ज्यों सुमेर की सभ्यता के विषय में जानकारी प्राप्त होती जा रही है यह स्पष्ट होता जा रहा है कि जिस सफलता का श्रेय अभी तक बेबीलोनियनों, असीरियनों और यहूदी जातियों को

दिया जाता था, उसका वास्तविक श्रेय सुमेरियनों को दिया जाना चाहिये। सुमेरियनों के विषय में वूली लिखता है—"हजरत ईसा की दस आज्ञाओं की जड़ में सुमेरी आज्ञाएँ ही हैं। दसों आज्ञायें ज्यों की त्यों सुमेरी ग्रन्थों से ली गई हैं। सुमेरियों से ही यहूदियों ने समाज को व्यवस्था का नियम और कानून बनाना सीखा और यहूदियों से आजकल का सारा ईसाई संसार सक्रिय रूप से नहीं तो कम से कम सिद्धान्त के तौर पर उसी को अपना आदर्श मानता है।"

आगे चलकर वूली लिखता है—"वह काल बीत चुका जब समझा जाता था कि यूनान ने संसार को ज्ञान सिखाया। इतिहास की खोजों ने हमें बताया कि किस तरह यूनान के जिज्ञासु हृदय ने लोडिया, खत्तियों से, फिनीशिया से, क्रीट से, बाबुल से और मिस्र से अपनी ज्ञान-पिपासा को बुझाया। लेकिन उस ज्ञान की जड़ें कहीं अधिक गहरी जाती हैं और इन सभ्यताओं के पीछे हमें सुमेर का छिपा हुआ हाथ दिखाई देता है।"

एक और इतिहासकार 'वेरास्तु', जो कि तीसरी या चौथी सदी ई० पू० में हुआ है, लिखता है—"हजारों वर्ष हुये ईरान की खाड़ी से एक अजीब जीवों का झुण्ड निकला जिनके सिर आदमियों के से और धड़ मछलियों के से थे। वे सुमेर के नगरों में आकर बस गए। उन्होंने खेती करना, धातु का प्रयोग और लिखने की कला का आविष्कार किया। एक शब्द में मानव-जाति के उन्नति की सारी बातें इस झुण्ड के नेता 'औन्नि' से ही दुनिया ने सीखी और उस समय के पश्चात् से फिर संसार में कोई नया आविष्कार नहीं हुआ।"

[विशम्भर पाण्डेय द्वारा लिखित 'विश्व का सांस्कृतिक इतिहास' (मेसोपोटामिया) से उद्धृत]

सुमेर के निवासियों ने दलदलों को सुखाकर प्राचीन नगर बसाये। उन्होंने कीलाक्षर लिपि का आविष्कार किया जिसको आगे चल कर हित्तियों ने अपनाया और पश्चिमी एशिया और मिस्र के राज्यों ने अन्तरीष्ट्रीय लिपि के रूप में प्रयुक्त किया। उन्होंने 'गिलगामेश' जैसे वीरों की कथाओं और 'इनन्ना' का पाताल में अवतरण आदि धार्मिक आख्यानों को जन्म देकर साहित्य सृजन की परम्परा आरम्भ की तथा बौद्धिक प्रगति के हेतु पाठशालाओं एवं पुस्तकालयों की स्थापना की। उन्होंने कुलीन तन्त्रीय संस्थाओं की स्थापना के साथ ही विशाल साम्राज्य की स्थापना करके भावी विजेताओं के सम्मुख एक आदर्श रखा। व्यापार में अनुबन्ध-पत्रों का उपयोग कर तथा करों में सुधार कर उन्होंने भावी पीढ़ियों के लिये एक नया मार्ग प्रदर्शित किया।

विधि-संहिताओं की रचना सुमेरियनों ने पहली बार की और हम्मूराबी की विधि-संहिता सुमेरियनों की विधि-संहिता का रूपांतर-मात्र प्रतीत होती है। लिपि के विकास में सुमेरियनों का महान योगदान है।

कला के क्षेत्र में भी सुमेरियनों ने नवीन प्रयोग किये। विशाल जिगुरतों और महलों का निर्माण, स्तम्भों और मेहराबों का प्रयोग और कलात्मक मुद्राओं एवं मनोहर आभूषणों का निर्माण उनकी सौन्दर्य भावना के स्पष्ट प्रमाण हैं और आगे चलकर विभिन्न जातियों ने उनका अनुकरण किया।

इससे स्पष्ट है कि विश्व की विभिन्न सभ्यतायें सुमेर की सभ्यता की अत्यधिक ऋणी हैं और एक विद्वान का कथन है कि मेसोपोटामिया की सभ्यता किसी अन्य जाति की अपेक्षा सुमेरियन जाति की अधिक ऋणी है, पूर्णतया सत्य है।

सारांश

'मेसोपोटामिया' में चार सभ्यताओं का विकास हुआ—सुमेरियन, बेबिलोनियन, असीरियन, केल्डियन। केल्डियन के खाल्दी सभ्यता को बेबिलोनियन सभ्यता के अन्तर्गत ही रखा जा सकता है।

सुमेरियन सभ्यता का आरम्भ लगभग 3500 वर्ष पूर्व हुआ। सुमेर निवासी किस जाति के थे इस विषय में पर्याप्त मतभेद है। सुमेर का राजनीतिक इतिहास विधिवत् 3200 ई० पू० से प्राप्त होता है। यहाँ के सम्राटों में सारगोन और नरामसिन का नाम बहुत प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त गुटियम के राजकुल और उर के तृतीय राजवंश का नाम भी उल्लेखनीय है। सुमेर का पतन 21वीं शताब्दी ई० पू० में हुआ।

सुमेर में नगर-राज्यों की व्यवस्था थी। युद्ध का नेतृत्व पटेसी करते थे। न्याय के लिये अधिकतर पुरोहित वर्ग की ही नियुक्ति की जाती थी। न्याय व्यवस्था बहुत सस्ती और उन्नत थी। दण्ड के लिये 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' सिद्धान्त को अपनाया गया था।

समाज में तीन वर्ग थे—उच्च, मध्यम और निम्न। दासों की दशा अपेक्षाकृत अच्छी थी। स्त्री पर पति का अधिकार होता था परन्तु स्त्रियों का काफी सम्मान होता था। यहाँ के निवासी गेहूँ, जौ, खजूर, अंगूर खाते थे। मांस और मदिरा का प्रयोग भी करते थे। उनकी वेषभूषा आकर्षक थी। गहनों में कर्णफूल, अँगूठी, कड़ा आदि प्रसिद्ध थे। मृतक को दफदाने की प्रथा थी।

कृषि, पशुपालन, कताई-बुनाई एवं व्यापार इनकी आय के मुख्य साधन थे। कृषि और व्यापार को विशेष महत्व दिया गया था। व्यापार में कमीशन की प्रथा भी प्रचलित थी।

धार्मिक क्षेत्र में ये लोग बहुदेववादी और निराशावादी थे। इनमें बलि की प्रथा भी प्रचलित थी और कर्म-काण्ड का भी प्रचलन था। अन और एनेलिल प्रसिद्ध देवता थे। इनमें मादुक को भी मान्यता दी जाती थी। इन देवताओं के अलावा अन्य देवताओं की पूजा भी की जाती थी। धर्म का उद्देश्य भौतिक उन्नति और पापों से दूर रहना था।

इनके राजनीतिक दर्शन में नगर-राज्यों को मान्यता दी गई थी। इनका मत था कि मनुष्य स्वयम् कुछ नहीं कर सकता, सब कुछ करना देवता के ही हाथ में है।

शिक्षा व्यावहारिक ढंग से होती थी। प्रधानाचार्य को 'उम्मियाँ' कहा जाता था। कीलाक्षर लिपि का प्रयोग किया जाया था। साहित्य के क्षेत्र में 'इनन्ना का पाताल वर्णन' कुछ वीर गीत और प्रलय आदि की कथाएँ प्रसिद्ध हैं। मुहावरों और कहावतों का प्रयोग बहुत होता था।

कृषि-विज्ञान से ये अभिरुचि रखते थे। ज्यामिति, ज्योतिष, और अंकगणित में भी इनकी रुचि थी। चिकित्सा-शास्त्र के क्षेत्र में विशेष उन्नति नहीं हुई थी। वैद्यों में 'लुलु' का नाम बहुत प्रसिद्ध है।

वास्तुकला, स्थापत्य कला, मुद्रा निर्माण कला और स्वर्णकार कला के नमूने भी मिलते हैं। वास्तु-कला में जिगुरत का विशेष महत्व है। स्थापत्य कला के नमूने सिंहमुखी चील, 'गृध-पाषाण' और 'नरामसि-पाषाण' हैं।

सुमेर की प्राचीन संस्कृति ने अनेक संस्कृतियों को प्रभावित किया है। इनमें यूनान की संस्कृति का नाम भी आता है। मेसोपोटामिया की सभ्यता अन्य जातियों की अपेक्षा सुमेर जाति की अधिक ऋणी है।

अध्याय | 3

बेबिलोनिया की सभ्यता और संस्कृति

(BABYLONIAN CIVILIZATION AND CULTURE)

प्रश्न 1 प्रथम बेबिलोनियन साम्राज्य के संस्थापक के रूप में हम्मूराबी के कार्यों का उल्लेख कीजिये।

(लखनऊ विश्वविद्यालय)

Describe the achievements of Hammurabi as the founder of the first Babylonian empire.

(Lucknow University)

प्रश्न 2—बेबिलोनिया की सभ्यता और संस्कृति पर एक संक्षिप्त निबंध लिखिये।

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

Write a short essay on Babylonian culture and civilization.

(Allahabad University)

प्रश्न 3—विधान-निर्माता के रूप में हम्मूराबी का मूल्यांकन कीजिये।

(लखनऊ विश्वविद्यालय)

Make an estimate of Hammurabi as a law-giver.

(Lucknow University)

प्रश्न 4—हम्मूराबी कौन था ? उसके कोड का विशेष ध्यान रखते हुये उसके कार्यों का वर्णन कीजिये।

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

Who was Hammurabi ? Describe his achievement, keeping in view his Code.

(Gorakhpur University)

प्रश्न 5—नेबुचडरेज्जर के विषय में आप क्या जानते हैं ?

What do you know about Nebuchadrazzer ?

जर्मन इतिहासवेत्ताओं के अनुसार बेबिलोनिया की सभ्यता का ठीक-ठीक मूल्यांकन अभी तक नहीं हो पाया है यद्यपि दक्षिणी-पश्चिमी एशिया और यूनान की सभ्यता में बहुत से तत्वों का समावेश इसी सभ्यता के आधार पर हुआ है। विशेष रूप से गणित, दर्शन, इतिहास, औषधि-शास्त्र, खगोल-शास्त्र, कोष-निर्माण और व्याकरण का आधार बेबिलोनिया की सभ्यता है। हिब्रू बाइबिल पर भी बेबिलोनिया की सभ्यता का विशेष ऋण है। बेबिलोनिया वालों ने बहुत से कथानकों की रक्षा करके इस बाइबिल के लिये पृष्ठभूमि तैयार की थी। विद्या के क्षेत्र में भी बेबिलोनिया ने कहावतों, कथाओं और महाकाव्यों को उचित रूप से विकसित किया था।

बेबिलोनिया निवासियों के जातीय संगठन के बारे में कहा जाता है कि जब सुमेर और अक्काद के राज्यों में युद्ध हो रहा था तब अरब की मूल स्वजातियों को जनता की सहायता मिल रही थी और सुमेरियन जातियाँ शिन्नार में बस जाने के कारण अधिक उन्नति न कर सकीं। सेमेटिक जातियों की इस बढ़ती हुई बाढ़ के सामने सुमेरियन जातियाँ अपनी शक्ति और विकास को खो बैठीं।

जिस वर्ग ने सुमेरियावासियों को स्पष्ट रूप से हराया वह वर्ग अमरू, अमोरी, बेबिलोनिया, पश्चिमी सेमेटिक और केनानी का सम्मिलित रूप था। यह वर्ग बेबिलोनिया में पूर्वी मध्य-सागर के किनारे के देशों से आया था परन्तु वास्तव में यह अरब के निवासी थे। केनान में बसकर इन्होंने अपना जङ्गली जीवन त्यागकर स्थायी जीवन आरम्भ कर दिया था। कुछ खोजों के परिशोधन से यह ज्ञात होता है कि केनान में ये जातियाँ लगभग ईसा से तीन हजार वर्ष पूर्व आई थीं और इन्होंने भूमध्य सागर की अर्द्ध-सभ्य जातियों को परास्त किया था। कालांतर में इनके सम्बन्ध मिस्र और सुमेर जैसी उन्नतिशील संस्कृतियों से हो गये। बेबिलोनिया पर अधिकार करने के पूर्व ही इस जाति ने बेबिलोनियन संस्कृति को अपना लिया था। इसलिये दजला और फरात की घाटियों में जब यह जातियाँ आईं तो वहाँ के निवासी इसके विषय में बहुत कुछ जान चुके थे। पश्चिमी सेमाटियों के आक्रमण के काल में सुमेरियन और अक्कादी नगरों की शक्ति का पतन हो चुका था, उर का तृतीय राज्यवंश समाप्त हो गया था और एलम ने दक्षिणी सुमेर को अपने अधीन कर लिया था। एशियन राज्य को छोड़कर, जो सुरक्षा में रत था, और कोई ऐसी शक्ति नहीं थी जो सेमेटिक जातियों की बाढ़ को रोक सकती। नवागन्तुक जातियों ने अक्काद के बहुत बड़े भाग को अपने अधीन कर लिया और फिर बेबिलोन में अपनी राजधानी स्थापित करके दक्षिणी क्षेत्रों को जीतने का प्रयत्न करने लगी।

बेबिलोन नगर का महत्व—अभी तक यह नगर केवल एक प्रान्तीय नगर था परन्तु आक्रमणकारी जातियों ने इसे एक बड़े साम्राज्य की राजधानी घोषित

किया जिसके कारण इस नगर और उसके देवता मर्दुक का प्रभाव धार्मिक और राजनीतिक क्षेत्र में बढ़ गया। मर्दुक और सुमेरियनों के महान देवता एनेलिल में एकत्व स्थापित हुआ और धीरे-धीरे बेल-मर्दुक की पूजा सारे पश्चिम एशिया में होने लगी।

बैबिलोन का राज्यवंश

इस राज्यवंश का संस्थापक 'सुमु-अबुम' माना जाता है जिसका राज्यकाल ईसा से लगभग 2225 वर्ष पूर्व कहा जाता है। अबुम के उपरांत कई राजाओं ने इस देश पर शासन किया। सभी शासक स्वतन्त्र थे और इन्होंने कूथा, निप्पुर, सिप्पर और किश आदि नगरों पर अधिकार करके बेबिलोनियन राज्य की सीमाओं का विस्तार किया। प्रसिद्ध सम्राट 'सिन-मुबाल्लित' ने विकास का जो कार्य आरम्भ किया था उसकी पूर्ति 'हम्मूराबी' ने की।

सम्राट हम्मूराबी (2123 ई० पू०—2081 ई० पू०)

साम्राज्य-विस्तार—हम्मूराबी को इस राजवंश का सबसे महान शासक माना जाता है। यह पश्चिमी सेमाइटों के प्रसिद्ध सम्राट सिन-मुबाल्लित का पुत्र था। इसने 2123 ई० पू० से लेकर 2081 ई० पू० तक राज्य किया। इसके विषय में पर्सी साइक्स ने लिखा है :—

"The greatest monarch of this dynasty was the Sixth, Hammurabi the law-giver and Conqueror, who reigned from 2123 to 2081 B. C." —Sir Percy Sykes

हम्मूराबी एक महत्वाकांक्षी सम्राट था। जिस समय वह सिंहासनारूढ़ हुआ, उसके राज्य में सिप्पर से निप्पुर तक का प्रदेश अर्थात् लगभग सम्पूर्ण अक्काद था। हम्मूराबी की उन्नति में 2 बड़ी बाधाएँ थीं—एलम और ईसिन। उसके राज्यारोहण से पहले ही एलमो नरेश ने सुमेर पर अधिकार कर लिया था और हम्मुराबी के शासन-काल में एलमी नरेश का पुत्र रिमसिन अक्काद को जीतने का स्वप्न देख रहा था। ईसिन का राजवंश हम्मूराबी और रिमसिन दोनों की ही सत्ता को स्वीकार नहीं करता था। इन परिस्थितियों में सम्पूर्ण मेसोपोटामिया पर अधिकार करने के लिये उसे उपर्युक्त दो शक्तियों से लोहा लेना था।

सिंहासनारोहण के छः वर्ष बाद हम्मूराबी ने अपना सैनिक अभियान प्रारम्भ किया। सबसे पहले उसने एरेक और ईसिन को जीतने का प्रयत्न किया। लेकिन इसी बीच उसे एलम और लारसा से युद्ध करना पड़ा। इन युद्धों में हम्मूराबी पराजित हुआ और रिमसिन ने निप्पुर और एरेक पर अपना अधिकार कर लिला। बेबिलोनिया का मध्यपूर्वी और दक्षिण भाग एलम नरेश के हाथ में चला गया। इस प्रकार बेबिलोनिया

में दो शक्तियाँ शेष रह गईं—दक्षिण में रिमसिन के नेतृत्व में एलमो राज्य और उत्तर में हम्मूराबी द्वारा प्रशासित बैबिलोन ।

रिमसिन से मुँह की खाने के बाद हम्मूराबी ने लगभग 20 वर्ष तक अपने विरोधियों को परास्त करने का कोई भी प्रयास नहीं किया । कुछ विद्वानों का मत है कि इस बीच कुछ काल तक उसे एलम की सत्ता मानने के लिये विवश होना पड़ा था । इन विद्वानों ने यह धारणा एक यहूदी अनुश्रुति के आधार पर बनाई है ।

अपने शासन काल के 30वें वर्ष हम्मूराबी ने अपने विरोधियों को कुचलने का फिर से प्रयास किया । इस बार वह अपने कार्य में सफल हुआ और उसने एलम को बुरी तरह पराजित किया । उसने लारसा पर अधिकार किया और रिमसिन को नतमस्तक होने के लिये विवश किया । दक्षिण में सम्पूर्ण सुमेर पर अधिकार हो जाने के फलस्वरूप उसके लिये पश्चिम में सीरिया और पेलस्टाइन को जीतना सुगम हो गया । सम्राट हम्मूराबी की विधि-संहिता की प्रस्तावना में नगरों की जो सूची दी है उसके आधार पर उसके साम्राज्य विस्तार का अनुमान लगाया जा सकता है । इस विधि-संहिता में सबसे पहले निप्पुर और तत्पश्चात् प्राचीनतम नगर एरिडू का उल्लेख हुआ है । इसके बाद उसकी राजधानी बेबिलोन का विस्तृत वर्णन है । तत्पश्चात् सिप्पर, लारसा, एरेक, ईसिन, किश, लगश, कूथा, अक्काद, असुर तथा निनिवेह आदि का वर्णन है । इससे यह स्पष्ट है कि हम्मूराबी ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी एवं सुमेर तो निश्चय ही उसके अधिकार में थे । हेज और मून ने उसके विषय में लिखा है :—

"Coming to the throne as King of the City State of Babylon, he conquered all Akkad and Sumer and drove the Elamites back into their mountains." —Hayes & Moon.

कृषि की उन्नति—हम्मूराबी ने खेती की उन्नति के लिये एक बहुत बड़ी नहर खुदवाई जिससे सुमेर और अक्काद के बीच की पृथ्वी हरी-भरी हो उठी । खेतों के लिए अच्छे बीजों का भी उसने प्रबन्ध किया । किसानों की दशा को सुधारने में उसने बड़ा योगदान दिया । राज्य की ओर से अनाज इकट्ठा करके उसने एक बड़ा खलिहान बनवाया । उसके प्रयत्न से दजला और फरात नदियों में बड़े-बड़े व्यापारी जहाज आने-जाने लगे जिससे गल्ला बाहर भेजा जाता था ।

अन्य जन-कल्याण के कार्य—कृषि की उन्नति के साथ ही हम्मूराबी ने अन्य जन-कल्याण के कार्य भी किये :—

1. उसने फारस की खाड़ी और कीश नगर के बीच में एक नहर खुदवाई जिससे कई नगर दजला नदी की बाढ़ से बच गये ।

2. फरात नदी के ऊपर एक पुल बनवाया गया ताकि बेबिलोन नगर का विकास नदी के दोनों ओर हो सके ।

3. प्रसिद्ध **हम्मूराबी-तुखुश-निशि** नामक नहर खुदवाकर उसने सुमेर और अक्काद के बड़े भाग को कृषि योग्य बनाया।

4. इसने कई किले बनवाये और मर्दुक का विशाल मन्दिर बनवाया।

विद्वान विल ड्यूराण्ट ने भी लिखा है—"ईसा से दो हजार वर्ष पहले भी वैबिलोनिया उन समृद्धशाली नगरों में था जिनकी तुलना इतिहास में कोई नगर नहीं कर सकता।"

"Two thousand years before Christ, Babylonia was already one of the richest cities that history had yet known."
—Will Durrant.

हम्मूराबी की महत्ता : उसकी विधि-संहिता—सूसा नगरी की खुदाई में हम्मूराबी की विधान-संहिता एक गोल पत्थर पर खुदी हुई मिली है जो फ्रांस के लुवर संग्रहालय में आज भी सुरक्षित है। हम्मूराबी का महत्व उसके साम्राज्य विस्तार और निर्माण-कारी कार्यों के फलस्वरूप उतना अधिक नहीं है जितना अधिक विधि-संहिता के फलस्वरूप है। हेज और मून ने बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा है :—

"But Hammurabi is best known to us not for his wars, nor for this Canal, nor his temples, but rather for his code of laws."
-- Hayes and Moon.

इससे यह पता चलता है कि हम्मूराबी के न्याय सम्बन्धी विचार बहुत ऊँचे थे। इस विधि-संहिता की भाषा सेमेटिक है। विधि संहिता में लिखा है कि दुराचारियों और शैतानों के विनाश के लिये, निर्बल की रक्षा के लिए, देश की जनता में जागृति उत्पन्न करने एवं जनता की भलाई के लिये मैंने विधान का परिवर्तन अनु और वेन नामक देवताओं के आदेश से किया है।

हम्मूराबी के समय में व्यभिचारियों को मृत्यु-दण्ड दिया जाता था। भागे हुये दासों को शरण देने वाले को 25 शेकल चाँदी जुर्माने में देनी होती थी। आगे चलकर इसके लिये भी प्राण-दण्ड की व्यवस्था की गई। उद्दण्ड गुलामों को बेचने के बजाय उनके नाक, कान काटने की सजा दी जाती थी। सारे देश में एक पत्नी या पति का रिवाज था। तलाक देने पर आधा मीना चाँदी जुर्माना होती थी। परित्याग किये जाने पर या पत्नी को अलग रखने पर शुद्ध चरित्र की स्त्री अपने पति से तलाक का समस्त धन ले लेती थी। बीमार या अपाहिज पत्नी को तलाक नहीं दिया जा सकता था। दुराचारी स्त्री को नदी में फेंक दिया जाता था। सम्पत्ति और उत्तराधिकार तथा लेन-देन के बारे में प्राचीन अधिकार जो सुमेरियन स्त्रियों को प्राप्त थे वह ज्यों के त्यों रहते थे। माँ-बेटे में अनुचित सम्बन्ध होने पर दोनों को जिन्दा जला दिया जाता था। आग लगाने वालों को, आग लगने पर चोरी करने वालों

को, मारपीट में दूसरों को मार डालने वालों को, स्वतन्त्र स्त्री को मारपीट में गर्भपात होने पर तथा देवदासियों के मदिरालय में पकड़े जाने पर और यदि मकान गिर जाये तो कारीगर को मृत्यु-दण्ड दिया जाता था। नीचे लिखे अपराधों पर भी मृत्यु-दण्ड दिया जाता था—

1. महल या मन्दिर में चोरी करने वालों को।
2. नाबालिग से लिखा-पढ़ी कराके उसका माल हड़पने वालों को।
3. दासों को भागने में सहायता देने वालों को।
4. दास को शरण देने पर।
5. सेना में भर्ती होने से इंकार करने पर।
6. क्वांरी लड़की का कौमार्य भ्रष्ट करने पर।
7. पिता की इच्छा के विरुद्ध लड़की को बहका कर भगा ले जाने वाले को।
8. निश्चित मूल्य से अधिक मूल्य में मदिरा खरीदने पर।
9. दाम के बदले जौ लेने से इंकार करने पर या अधिक मूल्य माँगने पर।
10. यदि कोई स्त्री लड़ाई में बंदी पति की अनुपस्थिति में उसकी सम्पत्ति का दुरुपयोग करती थी या व्यभिचार करने पर।
11. मृत्यु के मुकदमे में झूठी गवाही देने पर।

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित दण्ड विभिन्न अपराधों पर दिये जाते थे :—

(1) जो पुत्र अपने पिता को मारते थे उनके हाथ काट दिये जाते थे। यदि कोई गाय बच्चे को दूध नहीं पिलाती थी और बच्चे की मृत्यु हो जाती थी तो गाय के स्तन काट दिये जाते थे।

(2) किसी गाँव या नगर में डाका पड़ने पर जो धन का नुकसान होता था वह सब उस प्रान्त के गवर्नर या नगर के पटैसी को देना पड़ता था।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि उस युग में कठोर दण्ड की व्यवस्था थी और जैसे को तैसा सिद्धान्त को मान्यता प्राप्त थी। हेज और मून ने लिखा है :—

"The penalties were harsh, and often based on the principle. of an eye. For example, if a man killed another man's daughter his own daughter must be put to death."

—Hayes & Moon

न्याय व्यवस्था के भी कुछ स्पष्ट नियम थे। मुकदमे में वादी को कभी-कभी राजधानी में आना पड़ता था। साधारणतया वकील पैरवी कर सकते थे। अदालतों

में जजों की संख्या तीन या चार होती थी। बड़े-बूढ़े स्त्री, पुरुष मुखिया पंच नियुक्त किये जाते थे।

जो व्यक्ति लेन-देन के मामले में झूठ बोलते थे उन्हें पूरा हर्जाना देना पड़ता था। वस्तुओं के क्रय-विक्रय में लिखा-पढ़ी कराना और गवाही कराना आवश्यक था अन्यथा खरीदार चोर समझा जाता था।

अदालतों के अधिकारों की सीमा निर्धारित थी। एक अदालत के अधिकारों पर दूसरी अदालत हस्तक्षेप नहीं कर सकती थी।

विधि संहिता में केवल न्याय सम्बन्धी नियम ही नहीं थे वरन् अन्य बातों का भी उल्लेख हुआ था। इनकी चर्चा यहाँ संक्षेप में की जा रही है—

समस्त जनता तीन भागों में विभाजित की गई थी—

1. अमेशु
2. मुशकिनु
3. दास

प्रथम श्रेणी में पुरोहित, सैनिक, धर्मगुरु, और सरकारी पदाधिकारी होते थे।

दूसरी श्रेणी में किसान, मजदूर, अध्यापक, राज, दुकानदार और व्यापारी लिये जाते थे।

तीसरी श्रेणी में युद्धबन्दी, दासों की संतानें और खरीदे हुये चाकर आते थे।

सिपाहियों की दो श्रेणियाँ होती थीं। इनमें प्रमुख जानिसार थे जो घमासान युद्ध करते थे। सिपाहियों को गुजारे के लिये या इनाम में धरती मिलती थी जो किसी प्रकार भी नहीं बेची जा सकती थी, न बंधक की जा सकती थी और न जब्त की जा सकती थी। सिपाहियों को छोड़कर समस्त जनता से रक्षा-कर लिया जाता था। राजा स्वयम् सेना का सरदार होता था।

विवाह के नियम भी निर्धारित थे और ठेके की व्यवस्था भी की गई थी। यदि पत्नी पति को सन्तुष्ट न कर सके तो वह घर से लाई हुई सम्पत्ति के साथ वापस जा सकती थी। विधि-संहिता में अनेक व्यापारिक ठेकों और ऋणों के लेन-देन का भी उल्लेख हुआ है। $33\frac{1}{3}\%$ ब्याज की दर से अनाज के रूप में ऋण और 20% की दर से चाँदी के रूप में दिया जाता था। कृषि के नियम भी अत्यन्त स्पष्ट थे। नावों और दासों आदि के क्रय-विक्रय के सम्बन्ध में विधि संहिता में नियम दिये गये थे।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि सम्राट हम्मूराबी की विधि-संहिता अपने ढंग की निराली थी। उसका महत्व नये कानूनों के निर्माण में नहीं वरन् प्राचीन

कानूनों के संकलन में है। हम्मूरावी की विधि-संहिता परवर्ती युगों में केवल बेबीलोनिया में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण पश्चिमी एशिया में समाज को व्यवस्थित करने वाली शक्ति के रूप में पूज्य रही।

हम्मूरावी का मूल्यांकन—हम्मूरावी की गणना महान विजेताओं, प्रसिद्ध निर्माताओं और प्रख्यात विधि निर्माताओं में की जाती है। बाबुल की संस्कृति को उन्नति के शिखर पर पहुचाने वालों में हम्मूरावी का नाम सबसे ऊपर लिया जाता है। उसके काल में बेबीलोनिया ने बहुत अधिक उन्नति की। क्रिस्टोफर डाउन ने लिखा है—

"In all essentials Babylonia, in the time of Hammurabi and even earlier had reached on pitch of material civilization which has ever since been surpassed in Asia."

—Cristopher Down.

बेबीलोनिया को भौतिक उन्नति के चरम शिखर पर पहुँचाने के लिये हम्मूरावी का महत्व केवल बेबीलोनिया के निवासियों के लिये रहा है परन्तु विधि-संहिता के निर्माता के रूप में उसका महत्व एशिया के विभिन्न देशों के निवासियों के लिये अत्यधिक है। पश्चिमी एशिया के परवर्ती शासकों के लिए हम्मूरावी एक आदर्श रहा और विधि-संहिता के निर्माण के फलस्वरूप उसकी गणना संसार के महानतम विधि निर्माताओं एवं संकलन कर्त्ताओं के रूप में की जाती है। एक विद्वान ने उसके विषय में ठीक ही लिखा है—

"हम्मूराबी के यदि अन्य कार्यों पर दृष्टिपात न करके केवल उसकी विधि संहिता को देखा जाय तो हम्मूराबी हमारे मस्तिष्क पर वह छाप छोड़ जायेगा जो मेसोपोटामिया की संस्कृति के निर्माता किसी अन्य शासक ने नहीं छोड़ी।"

हम्मूराबी के उत्तराधिकारी और उनका पतन

हम्मूरावी महत्वाकांक्षी नरेश था परन्तु उसके मार्ग में दो बड़ी बाधाएं थीं। उसके गद्दी पर बैठने के पहले ही एलमी के राजा ने सुमेर पर अधिकार कर लिया था। ईसिन का राजवंश हम्मूराबी की सत्ता को स्वीकार नहीं करता था। कालांतर में उसने दोनों को परास्त किया और बहुत बड़ा साम्राज्य बना लिया। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र सम्सु-इलुन ने भी अपने पिता की भाँति विशाल साम्राज्य को सुसंगठित और कठोर नियन्त्रणों से नियन्त्रित रक्खा। परन्तु कसाइटों के आक्रमण प्रारम्भ हो गए थे। पहले तो हम्मूरावी के उत्तराधकारी उनको दबाने में सफल रहे और उन्हें थोड़ी-थोड़ी संख्या में राज्य में बसने दिया परन्तु धीरे-धीरे वह संख्या में बढ़ गये और घोड़ों का उपयोग सेना में करने लगे जिसे बेबिलोनिया वाले नहीं

जानते थे। इस कारण हम्मूराबी के लगभग 150 वर्ष उपरान्त कसाइटों ने ही उसके वंश का अन्त 1925 ई० पू० के लगभग कर दिया।

हम्मूराबी के वंश का अंतिम महान शासक अबि-एशु का पुत्र अम्मिदिताना था जिसने 2014 ई० पू० से लेकर 1977 ई० पू० तक राज्य किया। इस समय समुद्र तट के कई राज्य सिर उठा रहे थे। इसने उन राज्यों को बहुतांश में अपने वश में किया।

उसके उपरान्त उसका पुत्र अम्मि-जदुग गद्दी पर बैठा और उसने लगभग 21 वर्ष शासन किया। वह अपने पिता की सफलताओं को स्थायी न बना सका और समुद्र तट के राज्यों ने पुनः अपने क्षेत्र वापस ले लिये।

राज्य का अन्तिम सम्राट शम्सु-दिताना था। उसने 1956 से लेकर 1925 ई० पू० तक राज्य किया। उसके समय में एशिया माइनर की हित्ती जाति ने सुमेर और अक्काद पर आक्रमण करके साम्राज्य का अन्त कर दिया। परन्तु हित्तियों ने स्थायी रूप से बेबिलोनिया में अपना शासन नहीं जमाया। लूट-पाट के उपरान्त कसाइटों को अवसर मिला और उन्होंने बेबिलोनिया पर अधिकार जमा लिया।

बर्बरतापूर्ण युग

कसाइटों का बाबुल पर शासन बड़ा बर्बरतापूर्ण था। इस युग में सर्वत्र रक्त ही रक्त दिखलाई पड़ता है। कसाइट लड़ने-मरने वाली जाति थी। साहित्य, ज्ञान, और विज्ञान से उनका सम्बन्ध नहीं था। उन्होंने 1925 ई० पू० में बाबुल पर विजय प्राप्त की और लगभग 600 वर्ष तक शासन किया। उनके शासनकाल में किसी प्रकार की साहित्यिक एवं वैज्ञानिक उन्नति का उल्लेख नहीं मिलता है।

असीरियन युग

कसाइटों के बाद का 400 वर्ष का इतिहास बड़ा अन्धकारमय है। इसके पश्चात् बाबुल पर असीरिया का साम्राज्य स्थापित हो गया। असीरिया के सम्राट सैन्नाचेरीब के शासन काल में बाबुल में विद्रोह हुआ परन्तु उसे बड़ी बर्बरतापूर्वक कुचल दिया गया। समस्त नगर उजड़ गया और बेबिलोन में खण्डहर ही खण्डहर दिखलाई पड़ने लगे। इस नगर का पुनरुद्धार ईस्सरहैड्डेन नामक असीरियन सम्राट ने कराया।

जिस समय असीरिया पर मिडिस जाति ने आक्रमण किया उस समय बाबुल के निवासियों को अवसर मिला और उन्होंने मिडिस जाति से मिलकर बाबुल को स्वाधीन करा लिया। इस प्रकार कई सौ वर्षों की परतन्त्रता के पश्चात् बेबिलोनिया पुनः स्वतन्त्र हुआ और नव-स्वतन्त्र बेबिलोनिया का प्रथम सम्राट नेबोपलेस्सर बना।

बाबुल का द्वितीय राजवंश (खाल्दी युग)

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि इस राजवंश का प्रथम सम्राट नेबोपलेस्सर था। वह बड़ा पराक्रमी और साहसी था। उसके वंश को 'खाल्दी-वंश' और साम्राज्य को 'खाल्दी-साम्राज्य' के नाम से भी पुकारा जाता है।

खाल्दी युग का प्रसिद्ध सम्राट नेबुचडरेज्जर

खाल्दी युग में नेबुचडरेज्जर नाम का एक अत्यन्त वीर और प्रतापी सम्राट हुआ है। उसकी गणना छठी ई० पू० के एशिया के महानतम सम्राटों में की जाती है।

महान विजेता—नेबुचडरेज्जर नेबोपलस्सर का पुत्र था। अपने पिता की मृत्यु के बाद वह सिंहासनारूढ़ हुआ। सिंहासनारूढ़ होते ही उसने सीरिया और फिलिस्तीन को अपने राज्य में मिलाना चाहा। 587 ई० पू० में नेबुचडरेज्जर ने फिलिस्तीन पर आक्रमण किया और उसे अपने साम्राज्य में मिला लिया। उसने हिब्रुओं से भी लोहा लिया और हिब्रुओं के राजा की आँखें निकलवाकर उसे बन्दी बना लिया और उसे यूरेसलम से बाबुल ले आया। इस घटना के लगभग 10 वर्ष बाद यूरेसलम में विद्रोह हुआ। नेबुचडरेज्जर ने यूरेसलम को घेर लिया और यूरेसलम की सहायता के लिये मिस्र से आई हुई सेना को बड़ी बुरी तरह पराजित किया।

567 ई० पू० में उसने मिस्र पर आक्रमण किया और मिस्र के शासक को पराजित करके वहाँ बाबुली झण्डा फहरा दिया। नेबुचडरेज्जर के साम्राज्य में मिलने के बाद मिस्र एक लम्बे अर्से तक परतन्त्र रहा। शताब्दियों तक वह ईरानी, यूनानी, रोमी और अन्त में अरब साम्राज्य का प्रान्त रहा। मिस्र पर अधिकार करने के बाद नेबुचडरेज्जर ने किसी अन्य राज्य पर आक्रमण नहीं किया।

कहा जाता है कि नेबुचडरेज्जर ने 605 ई० पू० से लेकर 562 ई० पू० अर्थात् 43 वर्ष तक राज्य किया और उसका साम्राज्य फारस की खाड़ी से रोम सागर तक फैल गया। नेबुचडरेज्जर के विषय में हेज और मून ने लिखा है—

"Nebuchadrazzar, who ruled from 605 to 562 B. C., launched Babylon on a career of aggressive war."

—Hayes and Moon.

नेबुचडरेज्जर एक महान् विजेता और महत्वाकांक्षी सम्राट था। उसने अनेक चट्टानों और पहाड़ियों पर अपने सन्देशों को लिखवा दिया था। बाबुल की खुदाई में उसके समय की जितनी भी ईंटें मिली हैं उन पर उसने लिखा दिया है, "बेबीलोन का सम्राट नेबुचडरेज्जर हूँ।"

नेबुचडरेज्जर की शासन-व्यवस्था—नेबुचडरेज्जर एक निरंकुश शासक था और उसने अपने को सहायता पहुँचाने के लिये प्रान्तीय और नगरीय संसदों का

निर्माण किया था। उसने सम्राट हम्मुराबी की विधि-संहिता के आधार पर अपने प्रशासन को चलाया। शनैः शनैः दण्डों की कठोरता में कमी की गई और नेवुचडरेज्जर कठोर दण्ड-नीति का अनुसरण न कर सका।

नेवुचडरेज्जर ने जनता की उन्नति के लिये अनेक कार्य किये। उसने हम्मुराबी द्वारा खुदवाई हुई पुरानी नहर को फिर से खुदवाया और समस्त राज्य में नहरों का एक जाल सा बिछा दिया जिससे कि खेती की बहुत उन्नति हुई।

उसने प्रशासन की सुविधा और व्यापार के प्रोत्साहन के लिये समस्त देश में सड़कों का निर्माण करवाया। उसकी बनवाई सड़कें कहीं-कहीं पर 180 फीट तक चौड़ी थीं। व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिये उसने फारस की खाड़ी से लेकर थैप्सकेस तक के जलमार्ग की व्यवस्था की। उसके शासन-काल में बड़े-बड़े जलपोत फरात नदी में इधर-उधर घूमते थे।

नेबुचडरेज्जर का धर्म—नेवुचडरेज्जर जो युद्ध में अत्यधिक निर्दयी और महत्वाकांक्षी प्रतीत होता था, अत्यन्त धार्मिक व्यक्ति था। वह सभी धर्मों का आदर करता था। उसने अनेक स्थानों पर प्राचीन देवताओं की मूर्तियाँ खड़ी करवाई थीं। बाबुल के प्रवेश द्वार पर एक विशाल नृसिंह मूर्ति स्थापित की थी। उसने दुआसारा के मन्दिर की छत से चाँदी निकलवाकर सोने के पत्तरों को जड़वाया था। एकुआ के मन्दिर को भी उसने सोने से मढ़वा दिया था। वह 'मार्दुक' और 'नेबो' का अनन्य उपासक था। उनके साथ ही वह अन्य देवताओं की भी पूजा करता था और उन्हें भेंट चढाता था। उसने अन्य देशों के देवताओं के भी मन्दिर बनवाये थे।

नेबुचडरेज्जर का नगर-नियोजन—नेवुचडरेज्जर ने अपने पिता नेबोपलेस्सर द्वारा बनाई गई एक नगर योजना को क्रियान्वित किया। उसकी राजधानी का नियोजन बड़े सुन्दर ढंग से किया गया था। नेवुचडरेज्जर ने स्वयं एक स्थान पर लिखवाया है कि उसने बाबुल को अन्य समकालीन नगरों की अपेक्षा अधिक वैभवशाली बनाया था। प्रसिद्ध यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस ने बाबुल को जिस रूप में देखा था उसका वर्णन करते हुए लिखा है, "बाबुल एक अत्यन्त वैभवशाली नगर था जो एक चौरस भूमि पर बना हुआ था। उसकी लम्बाई-चौड़ाई 14-14 मील थी और पूरा घेरा 56 मील का था। सम्पूर्ण नगर का क्षेत्रफल लगभग 200 वर्गमील था। उसकी चहारदीवारी 80 फीट चौड़ी थी और Tower of Babel के नाम से प्रसिद्ध थी। बाहर की चहारदीवारी के साथ ही अन्दर भी एक चहारदीवारी थी और उसके अन्दर नगर बसा हुआ था। दोनों चहारदीवारियों के मध्य शत्रुओं द्वारा घेरा डाल देने पर आवश्यक अनाज पैदा कर लिया जाता था। नगर में हजारों नगर सेठों की हवेलियाँ थीं। नगर के विभिन्न मकानों का निर्माण विभिन्न ढंग से होता था और हर मकान के सामने एक

फुलवाड़ी होती थी। लम्बाई और चौड़ाई दोनों दिशाओं में सीधी सड़कें नगर भर में एक दूसरे को काटती हुई बिछी हुई थीं। नगर की चहारदीवारी में प्रत्येक दिशा में 25-25 फाटक थे। सभ्यता के शैशव-काल में बाबुल नगर का इतना सुनिश्चित नगर नियोजन हमें एक बार फिर नेबुचडरेज्जर की महत्वाकांक्षा की याद दिलाता था।"

नेबुचडरेज्जर के काल में कलात्मक उन्नति—नेबुचडरेज्जर ने केवल नगर-नियोजन का ही कार्य सम्पन्न नहीं किया बल्कि अनेक दुर्गों और राजप्रासादों का भी निर्माण करवाया। उसके बनवाये हुये राजप्रासाद तत्कालीन भवन-निर्माण कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। नेबुचडरेज्जर ने 'मार्दुक' देवता की उपासना के लिये एक जिग्गुरात का भी निर्माण करवाया था। अपनी रानी के लिये नेबुचडरेज्जर ने एक ऐतिहासिक झूला उद्यान का निर्माण करवाया था। उसकी रानी मीड्स सम्राट की पुत्री थी और ठंडे देश की होने के कारण गर्मी को बर्दाश्त नहीं कर पाती थी। इसी कारण, नेबुचडरेज्जर ने उसके लिये शीतल उद्यान बनवाया था। इस उद्यान में अनेक प्रकार के पेड़-पौधे लगे हुये थे जो दूर से लटके हुये से प्रतीत होते थे। यह झूला संसार के सात आश्चर्यों में से एक गिना जाता है। उसके विषय में विल ड्यूराण्ट ने लिखा है :—

"Supported on a succession of supinposed circular colonades, was the famous hanging garden, to which the Greeks included amongst the seven wonders of the world."

—Will Durant.

नेबुचडरेज्जर का मूल्यांकन—नेबुचडरेज्जर बेबीलोनिया के महानतम सम्राटों में से था। उसने अपने साम्राज्य का विस्तार तो किया ही साथ ही जनता की भलाई के लिये भी अनेक कार्य किये। उसके शासन-काल में ज्योतिष विज्ञान अपनी उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गई थी। नेबुचडरेज्जर का महत्व जितना अधिक एक साम्राज्य-निर्माता के रूप में है उससे कहीं अधिक संस्कृति के उन्नायक के रूप में है। साहित्य, कला और विज्ञान की उन्नति के लिये उसने 54 मन्दिरों का निर्माण करवाया था। सभ्य संसार सदैव उसका ऋणी रहेगा।

अत्यन्त खेद के साथ लिखना पड़ता है कि इस योग्य और कुशल शासक का अन्त अत्यन्त दुखमय हुआ। अपने जीवन के अन्तिम काल में वह पागल हो गया और घास खाने लगा तथा 562 ई० पू० में उसका देहान्त हो गया।

द्वितीय राजवंश का पतन

सम्राट नेबूचडरेज्जर की मृत्यु 562 ई० पू० में हुई। किंवदन्ती है कि अंतिम काल में सम्राट पागल हो गया था और जानवरों का सा व्यवहार करने लगा था।

उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र निबोनिदस गद्दी पर बैठा। उसने 17 वर्ष तक राज्य किया। इस राजा का अधिक समय प्राचीन खण्डहरों को खोदने में बीतताथा। इसलिये शासन में गड़बड़ी मच गयी। सेना की शक्ति भी ढीली पड़ गई, जनता ऐश-आराम में डूब गई और व्यपारी लोग स्वार्थी हो गये। 539 ई०पू० में फारस के सम्राट साइरस प्रथम ने बाबुल को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। बेबिलोनिया के महल में ही 331 ई० पू० अधिक शराब पीने के कारण सिकन्दर महान की मृत्यु हुई इसलिये इस महल का विशेष महत्व है।

बेबिलोनिया निवासियों का सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन

(1) **वर्ग-विभाजन**—सारा नागरिक सामाज तीन वर्गों में विभाजित था—

1. उच्च वर्ग : अवीलम्;
2. मध्यम वर्ग : मुस्कनम;
3. दास वर्ग।

अवीलम् वर्ग में मंत्री, राज्य पदाधिकारी, व्यापारी और भूमिपति आते थे। परन्तु धन के आधार पर पद नहीं माना जाता था बल्कि निर्धन हो जाने पर व्यक्ति अपने वर्ग के अधिकारों का उपयोग करते रहते थे। कालान्तर में यही वर्ग रक्त के आधार पर बनने लगे। इतिहासकारों का मत है कि आरम्भ में ऊँची श्रेणी के लोग शासन करने वाले अमीरी जाति के लोग रहे होंगे। धीरे-धीरे अकवाद, सेमाइट भी इसी वर्ग में सम्मिलित हो गये क्योंकि रक्त और भाषा के विचार से ये अमीरियों के अधिक निकट थे। उच्च वर्ग के लोगों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त था।

मुस्कनम् वर्ग के लोग दासों से ऊँचे माने जाते परन्तु उच्च वर्ग से नीचे। इस वर्ग में अधिकतर सुमेरियन लोग थे। दोनों वर्गों के सम्मान में अंतर अपराधियों द्वारा दिये जाने वाले हर्जाने से लगाया जाता था। उदाहरण के लिये यदि कोई उच्च वर्ग का व्यक्ति किसी मनुष्य का बैल चुरा लेता था तो उसे पशु के मूल्य से तीस गुना धन दण्ड रूप में देना होता था जब कि मध्यय वर्ग को केवल 10 गुना धन देना होता था। मध्यम वर्ग के लोगों को हत्या आदि के अपराध में भी उच्च वर्ग वालों से कम दण्ड मिलता था। उन्हें वैद्यों आदि को कम फीस देनी पड़ती थी। तलाक भी आसानी से मिल जाता था।

दास वर्ग के लोगों को मध्यम वर्ग से भी कम दण्ड दिया जाता था। शायद दण्ड की यह व्यवस्था का सिद्धान्त बेबिलोनियावासियों ने सुमेरियनों से पाया था। दास वर्ग के लोग प्रायः उच्च और मध्यम वर्ग के परिवारों में काम करते थे। पशुओं की भाँति इनका भी क्राय-विक्रय होता था। प्रायः युद्ध में पकड़े जाने वाले लोग दास बना लिये जाते थे। प्रत्येक दास के शरीर पर उसके मालिक का नाम, अधिकार-चिह्न बना रहता था। जो दास स्वामी के अधिकार को नहीं मानते थे या उच्च वर्ग के किसी आदमी पर

आक्रमण करते थे उनके कान काट दिये जाते थे ! परिवार का स्वामी दासों के स्वास्थ्य और हित का ध्यान रखता था। दास स्वयं मेहनत करके अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति भी इकट्ठा कर सकते थे और अपना मूल्य चुका देने पर मालिक की आज्ञा से स्वतन्त्रता भी प्राप्त कर लेते थे। दास स्वतन्त्र स्त्री से विवाह कर सकते थे। ऐसे विवाहों की संतान स्वतन्त्र नागरिक मानी जाती थी दास का स्वामी अपने मरे हुये दास की सम्पत्ति का केवल आधा भाग ले सकता था।

(2) परिवार और कानून— वैबिलोनियन समाज में परिवार के सदस्यों का पारस्परिक सम्बन्ध कानून द्वारा अनुशासित रहता था। विवाह, तलाक, बालक को गोद लेने और पारिवारिक सम्बन्धों में जो परिवर्तन होते थे उन्हें लिपिबद्ध किया जाता था। विवाह,तलाक, उत्तराधिकार, बच्चों के भरण-पोषण आदि के लिए राज्य द्वारा नियम निर्धारित किए गए थे।

(3) स्त्रियों की दशा— यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस के लेखों से ज्ञात होता है कि बाबुल में कुमारी लड़कियाँ वीनस देवी को प्रसन्न करने के लिये अपने यौवन को लुटाती थीं और किसी न किसी आगन्तुक से जीवन में एक बार सम्भोग करती थीं। विवाह हो जाने के उपरान्त यह स्त्रियाँ पति-पत्नी का सच्चा जीवन व्यतीत करती थीं। देव-मन्दिरों में वेश्याएँ भी होती थीं जो पवित्र वेश्याएँ कहलाती थीं और नागरिक वेश्याएँ शराब की दुकानों आदि में रहती थीं। इस प्रकार बेबिलोनिया में अवैध यौन सम्बन्ध को धार्मिक रूप दिया गया। विल ड्यूराण्ट के अनुसार विवाह के पूर्व जिस स्त्री का किसी पुरुष से सम्बन्ध हो जाता था वह मिट्टी के बने हुये जैतून के फल को पहनती थी। यह एक प्रकार प्रयोगिक विवाह की प्रथा थी। विवाह के श्चात् स्त्री और पुरुष दोनों को कठोर नैतिक जीवन व्यतीत करना पड़ता था। कभी-कभी विवाह योग्य लड़कियों को बाजारों में बेचा जाता था परन्तु खरीदार को यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी कि वह उक्त कन्या को केवल विवाह के लिये खरीद रहा है। तलाक और उत्तराधिकार आदि की प्रथाएँ भी प्रचलित थीं। उच्च श्रेणी की स्त्रियों को बाहर निकलते समय पर्दे का प्रयोग करना पड़ता था। एक इतिहासकार ने लिखा है कि जब बाबुल के लोग शत्रुओं द्वारा घेर लिये गये तब उन्होंने रसद बचाने के लिये अपनी स्त्रियों का संहार कर डाला। सांस्कृतिक उन्नति के साथ-साथ बाबुल के निवासी नवयुवक, स्त्रियों की तरह गहनों और चूड़ियों आदि का प्रयोग करने लगे तथा बाल भी बनाने लगे। हैरोडोटस के अनुसार—**"सभ्यता के विकास के साथ-साथ स्त्रियों में आत्मसंयम की भावना घटने लगी और पुरुष धन के लिए अपनी लड़कियों को वेश्यावृत्ति करने के लिए प्रोत्साहन देने लगे।"** स्त्रियों के इस पतन में मन्दिरों की आर्थिक वृद्धि ने भी सहयोग दिया।

(4) **मृतक संस्कार**—मृतकों को प्रायः जलाया या गाड़ा जाता था। जिन लोगों को गाड़ा जाता था उनके साथ कब्रों में खाने-पीने आदि की सामग्री भी उनकी संतानों द्वारा रक्खी जाती थी जिससे मृतक आत्माएँ भूख-प्यास से परलोक में तड़पती न रहें।

दफनाने के पहले शव को नहलाया जाता था और उसको वस्त्रों तथा अलंकारों और सुगन्धों से परिपूर्ण किया जाता था। स्त्रियों के साथ उनके सिंगार का समस्त सामान भी रक्खा जाता था। नागरिकों का विश्वास था कि यदि मृतक के साथ समस्त संतोष का सामान नहीं रक्खा जायगा तो इस सामान की तलाश में उसकी आत्मा परिवार वालों को परेशान करेगी और गन्दी जगहों में जैसे नाले-नालियों में खाने-पीने की चीजें ढूँढ़ेगी जिससे नगर में तरह-तरहके रोग फैलेंगे।

आर्थिक जीवन

वैबिलोनिया की सभ्यता में सुमेरियन सभ्यता के कुछ चिह्न अवश्य पाये जाते हैं। विशेषकर आर्थिक जीवन में बेबिलोनिया वालों ने सुमेरियनों से बहुत कुछ लिया था। यद्यपि इस युग में मन्दिरों की शक्ति घट गई थी अथवा दूसरे शब्दों में धार्मिक समाजवाद का अंत हो गया था परन्तु कुछ मन्दिरों के पास अब भी बड़ी-बड़ी जागीरें थीं। बेबिलोनियन सम्राट का नियन्त्रण मन्दिरों की व्यवस्था पर था और सम्राट मन्दिरों की आय-व्यय की भी जाँच करता था। सम्राटों ने ऐसे नियम बनाये थे जिनसे वे देश के समस्त अर्थिक जीवन में हस्तक्षेप करने लगे थे।

(1) **किसानों की दशा**—बेबिलोनिया की भूमि बहुत उपजाऊ थी। भूमि के मालिक प्रायः राजा, मन्दिरों के पुजारी, धनी व्यापारी थे। अतः वे भूमि को किसानों को पट्टे पर देते थे। किसान को एक तिहाई भाग से लेकर आधा भाग तक का अंश भूमिपति को देना पड़ता था। कृषकों, चरवाहों तथा भूमिपतियों आदि के आपसी झगड़ों का फैसला राजकीय नियमों के अनुसार होता था।

(2) **सिंचाई**—कृषि प्रधान देश में भूमि की समुचित व्यवस्था करना और सिंचाई करना प्रायः शासक का कर्त्तव्य होता है। इसी कारण प्रायः सभी सम्राटों ने नई नहरें बनवाई या पुरानी नहरों का जीर्णोद्धार करवाया। राजकीय कर्मचारी भी अपने क्षेत्र की नहरों की मरम्मत इत्यादि करवाते थे और इस कार्य के लिये नहरों के पास रहने वाले नागरिकों से सहायता लेते थे। नागरिकों को नहरों में मछली पकड़ने का अधिकार दिया जाता था; जो स्थल नहरों की सतह से ऊँचे होते थे वहाँ सिंचाई की कल का उपयोग किया जाता था जो भारत की ढेकली के समान थी। सिंचाई के लिये कई प्रकार के यन्त्र भी उपयोग में आते थे जिन्हें चलाने के लिये पशु लगाये जाते थे।

खेतों को जोतने के लिये एक विशेष ढंग के हल का प्रयोग किया जाता था जो अब भी सीरिया में प्रचलित है।

(3) उपज—अनाज, खजूर, अंगूर और जैतून आदि की उपज होती थी। वृक्षों की छाल से रस्सियाँ बनाई जाती थीं। खजूर की उपज के लिये सरल नियम बनाये गये थे।

(4) पशु—बेबिलोनिया निवासियों का दूसरा प्रमुख धन्धा पशुपालन था। सम्राट स्वयं बहुत से पशु पालता था और प्रजा के पशुओं पर कर लगाता था। राजकीय पशु-निरीक्षक अपने कार्यों का विवरण गवर्नर के पास भेजा करते थे।

(5) उद्योग धन्धे—पशुओं से काफी मात्रा में ऊन, खाल और चमड़ा इत्यादि प्राप्त होता था। ऊनी वस्त्रों का प्रयोग बहुत से व्यक्ति करते थे। काँसे के औजार और बर्तन बनने लगे थे। लोहे का प्रयोग भली भाँति ज्ञात नहीं था। सोना, चाँदी और ताँबा आदि धातुएँ अलंकारों आदि के बनाने के काम आती थीं। चमड़े की वस्तुओं का निर्माण और फर्नीचर आदि बनाने का काम भी प्रचलित था।

(6) यातायात—बेबिलोनिया में नहरों से सिंचाई तो की ही जाती थी साथ ही नहरों का उपयोग यातायात के लिये भी किया जाता था। बड़े-बड़े लकड़ी के लट्ठों को पशुओं की खाल से बाँधकर उनसे नाव का काम लिया जाता था। आवश्यकतानुसार इन्हें बेच भी लिया जाता था।

थल मार्ग से काफिलों द्वारा माल बाहर से लाया और ले जाया जाता था।

(7) व्यापार—बेबिलोनिया के व्यापारी दूर-दूर देशों में जाकर व्यापार करते थे। ये अपने सामान को बड़ी-बड़ी गाठों में भरकर अन्य देशों को भेजते थे। गाठों की रस्सियों पर मिट्टी की पट्टियाँ रहती थीं और उन पर व्यापारियों के नाम लिखे रहते थे। माल ले जाने का काम सौदागर करते थे जो गधों के काफिलों पर माल ले जाया करते थे। व्यापारी और सौदागर बिक्री के लाभ को प्रायः आधा-आधा बाँट लेते थे।

वस्तुओं की खरीदारी में चाँदी के टुकड़े दिये जाते थे। ऋण लेने की भी प्रथा थी और सूद प्रायः २० प्रतिशत वार्षिक रहता था। सोने का मूल्य चाँदी से बारह या पन्द्रह गुना अधिक रहता था।

धर्म एवं धार्मिक विश्वास

(1) धर्म का स्वरूप और देवता—बेबिलोनिया के निवासियों ने सुमेरिया वालों के धर्म में अनेक परिवर्तन किये। उनके प्रमुख देवताओं के स्थान पर नवीन देव-

ताओं को मान्यता दी गई। मर्दुक जो पहले एक स्थानीय देवता माना जाता था अब सारे देश में पूजा जाने लगा। सुमेरियन लोगों में एनेलिल का स्थान सबसे ऊँचा था परन्तु बेबिलोनिया में यह स्थान मर्दुक को मिला। राज दरबार में मर्दुक की प्रधानता थी यद्यपि साधारण जनता सुमेरियन देवताओं की भी पूजा करती थी। इसका प्रमाण 'एनुमाएलिश' नामक रचना से मिलता है। इसके मूल कथानक में मुख्य पात्र बेबिलोन का देवता मर्दुक नहीं था बल्कि निप्पुर का देवता एनेलिल था। प्रारम्भिक अवस्था में मर्दुक का सम्बन्ध कृषि के देवता से था परन्तु 'एनुमाएलिश' में उसे तूफान का देवता दिखाया गया है जो पृथ्वी और आकाश को अलग करता है। जब बेबिलोन नगर देश का राजनीतिक और सांस्कृतिक केन्द्र बना तो उसमें एनेलिल का स्थान मर्दुक को दे दिया गया।

'एनुमाएलिश' में विश्व की उत्पत्ति का हाल बताया गया है। इसके अनुसार प्रारम्भ में चारों ओर केवल जल ही जल था और इस जल समूह से लामू और लहमू नाम के दो देवता उत्पन्न हुये जिन्होंने अंशार, किन्नर और अनु को जन्म दिया। अनु ने नदिमुत को जिसका नाम इया अथवा एनकी था, को उत्पन्न किया। उपर्युक्त देवताओं की उत्पत्ति के कारण जल समूह को बहुत कष्ट हुआ और उनका नाश करने के लिये अप्सू और निम्मू (मीठा जल और अज्ञात जल) ने उन पर आक्रमण किया लेकिन इया ने मंत्र-जल से निम्मू को कैद कर लिया और अप्सू का वध करके उस पर अपना महल बनाया। इस प्रकार विजयी होकर देवताओं ने एनकी के पुत्र मर्दुक को जन्म दिया। जब मर्दुक देवताओं के समाज में पल रहा था, तियामत (समुद्र) ने अपने पति किंग्सू को देवताओं पर आक्रमण करने के लिये भेजा और देवताओं ने अनु को समुद्र का मुकाबला करने के लिये सेना लेकर रवाना किया। परन्तु जब वह असफल रहा तब मर्दुक को नेता बनाया गया। मर्दुक ने दोनों राक्षसों किंग्सू और तियामत को मार डाला। तियामत के शरीर के आधे भाग से आकाश बनाया गया जहाँ देवताओं के निवास बने। मर्दुक ने इस विजय के उपरांत देवताओं के समूह का आंतरिक संगठन किया। सूर्य और चंद्रमा का स्थान और मार्ग निश्चित करके कलेण्डर का निर्माण किया। युद्ध में देवताओं को काफी मेहनत करनी पड़ी थी अतः उसने देवताओं की सेवा के लिये किंग्सू के शरीर से मनुष्य बनाये और देवताओं को विभिन्न वर्गों में बाँटकर उन्हें आकाश और पृथ्वी पर अलग-अलग स्थानों में निवास दिया।

पश्चिम सेमाइटों ने मर्दुक के साथ-साथ और भी कई देवी, देवताओं को देव-समाज का सदस्य बनाया। ईश्वर और तामुज, मर्दुक के अतिरिक्त, बेबिलोनिया के देव-समूह के सर्वोच्च देवता माने जाते थे। अन्य देवताओं में सूर्य और चन्द्रमा का भी स्थान था।

उपर्युक्त वर्गीकरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि बेबिलोनियनों का देव-समूह सुमेरियन देव-समूह का ही परिवर्तित रूप था। देवताओं के व्यक्तित्व के सम्बंध में भी दोनों की धारणा एक-सी थी। जिस तरह मनुष्यों के घर और नौकर होते हैं उसी प्रकार देवताओं के मन्दिर और पुजारी थे। देवताओं की स्तुति के लिए मन्दिर बनाये जाते थे। पुरोहित मन्दिरों की व्यवस्था करते थे। समाज में पुरोहित सम्माननीय पद पर सुशोभित थे।

(2) धर्म का उद्देश्य - बेबिलोनिया वालों का धर्म आध्यात्मिक या नैतिक नहीं कहा जा सकता। उसमें स्वार्थ, भय दो मूल भावनाएँ वर्तमान थीं। व्यापारी और किसान देवताओं की पूजा आर्थिक लाभ के लिये करते थे। जब वे देवताओं के सामने अपने पापों के लिये पश्चाताप करते थे तो उससे भी सांसारिक सुखों के प्राप्त करने की भावना होती थी। बेबिलोनियन धर्म के अन्तर में दूसरी भावना भूत-प्रेतों का भय था। उन्हीं से त्राण पाने के लिये पूजा पर बल दिया जाता था।

(3) परलोकवाद—बेबिलोनिया के निवासियों की कल्पना परलोक के विषय में अनोखी थी। वे मानते थे कि मृत्यु के उपरान्त मनुष्य के शरीर को कीड़े चाट जाते हैं। पापियों को परलोक में कष्ट होता है और जिन मृतकों के जीवित सम्बन्धी उनकी समाधि पर भोजन और जल आदि चढ़ाते हैं वे परलोक में शान्ति प्राप्त करते हैं।

(4) पुजारियों का स्थान—भूत-प्रेतों से बचने के लिये जादू-टोना ही एकमात्र साधन समझा जाता था और पुजारियों की कृपा से ही जादू-टोने में सफलता प्राप्त हो सकती थी। इसलिये बेबिलोनिया के धर्म में पुजारियों का महत्व अधिक बढ़ गया था। सुमेरियन युग में पुजारी ही प्रायः राजा बन जाते थे परन्तु बेबिलोनियन सम्राटों ने पुजारियों के विशेषाधिकारों पर उसी प्रकार नियन्त्रण किया जिस प्रकार अन्य पदाधिकारियों पर किया गया था। पुजारियों का एक वर्ग देवज्ञों का था जो शकुन विचारने का काम करता था। देवज्ञ भेड़ को देवता के नाम से बलि चढ़ाते थे और वह देवता भेड़ के लिवर पर आश्चर्यजनक चिह्नों द्वारा भविष्य का संकेत कर देता था। इन चिह्नों को देवज्ञ ही पढ़ सकते थे और यह विश्वास किया जाता है कि क्यूनीफार्म लिपि में देवज्ञ इनका अर्थ लिख देते थे। पुजारियों का एक और वर्ग भी था जो नक्षत्रों और ग्रहों के आधार पर राज्य के लिये शुभ और अशुभ फल बताता था। यही विद्या आगे चलकर ज्योतिष विद्या के नाम से प्रसिद्ध हुई। सम्राट चन्द्रमा के आधार पर मास के प्रथम दिन को निश्चित करता था और सौर वर्ष के साथ चन्द्र वर्ष को जोड़ने के लिये अतिरिक्त मास की गणना करता था। ज्योतिषी वर्ष का नामकरण करते थे। बेबिलोनियन वर्षों के नाम प्रायः धार्मिक महत्व के थे। इस प्रकार धर्म और ज्योतिष का घनिष्ठ सम्बन्ध इनमें स्थापित किया गया था।

दर्शन

बेबिलोनिया के दर्शन को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(1) राजनीतिक दर्शन

(2) नैतिक दर्शन

(1) राजनीतिक दर्शन (राष्ट्र के एकीकरण का कारण)—सुमेरिया वालों ने राष्ट्र की एकता का सिद्धान्त इस आधार पर बनाया था कि देवताओं की संसद किसी भी देवता को अपना राजा निर्वाचित कर सकती है और वही देवता राजा को अपने नगर-राज्य का प्रतिनिधि बनाता था। इस सिद्धांत से राजनीतिक एकता को बहुत प्रोत्साहन मिला। कोई भी राजा चाहे जिस उपाय से राज्य को हस्तगत कर लेता था और उसे 'एनेलिल' और देवराज का प्रतिनिधि मान लिया जाता था। देवराज मर्दुक था जो बेबिलोनिया वालों का देवता था। हम्मूराबी की मेसोपोटामिया पर सफलता के विषय में भी यही स्वीकार किया गया कि देव-समाज ने बेबिलोन नगर के देवता मर्दुक को देवराज बनाया और हम्मूराबी पृथ्वी पर मर्दुक का प्रतिनिधि है। हम्मूराबी ने स्वयं अपनी विधि-संहिता में यह स्वीकार किया है। उसने विधि-संहिता की प्रस्तावना में लिखा है—

"जब अनुन्नाकी के राजा महान् अनु और आकाश तथा पृथ्वी के स्वामी एनेलिल ने, जो देश के भाग्य का निर्णय करते हैं, एनकी के ज्येष्ठ पुत्र मर्दुक को एनेलिल के सकल जन-सम्बन्धी (प्रशासनात्मक) कार्यों को निष्पादित करने के लिये नियुक्त किया,

उसे इगीगी में महान् बनाया जिसका प्रशंसित नाम बेबिलोन है और जिसको विश्व में महान् और आश्चर्यजनक बनाया गया है,

और इसमें उसके लिए चिरस्थायी राजतन्त्र स्थापित किया, जिसकी नींव पृथ्वी और आकाश की नींव की तरह दृढ़ है,

तब अनु और एनेलिल ने मुझे हम्मूराबी को, जो आज्ञापालक और ईश्वर भीरु राजा है, जनकल्याण के लिये, देश में न्याय स्थापित करने के लिये, कुकर्मियों और पातकियों को नष्ट करने के लिये तथा सबलों से दुर्बलों की रक्षा के लिये नियुक्त किया।"

(श्री राम गोयल द्वारा लिखित 'विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ' से उद्धृत)

हम्मूराबी की इस नीति से उसे न्याय और व्यवस्था स्थापित करने में बहुत सहायता मिली।

राष्ट्र-राज्य का यह सिद्धांत अक्कादियों और सेमाईटों एवं उरों के समय में ही बहुत प्रसिद्ध हो चुका था। बेबिलोनिया के निवासी शासक अपनी स्थिति को पूरी

तरह जानते थे कि वे बेबिलोनिया में आक्रमणकारी के रूप में ही आये थे। अतः विशाल जातियों के देश में नियन्त्रण रखने में इस सिद्धांत द्वारा उन्हें बहुत सहायता मिली।

बेबिलोनिया के लोग मानते थे कि राजा देवताओं के समान पवित्र, दयालु, बुद्धिमान और न्याय-प्रिय होता है। ज्यों-ज्यों जनता में ज्योतिष ज्ञान के प्रति प्रेम बढ़ा त्यों-त्यों राजा को निरंकुश होने में और भी सहायता मिली क्योंकि जनता को यह विश्वास हो गया था कि संसार-चक्र भाग्य के बन्धन से बड़ी कठोरता के साथ बँधा हुआ है। अत: देवताओं का प्रतिनिधि राजा यदि देवताओं के समान ही कठोर है तब भी वह देवताओं की इच्छा-मात्र है।

(2) नैतिक दर्शन—बेबिलोनिया साम्राज्य में न्याय के लिए दण्ड भोगने का सिद्धांत धीरे-धीरे बढ़ने लगा था। हम्मूराबी की विधि-संहिता और सामाजिक व्यवस्था ने इस सिद्धांत को अधिक लोक-प्रिय बनाया और प्राचीन सिद्धान्त, न्याय देवताओं की कृपा है, अमान्य होने लगा। बेबिलोनियन विचारकों ने यह भी सोचना आरम्भ कर दिया कि मृत्यु का कारण क्या है या सदाचारी व्यक्तियों को क्यों कष्ट उठाना पड़ता है?

प्राचीनकाल में अच्छाई और बुराई दोनों को ही देवताओं की कृपा समझा जाता था परन्तु बेबिलोनिया की विधि में अधिकारों की नई व्यवस्था की व्याख्या में इस प्रश्न पर विशेष ध्यान दिया गया। गिलामिश ने एक महाकाव्य इसी आधार पर बनाया है। उसमें लिखा है कि जब जनता एरेक के शासक गिलगामेश के अत्याचारों से दुखी हो गई तो उसने देवताओं से प्रार्थना करके एनकीडू का निर्माण कराया। प्रतिद्वन्दी होने के बजाय एनकीडू गिलगामेश का मित्र बन गया और दोनों ने मिलकर बहुत से महान कार्य किये जिनमें एलम के दैत्य हुमबाबा का वध करना भी एक महान कार्य था।

ईश्तर नाम की देवी गिलगामेश से प्रेम करने लगी थी। गिलगामेश ने उसके प्रेम-प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। इस पर ईश्तर ने स्वर्ग के बैल को उसे मारने भेजा परन्तु दोनों वीरों ने उस बैल को भी मार डाला। इस विजय से दोनों वीरों की शक्ति असीमित मालूम होने लगी परन्तु उसी रात को एनकीडू ने यह स्वप्न देखा कि देवताओं ने स्वर्गीय बैल को मारने के अपराध में उसकी मृत्यु की घोषणा की है। एनकीडू शीघ्र बीमार पड़ा और मर गया। गिलगामेश यद्यपि जीवित रहा मगर उसे विश्वास हो गया कि एक न एक दिन मृत्यु अवश्य होगी। इसीलिये उसने निश्चय किया कि मरा जाय तो इस प्रकार कि जिससे मरने पर ख्याति बनी रहे। अतः उसने जीवन का लक्ष्य अमरत्व प्राप्त करना बनाया और अमर मानव

'ज्युसुद्र' के पास गया। जब वह जा रहा था तो रास्ते में समुद्र की गहराइयों में उसे मधुशाला मिली जिसने उसे समझाया कि तुम अपना पेट भरो, दिन-रात ऐश करो, जो आदमी का भाग्य है, मृत्यु तो देवताओं का अधिकार है। परन्तु गिलगामेश ने उसकी कोई परवाह न की और वह आगे बढ़ता ही रहा। जब उसकी भेंट 'ज्युसुद्र' से हुई तब उसने बतलाया कि उसे अमरत्व बड़ी विषम अवस्था में प्राप्त हुआ था। उसने बताया कि एक बार देवताओं ने मनुष्यों का नाश करने के लिए घोर वृष्टि की, परन्तु 'ज्युसुद्र' को देवताओं को इस करतूत की सूचना पहले से ही 'एनकी' ने दे दी थी। उसने एक बड़ी नाव बनवाई और अपनी स्त्री तथा कई चेतन वस्तुओं के जोड़ों को बचा लिया। सात दिन तक प्रलय वृष्टि होती रही तब देवताओं को अपनी करनी पर दुःख हुआ। जल-वृष्टि रुकने पर 'ज्युसुद्र' ने देवताओं का बलि दी। देवता भूखे तो थे ही बलि भाग पर टूट पड़े और 'ज्युसुद्र' से सन्तुष्ट होकर उसे पृथ्वी पर जीवन की रक्षा करने के पुरस्कार में अमरत्व प्रदान किया। इस विषम परिस्थिति को सुनकर गिलगामेश निराश हो गया। इसी अवस्था में 'ज्युसुद्र' की पत्नी ने अपने पति से प्रार्थना की और पति ने उसे समुद्र की तह में पैदा होने वाले एक पौधे के बारे में बताया। इस पौधे को बड़ी कठिनाई से प्राप्त करके गिलगामेश समुद्र के बाहर आया। वह जब एक तालाब के किनारे नहा रहा था और पौधा किनारे पर रक्खा था तो उसी समय एक साँप उस पौधे को चुराकर खा गया। इसीलिये साँप तो अमर हो गये और गिलगामेश के समक्ष मृत्यु की समस्या बनी रही। अन्त में मरकर वह परलोक के न्यायाधीशों में एक बना।

बेबिलोनियन युग में यह विश्वास किया जाने लगा था कि न्याय पाना मनुष्य का अधिकार है परन्तु यह चिन्ता उस समय लोगों को अधिक हुई कि जो लोग अच्छे काम करते हैं उन्हें क्यों कष्ट होता है ? देवताओं को उन्हें कष्टों से अवश्य बचाना चाहिये। इस समस्या पर विचार करने वाली रचनाओं में एक रचना 'लुडलुलबेल नेमकी' बड़ी प्रसिद्ध है। इस कविता का नायक अत्यन्त सदाचारी व्यक्ति है परन्तु उसको बहुत कष्ट मिलते हैं। देवी-देवताओं ने उसका त्याग कर दिया है। इस समस्या के दो समाधान उस रचना में दिये गये हैं--

1. बौद्धिक 2. भावात्मक

बौद्धिक समाधान में कहा गया है कि मनुष्य का स्थान देवताओं से नीचा है। वह देवताओं के रहस्य को नहीं समझ सकता और न उसे यह अधिकार है कि देवताओं पर किसी प्रकार क्रोध करे।

भावात्मक उत्तर में कहा गया है कि मनुष्य देवताओं में विश्वास करे। वह उस पर अवश्य कृपा करेंगे। कथानक के अन्त में नायक को कष्टों से छुटकारा मिल जाता है।

भाषा एवं साहित्य

इतिहासकारों का विचार है कि यहाँ की भाषा की उत्पत्ति सुमेरी और अक्कादी भाषाओं के मेल से हुई है। आरम्भिक अवस्था में सुमेरीय लिपि को अपनाया गया फिर बाद से वर्णमाला तथा लिपि में समुचित परिवर्तन किये गये। बाबुली वर्णमाला में 3000 चिह्न थे जिनके द्वारा धार्मिक शिक्षा, गणित और ज्योतिष का ज्ञान गुरु मन्दिरों में दिया जाता था। पुरोहित ही अध्यापक के पद पर कार्य करते थे। यहाँ के निवासियों ने भाषा की उन्नति के लिये व्याकरण और शब्द-कोषों का निर्माण किया था। जो थोड़ी बहुत खोज की जा सकी है उससे ज्ञात होता है कि यहाँ के लोग मिट्टी के भीगे हुये चौकोर टुकड़ों पर सेठे की कलम से सुन्दर लेख लिखते थे और यही टुकड़े पकाकर ठोस कर लिये जाते थे जिन्हें क्रमानुसार लगाकर महलों या मन्दिरों में घड़ों के अन्दर रख दिया जाता था।

बाबुली साहित्य निर्माण के आधार पर अधिकतर ऐतिहासिक घटनाएँ, कानूनी व्याख्याएँ और उद्योग-धन्धे हैं। देवताओं की प्रशंसा में लिखे हुये कुछ गीत भी प्राप्त हुये हैं। सम्राटों की विजय-कहानियाँ, नगरों की महत्वपूर्ण घटनाएँ और मन्दिरों की गौरव-गाथाएँ कई जगह प्राप्त हुई हैं। गिलगामेश के महाकाव्य में शुद्ध साहित्य निर्माण के दर्शन होते हैं। इस महाकाव्य के अतिरिक्त कुछ आख्यानों का भी पता लगता है जिसमें 'ईश्तर का पताला अवतरण', सुमेरियन कथा का रूपान्तर प्रतीत होता है। 'भाग्य लेख', 'एटन एड़रिये की कथा' और 'अदप मछुए' की कथा प्राप्त होती हैं।

बेबिलोनिया के धार्मिक साहित्य में पूजा-गीतों, भूत-प्रेतों के मनाने के लिये मन्त्रों और देव-स्तोत्रों को लिया जा सकता है। बेबिलोनियन गीतों में भक्त अपने पापों को स्वीकार करके हृदयस्पर्शी शब्दों में देवताओं से क्षमा-याचना करते हैं।

लौकिक साहित्य का ज्ञान पुरातत्व की खोजों से नहीं के बराबर होता है। बेबिलोनिया निवासी लिपि की साधना को व्यापार का साधन अधिक समझते थे। लिपि की दक्षता प्राप्त करने के लिये 300 शब्द-खण्डों को कंठस्थ करते थे। लिपियों को सिखलाने का कार्य मन्दिर की पाठशालाओं में होता था।

विज्ञान तथा ज्योतिष

यूनानियों ने ज्योतिष विद्या का अध्ययन सबसे पहले बाबुली गुरुओं से किया। अरस्तू बड़े गर्व के साथ लिखता है—"मैंने बेबिलोनिया की शरण में ज्ञान की ज्योति प्राप्त की है।"

"I have got a draught of knowledge at the banks of the river of wisdom of Babylonia."

—Aristotle.

यहूदी पैगम्बर इसाया, जर्मिया और दानियाल ने भी बेबिलोनिया वालों के ज्ञान और विद्वता की प्रशंसा की है। कुछ विद्वानों के अनुसार बेबिलोनिया वाले अपने युग के सबसे बड़े ज्योतिष और गणित के ज्ञाता थे। इसी कारण कुछ इतिहासकारों ने बेबिलोनिया को ही ज्योतिष विद्या की जन्म-भूमि कहा है।

बेबिलोनिया के निवासियों की सबसे अधिक रुचि ज्योतिष में थी। इन्होंने नक्षत्रों का घोर अध्ययन करके उनकी चाल का पता लगाया और नक्षत्रों को अलग-अलग नाम दिये। इन्होंने आकाश के पूरे वृत्त को नक्षत्रों में विभाजित करके सूर्य की चाल को 12 राशियों के अन्तर्गत स्पष्ट किया। सम्भवतः वे मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुम्भ और मीन राशियों को भली-भाँति जानते थे। खगोल विद्या को वे विश्व की स्वामिनी मानते थे। इसीलिये लगभग 2000 ई० पू० में उन्होंने शुक्र की चाल, उदय और अस्त का ठीक-ठीक पता लगा लिया था। राशियों के आधार पर ही 12 महीने बनाये गये थे और इनका वर्ष 354 दिन का होता था। मास के चार सप्ताह, दिन के बारह घन्टे और घन्टे के तीस मिनट भी इसकी गणना में आते थे। इसी आधार पर आधुनिक घड़ी के चक्र का विभाजन घन्टे और मिनट में किया गया है। घन्टे को 'बेयर' कहा जाता था। हर चौथे या पाँचवें वर्ष सूर्य और चन्द्र वर्ष का मेल मिलाने के लिये एक अतिरिक्त मास जोड़ दिया जाता था। इनके वर्ष में 6 महीने 30 दिनों के और 6 महीने 29 दिन के होते थे। लन्दन के अजायब घर में एक बाबुली शिला-लेख है जिसमें नक्षत्रों और राशियों के नाम तथा आकार दिये हुये हैं। सूर्य और चन्द्र की चाल से उन्होंने यह भी पता लगा लिया था कि 18 वर्ष 10 दिन के बाद चन्द्र-ग्रहण ठीक एक ही क्रम में पड़ते हैं। ध्रुव तारों की भी एक सूची शायद बेबिलोनिया वालों ने तैयार कर ली थी जिसका उपयोग कालान्तर में यूनानियों ने किया। प्रत्येक ग्रह की परिक्रमा का काल एवं उसकी सूर्य से दूरी का ज्ञान भी इन विद्वानों को था। दिन में सूर्य की चाल से और रात में ग्रहों की चाल से समय का ठीक-ठीक पता लगाया जाता था। सूक्ष्मतया जल घड़ी का उपयोग यूनानियों ने बाबुल के निवासियों से ही सीखा था। कुछ पुरातत्वों की खुदाई में दुर्बीनों और खुर्दबीनों के अंश मिले हैं जिससे यह पता लगता है कि इन दोनों यन्त्रों के उपयोग तथा ग्रहों की ऊँचाई का पता लगाने के लिए एस्ट्रोलेब नामक यन्त्र का ज्ञान भी इन लोगों को था। बाबुल वाले भी हिन्दुओं की तरह ग्रहों तथा नक्षत्रों के आधार पर जन्म-पत्र और वर्ष-फल आदि बनाते थे। ऋतु आदि की सही-सही भविष्य-वाणी भी यह लोग

कर सकते थे। रोम के सम्राटों ने बेबिलोनिया के वैज्ञानिकों और विद्वानों को आदरणीय नाम 'खाल्दी' दिया था।

हम्मूराबी की विधि-संहिता से यह ज्ञात होता है कि बेबिलोनिया में चिकित्सक वर्ग का एक विशिष्ट स्थान था। यद्यपि बेबिलोनिया के निवासी समझते थे कि रोग का कारण देवताओं का प्रकोप है और रोगों के निवारण के लिये जादू-टोने, मन्त्र, ताबीज आदि पर अधिक विश्वास किया जाता था परन्तु चिकित्सक वर्ग भी वहाँ विद्यमान था। कोई-कोई लोग इस प्रकार की दवाओं का प्रयोग करते थे जिनसे रोग का कारण, रोगी का प्रेत, डरकर भाग जाय।

बेबिलोनिया के निवासी व्यापारी होने के कारण व्यावहारिक विज्ञान में बहुत रुचि लेते थे उनकी गणना के अंक और ढंग दशमलव और षष्टिक विधियों पर आधारित थे। वृत्त को उन्होंने 360 अंशों में विभाजित करना सीख लिया था।

कला

भवन-निर्माण कला—कला के क्षेत्र में बेबिलोनिया निवासी मिस्र वालों से आगे नहीं थे। इसका कारण सम्भवतः यह था कि उस समय पत्थरों का अभाव था और ईंटों के बने हुये भवन प्रायः 50 वर्ष के अन्दर धूल-धूसरित हो जाते थे। यही कारण था कि हम्मूराबी ने अपनी विधि-संहिता में मकान गिर जाने का दायित्व उसके बनाने वाले कारीगरों पर डाला था। इस युग में मकान प्रायः एक मंजिले होते थे, छतें कच्ची होती थीं जो गर्मी में ऊपर सोने के काम में आती थीं। कुछ चित्रों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सुमेरियनों की भाँति बेबिलोनिया वाले भवन-निर्माण कला में पटु नहीं थे। यही कारण है कि बेबिलोनिया वालों के भवन बहुत कम मिले हैं।

(1) स्थापत्य कला—भवन-निर्माण कला की भाँति स्थापत्य कला के भी बहुत कम नमूने मिलते हैं। जो थोड़ी बहुत मूर्त्तियाँ और रिलीफ चित्र प्राप्त हुये हैं उनसे ज्ञात होता है कि बेबिलोन वालों को पत्थर के तराशने में कमाल हासिल था। साधारण तौर पर ईंटों को जोड़ने के लिए मिट्टी के गारे का उपयोग किया जाता था। नक्शों इत्यादि में वे तरह-तरह के सफेद, नीले, पीले, खाकी और काले रंगों का उपयोग करते थे। खुर्दबीन (Microscope) की सहायता से वे काँच पर कारीगरी करते थे। लोहे के और काँसे के अस्त्र-शस्त्र बनाते थे और सोना चाँदी आदि की ढलाई करते थे।

(2) **चित्रकला**—बेबिलोनिया के निवासियों के चित्रों में मनुष्य की आकृतियाँ एक-सी दिखाई देती हैं। दासों और शासकों में केवल वस्त्रों का अन्तर है। ऐसा प्रतीत होता है कि बेबिलोनियावासियों की चित्रकला स्वतन्त्र रूप से विकसित नहीं हो सकी। मन्दिरों की दीवालों और मूर्तियों पर भी वे चित्रकारी करते थे परन्तु मिस्र और क्रीट की तुलना में उनका कोई स्थान नहीं ठहरता।

(3) **मुद्रा-निर्माण कला**—पुरातत्वों के उत्खनन से ज्ञात होता है कि सम्राट से लेकर साधारण नागरिक तक अपनी व्यक्तिगत मुद्राएँ प्रचलित करते थे। परन्तु यह मुद्राएँ सुमेरियनों के समान सुन्दर और आकर्षक नहीं थीं।

(4) **संगीत कला** - बेबिलोनिया के निवासी संगीत बहुत पसन्द करते थे। इसी कारण घरों में और बड़े-बड़े भोजों में गाने-बजाने का प्रबन्ध विशिष्ट रूप से होता था। बाजों में वीणा, खंजरी, मजीरा, तुरही, मशक और बाँसुरी अधिक प्रयोग में आते थे।

(5) **अन्य कलाएँ**—धनाढ्य लोगों के घर चमकीले पत्थरों, रंगीन पर्दों और बहुमूल्य फर्नीचर, मुलायम कम्बलों आदि से सजे होते थे। ये लोग गहरे रंगों का और जरी के कपड़ों का अधिक प्रयोग करते थे। स्त्रियाँ आभूषण पहनती थीं परन्तु यह आभूषण कला की दृष्टि से अधिक उच्चकोटि के नहीं होते थे।

कला के कुछ नमूने

(1) **बेलु-मठ की सिग्गुरात या जुगरत इमारत**—बेलु-मठ का क्षेत्रफल दो फर्लाङ्ग था। इस मठ की प्रमुख इमारत सिग्गुरात के नाम से प्रसिद्ध थी जो पक्की ईंटों की बनी हुई थी और जिसकी चोटी पर एक देव-मन्दिर था। इस इमारत के विषय में स्ट्रैबो ने लिखा है—

"यह सिग्गुरात 606 फुट 9 इंच ऊँचा था। नीचे से इसका रकबा 200 × 200 गज था। इसमें नीचे-ऊपर आठ मंजिलें थीं। ऊपर जाने के लिये बाहर से एक गोल चक्करदार जीना बना हुआ था। चोटी पर बना हुआ देव-मन्दिर अत्यन्त भव्य था। यह अटूट धन-सम्पत्ति से परिपूर्ण था।"

यूनानी इतिहासकार डायडोरस ने लिखा है—**"मन्दिर में तीन ठोस सोने की मूर्तियाँ थीं। एक 'बेल' की, दूसरी 'बेलखिस' और तीसरी 'इश्तर' की। बेलखिस की मूर्ति के समक्ष सोने के पत्तरों में मढ़े हुये दो बड़े-बड़े सिंह थे। सिंह-मूर्तियों के सामने दो ठोस चाँदी के बड़े-बड़े अजगर थे जिनमें एक-एक का वजन तीस-तीस मन था। मूर्तियों के सामने सोने की चादर से मढ़ी हुई**

40 फुट लम्बी और 15 फुट चौड़ी एक वेदी थी जिसके ऊपर ठोस सोने के दो बड़े-बड़े बर्तन रखे थे जिनमें से हर एक का वजन तीस मन था। हर मूर्ति के सामने एक-एक धूप जलाने का बर्तन और एक-एक सुनहला प्याला रखा था।"

[विशम्भर पाँडे द्वारा लिखित 'विश्व का सांस्कृतिक इतिहास' (मेसोपोटामिया) से उद्धृत]

कला की दृष्टि से यह इमारत मिस्र की इमारतों की भाँति सुन्दर नहीं है। इसकी तुलना मिस्र के पिरामिड या भारत के किसी श्रेष्ठ मन्दिर से नहीं की जा सकती।

(2) सम्राट नेबुचडरेज्जर का महल तथा हैंगिङ्ग गार्डन—सम्राट नेबुचडरेज्जर का महल तथा हैंगिग गार्डन इस युग की कला के सर्वोत्कृष्ट नमूने हैं। नेबुचडरेज्जर का महल अत्यन्त विशाल था। महल के प्रवेश द्वार पर पत्थर के सिंह की मूर्ति बनी हुई थी। इस महल के समीप एक झूला बगीचा बनवाया गया था जिसकी कारीगरी से अचम्भित होकर यूनानियों ने इसे संसार की सात आश्चर्यजनक कृतियों में स्थान दिया था। यह बगीचा उसने खास बेगम के लिये बनवाया था जो मिडिस के सम्राट की लड़की थी और बेबिलोनिया की गर्मी को नहीं सहन कर सकती थी। इस बगीचे के विषय में विल ड्यूराण्ट ने लिखा है—

"Here seventy five feet above the ground in the cool shade of tall trees and surrounded by erotic shrubs and fragrant flowers the ladies of the royal harem walked unveiled, secure from the common eye while in the plaints and street, below the common man and woman ploughed wore built carried burdens and reproduced their kind."

— Will Durant.

इस बगीचे में इंजन द्वारा पानी चढ़ाया जाता था। यह बगीचा आज भी संसार की सात आश्चर्यजनक कृतियों में से एक है।

बेबिलोनिया की कला के विषय में एक बात का उल्लेख कर देना अति आवश्यक है। बहुत से विद्वानों ने बेबिलोनिया की कला को भारत और मिस्र की कला की कोटि में रखने का प्रयास किया है परन्तु सत्य तो यह है कि बेबिलोनिया की कला में न तो भारतीय कला की-सी परिपक्वता है और न मिस्र की कला की तरह का स्थायित्व। विल ड्यूराण्ट महोदय ने तो बेबिलोनिया की सभ्यता को भारत, मिस्र और चीन की सभ्यता की कोटि में नहीं रखा है। उन्होंने लिखा है—"बेबिलोनिया की सभ्यतायें

मानवता का वह कल्याण न था जो मिस्र में था, भारतीय सभ्यता की-सी परिवर्तन-शीलता और गहनता न थी और चीन की दृढ़ता और गम्भीरता न थी।"

"The civilization of Babylonia was not as fruitful for humanity as Egypt's not as varied and profound as India's not, as subtle and mature as China's."

—Will Durant.

सारांश

प्राचीनकाल में बेबिलोनिया संस्कृति का प्रमुख केन्द्र था। जर्मन विद्वानों के अनुसार यहाँ की सभ्यता का उचित मूल्यांकन नहीं हुआ है। बेबिलोन के सम्राटों में सम्राट हम्मूराबी का नाम बहुत प्रसिद्ध है। इसके युग में कृषि और अन्य क्षेत्रों में बहुत उन्नति हुई। एक विधि-संहिता का निर्माण भी किया गया जिसका विशेष महत्व है। बावुल के द्वितीय राजवंश (खाल्दी युग) में भी कला और संस्कृति की विशेष उन्नति हुई। 539 ई० पू० में बेबिलोन का पतन हुआ।

बेबिलोनियन समाज को तीन वर्गों में बाँटा गया था—उच्च वर्ग (अवीलम), मध्यम वर्ग (मुस्केनम्), दास वर्ग। स्त्रियों की दशा सुमेर की सभ्यता की स्त्रियों से अधिक अच्छी नहीं कही जा सकती थी। उच्च वर्ग की स्त्रियों में पर्दे का प्रयोग किया जाता था। मृतक को जलाया या गाड़ा जा सकता है।

कृषि एवं व्यापार, आय के मुख्य साधन थे। कृषि के लिये सिंचाई की सुन्दर व्यवस्था की गई थी। अन्य उद्योग-धन्धों जैसे पशुपालन, वस्त्र बुनना आदि का प्रचलन भी था।

इनके धार्मिक विश्वास सुमेर के लोगों के धार्मिक विश्वासों से बहुत कुछ मिलते हुये थे। पुजारी वर्ग का अब उतना महत्व नहीं था जितना सुमेर सभ्यता के काल में था। धर्म का उद्देश्य भौतिक उन्नति था। यहाँ के लोगों का राजनीतिक दर्शन राष्ट्रीय एकता के सिद्धान्त पर आधारित था। देवताओं को बहुत ऊँचा स्थान दिया गया था और देवताओं की आलोचना करना अपराध माना जाता था।

यहाँ के साहित्य में अधिकतर ऐतिहासिक घटनाओं, कानूनी व्याख्याओं और उद्योग-धन्धों का चित्रण है। 'गिलगामेश का महाकाव्य' बहुत प्रसिद्ध है। 'भाग्य लेख', 'एटन गड़रिये की कथा' आदि का नाम भी उल्लेखनीय है। पूजा गीतों और भूत-प्रेतों से छुटकारा पाने के लिये प्रार्थनाओं का भी सृजन किया गया था।

विज्ञान और ज्योतिष के क्षेत्र में इन्होंने बहुत अधिक उन्नति की थी। इन्हें नक्षत्रों का पर्याप्त ज्ञान था। ग्रहण आदि के विषय में भी यह जानते थे। दुर्बीनों और खुर्दबीनों के अवशेष भी प्राप्त हुये हैं। इनकी गणना पद्धति दशमलव और षष्टिक प्रणाली पर आधारित थी।

स्थापत्य कला, चित्रकला, मुद्रा निर्माण कला का पर्याप्त विकास हुआ था। बेलु-मठ की जुगरत इमारत और सम्राट नेबुचडरेज्जर का झूलता हुआ बाग इनके विकास के परिचायक हैं। बेबिलोनिया का झूलता हुआ बाग संसार के सात आश्चर्यों में से एक है।

———

असीरीय सभ्यता और संस्कृति

(ASSYRIAN CIVILIZATION AND CULTURE)

प्रश्न 1—असीरीय सामाजिक और धार्मिक जीवन का संक्षिप्त वर्णन कीजिये ।

(लखनऊ विश्वविद्यालय)

Give a brief account of the social and religious life of the Assyrians.

(Lucknow University)

प्रश्न 2—एक सफल शासक के रूप में असुरबनिपाल का मूल्यांकन कीजिये ।

(आगरा विश्वविद्यालय)

Estimate Asurbanipal as a ruler.

(Agra University)

प्रश्न 3—असुरबनिपाल के विषय में आप क्या जानते हैं ? असीरीय साम्राज्य के पतन के क्या कारण थे ?

(लखनऊ विश्वविद्यालय)

What do you know about Asurbanipal ? What were the causes for the downfall of the Assyrian empire ?

(Lucknow University)

प्रश्न 4—असीरिया की सभ्यता की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिये ।

(लखनऊ एवं गोरखपुर विश्वविद्यालय)

Describe the main features of the Assyrian civilization.

(Lucknow and Gorakhpur University)

ईसा से पूर्व 13वीं शताब्दी के अन्तिम चरण और 12वीं शताब्दी के प्रथम चरण में मिस्र के राजवंशों में घोर परिवर्तन हुये और इसी काल में एशिया माइनर में हिन्दी साम्राज्य का अन्त हुआ । बेबिलोनिया में कसाइट वंश का भी पतन हो चुका था । बेबिलोनिया की दुरावस्था से लाभ उठाकर असीरिया के लोगों ने अपनी स्वतन्त्रता

की घोषणा कर दी और राजा असुरदान को अपना नेता स्वीकार किया। इस काल में मिस्र और एशिया माइनर में जो नये राजवंश बने उनमें कालान्तर में असीरिया ही महान शक्तिशाली सिद्ध हुआ और लगभग 500 वर्ष तक असीरियन लोगों का आधिपत्य रहा।

आरम्भिक काल—इस साम्राज्य की नींव सन् 1276 ई० पू० में शल्नेसर ने डाली। परन्तु वास्तव में असीरियन साम्राज्य का आरम्भिक काल तिगलथ पिलेसर से माना जाता है। इस काल में पश्चिमी एशिया के सभी देश नए साम्राज्य से शंकित थे और 12वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में असीरिया वालों का एक विशाल साम्राज्य स्थापित हो गया था। तिगलथ पिलेसर प्रथम ने मीड़ों, हितियों आदि जातियों को अपने अधीन करके भूमध्य सागर के पश्चिमी भाग में लूट-खसोट की तथा दक्षिण में बेबिलोन पर अपना अधिकार करके अपने को सुमेर और अक्काद का स्वामी घोषित किया। उसने अपनी राजधानी बदली तथा दो विशाल मन्दिरों का निर्माण कराया। व्यक्तिगत जीवन में वह कुशल शेरखाँ था। कहा जाता है कि उसने लगभग 1000 शेर मारे थे।

दुर्बलता का युग

तिगलथ पिलेसर के उपरान्त 200 वर्ष के लिये पुनः असीरिया राज्य में अव्यवस्था और दुर्बलता का साम्राज्य हो गया। इस काल में अर्द्ध सभ्य सेमेटिक जातिएँ रें मियन ने तिगलथ के क्षेत्र पर आक्रमण कर दिया। तिगलथ के उत्तराधिकारी इतने अयोग्य और डरपोक थे कि वे मियनों के वेग को न रोक सके फलस्वरूप बेबिलोनिया और असीरिया का मध्य भाग इनके हाथ से निकल गया।

राज्य में दुर्बलता का प्रमुख कारण यह था कि तिगलथ पिलेसर जीते हुये राज्यों पर अपना स्थायी अधिकार नहीं करता था बल्कि लूटमार करना ही उसका ध्येय था। उसका शासन बड़ा कठोर था जिसने पड़ोसियों तथा अन्य जातियों को पूर्ण रूप से असन्तुष्ट कर दिया था।

असीरियन साम्राज्य का द्वितीय खंड

साम्राज्य में द्वितीय बार शक्ति भरने वाला सम्राट असुर-नतिर-पाल द्वितीय था। इतिहासकारों ने असीरियन साम्राज्य का प्रारम्भ बहुतांश में उसी के शासन काल से माना है क्योंकि उसने साम्राज्य में कई प्रकार के स्थायी सुधार किये—

1. सबसे पहले सेना का सुधार किया गया। सेना की नई व्यवस्था और दृढता इसी के शासन में हुई।

2. असुर-नसिर-पाल को संसार का क्रूरतम शासक कहा जाता हैं क्योंकि वह अपने शत्रुओं को किसी प्रकार की क्षमा प्रदान करना अनुचित समझता था। विजित देशों के बच्चों को जिंदा जलाना, नागरिकों के हाथ, पैर कटवाकर उन्हें सड़क पर मरने देना और राजाओं को कष्ट देने के उपरान्त आग में भुनवा डालना उसके साधारण कार्य थे। एक इतिहासकार ने लिखा है कि उसने एक हाथ में मशाल और दूसरे में तलवार लेकर आँधी की भाँति अपनी विजय यात्रा आरम्भ की। फरात नदी को पार करके वह फिनलैंड तक जा पहुँचा।

3. बर्बरता के अतिरिक्त उसमें कला से प्रेम और इतिहास के प्रति विशेष श्रद्धा थी।

श्लमनेसर

असुर-नसिर-पाल का पुत्र श्लमनेसर तृतीय के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसने अपने पिता के समान ही कई देशों को जीता जिसमें सीरिया, इजराइल, बेबिलोनिया और फिनीशिया आदि प्रसिद्ध हैं। पिता के समान ही वह भी क्रूर शासक था परन्तु साम्राज्य प्रबन्ध में उसके समान योग्य भी कोई नहीं था। उसकी मृत्यु पर उसका साम्राज्य अत्यन्त शान्तिपूर्ण और सुरक्षित दिखाई देता था।

श्लमनेसर की मृत्यु के उपरान्त उसका कोई भी उत्तराधिकारी, इस योग्य नहीं हुआ जो जीते हुये देशों को संगठित रख सकता। राज्य के गृह-युद्ध और राजगद्दी के लिए युद्ध तथा पुजारी वर्ग के असन्तोष ने दूसरे असीरियन वंश को खोखला बना दिया।

असीरियन साम्राज्य का तृतीय खंड

इस साम्राज्य का निर्माता तिगलथ पिलेसर तृतीय था। अपने 18 वर्षों के शासन में उसने फारस की खाड़ी, अर्मेनियाँ और भूमध्य सागर तक अपने साम्राज्य का विस्तार किया। किसी भी असीरियन सम्राट का इतना बड़ा साम्राज्य नहीं था।

अपने साम्राज्य को दृढ़ बनाने के लिये उसने स्थायी सेना का निर्माण किया और पास के विजित देशों को प्रान्तों के रूप में बदला।

साम्राज्य में विद्रोहों को दबाने के लिये उसने जनता के आदान-प्रदान की प्रथा आरम्भ की। एक राज्य की जनता को किसी दूसरे दूर के राज्य में बसने के लिये विवश किया जाता था जिससे क्षेत्रीय संगठन होने में कठिनाई पड़ती थी।

तिगलथ पिलेसर तृतीय के पश्चात् उसका उत्तराधिकारी श्लमनेसर पंचम हुआ। उसके शासन-काल में इजराइल और टायर के विद्रोहों को सफलतापूर्वक

दबाया गया परन्तु इस शासन में योग्यता का अभाव था और शासक पर उसके सेनापति शरु किन ने अधिकार कर लिया जो श्लमनेसर की मृत्यु के उपरान्त शासक बना।

सारगोनी वंश

इस वंश की संस्थापना करने वाला शरु किन था। इसने आगे चलकर अपने को सारगोन द्वितीय के नाम से प्रसिद्ध किया। जब वह गद्दी पर बैठा, पड़ोसी राज्यों की सहायता से बेबिलोन ने स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी थी और पश्चिम प्रान्तों में भी विद्रोह होने लगे थे। मन्नाई प्रदेश और कार्शेमिश आदि स्थानों में विद्रोह की आग भड़की। सारगोन ने इजराइल के विद्रोह का पूरे तौर से दमन किया और वहाँ के बहुत से नागरिकों को मीडिया में रहने के लिये भेज दिया। मन्नाई प्रदेश के शासक को हराकर उसने उस प्रदेश को फिर से अपने वश में किया। कार्शेमिश को भी अपने अधीन किया और रूसस को पराजित करने में सफलता प्राप्त की। इस असफलता के कारण रूसस ने आत्महत्या कर ली। मुश्की के शासक ने सारगोन से दोस्ती में ही अपना हित समझा। बेबिलोन के विद्रोह को शांत करने के लिए उसने मदु क बल्दान को हराकर फारस की खाड़ी तक अपना अधिकार कर लिया। इस प्रकार फिनीशियन नगरी जूड़ा राज्य को छोड़कर उसका साम्राज्य साइलीशिया से लेकर फारस की खाड़ी तक फैल गया। सारगोन ने कई नगर बसाये और कलात्मक भवनों तथा मन्दिरों का निर्माण करवाया।

सारगोन की मृत्यु के उपरान्त सेनाकेरिब गद्दी पर बैठा। यद्यपि वह अपने पिता की तरह महत्वाकांक्षी था परन्तु उसमें दूरदर्शिता का अभाव था। कई बार विद्रोह होने के कारण उसने बेबिलोन पूरे तौर से विध्वंस कर दिया। बेबिलोन की सहायता एलमियों ने की थी इसी कारण सेनाकेरिब ने उन पर आक्रमण किया और एलम के पास के प्रदेश को खूब लूटा। एलम असीरिया का घोर शत्रु बन गया।

सेनाकेरिब का सबसे मूर्खतापूर्ण कार्य मिस्र पर आक्रमण करने का प्रयास करना था। यहूदी जनश्रुतियों से ज्ञात होता है कि उसने विशाल सेना लेकर मिस्र पर आक्रमण करने के लिए यात्रा की परन्तु महामारी फैल जाने के कारण मिस्र की सीमा के पास से वह वापस लौट आया।

सेनाकेरिब का वध उसके पुत्रों ने षड्यन्त्र द्वारा किया। सबसे छोटा पुत्र असरहद्दीन अपने अन्य भाइयों को मारकर 681 ई० पू० में गद्दी पर बैठा। यह शासक अपने पिता से अधिक नीतिवान था। बेबिलोन नगर को फिर से बनवाकर उसने वहाँ की जनता को अपने वश में किया। उसने आक्रमणकारी किम्मरियन, सीथियन और

मीडियन जातियों को कुचलने के लिए अभियान किया। सीडोन नगर का विध्वंस करता हुआ वह मिस्र पहुँचा और 671 ई० पू० में उसने मिस्र पर अधिकार प्राप्त कर लिया परन्तु मिस्र वालों के हृदय को न जीत सका जिसके कारण उसके लौटते ही वहाँ विद्रोह हो गया और जब एसरहद्दोन उसे दबाने के लिये बढ़ा तभी मार्ग में बीमार होकर मर गया।

सारगोनी वंश का चरमोत्कर्ष—असुरबनिपाल—एसरहद्दीन की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र असुरबनिपाल 669 ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ। उससे 626 ई० पूर्व तक राज्य किया। असुरबनिपाल असीरियन युग का सबसे प्रतिभाशाली सम्राट था। उसके विभिन्न कार्यों की चर्चा यहाँ हम संक्षेप में कर रहे हैं—

(1) **विजयाभियान**—असुरबनिपाल एक वीर और महत्वाकांक्षी सम्राट था। उसने तलवार के बल पर शासन स्थापित करना चाहा। सबसे पहले उसने मिस्र के अतिक्रमणों से परेशान होकर मिस्र पर आक्रमण की योजना बनाई। पहली बार वह अपने आक्रमण में सफल न हुआ। 667 ई० में उसने मिस्र पर पुनः आक्रमण किया। इस बार उसे सफलता मिली। उसने मिस्र के धार्मिक केन्द्रों को खूब लूटा और हजारों वर्ष पुरानी उसकी राजधानी थीबी को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। थीबी के एक विशाल मन्दिर में बहुत अधिक धन था। उसने यह सारा धन लूटकर अपने अधिकार में कर लिया। थीबी को लूटने के बाद वह वहाँ अपना एक गवर्नर नियुक्त करके स्वदेश लौट आया।

असुरबनिपाल ने ईलम पर भी आक्रमण किया। कहा जाता है कि ईलम का राजा असुरबनिपाल के बढ़ते हुये वैभव को सहन न कर सका और उसने असीरिया पर आक्रमण कर दिया। असुरबनिपाल ने उसे बाहर खदेड़ दिया। तत्पश्चात् उसने अपनी सेना के साथ ईलम की ओर प्रस्थान किया। ईलम पहुँचकर उसने वहाँ के मनुष्यों के साथ पशुओं का-सा व्यवहार किया। ईलम पर विजय प्राप्त करके उसने समस्त प्रदेश में नमक बिछवा दिया जिससे कि ईलम कभी भी पनप न सके। वह अपने साथ ईलम के राज-परिवार के सदस्यों, कर्मचारियों, कारीगरों, घोड़ों, खच्चरों और गधों आदि को स्वदेश ले गया।

उसने ईलमी सेनापति दनानू का गला काट दिया और उसके शरीर के टुकड़ों को समस्त देश में बँटवा दिया। ईलमी सम्राट का सर उस समय काटा गया जब वह अपनी रानियों के साथ अपने राज-प्रासाद में भोजन कर रहा था। उसके कटे हुये सिर को एक खम्भे पर लटकवा दिया गया। इस प्रकार उसने ईलम में बहुत अधिक अत्याचार किये।

असुरबनिपाल ने अपने बाहुबल से एक विस्तृत साम्राज्य की स्थापना की। इस साम्राज्य में असीरिया, बाबुल, आर्मीनिया, मीडिया, फिलिस्तीन, फीनीशिया, सीरिया, सुमेर, ईलम एवं मिस्र सम्मिलित थे।

(2) **शासन-प्रबन्ध**—असुरबनिपाल विभिन्न नगरों को अपने झंडे के नीचे लाने में तो सफल हुआ परन्तु वह एक सुदृढ़ केन्द्रीय शासन की स्थापना न कर सका। उसके शासन-काल में प्रत्येक नगर को स्वायत्त शासन का अधिकार प्राप्त था। प्रत्येक क्षेत्र अपने विधान के अनुसार शासित होता था। इस प्रकार असुरबनिपाल के साम्राज्य की प्रत्येक इकाई शासन-प्रबन्ध, विधान, धर्म, न्याय आदि की दृष्टि से स्वतन्त्र थी।

(3) **सेना**—असुरबनिपाल का साम्राज्य अत्यन्त विशाल था। फलस्वरूप सदैव विद्रोह की आशङ्का रहती थी। यही कारण था कि असुरबनिपाल ने एक विशाल सेना का गठन किया था। उसकी सेना रथों, घुड़सवारों और पैदल सैनिकों से सुसज्जित थी। सैनिक दुर्गों पर चढ़ाई करने में अत्यन्त सिद्धहस्त थे और वे युद्ध का रोमवासियों जैसा सुव्यवस्थित ज्ञान रखते थे। असुरबनिपाल स्वयं सेना का नेतृत्व करता था और सैनिकों को सन्तुष्ट रखने के लिये लूट से प्राप्त हुये धन को बाँट देता था।

(4) **दण्ड-विधान**—असुरबनिपाल ने हम्मूराबी की विधि-संहिता से मिलते-जुलते दण्ड-विधान को अपनाया था। अपराधियों के लिये बेगार, कोड़े लगवाना, नाक कटवाना, नपुंसक कर देना, आँख और जबान खिचवा लेना और सिर कटवा देना आदि दण्ड निर्धारित किये गये थे। अधिकतर न्यायालयों द्वारा न्याय होता था। कभी-कभी न्यायाधीश नदी पर खड़े हो जाते थे और अपराधी को बाँधकर नदी में फेंक दिया जाता था। अनधिकृत मैथुन और कुछ प्रकार की चोरियाँ अत्यन्त जघन्य अपराध समझे जाते थे।

(5) **युद्ध-बन्दियों से व्यवहार** असुरबनिपाल का युद्ध-बन्दियों से अत्यन्त कठोर व्यवहार होता था। उन्हें झुककर चलना होता था। कभी-कभी उनकी खोपड़ी पर डन्डे बरसाये जाते थे। उनके नाक, कान और हाथ काट लेने एवं ऊँचे स्थान से ढकेल देने और जीवित जला दिये जाने के उदाहरण भी प्राप्त होते हैं।

(6) **असुरबनिपाल का धर्म**—असुरबनिपाल का प्रमुख देवता 'अशुर' था और वह अपनी सारी घोषणायें 'अशुर' के नाम से ही प्रसारित करता था। असुर-बनिपाल अपने को भगवान 'शक्य' (सूर्य का अवतार मानता था। वह पुरोहितों का अत्यधिक आदर करता था और उनके भरण-पोषण के लिये बहुत बड़ी धनराशि खर्च करता था। उसने अनेक वैभवशाली मन्दिरों का निर्माण करवाया।

(7) **सांस्कृतिक उन्नति का प्रयास**—असुरबनिपाल को एक क्रूर और अत्याचारी शासक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। परन्तु उसने सांस्कृतिक क्षेत्र में उन्नति

का भी प्रयास किया । साहित्य और कला की उन्नति की दृष्टि से असुरबनिपाल का काल अपना अलग स्थान रखता है। वह स्वयं एक प्रकाण्ड पंडित नहीं था परन्तु फिर भी साहित्य आदि में उसकी विशेष अभिरुचि थी। ज्योतिष, गणित, व्याकरण आदि के क्षेत्र में उसके युग में पर्याप्त उन्नति हुई। अनेक उत्तम पुस्तकों का निर्माण हुआ जिनके फलस्वरूप असीरिया वालों का मस्तक ऊँचा उठ गया।

असुरबनिपाल ने नगर की सजावट और मन्दिरों के पुनरुद्धार में भी अत्यधिक अभिरुचि दिखलाई। उसकी राजधानी अत्यन्त भव्य एवं सुन्दर थी। उसके समय में कुछ रिलीफ-चित्र भी बनाये गये।

(8) असुरबनिपाल का पुस्तकालय—असुरबनिपाल अपने पुस्तकालय को अपने साम्राज्य की सबसे अधिक मूल्यवान वस्तु मानता था। उसने विभिन्न स्थानों से लेखकों को बुलवा कर समस्त असीरीय और बाबुलीय साहित्य को लिखवा कर अपने पुस्तकालय में रखवाया था। दूसरे नगरों के पुस्तकालयों से भी अच्छे-अच्छे ग्रन्थ मँगवा-कर उसने उनकी प्रतिलिपियां करवाईं और उन्हें अपने पुस्तकालय में रखवाया। उसके पुस्तकालय में लगभग तीस हजार साहित्यिक और ऐतिहासिक अभिलेख थे। पुस्तकालय के ग्रन्थों में गणित, ज्योतिष, दर्शनशास्त्र, धर्म, व्याकरण, कविता, इतिहास, विज्ञान आदि से सम्बन्धित ग्रन्थ मुख्य थे। असुरबनिपाल स्वयं 'तुपशरुति' (मिट्टी की पाटियों पर लिखने की कला) में दक्ष था।

क्या असुरबनिपाल अत्यधिक क्रूर और अत्याचारी था?— मिस्र और ईलम आदि में किये गये अत्याचारों के फलस्वरूप अनेक विद्वानों ने असुरबनिपाल को अत्यन्त क्रूर और अत्याचारी शासक बतलाया है। उन्होंने लिखा है कि असुरबनिपाल में मानवता नाम की कोई चीज नहीं थी और वह जघन्य हत्यारा एवं पापी था। यह ठीक है कि असुरबनिपाल ने अपने शत्रुओं के साथ अत्यन्त कठोरता का व्यवहार किया और उनकी चमड़ी उधेड़ दी परन्तु उसने यह कार्य साम्राज्य विस्तार और विद्रोहों को दबाने के लिये ही किया। उसमें मानवता थी ही नहीं और उसने शान्ति के लिये कोई प्रयास ही नहीं किया यह कहना ठीक नहीं। वास्तव में उसने अपने बाहुबल से अपने साम्राज्य में शान्ति स्थापित की थी। उसने अपने साम्राज्य में शान्ति स्थापित करने का हर सम्भव प्रयास किया और उसे इस बात पर गर्व था। विल ड्यूराण्ट ने उसके विषय में लिखा है—

"He boasted of the peace that he had established in his empire, and of the good order that prevailed in its cities; and the boast was not without truth."

—Will Durrant.

साहित्य और कला की उन्नति के लिये उसके द्वारा किये गये प्रयासों से भी यह स्पष्ट है कि वह कोरा अत्याचारी और क्रूर नहीं था बल्कि उसमें मानवता भी थी।

असुरबनिपाल के अन्तिम दिन – असुरबनिपाल के अन्तिम दिन अच्छे नहीं बीते। उसके साम्राज्य में चारों ओर अशान्ति व्याप्त हो गई। राज्य परिवार में भी अशान्ति फैल गई। इस अशान्ति को दूर करने के लिये उसने हर सम्भव प्रयास किया परन्तु वह सफल न हो सका और बीमार पड़ गया। कलवाइरन ने लिखा है कि अपने अन्तिम काल में उसने अपने राजप्रासाद में आग लगा दी और 626 ई० पूर्व वह जल मरा।

असुरबनिपाल का मूल्यांकन—असुरबनिपाल को असीरियन युग में वही गौरव प्राप्त है जो बेबीलोनियन युग में हम्मूराबी को प्राप्त है। असुरबनिपाल एक महान साम्राज्य विस्तारक के रूप में हमारे सम्मुख आता है। सांस्कृतिक उन्नति के लिये भी उसने जो प्रयास किये वह निःसन्देह प्रशंसनीय है। असुरबनिपाल की मृत्यु के पश्चात् कोई भी ऐसा शासक न हुआ जो उसके द्वारा बनाये हुये साम्राज्य को सुरक्षित रख सकता और निरन्तर असीरियनों का पतन होता गया।

साम्राज्य का पतन

असुरबनिपाल के जीवन के अन्तिम दिनों में ही साम्राज्य के पतन के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे थे। मिस्र ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया था, मीडिया में शक्तिशाली राज्य की स्थापना हो गई थी। सम्राट में बर्बर जातियों और ईरान की नवोदित जातियों को रोकने की कोई शक्ति नहीं रह गई थी।

असुरबनिपाल की मृत्यु होते ही बेबिलोन में विद्रोह हुआ। उसके भ्रष्ट उत्तराधिकारियों के कारण नेबोपोलस्सर तथा उवक्षत्र ने असीरिया के विरुद्ध सङ्घ का निर्माण किया और 615 ई० पू० में असीरिया पर आक्रमण कर दिया। राजधानी निन्निवेह का पतन 3 वर्ष पहले ही हो चुका था अतः असुरबनिपाल के अन्तिम उत्तराधिकारी को इस आक्रमण के कारण जान गँवानी पड़ी। मीडिया और बेबिलोन ने असीरियन साम्राज्य को हस्तगत करके हिस्सा बाट कर लिया।

पतन के कारण—असीरियन साम्राज्य के पतन के कारण निम्नलिखित थे—

1. सम्राटों ने प्रान्तीय शासकों की नियुक्ति की थी। शासक अधिकतर राज्य-परिवार के होते थे। उनका सङ्घर्ष पुजारी वर्ग से हमेशा बना रहा।

2. असीरियन जाति के लोग अर्द्ध-सभ्य थे और शासक क्रूरता के साथ व्यवहार करते थे।

3. साम्राज्य की आरम्भिक अवस्था में सम्राटों ने विजित देशों को प्रान्तों के रूप में संगठित करने का प्रयत्न नहीं किया।

4. शासकों ने विशेषकर तिगलथ पिलेसर तृतीय के उत्तराधिकारियों ने प्रान्तों से कर और सैनिक सेवा में राज्य के अंश को बहुत बढ़ा दिया था।

5. विजित देशों की जनता के परिवर्तन ने लोगों में घोर निराशा और राज्य के प्रति विद्रोह की भावना उत्पन्न कर दी।

6. केन्द्रीय शासकों का व्यवहार प्रान्तों के प्रति अच्छा नहीं था जिस कारण जब भी मौका मिलता था प्रान्त के लोग विद्रोह कर देते थे।

7. असीरियन सम्राटों की आन्तरिक व्यवस्था भी बहुत दोष-पूर्ण थी।

8. असीरिया में आरम्भ से ही सैनिकों और पुरोहितों के दो दल थे। सम्राट यह प्रयत्न करता था कि दोनों दलों का सहयोग प्राप्त करता रहे। धार्मिक दल की भी दो शाखायें थीं—एक असुर दल और दूसरा मर्दुक दल। मर्दुक बेबिलोनिया का प्रमुख देवता था और असीरियन भी उसे सम्मान की दृष्टि से देखते थे। परन्तु सारगोन के पुत्र सेनाकेरिब ने जब बेबिलोन को ध्वस्त किया उस समय मर्दुक को अशुर का अनु-गामी घोषित किया और मर्दुक दल की सहानुभूति सम्राट ने खो दी। यद्यपि उसके पुत्र ने इस भूल को सँभाला परन्तु यह स्पष्ट है कि सम्राट सैनिक और धार्मिक दलों को पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं कर सका।

9. असीरियन सभ्यता का सबसे बड़ा दोष आर्थिक जीवन है। उन्होंने आर्थिक जीवन का आधार व्यापार न बनाकर कृषि कर्म को बनाया था। परन्तु लगातार युद्धों के कारण यह आधार टूट गया। ज्यों-ज्यों सिपाहियों की संख्या बढ़ी कृषकों की संख्या घटी और असीरियन राज्य के आर्थिक जीवन का आधार लूट-खसोट रह गया जिसके कारण एक बार की पराजय में ही सारी आर्थिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई।

10. असीरिया के पतन में ईरान, ईलम और बाबुल का बहुत बड़ा हाथ था। यह शक्तियाँ उस समय मिल गई थीं जब कि असीरियन सम्राट युद्ध-पक्ष से दूर हट चुके थे।

11. असीरिया का प्रधान सेनापति नवीपलेश्वर ईरानी सेना से मिल गया जिससे सारी असीरियन सेना भी ईरानियों की ओर हो गई।

12. दैवी प्रकोप ने भी असीरिया को पतन के गर्त में डाल दिया। दो वर्ष तक असीरिया के नीनवे का घेरा सहन किया परन्तु अचानक दजला नदी में बाढ़ आ गई और धारा की मोड़ ने ही नीनवे की दीवार को तोड़ दिया। दीवार टूटने से ईरानी नीनवे में घुस गये। अन्त में पूरा नीनवे नगर जला दिया गया और असीरिया सदैव के लिये समाप्त हो गया।

पतन की चरम सीमा– जिस प्रकार असीरियनों ने बेबिलोन और सूसा के नगरों को विध्वंस किया था उसी प्रकार प्रतिहिंसा की भावना ने विद्रोहियों को निनेवेह के विध्वंस करने के लिये प्रोत्साहन दिया। असुरबनिपाल के बनाये हुये राज-महल, मन्दिर, बाजार और पुस्तकालय इतिहास की एक कहानी मात्र होकर रह गये। सेनाकेरिब के महल और उसके पास ईस्टर का मन्दिर खाक में मिला दिये गये और मन्दिर की अधिष्ठात्री अति प्राचीन मूर्ति खण्डित कर दी गई। नेबू का मन्दिर भी इसी प्रकार नष्ट कर दिया गया। राजधानी के निवासियों का सामूहिक वध किया गया और असुरबनिपाल के उत्तराधिकारी ने जलते हुये राजमहल की लपटों में अपने शरीर को भेंट करके सम्मान की रक्षा की।। शायद विश्व के इतिहास में इतना दुखमय अन्त किसी अन्य नगर का नहीं हुआ है।

शासन-प्रबन्ध

असीरिया का साम्राज्य अत्यन्त विशाल था। इसमें मीडिया, फिलीस्तीन, सुमेर, एलम, मिस्र, फिनीशिया, आर्मेनिया, सीरिया आदि देश सम्मिलित थे। इतना बड़ा साम्राज्य इसके पहले कभी नहीं था। असीरियन जाति के लोग अपने सम्राट को एकता का प्रतीक मानते थे और यही कारण था कि सम्राट की शक्ति सर्वोच्च थी और केन्द्रीय शासन दृढ़ था। इन सम्राटों की शक्ति इतनी अधिक इस कारण भी थी कि असीरिया में वंशानुगत पदों के प्रमाण यदा-कदा ही मिलते थे। उदाहरण के लिये 856 ई० पू० से लेकर 752 ई० पू० तक 5 प्रधान सेनापति इस साम्राज्य में हुये। परन्तु कोई भी सेनापति का उत्तराधिकारी उसका वंशज नहीं था। असीरियन विश्वास रखते थे कि देश में केवल एक ही राजा हो सकता है। सम्राट को लिम्मू भी कहा जाता था। स्थानीय पदाधिकारी लिम्मू के कृपापात्र बनना अपना धर्म समझते थे और इस कारण राजा के विरोध में नहीं खड़े होते थे।

यद्यपि राजा की शक्ति किसी प्रकार प्रतिबन्धित नहीं थी परन्तु व्यवहार में पुजारी वर्ग का राजा पर अधिक प्रभाव पड़ता था। सारा राज्य असीरिया के सर्वोच्च देवता अशुर की सम्पत्ति माना जाता था। सभी कानून उसी के नाम पर बनते थे और सभी युद्ध उसी के नाम पर लड़े जाते थे। राजा सूर्य देवता का अवतार माना जाता था। पुजारियों की वाणी देव-वाणी समझी जाती थी और कोई भी सम्राट उनके विरुद्ध मत नहीं प्रकट करता था। ऊँचे पुजारी पदों पर केवल सामन्त ही नियुक्त किये जाते थे। इस प्रकार असीरियन साम्राज्य में राजा की निरंकुशता का सम्मान करते हुये भी उसे स्वेच्छाचारी बनने से रोका गया था।

असीरियन साम्राज्य का ज्यों-ज्यों विस्तार होता गया, प्रान्तों की संख्या बढ़ी और उनके प्रबन्ध में भी कठिनाइयाँ होने लगीं। प्रान्त तीन श्रेणी में विभाजित थे—

1. प्रति वर्ष केन्द्रीय सरकार को कर देने वाले प्रान्त थे—इनकी स्थिति अन्य राज्यों के साधारण सामन्त राज्यों की सी थी।

2. इस श्रेणी के राज्यों को मजदूर और कर दोनों ही देने पड़ते थे तथा सम्राट का एक प्रतिनिधि जबिल कुदूरी राज्य में रहता था।

3. तीसरी श्रेणी के राज्य पूर्णतया सम्राट के अधीन थे। उनका गवर्नर शक्नु या उरसु कहलाता था। पहली और दूसरी श्रेणी के प्रान्तों को अपने आन्तरिक मामलों में बहुत कुछ स्वतन्त्रता रहती थी परन्तु तीसरी श्रेणी के प्रान्तों में शक्नु की आज्ञा ही कानून होती थी। आगे चलकर बड़े-बड़े प्रान्तों को छोटे जिलों में बाँटा गया जिन्हें पख्ती कहते थे और उनकी सहायता के लिये अन्य पदाधिकारी भी होते थे। तिगलथ पिलेसर ने जीते हुये प्रान्तों की जनता को दूर देशों में बसाने का भी प्रबन्ध किया जिनके कारण नागरिकों को विद्रोह करने का अवसर नहीं मिलता था क्योंकि नागरिकों की शक्ति नये वातावरण में रहने के प्रबन्ध में लग जाती थी।

सैन्य-संगठन—असीरियन राज्य में सेनाओं का संगठन अति उत्तम था। युद्ध में हारने या जीतने पर सेना के संगठन में कोई परिवर्तन नहीं किया जाता था। सारगोनी युग में असीरिया में दो प्रकार के सैनिक थे—

1. सैनिक शिक्षा प्राप्त किये हुये लोग
2. राष्ट्रीय सेना के सदस्य

प्रत्येक नागरिक को सेना में काम करना पड़ता था। यदि नागरिक काम न करे तो अपने स्थान पर किसी दास को भेजना पड़ता था या पर्याप्त धन देना पड़ता था। प्रान्त की सुरक्षा के लिये प्रत्येक गवर्नर के पास निजी सेना रहती थी। राष्ट्रीय सेना में अनिवार्य रूप से काम करने के लिये सैनिक भर्ती का काम अफसरों द्वारा किया जाता था। वही लोग भर्ती किए जाते थे जिन्हें युद्ध कला का कुछ ज्ञान था। सैनिक सेवा के काल में सैनिक अपने निजी कार्य कृषि और दस्तकारी से मुक्त रहते थे। केन्द्रीय सरकार उनके भोजन, वस्त्र और वेतन का प्रबन्ध करती थी। युद्ध में सफलता होने पर लूट का अधिकांश धन सैनिकों में बाँट दिया जाता था।

युद्ध के लिये सेना के कई भाग किये जाते थे। सिपाहियों का विभाजन रथी, अश्वारोही और पैदल सैनिकों में किया जाता था। अन्य कार्य करने के लिये श्रमिक और गुप्तचर विभाग रक्खे जाते थे। अनुशासन बनाये रखने के लिये सेना के अंगों को 50 और उससे घटकर 10-10 सैनिकों की टुकड़ियों में बाँट दिया जाता था।

युद्ध-चातुर्य—असीरियन राज्य में युद्ध का अभियान केन्द्रीय कैम्पों द्वारा होता था। देश की सुरक्षा की समुचित व्यवस्था करने के उपरान्त ही आक्रमणात्मक युद्ध किये जाते थे। वे शत्रु पर तेजी के साथ और अनायास आक्रमण के पक्षपाती थे तथा

घेरा डालने की कला में पटु थे। द्रुतगामी दल के लोग पहियों की चलने वाली गाड़ियों पर चबूतरे बनाते थे जिन पर बैठकर शत्रुओं पर निर्भय होकर आक्रमण करते थे। सिपाही ताम्र और लोहे के कवच पहनते थे, सामन्त लोग रथों में बैठकर लड़ते थे। सम्राट और सेनापति भी युद्ध में व्यक्तिगत रूप से भाग लेते थे।

विजय प्राप्त करने के बाद असीरियन राजा शत्रुओं के नगरो को जला देते थे। जो सिपाही जितने शत्रुओं का वध करता था उतना अधिक इनाम पाता था। बन्दी बनाने के झंझट से मुक्ति पाने के लिए ही यह ढंग अपनाया गया था। शत्रु-सामन्तों के हाथ-पैर आदि काटकर और उनकी आँखें फोड़कर उन्हें मीनार के ऊपर से फेंक दिया जाता था या परिवार समेत उन्हें आग में भस्मीभूत कर दिया जाता था। ये लोग बड़े क्रूर थे। अपनी क्रूरता का परिचय असुरबनिपाल ने एक लेख में दिया है। वह अपने शत्रुओं पर किये गये अत्याचार के विषय में लिखता है—

"उनके तीन हजार सैनिकों को मैंने मौत के घाट उतार दिया......... बहुत से बन्दियों को मैंने आग में जला दिया ......" कुछ की मैंने अँगुलियाँ काट डालीं और कुछ की नाक तथा कान काट डाले। बहुतों की मैंने आँखें निकाल लीं। मैंने एक ढेर जीवित शत्रुओं का और एक मृत शत्रुओं के सिरों का लगवाया। बहुतों के सिरों को नगर में काष्ठ-स्तम्भों पर लटकवा दिया। उनके युवकों और युवतियों को मैंने जिन्दा जलवा दिया।"

दण्ड-व्यवस्था और कानून – असीरिया के कानूनों पर प्रकाश डालने वाले कुछ अभिलेख अशुर स्थान से मिले हैं। इन अभिलेखों का सम्बन्ध स्त्रियों, भूमि-व्यवस्था और विश्वासघात से है। विद्वानों का विचार है कि असीरियन विधि-संहिता का प्रारम्भ स्वतन्त्र रूप से हुआ और दण्ड-व्यवस्था बेबिलोनिया से अधिक कठोर और बर्बर थी। विल ड्यूराण्ट ने लिखा है—"साधारणतया असीरिया का न्याय विधान अति प्रारम्भिक अवस्था का था और बाइबलोनिया से निकृष्ठ था। बाइबलोनिया का न्याय-विधान अवस्था से अधिक आगे बढ़ा हुआ था।"

"In general, assyrian law was less secular and more primitive than the Babylonian Code of Hammurabi, which apparently preceded it in time.

—Will Durant.

यह भी कहा जाता है कि असीरियन विधि-संहिता किसी प्राचीनतम विधि-संहिता के आधार पर बनी थी। यह अनुमान किया जाता है कि यदि सब नहीं तो कुछ प्रान्तों में अवश्य असीरियन विधि-संहिता का प्रयोग किया जाता था क्योंकि इससे निर्धन जनता और व्यापारियों को सहायता मिलती थी।

विधि-संहिता में निर्मम दण्ड की प्रथा थी; जैसे अपराधी की जीभ निकालना, कोड़े मारना, नाक-कान काट लेना, बेगार लेना अथवा उसे नपुंसक कर देना। कुछ विषयों में वादी स्वयम् कानून अपने हाथ में ले लेता था। यदि कोई दूसरा पुरुष उसकी पत्नी के साथ व्यभिचार करता था तो वह स्वयं उसका वध कर सकता था। गर्भपात कराने वाली स्त्रियों को कठिन दण्ड दिया जाता था। पत्नी पर झूठा कलंक लगाने वाले मनुष्य को नदी में फेंक दिया जाता था। व्यापार के विषय के अपराधों का सम्बन्ध धर्म से माना जाता था और धर्म के अनुसार अपराधियों को दण्डित किया जाता था।

सामाजिक व्यवस्था

(1) वर्ग-विभाजन—प्राप्त अभिलेखों के आधार पर ज्ञात होता है कि असीरियन समाज दो भागों में विभाजित था—

1. स्वतन्त्र नागरिक
2. दास

स्वतन्त्र नागरिकों की तीन श्रेणियाँ थीं—

(क) मारबनुति अथवा सामन्त वर्ग

(ख) उस्माने या दस्तकार वर्ग

(ग) खुब्शी या श्रमिक वर्ग

मारबनुति वर्ग को कई तरह के विशेष अधिकार मिले हुये थे। उच्च पदाधिकारियों, सेनापतियों और पुजारियों तथा गवर्नरों की नियुक्ति इन्हीं में से होती थी। स्त्रियाँ भी गवर्नर बनाई जा सकती थीं।

दस्तकार वर्ग के व्यक्तियों की संख्या अधिक थी। प्रायः सभी पेशेवर लोग इसके अन्तर्गत आते थे। एक पेशे के लोग प्रायः एक ही मोहल्ले में रहते थे।

खुब्शो वर्ग के लोगों की संख्या सबसे अधिक थी। उपनिवेशों के लिये नागरिक और राष्ट्रीय सेना के लिए सैनिक इसी श्रेणी में से लिये जाते थे। आर्थिक दृष्टि से भी यह वर्ग सबसे पिछड़ा हुआ था।

दास वर्ग में प्रायः वही लोग लिये जाते थे जो ऋण न चुका सकते थे अथवा बन्दी होते थे। इन्हें स्वतन्त्रता के अधिकार नहीं थे। यह लोग उच्च वर्गों (स्वतन्त्र नागरिकों) की सेवा करके अपना जीवन बिताते थे। दासों के कोड़े भी मारे जाते थे और पाषाण-खण्डों से भी दबाया जाता था। इन्हें सिर मुड़ाना पड़ता था और कान फड़वाने पड़ते थे।

विदेशियों के लिये नागरिकता प्राप्त करने के कई ढंग थे उनमें प्रमुख असीरियन स्त्री से विवाह अथवा असीरियन का दत्तक पुत्र बन जाना था।

(2) स्त्रियों की दशा - असीरियन विधि-संहिता में स्त्रियों की दशा पर कई अभिलेख मिलते हैं। स्त्रियों द्वारा चोरी, पर पुरुषों पर आक्रमण, व्यभिचार, गर्भपात, झूठी गवाही और तलाक इत्यादि पर विस्तारपूर्वक कानून बनाये गये थे। पति द्वारा परित्यक्ता स्त्री के निर्वाह के लिये धन की सुविधा का विशेष उदारता से विचार किया गया था। असीरियन विधि-संहिता में यह भी उल्लेख है कि विवाह होने के उपरान्त स्त्री पिता के घर में रहती थी और पति बीच-बीच में उससे मिलने जाया करता था। यदि मँगनी हो जाने के उपरान्त लड़की का भावी पति मर जाता था या भाग जाता था तो लड़की का पिता वर के किसी छोटे भाई से उस कन्या का विवाह कर सकता था। अगर वर के कोई भाई नहीं होता था तो लड़के के पिता को समस्त धन जो मँगनी के अवसर पर उसको मिला था, लौटाना पड़ता था। विवाहिता स्त्री को पर्दे में रहना पड़ता था। परन्तु जो व्यक्ति पुजारिनों, वेश्याओं, दासियों को पर्दे में रखता था उसे कोड़े की सजा, बेगार की सजा या नाक-कान काटने की सजा दी जाती थी। पुरुष जितनी चाहे उपपत्नियाँ रख सकता था।

खुब्शी वर्ग की स्त्रियों की दशा भी अच्छी थी। सरकार उनके विषय में पूरे तौर से सहानुभूति रखती थी। यदि किसी स्त्री का पति बन्दी बना लिया जाता था तो उसे मकान और भूमि सरकार की ओर से प्राप्त होती थी। दो वर्ष के उपरान्त स्त्रियों को पुर्नविवाह का भी अधिकार था और यदि फिर उसका पूर्व पति वापिस लौट आता तो वह अपनी स्त्री को वापिस पा सकता था। स्त्री को दूसरा पति छोड़ना पड़ता था परन्तु सन्तान पर पिता का ही अधिकार रहता था। यदि पति युद्ध में मार डाला जाता था तो दो वर्ष के उपरान्त स्त्री को भूमि और मकान लौटा देना पड़ता था। इससे सिद्ध होता है कि असीरियन सरकार सिद्धान्त रूप से खुब्शी सैनिकों के बच्चों और स्त्रियों के प्रति अपने दायित्व का पूरे तौर से निभाती थी और उनके जीवन-निर्वाह का प्रबन्ध करती थी।

(3) वेष-भूषा इस युग में लम्बा कुर्ता और कमर में चौड़ी पेटी पहनने का प्रचलन था। सिर पर लम्बे-लम्बे बाल रखे जाते थे जिनमें अत्यन्त सुन्दर ढंग से कंघी की जाती थी। सामान्य लोग नंगे सर रहते थे परन्तु सिपाही और राज्य-कर्मचारी टोपी या पगड़ी रखते थे।

(4) भोजन – पत्थर की चक्की पर पिसे हुये आटे की रोटी के साथ दूध, मक्खन, शहद, तेल या चर्बी से बनी वस्तुएँ खाने का प्रचलन था। मछली, भेड़ और बकरे का मांस खाया जाता था। छुहारे, अंगूर, सेब और अनानास आदि फल अधिक

मात्रा में खाये जाते थे।

(5) **सामाजिक रीतियाँ**—एक पत्नी और एक पति की प्रथा अधिक थी। कन्या माता-पिता की इच्छानुसार ही विवाह करती थी। कन्या के सिर पर सुगन्ध छोड़-कर सगाई की रीति सम्पन्न की जाती थी।

आर्थिक दशा

राजा और नागरिकों के सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ थे। प्रत्येक नागरिक को राज्य की सेवा करनी पड़ती थी। वह सेना में कार्य करता था और राज्य के लिये बनाई जाने वाली इमारतों में बिना वेतन के कार्य करता था तथा मन्दिरों को अपनी उपज का भाग भेंट करता था। उच्च वर्ग के लोग धन देकर अपने स्थान पर दास, सेवा के लिये भेजते थे और साधारण वर्ग के लोग अनिवार्य रूप से व्यक्तिगत सेवा करते थे। कर इकट्ठा करने का भार सेना के कर्मचारियों पर होता था।

कृषि - असीरियन राज्य में बेबिलोनिया के आर्थिक जीवन में समानता थी। दोनों देशों में सिंचाई का काम नदियों और नहरों से लिया जाता था। मुख्यतः गेहूँ, बाजरा और जौ की खेती होती थी। नाप और तौल के साधन समान थे। असी-रियन समाज में धनिक वर्ग और बड़ी-बड़ी जागीरों के मालिक व्यापारियों को हीन समझते थे। मजदूरी सस्ती थी, भूमि को पट्टे पर दिया जाता था और भूमि अधिक उर्वरा थी।

उद्योग-धन्धे एवं व्यापार—राज्य में खुदाई और आयात का धन्धा बहुत प्रचलित था। लोगों के पास विभिन्न राज्यों से लूटकर लाया हुआ धन प्रचुर मात्रा में था। शीशे, बिनाई, रँगाई तथा ऊन और कपास आदि के धन्धे किये जाते थे। परिवार का कर्त्ता अपना पेशा पुत्र के सुपुर्द करता था। शिष्य रखने की भी प्रथा थी। गुरु-शिष्य का नाता अत्यन्त महत्व का होता था।

व्यापारियों को नीची दृष्टि से देखा जाता था इसीलिए एँ रँ मियनो ने इस उदासीनता का लाभ उठाया। विदेशी व्यापार काफिलों में होता था। सौदागरों के द्वारा माल बाहर भेजा जाता था। सौदागर व्यापारियों को 25 प्रतिशत तक सूद पर रुपया देते थे। अदला-बदली के साधन सोना, चाँदी और ताँबा थे। बाजार में भाव का उतार-चढ़ाव बहुत अधिक होता था क्योंकि लूट का धन न जाने कब बाजार में आ जाता था। विधि-संहिता में व्यापारियों के विषय में बहुत से कानून मिलते हैं। यदि कोई धन लेने के पश्चात् उससे मुकर जाता था तब उसे दस गुना धन देवता के मन्दिर में देना पड़ता था। कभी-कभी दोषियों को विष पीना पड़ता था या देवता के सम्मुख उसके सबसे बड़े लड़के-लड़की को जला दिया जाता था।

धर्म तथा दर्शन

असीरिया और बेबिलोनिया वालों के धर्म में बहुत कुछ समानता है केवल बाह्य भेद इतना है कि असीरिया वालों का मुख्य देवता मर्दुक न होकर अशुर था। असीरिया की सरकार पर धर्म का प्रभाव कम न था परन्तु पुजारियों के कारण धर्म राजा की इच्छानुसार परिवर्तित होता रहता था। राष्ट्र-देव अशुर के कारण लोगों में यह विश्वास उत्पन्न हो गया था कि देवता के सामने जितनी अधिक हत्या की जायगी वह उतना ही प्रसन्न होगा। अशुर के अतिरिक्त अन्य देवताओं की भी पूजा होती थी। सूर्य को सौर देवता कहा जाता था और इसका चक्र अशुर का भी चिह्न माना जाता था।

असीरियन अशुर को साम्राज्य का स्वामी मानते थे। युद्ध और शान्ति में यही देवता राजा का मार्ग प्रदर्शक समझा जाता था। जो व्यक्ति राजा के प्रति विद्रोह करता था वह देवता का विद्रोही भी समझा जाता था। राजा अपने देवता का चिह्न सूर्य चक्र युद्ध में ले जाते थे और जीते हुये नगरों में पूजा के लिए उसे स्थापित किया जाता था। शस्त्र-बल से अपनी धाक जमाने वाला कोई भी देवता अधिक काल तक लोकप्रिय नहीं रह सकता था इसी कारण असीरिया का पतन होने पर अशुर की उपासना भी प्रायः समाप्त हो गई यद्यपि ईरानियों का देव-चिह्न भी सूर्य चक्र ही था।

असीरिया अन्ध-विश्वास के लिए प्रसिद्ध है। मनुष्य केवल अपने प्रतिद्वन्दियों से ही सचेत नहीं रहता था बल्कि पशुओं और प्राकृतिक घटनाओं के विरुद्ध भी सङ्घर्ष करता रहता था। इसी कारण उनमें यह विश्वास दृढ़ हो गया था कि संसार अशुभ और राक्षसी शक्तियों से भरा हुआ है और मन्त्रों द्वारा पुजारियों की कृपा से हो व्यक्ति इस संसार से त्राण पा सकता है। बालक, वृद्ध और स्त्रियाँ तरह-तरह के तावीज बाँधते थे जिन पर आकृतियाँ और मन्त्र खुदे रहते थे। किसी-किसी तावीज पर जादुई शब्द 7 बार लिखे जाते थे। पुजारियों का एक झुन्ड शुभ-अशुभ फलों पर भी विचार करता था। यह लोग ज्योतिषी कहलाते थे। इनका समाज में बड़ा सम्मान था।

असीरिया के लोग यह विश्वास करते थे कि मरने के बाद आत्मा को अलात राक्षसी नेरगा लोग में ले जाती है जहाँ परीक्षाओं के उपरान्त कुकर्मियों को कष्ट दिये जाते हैं। इस सङ्कट से छुटकारा केवल स्वर्गीय जल द्वारा हो सकता है। परन्तु उसकी एक बूँद भी मिलना कठिन है।

साहित्य

वास्तव में असीरियनों का कोई स्वतन्त्र साहित्य उपलब्ध नहीं होता। केवल

देव-वाणियाँ और राजकीय अभिलेख ही साहित्य कहे जा सकते हैं। देव-वाणियों में यूनानियों की तरह पुजारी अपने प्रभाव को बनाये रखने के प्रयत्न करते थे। राजकीय अभिलेखों का विकास अलंकृत और कल्पना के रूप में देव-वाणी के उपरान्त हुआ। प्रारम्भिक अवस्था में अभिलेखों में राजा का नाम और भवन का विवरण इत्यादि रहता था। आगे चलकर ऐतिहासिक अभिलेख भी लिखे जाने लगे और राजा की विजयों का विवरण दिया जाने लगा। घटनाओं को तिथि के अनुसार क्रमानुसार लिखने की प्रथा चौदहवीं शताब्दी ई० पू० से कुछ पहले आरम्भ हुई। अभिलेखों की इस शैली में बेबिलोनियन शैली की विशेषतायें आ गई थीं। पुरातत्व की खोजों से ज्ञात होता है कि बेबिलोनिया की महान साहित्यिक कृतियों का अनुवाद असीरिया में 13वीं शताब्दी ई० पू० के पहले ही हो चुका था। गिलगामेश और विश्व सृजन की कथा बेबिलोनिया की महान कृतियाँ थीं जिनका असीरियन संस्करण भी प्राप्त होता है। असुरबनिपाल के पुस्तकालय में लगभग 30000 ग्रन्थों का क्रमिक वर्गीकरण और सूचीकरण था। कई अभिलेखों को असुरबनिपाल ने स्वयम् पढ़ा था और दो अभिलेखों में उसने अपने ज्ञान तथा शौर्य का वर्णन किया था।

लिपि एवं भाषाएँ

असीरियनों ने बेबिलोनिया वालों की कीलाक्षर (**cuneiform**) लिपि को सरल और जनप्रिय बनाने का महान प्रयत्न किया था। साम्राज्य का क्षेत्र इतना बड़ा था कि असीरिया की सरकार एवं नागरिकों को हजारों लिपिकों की आवश्यकता पड़ती थी। यह लिपिक सुमेरियन, असीरियन और सेमेटिक भाषाओं के ज्ञाता होते थे। असुरनसिरपाल के कारण बहुत से एँ रँ मियन असीरिया में आकर बस गये थे और उन्होंने अपनी भाषा का प्रयोग भी आरम्भ कर दिया था। व्यापारिक लिपिकों का ज्ञान सीमित होता था। अभिलेख लिखने की कला को "तुपशरु ति" कहते थे। सुमेरियन ग्रन्थों का भावानुवाद विद्यार्थियों के लिये आवश्यक था। सेमेटिक भाषाओं को बोलियों को सीखने के लिये पर्यायवाची शब्दों का महान संग्रह उपलब्ध था।

विज्ञान

कसाइट युग में बर्बर जातियों के आक्रमणों के कारण बेबिलोनियन साहित्य और विज्ञान के प्रति अधिक जागरूक न रह सके परन्तु असीरिया में असुरबनिपाल जैसे सम्राट अपनी व्यावहारिक आवश्यकताओं एवं प्रकृति के कारण ज्ञान-विज्ञान की उन्नति में विशेष रूप से प्रयत्नशील रहे। फलतः असीरिया के नगर बौद्धिक गतिविधि के केन्द्र बन गये। साहित्य की भाँति विज्ञान के क्षेत्र में भी असीरिया वालों की मौलिक देन

बहुत कम है। ज्योतिष और युद्ध कला को छोड़कर उन्होंने किसी ओर अधिक रुचि नहीं दिखलाई। परन्तु प्राचीन ज्ञान को संग्रह करके उसे व्यवस्थित करने एवं स्थायित्व प्रदान करने का श्रेय असीरिया वालों को अवश्य प्राप्त है। कुछ पुरातत्व सम्बन्धी अभिलेखों की खोज से ज्ञात होता है कि सम्राट खगोल सम्बन्धी आँकड़े इकट्ठा करने के लिए पदाधिकारी नियुक्त करते थे और पुजारी लोग ज्योतिष के अध्ययन में इन आँकड़ों का प्रयोग करते थे। चिकित्सा के क्षेत्र में शरीर-रचना-शास्त्र पर उन्होंने विशाल शब्दावली का निर्माण किया था और रोगों के बारे में अच्छा अध्ययन किया था। रसायनशास्त्र द्वारा उन्होंने उद्योग-धन्धों, विशेषकर चमड़े का धन्धा और मीनाकारी में काम आने वाली रासायनिक वस्तुओं का अध्ययन किया था। वे कपड़ा रँगना भी जानते थे। भौतिक विज्ञान के प्रमुख सिद्धांत उन्होंने अपने अनुभव से ज्ञात किये थे।

कला

कला के क्षेत्र में असीरिया वाले बेबिलोनिया वालों से आगे बढ़ चुके थे। इनकी कला सजीव थी और विषय प्रायः सैनिक जीवन से लिये जाते थे। पशुओं की आकृतियों के अङ्कन में उन्हें बहुत सफलता मिली परन्तु मनुष्य की आकृति वे इतनी अच्छी नहीं बना सके। पशुओं में अश्व, सिंह, गधा, बकरा, हिरण, कुत्ता और विभिन्न पक्षियों के चित्र योग्यता से बनाये जाते थे। खोसोर्बाद के रिलीफों से यह ज्ञात होता है कि असीरिया के चित्र और आचरण के राष्ट्रीय रूप को प्रकट करते हैं।

असीरिया वालों के मन्दिर और मकान प्रायः पत्थर के बने होते थे जिनमें महराबों और खम्भों का प्रयोग किया जाता था। खम्भों के प्रयोग में वे अधिक सफल न हो सके। उनकी इमारतों में विशालता के अनुरूप सुन्दरता का समावेश कम है और यही उनकी वास्तुकला का प्रमुख दोष माना जाता है।

कुछ पुरातत्वों की खोज के आधार पर कहा जा सकता है कि असीरियन लोग रंगीन और ग्लेज किये हुये टेम्परा चित्र बनाने में पटु थे। ईंटों और बर्तनों पर भी वे ग्लेज का प्रयोग करते थे। यद्यपि असीरियन मुद्रायें कला की दृष्टि से महत्वशाली नहीं हैं परन्तु मुद्राओं का प्रयोग असीरिया वाले काफी संख्या में करते थे। फर्नीचर आदि का निर्माण भी असीरिया में होने लगा था।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि एशिया की अन्य सभ्यताओं की तुलना में असीरिया की सभ्यता का कोई विशेष महत्व नहीं है। असीरिया के सम्राट अपनी क्रूरता के लिए प्रसिद्ध थे अतएव असीरिया के पतन पर विभिन्न जातियों को प्रसन्नता ही हुई।

धर्म, दर्शन, साहित्य और कला के क्षेत्र में जो कुछ असीरिया ने दूसरों को दिया उससे कहीं अधिक दूसरों का छीना है।

सारांश

कहा जाता है कि इस साम्राज्य की नींव सन् 1276 ई० पू० में श्लमनेसर ने डाली। इस साम्राज्य का प्रारम्भिक काल तिगलथ पिलेसर से प्रारम्भ होता है। इसके पश्चात् दुर्बलता का युग आया। इस युग में असुर-नसिर-पाल और श्लमनेसर आदि प्रमुख राजा हुये। साम्राज्य के तृतीय खण्ड का निर्माता तिगलथ पिलेसर तृतीय था। तत्पश्चात् सारगोनी वंश के हाथ में शासन की बागडोर आई। इस वंश का संस्थापक शरुकिन था जो सारगोन द्वितीय के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके बाद सेनाकेरिब गद्दी पर बैठा। सारगोनो वंश का चरमोत्कर्ष असुरबनिपाल के शासन काल में हुआ। यह इस युग का सर्वश्रेष्ठ सम्राट माना जाता है। 615 ई० पू० में नेबोपलेस्सर और उवक्षत्र ने असीरिया पर आक्रमण किया इस प्रकार असीरियन साम्राज्य का पतन हुआ। इस पतन के लिए असीरियन स्वयम् उत्तरदायी थे। वे इतने क्रूर थे कि जनता उन्हें नहीं चाहती थी।

असीरियन साम्राज्य का शासन ताकत के जोर से चला। साम्राज्य में तीन कोटि के प्रांत थे। सेना में दो प्रकार के सैनिक होते थे—सैनिक शिक्षा प्राप्त किये हुये लोग, राष्ट्रीय सेना के सदस्य। यह प्रथा सारगोनी युग की देन थी। असीरिया की दण्ड-व्यवस्था बड़ी कठोर थी। छोटे से छोटे अपराध के लिये कड़ा दण्ड दिया जाता था।

समाज दो वर्गों में विभाजित था—स्वतन्त्र नागरिक, दास। स्वतन्त्र नागरिकों की तीन श्रेणियाँ थीं—मारबनुति (सामन्त वर्ग), उस्माने (दस्तकार वर्ग) खुब्शी या श्रमिक वर्ग। गुलामों को दास बनाया जाता था। शासन-व्यवस्था को देखते हुए स्त्रियों की दशा को अच्छी ही कहा जायगा। इस युग में कर प्रथा भी प्रचलित थी। गेहूँ, बाजरा और जौ की खेती मुख्य रूप से होती थी। काफिलों द्वारा विदेशों से व्यापार होता था।

असीरिया और बेबिलोनिया वालों के धर्म में बहुत कुछ समानता थी। इनके राष्ट्र-देव अशुर थे। ये लोग बड़े अन्ध-विश्वासी थे। पुजारी वर्ग का बड़ा सम्मान होता था।

असीरियन स्वतन्त्र साहित्य उपलब्ध नहीं है। बेबिलोनिया की कुछ साहित्यिक कृतियों का अनुवाद अवश्य किया गया था। कहा जाता है कि असुरबनिपाल के पुस्तकालय में 30000 पुस्तकें थीं। ये लोग कीलाक्षर लिपि का प्रयोग करते थे।

इस लिपि को असीरिया वालों ने सरल बनाने का प्रयास किया था। वैज्ञानिक क्षेत्र में भी इनकी मौलिक देन बहुत कम है। कला के क्षेत्र में ये लोग बेबिलोनिया वालों से आगे बढ़ चुके थे। पशुओं की आकृति चित्रित करने में ये बड़े प्रवीण थे। इनके मकान और मन्दिर पत्थर के बने होते थे। ये ग्लेज किये हुये टेम्परा चित्र बनाने में पटु थे।

इन्होंने सांस्कृतिक क्षेत्र में जो भी उन्नति की उसको इनकी लड़ने-मरने की प्रवृत्ति के कारण विशेष महत्व नहीं दिया गया।

ईरान की सभ्यता और संस्कृति

IRANIAN CIVILIZATION AND CULTURE

अध्याय | 5

प्राचीन पारसी सम्राट और उनकी शासन-व्यवस्था

(ANCIENT PERSIAN EMPIRES AND THEIR ADMINISTRATION)

प्रश्न 1—डेरियस महान के शासन-काल का संक्षिप्त विवरण दीजिये।

(पटना विश्वविद्यालय)

Write a short account of the rule of Darius the Great.

(Patna University)

प्रश्न 2—डेरियस के समय में पर्शियन साम्राज्य की सीमा और शासन-प्रणाली का वर्णन कीजिये।

(लखनऊ विश्वविद्यालय)

Describe the government and extent of the Persian empire under Darius.

(Lucknow University)

प्रश्न 3—साइरस द्वितीय के शासन-काल की प्रमुख घटनाओं का वर्णन कीजिये।

Describe the main events during the rule of Cyrus II.

प्रश्न 4—ईरान की भौगोलिक स्थिति और प्राचीन जातियों का संक्षेप में वर्णन कीजिये। ईरान और भारत के प्राचीन सम्बन्धों के विषय में आप क्या जानते हैं ?

Give a short account of the geographical condition of Iran. What do you know about the relations of Iran and India.

प्रश्न 5—ईरान की प्राचीन सभ्यता पर अन्य सभ्यताओं के प्रभाव का विवेचन कीजिये।

(विक्रम विश्वविद्यालय)

Diseuss the effect of other civilizations on the ancient Iranian civilization.

(Vikram University)

प्रश्न 6—ईरान के हखामशी युग की शासन-व्यवस्था का वर्णन कीजिये।

Describe the administration of Achaemenian period of Iran.

भौगोलिक स्थिति

एशिया के देशों में ईरान का महत्वपूर्ण स्थान है। भौगोलिक दृष्टि से ईरान को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—उत्तरी ईरान, मध्यवर्ती ईरान और पश्चिमी तथा दक्षिणी ईरान।

सिन्धु घाटी से लेकर दजला नदी की घाटी तक का प्रदेश ईरान का पठार के नाम से पुकारा जाता है। वर्तमान ईरान अथवा फारस इसका पश्चिमी, बलोचिस्तान दक्षिण पूर्वी और अफगानिस्तान उत्तर पूर्वी भाग है। इसके उत्तर में एलब्रुर्ज और कुपेहदाघ पर्वत की ऊँची-ऊँची चोटियाँ और अनेक नदी की घाटी है जो ईरान को रूस से अलग करती है। ईरान के उत्तरी पूर्वी भाग गुर्गान और खुराशान, कैस्पियन सागर और एल्बुर्ज पर्वत के बीच के भाग मजनदेरान और गिलान तथा उत्तर पश्चिमी भाग अजरबेजान कहलाते हैं।

मध्यवर्ती ईरान के उत्तर में नमक का रेगिस्तान और दक्षिण में लुट का रेगिस्तान स्थित है। यह विश्व का सबसे अधिक सूखा प्रदेश माना जाता है। ईरान का मध्यवर्ती पठार 6,40,000 वर्ग मील विस्तृत और 4000 फीट ऊँचा है। यद्यपि यह प्रदेश बहुत सूखा है परन्तु फिर भी इसकी जमीन बहुत अधिक उपजाऊ है। जहाँ कहीं भी कृत्रिम सिंचाई की जा सकती है, बहुत अच्छी खेती होती है। पुरातन युग से ही ईरान के लगभग सभी बड़े नगर—तेहरान, एकबटना, हेक्टोमपाइलोस, काजविन पेसरगेडाई, हिरात, इस्फहान, पर्सिपालिस, इस्तखर तथा शीराज—इसी मध्यवर्ती प्रदेश में स्थापित हुए।

ईरान के पश्चिम में जगरोस और मकरान पर्वत हैं। जगरोस के दक्षिण पश्चिम में करुन नदी बहती है। प्राचीन काल में यह स्थान एलम अथवा सूसियाना कहलाता था। इसका प्रसिद्ध नगर सूसा था जो अपनी सम्पन्नता और सभ्यता के लिए ईरान के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसके उत्तर में लूरिस्तान और पूर्व में अत्यन्त शुष्क प्रदेश किमानी और फार्स हैं। ईरान का दक्षिणी पूर्वी भाग ईरानी अथवा फारसी बलूचिस्तान के नाम से पुकारा जाता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से ईरान की भौगोलिक स्थिति का महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन काल में यह पूर्व और पश्चिम को बाँधने वाला एक सूत्र माना जाता था। इस

सम्बन्ध में हेनरी बर्र का मत है—"प्राचीन काल में यह देश पूरब और पश्चिम को जोड़ने वाली कड़ी था। इस देश ने व्यक्तियों तथा फौजों को स्थान परिवर्तन करते हुये और सुमानी की खाड़ी तथा कैसिपियन सागर के मध्य जाते हुये देखा है। यह देश दो सभ्यताओं के मेल का स्थान रहा है।

"Today the country is at the great roads of the world, once it was the connecting link between the Far East and the West; it saw people migrating, and afterwards armies on the march flowing over the high plateus, between the Caspian Sea and the Gulf of Oman; it was a high way and the cross-roads of the peoples, where civilizations met.

— Henry Berr.

ईरान की प्राचीन जातियाँ

ऐसा विश्वास किया जाता है कि अति प्राचीनकाल में ईरान में द्रविड़ जातियाँ रहती थीं। दूसरी सहस्राब्दी ई० पू० में ईरान पर आर्य ईरानियों ने आक्रमण किया जो इण्डो-योरोपियन परिवार की शाखा के थे। युद्ध में विजय प्राप्त कर वे वहीं रहने लगे।

3000 ई० पू० के अन्त तक भारत से लेकर योरुप तक इण्डो-योरोपियन अथवा आर्य जाति निवास करती थी। एकियन, डोरियन, रोमन, केल्ट आदि इसी परिवार की शाखाएँ थीं। पश्चिमी एशिया के हित्ती, कसाइट और मितन्नी जातियों के शासक भी आर्य ही थे। सम्भवतः कसाइट और मितन्नी जाति के शासक आर्य जाति की ईरानी शाखा के थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि अति प्राचीन काल में ईरान में आर्य जाति ही निवास करती थी।

प्राचीन काल में ईरान और भारत का सम्बन्ध

ईरान का मूल रूप 'एर्यान' है। इसका अर्थ है—आर्यों की भूमि। यह पश्चिम में हिन्दूकुश से मिला हुआ भाग था। धीरे-धीरे ईरानी आगे बढ़ते गये और उनका राज्य कैस्पियन सागर एवं दजला-फरात तक विस्तृत हो गया। आरम्भ में वे फारस की खाड़ी में निवास करते थे। आसपास के अन्य देशों में जब फारस के लोगों की अधिकता हो गई तो वे भाग भी फारस के नाम से पुकारे जाने लगे।

विद्वानों का मत है कि वैदिक-कालीन आर्यों की अनेक शाखाएँ सिन्धु नदी से लेकर कोचक तक फैली हुई थीं। यद्यपि इस विषय में विद्वान एक मत नहीं हैं कि आर्यों का मूल निवास कहाँ था परन्तु इसमें किसी को भी सन्देह नहीं उनका प्रसार

सबसे पहले पंजाब और अफगानिस्तान में हुआ। कुछ विद्वान आर्यों का मूल निवास स्थान भारत मानते हैं। डा० गाइल्स पामीर का प्रदेश बतलाते हैं। प्रो० मैक्समूलर उनका निवास स्थान मध्य एशिया मानते हैं। उनका मत है कि आर्यों की सभ्यता का समुचित ज्ञान हमें वेद और अवेस्ता से होता है। इन दोनों ग्रन्थों का समुचित अध्ययन करने पर यह प्रतीत होता है कि इनके प्रणेता और उनके वंशज बहुत समय तक साथ-साथ रहे। विश्व के समस्त प्राचीन देशों में आज भी असुर, वरुण और नासत्यो की आराधना की जाती है। भारतीयों और ईरानियों के धार्मिक विचारों, रीति-रिवाजों पर दृष्टिपात करने से पता लगा है कि इन दोनों का उद्गम स्थान एक ही है। अवेस्ता और वेदों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भारतीय और ईरान वह्लीक और अफगानिस्तान क्षेत्र में रहा करते थे। यद्यपि योरुप की बहुत-सी जातियाँ अपने को आर्य मानती है परन्तु ईरानी आर्यों से बहुत कुछ मिलते हुये हैं। प्राचीन काल में आर्यों की एक शाखा खत्ती ने अपना प्रसार पश्चिम की ओर किया और वे एशिया कोचक में रहने लगे। दूसरी शाखा मितन्नी फिलीस्तीन में बस गई। धीरे-धीरे इस शाखा के लोग मादिया के पर्वतों, पर्सु के मैदानी इलाकों में रहने लगे। इसी क्षेत्र को आजकल ईरान के नाम से पुकारा जाता है।

भारतीय अपने को आर्यों की सन्तान कहते हैं। दूसरी ओर ईरानी भी अपने को आर्यों का वंशज मानते हैं। इस सम्बन्ध में हेनरी बर्र ने लिखा है—"एक जन-समुदाय जो वास्तव में आर्यों की सन्तानें थीं, जिनमें भाषाई एकत्व भी था, भारत में बसीं। किस काल में हिन्दूकुश से ये लोग भारत में आये नहीं बताया जा सकता और न उनके मार्ग का ही ज्ञान होता है परन्तु कहा जा सकता है कि परिवर्तन ईसा से पूर्व पन्द्रहवीं और बारहवीं शताब्दियों के बीच हुआ।

"A population whose origin.. ...was Aryan, and fairly close from the linguistic point of view, to that of the people who occupied India. To the movements which took it on the Iranian plateau and into Great Hindi peninsula it is impossible to give a date, and we can barely follow their course; but they probably came to an end between the XVth and XIIth centuries before our era."

(J. de. Morgan)

आर्यों का प्रसार जब ईरान में हो गया तो उन्होंने वहाँ अपनी सभ्यता और संस्कृति की नींव डाली। इनकी दो उपशाखाएँ पश्चिम और पूर्व में फैल गईं। इनमें से एक को पराशि (फारसी) और दूसरी को अवस्ती कहते हैं। हख्मानी सम्राटों के

अभिलेख फारसी में ही मिलते हैं। आगे चलकर भारत में भी फारसी का बहुत अधिक प्रयोग हुआ।

अवेस्ता की भाषा और संस्कृत भाषा में बहुत अधिक साम्य है। इस सम्बन्ध में कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

अवेस्ता की भाषा	संस्कृत
यातु	यातुः
गोमेज़	गोमूत्र
पितर	पितृ
अस्प	अश्व
अप	आप
अज़	अज
हुरा	सुरा
उत	उत्
पद्य	पाद
बन्द	बन्ध
अहिम	अस्मि
फ़दम	प्रथम
द्वार	द्वार
बूमि	भूमि
बू	भू
तुम	त्वम्
ब्रात्र	भ्रातृ
इन्द्र	इन्द्र
अमेरे तात्	अमरत्व

इन समस्त तथ्यों से यह प्रतीत होता है कि भारतीय और ईरानी आर्य वंश की दो शाखाएँ हैं। दोनों के वंशज एक ही थे और दोनों धमनियों में आर्यों का रक्त ही प्रभावित हो रहा है।

ईरान की सभ्यता पर अन्य सभ्यताओं का प्रभाव

ईरान की सभ्यता पर अन्य प्राचीन सभ्यताओं का व्यापक प्रभाव पड़ा। आगे हम इस प्रभाव की चर्चा संक्षेप में कर रहे हैं—

(अ) सुमेरियन सभ्यता का प्रभाव—सुमेरियन सभ्यता दजला और फरात नदियों के बीच में पनपी और ईराक में काबुल तथा नैनवे आदि को बसाने आदि का श्रेय सुमेरियनों को प्राप्त है। सुमेरियन लगभग चार हजार ई० पू० में फारस में प्रवेश कर चुके थे। फारस के पश्चिमी किनारे पर इनका एक प्रसिद्ध मन्दिर था। यह ईरान के रास्ते ही आते-जाते थे इसलिये ईरानियों पर अत्यन्त व्यापक प्रभाव डाला। गणित, ज्योतिष और कला के क्षेत्र में ईरानियों को सुमेरियनों की महान देन है और एक विद्वान का यह कथन पूर्ण तथा उचित है कि सुमेरियन सभ्यता ने ईरानी सभ्यता को अपने पूरे रंग में रंग दिया है।

(ब) एलम एवं असीरिया की सभ्यता का प्रभाव—एलम की सभ्यता ने भी ईरानी सभ्यता को बहुत अधिक प्रभावित किया। एलम का राज्य कारुन की घाटी में स्थित था और इनकी राजधानी सूसा थी। इन्होंने ईरानियों पर अत्यन्त व्यापक प्रभाव डाला। बहुत समय तक एलम और बाबुल के बीच सङ्घर्ष हुआ। जब असीरिया ने एलम पर आक्रमण किया और सूसा को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया तो सूसा के मिट जाने पर एलमवासी असीरियनों के नियन्त्रण में आ गये। असीरियनों ने ईरान में भी अपना राज्य स्थापित किया और इस प्रकार एलम तथा असीरिया की मिली-जुली सभ्यता ने ईरान की सभ्यता को प्रभावित किया।

(स) सिन्धु-घाटी की सभ्यता का प्रभाव—प्राचीन ईरानी सभ्यता पर सिन्धु-घाटी की सभ्यता का प्रभाव पड़ा। ईरान की खुदाई में अनेक ऐसी वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं जो सिन्धु-घाटी की सभ्यता से मिलती-जुलती हैं। यह समानता अधिक देखने को मिलती है। वास्तव में सुमेरियन सभ्यता और सिन्धु-घाटी की सभ्यता बहुत कुछ मिलती-जुलती है। बाबुल की खुदाई में जो चीजें प्राप्त हुई हैं वैसी ही चीजें मोहन-जोदड़ो की खुदाई में भी प्राप्त हुई हैं। सुमेरियनों की सभ्यता और सिन्धु-घाटी की सभ्यता दोनों ही सभ्यताओं ने ईरानी सभ्यता पर प्रभाव डाला।

(द) भारतीय आर्यों की सभ्यता का प्रभाव—हमने पहले ही इस बात का उल्लेख किया है कि भारतीय आर्यों की सभ्यता और प्राचीन ईरानी सभ्यता बहुत कुछ मिलती-जुलती हैं। कुछ विद्वानों का यह मत है कि आर्य ईरान से भारत में आये और इसलिये ईरानी सभ्यता ने भारतीय सभ्यता को प्रभावित किया न कि भारतीय सभ्यता ने ईरानी सभ्यता को। परन्तु विद्वानों का दूसरा वर्ग भारत को ही आर्यों का आदि स्थान मानता है और उनका कथन है कि भारतीय आर्यों की सभ्यता ने ही ईरान की सभ्यता को प्रभावित किया है।

राजनीतिक इतिहास

ईरानी लोग अपने प्राचीन इतिहास का विभाजन सात कालों में करते हैं जिनकी रूपरेखा नीचे प्रस्तुत है—

(1) पिशदादि काल
(2) किमानी काल
(3) मादिया काल या मीडियन युग
(4) हख़मानी या हख़ामशी काल
(5) यूनानी काल
(6) पर्थियन काल
(7) ससैनियन काल

पिशदादि और किमानी काल

चौथी सहस्राब्दी ई० पू० से लेकर प्रथम सहस्राब्दी ई० पू० तक का इतिहास इन युगों के अन्तर्गत आता है। इस इतिहास के विषय में विशेष जानकारी नहीं है। दूसरी सहस्राब्दी ई० पू० की प्रारम्भिक शताब्दियों तक ईरानी आर्य ईरान को पूर्ण रूप से उपनिवेश बनाने और नई संस्कृति का प्रयोग करने में संलग्न रहे। इस कार्य के लिये उन्होंने अपने को बहुत-सी शाखाओं में विभाजित कर लिया। इनमें मीडियनस, जिकीतु, पर्सियनस्, पार्थव, हरैव, हेरोडोटस के एरियन, हायरकेनियन, अवेस्ती, ड्रॅजन, एशकोशियन, बाख्त्री अथवा वैक्ट्रियन, कोरेस्मियन, मारनियन और साण्डियन आदि उल्लेखनीय हैं। इन जातियों में बहुत-सी आर्येतर जातियाँ मिल गईं। कसाइटों और मितन्नियों का उल्लेख भी मिलता है जो ईरानी आर्यों की उप-शाखायें मानी जाती हैं।

यह समस्त जातियाँ अपने अस्तित्व के लिये निरन्तर संघर्ष करती रहीं और अंत में ईरान के बहुत बड़े भाग पर इनका अधिकार हो गया। अतः हम कह सकते हैं कि ईरानियों के इतिहास का पिशदादि और किमानी काल सङ्घर्ष युग था जिसमें इस जाति ने अपने को सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया।

मादिया काल अथवा मीडियन युग

ईरान के इतिहास में मादिया का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। मादिया या मीडिया ईरान का उत्तरी-पश्चिमी भाग था। टोलेमी के विवरणों से प्रतीत होता है इसकी प्राचीन राजधानी 'हगमतान' जिसे आधुनिक काल में हमदन कहते हैं, थी। इस शब्द का शाब्दिक अर्थ 'मिलने का स्थान' होता है। डायोडोरस का मत है कि इसका

क्षेत्रफल 50 वर्गमील था। इस युग में अनेक प्रतिभाशाली सम्राट हुये जिनकी चर्चा हम नीचे कर रहे हैं—

डियोकीज (Deioces)—हमदन का प्रथम शासक डियोकीज माना जाता है। यह मिडिस जाति का था। मीडियस असीरियनों के बहुत निकट थे। इसलिये इन्हें बार-बार उनके आक्रमणों का सामना करना पड़ता था फलस्वरूप वह एकता के सूत्र में बँध गये। हेरोडोटस का मत है कि उनके संयुक्त राज्य की स्थापना डियोकीज नामक नागरिक ने की। उसने अपने साथियों के झगड़ों को निपटाना प्रारम्भ किया और फलस्वरूप उसे कीर्ति मिली। जब उसके पास बहुत से मुकदमे आने लगे तो उसने इस कार्य का परित्याग कर दिया। फलस्वरूप देश में अराजकता फैल गई और अन्त में मीडियनों ने उसे अपना राजा चुन लिया। राजा चुने जाने पर उसने हमदन अथवा एकबटना को अपनी राजधानी बनाया। उसने दरबार के रीति-रिवाज निश्चित किये और राजाज्ञाएँ प्रेषित कीं। वह असीरिया की शक्ति को नष्ट करने में सफल हुआ। सारगोन द्वितीय (722-705 ई० पू०) के एक अभिलेख के अनुसार उसने अपने शासन-काल में उरंतु नरेश से मिलकर एक सङ्घ की स्थापना की।

फ्रवर्तिश अथवा क्षस्त्रतरित (Cyaxaras)—हेरोडोटस का मत है कि डियोकीज की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र फ्रवर्तिश सिंहासनारूढ़ हुआ परन्तु असीरियन अभिलेखों में इस समय (लगभग 680-653 ई० पू०) वहाँ क्षस्त्रतरित नामक राजा का राज्य बताया जाता है। कुछ विद्वानों के अनुसार ये दोनों एक ही व्यक्ति थे। इसके शासन-काल में मिडिस जाति ने असुरों की राजधानी नीनेव को उजाड़ डाला और सारडिस (Sardis) नगरी पर आक्रमण कर दिया। ऐसे समय में सूर्य ग्रहण पड़ा और उसकी सेना को वापिस लौटना पड़ा। इसके एक साल बाद ही उसकी मृत्यु हो गई। उसके जीवन काल में मीडिया जाति ने बहुत अधिक उन्नति की। उसने किस्मरियन और सीथियन जातियों को हराकर एक सङ्घ बनाया।

इश्तवेगु या अष्टागीज (Astyages)—अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् अष्टागीज गद्दी पर बैठा। वह बहुत अधिक विलासी था। राज्य-कार्य में उसकी रुचि न थी। उसके शासनकाल में उच्च वर्गों में विलासिता अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई। उसके शासनकाल में ८न्सान प्रान्त के शासक कम्बुजिय प्रथम ने अपनी शक्ति बढ़ा ली और उसकी शक्ति से प्रभावित होकर अष्टागीज ने अपनी पुत्री का विवाह उससे कर दिया। परन्तु कम्बुजिय के पुत्र पुरुष द्वितीय ने उसके असन्तुष्ट सामन्तों से मिलकर 55२ ई० पू० में विद्रोह कर दिया और 850 ई० पू० में मीडिया को अपने अधीन कर लिया।

मादियों का राजनैतिक संगठन, साहित्य एवं कला—मीडियनों की सांस्कृतिक उन्नति, राजनीतिक संगठनों के विषय में विशेष जानकारी नहीं है। उनके न तो कोई अभिलेख मिलते हैं और न कोई साहित्य। साकिज से प्राप्त कोष से उनकी कला के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। उनकी कला-कृतियों पर असीरियनों की छाप है। उनकी वास्तुकला के विषय में कोई भी जानकारी नहीं मिलती।

इस जाति के लोग अपनी विलासिता और वैभव के लिये प्रसिद्ध थे। इस संबंध में यद्यपि उनका कोई साहित्य नहीं मिलता परन्तु यूनानियों के साहित्य से उनके विषय में जानकारी प्राप्त होती है। ऐसा कहा जाता है कि उनकी वेशभूषा और शासन के नियमों को हखामशी या हखमनीशी शासकों ने अपनाया था।

धर्म—ऐसा विश्वास है कि इस जाति के लोग देवताओं और असुरों दोनों की ही पूजा करते थे। उनका विश्वास था कि देवता रथों पर चलते हैं और मनुष्यों पर दया करते हैं। कदाचित् बलि की प्रथा भी इस युग में प्रचलित थी।

बहुत से लोग प्रसिद्ध धर्मोपदेश और सुधारक जरथुष्ट्र (Zoroaster) को इस युग का ही मानते हैं। परन्तु इस विषय में पर्याप्त मतभेद है।

हखमानी अथवा हखाम्शी काल

ईसा से 700 वर्ष पूर्व फार्स नामक प्रांत में हखाम्शी रहते थे। इन लोगों ने ईरान के इतिहास में बहुत अधिक यश अर्जित किया और यह पर्शियन नाम से विख्यात हुये। फार्स प्रांत में रहने वाली इस जाति ने धीरे-धीरे अन्य आर्य जातियों से मिलकर अपनी शक्ति संचित की।

प्रारम्भिक हखाम्शी नरेश

पार्शियनों को आरम्भ में एलम के अधीन रहना पड़ा। परन्तु जब एलम और असीरियों के मध्य संघर्ष हुआ तो उन्होंने हखाम्शी वंश के नेतृत्व में एक नये राज्य की स्थापना कर ली। यह काल लगभग 675 ई० पू० माना जाता है। इस वंश का संस्थापक हखामश (Achaemene) था। उसके पुत्र तिशपिज (Tiespes) ने एलमी के आधिपत्य को समाप्त कर अन्सान पर विजय प्राप्त कर ली। परन्तु हेरोडोटस के मतानुसार उसे मीडियन राजा का आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका राज्य दो भागों में विभाजित हो गया। कुरुष प्रथम को अन्सान और पशुमर्म का राज्य मिला और दूसरे पुत्र अरियाम्न को फार्स का राज्य मिला। इस प्रकार हखाम्शी वंश की दो शाखाएँ प्रचलित हो गईं। डेरियस महान के बेटिस्तून के शिला-लेख में अंकित है—**"मेरे पहले मेरी जाति के आठ सम्राट**

हो चुके हैं। मैं नौवां (सम्राट) हूँ। इस प्रकार हम सभी दो शाखाओं से उत्पन्न हुए हैं।"

कुरुष प्रथम के उत्तराधिकारी कम्बुजिय ने अरियाम्न के उत्तराधिकारी अरशंम को परास्त किया और पुनः एक संगठित राज्य की स्थापना की। कम्बुजिय प्रथम ने अपनी शक्ति को बढ़ाया और फलस्वरूप मीडिया के राजा इश्तुवेगु को अपनी पुत्री का विवाह उससे करना पड़ा। यद्यपि यह मीडियन आधिपत्य को स्वीकार करता रहा परन्तु फिर भी निरन्तर अपनी शक्ति बढ़ाता रहा।

कुरुष या साइरस द्वितीय

इसको साइरस महान् (Cyrus the Great) के नाम से पुकारा जाता है। यह इस वंश का सबसे महान् सम्राट था। वह बड़ा पराक्रमी, व्यवहार कुशल, उदार और सुन्दर था। यह नैपोलियन की भाँति बहुत अधिक महत्वाकांक्षी था और अपने राज्य की सीमाओं को बढ़ाने में निरन्तर प्रयत्नशील रहा।

सम्राट कुरुष या साइरस की विजय—अपने राज्य-काल में साइरस ने बहुत से राज्यों को जीतकर अपने अधीन कर लिया। इनकी चर्चा नीचे की जा रही है—

(1) मीडिया विजय—साइरस द्वितीय ईरानी इतिहास में वही स्थान रखता है जो भारतीय इतिहास में चन्द्रगुप्त मौर्य। जब वह गद्दी पर बैठा तो उसका साम्राज्य मीडियन राजा इश्तुवेगु के अधीन था। लेकिन आठ वर्ष के भीतर ही वह स्वयं मीडिया का सम्राट बन बैठा। ऐसा कहा जाता है कि मीडियन सम्राट इश्तुवेगु के सरदार उससे अप्रसन्न हो गये और उन्होंने कुरुष को आमन्त्रित किया। कुरुष तो मौके की तलाश में था ही, उसने उनके निमन्त्रण को स्वीकार कर मीडिया पर आक्रमण कर दिया और युद्ध में विजयी होकर एकबटना को अपनी राजधानी बनाया।

(2) लीडिया और यूनानी उपनिवेशों पर विजय—मीडिया को अपने अधिकार में करने के पश्चात् कुरुष ने असीरिया के अधिकांश भाग, उरंतु और एशिया माइनर पर अधिकार कर लिया तत्पश्चात् उसने पर्शिया को जीतकर लीडिया के राजा क्रोयसस पर आक्रमण किया। क्रोयसस बहुत वीर सम्राट था; परन्तु कुरुष के आगे उसकी एक न चली। 546 ई० पू० में सर्डिस (Sardis) का पतन हुआ और लीडिया कुरुष के अधीन हो गया। किंवदन्ती है कि अपनी पराजय से दुखी होकर क्रोयसस ने आत्म-हत्या करने का प्रयास किया परन्तु कुरुष ने उसे बचाकर बहुत अधिक सम्मान प्रदान किया।

क्रोयसस के राज्य काल में एशिया माइनर के पश्चिमी तटवर्ती प्रदेश में यूनानियों के कई उपनिवेश थे। ये उपनिवेश क्रोयसस के अधीन थे परन्तु कुरुष के साथ युद्ध में वे उसकी सहायता न कर सके। इन उपनिवेशों ने लीडिया के पतन के पश्चात् कुरुष से लोहा लेना चाहा परन्तु पारस्परिक कलह के फलस्वरूप एक-एक करके उनका पतन होता गया।

(3) **उत्तर-पूर्व और पूर्व में विजयाभियान**—कुरुष ने उत्तर-पूर्व की ओर रहने वाली बर्बर जातियों पर आक्रमण करके हायरकेनिया पर विजय प्राप्त की और हखाम्शी वंश की दूसरी शाखा के भूतपूर्व नरेश अर्शम के पुत्र को वहाँ का गवर्नर बनाया। इसके पश्चात् उसने ड्रेन्जियान, एराकोशिया, मार्जियान और बैक्ट्रिया पर विजय प्राप्त की। वंक्षु नदी के उत्तर के मैदानों में उसने नगरों का निर्माण किया। भारत में उसको सफलता मिली अथवा नहीं इस विषय में पर्याप्त मतभेद है। एरियन एक ओर तो उसे सिन्धु नदी तक के प्रदेश का स्वामी बतलाता है और दूसरी ओर उस प्रदेश में पूर्व काल में असीरियनों और मीडियनों के शासन की बात भी कहता है। अतः एरियन के मत पर विश्वास नहीं किया जा सकता और कुरुष को सिन्धु प्रदेश का स्वामी नहीं माना जा सकता। प्लिनी आदि विद्वानों का यह मत कि उसका साम्राज्य काबुल की घाटी तक था अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

(4) **बेबिलोन और पश्चिमी प्रान्तों पर विजय**—प्राचीन काल में बेबिलोन पश्चिमी एशिया का बहुत व्यापारिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक केन्द्र माना जाता था। 538 ई० पू० तक इसकी संस्कृति बहुत अधिक बढ़ी-चढ़ी थी। उस समय वहाँ नबोनिडस नामक राजा राज्य कर रहा था। यहूदी नबोनिडस से घृणा करते थे और मर्दुक के पुजारी नबोनिडस से छुटकारा पाना चाहते थे। उन्होंने कुरुष को निमन्त्रण दिया। कुरुष ने बेबिलोनियनों पर आक्रमण करके उन्हें पराजित कर दिया और यहूदियों को फिलिस्तीन लौटने और येरुशलम में मन्दिर बनवाने की आज्ञा दे दी। बेबिलोन पर विजय से बेबिलोनियन साम्राज्य के सीरिया और फिनीशिया भी उसके अधिकार में आ गये।

कुरुष या साइरस की महानता—बेबिलोन का पतन एक साधारण घटना नहीं थी। वह एक नगर का पतन नहीं वरन् एक जाति, एक सभ्यता और एक संस्कृति का पतन था। यह नगर सेमेटिक जातियों के राजनीतिक उत्कर्ष का केन्द्र था। कुरुष की बेबिलोन-विजय के पश्चात् आर्यों का पश्चिमी एशिया में भी निश्चित रूप से प्रभुत्व स्थापित हो गया। 538 ई० पू० की कुरुष की बेबिलोन विजय एक ऐसी घटना है जिसने आगे के सांस्कृतिक और राजनीतिक इतिहास में बहुत बड़ा मोड़ प्रस्तुत किया।

कुरुष के युग से लेकर इस्लाम के काल तक यह नगर आर्यों के ही अधीन रहा। इसका कारण यह था कि कुरुष ने बेबिलोनिया के निवासियों के हृदय पर विजय प्राप्त कर ली थी। डॉ० ग्रिशमैन ने लिखा है—

"Cyrus presented himself to Babylonian people not as a conqueror but as a liberator and the legitimate successor to the crown."

—Dr. Ghirshman.

कुरुष की मृत्यु 529 ई० पू० में मस्सागीटी (Massagatae) नामक एक असभ्य जाति से युद्ध करते समय हुई। अतः उसने अपने साम्राज्य को बढ़ाया तो परन्तु उसका संगठन भलीभाँति न कर सका।

कुरुष बहुत उदार और प्रतिभाशाली सम्राट था। वह साम, दाम, दण्ड और भेद सभी नीतियों का पंडित था। वह प्रत्येक धर्म के लोगों के साथ उदारता का व्यवहार करता था। जेरूसलम के टूटे हुये मन्दिर का उसने निर्माण करवाया। इस कार्य को पूर्ण करने के लिये उसने लेबनान और सागौन से धन्नियाँ मगाईं। इतिहासकारों ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। क्लिमेन्ट हुआर्ट ने अपनी पुस्तक Ancient Persian and Iranian Civilization में लिखा है—"निश्चय ही साइरस का स्थान इतिहास में बहुत ऊँचा है परन्तु प्रमाण के अभाव में उसे उच्चतम नहीं कहा जा सकता। केवल भाटों और चारणों की रचनाओं से ही उसे चार्लीमेग्न के समान कहानी नायक माना जाता है।"

"Cyrus is, beyond dispute, one of the greatest figures in history, and only the scantiness of the evidence left us by antiquity, has prevented him from being a very conspicuous figure. The idea formed of him down to times not far from our own, based on the classical authors, made him a legendary type like the Charlemagne of the mediaeval romances.

—K. Huart.

कहा जाता है कि साइरस ने अपनी मृत्यु के पूर्व अपनी संगमरमर की समाधि बनवाई थी। उसकी समाधि पर लिखा गया :—

"ऐ मनुष्यो मैं कम्बुजिय का पुत्र कुरुष हूँ। मैंने ईरान को महान बनाया और एशिया के देशों पर राज्य किया। मेरी इस समाधि से तुम ईर्ष्या न करना।"

इसमें किंचित् मात्र भी सन्देह नहीं कि कुरुष में एक अच्छे शासक के समस्त गुण विद्यमान थे और उसने अपने शासन को कड़े सुचारु रूप से चलाया।

कम्बुजिय कम्बाईसिस द्वितीय

कुरुष की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र कम्बुजिय द्वितीय गद्दी पर बैठा। उसका शासनकाल 529 ई० पू० से 522 ई० पू० तक माना जाता है। कुरुष के दो पुत्र थे। बड़े का नाम कम्बुजिय और छोटे का नाम वरीय या स्मरदिस (Smerdis) था। गद्दी पर बैठते ही कम्बुजिय ने अपने भाई स्मरदिस की हत्या करवा दी। सिंहासन पर आसीन होने पर उसने मिस्र पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न किया। उसने 525 ई० पू० में मिस्र पर चढ़ाई कर उसे जीत लिया परन्तु वहाँ के निवासियों के साथ उसने बड़ी निर्दयता का व्यवहार किया। वह अपने पिता की भाँति सहिष्णु और उदार नहीं था। उसने विदेशी देवी, देवताओं की प्रतिमाओं को नष्ट करवा दिया। उसने क्रोयसस को भी मृत्यु दण्ड दिया और स्वयम् की पत्नी तथा पुत्र को भी मरवा डाला। यह समस्त कार्य करने के पश्चात् उसने बड़ा आनन्द मनाया। यह सब उसके पागलपन का प्रतीक था।

उसके अत्याचारों और कुशासन से उसकी जनता क्षुब्ध हो उठी। शीघ्र ही उसके राज्य के अमीरों ने मिलकर उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। कुछ इतिहासकारों का मत है कि इससे घबड़ाकर उसने आत्महत्या कर ली। उसकी मृत्यु के पश्चात् 7 अमीरों ने मिलकर दारयवौष या डेरियस को गद्दी पर बैठाया। कहा जाता है कि गौतम नामक एक व्यक्ति जिसकी शक्ल स्मर्दिस से मिलती थी, ने सबसे पहले उसके विरुद्ध विद्रोह किया था परन्तु बाद में उस नकली स्मर्दिस को भी मार डाला गया और इस प्रकार डेरियस को उसका उत्तराधिकारी घोषित किया गया।

कम्बुजिय द्वितीय का पतन उसके क्रिया-कलापों के कारण ही हुआ। यद्यपि उसे विरासत में एक विशाल साम्राज्य मिला था जिसे उसके पिता साइरस ने अपने बाहुबल से प्राप्त किया था परन्तु वह शासन के प्रति सदैव उदासीन रहा और इस कारण ही उसका पतन हुआ। जहाँ एक ओर उसका पिता प्रतिभाशाली, योग्य शासक था वहाँ दूसरी ओर वह विलासी और शासन-प्रबन्ध से दूर होने वाला था। जार्ज रोलिन्सन ने उनके चरित्र के विषय में लिखा है—"वह अपने पिता की भाँति बहादुर, कार्य कुशल और शक्तिशाली था परन्तु उसमें अपने पिता की चतुराई, बुद्धिमानी औरअवसर के अनुकूल कार्य करने की कमी थी। वह घमंडी, उद्दण्ड और दूसरों के लिये सद्भावना रखने वाला न था। वह अधीर था और बदला लेने की भावना रखता था। घमंड के कारण

उयने कई भूलें कीं, दूसरों से घृणा के कारण वह कठोर और कालांतर में निर्दयी हो गया।"

"He was brave, active and energetic, like his father; but he lacked his father's strategic genious, his prudence, and his resources. Born in the pur le, he was proud and haughty, careless of the feelings of others, and impatient admonition or remostrance. His pride made him obstinate in error, and his contempt of other led on naturally to harshness and even to cruelty."

—George Rawlinson.

दारायवौष या डेरियस प्रथम

डेरियस की गणना हखाम्शी काल के महानतम सम्राटों में की जाती है। वह 521 ई० पू० में सिंहासनारूढ़ हुआ। डेरियस का महत्व जितना अधिक एक महान विजेता के रूप में है उससे कहीं अधिक उसका महत्व एक कुशल शासन प्रबन्धक के रूप में है। कहा जाता है कि कम्बुजिय द्वितीय की मृत्यु के बाद गौतम नामक व्यक्ति के हाथ में शासन की बागडोर आ गई परन्तु शीघ्र ही गौतम की हत्या कर दी गई और अमीरों ने डेरियस को सम्राट बनाया।

डेरियस के युद्ध—जिस समय डेरियस सिंहासनारूढ़ हुआ उस समय मिस्र, लीडिया, सुसियाना, बेबिलोनिया, मीडिया, असीरिया आदि में असन्तोष की भावना व्याप्त थी। मिस्र और लीडिया के स्थानीय शासकों ने डेरियस को अपना सम्राट मानने से इन्कार कर दिया। इसके साथ ही सुसियाना, बेबिलोनिया, मीडिया और असीरिया में भी विद्रोह होने लगे। वीर डेरियस ने इन सभी विद्रोहों को कुचल दिया और अनेक व्यक्तियों को मौत के घाट उतार दिया। कहा जाता है कि अकेले बेबिलोनिया में ही उसने 3000 व्यक्तियों को मरवा डाला। यही कारण है कि उसके विषय में एक विद्वान ने लिखा है, "वह रक्त और लोहे का पुरुष था।"

"He was the man of Blood and Iron."

512 ई० पू० में उसने थ्रेस और मेसीडोन पर विजय प्राप्त की और 510 ई० में उसने भारत के पंजाब और सिन्ध प्रान्तों को अपने अधीन कर लिया। डेरियस रूस की ओर भी बढ़ा और बोस्फारस की खाड़ी तक पहुँच गया।

490 ई० पू० में डेरियस मरेथान के युद्ध में बुरी तरह पराजित हुआ। इस युद्ध में पराजय के पश्चात् डेरियस को वापस लौटना पड़ा। 486 ई० पू० में मिस्र में विद्रोह हुआ परन्तु इसको दबाने के पहले डेरियस की मृत्यु हो गई।

डेरियस की शासन-व्यवस्था—डेरियस का महत्व एक विजेता के रूप में उतना अधिक नहीं है जितना अधिक एक कुशल शासन प्रबन्धक के रूप में। उसका साम्राज्य अत्यधिक विकसित था और फलस्वरूप उसने उसे 20 प्रान्तों में बाँटकर प्रत्येक प्रान्त में अपना एक गवर्नर नियुक्त कर दिया। गवर्नरों के कार्य की देख-रेख के लिये वह गुप्तचरों की नियुक्ति भी करता था। डेरियस ने न्याय और कानून व्यवस्था को सुधारने का घोर प्रयास किया। उसका दरबार ही देश का सर्वोच्च न्यायालय था और उसके साथ ही देश भर में अनेक न्यायालयों की स्थापना की गई। अपराधियों को भी अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाता था और उसके शासनकाल में कानून-वक्ता भी होते थे। जो न्यायाधीश अन्याय करता था उसकी खाल खिंचवा ली जाती थी। यदि कोई व्यक्ति घूस लेता पकड़ा जाता था तो उसको मौत की सजा दी जाती थी। राज-विद्रोह, स्त्री-अपहरण, हत्या, भूल से सम्राट के सिंहासन पर बैठना आदि जघन्य अपराध समझे जाते थे और इन अपराधों को करने वालों को मौत की सजा दी जाती थी, और चमड़ी उधड़वा ली जाती थी, दो पत्थरों के बीच अपराधी को रखकर उसका सर पीस दिया जाता था, पत्थर मार-मार कर हत्या कर दी जाती थी।

सम्राट डेरियस ने सेना का भी अत्यन्त उत्तम प्रबन्ध किया था। सेना दो प्रकार की होती थी—एक प्रकार की सेना स्थायी सेना कहलाती थी और दूसरे प्रकार की सेना संकटकालीन सेना होती थी। स्थायी सेना में साम्राज्य में बसे हुये सभी जातियों के लोग होते थे। इस प्रकार के सैनिकों की संख्या लगभग 1,80,000 थी। इन सैनिकों में एकताका अभाव था। बाह्य आक्रमणों के समय राज्य की ओर से सैनिकों की अनिवार्य भर्ती होती थी। 25 वर्ष की अवस्था से लेकर 50 वर्ष की अवस्था तक के सभी रण-निपुण व्यक्ति सेना में भर्ती कर लिये जाते थे।

धनुष, भाला, तलवार, चाकू आदि सैनिकों के मुख्य शस्त्र थे। सैनिक कवच और लोहे की टोपियों का उपयोग भी करते थे। डेरियस ने शाही अंगरक्षकों का भी प्रबन्ध किया था। ये अंगरक्षक अत्यन्त वीर और साहसी होते थे। इनमें लगभग 2000 घुड़सवार सैनिक होते थे, जिनका कर्त्तव्य युद्ध के समय सम्राट की रक्षा करना होता था।

सम्राट डेरियस ने सैनिकों को प्रोत्साहित करने के लिये अपनी सेना में कवियों आदि को भी स्थान दिया था। सैनिकों का मनोरंजन करने के लिये रखैलें, वेश्यायें और हिजड़े आदि भी युद्ध-भूमि में जाते थे।

डेरियस ने अपने समस्त साम्राज्य में गुप्तचरों का जाल बिछा दिया था। ये गुप्तचर राज्य की प्रत्येक गतिविधि की सूचना डेरियस को देते थे और डेरियस अपराधियों को कठोर दंड देता था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि डेरियस ने एक सुदृढ़ शासन-व्यवस्था को नींव डाली थी। कालांतर में अनेक सम्राट डेरियस की शासन-व्यवस्था से प्रभावित हुये और उन्होंने उसकी शासन-व्यवस्था को अपनाने का प्रयास किया।

डेरियस का धर्म—डेरियस जरथुष्ट्र धर्म का अनुयायी था और इस धर्म के प्रसार में उसने महान योगदान दिया। यद्यपि वह स्वयं जरथुष्ट्र धर्म को मानता था परन्तु उसने किसी को भी इस धर्म को मानने के लिये बाध्य नहीं किया। अपराधियों के लिए डेरियस जितना कठोर था, धार्मिक व्यक्तियों के लिये उतना ही उदार। उसके शासन-काल में जरथुष्ट्र के एकेश्वरवाद को महत्व प्रदान किया और जनता के बीच से अन्ध-विश्वासों को दूर किया गया।

डेरियस का मूल्यांकन—डेरियस हखामशी युग के अत्यन्त प्रतिभाशाली सम्राटों में था। हखामशी युग में साइरस द्वितीय और डेरियस प्रथम यही दो ऐसे सम्राट हैं जिनका नाम ईरानी इतिहास मे अत्यन्त गौरव के साथ लिया जाता है। डेरियस हमारे सम्मुख एक साम्राज्य विस्तारक के रूप में तो आता ही है; परन्तु साम्राज्य विस्तारक से अधिक इसका महत्व कुशल शासन प्रबन्धक के रूप में है। वह एक बहुमुखी प्रतिभा वाला व्यक्ति था और उसने शासन में जैसे को तैसा सिद्धांत को मान्यता प्रदान की थी। विरोधियों के लिये वह अत्यधिक कठोर था और अपराधियों को कठोर दंड देता था; परन्तु साधारण जनता के लिये वह अत्यधिक उदार था। कला से उसे विशेष प्रेम था और उसे अनेक मकबरे बनवाने का श्रेय प्राप्त है। उसके विषय में जार्ज रॉलिन्सन ने लिखा है—

"फारस के राजाओं में वही बहुगुणी कहा जा सकता है। वह सुप्रबन्धक, जनरल, राजनीतिज्ञ, निर्माणकर्त्ता, प्रबन्धक, कला साहित्य का प्रेमी आदि गुणों से युक्त था। उसके अभाव में ईरान उतनी शीघ्रता से पतनोन्मुख होता जैसे वह विकसित हुआ था। वह पूर्वीय क्षितिज में चमकते हुये सितारे की भाँति है।"

'Of all the Persian princes he is the only one who can be called 'many sided' He was organizer general, statesman, administrator, builder, patron of art and literature, all in one. Without him Persia would probably have sunk as rapidly as she rose, and would be known to us only as one of the many meteor powers which have shot athwast the horizon of the east.

—George Rawlinson.

क्षयार्ष अथवा वजक्सींज

डेरियस की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र क्षयार्ष गद्दी पर बैठा। वह बहुत सुन्दर और विलासी था। उसने 484 ई० पू० में मिस्र और 483 ई० पू० में बेबिलोन के विद्रोहों का दमन किया। इसके पश्चात् वह अपने पिता डेरियस की मेराथोन की पराजय का बदला लेने के लिये एक विशाल सेना लेकर चला। उसकी सेना में हेरोडोटस के मतानुसार 26 लाख 31 हजार सैनिक थे और इतनी ही संख्या में व्यापारी, इंजीनियर, सेवक और वेश्यायें तथा अन्य कर्मचारी थे। उनकी सेना में सभी जातियों का समिश्रण था। उसने अयोनियनों, मिस्रियों और फिनीशियों की सहायता से एक शक्तिशाली बेड़ा भी बनवाया था। परन्तु विशाल सेना होने पर भी वह सात्मिज, प्लेटाई और माइकेल के युद्धों से पराजित हुआ। उसके अंग-रक्षक अर्तबेनस ने 466 ई० पू० में उसकी हत्या कर दी।

क्षयार्ष के उत्तराधिकारी और हखामशी वंश का पतन

क्षयार्ष की मृत्यु के पश्चात् उसके छोटे पुत्र अर्तक्जर्क्सीज ने 466 ई० पू० से 425 ई० पू० तक राज्य किया। उसका राज्यकाल हत्याओं और प्रतिहत्याओं का युग माना जाता है। इस वंश में डेरियस द्वितीय के छोटे पुत्र कुरुष कनीयस् में शासन की योग्यता थी परन्तु उसके बड़े भाई ने उसे युद्ध में पराजित कर मरवा डाला। अर्तक्जर्क्सीज द्वितीय का यह कार्य ऐसा था जिसके फलस्वरूप ही हखामशी वंश का नाश हुआ। उसकी मृत्यु के पश्चात् 358 ई० पू० में अर्तक्जर्क्सीज तृतीय गद्दी पर बैठा। उसने गद्दी पर बैठते ही अपने सम्बन्धियों की हत्या करवा दी। अन्त में अनेक हत्याओं और प्रतिहत्याओं के उपरान्त इसी वंश के किसी राजकुमार डेरियस तृतीय ने 336 ई० पू० में गद्दी को हथिया लिया। उसे पराजित करके सिकन्दर महान् ने हखामशी वंश का नाश किया। इस प्रकार हखामशी वंश जो बहुत समय तक ईरान में राज्य करता रहा, के साम्राज्य का अन्त सिकन्दर महान के हाथों हुआ।

हखामशी साम्राज्य की शासन-व्यवस्था

हखामशी साम्राज्य की शासन-व्यवस्था बड़ी दृढ़ थी। इस साम्राज्य की स्थापना विश्व साम्राज्य की स्थापना का प्रत्यक्षीकरण था। हखामशी साम्राज्य के अन्तर्गत ईरान, बेबीलोनिया, मीडिया, फिनीशिया, फिलीस्तीन, सीरिया, मिस्र, एशिया माइनर, भारतीय और यूनानी संस्कृति का निचोड़ देखने को मिलता है। केवल चीन को छोड़कर विश्व के समस्त सांस्कृतिक देशों का कुछ न कुछ भाग इसमें अवश्य सम्मिलित था।

(क) सम्राट फारस के साम्राज्य का सबसे बड़ा पदाधिकारी सम्राट होता था। वह सर्वोच्च सत्ता सम्पन्न होता था। उसका प्रत्येक शब्द कानून था। वह बिना किसी कारण के किसी को भी दण्ड दे सकता था और किसी को भी उच्च पद पर आसीन कर सकता था। उसकी आज्ञा का उल्लंघन करने की शक्ति किसी में न थी। यदि वह किसी को मरवा डालता तो सबको उसकी प्रशंसा करनी पड़ती थी। उसके अधिकार बहुत विस्तृत थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय तक लोकमत का संगठित रूप देखने को नहीं मिला था। राजा ही देश का सर्वोच्च सेनापति और न्यायाधीश होता था। यद्यपि राजा सर्वोच्च सत्ता सम्पन्न था परन्तु फिर भी उसके कुछ अंकुश थे—

(1) उसे अपने विधि-विषेधों, कौटुम्बिक प्रथाओं और रीतियों का पालन करना पड़ता था।

(2) अपने द्वारा दिये गये वचनों का पालन उसे अवश्य करना पड़ता था। पारसीक सभ्यता मे वचन की सत्यता को बहुत अधिक महत्व प्रदान किया गया है।

(3) राजकीय कार्यों का पूर्ण करने में उसे राज्य सामन्तों से परामर्श लेना पड़ता था। यह सामन्त 6 प्रमुख वंशों के होते थे और देश में इनका बहुत अधिक मान होता था।

यदि किंचित गहनता से विचार किया जाय तो राजा पर लगाये गये इन अंकुशों का कोई विशेष महत्व न था। राजा जब चाहता सामन्तों के परामर्श को अस्वीकार कर सकता था। जितने भी अंकुश थे वे सब न्याय-प्रिय राजाओं के लिए ही थे, अर्तक्जर्क्सीज तृतीय जैसे अत्याचारी राजाओं के लिये कोई अंकुश नहीं था।

(ख) राजसभा—इस वंश के शासकों ने एक विशाल राजसभा की आयोजना की थी। राजसभा का सबसे अधिक आकर्षक व्यक्ति सम्राट ही होता था। उसकी वेश-भूषा बहुत सुन्दर होती थी। वह कुण्डल, बाजूबन्द, स्वर्णमेखला आदि आभूषणों से सुशोभित होता था। उसकी राजसभा में सामन्तों, अंग-रक्षकों, गुप्तचरों, प्रतिहारों, दूतों और संगीतज्ञों का समाज एकत्रित रहता था। इस राजसभा का सारा खर्च राजकोष से दिया जाता था।

(ग) सामन्त समुदाय—फारस की शासन-व्यवस्था का आधार सामन्तवादी था। राज्य में 6 सामन्त वंश मुख्य थे। ये सामन्त राजा को परामर्श दिया करते थे। साधारण रूप से राजा इनका परामर्श मानता था परन्तु वह इनके परामर्श को मानने या न मानने के लिये पूर्ण स्वतन्त्र था। इन सामन्तों को विशेषाधिकार प्रदान किये गये थे। वे बड़े-बड़े भूमि खण्डों के स्वामी थे और छोटे राजाओं की भाँति अपने-अपने भूखंड

का शासन करते थे। इन सामन्तों को कर लगाने और न्याय करने का अधिकार प्राप्त था। सामन्तों के पास अपनी सेनायें भी होती थीं।

(घ) सैन्य व्यवस्था—पारसी साम्राज्य का मूलाधार उनकी सेना थी। सेना का केन्द्र बिन्दु सम्राट था। राजा की रक्षा के लिये दो हजार पदाति और दो हजार घुड़सवार सैनिक थे। यह सब राजा के अंगरक्षक थे। इनके अतिरिक्त दस हजार मीडो और ईरानियों का 'अमर दल' था जो किसी भी समय युद्ध करने को तैयार रहता था। इस प्रकार फारस की सेना के दो दल थे—

1. अंगरक्षक दल
2. अमर दल

युद्ध के अवसर पर और आवश्यकता पड़ने पर राजा प्रान्तीय राजाओं की सेना भी बुला सकता था। इस अवसर पर राज्य के 15 वर्ष से 50 वर्ष की आयु तक के प्रत्येक व्यक्ति को अनिवार्य सैनिक शिक्षा प्रदान की जाती थी। यदि कोई इस नियम का उल्लंघन करता तो मृत्यु दंड का भागी होता था। डेरियस के राज्यकाल में एक वृद्ध ने अपने दो पुत्रों को सेना में भर्ती कर दिया। परन्तु तीसरे पुत्र को सेना में भर्ती न करने के लिये डेरियस से प्रार्थना की। डेरियस ने तीनों को मौत के घाट उतरवा दिया। इसी प्रकार जरक्सीज के शासन-काल में अपने चार पुत्रों को सेना में भर्ती करने के पश्चात् एक वृद्ध ने अपने एक पुत्र को घर पर ही रहने दिया। फलस्वरूप उसके पुत्र के दो टुकड़े करवाकर सैनिकों के मार्ग पर रख दिया गया। इस प्रकार युद्ध के अवसर पर राजा के लिये 20 लाख सैनिकों को भी जमा कर लेना मुश्किल कार्य नहीं था। यद्यपि हखामशी नरेशों के पास विशाल सेना थी परन्तु फिर भी वह अपेक्षाकृत सबल नहीं थे। इसके दो कारण थे—

(1) कठोरता का व्यवहार—सेना में भर्ती करते समय बड़ी कठोरता का व्यवहार किया जाता था। इसके फलस्वरूप सैनिकों का उत्साह समाप्त हो जाता था।

(2) अनुशासन की कमी—हखामशी सैनिकों में एकता और अनुशासन की भावना नहीं थी। वह भारत से लेकर योरुप तक के विस्तृत प्रदेशों में युद्ध करते थे। सेना में भिन्न-भिन्न प्रान्तों और जातियों के सैनिक रहते थे। वे विभिन्न भाषायें बोलते थे और उनके रीति-रिवाज भी भिन्न-भिन्न थे। उनकी वेशभूषा, अस्त्र-शस्त्र और लड़ने का ढंग भी अलग-अलग था। फलस्वरूप उनमें एकता और अनुशासन की भावना नहीं के बराबर थी। जैसे सेनापति या राजा के मरने की अफवाह फैलती थी, सारे सैनिक युद्ध-भूमि से भागने लगते थे। मेराथोन, प्लेटाई, आइसस तथा अर्बेला के युद्धों में उनकी पराजय और यूनानियों की विजय का यही कारण था।

पारसीकों के पास केवल विशाल स्थल सेना ही नहीं थी बल्कि उनके पास विशाल जलपोत भी थे। यह जलपोत युद्ध और व्यापार दोनों ही के काम में आते थे। जलपोतों का एक दोष यह था कि वे बहुत मन्द गति वाले थे। यही कारण था कि सालमीज के युद्ध में वे यूनानियों के छोटे तथा तीव्रगामी जलपोतों का सामना न कर सके।

(ङ) कानून एवं न्याय—पारसी राजा को अपने राष्ट्रीय देवता अहुर-मज्दा का प्रतिनिधि मानते थे। अतएव उसकी आज्ञा देवाज्ञा मानी जाती थी। सम्राट ही सारे देश का सर्वोच्च न्यायाधीश (Chief Justice) होता था और उसका राजदरबार ही उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) था। राज्य का प्रत्येक व्यक्ति उसकी दया पर निर्भर था।

राजा के नीचे एक न्यायालय और होता था जिसमें सात न्यायाधीश होते थे। यह न्यायालय उच्च न्यायालय (High Court) था। विभिन्न राज्यों में स्थानीय न्यायालय भी होते थे। न्यायालयों को केवल दण्ड ही देने का अधिकार नहीं था बल्कि वे पुरस्कार भी देते थे। खास मौकों पर जमानत की प्रथा (Bail System को भी लागू किया जाता था। न्यायालय न्याय के लिये पंच (Arbitrator) भी नियुक्त कर सकता था। उस युग में भी शपथ ग्रहण करने की प्रथा प्रचलित थी। कुछ दिनों पश्चात् कानून वक्ता (Speakers of law) भी होने लग गये जिनका कार्य आधुनिक वकीलों जैसा होता था। पैरवी अधिकतर वकीलों द्वारा ही होती थी। गम्भीर अभियोगों के लिये जमानत की प्रथा न थी। प्रत्येक मुकदमे के निर्णय के लिये समय निर्धारित कर दिया जाता था।

आरम्भ में न्यायाधीश का पद पुरोहित वर्ग को ही प्राप्त होता था; परन्तु कालान्तर में अन्य वर्गों के व्यक्तियों को भी इस पद पर आसीन किया गया। महिलायें भी न्यायाधीश बनाई जा सकती थीं।

फारस की न्याय-व्यवस्था बहुत अधिक कठोर थी। छोटे-छोटे अपराधों के लिये कोड़े लगवाये जाते थे। कभी-कभी जुर्माना भी किया जाता था। राजद्रोह को सबसे भयङ्कर अपराध माना जाता था। राजद्रोहियों को पकड़कर उनके हाथों और सिर को एक लम्बे लट्ठे से बाँधकर राज्यसभा में प्रस्तुत किया जाता था। वहाँ उनके नाक-कान काट लिये जाते थे। इसके पश्चात् उन्हे उन राज्यों में भेज दिया जाता था जहाँ उन्होंने द्रोह किया था और वहाँ उनकी हत्या कर दी जाती थी। हत्या और बलात्कार आदि के लिये भी मृत्यु दण्ड मिलता था। कभी-कभी छोटे-छोटे अपराधों पर भी मृत्यु दण्ड दिया जाता था। इसका एक उदाहरण प्रस्तुत है—

"एक बार सिसैम्नीज नाम के एक न्यायाधीश ने जान-बूझकर गलत न्याय किया। उसके इस कार्य के लिए केम्बीसस ने उसे मृत्यु दण्ड दिया। मृत्यु के पश्चात् उसकी चमड़ी को उतरवाकर उसकी उसी कुर्सी पर जड़वा दिया जिस पर बैठकर उसने गलत न्याय किया था। उसके पुत्र को न्यायाधीश बनाया गया और उसे उसी कुर्सी पर बैठाया गया जिस पर उसके पिता की चमड़ी जड़ी हुई थी।"

मृत्यु दण्ड देने की प्रथाएँ भी बड़ी कठोर थीं। मृत्यु दण्ड निम्नलिखित विधियों से दिया जाता था—

(1) चमड़ी उतरवा कर, (2) विष देकर, (3) फाँसी देकर, (4) पत्थर मारकर, (5) पत्थरों के बीच दबाकर, (6) जमीन में गाड़कर, (7) गरम राख में अपराधी को फेंक कर, (8) अपराधी को नावों में बाँधकर मुँह में दूध और शहद लपेट कर जिससे मक्खियाँ उसके मुँह पर भिनभिनाएँ और उसके प्राण निकल जायँ।

(च) प्रान्तीय शासन—हखामशी नरेशों ने अपनी शासन-व्यवस्था के लिए प्रान्तीय प्रणाली को अपनाया था। समस्त राज्य को प्रान्तों में विभाजित किया गया था। इन प्रान्तों की संख्या 20 से 28 तक होती थी। प्रत्येक प्रान्त के लिए कर निश्चित कर दिया गया था। यह कर प्रान्तों को केन्द्रीय सरकार को अवश्य ही देना होता था। मिस्र का कर 770 टेलेण्ट, बेबिलोनिया का 1000 टेलेण्ट और बलुचिस्तान का 170 टलेण्ट सुवर्ण था। भारत से 4,680 टेलेण्ट कर की प्राप्ति होती थी। प्रान्त को प्रांतीय क्षत्रपों और राज्य कर्मचारियों का व्यय भी उठाना पड़ता था। इसके लिए कोई धनराशि निश्चित नहीं की गई थी।

प्रान्तों में विद्रोह न हो इसलिये हखामशी नरेशों ने कई उपाय अपनाये थे। उनमें कुछ का विवेचन किया जा रहा है—

(1) उन्होंने असीरियन सम्राटों की विजित जातियों पर अत्याचार की नीति का परित्याग कर दिया। उनसे प्रेम व्यवहार कर उनकी सहानुभूति प्राप्त करने का प्रयास किया। कुरुष द्वितीय ने लीडिया के क्रोयसस को केवल आत्म-हत्या करने से ही नहीं बचाया बल्कि अपने राज्य में उसे उच्च पद पर आसीन भी किया। उसने बेबिलोनिया के निवासियों से भी बड़ी उदारता का व्यवहार किया और यहूदियों को अपने देश लौट जाने की अनुमति प्रदान की। यह साम्राज्य विस्तार और निर्माण का अपने ढङ्ग का पहला कदम था।

(2) प्रसिद्ध हखामशी सम्राट डेरियस ने 'भेद करो और राज्य करो' की नीति को अपनाया। उसके परवर्ती सम्राटों ने भी इस नीति का अनुसरण किया। प्रत्येक राज्य में एक क्षत्रप, एक सेनापति, एक सेक्रेटरी की नियुक्ति की जाती थी। क्षत्रप का

कार्य कर वसूल करना, आवश्यकता के समय सैनिक सहायता देना और राज्य में शांति और सुव्यवस्था बनाये रखना था। क्षत्रप के अधीन बहुत से कर्मचारी रहते थे परन्तु सेना की व्यवस्था करने वाला सेनापति और आय-व्यय का विवरण रखने वाला सेक्रेटरी उसके अधीन नहीं होते थे। इस प्रकार से उनकी शक्तियों को बाँट दिया गया था जिससे वह एक होकर विद्रोह न कर सकें।

(3) विभिन्न अवसरों पर राज्यों में निरीक्षकों को भेजा जाता था। यह निरीक्षक सम्राट के नेत्र और कान कहे जाते थे। ये प्रांत में जाकर वहाँ सब प्रकार का निरीक्षण कर, प्रांत के समस्त कार्यों की सूचना सम्राट को देते थे। उनकी सूचना के आधार पर सम्राट राज्य के कर्मचारियों को दण्ड और पुरस्कार देता था।

(4) हखामशी नरेशों ने विभिन्न प्रांतों को राजधानी से जोड़ने वाली सड़कों का निर्माण करवाया था। इन सड़कों द्वारा प्रांतों को सैनिक सहायता, रसद और संदेश आदि सुगमता से भेजे जा सकते थे। सड़कों पर स्थान-स्थान पर चौकियाँ भी बनवा दी गई थीं। डेरियस प्रथम ने सर्डिस से सूसा तक का 1500 मील लम्बा राजमार्ग बनवाया था। डेरियस ने नील नदी को लाल सागर से मिलवाकर जल-यातायात के लिये भी एक बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया।

इसमें किंचित मात्र भी सन्देह नहीं कि हखामशी नरेशों की शासन-व्यवस्था बड़ी सुदृढ़ थी। इतनी अच्छी शासन-व्यवस्था रोमन साम्राज्य की स्थापना के पहले कहीं भी देखने को नहीं मिलती। इनकी शासन-व्यवस्था से प्रभावित होकर प्रसिद्ध विद्वान जेम्स (James) ने लिखा है—"वे निर्दयी परन्तु बहादुर थे। अपनी अवस्था के पूर्ण ज्ञाता थे। उनका शासन प्रबन्ध अति सुदृढ़ था और इस प्रबन्ध का श्रेय डेरियस महान को है।"

"They were cruel but brave. They were fully aware of the conditions of their times. Their administration was very sound and credit of this type of administration goes to Darious the Great."

— James.

सारांश

प्राचीन काल में सिन्धु घाटी से लेकर दजला नदी की घाटी तक का प्रदेश ईरान के पठार के नाम से पुकारा जाता था। ईरान के पश्चिम में जगरोस और मकरान पर्वत हैं और दक्षिण पश्चिम में करुन नदी बहती है। प्राचीन काल में ईरान का बहुत अधिक महत्व था। यह पूर्व और पश्चिम को बाँधने वाला केन्द्र समझा जाता था। कहा जाता है कि अति प्राचीन काल में यहाँ द्रविड़ जाति रहती थी; परन्तु 3000 ई०पू० में यहाँ आर्य जाति ही निवास करती थी। भारत और ईरान में प्राचीन काल से ही बड़े

घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। भारतीय और ईरानी दोनों ही आर्यों की दो शाखायें मानी जाती थीं। चौथी शताब्दी ई० पू० से लेकर प्रथम सहस्राब्दी ई० पू० तक ईरानी इतिहास का पिशदादि और किमानी काल माना जाता है। इसके पश्चात् मादिया काल आया। इस युग के राजाओं में डियोकीज, फत्रतिश, इश्तवेगु के नाम प्रसिद्ध हैं। इसके पश्चात् हखामशी काल आया जो ईरान के सांस्कृतिक इतिहास का स्वर्ण युग माना जाता है। इस युग के सम्राटों में साइरस द्वितीय और डेरियस महान के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त क्षयार्ष और कम्बुजिय द्वितीय भी प्रसिद्ध राजा हुये। डेरियस तृतीय के शासन-काल में सिकन्दर महान ने ईरान पर आक्रमण किया और उसी के हाथों इसका पतन हुआ।

हखामशी सम्राटों की शासन-व्यवस्था बहुत उत्तम थी। सम्राट का स्थान सर्वोपरि होता था। उसकी राजसभा भी होती थी जिसमें गुप्तचर, प्रतिहारी, दूत आदि बहुत से लोग होते थे। सामन्त समुदाय का विशिष्ट स्थान था। सेना के दो दल थे। अंगरक्षक दल और अमर दल। फारस की न्याय-व्यवस्था बहुत कठोर थी। शासन में सुगमता के लिये साम्राज्य को प्रांतों में विभाजित कर दिया गया था। इन प्रांतों की संख्या 20 से 28 तक होती थी। प्रांतों के शासन की जाँच करने के लिये सम्राट अपने निरीक्षकों को भी वहाँ भेजता था। इस प्रकार इस युग के सम्राट ने बड़े सुचारु रूप से शासन किया। इस काल में ईरान की बहुत अधिक उन्नति हुई।

अध्याय | 6

प्राचीन पारसीक समाज, धर्म, साहित्य एवं कला

(ANCIENT PERSIAN SOCIETY, RELIGION, LITERATURE AND ART)

प्रश्न 1—प्राचीन पर्शिया के धर्म के बारे में आप क्या जानते हैं ?

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

What do you know about the religion of Ancient Persia ?

(Lucknow University)

प्रश्न 2—जरथुष्ट्र धर्म के प्रमुख सिद्धान्त क्या थे ? प्राचीन फारस के निवासियों के जीवन पर इसके प्रभावों का विवेचन कीजिये।

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

What were the chief principles of zoroasterism ? Discuss its effects on the life of the people of ancient Iran.

(Gorakhpur University)

प्रश्न 3—हखामशी काल में फारस ने आर्थिक तथा कला के क्षेत्र में क्या उन्नति की ?

(लखनऊ विश्वविद्यालय)

What progress was made by Persia in the economic field and in the sphere of art during the Achaemenian Period ?

(Lucknow University)

प्रश्न 4—क्या आप इस मत से सहमत हैं कि ईरान में बड़े-बड़े शासक तो हुये परन्तु जरथुष्ट्र के समान कोई दूसरा धर्म-प्रचारक न हुआ। उसके धर्म का संक्षिप्त वर्णन कीजिये।

(लखनऊ विश्वविद्यालय)

Do you agree with the view that Iran saw many mighty rulers but no saint like Zoroaster. Give a brief account of his teachings.

(Lucknow University)

समाजिक दशा

ईरानी अधिकतर सुन्दर और बलिष्ट होते थे। वे वस्त्रों और आभूषणों के बहुत अधिक शौकीन होते थे। पुरुष दाढ़ी और मूँछ रखते थे और कालान्तर में सिर में विग धारण करने लगे थे। स्त्रियों और पुरुषों के वस्त्रों में विशेष अन्तर नहीं था। पारसीक समाज की निम्नलिखित विशेषतायें थीं—

(1) कुटुम्ब प्रणाली—समाज में कुटुम्ब को पवित्र माना जाता था। जिसके जितने अधिक पुत्र होते वह उतना ही भाग्यवान समझा जाता था। सम्राट भी अधिक पुत्र रखने वाले पिता को इनाम देता था। प्राण-हत्या अपराध समझी जाती थी। विवाह को पवित्र सम्बन्ध माना जाता था और अविवाहित जीवन को अच्छा नहीं समझा जाता था। विवाह, माता-पिता द्वारा सम्पादित किये जाते थे और वयस्क विवाह (Adult Marriage) की प्रथा को ही अपनाया गया था। कहीं-कहीं पर पिता-पुत्री, भाई-बहिन आदि के पारस्परिक विवाह के उल्लेख भी मिलते हैं। समाज में बहु-विवाह और रखैल रखने की प्रथा भी प्रचलित थी; परन्तु धर्मानुसार एक विवाह को अच्छा समझा जाता था। इस जीवन को बहुत अधिक महत्व प्रदान किया जाता था। घर बसाना और सुखमय जीवन व्यतीत करना जीवन का अत्यावश्यक अंग समझा जाता था। पारिवारिक जीवन बहुत सुखमय माना जाता था। इस विषय में जरथुष्ट्र के जीवन का उदाहरण प्रस्तुत है—

जरथुष्ट्र ने अहुर-मज्दा पारसियों के देवता) से प्रश्न किया—"हे विश्व के नियामक पवित्र देव, संसार का वह कौन-सा दूसरा स्थान है जहाँ लोग आनन्द महसूस करते हैं?" और अहुर-मज्दा ने उत्तर दिया, "यह वह स्थान है जहाँ धर्म पर विश्वास करने वाला अपना घर बसाकर, पुरोहित, स्त्री, बच्चे और दुधारु जानवर आदि का पालन-पोषण करता है और जहाँ जानवरों, पत्नी, बच्चों और अग्नि की श्री वृद्धि होती है।"

"Oh Maker of the material world", Zarasthustra asks AhurMazda, "Thou holy one, which is the second place where the earth feels most happy ?" And Ahur-Mazda answered him—"It is the place whereon one of the faithful erects a house with a priest within, with cattle, with a wife, with children, and good herbs within and wherein afterwards the cattle continue to thrive, the wife to thrive, the child to thrive, the fire to thrive and every blessings of life to thrive."

(Our Oriental Heritage, Page 374)

(2) रहन-सहन एवं खान-पान—पारसीयों का रहन-सहन बहुत सुन्दर था। वे बड़े उदार, सच्चरित्र, स्पष्टवक्ता और अतिथियों का सत्कार करने वाले थे। आचार-व्यवहार में बड़े कुशल थे। समान पद के पारसी जब एक दूसरे से मिलते थे तो एक दूसरे को गले लगाते थे और ओठों का चुम्बन करते थे। बड़ों के प्रति श्रद्धा का भाव प्रकट किया जाता था। खुली सड़कों पर कोई चीज खाना, थूकना और नाक साफ करना वे बुरा समझते थे। वे दिन में एक बार भोजन करते थे और किसी भी मादक वस्तु को ग्रहण नहीं करते थे। उनके यहाँ उपवास को कोई महत्व नही प्रदान किया जाता था।

उनका पहनावा बहुत सुन्दर था। उनमें शृङ्गार-प्रसाधन भी बहुत लोकप्रिय हुये थे और समाज एक विशिष्ट वर्ग सौन्दर्य विशेषज्ञ के रूप में दिखाई देने लगा था।

यह लोग स्वच्छता की ओर विशेष ध्यान देते थे। इनका विश्वास था कि शरीर स्वच्छ होने पर ही देवदूत उसमें प्रवेश करते हैं। प्रत्येक धार्मिक व सामाजिक उत्सव के अवसर पर वे नहाकर, नाखून और बालों को काटकर, सफेद कपड़े पहनकर, इकट्ठा होते थे।

वे अपने घरों में जानवर पालते थे। जानवरों में कुत्तों को विशेष महत्व दिया गया था। अवेस्ता में कुत्ते को गरम खाना देने वाले को कठिन दंड देने का आदेश दिया गया है। मैथुन-रत जोड़े को मारने वाले व्यक्ति को 14000 कोड़े लगवाये जाते थे। कुत्ते के पश्चात् बैल और गाय को विशेष महत्व प्राप्त था। घरों में चिड़ियाँ, मुर्गे और ऊदबिलाव पाले जाते थे।

(3) स्त्रियों की दशा—जोरेस्टर के समय में स्त्रियों की दशा बहुत अच्छी थी। उनको पर्याप्त स्वतन्त्रता थी। यद्यपि कुलीन वर्ग में रखैल रखने की प्रथा थी और यह रखैलें युद्ध तक में जाती थीं परन्तु वेश्यावृत्ति को मान्यता नहीं प्राप्त थी। सम्राटों के हरम में बहुत अधिक रखैलें रहती थीं और इनकी संख्या कभी-कभी 360 तक पहुँच जाती थी। परन्तु इसके यह अर्थ नहीं कि समाज में स्त्रियों का आदर नहीं था। परिवार में तो स्त्रियों का महत्व था ही साथ ही जरथुष्ट्र के समय में पर्दे को प्रथा भी नहीं थी। स्त्रियाँ सम्पत्ति की मालकिन समझी जाती थीं और उन्हें अपने पति की ओर से समस्त कार्य करने का अधिकार प्राप्त था।

डेरियस के समय में भी स्त्रियों की दशा सन्तोषजनक थी। उस समय तक स्त्रियों को पर्याप्त अधिकार प्राप्त थे। परन्तु डेरियस के पश्चात् दिन प्रति दिन स्त्रियों का मान समाज में गिरता गया। उनको सार्वजनिक जीवन में आने की छूट बन्द कर

दी गई और पर्दे की प्रथा का प्रचलन हो गया। डेरियस के पश्चात् किसी-किसी कुटुम्ब में पर्दे की प्रथा का इतनी कड़ाई से पालन किया जाने लगा कि स्त्रियों को अपने पिता और भाई से मिलने का भी अधिकार नहीं दिया गया। यही कारण है कि न तो पारसीक अभिलेखों में कहीं स्त्रियों का नाम मिलता है और न उनकी कला-वृत्तियों में स्त्रियों के चित्र मिलते हैं।

स्त्री को माता के रूप में अधिक गौरव प्रदान किया गया था। जो माता जितना अधिक पुत्रों को जन्म देने वाली होती उसको उतना ही आदर मिलता था। कदाचित इसका कारण यह था कि इस जाति का निरन्तर सङ्घर्ष और युद्ध करते रहने के कारण देश में अधिक पुरुषों की आवश्यकता हुई। पुत्रियों की अपेक्षा पुत्रों को जन्म देना अधिक उत्तम माना जाता था। 5 वर्ष की आयु तक बालक माता के संरक्षण में रहता था और उसके पश्चात् 7 वर्ष की आयु तक पिता के संरक्षण में। इसके पश्चात् पाठशाला में उसका विद्यार्थी जीवन प्रारम्भ होता था।

विधवा विवाह की प्रथा इस जाति में प्रचलित नहीं थी और विधवा स्त्री को समाज अच्छी निगाह से नहीं देखता था।

(4) **आमोद-प्रमोद**—उच्च वर्ग वालों का मुख्य मनोरंजन आखेट था। सम्राट एवं अन्य राज्यकर्मचारियों के लिये युद्ध और शिकार दो ही कार्य मुख्य समझे जाते थे। शिकार के लिये शिकारी कुत्ते भी होते थे। अक्सर बड़े-बड़े उद्यानों के लिये जानवर पाले जाते थे जिनका बाद में शिकार होता था।

ताशपाशा खेलना, चित्र खींचना और लकड़ी पर खुदाई का काम करना भी मनोरंजन के साधन थे। उच्च वर्ग के लोगों के मनोरंजन का साधन रखैलें भी थीं। सम्राट के राजमहल में तो ऐसी रखैलें होती थीं जिन्हें साल में केवल एक ही बार सम्राट के साथ रात्रि-यापन करने का अवसर मिलता था।

(5) **अस्त्र-शस्त्र**—आम पारसीक अपने साथ अस्त्र-शस्त्र रखता था। उसके मुख्य अस्त्र-शस्त्र जालीदार ढाल, नीचे लटका हुआ तीरकश, छोटे बल्लम और नर-कुश के बने तीर-धनुष थे। उसके दाहिनी कन्धे पर छुरा लटकता था।

(6) **धन्धा** – अधिकांश लोग खेती करते थे। उनके धर्मग्रन्थों में कृषि कार्य को बहुत अधिक महत्व प्रदान किया गया है। इसको ही सर्वोत्तम पेशा माना जाता था और ऐसा विश्वास था कि कृषि कार्य से देवता अहुर-मज्द प्रसन्न होते हैं।

अधिकतर लोग अपनी स्वयम् की खेती करते थे परन्तु मिली-जुली खेती की प्रथा भी प्रचलित थी। कृषि-योग्य भूमि अधिकतर जमींदारों के पास थी। वे किसान, मजदूरों से अपने खेत जुतवाते थे। इसके अतिरिक्त वे इस कार्य के लिए

विदेशी गुलामों को भी रखते थे । किसानों का जमीन पर कोई अधिकार नहीं था । उनकी मेहनत का पुरस्कार उन्हें उपज के एक भाग के रूप में प्राप्त होता था । खेती के लिए लकड़ी के हलों का प्रयोग किया जाता था जिनमें धातु का फाल लगा होता था ।

खेती की मुख्य उपज गेहूँ और जौ थी । इसके अतिरिक्त पारसी मांस का भी भक्षण करते थे । सिंचाई के लिये नहरों द्वारा दूर-दूर के पहाड़ों से पानी लाया जाता था । यद्यपि समाज में शराब को बुरा समझा जाता था परन्तु फिर भी गोष्ठियों में बैठकर आकण्ठ शराब पिया जाता था । ऐसा कहा जाता है कि सम्राट साइरस स्वयम् अपनी सेना में शराब का वितरण करते थे ।

(7) शिक्षा—जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि पारसीक निरन्तर सङ्घर्ष करते रहे अतः उनमें शिक्षा का अधिक प्रचार नहीं हुआ । शिक्षा अधिकतर अभिजात वर्ग को ही दी जाती थी । 24 वर्ष की अवस्था तक यह लोग शिक्षा समाप्त कर लेते थे ।

सात वर्ष तक बालक अपने माता-पिता के पास रहता था और तत्पश्चात् अध्ययन के लिये उसे पाठशाला भेजा जाता था । अधिकतर पाठशालायें मन्दिरों और पुरोहितों के घरों में होती थीं । शिक्षा अधिकतर धार्मिक थी । अवेस्ता और उस पर लिखे गये भाष्य, धर्म, कानून तथा चिकित्सा-शास्त्र शिक्षा के मुख्य विषय थे । बालकों को 'जेन्द-अवेस्ता' कंठस्थ कराई जाती थी । शिक्षा मौखिक रूप से ही दी जाती थी । शिक्षक शिक्षार्थियों को कोई बात बताते थे और बालक उसे कंठस्थ कर लेते थे । विद्यालय भीड़भाड़ से दूर होते थे और वहाँ एकान्त बना रहना आवश्यक समझा जाता था ।

पारसीक समाज में युद्ध-शिक्षा को विशेष महत्व दिया गया था । उनका जीवन लड़ने-मरने में बीतता था, अतएव पुस्तकों को शिक्षा की अपेक्षा उन्हें युद्ध की शिक्षा की अधिक आवश्यकता थी । युवकों को धनुष-बाण चलाना, घुड़सवारी करना, बर्छी, भाले आदि का प्रयोग करना आदि की शिक्षा उचित रूप से दी जाती थी । वह विद्यार्थी जो धर्म एवं कानून आदि पढ़ते थे उनके लिये भी सैनिक-शिक्षा अनिवार्य थी । कुछ विद्यार्थियों को राज्य-प्रबन्ध आदि की शिक्षा भी दी जाती थी । यह विद्यार्थी प्रातःकाल ही उठ जाते थे और उनका कार्य होता था—बहुत तेजी से दौड़ना, घोड़ों पर तेजी से दौड़ना, नदियों को पार करना, रूखे-सूखे भोजन पर निर्वाह करना, लम्बा रास्ता तय करना और प्रकृति की कठिनाइयों को सहना । संक्षेप में हम कह सकते हैं कि शिक्षा का मुख्य विषय सैनिक-शिक्षा ही था । साहित्य और कला की

शिक्षा को कोई स्थान नहीं दिया गया था। साहित्य और कला विलासिता के अन्तर्गत आते थे।

आर्थिक दशा

यद्यपि ईरानियों ने बहुत अधिक युद्ध किये परन्तु उनकी आर्थिक दशा अच्छी थी। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है उनका मुख्य कार्य खेती था। वे गेहूँ और जौ की खेती करते थे। भूमि अधिकतर सामन्तों के हाथ में ही थी। उद्योग-धन्धे एवं व्यापार अधिकतर बेबिलोनियन, फिनीशियन और यहूदी आदि विदेशी जातियों के लिये छोड़ दिये गये थे।

पहले लेन-देन का कार्य, गल्ला एवं मवेशियों के द्वारा होता था। किसी भी प्रकार की मुद्रा का प्रयोग नहीं होता था। उन्होंने लीडिया से मुद्रा-प्रणाली का ज्ञान प्राप्त किया और डेरियस महान ने 'डेरिक' नाम की मुद्रायें चलाईं। 'डेरिक' का अर्थ होता है—सोने का टुकड़ा। तीन हजार सोने की 'डेरिक' सोने के एक टेलेण्ट के बराबर होती थी। सोने की डेरिक का मूल्य लगभग 25 रुपया और चाँदी की मुद्रा से 13·5 गुना अधिक था।

डेरियस के इन सिक्कों का प्रचलन सिन्ध नदी के प्रदेश में भी हुआ और इन्हीं के द्वारा आधुनिक भारतीय मुद्रा-प्रणाली का आरम्भ माना जाता है।

इस वंश के राजाओं ने अपनी आर्थिक व्यवस्था को सुधारने के लिये अपने अधीन राजाओं से कर भी लिये। कहा जाता है कि डेरियस महान का साम्राज्य आर्थिक दृष्टि से बहुत अच्छा था। उसके काल में राजकोष सदैव भरा रहा।

धर्म

आरम्भ में ईरानी बहुदेववाद और यज्ञवाद पर विश्वास करते थे। धर्म में अन्ध-विश्वास का बोलबाला था। जरथुष्ट्र के पूर्व उनके धार्मिक विश्वास वैदिक आर्यों के विश्वासों से बहुत कुछ मिलते हुये पाये जाते हैं। वे प्रकृति की पूजा करते थे। वे असुर और देव दोनों के ही उपासक थे। जरथुष्ट्र से पूर्व, वे मिथू (सूर्य), अनैत (पृथ्वी) तथा सृजन की देवी, अहौन (बैल देवता) की पूजा करते थे। वे होम रस (सोम रस) का पान करते थे। उनमें बलि की प्रथा भी प्रचलित थी पूजा करने और बलि चढ़ाने के लिये 'मांगी' (पुरोहित सम्प्रदाय) थे। ये लोग अग्नि के उपासक थे। ये हिंसात्मक यज्ञ करते थे और यज्ञ करने वाले व्यक्तियों को 'देवोजुस्तो' (देवों का प्रिय) समझा जाता था। धर्म में अन्ध-विश्वास का बोलबाला था। इन लोगों का विश्वास था कि संसार अनेक दानवीय शक्तियों से पीड़ित है और यह दानवीय शक्तियाँ मनुष्य को

सताया करती हैं। इन शक्तियों से अपनी रक्षा के लिये ये लोग जन्तर-मन्तर का प्रयोग करते थे। यहाँ के लोगों में एक अन्ध-विश्वास यह भी प्रचलित था कि यदि नाखूनों को काटकर पृथ्वी में नहीं गाड़ा जायेगा तो नाखून चाकू, बाण बनकर मनुष्य को काटेंगे। इस धर्म में यह अन्ध-विश्वास चल ही रहे थे कि एक ऐसे युग पुरुष का जन्म हुआ जिसने धर्म की रूपरेखा को ही परिवर्तित कर दिया। उसने अन्ध-विश्वास, बहुदेववाद और यज्ञवाद के विरोध में आवाज उठाकर एक ऐसे धर्म का प्रचार किया जिसमें नैतिकता और सदाचारिता को उच्च स्थान दिया गया। इस व्यक्ति का नाम था—जरथुष्ट्र या जरस्थुष्त्र (Zoroaster)।

जरथुष्ट्र का जन्म और जन्म-स्थान

जरथुष्ट्र (Zoroaster) के साथ इतनी अधिक अलौकिक घटनाओं को बाँध दिया गया है कि बहुत से विद्वान उसकी ऐतिहासिकता पर सन्देह करते हैं। उसका जन्म कब हुआ इस विषय में पर्याप्त मतभेद है। ईरानी अनुश्रुतियों के अनुसार वह 'कपि विस्तास्प' नामक राजा के संरक्षण में रहा। यूनानियों के अनुसार उसका समय 5500 वर्ष पूर्व पड़ता है। बेरोसस के अनुसार उसका जन्म 2000 ई० पू० में हुआ। विविलय जैक्सन उसे 660 ई० पू० का मानता है और विल ड्यूराण्ट भी उसको छठी शताब्दी ई० पू० का मानता है। परन्तु मियर के अनुसार उसे छठी शताब्दी ई० पू० का मानना उचित नहीं है। इस सन्दर्भ में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये गये हैं—

(1) जरथुष्ट्र का धर्म हखामशी शासन-काल में बहुत लोकप्रिय हो चुका था; अतः उसे उस शासन के पूर्व का मानना चाहिये।

(2) असुरबनिपाल जिसका समय 7वीं शताब्दी ई० पू० माना जाता है, एक लेख में 'अस्सर मजश', उसके साथ सात इगिगियों तथा उसका विरोध करने वाली प्रेतात्माओं का वर्णन मिलता है। जिस पर जोरेस्टर धर्म का प्रभाव प्रतीत होता है। यह वर्णन और किसी का नहीं बल्कि अहुर-मज्दा, उसके साथ अमेशस्पेन्तो और सात देवों का है।

(3) हमदन में एक स्वर्ण अभिलेख मिला है जिसमें हखामश के पौत्र अरियम्न ने लिखा है कि उसके राज्य में 'जिस पर अहुर-मज्दा की कृपा के कारण उसका अधिकार है', बहुत अच्छे घोड़े मिलते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि सातवीं शताब्दी ई० पू० में जोरेस्टर धर्म प्रचलित हो चुका था।

(4) हखामशी नरेश डेरियस प्रथम अपने एक अभिलेख में अपने को अहुर-मज्दा का उपासक बताता है।

(5) हखामशी नरेशों के शासनकाल में जिस धर्म का उल्लेख मिलता है वह जोरेस्टर धर्म का विकसित रूप प्रतीत होता है।

(6) हखामशी अभिलेखों की भाषा जोरेस्टर की गाथाओं की भाषा से बहुत भिन्न है। भाषा-वैज्ञानिकों के अनुसार जोरेस्टर की गाथाओं की भाषा हखामशी अभि-लेखों की भाषा से लगभग 500 वर्ष पुरानी है।

इन सब तथ्यों के अनुसार जोरेस्टर का काल 600 ई० पू० न मानकर 1000 ई० पू० मानना अधिक उचित होगा।

ऐसा कहा जाता है कि जोरेस्टर का जन्म पश्चिमी ईरान के अजरबेजान नामक प्रान्त में हुआ था। उसके पिता का नाम पोमशश्पा (Pomshaspa) और माता का नाम दुगेधा (Dughedha) था।

ज्ञान-प्राप्ति और प्रचार—जोरेस्टर अपने आरम्भिक जीवन से ही बड़ी विलक्षण बुद्धि वाला था। वह आरम्भ से ही बड़ा विचारशील था। उसने 15 वर्ष की आयु में अपनी शिक्षा समाप्त कर ली। 20 वर्ष की आयु में उसने संसार का परित्याग कर दिया और सांसारिक तथा पारलौकिक विषयों के गहन अध्ययन के लिये पर्वत की कन्दराओं में रहने लगा। दैवीय शक्तियों ने उसके कार्य में बाधा डाली परन्तु वह उनसे विचलित नहीं हुआ। तीस वर्ष की आयु में सवलान पर्वत पर उसे ज्ञान की प्राप्ति हुई। कहा जाता है कि जब वह अवेतक नामक सरिता के किनारे बैठा हुआ था तो वहाँ एक देवदूत उपस्थित हुआ और उसे अहुर-मज्दा के पास ले गया। अहुर-मज्दा ने उसे अवेस्ता दी और कहा कि इसका प्रचार करो।

इसके पश्चात् वह अपने धर्म के प्रचार के लिये इधर-उधर घूमता रहा। पश्चिम ईरान से उसे धर्म के प्रचार में सफलता नहीं मिली। इसके पश्चात् वह पूर्वी ईरान गया और खुरासान में विस्तास्प (Vistasp) नामक राजा से मिला। बहुत परिश्रम के बाद उसने उसे अपने धर्म का अनुयायी बनाया। बहुत से विद्वान विस्तास्प को डेरियस महान का पिता मानते हैं। अहुर-मज्दा ने अपने तीन फरिश्ते भेजकर विस्तास्प को जोरेस्टर को अपना गुरू मानने और 125 वर्ष तक जीवित रहने का आदेश दिया। इस प्रकार जोरेस्टर को राज्य-संरक्षण की प्राप्ति हुई और धर्म राजकीय संरक्षण में पनपने लगा।

विवाह और मृत्यु—विस्तास्प को अपना शिष्य बनाने के पश्चात् जोरेस्टर ने तीन विवाह किये। इस बीच पड़ोसी सङ्घों ने विस्तास्प पर आक्रमण किया। कदाचित जोरेस्टर धर्म को इतनी अधिक उन्नति देखकर ही एशिया की तूरानी जातियों ने ईरान

पर आक्रमण किया। कुछ विद्वानों का मत है कि उनके विरुद्ध दूसरे धर्म-युद्ध में जोरेस्टर मारा गया। मृत्यु के समय उसकी आयु 75 वर्ष की थी।

जरथुष्ट्र-धर्म

जरथुष्ट्र का धर्म ईश्वर के द्वारा दिये गये ज्ञान पर आधारित था। भारत में प्रचलित धर्म के अलावा जोरेस्टर का ही धर्म एक ऐसा धर्म है जिसने यह घोषणा की थी कि वह ईश्वर के द्वारा दिया गया धर्म है। यहूदी धर्म ने भी यह घोषणा बाद में की। जोरेस्टर ने अपने देश में प्रचलित धर्म की बुराइयों को दूर करके एक क्रांतिकारी धर्म का श्री गणेश किया। उसके धर्म की निम्नलिखित विशेषतायें थीं—

(1) एकेश्वरवाद (Monotheism)

(2) द्वन्द्वात्मकता (Daulism)

(3) सदाचारिता

(4) आशावादिता

(5) स्वर्ग और नरक की कल्पना

(6) सांसारिकता

(7) शरीर और आत्मा का सम्वन्ध

(8) सृजन पर विचार

(9) कर्मकाण्ड

(10) नैतिकता

(1) एकेश्वरवाद— जोरेस्टर एकेश्वरवाद का समर्थक था और बहुदेववाद का विरोधी। उसके पूर्व फारस के लोगों का बहुत से देवताओं पर विश्वास था। जोरेस्टर ने एकेश्वरवाद का प्रतिपादन किया और यह बतलाया कि जितने भी देवता हैं वह सब अहुर-मज्दा की इच्छानुसार चलते है। उसके धर्म में अहुर-मज्दा को इतना मुख्य स्थान दिया गया है कि बहुत से आलोचकों ने उसके धर्म को (Mazdaism) के नाम से पुकारा है। अहुर-मज्दा में सदाचारिता का विकसित रूप है। वे सद्भावना की मूर्ति हैं। शक्ति, स्वास्थ्य और पवित्रता उनमें विद्यमान है और वे अमर हैं—ऐसा जोरेस्टर का विश्वास था। एक अभिलेख में डेरियस महान् ने लिखा है—

'अहुर-मज्दा महान देवता है जिसने पृथ्वी और स्वग की रचना की, जिसने मनुष्य का निर्माण किया और उसके लिये गृह-सुख की व्यवस्था की, जिसने अकेले दारा का बहुसंख्यक मनुष्यों का राजा वनाया। मैं अहुर-मज्दा

की अनुकम्पा से राजा हुआ हूँ। ऐ मनुष्यो! अहुर-मज्दा का आदेश है कि बुरी बात न सोचो, सदमार्ग न छोड़ो, पाप न करो।'

(2) द्वन्द्वात्मकता--जोरेस्टर धर्म में दैवीय और दानवीय दो प्रकार की शक्तियों का उल्लेख किया गया है। दैवीय शक्तियों के प्रतीक अहुर-मज्दा हैं और दानवीय शक्तियों के प्रतीक अहिरमन। इन दोनों में निरन्तर सङ्घर्ष हुआ करता है। कभी दैवीय शक्तियों के प्रतीक जीतते हैं और कभी दानवीय शक्तियों के प्रतीक। परन्तु इस धर्म के अनुयायियों का मत है कि अन्तिम विजय अहुर-मज्दा की होगी। अहुर-मज्दा को मनुष्यों के नेतृत्व की जरूरत है और यह कार्य सम्राट ही पूरा कर सकता है।

(3) सदाचारिता—आरम्भ में जोरेस्टर का धर्म कर्मकाण्ड और बाह्याडम्बरों से रहित था। यह धर्म सदाचारिता और कर्त्तव्य-परायणता को विशेष महत्व देता था। इस धर्म के अनुसार मनुष्य को बुराइयों का परित्याग करके दानशीलता, उदारता और सत्यता को अपनाकर अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये। वास्तव में जोरेस्टर का धर्म केवल सैद्धांतिक नहीं था बल्कि व्यावहारिक था। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध विद्वान कार्टर ने लिखा है—

"The religion of Zoroaster is a religion of culture, of spiritual and moral progress, it is a religion of energy and action, a religion of thrift."

(4) आशावादिता—इस धर्म की एक अन्य विशेषता आशावादिता थी। यह निराशावादी धर्म नहीं था। इस धर्म के अनुसार संसार की कुल अवधि 12000 वर्ष है। 9000 वर्ष बाद जोरेस्टर का पुनः जन्म होगा और उसके पश्चात् शायोश्यान्त का जन्म होगा जो असत्य का नाश करेगा। उसकी सहायता से अहुर-मज्दा अहिरमन पर सदैव के लिये विजय प्राप्त कर लेंगे तब संसार में सुख-शांति और नैतिकता का साम्राज्य स्थापित हो जायगा।

(5) स्वर्ग और नरक की कल्पना—जोरेस्टर धर्म के अनुयायी स्वर्ग और नरक में भी विश्वास करते हैं। 'अस्तिविहाद' मृत्यु के देवता माने जाते हैं और वह सभी व्यक्तियों को इस संसार से ले जाते हैं। उनका ऐसा विश्वास है कि मृत्यु के उपरांत मृत आत्माओं को एक पुल पार करना पड़ेगा। जो सुकर्म करने वाले हैं वे सीधे स्वर्ग चले जायेंगे जहाँ उनका स्वागत एक सुन्दर स्त्री करेगी। जो कुकर्म करने वाले हैं वे नरक के कष्ट भोगेंगे। कुछ समय पश्चात् वह भी स्वर्ग जायेंगे। परन्तु यदि उन्होंने मरने के पहले कोई भी अच्छा काम नहीं किया होगा तो वे हमेशा नरक में ही रहेंगे।

दुष्टों के उद्धार के लिए संसार में तीन पैगम्बर आयेंगे और वे इस धर्म का प्रचार करेंगे। 12000 वर्ष बाद सभी का उद्धार हो जायगा।

(6) सांसारिकता—जोरेस्टर का धर्म पलायनवादी धर्म नहीं है। उसका मत था कि संसार में रहकर सुकर्म करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। सत्य तो यह है कि इस धर्म के मतानुयायी मनुष्य और संसार दोनों को ही सत्य मानते हैं और इसलिये पलायनवाद के विरोधी हैं।

(7) शरीर और आत्मा का सम्बन्ध—इस धर्म के अनुसार शरीर के दो भाग होते हैं—(1) शारीरिक (2) आध्यात्मिक। आध्यात्मिक भाग तर्क, भावना, अन्तःकरण, चेतना आदि का संगठित रूप है। मरने के बाद शरीर तो नष्ट हो जाता है। परन्तु यह भाग जीवित रहता है।

(8) सृजन पर विचार—इस धर्म के मतानुयायी संसार की समस्त वस्तुओं को वायु, जल, अग्नि और पृथ्वी द्वारा निर्मित मानते हैं। यह चारों तत्व बहुत अधिक पवित्र हैं और उन्हें अपवित्र करने का प्रयास कभी भी नहीं करना चाहिये। इस धर्म के मतानुयायी इनको पवित्र रखने के लिये सदैव चिन्तित रहते थे। वे मुर्दे को गाड़ते या जलाते नहीं थे बल्कि उसे ऊँची जगह रख देते थे जहाँ पक्षी उसे खा जाते थे। उनका विश्वास था कि मुर्दे को पृथ्वी पर रखने से पृथ्वी अपवित्र हो जाएगी और अग्नि में जलाने से अग्नि अपवित्र हो जायगी। इस धर्म पर विश्वास करने वाले यह मानते हैं कि सृष्टि इन्हीं चार तत्वों से बनी है और इन्हीं में विलीन हो जायेगी।

(9) कर्मकाण्ड—आरम्भ में इस धर्म में कर्मकांड का कोई स्थान नहीं था। वे निराकार रूप में अहुर-मज्दा की आराधना करते थे और अग्नि को उनका प्रतीक मानते थे। हर घर में सदैव अग्नि जलती रहती थी। कालांतर में इस धर्म में कर्मकांड का प्रवेश हो गया और विशिष्ट धार्मिक क्रियाओं को स्थान दिया गया। शरीर और वस्त्रों आदि को शुद्ध करने के लिये मन्त्रों आदि का प्रयोग होने लगा।

इस कर्मकांड की प्रवृत्ति इतनी बढ़ी कि उसने जोरेस्टर धर्म के मूल रूप में ही परिवर्तन कर दिया। जोरेस्टर का धर्म एकेश्वरवादी था। परन्तु इस धर्म के मतानुयायी अहुर-मज्दा के अलावा मिथ्रदेव (सूर्य) और अनैता देवी आदि की पूजा भी करने लगे। इस प्रकार बहुदेववाद की प्रथा पुनः चल पड़ी।

(10) नैतिकता—इस धर्म की सबसे बड़ी विशेषता उसकी नैतिकता है। धर्म के अनुसार कृषि को सबसे अच्छा पेशा समझा जाता था। जोरेस्टर का विचार था कि सारा संसार भलाई का रूप है और बुराई का रण-क्षेत्र है। हमें दूसरों से वैसे ही

व्यवहार की आशा करनी चाहिये जैसा कि हम उनसे करते हैं। अवेस्ता के अनुसार सर्वश्रेष्ठ गुण उदारता है। इसके अतिरिक्त दया, वचन और कर्म की सत्यता भी आवश्यक है। यदि कोई पारसी किसी अन्य पारसी को उधार दे तो उसे सूद नहीं लेना चाहिये। अवेस्ता ने मनुष्य के तीन मुख्य कर्त्तव्य बताये हैं—

(1) शत्रुओं को मित्र बनाना।

(2) दुष्टों को सत्यवादी बनाना।

(3) अनपढ़ों को पढ़ाना।

जरथुष्ट्र धर्म का प्रभाव—जरथुष्ट्र धर्म में लौकिक और पारलौकिक दोनों ही जीवनों को सुधारने वाले तथ्य समाये हुये थे। पारसियों को अपने इस धर्म पर बहुत अधिक अहंकार था। वे अपने धर्म का पालन न करने वाले लोगों को दण्ड देते थे और विदेशियों को काफिर मानते थे। इस सम्बन्ध में हेरोडोट्स ने बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा है—

'पारसी अपने को ससार में सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। उनका मत है कि वे लोग जो अपनी भौगोलिक स्थिति के फलस्वरूप, फारस के निकट हैं, अत्यधिक अच्छाई से युक्त हैं। जो देश फारस से दूर हैं वहाँ के निवासी जंगली एवं असभ्य हैं।'

धर्म-ग्रंथ

ईरानियों की सांस्कृतिक उन्नति में जरथुष्ट्र धर्म ने महान योगदान दिया। जरथुष्ट्र का धर्म एक नैतिक धर्म था और इसमें कहा गया था कि मनुष्य शुभ और अशुभ शक्तियों का सङ्घर्ष-क्षेत्र है यह मनुष्य की इच्छा पर है कि वह शुभ कर्म करके अहुरमज्दा का प्रिय बनना चाहता है या पाप कर्म करके अंग्रमैन्यु। पाप और पुण्य की इस भावना ने पारसियों की नैतिक उन्नति में महान योगदान दिया। जरथुष्ट्र की परलोकवाद की भावना भी पारसियों की नैतिक उन्नति में बहुत अधिक सहायक हुई। अपनी इस नैतिक भावना के फलस्वरूप यह धर्म सुदूर देशों में भी प्रचलित हुआ और विभिन्न धर्मों के अनुयायियों पर अत्यन्त व्यापक प्रभाव डाला। जरथुष्ट्र का धर्म ज्ञान पर आधारित धर्म था और कदाचित भारत में प्रचलित धर्म को छोड़कर किसी अन्य देश में प्रचलित किसी अन्य धर्म ने जरथुष्ट्र धर्म के पूर्व यह दावा नहीं किया था कि वह ईश्वर प्रदत्त धर्म है। कदाचित यहूदी धर्म ने भी ईरानी सम्पर्क में आने के बाद यह दावा किया। अपनी नैतिकता के फलस्वरूप जरथुष्ट्र धर्म आज भी अनेक व्यक्तियों को आकर्षित किये हुये हैं।

'जेन्द-अवेस्ता' इन लोगों का प्रमुख धर्म-ग्रन्थ है जिसके चार भाग हैं—

(1) यस्न (yasna) और गाथा भाग में धर्म के सिद्धान्तों और पुरोहितों के मन्त्रों का समावेश किया गया है।

(2) वेन्दीदाद (vendidad) भाग में धार्मिक विधि निषेध है।

(3) विस्पेरेद (vispered) में देवताओं की वन्दना है।

(4) यष्ट (yashta) में देवदूतों की वन्दना के मन्त्रों का सङ्कलन किया गया है।

साहित्य, विज्ञान एवं कला

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि निरन्तर युद्धों में लगे रहने के कारण पारसीक साहित्य की ओर अधिक ध्यान न दे सके। उनमें हृदय तत्व का अभाव था अतः उनसे साहित्य निर्माण की आशा नहीं की जा सकती। इस युग में कुछ गीत अवश्य लिखे गये जो मुख्यतः धार्मिक हैं। कथा साहित्य का भी थोड़ा-बहुत विकास इस युग में हुआ। अरेबियन नाइट्स में सङ्कलित कुछ कथायें पारसी लोगों की ही बतलाई जाती हैं। परन्तु इस विषय में पर्याप्त मतभेद हैं।

वैज्ञानिक क्षेत्र में भी इन लोगों ने कोई विशेष उन्नति नहीं की। यह लोग आरम्भ मे बहुत अधिक अन्ध-विश्वासी थे। उनका कहना था कि दानवीय शक्तियों के द्वारा 9999 रोग उत्पन्न होते हैं जिनका निदान जन्तर-मन्तर के द्वारा हो किया जा सकता है और यह जन्तर-मन्तर पुरोहित वर्ग ही कर सकता है। परन्तु धीरे-धीरे चिकित्सा-शास्त्र का विकास फारस में हुआ और आर्टक्जेरीज द्वितीय के समय तक चिकित्सा-शास्त्र का पर्याप्त विकास हो चुका था। इस युग तक निम्नलिखित सुधार हो चुके थे—

(1) डाक्टरों को फीस निर्धारित हो चुकी थी।

(2) नवीन डाक्टरों के लिये ३ वर्ष प्रशिक्षण करना आवश्यक था और वे विदेशियों की चिकित्सा नहीं कर सकते थे।

(3) समाज में चिकित्सक समूह सङ्गठित हो चुके थे।

(4) पुरोहित वर्ग को बहुत मान्यता प्राप्त थी अतः उसकी चिकित्सा निःशुल्क की जाती थी।

विज्ञान की अन्य शालाओं में भी इस युग में विशेष उन्नति नहीं हुई।

भाषा एवं लिपि—इस काल में तीन प्रकार की भाषायें प्रचलित थीं—

(1) प्राचीन फारसी

(2) बेबीलोनियन

(3) अंशनाइट अथवा सूसियन

ईरानी श्रीमन्त प्राचीन फारसी का प्रयोग करते थे। इन्हीं से जेन्द और पहलवी भाषाएँ उत्पन्न हुईं। जेन्द का प्रयोग 'अवेस्ता' की रचना में किया गया और पहलवी से आधुनिक फारसी का जन्म हुआ। ईरानी के साथ बेबीलोनियन और सूसियन भाषाएँ भी बोली जाती थीं।

भाषाओं के लिखने में कीलाक्षर (Cuneiform) लिपि का प्रयोग किया जाता था। यह लिपि बेबीलोनिया से प्राप्त हुई थी परन्तु जहाँ बेबीलोनिया की लिपि में 300 अक्षर थे, इस लिपि में उनकी संख्या केवल 36 कर दी गई थी और धीरे-धीरे चित्राक्षर लिपि की जगह वर्णमाला का प्रयोग होने लगा। इस लिपि के अलावा ईरानियों ने एँ रँ मियन लिपि को भी अपनाया था।

कला

पारसीक कला की विशेषताएँ—पारसीक कला में विभिन्न कलाओं का सम्मिश्रण देखने को मिलता है। ईरानी काफी शौकीन और सुन्दर वस्तुओं को पसन्द करने वाले थे। उनके मकान बहुत सुन्दर होते थे। वे अपने शरीर में बहुमूल्य वस्तुओं और आभूषणों को पहनते थे तथा अपने घरों को फर्नीचर, रङ्ग-बिरंगे पर्दों, दरियों और तरह-तरह के बर्तनों से सजाते थे। वे फूलदान का प्रयोग भी करते थे। आभूषणों का प्रयोग स्त्री और पुरुष दोनों ही करते थे। उनके आभूषण उनकी कला के सुन्दर नमूने हैं। मुख्य आभूषण थे—टायरा, कर्णफूल और पायजेब। इन आभूषणों के निर्माण के लिए वह दूर देशों से नीलम और अन्य पत्थर मँगाते थे। सामन्त लोगों की अँगूठियाँ 'टरकोप' पत्थर की बनी होती थीं जो फारस की खानों में प्राप्त होता था। उनके आभूषणों पर कुछ बहुत सुन्दर और कुछ भद्दी आकृतियाँ प्राप्त होती हैं।

फारस विभिन्न संस्कृतियों और सभ्यताओं का केन्द्र रहा है, अतएव वहाँ की कला पर विभिन्न सभ्यताओं का प्रभाव देखने को मिलता है। इस सम्बन्ध में कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :—

(1) वहाँ की समाधियों पर लीडिया की समाधियों की छाप है।

(2) पर्सिपोलिस और सूसा के भवनों का आधार मिस्र की कला है।

(3) कृत्रिम चबूतरों और सीढ़ियों पर असीरिया की छाप है।

(4) ईंटों का प्रयोग मेसोपोटामिया की प्राचीन परम्परा की भाँति है।

(5) स्तम्भों के शीश के नीचे के भाग का अलङ्करण यूनानी प्रभाव से रहित नहीं कहा जा सकता।

अतः हम कह सकते हैं कि विभिन्न कलाओं का सम्मिश्रित रूप ही ईरान की राष्ट्रीय सम्पत्ति बन गया। पारसीक कला असाम्प्रदायिक कला है। वह कला धर्म के आश्रय में न पनप कर राजाओं के आश्रय में पनपी है। प्रसिद्ध विद्वान हुआर्ट ने इस कला का वर्णन करते हुये लिखा है—

"पारसीक कला एक सम्मिश्रण-पूर्ण (Composite) कला थी। इसका उद्भव राजा की कल्पना से हुआ था—उस कल्पना से, जिसने साम्राज्य की भाँति ही, असीरिया, मिस्र और एशियायी यूनान में प्राप्त अपने को प्रभावित करने वाली प्रत्येक कला शैली को एक कृत्रिम सबल एकता के सूत्र में संगठित कर दिया था। वह विशालता के अनुरागी सर्वशक्तिमान सम्राट की आसक्ति का प्रतिरूप थी।"

ईरानी कला का सुन्दरतम रूप उसकी वास्तुकला में निहित है। साइरस, डेरियस महान और अन्य हखामशी सम्राटों ने अनेक महलों और समाधियों का निर्माण करवाया जो अपनी सुन्दरता के लिये प्रसिद्ध हैं।

पेसरगेडाय (Pasargadae)—ईरानी कला में मन्दिरों आदि का निर्माण न होकर राजमहलों और समाधियों आदि का निर्माण हुआ है। पेसरगेडाय हखामशियों के प्रांत फार्स (परसिस) की राजधानी थी। यहाँ सम्राट साइरस की एक समाधि प्राप्त हुई है। सात चबूतरों पर 140 फुट लम्बा, 116 फुट चौड़ा और 35 फुट ऊँचा एक भवन था जिसको छोटे-छोटे धातु के टुकड़ों और पत्थर से बनाया गया था। ऐसा विश्वास है कि यह यूनानी कारीगरों द्वारा निर्मित किया गया था। इसके सब ओर ऊँचे-ऊँचे खम्भे थे जो अब नष्ट हो चुके हैं। फारस के लोग प्राचीन काल में इसे 'मशशद-ई-महार-सुलेमान' के नाम से पुकारते थे।

इसके अतिरिक्त 300 फुट लम्बा एक चबूतरा भी मिला है जो पत्थर का बना हुआ है एवं जिसमें धातु के टुकड़ों का भी प्रयोग किया गया है। यह 'तख्ते-सुलेमान' के नाम से पुकारा जाता है।

साइरस की समाधि के समीप एक स्तम्भ बना हुआ है जिस पर एक पंख वाली मूर्ति बनी हुई है। यह 'सम्राट साइरस की पंख वाली मूर्ति' के नाम से प्रसिद्ध है। इस मूर्ति में विभिन्न कलाओं का सम्मिश्रण परिलक्षित होता है। मूर्ति के मुकुट और सिर पर मिस्र की कला, पोशाक और पंखों पर असीरियन कला और चेहरे पर भारतीय कला की छाप है। ऐसा कहा जाता है कि प्राचीन इतिहासकारों द्वारा इस मूर्ति के नीचे 'मैं कुरुष, हखामशी राजा हूँ', लिखा हुआ पाया गया था परन्तु अब वह मिट गया है।

पर्सिपलिस—पर्सिपलिस के खण्डहर भी ईरानी कला की सुन्दरता का गुणगान कर रहे हैं। यह साम्राज्य की राजधानी थी अतएव इस युग के सभी प्रमुख

शासकों ने यहाँ अपने महलों का निर्माण कराया। इनमें सबसे प्रसिद्ध भवन 'तख्ते-जमशेद' है जो चूने और पत्थर से बनाया गया था। इसके दोनों ओर सीढ़ियाँ बनी हैं जो इतनी चौड़ी थीं कि उन पर दस घुड़सवार आसानी से चल सकते थे। इसकी निर्माण कला पर भी असीरियन कला का प्रभाव प्रतीत होता है। सीढ़ियों को मिलाने वाले स्थान पर अन्दर घुसने का रास्ता है जिसके दोनों ओर पंख वाले बैलों की मूर्तियाँ बनी हैं। बैलों के सिर मनुष्य जैसे हैं। इन बैलों पर तीन भाषाओं में लिखा है—

"I am Xerxes, the great King, the King of Kings, the King of many tongued countries, the king of the great universe, the son of Darius, the king, the Achaemenian."

सम्राट जारक्सस के एक महल का क्षेत्रफल 150 वर्ग फुट है। इस महल में 72 खम्भे हैं। हाल के सभी खम्भे नीले संगमरमर या पत्थर के बने हुये हैं। इन खम्भों में से लगभग 13 खम्भे आज प्राप्त हो रहे हैं। खम्भों के नीचे के भाग पर उल्टे कमल और घन्टे की आकृति बनी है और शीश पर दो बैलों की मूर्तियाँ हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत के मौर्य-युगीन स्तम्भों पर यहाँ की कला की छाप है। इस कक्ष के पीछे एक और कक्ष है जिसके द्वार-मण्डप पर बने चित्र बहुत सजीव और सुन्दर हैं।

जारक्सस के महलों के पश्चात् सम्राट डेरियस के महल परिलक्षित होते हैं। जारक्सस की 'चेहिल-मीनार' के पूर्व में 100 खम्भों वाला एक विशाल हाल है। कहा जाता है कि जब सिकन्दर महान ने ईरान पर आक्रमण किया तो उसने इस हाल में बैठकर भोजन किया था। हाल के उत्तर के एक पोर्टिको में एक मनुष्य की मूर्ति बनी हुई जो ईरानी कला का निश्चित रूप हमारे सामने रखती है। यहाँ पर डेरियस महान की एक मूर्ति मिलती है जिसमें उसे सिंहासन पर बैठा हुआ दिखाया गया है।

सूसा और एकबटना—हखामशी राजाओं ने एकबटना में जो महल बनवाये थे वे काठ के बने हुये थे, अतः पूर्ण रूप से विलुप्त हो गये हैं। सूसा में सम्राट जारक्सस द्वितीय ने जो महल बनवाये उनके अवशेष अब भी प्राप्त होते हैं। सूसा का सम्राट जारक्सस का महल बहुत सुन्दर था। इस महल में दो चित्र बने हुये थे जिनमें से एक 'Frieze of the Achers' नामक चित्र बहुत प्रसिद्ध है। यह चित्र 5 फुट ऊँचा है जिसमें सम्राट के अमर सैनिकों को चित्रित किया गया है। यह सैनिक दरबारियों के रूप में एक कतार में खड़े हुये चित्रित किये गये थे। दूसरा चित्र 'Frieze of Luris' भी अति सुन्दर है। इस चित्र में शिकार के लिये तैयार सिंहों का चित्रण किया गया है। ये दोनों ही चित्र पैरिस के संग्रहालय में अब भी देखे जा सकते हैं।

मकबरे—डेरियस महान और उसके उत्तराधिकारियों ने पर्वतों को काटकर अनेक मकबरे बनवाये। इन मकबरों में कुरुष द्वितीय और डेरियस महान द्वारा बनवाये हुये मकबरे अधिक प्रसिद्ध हैं। डेरियस महान का मकबरा 60 फुट लम्बा और 20 फुट चौड़ा है। इस मकबरे में एक सिंहासन है जिस पर डेरियस महान धनुष-बाण लिये बैठा है। वह अपना बायाँ हाथ अहुर-मज्दा के नमस्कार के लिये ऊपर उठाये हैं। इन मकबरों की कला में मिस्र की कला की छाप स्पष्ट प्रतीत होती है।

मोहरों की खुदाई (Glyptic Art)—इस कला में भी पारसी बहुत अधिक पटु थे। इस युग में सील मोहरों का प्रयोग बहुत अधिक होता था। आज भी उनकी यह कला ज्यों की त्यों बनी हुई है। ईरान की बनी हुई मोहरें आज भी बहुत सुन्दर मानी जाती हैं।

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि सोने के आभूषण बनवाने का शौक भी हखामशी सम्राटों को था। इन आभूषणों में नीलम का भी प्रयोग होता था इस कला के कुछ नमूने प्राप्त हुये हैं जिनमें से मुख्य हैं 'पारस रथी का एक नमूना', 'चाँदी का एक चक्र' और 'सोने का एक पात्र'। चाँदी का चक्र तो देखते ही बनता है। इस चक्र पर सोने की पत्तर चढ़ी हुई है और उसके चारों किनारों पर शिकारियों के चित्र बने हुये हैं। सोने के पात्र की मूठ बहुत सुन्दर है और उस पर एक शेर का मस्तक अंकित किया गया है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि हखामशी सम्राटों का युग ईरानी कला के विकास की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण युग था। पर्थासारथी ने ठीक ही लिखा है—

"The Achaemenian period can safely be called the golden period of Iranian Art."

सारांश

ईरानी समाज में कुटुम्ब को बहुत अधिक महत्व दिया गया था। समाज में विवाह की प्रथा प्रचलित थी। धर्मानुसार विवाह और गृहस्थ जीवन को अच्छा समझा जाता था। पारसीक रहन-सहन और खान-पान बड़ी उच्चकोटि का था। यह लोग स्वच्छता की ओर विशेष ध्यान देते थे। जोरेस्टर के समय में स्त्री को बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता था। यद्यपि रखैल-प्रथा प्रचलित थी परन्तु स्त्रियों के साथ बुरा व्यवहार नहीं किया जाता था। इनके प्रमुख अस्त्र-शस्त्र जालीदार ढाल, तीरकश, छोटे बल्लम और तीर-धनुष थे। मुख्य धन्धा खेती था। जौ और गेहूँ की खेती अधिक होती थी। ७ वर्ष तक बालक को माता-पिता के पास रक्खा जाता था तत्पश्चात् विद्यालय भेज दिया जाता था। युद्ध शिक्षा को विशेष महत्व दिया जाता था।

आर्थिक दृष्टि से ये लोग सम्पन्न थे। डेरियस महान ने 'डेरिक' नाम की मुद्राएँ चलाई थीं। ये अपने अधीन राजाओं से कर लेते थे।

धार्मिक क्षेत्र में पारसीक पहले बहुदेववाद और यज्ञवाद में विश्वास करते थे परन्तु जोरेस्टर धर्म ने इनके विचारों में घोर परिवर्तन कर दिया। जोरेस्टर का जन्म 1000 शताब्दी ई० पू० के लगभग माना जाता है। यह बड़ी विलक्षण बुद्धि का था। इसमें निम्नलिखित विशेषताएँ थीं—

(1) एकेश्वरवाद
(2) द्वन्द्वात्मकता
(3) सदाचारिता
(4) आशावादिता
(5) स्वर्ग और नरक में विश्वास
(6) सांसारिकता
(7) आत्मा में विश्वास
(8) कर्म-काण्ड रहित धर्म
(9) नैतिकता

इसके धर्म में संसार के सृजन के सम्बन्ध में भी प्रकाश डाला गया था। इस धर्म के अनुयायियों का मुख्य ग्रन्थ 'जेन्द-अवेस्ता' है।

साहित्य और विज्ञान के क्षेत्र में इन लोगों ने अधिक उन्नति नहीं की थी। समाज में चिकित्सक समूह अवश्य विद्यमान था। पारसीक समाज में तीन प्रकार की भाषाएँ प्रचलित थीं—प्राचीन फारसी, बेबिलोनियन, अंशनाइट अथवा सूसियन। ये लोग कीलाक्षर लिपि का प्रयोग करते थे।

ईरानी कला पर विभिन्न कलाओं की छाप है। यह एक समिश्र कला थी। यों तो ईरानी विभिन्न प्रकार की कलाओं से परिचित थे परन्तु वास्तुकला में इन्होंने विशेष उन्नति की थी। इनकी कला की निश्चित जानकारी पेसरगेडाय, पर्सिपलिस के खण्डहरों, सूसा और एकबटना के महलों से होती है।

———

अध्याय | 7

पार्थियन सभ्यता

(PARTHIAN CIVILIZATION)

प्रश्न 1—पार्थियन साम्राज्य में ईरान की सांस्कृतिक उन्नति पर प्रकाश डालिये।

Write about the cultural development of Iran during Parthian Empires.

प्रश्न 2—पार्थियन वंश के शासन की स्थापना के विषय में आप क्या जानते हैं ? उनकी सामाजिक और कलात्मक उन्नति पर प्रकाश डालिये।

What do you know about the establishment of the rule of Parthian Dynasty. Throw light on the social and cultural progress.

प्रश्न 3—पार्थियन कला के विकास पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

Give a short account of the development of Parthian Art.

प्रश्न 4—पार्थिया तथा रोम के युद्धों का वर्णन कीजिये।

(दिल्ली विश्वविद्यालय)

Give an account of the struggles between Rome and Parthia.

(Delhi University)

पार्थियन साम्राज्य का इतिहास तृतीय शताब्दी ई० पू० से आरम्भ होता है। बहुत से इतिहासकारों का मत है कि ये लोग सीथियन जाति के थे और कैस्पियन सागर के निकट की पर्नि जाति से इनका सम्बन्ध था। ये लोग अपनी जन्मभूमि छोड़कर दक्षिण पूर्व की ओर बढ़ते हुये पार्थव या खुरासान प्रदेश में आये और बहुत से छोटे-छोटे राज्यों की स्थापना की। पार्थव नामक स्थान पर राज्य की स्थापना करने के फलस्वरूप ये लोग पार्थियन कहलाये। शक्ति-संग्रह करके इन्होंने सारे ईरान को हस्तगत

कर लिया। कुछ इतिहासकार पार्थव का अर्थ घोड़े पर चढ़ने वाला रखते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि ये घुड़सवारी के युद्ध में अत्यन्त प्रवीण थे।

इतिहास के साधन या आधार—पार्थियन सभ्यता के इतिहास को जानने का कोई प्रामाणिक साधन उपलब्ध नहीं है। गार्डनर के अनुसार पार्थियन इतिहास दन्त-कथाओं और गल्पों का संग्रह है जिसे कालान्तर में इतिहास ने मान्यता प्रदान कर दी। इतिहास जानने का एक मात्र साहित्यिक साधन जस्टिन का लिखा हुआ विवरण है परन्तु यह विवरण अपर्याप्त है और इसमें कहीं पर विरोधी उक्तियाँ भी पाई जाती हैं। ईरानी लेखकों ने भी पार्थियन इतिहास पर वांछित प्रकाश नहीं डाला है। पुरातत्वों की खुदाई में प्रारम्भिक पार्थियन मुद्राओं पर तिथि न होने के कारण राजवंशों के उत्थान-पतन का ठीक-ठीक पता नहीं चलता। जो थोड़ी बहुत सामग्री उपलब्ध है उसी के आधार पर पार्थियन इतिहास की रूपरेखा प्रस्तुत की जा रही है।

राजनीतिक उत्कर्ष

अर्सेकिज़ प्रथम—इस युग में ईरान में जिस वंश ने राज्य किया उसका पहला शासक अर्सेकिज प्रथम माना जाता है। 249 ई० पू० में उसने अपने छोटे भाई के अपमान का बदला लेने का बहाना करके असाक के राजा से युद्ध किया और उसके राज्य को हस्तगत कर लिया। परन्तु उसके दो वर्ष बाद ही 247 ई० पू० में उसकी मृत्यु हो गई।

तिरदत्तीज—अर्सेकिज की मृत्यु के पश्चात् उसका भाई तिरदत्तीज सिंहासनारूढ़ हुआ। वही पार्थियन साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक था। यह भी अत्यन्त वीर और साहसी सम्राट था। सर्वप्रथम उसने सेल्युकस कैलीनीकस से हिरसेनिया (पार्थिया) का प्रान्त छीन लिया और अपनी राजधानी अस्सक अथवा आसक में स्थापित की। अस्सक नामक स्थान पर्वत श्रेणियों से घिरा हुआ था अतः सुरक्षा की दृष्टि से बहुत अच्छा था। उसने लगभग 37 वर्ष राज्य किया। उसने अपने राज्य की सुरक्षा के लिये दुर्ग भी बनवाये। अन्तिम दिनों में उसने अपनी राजधानी अस्सक के स्थान पर हैकैटोमपिलोस बनाई जो एक शक्तिशाली व्यापारिक केन्द्र थी।

अर्तबेनुस प्रथम—तिरदत्तीज की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र अर्तबेनुस प्रथम 209 ई० पू० में गद्दी पर बैठा। गद्दी पर बैठने के पश्चात् अर्तबेनुस प्रथम ने सर्सेकिज तृतीय की उपाधि धारण की। यह भी अपने पिता की भाँति एक साम्राज्यवादी शासक था। वह भी सेल्यूकस-वंशियों को दबाकर अपने साम्राज्य की सीमाओं को बढ़ाना चाहता था। परन्तु इसके समय में सेल्यूकस वंश का राजा ऐंटायकस काफी शक्तिशाली था।

उसने मीडिया, एकबटना तथा बैक्ट्रिया को जीतकर अपनी शक्ति में वृद्धि कर ली थी। अर्तबेनुस प्रथम ने उससे सन्धि कर ली।

फ्रिओपेटिअस—अर्सेकिज तृतीय के बाद इस वंश का शासक फ्रिओपेटिअस द्वितीय हुआ। इसने कैस्पियन सागर के कुछ प्रदेशों को जीता। इस समय तक ऐंटायकस तृतीय की शक्ति क्षीण हो चुकी थी और इसके फलस्वरूप उसे अपनी शक्ति को बढ़ाने का अवसर प्राप्त हुआ। इसने दक्षिणी तट के पार्श्ववर्ती प्रदेशों को जीतकर पार्थियन राजाओं में सबसे पहले 'फिल्हलन' की उपाधि धारण की।

मिथ्रदत्तीज प्रथम—पार्थियन साम्राज्य का सबसे प्रतिभाशाली शासक मिथ्रदत्तीज प्रथम ही था। कुछ विद्वानों का मत है कि पार्थियन साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक इसे ही मानना चाहिये। इसमें सुयोग्य शासक के सभी गुण विद्यमान थे। इसका राज्यकाल 160 ई० पू० से 140 ई० पू० तक रहा। इसने साम्राज्य-विस्तार की नीति को अपनाया। मीडिया, एलीमाइज, बेबिलोनिया तथा असीरिया को केवल 20 ही वर्ष में जीतकर इसने अपने राज्य का विस्तार किया। इसका साम्राज्य बैक्ट्रिया से लेकर फरात नदी और कैस्पियन सागर से लेकर फारस की खाड़ी तक फैला हुआ था। उसने दजला नदी के तट पर अपनी राजधानी स्थापित की जो टेसिफन के नाम से विख्यात हुई। मिथ्रदत्तीज का सबसे प्रसिद्ध युद्ध सेल्युकस वंशी डेमेट्रिअस द्वितीय से हुआ। डेमेट्रिअस हार गया और बन्दी बना लिया गया। मिथ्रदत्तीज ने अपनी पुत्री का विवाह डेमेट्रिअस के साथ कर दिया और इस प्रकार अपना एक शत्रु समाप्त कर दिया। अपने साम्राज्य में रहने वाली यूनानी जनता के साथ उसने सहिष्णुता का व्यवहार किया।

फ्रातिज द्वितीय—फ्रातिज द्वितीय मिथ्रदत्तीज का प्रथम पुत्र था। सेल्यूकस-वंशी ऐंटायकस सप्तम ने लगातार तीन युद्धों में पार्थियन सम्राट फ्रातिज द्वितीय को परास्त कर अपनी खोई हुई शक्ति को पुनः प्राप्त करने का प्रयास किया। अन्त में फ्रातिज ने ऐंटायकस से सन्धि करनी चाही परन्तु ऐंटायकस ने उसका प्रस्ताव ठुकरा दिया क्योंकि वह एकबटना तक बढ़ चुका था और पार्थियन राज्य को समाप्त कर देना चाहता था। परन्तु परिस्थितियों ने उसका साथ नहीं दिया। मौसम खराब हो जाने के फलस्वरूप वह आगे न बढ़ सका और उसने अपने सैनिकों को कई भागों में बाँटकर आस-पास के नगरों एवं गाँवों में टिका दिया। यूनानी सैनिकों ने वहाँ की जनता को खूब लूटा, इससे वहाँ की जनता असन्तुष्ट हो गई और उसने ऐंटायकस के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। पार्थियन कर्मचारियों ने इस विद्रोह की लपटों को भड़काने में योगदान दिया। परिस्थितियों से लाभ उठाकर फ्रातिज ने ऐंटायकस पर आक्रमण कर दिया और 129 ई० पू० में उसे पराजित करके उसकी शक्ति को छिन्न-भिन्न कर दिया।

फ्रातिज सेल्युकस-वंशियों की शक्ति छिन्न-भिन्न करने में सफल हुआ परन्तु उसने एक भयानक भूल की और इस भूल का खामियाजा उसे भुगतना पड़ा। उसने ऐंटायकस के सैनिकों को अपनी सेना में भर्ती कर लिया था। बाद में इन सैनिकों ने विद्रोह कर दिया। ऐंटायकस को पराजित करने के बाद फ्रातिज को तुर्किस्तान की सीथियन जाति से लोहा लेना पड़ा। सीथियनों ने पार्थियनों पर दो दिशाओं से आक्रमण किया। एक सीथियन सेना पश्चिम की ओर बढ़कर एकबटना पहुँची और दूसरी दक्षिण की ओर बढ़कर सींस्तान पहुँची। सीथियनों ने पार्थियनों के दाँत खट्टे कर दिये। इसी बीच ऐंटायकस की सेना से पार्थियन सेना में भर्ती होने वाले यूनानी सैनिकों ने फ्रातिज को धोखा दिया और फ्रातिज युद्ध-भूमि में लड़ता हुआ मारा गया तथा पार्थियन साम्राज्य पर विपत्ति के काले बादल मँडराने लगे।

मिथ्रदत्तीज द्वितीय—इन्हीं भयङ्कर परिस्थितियों में मिथ्रदत्तीज द्वितीय गद्दी पर बैठा। इसने फिर से पार्थियन साम्राज्य को सङ्गठित रूप दिया। इसने मिथ्रदत्तीज प्रथम के ही कदमों पर कदम रखा और अपने राज्य को शकों के हाथ में जाने से बचा लिया। इसने चीन और पार्थिया के बीच व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किये। रोम साम्राज्य से भी उसने मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध किये। सीस्तान तथा अरेकोशिया को अपने अधीन कर लिया। मिथ्रदत्तीज की कूटनीतिज्ञता का परिचय इस बात से मिलता है कि उसने आरमेनिया के आन्तरिक झगड़ों में हस्तक्षेप कर टिग्रेनीज को अपने अधीन रखकर वहाँ का शासक बना दिया। कुछ विद्वानों ने उसकी सफलताओं के कारण उसकी तुलना दारा महान से की है।

मनस्क्रज—मनस्क्रज का शासन-काल पार्थियन इतिहास का विसंघटन काल माना जाता है। मिथ्रदत्तीज की मृत्यु के पश्चात् फ्रातीज प्रथम का पुत्र मनस्क्रज सिंहासन पर बैठा। इसने दस वर्षों तक शासन किया। इसकी शासन में विशेष रुचि नहीं थी।

सनत्रोक्रिज—यह मिथ्रदत्तीज प्रथम का पुत्र था। जब यह सिंहासनारूढ़ हुआ तो रोम और पोंटस के मध्य सङ्घर्ष चल रहा था। ये दोनों ही सनत्रोक्रिज की सहायता चाहते थे परन्तु इसने किसी की भी सहायता न की। दूसरी ओर टिग्रेनीज जिसको मिथ्रदत्तीज द्वितीय ने आरमेंनिया का शासक बनाया था, ने अवसर पाकर सीमान्त प्रदेशों को जीतना आरम्भ कर दिया। वह दक्षिण में एकबटना तक आ पहुँचा और अपने को राजाधिराज घोषित कर दिया। इस कारण पार्थियन सम्राट सनत्रोक्रिज की स्थिति बिल्कुल डाँवाडोल होने लगी।

फ्रातीज तृतीय—सनत्रोक्रिज का पुत्र फ्रातीज तृतीय 70 ई० पू० में गद्दी पर बैठा। उसने उन समस्त प्रान्तों को फिर अपने शासन में मिला लिया जिनको उसके

पिता ने खो दिया था उसने टिग्रेनीज को परास्त किया। उसकी मृत्यु उसके पुत्रों के षड्यन्त्र द्वारा हुई।

ओरोड्स द्वितीय—इसके शासन-काल में कई उल्लेखनीय घटनायें घटीं। इसके समय में रोमन कौंसल क्रेसस ने पार्थिया, बैक्ट्रिया और भारत के कुछ भाग को जीतने की इच्छा की। सबसे पहले उसने पार्थिया पर धावा बोल दिया। ओरोड्स ने उससे सन्धि का प्रस्ताव किया। परन्तु क्रेसस ने उसे ठुकरा दिया। अन्त में पार्थिया और रोम के मध्य भयङ्कर सङ्घर्ष हुआ। इस युद्ध में क्रेसस अपने पुत्र सहित मारा गया। इस युद्ध की विजय का श्रेय सुरेन नाम के एक योद्धा को है जिसकी बढ़ती हुई शक्ति को देखकर ओरोड्स ने उसे षड्यन्त्र द्वारा मरवा डाला। इस विजय के पश्चात् ओरोड्स ने अपने पुत्र को सीरिया पर आक्रमण करने के लिये भेजा परन्तु उसे वापस लौटना पड़ा। 40 ई० पू० में सीरिया के निवासियों ने ओरोड्स को निमन्त्रित किया कि वह आकर रोम के क्रूर शासकों से उनकी रक्षा करे। ओरोड्स तो अवसर की तलाश में था ही। वह अपनी सेना लेकर सीरिया पहुँचा। बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ और प्रतीत होने लगा कि पार्थिया सम्पूर्ण रोम साम्राज्य पर विजय प्राप्त कर लेगा। परन्तु इसी समय पार्थिया के दो वीर लेबिएनस तथा पैकोरस मारे गये जिससे ओरोड्स बहुत दुखी हुआ और 37 ई० पू० में अपने बड़े पुत्र को उत्तराधिकारी घोषित कर उसने राज्य-कार्य से सन्यास ले लिया।

फ्रातीज चतुर्थ—यह बड़ा क्रूर शासक था। इसने गद्दी पर बैठते ही अपने कई भाइयों को मौत के घाट उतार दिया। षड्यन्त्र की आशङ्का से इसने अपने बड़े पुत्र की भी हत्या करवा दी। इसी के शासन-काल में रोम के सम्राट एन्टानी ने आरमेनिया के सम्राट से मिलकर मीडिया और पार्थिया को अपने अधिकार में करना चाहा। उसने पहले मीडिया पर आक्रमण किया। परन्तु इस युद्ध में रोम की पराजय हुई। इसके बाद ऐन्टानी को आगस्टस से युद्ध करना पड़ा। फलस्वरूप फ्रातीज चतुर्थ रोम की ओर से निश्चिन्त हो गया। तत्पश्चात् उसने अपने मित्र मीडिया पर आक्रमण किया और उसे जीतकर आरमेनिया को भी अपने अधिकार में कर लिया। उसकी निरन्तर विजयों ने उसे और अधिक अत्याचारी व निरंकुश बना दिया। उसकी इस दुराचारिता से उसकी जनता ऊब गई और जनता ने विद्रोह कर दिया। फ्रातीज ने भागकर सीरिया में शरण ली। सीरिया की सहायता से उसने पुनः अपनी गद्दी प्राप्त की।

तत्पश्चात् रोम और पार्थिया के मध्य एक बार फिर सङ्घर्ष हुआ परन्तु अन्तिम विजय पार्थिया की ही हुई। इसके पश्चात् दोनों देशों में सन्धि हो गई।

कहा जाता है कि फ्रातीज चतुर्थ को उसके एक पुत्र ने जहर देकर मार डाला।

अर्तबेनुस तृतीय – फातीज चतुर्थ के बाद उसका पुत्र फातीज पंचम गद्दी पर बैठा। उसके सामन्तों ने विद्रोह कर उसे गद्दी से उतार दिया। इसके बाद फातीज चतुर्थ का दूसरा पुत्र वानोनीज गद्दी पर बैठा परन्तु उसे भी पदच्युत कर दिया गया और आखीर में मार डाला गया। उसके पश्चात् अर्तबेनुस तृतीय के हाथ में शासन की बागडोर आई। इसके शासन-काल में ईरान की बहुत अधिक सांस्कृतिक उन्नति हुई परन्तु राजनीतिक क्षेत्र में ज्यों का त्यों रहा।

बोलोगेसीज—अर्तबेनुस तृतीय के पश्चात् ईरान का शासन कुछ अयोग्य शासकों के हाथ में आया। उनके पश्चात् बोलोगेसीज गद्दी पर बैठा। इसने 52 ई० से लेकर 77 ई० तक राज्य किया। इसने बालोगेशिया नामक नगर का निर्माण व्यापारिक दृष्टि से कराया। वाणिज्य एवं व्यापार का यह नगर मुख्य केन्द्र था। उसने प्रथम बार अपने राजकीय लेखों में पहलवी अर्सेकिड लिपि का प्रयोग किया। अपने शासन-काल में उसने सीथियन जाति के खानाबदोशों को परास्त किया। रोम और आरमेनिया के बीच के सङ्घर्ष में इसने आरमेनिया की सहायता की। आरमेनिया और रोम में सन्धि हो गई और आरमेनिया में बोलोगेसीज का बड़ा स्वागत किया गया।

75 ई० में अलानी जाति ने आरमेनिया के शासक को परास्त करके पार्थिया पर आक्रमण किया। इस युद्ध में अन्तिम विजय बोलोगेसीज की ही हुई। इस प्रकार अपने शासन-काल में उसे किसी के आगे झुकना नहीं पड़ा। बोलोगेसीज इस काल का सुयोग्य शासक था तथा सफलतापूर्वक उसने 25 वर्ष तक राज्य किया।

बोलोगेसीज द्वितीय—बोलोगेसीज प्रथम के बाद 77 ई० से लेकर 158 ई० तक तीन राजाओं ने राज्य किया। 148 ई० में बोलोगेसीज गद्दी पर बैठा। वह भी युद्ध प्रेमी शासक था। उसने साम्राज्य की खोई हुई शक्ति को पुनः सङ्गठित किया। इसके पश्चात् उसने रोम से लोहा लिया। कोसरोज के नेतृत्व में उसने एक बड़ी सेना रोम पर विजय प्राप्त करने के लिये भेजी। फरात नदी को पारकर कोसरोज रोम की सेना से भिड़ गया। इस युद्ध में रोम की पराजय हुई। इसके पश्चात् कोसराज सीरिया होता हुआ पैलेस्तीन पहुँचा। इसके बाद रोम से उसका फिर सङ्घर्ष हुआ। इस युद्ध में कोसरोज की पराजय हुई और आरमेनिया की राजधानी रोम के हाथ चली गई। तत्पश्चात् बोलोगेज ने रोम से स्वयम् लोहा लेना चाहा। रोम के सेनानायक केसियस ने सेल्यूसिया नाम के नगर में जनता पर बहुत अधिक अत्याचार किये। इसके पश्चात् उसने पार्थियन साम्राज्य की राजधानी टेसिफन पर आक्रमण किया। वहाँ भी उसने बहुत अत्याचार किये। 165 ई० में रोम और पार्थिया में सन्धि हो गई। इसके अतिरिक्त उसने इस राजवंश की खोई हुई मर्यादा एवं शक्ति का पुनरुद्धार किया। बोलोगेसीज द्वितीय ने 190 ई० तक राज्य किया। अपने शासन-

काल में उसने भारत और चीन के बीच व्यापारिक सम्बन्ध को अधिक बढ़ाने का प्रयत्न किया। काव्य और संस्कृति के क्षेत्र में भी उसने प्रगतिशील कदम उठाया था।

अर्तबेनुस पंचम— इसके पश्चात् कई अन्य राजाओं ने राज्य किया और अन्त में अर्तबेनुस सम्राट बना। उसने अपने समकालीन रोम सम्राट मैक्रिनस को दो बार हराया और राज्य की सीमा फरात नदी तक बढ़ गई। उसका विचार अपने साम्राज्य को योरुप तक बढ़ाने का था परन्तु वह ऐसा न कर सका और आगे चलकर इस कार्य को ससेनियन राजवंश ने पूरा किया। 236 ई० में अदेशिर के हाथों पार्थियन साम्राज्य का अन्त हुआ।

साम्राज्य संगठन और शासन-व्यवस्था

पार्थियन जाति एक खानाबदोश जाति के रूप में हमारे सम्मुख आती है परन्तु फिर भी इनकी अपनी सभ्यता और संस्कृति है। असीरियनों की तरह इन लोगों को भी लड़ना प्रिय था परन्तु इनका साम्राज्य सङ्गठन अपेक्षाकृत सुदृढ़ था।

सम्राट—साम्राज्य सङ्गठन को देखते हुये ऐसा प्रतीत होता है कि इनका शासन साखामनीष आदर्शों पर आधारित था। साखामनोष सम्राटों की तरह ही इस वंश के सम्राटों की पूजा की जाती थी। सम्राट की आज्ञा का उल्लङ्घन कोई भी नहीं कर सकता था। सम्राट को शारीरिक क्षति पहुँचाना पाप समझा जाता था। सामन्तवादी प्रथा परम्परानुसार अब भी चल रही थी। सम्राट को शासन-व्यवस्था में सहायता करने के लिये दो समितियाँ होती थीं। एक समिति में राज परिवार के युवक सदस्य आते थे और दूसरी में राज्य के धार्मिक एवं आध्यात्मिक प्रधान रहते थे। इनके अतिरिक्त समाज के अन्य सम्पन्न, कुलीन व्यक्ति भी इसमें सम्मिलित रहते थे। धार्मिक प्रधान को माँगी अथवा सोफी कहा जाता था। हखामशी सम्राटों के दरबारों की भाँति इस युग में सम्राटों के दरबारों में सात कुलीन परिवारों के प्रतिनिधि रहते थे। परन्तु सम्राट बनने का अधिकार केवल असीशीय परिवार के लोगों को ही था। सम्राट का चुनाव तभी मान्य समझा जाता था जब दोनों समितियाँ उसे अपनी स्वीकृति दे दें। सम्राट का राज्याभिषेक करने का कार्य सेनापति ही करता था। सेनापति की नियुक्ति वंश-परम्परानुसार होती थी।

पार्थियन सम्राटों के दरबार भी बड़ी शान-शौकत से युक्त होते थे। इन सम्राटों की तीन राजधानियाँ थीं। इनकी शीत ऋतु की राजधानी टेसिफन थी। इसके अतिरिक्त बेबीलोन में भी इनका राजमहल स्थित था। इस महल का वर्णन फिलास्ट्रेट्स निम्न शब्दों में करता है—

"इसकी छत पीतल की बनी थी, जो प्रकाश के प्रतिबिम्ब के कारण अद्वितीय छवि धारण करती थी। इसमें मरदाने और जनाने कमरे अलग बने थे तथा स्थान-स्थान पर वितान लटकाये गये थे, जिन पर सुनहला कसीदे का कार्य किया गया था। महल की दीवालों एवं खम्भों में कहीं-कहीं सोने और चाँदी की ईंटें जड़ दी गई थीं, जिनके सौन्दर्य के कारण प्रासाद की शोभा द्विगुणित हो उठती थी।" अन्य राजधानियाँ एकबटना और हेकाटोमपीलीस (Hecatomyplus) थीं। कुछ विद्वानों के अनुसार इनकी एक अन्य राजधानी रजिस (Rhages) भी थी जो मीडिया मग्ना तथा पार्थिया (हिर्सैनिया) के बीच स्थित थी। पार्थियन सम्राट और उनके सभी दरबारी बड़े ठाट-बाट से रहते थे। राजदरबारी अपने सम्राट को 'सम्राटों' का सम्राट कहते थे। सम्राट तड़क-भड़क युक्त वेशभूषा रखते थे और सुगन्धित द्रव्यों का अनुलेप करते थे।

सैन्य व्यवस्था—पार्थियन सम्राटों की कोई स्थायी सेना नहीं थी। उनके पास कुछ निजी रक्षक ही रहते थे। युद्ध के अवसर की सूचना मिलते ही विभिन्न प्रान्तों के सामन्त व सरदार नियत स्थान और नियत समय पर पहुँच जाते थे। कहा जाता है कि पार्थियन लोग घुड़सवारी में बड़े प्रवीण थे और इनकी सेना में घुड़सवारों की संख्या अधिक होती थी। ये लोग हाथियों की सेना का प्रयोग नहीं करते थे। जल-सेना का भी कोई प्रबन्ध नहीं था। इनकी पैदल सेना भी सुव्यवस्थित नहीं थी। केवल इनके घुड़सवार ही ऐसे थे जिन्होंने रोम के बड़े-बड़े सम्राटों को दहला दिया था। पार्थियन सेना की सबसे बड़ी कमजोरी यह थी कि ये लोग आमने-सामने तो बड़ा भयङ्कर युद्ध कर लेते थे परन्तु किलों और नगरों को घेरना नहीं जानते थे।

प्रान्तीय राज्य और उनका संगठन—समस्त साम्राज्य प्रान्तों में विभक्त था। इतिहासकारों के अनुसार राज्य में 18 प्रान्त थे। 11 प्रान्त बड़े थे और 7 प्रान्त छोटे थे। इन प्रान्तों का शासन सामन्तों के हाथ में था। बड़े प्रान्तों में मीडिया; एली-माइज और आरमेनिया आदि आते थे। ये प्रान्त नाममात्र के ही लिये पार्थिया सम्राट के अधीन होते थे।

प्रान्तों का प्रधान कोई सामन्त होता था। साइरस और दारा के काल की प्रथा अब भी विद्यमान थी। सामन्तों के दो मुख्य कार्य होते थे—

1. पार्थियन सम्राट को वार्षिक कर एवं भेंट देना।
2. आवश्यकतानुसार सम्राट को सैन्य सहायता देना।

ये सामन्त कभी-कभी अहितकर भी सिद्ध होते थे। क्योंकि जब उनका शासन

में हस्तक्षेप अधिक बढ़ जाता था तभी वे शत्रुओं से मिलकर अपने ही साम्राज्य का अहित करने लगते थे।

विजित प्रान्तों का शासन करने के लिये कोई राजकीय व्यक्ति या राजा का कोई सम्बन्धी हो नियुक्त किया जाता था जो पार्थिया सम्राट की अधीनता में कार्य करता था। कुछ स्वतन्त्र नगर राज्य भी थे जिनको यूनानी नगर राज्यों के नाम से पुकारा जाता था। इस प्रकार के नगर राज्यों में 'सेल्यूसीस' नामक नगर-राज्य प्रमुख था। इन राज्यों को स्वायत्त-शासन का अधिकार दिया गया था। ये नगर अत्यन्त समृद्धिशाली नगर थे। इसके अतिरिक्त कुछ यहूदियों के भी अपने नगर-राज्य थे जो यूनानियों की तरह ही स्वतन्त्र थे।

समाज एवं सामाजिक अवस्था

(1) वर्ग-विभाजन—ईरानी समाज में नवचेतना का उदय रोम के विरुद्ध उनकी सफलताओं के कारण हुआ। समाज को वर्गों में विभाजित किया गया था परन्तु पढ़े-लिखे दासों को भी राजकीय पदों पर नियुक्त किया जाता था। दासों की दशा बहुत खराब नहीं थी। उनके प्रति भी उदारवादी दृष्टिकोण को अपनाया गया था।

(2) स्त्रियों की दशा—ईरानी समाज में बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी। सम्राट भी अनेक विवाह कर सकता था परन्तु राजमहिषी एक ही होती थी। स्त्रियों को पुरुष की अधीनता में रहना पड़ता था। पर्दे की प्रथा भी प्रचलित थी। इस काल में स्त्रियों को वह सम्मान नहीं मिला जो उन्हें हखामशी सम्राटों के काल में मिला था। दास कन्यायें भी रक्खी जाती थीं।

(3) रहन-सहन—पार्थिया के लोगों का रहन-सहन बहुत साधारण था। वे मीडियन शैली का जामा और पतली मोहरी का पैजामा पहनते थे। उनके बाल लम्बे-लम्बे होते थे तथा वे लोग दाढ़ी भी रखते थे। ये लोग सिर पर रिबन भी लगाते थे और मुकुट भी धारण करते थे।

(4) अस्त्र-शस्त्र—इनके मुख्य अस्त्र धनुष-बाण, तलवार और छुरा थे। ये लोग घुड़सवारी में बड़े प्रवीण होते थे। घुड़सवार अपने साथ भारी भाला रखते थे। ये लोग युद्ध-काल में शरीर पर कवच और सिर पर शिरस्त्राण भी धारण करते थे। अशोसीद प्रथम के एक सिक्के के अनुसार युद्ध की पोशाक का वर्णन गार्डनर ने इस प्रकार किया है—

'सम्राट के सिर पर एक कोणदार शिरस्त्राण है, (जो असीरिया के लोगों के शिरस्त्राण से मिलता हुआ है) इसमें कान तथा गर्दन को बचत के लिये छज्जे (Flaps) लगे हुये हैं।'

(5) आमोद-प्रमोद—युद्ध एवं आखेट ही इनके आमोद-प्रमोद के मुख्य साधन थे। युद्ध उनके लिये सर्वश्रेष्ठ उद्यम था। आखेट उनके अनुसार सबसे अच्छा व्यसन था। ये लोग विभिन्न प्रकार के खेल-कूद में भी अभिरुचि लेते थे। सङ्गीत एवं नृत्य से भी ये लोग अभिरुचि रखते थे। बाँसुरी, पाइप और ढोलक इनके प्रिय वाद्य-यन्त्र थे।

(6) खान-पान—ये लोग मांस खाने के बहुत शौकीन थे। इसके अतिरिक्त ये लोग गेहूँ का प्रयोग भी अधिक करते थे। इनकी रोटियाँ बड़ी नरम होती थीं। शाक-सब्जी का प्रयोग भी होता था। मदिरा पान की प्रथा भी प्रचलित थी। खजूर की शराब अधिक मात्रा में पी जाती थी।

(7) कानून एवं न्याय—पार्थिया वालों की दण्ड व्यवस्था बड़ी कठोर थी। इनके कानूनों पर भी हखामशी सम्राटों और यूनान की छाप थी। सम्राट ही सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। झूठे वायदे को बड़ा जघन्य अपराध समझा जाता था। कैदियों के साथ अच्छा व्यवहार किया जाता था।

आर्थिक जीवन

पार्थियन साम्राज्य महत्वपूर्ण आर्थिक परिवर्तनों के लिये प्रसिद्ध है। इस युग में आर्थिक जीवन का पता हमें निम्नलिखित बातों से चलता है—

(1) कृषि—पार्थियन युग में ईरान में कृषकों की दशा अच्छी नहीं थी। कृषकों के पास भूमि की कमी थी। अधिकतर भूमि सामन्तों के हाथ में ही रहती थी। ये लोग गेहूँ की खेती अधिक करते थे। फल-फूल तथा वनस्पतियाँ उगाने की भी प्रथा थी। चीनी घास, लहसुन, खीरा, ककड़ी, प्याज और चमेली के फूल अधिक मात्रा में उत्पन्न किये जाते थे।

(2) पशु-पक्षी पालन—मुर्गियाँ और बतखें अधिक मात्रा में पाली जाती थीं। इनकी बाहरी देशों में खपत थी अतः इनको बाहर भी भेजा जाता था।

(3) उद्योग—उद्योगों में सूती कपड़े, चमड़े, लोहे के शस्त्र एवं तरह-तरह के बर्तन आदि का कार्य प्रमुख था। ये लोग सिल्क के कपड़े बहुत अच्छे बनाते थे। अनुलेप भी बनाये जाते थे।

(4) व्यापार—व्यापार भी इन लोगों की आय का मुख्य साधन था। इनके माल की खपत रोम, बेबिलोनिया, सीरिया एवं पैलेस्तीन में अधिक थी। रोम में ताँबे और शीशे के बर्तन, शराब तथा अनुलेप आदि जाते थे। यह सामान पूर्वी देशों को भी जाता था। चीन और भारत को फौलाद भेजते थे। प्लूटार्क के अनुसार पार्थियन सिपाहियों के शस्त्र भारतीय इस्पात के बने होते थे। अन्य देश ईरान को शिलाजीत, काँसे

एवं अन्य धातुओं के बर्तन और कागज भेजते थे। इनके यहाँ बैङ्क-प्रणाली भी आरम्भ हो गई थी। बैङ्क व्यापारियों को रुपया देते थे। व्यापार के लिये घोड़ों और घोड़ा-गाड़ियों का प्रयोग किया जाता था।

धर्म

पार्थियन लोगो के आरम्भिक धर्म के विषय में विशेष जानकारी नहीं है क्योंकि ये लोग खानाबदोशों की तरह जीवन व्यतीत करते थे। ईरान पर जब इस वंश का आधिपत्य स्थापित हो गया तो ये लोग अपने वंश के संस्थापक अर्सेकिज की पूजा करने लगे। बाद मे इन्होंने अनहिल (जल देवता) की पूजा आरम्भ की और वही इनका प्रधान देवता बना। इस देवता की पूजा के लिये पार्थियन काल में ईरान में मन्दिरों का निर्माण करवाया था। कहा जाता है कि तिरदत्तीज कार ाज्याभिषेक संस्कार 'अनहिल' के मन्दिर में ही हुआ। पार्थियन प्रभाव के कारण ही लीडिया और रोम में अनहिल की पूजा का आरम्भ हुआ। पार्थियन लोग जोरेस्टर धर्म पर विश्वास नहीं करते थे। अपनी सामरिक प्रवृत्ति के कारण ये लोग जोरेस्टर धर्म के विरोधी हो गये। जोरेस्टर धर्म में शांति को महत्व दिया गया था परन्तु ये लोग लड़ने-भिड़ने में विश्वास करते थे। ये लोग जोरेस्टर धर्म के अनुयायियों की भाँति शव को पक्षियों को खाने के लिये नहीं छोड़ते थे वरन् उसे सन्दूक में रखकर दफना देते थे।

धार्मिक दृष्टि से ये लोग बड़े सहिष्णु थे। यद्यपि रोम वालों ने यहूदियों को काफी सताया परन्तु पार्थियन लोगों ने उनके धर्म का अनादर नहीं किया।

ईरान में इस समय अन्य जातियाँ भी रहती थीं। यह जातियाँ अहुरमज्द, मिथ्र तथा अनहिल की पूजा करती थीं। ईरान में इन्हें त्रिमूर्ति कहा जाता था। पार्थियनों की मुद्राओं पर इनकी मूर्ति है। अहुरमज्द की पूजा तो प्राचीन काल से ही चली आ रही थी। मिथ्र (सूर्य) पूजा का भी प्रचलन हो चुका था परन्तु अनहिल की पूजा इसी काल में अधिक सम्मान से की गई। ये लोग मूर्ति-पूजा में विश्वास करते थे। कुछ लोगों का विश्वास जादू-टोने में भी था। पार्थियन सम्राटों के महलों की दीवारों पर देवताओं की प्रतिमायें अङ्कित हैं।

परवर्ती-सम्राटों के सिक्कों पर यूनानी देवताओं की जैसे पत्लस, आर्टेमीस तथा जीयस की मूर्तियाँ भी मिलती हैं। इससे इन लोगों की धार्मिक सहिष्णुता का परिचय मिलता है। इनके धर्म में पुरोहितों को जिन्हें मांगी या सोफी कहा जाता था बड़ी आदर की दृष्टि से देखा जाता था।

शिक्षा एवं साहित्य

शिक्षा एवं साहित्य के क्षेत्र में इस काल में ईरान की कोई भी उन्नति नहीं हुई। जैसा पहले कहा जा चुका है कि ये लोग युद्ध-प्रेमी थे अतः इनको युद्ध की ही

शिक्षा अधिक मात्रा में मिलती थी। स्कूलों में यूनानी भाषा का ही प्रयोग किया जाता था। यह लोग यूनानी साहित्य से भी प्रभावित हुये। इनका अपना कोई साहित्य नहीं था। ऐसा कहा जाता है कि ये लोग नाट्य-कला के शौकीन थे और यूनानी नाटकों को बड़े चाव से देखते थे।

कला

पार्थियन काल में कला की उन्नति अधिक नहीं हुई। कला की जो भी कृतियाँ मिलती हैं उनमें इनके राष्ट्रीय जीवन की छाप है।

(1) वास्तुकला—पार्थियन वास्तुकला के दर्शन हमें नगरों, राजप्रासादों और मन्दिरों के रूप में होते हैं। इस युग के सबसे प्रसिद्ध नगर टेसिफन थत हट्रा थे। ये नगर गोल हैं और इनकी रचना एक दुर्ग के रूप में की गई है। नगर के चारों ओर एक गहरी खाईं होती थी जिससे शत्रु आसानी से आक्रमण न कर सकें। इन नगरों की रचना प्राचीन भारतीय नगरों की ही भाँति हुई है।

नगर के बीचोंबीच में राजप्रासाद बनवाया जाता था। हट्रा का राजमहल बहुत प्रसिद्ध था। इसकी लम्बाई 90 फीट और चौड़ाई 40 फीट थी। इस राजप्रासाद की छत अर्द्धवृत्ताकार थी। इस महल में पत्थरों की चुनाई की गई है। राजप्रासाद में स्तम्भों का प्रयोग नहीं किया गया है। बड़े हाल में सिर्फ मेहराबें ही लगी थीं।

हट्रा के पार्थियन देवालय के अवशेष भी प्राप्त हुये हैं। देवालय में एक गर्भ-मन्दिर होता था जहाँ देवता की मूर्ति रक्खी जाती थी। गर्भगृह के चारों ओर प्रदिक्षणा पथ रहता था। छत पर वेदी होती थी जहाँ अग्नि जलाई जाती थी।

फर्ग्युसन का मत है कि सिकन्दर के आक्रमण से लेकर ससैनियन वंश के उत्थान तक वास्तु-कला की विशेष उन्नति नहीं हुई।

"Oriental architecture is practically a blank from the conquests of Alexander the Great to the rise of the Sassanian dynasty.

—Fergusson.

(2) मूर्तिकला—इस काल में कुछ भव्य मूर्तियों का भी निर्माण हुआ। ये मूर्तियाँ काँसे या संगमरमर की होती थीं। शमी नामक स्थान से काँसे की दो मूर्तियाँ मिली हैं। सूसा में एक स्त्री की मूर्ति प्राप्त हुई है जो संगमरमर की बनी हुई है। इस मूर्ति की कला पर यूनानी प्रभाव प्रतीत होता है। विद्वानों का कथन है कि यह मूर्ति फ्रातीज चतुर्थ की राजमहिषी की है। शमी मे एक राजकुमार की मूर्ति भी प्राप्त हुई जिसके दाढ़ी भी है। वाल्गंसीज तृतीय की एक मूर्ति में उसके शरीर का उत्तरार्ध ही

निर्मित किया गया है। इसकी दाढ़ी और मूँछों को बड़ी कलात्मकता से चित्रित किया गया है।

इन मूर्तियों के अतिरिक्त उत्कीर्ण-भास्कर की भी कुछ प्रतिमायें मिली हैं। तङ्ग-ए-सरवाह नामक स्थान में प्राप्त इस प्रकार की मूर्ति बहुत प्रसिद्ध है। इसमें सम्राट अपनी सेना सहित देवी की पूजा करते हुये चित्रित किया गया है। सूसा में भी एक मूर्ति मिली है जिसमें अर्तबेनुस पंचम अपने किसी सामन्त को अँगूठी भेंट कर रहा है।

(3) **चित्रकला**—इस काल में चित्रकला का भी थोड़ा-बहुत विकास हुआ था। राजाओं के राजप्रासादों पर अनेक चित्र चित्रित किये गये थे। इन चित्रों में फूल-पत्ती, राजा-रानी, सङ्गीत, नृत्य आदि सभी प्रकार के चित्र मिलते हैं। ईंट की बनी हुई पक्की दीवालों पर गाढ़े लेप चढ़ाकर भी उन पर चित्रकारी की जाती थी।

(4) **मृण्ड-भाण्ड कला**—इस युग के कलाकार मिट्टी के बर्तन और खिलौने भी बनाते थे। पतले मुँह की बोतल, घड़े, सुराहियाँ, प्याले आदि बनाये जाते थे। कमण्डल की तरह का एक बर्तन भी प्राप्त हुआ। कुछ मिट्टी के खिलौने भी प्राप्त हुए हैं जिनमें से एक में अनहिल को नग्न रूप में चित्रित किया गया है।

(5) **मुद्रा-निर्माण कला**—इस युग के सम्राटों ने सोने की मुद्रायें चलाईं जिन्हें 'दिरहम' कहा जाता था। मुद्राओं पर अधिकतर यूनानी देवताओं के चित्र ही मिलते हैं। कुछ मुद्राओं पर यूनानी भाषा लिखी हुई मिलती है और कुछ पर यूनानी और पहलवी दोनों। सम्राट आर्टासीस ने अपनी मुद्राओं पर 'राजा' खुदवाया है, फ्रातीज प्रथम ने 'महान सम्राट' और मिथ्रदत्त प्रथम ने 'सम्राटों का सम्राट' खुदवाया है। इनकी मुद्राओं में विशेष कलात्मकता के दर्शन नहीं होते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पार्थियन काल के अन्तर्गत सांस्कृतिक क्षेत्र में ईरान ने विशेष उन्नति नहीं की। हखामशी काल प्राचीन ईरान के सांस्कृतिक विकास का स्वर्ण-युग माना जाता है और सासानी काल को उनकी कला का उत्कृष्ट काल कहा जाता है। परन्तु पार्थियन काल को कोई विशेष महत्व प्रदान नहीं किया गया है यद्यपि फीलोस्ट्रेटस जैसे कुछ विद्वान पार्थियन वास्तुकला में उत्कृष्टता के दर्शन करते हैं।

सारांश

पार्थियन इतिहास को जानने के अधिक साधन उपलब्ध नहीं हैं। इस साम्राज्य का इतिहास तृतीय शताब्दी ई० पू० से आरम्भ होता है। इस वंश का संस्थापक अर्सेकिज माना जाता है। उसके पश्चात् इसमें तिरदत्तीज, अर्तबेनुस प्रथम; फ्रिअ्रपेटिअस, मिथ्रदत्तीज, फ्रातिज द्वितीय, मिथ्रदत्तीज द्वितीय, मनस्क्रज, सनत्राकिज. फ्रातीज तृतीय, ओरोड्स द्वितीय, फ्रातिज चतुर्थ, अर्तबेनुस तृतीय,

बोलोगेसीज, बोलोगेसीज द्वितीय, अर्तबेनुस पंचम आदि शासक हुये। इस साम्राज्य का पतन 226 ई० में अर्देशिर के हाथों हुआ। पार्थिया और रोम में अनेक युद्ध हुये। इस साम्राज्य का सबसे प्रतिभाशाली शासक मिथ्रदत्तीज प्रथम था।

पार्थियनों की शासन-व्यवस्था में सम्राट का विशेष महत्व था। इनको तीन राजधानियाँ थीं। इनकी घुड़सवार सेना बहुत अच्छी थी और उसने रोम के बड़े-बड़े सम्राटों के दाँत खट्टे कर दिये थे। सम्पूर्ण साम्राज्य को 18 प्रान्तों में विभाजित किया गया था।

इस काल में ईरानी समाज में चेतना का उदय रोम पर उनकी विजयों के फलस्वरूप हुआ। समाज में वर्ग-विभाजन था। दासों की दशा खराब नहीं थी। स्त्रियों की दशा अच्छी नहीं थी। समाज में बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी। यहाँ के लोग जामा और पतली मोहरी का पैजामा पहनते थे। कुछ लोग बड़े बाल और दाढ़ी भी रखते थे। धनुष, तलवार और छुरा इनके प्रमुख अस्त्र थे। आखेट आमोद-प्रमोद का मुख्य साधन था। बाँसुरी, पाइप और ढोलक बजाने में भी यह अभिरुचि रखते थे। अधिकतर लोग मांस खाने के शौकीन थे। मदिरा का भी सेवन होता था। इनकी दण्ड-व्यवस्था बड़ी कठोर थी और कानूनों पर हखामशी सम्राटों और यूनान की छाप थी।

कृषि, पशु-पक्षी पालन, उद्योग और व्यापार इनकी आय के मुख्य साधन थे। इस समय ईरान में बैंक-प्रथा का भी आरम्भ हो चुका था।

पार्थियन लोग अनहिल देवता की पूजा करते थे। वे जोरेस्टर धर्म में विश्वास नहीं करते थे। कुछ लोग अहुरमज्द और मिथ्र की पूजा भी करते थे। पुरोहितों को मॉगी या सोफी कहा जाता था।

शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में इस काल में कोई उन्नति नहीं हुई। ये लोग यूनानी नाटकों को देखने में अवश्य रुचि लेते थे।

कला के क्षेत्र में भी इस काल में विशेष उन्नति नहीं हुई। वास्तुकला के नमूनों में हट्रा का राजमहल और अनहिल देवता के कुछ मन्दिर प्रसिद्ध हैं। मूर्तिकला के अंतर्गत शमी नामक स्थान में प्राप्त काँसे की मूर्ति, फ्रातोज चतुर्थ की राजमहिषी की मूर्ति, वालगेसीज तृतीय की मूर्ति आदि के नाम लिये जा सकते हैं। ये लोग राजमहलों और मन्दिरों की दीवालों पर चित्र भी बनाते थे। बर्तन बनाने की कला का भी कुछ विकास हुआ था। इनकी मुद्राओं पर यूनानी देवताओं के चित्र मिलते हैं। मुद्राओं में भी कोई खास कलात्मकता नहीं है।

इन सब तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि पार्थियन काल के अन्तर्गत ईरान की कोई विशेष सांस्कृतिक उन्नति नहीं हुई।

अध्याय 8

ससैनियन सभ्यता

(SASSANIAN CIVILIZATION)

प्रश्न 1—नौशेरवाँ के समय में ईरान ने आर्थिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में क्या उन्नति की ?

(लखनऊ विश्वविद्यालय)

What economic and cultural progress was made by Iran during the time of Noshirwan ?

(Lucknow University)

प्रश्न 2—ससैनियन सभ्यता के प्रमुख अङ्गों का संक्षिप्त निरूपण कीजिये।

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

Give a brief account of the distinctive features of the Sassanian civilization.

(Allahabad University)

प्रश्न 3—ससैनियन काल में ईरान के विशिष्ट सांस्कृतिक विकासों का संक्षिप्त निरूपण कीजिये।

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

Bring out briefly the outstanding cultural developments in Iran in the Sassanian period.

(Allahabad University)

प्रश्न 4—ससैनियन सम्राटों की कला के क्षेत्र में ईरान को देन की विवेचना कीजिये।

Discuss the contribution of Sassanian empires to Iran in the field of Art.

दूसरी शताब्दी के अन्तिम काल में ईरान में बड़े क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये। इस काल में फार्स नामक प्रान्त में एक नये राजवंश का जन्म हुआ जिसको ससैनियन के नाम से पुकारते हैं। वैसे तो यह वंश ईरान के राष्ट्रीय राजवंश से सम्बन्धित था

और इस वंश ने ईरान में जितनी अधिक उन्नति की उतनी और कभी किसी वंश ने नहीं की थी। इस राजवंश का संस्थापक ससैन था। वह बहुत ही सुयोग्य एवं प्रभावशाली व्यक्ति था। इसके पुत्र का नाम पपैक था। इन पिता और पुत्र ने मिलकर ईरान में अपने प्रभाव को बढ़ाया। सबसे पहले स्तख् नामक क्षेत्र पर इनका अधिकार हुआ और तत्पश्चात् धीरे-धीरे करके उनको सीमा बढ़ने लग गई। 208 ई० में इन लोगों की सैनिक शक्ति बहुत अधिक बढ़ गई। पपैक एक बड़ा महत्वाकांक्षी और निरन्तर सङ्घर्ष करने वाला नवयुवक था। इसकी इस ख्याति को देखकर पार्थियन सम्राट सदैव चिन्तित रहता था। अतएव, जब उसने अपने पुत्र शापुर को अपना उत्तराधिकारी सम्राट घोषित किया तो ईरान के राजा उससे बहुत अधिक रुष्ट हो गये। फलस्वरूप विद्रोह का जन्म हुआ। यह विद्रोह निरन्तर बढ़ता रहा और धीरे-धीरे करके इस राजवंश की शक्ति बढ़ने लगी।

अर्देशिर और ससैनियन शक्ति का विस्तार

अर्देशिर के सङ्घर्ष—जिस समय पपैक की मृत्यु हुई उस समय उसके दो पुत्र शापुर तथा अर्देशिर एक दूसरे से लड़ पड़े। इन दोनों में उत्तराधिकार के लिये युद्ध हुआ। यह सङ्घर्ष चल ही रहा था कि शापुर को मृत्यु हो गई और अर्देशिर ने अपने पिता के अपूर्ण कार्य को पूरा करने का प्रयास किया। फार्स नामक प्रान्त में उसने अपनी शक्ति बढ़ायी, जहाँ अनेक व्यक्ति अपने राजनैतिक प्रभाव का बढ़ा रहे थे। धीरे-धीरे करके अर्देशिर ने सबको परास्त किया और अपनी शक्ति को बढ़ाता गया। अर्देशिर की शक्ति का बढ़ना पार्थियन सम्राट के लिये चिन्ता का विषय था। जब अर्देशिर ने अपने प्रभाव को बढ़ाया तो पार्थियन सम्राट ईर्ष्या से जल उठा। उसे अपनी गद्दी खतरे में दिखलाई पड़ने लगी। ईरान के सम्राट ने अह्वाज के सैनिकों को यह आदेश दिया कि वह अर्देशिर से जाकर युद्ध करें और उसे परास्त करें। अह्वाज का शासक अर्देशिर से युद्ध करने के लिये पहुँचा परन्तु उसे मुँह की खानी पड़ी।

अह्वाज के शासक को समाप्त करने के पश्चात् उसे अर्तबेनुस से चार युद्ध करने पड़े। 240 ई० पूर्व में वह अर्तबेनुस को परास्त करने में सफल हुआ और तब से उसकी ख्याति बढ़ने लगी। 550 वर्ष के पश्चात् यह पहला अवसर आया था जबकि किसी वंश ने इतनी अधिक उन्नति की थी।

अपने शासन-काल में अर्देशिर ने पूर्व की ओर अभियान किया। उसने खुरासान, मर्व, बल्ख तथा रकीब आदि देशों को जीता। तत्पश्चात् उसने कुषन, तुरान तथा मकरान राज्यों की ओर से भेजे गये राजदूतों से मुलाकात की। यह भी कहा जाता है कि अर्देशिर ने भारत पर भी आक्रमण किया। सरहिन्द आने पर वहाँ के राजा जूना ने

उसे बहुत से हीरे, जवाहरात और अन्य बहुमूल्य रत्न भेंट किये तथा उससे यह प्रार्थना की कि वह फारस पुनः लौट जाय। ऐसा विश्वास है कि उसने पंजाब के राजाओं से कर भी वसूल किया था।

अर्देशिर और रोम का युद्ध—अर्देशिर के समय की सबसे प्रमुख घटना ईरान और रोम का युद्ध है। 228 ई० मे फरात नदी को पार करके अर्देशिर रोम के सैनिकों का मुकाबला करने के लिये रोम पहुँचा। उस समय रोम में सोवरेस अलेक्जेन्डर (Severus Alexander) नामक राजा राज्य कर रहा था। उसने अर्देशिर को समझाया कि वह रोम से युद्ध न करे, परन्तु अर्देशिर ने उसकी बात नहीं मानी और रोम के दरबार में अपने दूतों को भेजा। रोम का सम्राट अर्देशिर के इस कार्य से बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने दूतों को बन्दी बनवा लिया। रोम के सम्राट का क्रोध इतना बढ़ा कि 231 ई० में रोम की सेना सीरिया की राजधानी अन्तियोच (Antioch) पहुँची। रोम की सेना ने 3 तरफ से आक्रमण करने का निश्चय किया। उत्तर से एक प्रकार की सेना चली और दक्षिण से सूसियाना पर आक्रमण करने के लिये दूसरे प्रकार की सेना। उत्तर की सेना को थोड़ी सी सफलता मिली परन्तु दक्षिण की सेना पूर्ण रूप से पराजित हुई। दक्षिण की सेना की पराजय से रोम का सम्राट इतना अधिक घबरा गया कि उसने अपनी सेना को वापस लौटने की आज्ञा प्रदान कर दी। सन् 232 ई० में अर्देशिर और रोम के सम्राट के मध्य एक समझौता हुआ और रोम की सेना स्वदेश वापस लौट गई।

आरमेनिया पर आक्रमण—रोम से लोहा लेने के पश्चात् अर्देशिर ने आरमेनिया पर आक्रमण किया। अर्देशिर आरमेनिया के सम्राट खुसरो (Chosroes) से इसलिये चिढ़ा हुआ था कि उसने रोम के सम्राट की मदद की थी। खुसरो बड़ा योग्य शासक था। युद्ध में अर्देशिर उसे परास्त न कर सका, अतः उसे धोखे से मरवा डाला। उसके पश्चात् उसने आरमेनिया पर आक्रमण किया और खुसरो के पुत्र पर विजय प्राप्त की। आरमेनिया पर विजय प्राप्त कर लेने से उसका प्रभाव अधिक बढ़ गया।

अर्देशिर की शासन-व्यवस्था—अर्देशिर हुखमनीषी सम्राट दारा की शासन-व्यवस्था से बहुत अधिक प्रभावित हुआ था। उसने डेरियस प्रथम की कार्यप्रणाली को अपनाया और राजकीय सेना का निर्माण भी किया। साथ ही सेना को सुचारु रूप से शिक्षा प्रदान करने के लिये योग्य अफसरों की नियुक्ति भी की। जैसा कि P. Sykes नामक विद्वान ने अपनी पुस्तक 'History of Parsia' में लिखा है कि अर्देशिर को विश्वास था कि "There can be no power without an army; no army without money; no money without agriculture and no agriculture without justice."

सांस्कृतिक कार्य—अर्देशिर सांस्कृतिक कार्यों में भी अभिरुचि रखता था। उसने अपने शासन-काल में देश की संस्कृति के प्रसार के लिये महत्वपूर्ण कदम उठाये। उसने कई राजप्रासाद, उद्यान एवं राजकीय तथा सार्वजनिक भवनों का निर्माण करवाया। उसने 18 नगरों की स्थापना की। इन नगरों में 'खुर्रा-ए-अर्देशिर' जिसके शाब्दिक अर्थ अदृश्य-वैभव होते हैं, बहुत महत्वपूर्ण है। यह 'खुर्रा-ए-अर्देशिर' ही आधुनिक फिरोजाबाद है। उसके 11 नगर समुद्र तट और नदी के किनारे स्थित थे अतः व्यापारिक दृष्टि से वे बहुत महत्वपूर्ण थे। अर्देशिर ने दो ग्रन्थों की रचना की। एक ग्रन्थ में अपनी यात्रा के संस्मरण लिखे हैं और दूसरे में सम्राट की दिनचर्या पर प्रकाश डाला गया। इनमें कहीं ईरानी और कहीं यूनानी दो भाषाओं का प्रयोग किया गया है।

सिंचाई के लिये उसने नहरों का निर्माण कराया जिससे कृषि के क्षेत्र में बहुत अधिक उन्नति हुई और जनता सुखी और सम्पन्न हुई।

धार्मिक उन्नति—जोरेस्टर का धर्म पुनः उसके शासन-काल में उन्नति की ओर अग्रसर हुआ। पार्थियन सम्राटों के शासन-काल में इस धर्म की बहुत अधिक अवनति हुई थी। अर्देशिर ने पुनः इस धर्म को अपनाकर उसकी उन्नति का प्रयास किया। उसने नई अग्निवेदियों का निर्माण कराया और मांगी पुरोहितों को सम्मान प्रदान किया। उसने इन पुरोहितों का एक सम्मेलन भी बुलाया जिसमें से 7 पुरोहितों को जो सबसे अधिक योग्य थे, अत्यधिक गौरव प्रदान किया। इन 7 पुरोहितों ने अपना एक प्रतिनिधि चुना जिसे "अर्दविरफ" या माविद कहा गया। ऐसा कहा जाता है कि यह पुरोहित एक नशीली चीज को पीकर 7 दिन तक सोता रहा। इसके पश्चात् वह अहुरमज्द की वाणी में बोला जिसको एक लेखक ने लिख लिया। आगे चलकर उसकी वाणी में अविकारपूर्ण वाणी का गौरव प्रदान किया। यद्यपि अर्देशिर दूसरों का विरोधी नहीं था परन्तु उसके द्वारा जिन पुरोहितों को चुना गया था उन्होंने दूसरे धर्मों का निरादर किया। इन लोगों का सबसे पहला कुठार ईसाई धर्म पर चला जिसको इन्होंने फारस से समूल नष्ट कर देने का प्रयास किया।

अर्देशिर का चरित्र—अर्देशिर एक सुयोग्य, उदार, न्यायप्रिय सम्राट था। स्वयं वह धार्मिक दृष्टि से बड़ा सहिष्णु था। वह सदैव जनता की भलाई में लगा रहा। जब उसकी मृत्यु होने लगी तो उसने अपने पुत्र शापुर को उपदेश दिया—"धर्म की ध्वजा और राजमुकुट का अविभाज्य सम्बन्ध है। बिना धर्म का राजा आततायी है।"

"Consider the altar and the throne inseparable they must always sustain one another. A sovereign without religion is a tyrant."

उसने पुनः उपदेश दिया—"तुम्हारा शासन ऐसा हो कि जिन्हें देवताओं ने हमारे आश्रय में दिया है उनका ध्यान तुमको और हमको दोनों को हो।"

"May your administration be such as to bring the blessings of those whom God has confined to our parental care upon both your memory and mine."

(Quoted from the History of Parsia—written by P. Syke's page, 398, Vol. 1.)

इतिहासकार साइक्स ने उसके कृत्यों का मूल्यांकन करते हुये कहा है कि वह प्राज्ञ, उदारचरित, न्यायप्रिय, सिद्धान्तवादी एवं प्रजावत्सल शासक था।

शापुर प्रथम

अर्देशिर की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र शापुर प्रथम गद्दी पर बैठा। स्वयं अर्देशिर ने उसे अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर दिया था। अपने सुयोग्य पिता की देख-रेख में उसे शासन प्रबन्ध आदि की उचित शिक्षा प्राप्त हुई थी। फलस्वरूप वह भी सुयोग्य पिता का सुयोग्य पुत्र निकला। उसने अपने शासन-काल में राज्य का बड़ा सुन्दर शासन प्रबन्ध किया और अनेक विजय प्राप्त की। पार्थियन पद्धति का अनुसरण उसने नहीं किया। पार्थियन साम्राज्य की सामन्तवादी प्रथा का अन्त करके शापुर प्रथम ने केन्द्रीयकरण की नीति अपनायी।

शापुर प्रथम के युद्ध—शापुर प्रथम ने सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात् कुषाण शासकों की शक्ति को बढ़ते हुये पाया। पूर्व में कुषाणों की बढ़ती हुई शक्ति ने शापुर को चिन्तित कर दिया। उसने यह भी देखा कि आर्थिक दृष्टि से कुषाण बहुत सम्पन्न हैं, अतएव किसी प्रकार कुषाण सम्राटों पर विजय प्राप्त कर ली जाय तो बहुत अधिक अर्थ की भी प्राप्ति होगी। फलस्वरूप वह युद्ध यात्रा के लिये निकल पड़ा और कहा जाता है कि समरकन्द, ताशकन्द, बैक्ट्रिया आदि को जीतता हुआ पेशावर तक बढ़ आया। कुषाण सम्राटों पर विजय के फलस्वरूप उसकी शक्ति बहुत अधिक बढ़ गई। साथ ही आर्थिक दृष्टि से भी ईरान को बहुत अधिक लाभ हुआ।

शापुर प्रथम पश्चिम की ओर भी बढ़ा। उसने यह कार्य अपनी सीमाओं को सुरक्षित रखने और धन प्राप्त करने के लिये किया। 224 ई० पूर्व में उसने सीरिया के शासक फिलिप्स को अपने अधीन बनाया। इस प्रकार मेसोपोटामिया और आरमेनिया पर उसका अधिकार हो गया। उसके 15 वर्षों बाद उसने सीरिया के अन्य नगरों को भी जीत लिया।

शापुर प्रथम ने रोम साम्राज्य से भी लोहा लिया। 235 ई० के पश्चात् जब रोम सम्राट सेवेरस को उसकी सेना ने मार डाला तो रोम की सेना में विद्रोह के चिह्न

दिखलाई पड़ने लगे । 26 सम्राट बने और धीरे-धीरे वे सभी काल के ग्रास में अग्रसर होते गये । इन सभी की मृत्यु षड्यन्त्र द्वारा हुई । इस स्थिति का लाभ उठाकर 260 ई० में शापुर ने रोम पर आक्रमण किया और उसके नगरों पर अपना अधिकार जमा लिया । यहाँ उसे बहुत अधिक धन की प्राप्ति हुई । रोम के नगरों में उसने बहुत से लोगों को बन्दी बनाया जिनमें कुछ कुशल कारीगर भी थे और जिन्होंने आगे चलकर रोमन प्रणाली के आधार पर ईरान के महलों और राजमार्गों का निर्माण किया । पश्चिम में शापुर प्रथम को पामीरा को छोड़कर सभी स्थानों में सफलता मिली । उसकी यह विजय गाथा शिलाखण्डों में अङ्कित की गई ।

शापुर के अन्य कार्य – शापुर प्रथम ने जनता के हित के लिये अनेक कार्य किये जिनमें से निम्नलिखित प्रमुख हैं :—

1—उसने कारून नदी के रुख को एक नहर की ओर बदल दिया तथा नदी की बाढ़ को रोकने के लिये एक बाँध बनवाया । यह बाँध ग्रेनाइट पत्थर का था और उसमें छोटे-छोटे फाटक थे ।

2 – उसने बिशापुर और निशापुर नामक दो नगरों का निर्माण करवाया ।

3—अपने प्रान्त की राजधानी एक नये स्थान पर बनवाई ।

4 – कला और साहित्य के क्षेत्र में उसने बड़े महत्वपूर्ण कार्य किये । रोम के कलाकारों के द्वारा ईरान में नये भवनों का निर्माण किया गया ।

5—चिकित्सा शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र, दर्शन शास्त्र और नक्षत्र विद्या के कई यूनानी ग्रन्थों का अनुवाद उसने करवाया ।

6—उसने मनीच धर्म को प्रोत्साहित किया जिसने आगे चलकर बहुत अधिक उन्नति की ।

शापुर के समय की सर्वश्रेष्ठ घटना शापुर के समय की श्रेष्ठ घटना धर्म प्रवर्तक मानी का उत्थान है । मानी ने मनीच धर्म को जन्म दिया जो जोरेस्टर धर्म से भिन्न था । ऐसा कहा जाता है कि उसका जन्म 215-216 में हुआ था और शापुर प्रथम के सिंहासनारोहण के समय वह शापुर के दरबार में गया तथा अपने धर्म और सिद्धांतों को उसने सुनाया । शापुर ने उसका बहुत अधिक आदर किया और इस प्रकार मानी को राज्याश्रय भी प्राप्त हो गया परन्तु कुछ ही दिनों बाद शापुर ने उसका अनादर किया । अतएव मानी उस स्थान को छोड़कर विभिन्न देशों के भ्रमण पर निकल पड़ा ।

272 ई० के बाद वह पुनः फारस आया और वहाँ उसका बड़ा स्वागत हुआ । तत्कालीन सम्राट होर्मुज्द ने उसे अपने दरबार में बड़े आदर से बुलाया और तब मानी

ने फारस में अपने धर्म का प्रचार ?ूलकर करना प्रारम्भ किया। उसने मेसोपोटामिया के ईसाइयों में भी अपने धर्म का प्रचार किया और वहाँ के बहुत से निवासी इस धर्म के अनुयायी हो गये। होर्मुज्द की मृत्यु के बाद बहराम प्रथम मानी से रुष्ट हो गया। उसने उसे पकड़वाकर उसकी चमड़ी निकलवाकर, उसके शरीर में घास भरकर गुन्दी-सापुर नगर में टँगवा दिया।

कुछ विद्वानों का मत है कि मनीच धर्म और जोरेस्टर के धर्म में बहुत-सी समानतायें हैं। परन्तु सत्य तो यह है कि यह दोनों धर्म एक दूसरे से बिल्कुल विपरीत हैं। जहाँ जोरेस्टर धर्म भौतिकवादी और संसार को सत्य मानने वाला है वहाँ मानी का धर्म आध्यात्मवादी एवं संसार को असत्य मानने वाला है। यदि यह कहें कि मानी का धर्म भारतीय वेदान्त से बहुत कुछ मिलता हुआ है तो अनुचित न होगा। मानी भी ब्रह्म को सत्य और संसार को मिथ्या मानता था। उसका कथन था कि समस्त संसार बुराइयों से युक्त है और इन बुराइयों की समाप्ति तभी होगी जब ज्ञान का प्रकाश संसार में फैल जायगा।

मानी की मृत्यु के पश्चात् भी उसका धर्म प्रचलित रहा। उसके धर्म को मानने वाले बेबिलोन और समरकन्द में बहुत बड़ी संख्या में थे। दक्षिणी फ्रांस में भी इस धर्म का बहुत प्रचार हुआ और ऐसा कहा जाता है कि आरम्भ में प्रसिद्ध ईसाई सेण्ट आगस्टाइन इस धर्म को मानने वाला था।

शापुर प्रथम के उत्तराधिकारी

शापुर प्रथम की मृत्यु 272 ई० में हुई। उसके पश्चात् होमुंज्द और बहराम प्रथम नाम के उसके दो पुत्रों ने बारी-बारी से थोड़े समय तक शासन किया। बहराम प्रथम के पश्चात् 276 ई० में बहराम द्वितीय गद्दी पर बैठा। इसने अपने शासन-काल में निरन्तर सङ्घर्ष का सामना किया। उसे रोम के साथ युद्ध करना पड़ा। जिस समय वह रोम के साथ युद्ध में लगा हुआ था उसी समय उसके भाई ने विद्रोह की आग भड़का दी। फलस्वरूप विद्रोह को दबाने के लिये उसे रोम वालों से सन्धि करनी पड़ी। इस सन्धि के अनुसार उसे मेसोपोटामिया तथा आरमेनिया को रोम के सम्राट को देना पड़ा।

बहराम द्वितीय के बाद बहराम तृतीय गद्दी पर बैठा। वह एक अयोग्य शासक था और फलस्वरूप शापुर प्रथम का पुत्र नरश ने उसे गद्दी से उतार दिया और स्वयं सम्राट बन बैठा। इसने 309 ई० तक राज्य किया। उसके शासन-काल में कुषाणों ने अपनी शक्ति सङ्गठित कर ली। उसकी बढ़ती हुई शक्ति को देखते हुये नरश ने अपने पुत्र होमुंज्द द्वितीय का विवाह कुषाण से कर दिया। नरश भी अयोग्य शासक सिद्ध उसने 303 ई० से 309 ई० तक शासन किया। उसकी निर्बलता का लाभ उठाकर

कुषाण पुनः सिर उठाने लगे। नरश ने उनसे मित्रता की और अपने पुत्र होर्मुज्द द्वितीय का विवाह कुषाण राजकन्या से कर दिया।

शापुर द्वितीय

इसको शापुर महान के नाम से भी पुकारा जाता है। यह होर्मुज्द द्वितीय का पुत्र था और अपने बाबा नरश की मृत्यु के उपरांत गद्दी पर बैठा। सिंहासनारूढ़ होने के समय उसकी उम्र बहुत ही कम थी। अतः ईरान की आंतरिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गई। बाह्य आक्रमणकारियों को अवसर मिल गया। जब वह नाबालिग था तभी उसे अरब से युद्ध करना पड़ा। मेसोपोटामिया में रहने वाले अरबों ने फारस पर आक्रमण किया परन्तु शापुर ने अपनी 16 वर्ष की अल्पावस्था में ही उनको कुचल दिया और अरबों के साथ बड़ा अत्याचार किया।

अरबों को परास्त करने के पश्चात् शापुर महान की दृष्टि रोम की ओर गई। बहराम द्वितीय के समय ईरान को झुकना पड़ा था। नरश के राज्य काल में भी रोम बहुत अधिक शक्तिशाली था। शापुर महान् ने अपनी पश्चिमी सीमाओं को सुरक्षित रखने के लिये रोम से लोहा लेना उचित समझा। उधर रोम का सम्राट कान्स्टैन्टाइन भी फारस का विरोधी था। अतएव उसने फारस पर चढ़ाई करने का निश्चय किया। परन्तु उसी बीच उसकी मृत्यु हो गई। शापुर महान् ने इस अवसर को अपने हाथ से जाने देना उचित नहीं समझा और उसने उन कुछ प्रान्तों को रोम से छीनकर अपने अधीन कर लिया जिनको पूर्ववर्ती सम्राटों ने रोम को दिया था। शापुर महान् मेसोपोटामिया को भी रोम से छीनना चाहता था। वह चाहता था कि फरात नदी के किनारे से रोम का आधिपत्य समाप्त हो जाय। परन्तु 63 दिनों तक निरन्तर सङ्घर्ष करने के पश्चात् भी उसे रोम के दुर्ग को प्राप्त करने में सफलता नहीं मिली। 342 ई० में पुनः उसने दुर्ग को छीनने का प्रयास किया परन्तु फिर भी उसे सफलता नहीं मिली। इस असफलता का कारण यह था कि ससैनियन सेना लड़ाई के मैदान में तो बहादुरी से लड़ सकती थी परन्तु दुर्ग जीतने की कला में वह पटु नहीं थी।

350 ई० से 357 ई० तक शापुर महान् ने हूणों, यूसेनी, जीलानी आदि असभ्य जातियों का दमन किया। 351 ई० में आरमेनिया पर भी उसका साम्राज्य स्थापित हो गया।

359 ई० में शापुर ने सीरिया और अमीदा पर अपना अधिकार कर लिया। उसके पश्चात् सिंगारा तथा बेजाब्दे भी उसके अधिकार में आ गये। रोम के सम्राट कान्स्टैन्टाइन ने इन इलाकों को पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न किया परन्तु उसी बीच

उसकी मृत्यु हो गई। कान्स्टैन्टाइन की मृत्यु के पश्चात् जूलियन रोम की गद्दी पर बैठा। वह बड़ा महत्वाकांक्षी और पराक्रमी था। वह टेसीफन तक बढ़ आया और वहाँ उसने युद्ध किया परन्तु युद्ध में उसे सफलता नहीं मिली। अन्त में उसने बड़ी नीति निपुणता से कार्य किया। उसने तीन गुप्त रास्ते खुदवाये जो नगर के बीच में निकलते थे। इन रास्तों से रोम की सेना नगर में घुस गई और उसने वहाँ के नागरिकों से बड़ी क्रूरता का व्यवहार किया। नगर के बहुत बड़े भाग को ध्वस्त कर दिया और शापुर के सन्धि प्रस्ताव को ठुकरा दिया। असफल होने के पश्चात् भी शापुर ने धैर्य को नहीं छोड़ा और पुनः अपनी सेना सङ्गठित की। इसके पश्चात् दोनों सेनाओं के मध्य बड़ा भयंकर सङ्घर्ष हुआ और 363 ई० में एक सैनिक के भाले द्वारा जूलियन मारा गया। जूलियन की मृत्यु के बाद जोवियान रोम का सम्राट बना और थोड़े समय तक उसने भी शापुर महान् से युद्ध किया। रोम और फारस दोनों ही युद्ध करते-करते परेशान हो गये थे। अतएव दोनों ने 30 वर्षों के लिये सन्धि की। इस सन्धि के अनुसार रोम ने फारस के 5 प्रान्तों को उसे लौटा दिया। मेसोपोटामिया के तीन दुर्गों को फारस को समर्पित कर दिया गया। आरमेनिया से रोम को सेनायें हटा ली गईं और तत्पश्चात् साइबेरिया और आरमेनिया पूर्ण रूप से फारस के अधीन हो गये।

इसके पश्चात् पुनः एक सन्धि के द्वारा आरमेनिया और साइबेरिया को स्वायत्त शासन का अधिकार प्रदान कर दिया गया।

शापुर महान् की मृत्यु 379 ई० में हुई। अपने शासन-काल में उसने फारस की शक्ति को बहुत अधिक बढ़ाया। उसे अपने बाह्य शत्रुओं का दमन करने में पूर्ण सफलता मिली। परन्तु उसके शासन के अन्तिम दिनों में विद्रोह की आग पुनः सुलगने लगी। ईरान के सामन्त विद्रोह करने लगे और जोरिस्टर धर्म के पुरोहित ईरान के सामन्तों के साथ मिल गये। इन सबने मिलकर शापुर महान् को इतना दबा दिया कि वह अपने उत्तराधिकारी का चयन तक करने का अधिकारी न रहा।

शापुर महान् के उत्तराधिकारी

शापुर द्वितीय के पश्चात् ससैनियन वंश के तीन शासकों ने थोड़े-थोड़े समय तक राज्य किया—

1—अर्देशिर द्वितीय

2—शापुर तृतीय

3—बहराम चतुर्थ

इन तीनों के शासन-काल विद्रोहों से युक्त हैं। इनके शासन-काल में केन्द्रीय शक्ति बहुत कम हो गई और राजा के अधिकारों में बहुत कमी हो गई। यह शासक

अपनी बाह्य नीति में सफल नहीं हुये। 379 ई० तक आरमेनिया का तीन चौथाई भाग इनका अधिकार न रहा।

यज्दगर्द प्रथम

बहराम चतुर्थ की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र यज्दगर्द प्रथम गद्दी पर बैठा। वह भी एक योग्य शासक था। जब उसने देखा कि सामन्तों और पुरोहितों की शक्ति निरन्तर बढ़ती जा रही है तो उसने ईसाइयों को अपनी ओर मिलाने का तथा उनकी सहानुभूति प्राप्त करने का प्रयास किया। अतः उसने कई गिरजाघरों का निर्माण भी करवाया और उन्हें प्रसन्न करने हेतु ईसाइयों की एक धार्मिक सभा बुलायी। उसके इन कार्यों से जोरेस्टर धम को मानने वाले रुष्ट हो गये। परिणामस्वरूप उसने अपनी नीति में परिवर्तन किया और ईसाइयों को दबाना शुरू किया। परन्तु उसकी अदूरदर्शिता के फलस्वरूप न तो ईसाई धर्म के मानने वाले और न ही जोरेस्टर धर्म के मानने वाले उससे प्रसन्न रह सके। इस प्रकार वह आंतरिक एवं बाह्य दोनों ही क्षेत्रों में असफल शासक सिद्ध हुआ।

बहराम पंचम

यज्दगर्द की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्रों में राजगद्दी के लिये युद्ध हुआ। इस युद्ध में बहराम पंचम सफल हुआ। बहराम पंचम पर अपनी यहूदी माता का बहुत प्रभाव पड़ा था। वह उच्चकोटि का विद्वान था और उसे शिकार से बहुत अधिक प्रेम था। अपने पिता के शासन-काल में ही उसे शासन-प्रबन्ध का काफी ज्ञान प्राप्त हो चुका था क्योंकि वह आरमेनिया का वायसराय रहा था।

बहराम पंचम ने ससैनियन संस्कृति के विकास में बहुत बड़ा योगदान दिया। वह दीन दुखियों की सहायता के लिये सदैव तत्पर रहता था। कवियों और दार्शनिकों का वह आदर करता था। गृह-युद्ध को रोकने के लिये उसने सामन्तों को विशेष सुविधायें प्रदान कीं। साथ ही अपनी वैदेशिक नीति में भी वह सफल हुआ। अपने साम्राज्य की सीमा की सुरक्षा तथा विदेशी आक्रमणकारियों से अपने राज्य को सुरक्षित करने में उसने जो नीति अपनाई वह 'विजिगीषु नीति' के नाम से प्रसिद्ध है। बहराम पञ्चम के शासन काल में असीरिया एक संगठित राज्य बन गया।

बहराम पञ्चम ने ईरानी बन्दियों को मुक्त कराने के लिये रोम पर आक्रमण किया। 422 ई० में रोम और ईरान के बीच एक सन्धि हुई और ईरानी कैदी रोम से वापस आ गये।

धार्मिक क्षेत्र में भी उसके युग में महान् उन्नति हुई। उसने जोरेस्टर धर्म के मानने वालों को विशेष सुविधायें प्रदान कीं। साथ ही ईसाइयों को भी उसने सन्तुष्ट

रक्खा। कहा जाता है कि बहराम पञ्चम ने कुछ महलों का भी निर्माण कराया जिनके अवशेष 1932 के किश की खुदाई में प्राप्त हुये थे।

बहराम पञ्चम की मृत्यु 438 ई० में हुई। उसने कुल 19 वर्षों तक शासन किया, परन्तु उसके शासन-काल में ससैनियन सभ्यता और संस्कृति का बहुत अधिक प्रसार हुआ।

यज्दगर्द द्वितीय

438 ई० में बहराम पञ्चम की मृत्यु के पश्चात् यह गद्दी पर बैठा। आरम्भ में यह भी धार्मिक दृष्टि से बहुत सहिष्णु था परन्तु अन्त में यह जोरेस्टर धर्म की तरफ बहुत अधिक झुक गया और इसने ईसाई धर्मानुयायियों पर अत्याचार किया। फलस्वरूप ईसाई धर्म को मानने वाले उसके शत्रु हो गये। 459 ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

पिरोज

459 ई० में यह गद्दी पर बैठा। गद्दी पर बैठते ही इसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इसके शासन-काल में एक बहुत बड़ा दुर्भिक्ष पड़ा जिससे पीड़ित होकर बहुत से लोग मर गये। इसका शासन-काल आर्थिक दृष्टि से बड़ा बुरा शासन-काल था।

आर्थिक दशा के साथ ही धार्मिक दशा भी अच्छी न थी। तत्कालीन ईसाई धर्म दो भागों में बँट गया था—(1) नेस्टोरियन, (2) मोनोफिजिट्स। पिरोज ने ईसाइयों को दबाने का प्रयत्न किया परन्तु वह अधिक सफल न हुआ।

पिरोज को एफ्थलाइट के साथ युद्ध में नीचा देखना पड़ा। वह बन्दी बना लिया गया और छूटने के लिये उसे बहुत-सा धन देना पड़ा। उसने हूणों के साथ भी युद्ध किया। रोम साम्राज्य से उसे युद्ध नहीं करना पड़ा।

कवद

कवद 487 ई० में पिरोज का उत्तराधिकारी बना। इसको सम्राट बनाने में हूणों का भी काफी हाथ था। इसके शासन-काल में ईरान की शक्ति बहुत क्षीण हो चुकी थी। पश्चिम से रोम और उत्तर से हूणों के आक्रमण का डर हमेशा बना रहता था। इतनी बुरी परिस्थिति होने पर भी कवद ने साहस नहीं छोड़ा। यद्यपि यह कहना ठीक है कि उसके शासन-काल की परिस्थिति ऐसी नहीं थी कि वह अधिक सुधार कर सकता परन्तु फिर भी उसने निर्धन व्यक्तियों के लिये मुफ्त औषधालय बनवाये, सिंचाई की व्यवस्था को ठीक किया और चीन से अच्छे सम्बन्ध बनाने का प्रयत्न किया।

कवद के शासन की महत्वपूर्ण घटना महात्मा मजदक नाम के जोरेस्टर पुरोहित का उत्थान है। यह पुरोहित विचारों में साम्यवादी था और अपने को एक देवदूत मानता था। उसका कहना था कि प्रत्येक मनुष्य को स्वतन्त्रता और समानता का अधिकार होना चाहिये। वह सरल चित्त का और उत्तम विचारों को मानने वाला था। आपसी प्रेम को वह बहुत अधिक महत्व प्रदान करता था। आरम्भ में कवद उससे प्रभावित हुआ। मजदक के बहुत अधिक अनुयायी थे। इन सबने मिलकर अपने मत का प्रचार बड़ी तेजी से करना प्रारम्भ किया और सामन्तों का विरोध किया। फलस्वरूप क्रान्ति हुई जिसे "मज्द-काइट" क्रान्ति के नाम से पुकारते हैं।

कवद ने भी क्रान्तिकारियों का साथ दिया। परन्तु सामन्तों के आगे उसे झुकना पड़ा। कहा जाता है कि उसे ईरान को छोड़कर भागना पड़ा। परन्तु एफ्थलाइटों की सहायता से उसने पुनः फारस पर अधिकार प्राप्त किया। उसने एफ्थलाइट राजकन्या से अपना विवाह भी किया।

पुनः सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात् कवद ने अपनी नीति में परिवर्तन किया। पहले वह जनता का पक्षपाती था परन्तु अब सामन्तों का हितैषी हो गया। कवद को इस ढुलमुल नीति के फलस्वरूप न तो मज्दकाइट क्रांति सफल हो सकी और न उसे सामन्तों का विश्वास प्राप्त हो सका। इन्हीं परिस्थितियों में 42 वर्ष की अवस्था में उसकी मृत्यु हो गई।

सत्य तो यह है कि कवद एक जन-प्रिय शासक होता। उसके विचार ऐसे थे जिनसे वह जनता का बहुत अधिक कल्याण करता, परन्तु परिस्थितियों से बंधा होने के कारण वह ऐसा न कर सका।

कोसरोज प्रथम या खुसरो नौशेरवाँ

कवद के पश्चात् उसका पुत्र कोसरोज प्रथम सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। वह इतिहास में खुसरो नौशेरवां के नाम से प्रसिद्ध है। उसके राज्यारोहण के पूर्व उसके विरुद्ध एक असफल षड्यन्त्र रचा गया था। कोसरोज प्रथम के सिंहासनारूढ़ होने से ससैनियन वंश का सूत्रपात हुआ। कोसरोज एक महत्वाकांक्षी सम्राट था। उसका महत्व एक विजेता के रूप में जितना अधिक है उतना ही अधिक एक कुशल शासन प्रबन्धक के रूप में है। उसके विभिन्न कार्यों की चर्चा यहाँ संक्षेप में की जा रही है:—

1. सैनिक सुधार—कोसरोज एक महत्वाकांक्षी सम्राट था और अपनी महत्वाकांक्षा को पूरा करने के लिये उसके लिये यह आवश्यक था कि वह सेना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण सुधार करे। कोसरोज ने अनावश्यक सैनिक व्ययों को रोक दिया और सैनिकों

को दुर्ग जीतने की कला में प्रवीण बनाया। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि अब तक ससैनियन सेना दुर्ग जीतने की कला में चतुर नहीं थी। कोसरोज ने कुछ नवीन अस्त्र-शस्त्रों का प्रचलन भी किया। उसने सेना को चार प्रथक भागों में बाँटकर प्रत्येक भाग के लिये एक अलग सेनापति की नियुक्ति की। सीमा-प्रांतों की सुरक्षा के लिये उसने सेना की अलग टुकड़ियाँ कर दी। एक नियम के अनुसार उसने सभी नागरिकों के लिये सैनिक सेवा अनिवार्य कर दीं। राजधानी की सुरक्षा के लिये उसके चारों ओर एक खाईं खुदवाई। गुप्तचर विभाग को भी उसने बहुत अधिक क्रियाशील बनाया।

2. **बाह्य शक्तियों से लोहा**—अपनी सेना को सुसंगठित करने के पश्चात् कोसरोज ने बाह्य शक्तियों से लोहा लिया। 540 ई० में उसने सीरिया पर आक्रमण करके उसे विजित कर लिया तत्पश्चात् उसने साम्राज्य की पूर्वी सीमा को दृढ़ किया और पश्चिमी तुर्कों की सहायता से एफ्थलाइटों को पराजित किया। उसने अपने साम्राज्य की हूण आक्रमण से भी रक्षा की और ईरान के आन्तरिक मामलों में ईरान के बाह्य शक्तियों के हस्तक्षेप को समाप्त कर दिया।

3. **न्याय व्यवस्था**—कोसरोज ने न्याय के क्षेत्र में भी बड़ी सुदृढ़ व्यवस्था की थी। वह प्रजा के दुःख दर्द को जानने और उसे दूर करने के लिये सदैव तत्पर रहता था। यदि उसको पता चल जाता कि किसी राज-कर्मचारी ने प्रजा को सताया है तो वह उस कर्मचारी को कठोर दंड, यहाँ तक कि प्राण-दंड भी दे देता था। ईरान में यह कहावत है कि उसके शासन-काल में शेर और बकरी एक ही घाट पर पानी पीते थे और जनता सुख की नींद सोती थी। वह यह मानता था कि न्याय ही सम्राट का कोष है और समस्त प्रजा उसकी सन्तान है। उसने यह घोषणा कर दी थी कि जनता की शिकायत उसके पास किसी भी समय पहुँचाई जा सकती थी। उसका यह कार्य भारत के प्रसिद्ध सम्राट अशोक से मिलता-जुलता था।

4. **शिक्षा और साहित्य की उन्नति का प्रयास**—कोसरोज ने शिक्षा और साहित्य की उन्नति के लिये भी अत्यधिक प्रयास किया। गरीब परिवारों के बच्चों की पढ़ाई के लिये भी राज्य की ओर से खर्च किया जाता था। उसने साहित्य की उन्नति के लिये भी अत्यधिक प्रयास किया। दर्शन-शास्त्र में उसकी विशेष अभिरुचि थी। उसने प्लेटो और अरस्तू की कृतियों को पढ़कर उनका अनुवाद ईरानी भाषा में करवाया। भारतीय ग्रन्थों का अनुवाद भी किया गया। 'पंचतन्त्र' का अनुवाद पहलवी भाषा में किया गया। जब नियो-प्लेटानिस्ट भागकर ईरान पहुँचे तो नौशेरवाँ ने उनको संरक्षण दिया और उनके ग्रन्थों का अनुवाद भी उसने पहलवी भाषा में करवाया। उसने विज्ञान की शिक्षा को भी प्रोत्साहित किया।

5. **जनकल्याण के अन्य कार्य**—जिस समय कोसरोज सिंहासनारूढ़ हुआ उस समय मज्द-काइट क्रांति की असफलता के फलस्वरूप ईरान में अराजकता का वातावरण था। सामन्त जन-साधारण की स्त्रियों एवं सम्पत्ति का अपहरण कर रहे थे। कोसरोज ने सामन्तों के इन अत्याचारों से जनता की रक्षा की। ग्रामीणों की उन्नति के लिये उसने विशेष प्रबन्ध किया और गरीबों को घर बनाने के लिये आर्थिक सहायता दी। यातायात के लिये नये मार्गों का निर्माण किया गया और उसके शासन-काल में नगरों और ग्रामों का सम्बन्ध बढ़ गया। अनेक पुलों का भी निर्माण हुआ। जनता की आर्थिक उन्नति के लिये भी उसने प्रयास किया। भूमिकर खेतों के प्रकार के अनुसार निर्धारित किया गया और उसे तीन किश्तों में अदा करने की व्यवस्था की गई। कर-वसूली में किसी प्रकार का अन्याय नहीं होता था और गरीब कर देने से मुक्त थे। कोसरोज के इन सुधारों के फलस्वरूप जनता तो सुखी हुई ही साथ ही राजकीय कोष में भी वृद्धि हुई।

6. **धर्म और कला का उन्नति**—कोसरोज के शासन-काल में धार्मिक क्षेत्र में भी बहुत अधिक उन्नति हुई। कोसरोज ने धार्मिक सहिष्णुता की नीति अपनायी और सभी धर्मानुयायियों को अपने धर्म का पालन करने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की थी। नौशेरवाँ के शासन-काल में ईरानी कला की भी बहुत अधिक उन्नति हुई। वास्तु-कला, मूर्तिकला और चित्रकला सभी क्षेत्रों में ईरानी कला का उत्कृष्ट रूप उसके शासन-काल में देखने को मिला। कोसरोज का महल अत्यन्त सुन्दर था। वह 24 खम्भों पर टिका हुआ था और उसकी छत लकड़ी की बनी हुई थी जिस पर सुन्दर चित्रकारी की गई थी। उसके युग की कलात्मक उन्नति की चर्चा हमने 'कला' शीर्षक के अंतर्गत अधिक की है।

अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कोसरोज प्रथम के शासन-काल में ईरान की चतुर्मुखी उन्नति हुई। वह ससैनियन वंश का सबसे प्रतिभाशाली शासक था और जनता के मध्य उसे जो आदर प्राप्त हुआ वह इने-गिने शासकों को ही प्राप्त होता है।

होरमिज्द चतुर्थ

यह 570 ई० में गद्दी पर बैठा। उसके शासन-काल में सामन्तों ने अपने प्रभाव को बहुत अधिक बढ़ाने का प्रयास किया, परन्तु होरमिज्द ने उन्हें दबा दिया। वह भी अपने पिता की भाँति योग्य और न्यायप्रिय था। परन्तु वह अपने साम्राज्य को एकता के सूत्र में नहीं बाँध सका। जोरेस्टर धर्म के मतानुयायी उसके विरुद्ध हो गये थे।

होरमिज्द चतुर्थ के शासन-काल में एक विद्रोह हुआ। इस विद्रोह का नायक ससैनियन सैनिकों का नायक बहराम था। वह बहुत महत्वाकांक्षी था। उसने हूणों को पराजित किया, तुर्कों को झुकाया परन्तु बेजंटाइन सेना के सामने उसको झुकना पड़ा। इससे होरमिज्द चतुर्थ बहुत अधिक क्रुद्ध हुआ और उसने बहराम का निरादर किया।

फलस्वरूप बहराम ने विद्रोह करके होरमिज्द को बन्दी बना लिया।

कोसरोज द्वितीय

विद्रोह के पश्चात् 590 ई० में कोसरोज द्वितीय को गद्दी पर बैठाया गया। यह खुसरो परवीज के नाम से प्रसिद्ध है। बहराम इसके शासन से सन्तुष्ट नहीं था और स्वयं सिंहासनारूढ़ होना चाहता था। फलस्वरूप कोसरोज द्वितीय ने बेजंटाइन के शासक मारिस से सहायता ली और बहराम चतुर्थ को दबाकर अपने पिता होरमिज्द चतुर्थ को बन्दी गृह से मुक्त करवाया। कोसरोज द्वितीय ने अपने पिता के शत्रुओं को कुचल दिया।

मारिस की मृत्यु के पश्चात् उसने बेजंटाइन पर आक्रमण किया और ससैनियन साम्राज्य का कुछ भाग जो मारिस के अधिकार में था छीन लिया।

कहा जाता है कि उसने भारतीय नरेश पुलकेशियन द्वितीय के दरबार में अपना एक दूत भेजा था। अजन्ता की चित्रकारी में भी इस घटना का चित्र मिलता है। बेजंटाइन साम्राज्य से उसे फिर एक बार लोहा लेना पड़ा। वहाँ के शासक हेराक्लियस ने कोसरोज की नवीन राजधानी दस्तगर्द को अपने अधिकार में ले लिया। इससे कोसरोज बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने अपने सैनिकों को कड़ा दंड दिया। फलस्वरूप सेना में अराजकता फैल गयी। सामन्त भी एक विशेष घटना के कारण उससे क्रुद्ध हो गये। कोसरोज ने अपनी ईसाई पत्नी शिरीन से उत्पन्न पुत्र को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया था। सामन्त उसके विरोधी थे। फलस्वरूप उन्होंने विद्रोह कर दिया और 628 ई० में उसे मार डाला।

राजवंश का अन्त

कोसरोज द्वितीय के पश्चात् उसके समस्त उत्तराधिकारी बहुत अयोग्य और निर्बल थे। उसके शासन-काल में सामन्तों की शक्ति बहुत अधिक बढ़ गयी थी। ससैनियन वंश का अन्तिम शासक यज्दगर्द तृतीय था जिसे सामन्तों ने 632 ई० में गद्दी पर बिठलाया था। उसके शासन में अरबों ने ईरान पर आक्रमण किया। यज्दगर्द ने उनसे लोहा लेना चाहा परन्तु पराजित हुआ। 650 ई० में उसका वध कर दिया गया और उसके साथ ही ससैनियन वंश का अन्त हो गया।

ससैनियन शासन-व्यवस्था

(1) सम्राट—ससैनियन शासन-व्यवस्था में सम्राट का बहुत ऊँचा स्थान था। सम्राट की इच्छा आखिरी इच्छा थी। उसके द्वारा बोला हुआ शब्द कानून था। उसके निर्णय में किसी को भी परिवर्तन करने का अधिकार नहीं था। परन्तु इसके अर्थ यह नहीं हैं कि शासक पूर्ण स्वेच्छाचारी होते थे। उनके ऊपर सामन्तों का दबाव होता था परन्तु समय-समय पर सम्राटों के अधिकार में परिवर्तन होता रहा। यदि सम्राट अधिक शक्तिशाली हुआ तो उसने सामन्तों को दबा दिया और अपनी स्वेच्छा के अनुसार शासन किया। परन्तु यदि सम्राट विलासी हुआ तो सामन्तों की इच्छा के सामने उसे झुकना पड़ा।

ससैनियन वंश के सम्राट बड़े ऐश्वर्यशाली थे। कुछ सम्राट विलासी भी हुये। उनका दरबार विलासिता के वातावरण में ओत-प्रोत रहता था। सम्राट के पहिनने के लिये बहुमूल्य वस्त्र होते थे। उसका सिंहासन सोने का बना होता था और वह सिर पर भारी मुकुट धारण करता था। दरबार में वह पर्दे के पीछे बैठता था। उसके सिंहासन के एक ओर रक्षक दल रहता था। प्रत्येक कर्मचारी को नीति का पालन करना पड़ता था। सम्राट के हरम में बहुत-सी स्त्रियाँ होती थीं परन्तु राजमहिषी केवल एक ही होती थी।

इन सम्राटों का आमोद-प्रमोद का प्रमुख साधन शिकार था। इस वंश के सम्राट पोलो खेलने में भी अभिरुचि रखते थे। कहा जाता है कि अर्देशिर पोलो का एक बड़ा अच्छा खिलाड़ी था। सम्राट शतरंज आदि के भी शौकीन होते थे। वे संगीत में भी अभिरुचि रखते थे। उनके दरबार में विदूषक एवं संगीतज्ञ होते थे। आमोद-प्रमोद और विलास की समस्त सामग्री होने पर भी सम्राट का जीवन बड़ा सङ्घर्षमय होता था। इस वंश के वह सम्राट जो विलासी नहीं हुये उन्होंने समझा कि शासन-व्यवस्था कितना कठिन कार्य है।

(2) मन्त्रिमण्डल—मन्त्रिमंडल का कार्य सम्राट की मदद करना था। इस मंत्रिमंडल की नियुक्ति प्राचीन पारसीक परम्परा के आधार पर की गई थी। मंत्रिमंडल का प्रधान मुख्य-सचिव होता था। राज्य के कार्यों में उसका विशेष स्थान होता था। सम्राट की अनुपस्थिति में होने पर शासन के समस्त कार्यों को यही मुख्य-सचिव देखता था। युद्ध एवं सेना के मामलों में भी उसके निर्णय का आदर किया जाता था। यही मुख्य-सचिव कृषि, व्यवसाय और व्यापार आदि के क्षेत्र में भी राजा को सलाह देता था। यह मन्त्रिमंडल सम्राट के अधीन था। यह आवश्यक नहीं था कि सम्राट अपने मन्त्रिमण्डल की राय को माने। वह उनके परामर्श को ठुकरा भी सकता था।

(3) सैनिक प्रबन्ध—ससैनियन सम्राटों के शासन-काल में सेना की अच्छी व्यवस्था थी। इस वंश के प्रभावशाली सम्राटों ने अपने सैनिक सङ्गठन को बड़ा दृढ़ बनाया था। इस युग के सम्राटों ने घुड़सवारी और पोशाक पर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने अपने सैनिकों के अस्त्र-शस्त्र को भी अच्छा बनाने का प्रयास किया। ससैनियन घुड़सवारों के कवच और शस्त्र बड़े मजबूत होते थे। उनके पास ढाल और सिर में बाँधने का टोप भी रहता था। वे युद्ध में वल्लम, तलवार, गदा और धनुष का प्रयोग करते थे।

घुड़सवार सेना के साथ-साथ पैदल सेना भी होती थी। ये पैदल सैनिक बड़े कुशल योद्धा होते थे। उनमें से कुछ के पास धनुष होते थे और शेष के पास भाला एवं तलवार।

सेना का अध्यक्ष सेनापति होता था। इसकी नियुक्ति वंश परम्परा के आधार पर की जाती थी एवं किसी राजकुल के सदस्य को ही सेनापति बना दिया जाता था। कभी-कभी मुख्य-सचिव भी सेनापति का कार्य करता था। इन सेनापतियों की सहायता के लिये एक सहायक सेनापति होता था। अधिकतर ये लोग सामन्त वर्ग के होते थे।

ससैनियन सेनाती पार्थियन सैनिकों की अपेक्षा घेरा डालने में अधिक दक्ष थे। वे लम्बी-लम्बी सुरंगें और खाइयाँ भी खोदते थे एवं अन्दर ही अन्दर किले में घुसकर विरोधी सेना पर आक्रमण कर देते थे।

सैनिकों को वेतन भी अच्छा मिलता था। जो सैनिक भली प्रकार अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर नहीं आते थे उन्हें वेतन नहीं दिया जाता था। कहा जाता है कि एक बार सम्राट नौशेरवाँ को इसी आधार पर वेतन नहीं दिया गया था।

(4) राज्य की आय—राज्य की आय का मुख्य साधन भूमि-कर ही था। ग्रामाध्यक्ष की सहायता से भूमि-कर वसूल किया जाता था। किसानों पर अधिक कर लादा गया था। इसके अलावा व्यापार आदि से भी राज्य की आय होती थी।

(5) न्याय-व्यवस्था—इस युग का न्याय धर्म से प्रभावित था। न्याय का कार्य मुख्य रूप से धर्म-शास्त्रों के आधार पर किया जाता था। साम्राज्य का सर्वोच्च न्यायाधीश सम्राट होता था। उसके अधीन अन्य न्यायालय होते थे। न्यायाधीशों की नियुक्ति स्वयं सम्राट करता था। उच्च न्यायालय के अतिरिक्त प्रांतीय न्यायालय भी होते थे। ग्राम न्यायालयों की भी व्यवस्था की गई थी। इन सभी न्यायालयों के विरोध में सम्राट के पास अपील की जा सकती थी।

(6) स्थानीय शासन—इस युग का स्थानीय शासन बहुत अच्छा था। राज्य को प्रान्तों और नगरों में विभाजित किया गया था। प्रान्तों के शासन के लिये राज्यपाल

होते थे। उनके अधीन अन्य कर्मचारी होते थे। प्रान्त जिलों में बाँटा गया था और उन जिलों में भी राजकीय कर्मचारियों की नियुक्ति की जाती थी। गाँव के शासन को भी भली प्रकार से संगठित किया गया था। प्रान्त पर केन्द्र का नियन्त्रण रहता था। समस्त शासन केन्द्रीयकरण के आधार पर स्थापित किया गया था। इस युग की शासन-व्यवस्था के विषय में गिर्शमैन ने लिखा है—"ससैनियनों का अत्यधिक महत्वपूर्ण कार्य एक स्थायी नौकरशाही का निर्माण था जो प्रान्तों और केन्द्रीय सत्ता, जिसके प्रति वह उत्तरदायी थी, के मध्य सम्पर्क बनाये रखती थी।"

"The great achievement of the Sassanians was the creation of a stable bureaucracy which provided the link between the provinces and the Central authority to which it was responsible."

—Ghirshman.

सामाजिक दशा

ससैनियन समाज का संगठन वर्ग-विभाजन के आधार पर हुआ था। प्रत्येक व्यक्ति को अपने वर्ग में ही रहना पड़ता था। वह अपने वर्ग को किसी भी प्रकार से छोड़ नहीं सकता था। गिर्शमैन इस सम्बन्ध में लिखता है—"यह इस प्रकार का कठिन पिरामिड था जिसमें एक वर्ग दूसरे में नहीं समा सकता था।"

"It was rigid Pyramid in which it was practically imposible to pass out of one class into another."

—Ghirshman.

समस्त समाज चार वर्गों में विभक्त था।

1—राजकुल के सदस्य

2—सामन्त

3—राज्य-कर्मचारी

4—निम्न वर्ग के लोग

समाज का सबसे अधिक आदर का पात्र सम्राट होता था। इसके बाद राजकुल के अन्य सदस्य एवं राज्यपाल आदि भी आदर के पात्र समझे जाते थे। राज्यपाल राजा के अधीन रहता था और सम्राट का प्रतिनिधि समझा जाता था। इनके पश्चात् सामन्त वर्ग के लोग आते थे। सामन्त वर्ग के लोग भी समाज में बड़े आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। इन सामन्तों का प्रभाव इस युग में एक समय तो इतना अधिक बढ़ गया था कि उन्होंने ससैनियन सम्राट को गद्दी से उतार दिया। इस साम्राज्य के पतन के मुख्य कारणों में से सामन्त वर्ग भी एक था। इन सामन्तों को किसानों से कर लेने का अधिकार था। उन्हें अन्य विशेषाधिकार भी प्राप्त थे।

ससैनियन काल में राज्य-कर्मचारी भी समाज पर अपना बड़ा प्रभाव डालते थे। इस युग के विलासी शासक तो अधिकतर इन्हीं की कृपा पर निर्भर रहे। कुछ सम्राटों ने सामन्तों के विरुद्ध राज्य-कर्मचारियों से सहायता प्राप्त की। वास्तव में यही राजकीय कर्मचारी शासन को चलाने की कल थे।

समाज में निम्न वर्ग के लोगों की संख्या सबसे अधिक थी। इनमें कृषक, श्रमिक, दास आदि आते थे। इनकी दशा बहुत गिरी हुई थी। वे राजकीय कर्मचारियों द्वारा बहुत अधिक सताये जाते थे। कुछ ससैनियन सम्राटों ने इस वर्ग की दशा को सुधारने का प्रयत्न किया परन्तु वे अधिक सफल नहीं हुये।

आर्थिक दशा

राज्य की आर्थिक दशा का पता निम्नलिखित तथ्यों से चलता है—

(1) **कृषि**—जैसा कि पहले कहा जा चुका है राज्य की आय का मुख्य साधन कृषि था। कुछ ससैनियन सम्राटों ने कृषि की दशा को सुधारने का प्रयत्न किया। इन सुधारकों में सम्राट नौशेरवाँ का नाम सबसे आगे है। अर्देशिर प्रथम ने भी कृषि की दशा को सुधारने का बड़ा प्रयत्न किया। उसने खेती के लिये अच्छे बीज आदि राज्य की ओर से किसानों को दिये। सम्राट नौशेरवाँ ने यह नियम बना दिया कि किसान भूमि-कर उपज और धन दोनों के रूप में दे सकते हैं। उसने जमीन को नपाने का भी आदेश दिया और कृषक वर्ग की दशा को सुधारने का विशेष प्रयत्न किया। सम्राट नौशेरवाँ ने सिंचाई के लिये बाँध बनवाये। इसके फलस्वरूप किसानों की दशा में पर्याप्त सुधार हुये।

इस युग में दो प्रकार की खेती की जाती थी। एक प्रकार की खेती की खपत तो पूर्णरूप से राज्य में ही हो जाती थी और दूसरे प्रकार की खेती की उपज विदेशों को भेजी जाती थी। यद्यपि इस युग के कुछ सम्राटों ने किसानों की दशा में सुधार करने के लिये प्रयास किया परन्तु जमीन के वास्तविक मालिक सामन्त होने के कारण किसान प्रसन्न नहीं रहे। उनकी उपज का बहुत बड़ा भाग सामन्त वर्ग ले लेते थे।

(2) **व्यवसाय**—अनाज के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं का भी उत्पादन होता था। विशेषकर रेशमी कपड़ा और शीशे के सामान का उत्पादन होता था। ऐसा भी लिखा मिलता है, राज्य के सामन्तों ने स्वयं अपने कारखाने खोल दिये थे और इन कारखानों में रेशमी कपड़ा और शीशे का सामान बनाया जाता था।

(3) **व्यापार**—इस युग में के सम्राटों का ध्यान व्यापार सम्बन्धी सुविधाओं की ओर भी गया था। सम्राट नौशेरवाँ ने व्यापारिक मार्गों को सुरक्षित बनाने और पुल

एवं सड़कों की मरम्मत करवाने का आदेश दिया था। राज्य के व्यापार के निरीक्षण के लिये विशेष कर्मचारियों की नियुक्ति की जाती थी जिनका मुख्य कार्य होता था राज्य के आन्तरिक व्यवसाय की दशा में सुधार करना और आन्तरिक मामलों को सुलझाना।

इस काल में विदेशों से भी व्यापार होता था। चीन, मिस्र एवं सिकन्दरिया व्यापार के मुख्य केन्द्र थे। इसके अतिरिक्त बहुत-सा माल यूनान, रोम और माइनर एशिया को भी जाता था। ईरान और चीन के बीच बड़ा अच्छा व्यापारिक सम्बन्ध था। ईरान के व्यापारी चीन आते थे और वहाँ उनके माल की बहुत खपत होती थी। भारतीय सौदागर भी यहाँ का वार्निश और कसीदा किये हुये कपड़े अच्छे मूल्य पर खरीदते थे। ईरान में बाहर से मूँगा, मोती और पत्थर आदि आते थे। ससैनियन साम्राज्य काल से निसीबस तथा टेसीफन नाम के दो नगर व्यापार के प्रमुख केन्द्र बन गये थे।

(4) **मुद्रा-प्रथा**—ससैनियन शासन-काल में मुद्रा प्रसार काफी विकसित रूप में था। कुछ चाँदी और ताँबे की मुद्रायें पृथ्वी से मिली हैं। इनके अतिरिक्त सोने की मुद्रायें भी प्रयोग में आती थीं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस काल में कर आदि लेने में मुद्राओं का ही प्रयोग किया जाता था। यहाँ की मुद्रायें कलात्मक दृष्टि से भी बहुत अच्छी थीं।

(5) **बैङ्क की प्रथा**—ससैनियन शासन-काल में ईरान में बैङ्क की प्रथा भी प्रारम्भ हो चुकी थी। इन बैंकों में अधिकतर व्यापारी वर्ग अपना धन जमा करते थे और उस पर उन्हें सूद भी दिया जाता था। बैंकों द्वारा व्यापारियों को कर्ज भी मिलता था। इसके लिये कुछ निश्चित नियम बना दिये गये थे। कहा जाता है कि ऐसी प्रथा का आरम्भ सर्वप्रथम सीरिया के ईसाइयों ने ईरान में किया और तत्पश्चात् उसे अन्य देशों ने सीखा।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि ईरान में ससैनियन काल के कुछ सम्राटों ने आर्थिक दशा को सुधारने का प्रयत्न किया। परन्तु समाज का संगठन ही ऐसा था कि आर्थिक दृष्टि से वहाँ की जनता खोखली होती गई। इसका मुख्य कारण यह था कि अधिकतर अर्थ व्यवस्था सामन्तों के हाथ में थी जो जनता का शोषण करते थे। ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जबकि सम्राट आर्थिक दृष्टि से सामन्तों के हाथ की कठपुतली बन जाते थे। यह यहाँ के आर्थिक संकटों के न दूर होने का एक मुख्य कारण था।

धर्म

ससैनियन सभ्यता में विभिन्न धर्मों का विकास हुआ। इन धर्मों में से मुख्य थे (1) जोरेस्टर धर्म, (2) मनीच धर्म, (3) मज्दक धर्म।

(1) जोरेस्टर धर्म—पार्थियन सम्राटों के शासन-काल में जोरेस्टर धर्म पतन के गर्त में गिर गया था। इन शासकों ने सूर्य, चन्द्रमा एवं अन्य देवी-देवताओं की आराधना प्रारम्भ कर दी। जोरेस्टर धर्म की अग्नि-वेदियाँ नष्ट हो गईं। ससैनियन शासन-काल में अर्देशिर और शापुर द्वितीय आदि ने पुनः इस धर्म को प्रोत्साहन दिया। इस धर्म के मतानुयायी कर्मवाद में विश्वास करते थे। इनके मुख्य देवता अहुर्मज्द थे जो कि इस काल में ओरमज्द के नाम से पुकारे गये। अर्देशिर ने माँगी पुरोहितों को आदर धन आदि दिया। उसने उनका एक विशेष अधिवेशन भी बुलवाया था जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कि जोरेस्टर धर्म के मतानुयायी घोर नैतिकतावादी थे। वे सदाचार, सत्य को विशेष महत्व प्रदान करते थे। शापुर द्वितीय ने इस धर्म को ऊँचा उठाने का बहुत बड़ा प्रयास किया। कहा जाता है कि उसने इस धर्म की उन्नति के लिये ईसाइयों का दमन भी किया था।

(2) मनीच धर्म—मनीच धर्म का अभ्युदय शापुर प्रथम के शासन-काल में हुआ। इस धर्म का चलाने वाला मानी नाम का एक विद्वान था। कहा जाता है कि वह एक पैर का लँगड़ा था और शापुर प्रथम के राज्याभिषेक के समय उसने उसे इतना अधिक प्रभावित किया था कि वह मानी धर्म का अनुयायी हो गया था। मानी की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह तत्कालीन युग की आवश्यकता की पूर्ति के लिये अपने को ईश्वर के द्वारा भेजा हुआ मानता था। वह स्वभाव से बहुत अधिक सहिष्णु था।

मनीच धर्म के मतानुयायी संसार को मायावी एवं बुराई से युक्त मानते थे। उनका मत है कि ब्रह्म ही सत्य है और बाकी सब कुछ असत्य है। इस संसार का जन्म दो तत्वों से हुआ है—सत्य एवं असत्य। सत्य प्रकाश का द्योतक है और असत्य अंधकार का। समस्त संसार में बुराई का साम्राज्य है और यह बुराई ज्ञान के प्रकाश द्वारा ही दूर हो सकती है। इस धर्म के मानने वाले मोक्ष-सिद्धांत पर भी विश्वास करते थे। वे आत्मा को अमर मानते थे। वे आचरण की शुद्धता में ही जीवन का वास्तविक रूप देखते थे।

मनीच धर्म के अनुयायी दो भागों में विभक्त हो गये थे—

(1) एलेक्ट।

(2) हियरर्स।

प्रथम वर्ग के अनुयायी घोर नैतिकतावादी थे। वे अहिंसा के इतने कट्टर पुजारी थे कि फल और फूलों को भी तोड़ना अच्छा नहीं समझते थे। उनका कहना था कि

इनमें भी जीव होता है। वे विवाह भी नहीं करते थे और संभोग, सुख से दूर रहते थे। वे आवश्यकता से अधिक कोई वस्तु रखना अच्छा नहीं समझते थे। वास्तव में वे साधुओं की तरह अपना जीवन व्यतीत करते थे और उनके विचार बड़े आदर्शवादी थे।

हियरर्स वर्ग में गृहस्थ आते थे। ये पूजापाठ तो करते थे परन्तु प्रथम वर्ग के लोगों की भाँति अहिंसा का पालन इतनी कठोरता से नहीं कर पाते थे। वे उपवास आदि में विश्वास करते थे और अपनी आय का दसवाँ भाग अपने धर्म के प्रचार के लिये समर्पित कर देते थे। जीव-हत्या और मूर्ति-पूजा में वे विश्वास नहीं करते थे।

मनीच धर्म शापुर प्रथम के शासन-काल में खूब पनपा। आरम्भ में शापुर प्रथम का पुत्र होर्मुज्द भी इसी सम्प्रदाय को मानने वाला था। उसके शासन-काल में मेसोपोटामिया में इस धर्म का खूब प्रचार हुआ, परन्तु सम्राट होर्मुज्द के पश्चात् बहराम प्रथम के शासन-काल में इस धर्म के प्रवर्तक मानी को मौत की सजा दे दी गई। सम्राट नरेश के शासन-काल में भी मनीच धर्म को राजकीय संरक्षण प्राप्त हुआ परन्तु उसके पश्चात् कोई भी ऐसा सम्राट नहीं हुआ जो इस धर्म को प्रोत्साहन देता। फलस्वरूप यह धर्म निरन्तर पतन की ओर अग्रसर होता रहा।

(3) **मज्दक धर्म**—कहा जाता है कि इस धर्म का प्रवर्तक मज्दक था। इसका जन्म 480 ई० में हुआ था। वास्तव में यह धर्म ईरान और पूर्वी विचारों का समन्वय था। ऐसा कहा जाता है कि इस धर्म पर ईसाई धर्म और हेलेनिस्टक विचारधारा की छाप है। इस धर्म के अनुयायी सामाजिक व्यवस्था को अच्छा बनाने के लिये अधिक प्रयत्नशील रहे। उनका कहना था कि जिस व्यक्ति को अपनी उन्नति करने का अवसर नहीं मिला उसमें बुराइयाँ स्वयं आ जाती हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति को अपनी उन्नति करने का अवसर मिलना चाहिये। इस धर्म के लोग मानवतावादी विचारधारा से प्रभावित थे। उनका कहना था कि मानव शरीर दूसरों की सेवा करने के लिये है। शत्रु को मित्र बना लेना ही वास्तविक विजय है। इस धर्म का आगमन तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल था। जनता ने इस धर्म को अपनाया और इसी के फलस्वरूप एक बड़ी क्रान्ति हुई जिसे मज्दकाइट के नाम से पुकारा जाता है। यह क्रान्ति असफल हुई और मज्दक धर्म के अनुयायियों का धीरे-धीरे पतन होता गया।

(4) **अन्य मत**—उपर्युक्त धर्मों के अतिरिक्त इस काल में ईसाई धर्म के मानने वाले भी काफी अधिक मात्रा में हो गये थे। उस समय ईरान में कुछ अन्य देवताओं की पूजा भी प्रारम्भ हो गई थी। इनमें 'अनहिल' की पूजा उल्लेखनीय है जो

कि जल का प्रतिनिधित्व करता था। कहा जाता है कि पपैक ने इन देवताओं का एक मन्दिर भी बनवाया था और शापुर प्रथम ने भी मन्दिर का निर्माण करवाया था जिसके चारों ओर एक जल की खाईं थी।

(5) धर्मों में अन्ध-विश्वास—ससैनियन काल में इस धर्म में कर्मकांड और अन्ध-विश्वास भी बहुत अधिक प्रचलित हो गया था। पुरोहित वर्ग का प्रभाव बहुत अधिक बढ़ गया था। अनहिल की पूजा करने वाले तो पुरोहित की पूजा भी करते थे। शिव के मन्दिर में पुरोहितों द्वारा धार्मिक क्रियाएँ की जाती थीं। लोगों का पुरोहित वर्ग पर इतना विश्वास हो गया था कि वे बीमारी आदि को ईश्वरी देन मानने लग गये थे और विश्वास करने लगे थे कि इन बीमारियों आदि को पुरोहित अपने मन्त्र-बल द्वारा ठीक कर सकते हैं।

शिक्षा

ससैनियन काल में शिक्षा केवल उच्च वर्ग तक ही सीमित थी। निम्न वर्ग के लोग शिक्षा नहीं प्राप्त करते थे। व्यापारी केवल आवश्यकतानुसार ही शिक्षा ग्रहण करते थे। उच्च वंश के बच्चों को 5 वर्ष की अवस्था तक शारीरिक शिक्षा दी जाती थी। इसके साथ ही बालकों को धर्म के विषय पर भी बतलाया जाता था। 20 वर्ष की अवस्था तक संगीत, युद्ध-कला, इतिहास, साहित्य आदि की शिक्षा प्रदान करने की प्रथा थी। कहा जाता है कि इस युग में एक चिकित्सा शास्त्र का विद्यालय प्रारम्भ किया गया था जिसमें यूनानी ढंग से चिकित्सा शास्त्र की शिक्षा दी जाती थी।

भाषा एवं साहित्य

इस युग में पहलवी भाषा ने बहुत अधिक उन्नति की थी। इस भाषा को राजकीय भाषा होने का गौरव प्राप्त था। इस भाषा का प्रारम्भ चौथी शताब्दी पूर्व में हुआ था। 'जेन्द-आवेस्ता' पहलवी भाषा में ही लिखी गई थी।

ससैनियन काल मे लगभग 11 ग्रन्थ लिखे गये। इन ग्रन्थों में सम्राट अर्देशिर के समय के ग्रन्थ बहुत अधिक प्रसिद्ध हैं। इस युग में कविता का प्रचलन नहीं था। इस काल में एक संग्रह भी लिखा गया जिसमें ईरानी राजाओं की कृतियों का वर्णन है। इस ग्रन्थ का नाम यत्कर-ई-जरीरान (Yat-Kar i-Zarian) है। कहा जाता है कि फिरदौसी ने अपना 'शाहनामा' इसी आधार पर लिखा था। इस युग के अन्य ग्रन्थ "कारनामक-ई-अर्तक्षेत्र-ई-पापकान" (Karnamak-i-Arta Khsatri Papakan) तथा "सीस्तान के चमत्कार" हैं। कहा जाता है कि नौशेरवाँ ने भारत से पंचतन्त्र की भी एक प्रतिलिपि मँगाई थी जिसका पहलवी भाषा में अनुवाद किया गया था। शापुर प्रथम ने भी कुछ भारतीय ग्रन्थों के अनुवाद करवाये थे।

चिकित्सा शास्त्र के लिये ईरान के निवासी नेस्टोरियन ईसाइयों के ऋणी हैं। यह लोग जब भागकर ईरान आये तो अपने साथ यूनानी चिकित्सा-शास्त्र से सम्बन्धित कुछ दार्शनिक एवं वैज्ञानिक ग्रन्थ लाये। इन ग्रन्थों के भी अनुवाद हुये। इनके अतिरिक्त चिकित्सा-शास्त्र में कुछ अन्य ग्रन्थ भी लिखे गये। इस युग के ग्रन्थों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाया गया है। साहित्यकारों के साहित्य में विचारों की स्वतन्त्रता दृष्टिगत होती है। उन्होंने प्राचीन रूढ़ियों को दूर कर समाज के सामने एक आदर्श रक्खा है।

कला

ससैनियन युग कला की उन्नति की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस काल में वास्तु-कला अत्यधिक उन्नति कर गई थी। मूर्ति-कला पर यूनानी प्रभाव था। हखामशी युग की चित्रकारी इस युग में पूर्ण विकसित हो गई थी। यहाँ हम विभिन्न प्रकार की कलाओं की चर्चा संक्षेप में कर रहे हैं—

(1) **वास्तु-कला**—ससैनियन वास्तु-कला एक मौलिक कला थी और इसका विकास पूर्णतः राष्ट्रीय था। ससैनियन सम्राटों को नगर-निर्माण का विशेष शौक था और इन्होंने अनेक नगरों की स्थापना की थी। गिर्शमैन ने लिखा है, "ससैनियन नगरों के महान् निर्माता थे और ऐतिहासिक तथ्यों से अधिकतर शहरी क्षेत्रों के विकास का पता चलता है।"

"The Sassanians were great builders of towns and the historical sources record urban development in most regions."

—Ghirshman.

ससैनियनों ने अपने साम्राज्य के विभिन्न भागों में नगरों की स्थापना की थी। अर्देशिर ने वृत्ताकार नगर बसाये थे। शापुर प्रथम ने विशपुर नाम के एक आयताकार नगर का निर्माण करवाया था।

ससैनियन काल में अनेक भवनों और महलों का निर्माण हुआ। इनमें से प्रमुख की चर्चा यहाँ संक्षेप में की जा रही है—

(क) **फिरोजाबाद का महल**—ईरान में शीराज के पास फिरोजाबाद नाम का एक नगर था जिसमें अनेक सुन्दर भवनों का निर्माण किया गया था। भग्नावशेषों में एक बड़े महल का भी पता चला है। जिसकी लम्बाई लगभग 320 फीट और चौड़ाई 175 फीट थी। महल का सबसे बड़ा हाल 90 × 45 फीट और उसके दोनों ओर छोटे-छोटे तीन कमरे थे।

(ख) **शीरी का महल**—शीरी फरहाद की प्रेम-कथा संसार में प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि खुसरो परवेज ने शीरी के नाम से एक महल बनवाया था। इस

महल का क्षेत्रफल काफी अधिक था और इसके चारों ओर सुन्दर-सुन्दर पार्क बने हुये थे। महल में स्नानागार भी बने हुये थे। इस महल को कस्रे शीरीन के नाम से पुकारा जाता है।

(ग) ताक़े किसरा—फिरोजाबाद से कुछ दूर तबरिस्तान में ताक़े किसरा का भवन था। इस भवन की बनावट का ठीक से अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। यह महल बड़ी-बड़ी सफेद ईंटों से बनाया गया था। महल के बीच में एक बहुत बड़ा हाल था जहाँ सम्राट नौशेरवाँ के बैठने का एक तख्त पड़ा हुआ था।

(घ) खुसरो का महल—यह महल शीरी के महल के हाते में था। इसके चारों ओर गोल पार्क था और पार्क के चारों ओर रास्ते थे। पार्क के चारों तरफ लगभग 6 फीट ऊँची एक दीवार थी। यह महल एक ऊँचे चबूतरे पर बना हुआ था और 24 खम्भों पर आधारित था। महल की छत लकड़ी की बनी हुई थी और छत पर चित्रकारी की गई थी; महल की मेहराबें अर्द्ध-वृत्तकार थीं, परन्तु कहीं-कहीं पर नुकीली थीं।

(ङ) नक्शे रुस्तम—नक्शे रुस्तम में ससैनियन सम्राटों ने अपनी विजय को स्मृति में पत्थर लगवाये थे और इन पत्थरों पर चित्र भी बनवाये गये थे।

(च) विभिन्न देवालय—ससैनियन काल में अनेक देवालय भी बनवाये गये थे। पपैक ने अनहिल देवता का एक मन्दिर बनवाया था। शापुर प्रथम ने भी विशपुर में एक मन्दिर का निर्माण करवाया था। मन्दिर के भीतर एक गर्भगृह होता था जहाँ देवता की मूर्ति होती थी। गर्भगृह के चारों ओर बरामदे होते थे जिन पर चित्रकारी की जाती थी।

(छ) भवनों की बुर्जियाँ—ससैनियन भवनों की बुर्जियाँ उनकी वास्तु-कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। विशपुर के किले में सुदृढ़ बुर्ज बनाये गये थे। इन बुर्जियों के साथ ही छज्जे और मेहराब बनाने की परम्परा भी प्रचलित थी। भवनों की बुर्जियाँ भवन और नगर की स्थिति देखकर बनाई जाती थीं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि ससैनियन काल में ईरानी वास्तु-कला अपनी उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गई थी। इस युग की कला भारतीय वास्तु-कला से बहुत अधिक साम्य रखती है।

(2) मूर्तिकला—वास्तुकला के अतिरिक्त मूर्तिकला भी इस युग में बहुत अधिक उन्नति कर चुकी थी। इस कला का सुन्दर उदाहरण उत्कीर्ण भास्कर है। इसमें ईरान देव समूह को चित्रित किया गया था। ताक-ई-बुस्तान (Tak-i-Bustan) नाम की प्रसिद्ध भास्कर कला में सम्राट अपने साथियों सहित शिकार करते हुये दिखलाया गया है। खुशरो पर्वेज के इन शिकारी दृश्यों को चित्रित करने में कुछ उठा नहीं

रक्खा गया है। यहाँ दो बड़ी मेहरावें जिनकी ऊँचाई 30 फुट और 22 फुट है पहाड़ों को काटकर बनाई गई हैं। बाहर की ओर अर्द्ध चन्द्र बना है और एक तरफ पंख या विजय मूर्तियाँ हैं। मूर्तियों में यूनानी कला का प्रभाव दृष्टिगत होता है। अन्दर की तरफ अनेक चित्र चित्रित किये गये हैं। इन चित्रों में शिकार के चित्र और तीर चलाते हुये चित्र बहुत प्रसिद्ध हैं। एक चित्र में ससैनियन सम्राट सिंहासन में बैठा हुआ दिखलाया गया है। एक अन्य चित्र में सम्राट शापुर द्वारा रोम के सम्राट को बन्दी किया जाना चित्रित किया गया है। इस काल के कलाकारों में तरह-तरह की चीजों जैसे तश्तरियाँ, बोतलों आदि के चित्र भी बनाये हैं। नक्शे-मस्तक के पत्थर के चित्र अपने ढंग के निराले हैं। यह चित्र अन्य नगरों में भी पाये गये हैं।

(3) **चित्र-कला**—ससैनियन काल के चित्रकारों ने प्रकृति को भी बड़े सुन्दर रूप में चित्रित किया है। सुन्दर नदी का किनारा, हिलते हुये वृक्ष आदि के चित्रों में उनकी कला सजीव हो उठी है। उड़ते हुये पक्षियों और उगते हुये पेड़-पौधों आदि के चित्रों में बड़ी सजीवता है। एक चित्र में एक राजमहिषी को सिंहासन पर बैठे हुये दिखलाया गया है जिसकी नौकरानियाँ पंखा झल रही हैं और कुछ आज्ञा प्राप्त करने के लिये खड़ी हैं।

(4) **चाँदी का काम**—इस युग की तीन चाँदी की तश्तरियाँ भी प्राप्त हुई हैं। इन तश्तरियों में भी चित्रकारी है। एक में सम्राट बहराम शेर का शिकार करते हुये दिखलाया गया है और दूसरी में सम्राट शापुर हिरन का शिकार करते हुये। तीसरी तश्तरी में जंगली जानवरों के शिकार के कुछ दृश्य हैं। पूरी तश्तरी चाँदी की एक ही पत्तर की नहीं बनी हुई है बल्कि चाँदी के टुकड़ों को जोड़कर तश्तरियों को बनाया गया है, जिससे उसमें और भी सुन्दरता आ गई है।

(5) **कला की सर्वश्रेष्ठ विशेषता**—ससैनियन कला की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह कला जहाँ एक ओर ऐतिहासिक है वहाँ दूसरी ओर आध्यात्मिक। जहाँ एक ओर लौकिक है वहाँ दूसरी ओर पारलौकिक। विश्व की सभी सभ्यताओं में एक ही कला का अधिक विकास हुआ है। यदि किसी काल के राजाओं ने राजप्रासाद और नगर आदि बनवाये हैं तो उन्होंने मन्दिर आदि का निर्माण नहीं करवाया है तथा दूसरी ओर जिस काल में आध्यात्मिक कला की ओर विशेष महत्व दिया गया है उस काल में भौतिक कला की उन्नति नहीं हुई है। कुछ ही ऐसी सभ्यतायें हैं जिनमें ऐतिहासिक, आध्यात्मिक, प्राकृतिक सभी कलाओं का समन्वय देखने को मिलता है। भारत में मौर्य काल की कला इसी प्रकार की है। ससैनियन कला भी इसी कोटि के अन्तर्गत आती है। जहाँ इस काल में एक ओर आध्यात्मिकता के दर्शन होते हैं वहाँ दूसरी ओर भौतिकता

के । कुछ विद्वानों का यह भी कथन है कि इस कला ने मध्य एशिया की बौद्ध कला को प्रभावित किया है । प्रसिद्ध विद्वान गिर्शमैन ने लिखा है कि ससैनियनों की कला ने मध्य-एशिया के बौद्ध रिलीफ-चित्रकारों को भी प्रभावित किया ।

"Sassanian art also inspired the painters of the Frescoes in the Buddhist sanctuaries in Central Asia."

—Ghirshman

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि ससैनियन सभ्यता एशिया की महानतम् सभ्यताओं में से थी । सभ्यता और संस्कृति का जो प्रसार इस युग में हुआ उसने आगे आने वाली पीढ़ियों को बहुत अधिक प्रभावित किया । पैन्थर महोदय ने ठीक ही लिखा है—"सूसन जाति के लोग केवल उच्चकोटि के सैनिक ही नहीं थे वरन उन्होंने संस्कृति के क्षेत्र में वह योगदान दिया कि हमें अब भी कहना पड़ता है कि वे वास्तव में सभ्य थे ।"

"Sassanians were not only the brave fighters but whatever they have contributed in the field of culture still compels us to tell that they were really civilized."

—Panther.

सारांश

ससैनियन वंश का संस्थापक ससैन था । उसके पश्चात् इस वंश में अनेक सम्राट हुये जिनमें अर्देशिर, शापुर प्रथम, शापुर द्वितीय, बहराम पंचम, कवद, कोसराज प्रथम (नौशेरवाँ) के नाम उल्लेखनीय हैं । इस युग में सबसे प्रतिभाशाली सम्राट नौशेरवाँ माना जाता है । इस वंश का अन्तिम सम्राट यज्दगर्द तृतीय था । इस युग में ईरान की शक्ति बहुत बढ़ गई थी ।

ससैनियन शासन-व्यवस्था में सम्राट का स्थान बहुत ऊँचा था । उसकी सहायता के लिये एक मन्त्रिमण्डल होता था जिसका प्रधान मुख्य-सचिव होता था । इनकी घुड़सवार और पैदल सेनाओं ने रोम के दाँत खट्टे कर दिये थे । ये लोग पार्थियन योद्धाओं की अपेक्षा घेरा डालने में अधिक प्रवीण थे । राज्य की आय का मुख्य साधन भूमि-कर था । न्याय में धर्म की प्रधानता थी । उच्च न्यायालय के अतिरिक्त प्रान्तीय न्यायालय भी होते थे । शासन के लिये प्रांतीय व्यवस्था को ही अपनाया गया था । प्रांत पर केन्द्र का नियन्त्रण रहता था ।

समाज चार वर्गों में विभाजित था—राजकुल के सदस्य, सामन्त, राज्य-कर्मचारी, निम्न वर्ग के लोग। समाज में निम्न वर्ग के लोगों की संख्या सबसे अधिक थी।

कृषि ही समाज के अधिकांश लोगों की आय का साधन थी। किसानों की दशा अधिक अच्छी नहीं थी क्योंकि भूमि पर सामन्तों का ही अधिकार था। रेशमी कपड़े और शीशे के बर्तनों का उद्योग बहुत प्रचलित था। इनका व्यापार चीन, मिस्र, सिकन्दरिया से अधिक होता था। यूनान, रोम और भारत में भी इनके माल की खपत थी। इनकी मुद्रा-प्रणालो बहुत अच्छी थी। बैंक-प्रथा में भी काफी विकास हो गया था।

समाज में तीन धर्मों के अनुयायी अधिक मात्रा में रहते थे—जोरेस्टर धर्म, मनीच धर्म, यज्दक धर्म। जोरेस्टर धर्म को शापुर द्वितीय ने प्रोत्साहन दिया। मनीच धर्म का प्रवर्तक मानी था जो शापुर प्रथम के शासन-काल में हुआ था। इस धर्म के मानने वालों के दो वर्ग थे—एलेक्ट, हियरर्स। एलेक्ट भारतीय साधुओं की तरह का जीवन व्यतीत करते थे। ये घोर अहिंसावादी थे। हियरर्स गृहस्थ होते थे। इस धर्म का प्रचार मेसोपोटामिया में भी खूब हुआ। मज्दक धर्म का प्रवर्तक मज्दक था। इस धम पर ईसाई और हेलेनिस्टिक विचारधारा की छाप थी। इस धर्म के कारण ईरान में एक क्रान्ति हुई जिसे मज्दकाइट क्रान्ति के नाम से पुकारा जाता था। इन धर्मों के अतिरिक्त ईसाई धर्म के मानने वाले भी थे। 'अनहिल' की पूजा भी होती थी।

इस काल में शिक्षा केवल उच्च वर्ग तक ही सीमित थी। 20 वर्ष की अवस्था तक संगीत, युद्ध-कला, इतिहास और साहित्य की शिक्षा दी जाती थी। इस युग में पहलवी भाषा ने बहुत उन्नति की। इस युग के ग्रन्थों में 'यत्कर ई जरीरान' और 'कारनामक-ई-अर्तक्षेत्र-ई-पापकान' प्रमुख हैं। कहा जाता है कि नौशेरवाँ ने भारतीय 'पञ्चतन्त्र' का भी अनुवाद करवाया था। कुछ चिकित्सा-शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ भी प्राप्त हुये हैं। चिकित्सा-शास्त्र के लिये ससैनियन नेस्टोरियन ईसाइयों के ऋणी हैं।

वास्तुकला के क्षेत्र में कुछ नगर आते हैं। अदशिर ने एक वृत्ताकार नगर बनवाया था। शापुर प्रथम ने गुन्देशपुर में और शापुर द्वितीय ने सूसा में आयताकार प्रासाद बनवाये थे। इस युग के प्रसिद्ध भवनों में फिरोजाबाद का महल, शीरी का महल, ताके किसरा, खुसरो का महल आदि उल्लेखनीय हैं। पपैक ने अनहिल देवता का मन्दिर और शापुर प्रथम ने विशपुर में एक मन्दिर बनवाया था। भवनों की बुर्जियाँ भी

अत्यन्त सुन्दर होती थीं। ससैनियन काल की ईरानी वास्तुकला भारतीय वास्तुकला से बहुत अधिक साम्य रखती है।

भास्कर कला के अन्तर्गत 'ताक-ई-वुस्तान' का नाम प्रसिद्ध है। इस काल की मूर्तियों में यूनानी कला की छाप है। नक्शेमस्तक के पत्थर के चित्र भी अपने ढङ्ग के निराले हैं। चित्रकला का एक उत्कृष्ट नमूना एक राजमहिषी का चित्र है। इस युग की चाँदी की तीन तश्तरियों पर सुन्दर चित्रकारी भी है।

ससैनियन कला की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह कला ऐतिहासिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार की है। भारतीय मौर्य कला की भाँति ही इस कला में लौकिक और पारलौकिक दोनों ही तथ्यों का समावेश है।

———

सिन्धु घाटी की सभ्यता और संस्कृति

(INDUS VALLEY CIVILIZATION AND CULTURE)

अध्याय | 9

भारत की पूर्वैतिहासिक सभ्यता
(PRE-HESTORIC CIVILIZATION OF INDIA)

प्रश्न 1—सिन्धु घाटी की सभ्यता पर एक संक्षिप्त निबंध लिखिये।
(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

Write a short essay on Indus Valley civilization.
(Gorakhpur University)

प्रश्न 2—सिन्धु घाटी की सभ्यता पर एक छोटा-सा निबंध लिखिये।
(लखनऊ विश्वविद्यालय)

Give a short account of the civilization of the Indus Valley.
(Lucknow University)

प्रश्न 3—'हड़प्पा संस्कृति' के निर्माता कौन थे? बाह्य देशों के साथ उनके सम्बन्धों के विषय में आप क्या जानते हैं?
(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

Who were the authors of the 'Harappa culture'? What do you know about their contacts with the outside world?
(Allahabad University)

प्रश्न 4—हड़प्पा और मोहनजोदड़ो के निवासियों की नगर-निर्माण शैली तथा धार्मिक विश्वासों के विषय में आप क्या जानते हैं?
(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

What do you know about the town-planning and religious beliefs of the people of Harappa and Mohanjodaro?
(Gorakhpur University)

प्रश्न 5—निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये—

(अ) सिन्धु घाटी के निवासियों का धर्म।

(ब) सिन्धु घाटी की सभ्यता एक शहरी सभ्यता थी।

Write short notes on—

(a) Religion of the Indus Valley people.

(b) 'Indus Valley civilzation was an urban civilization.'

भारत की प्राचीनतम सभ्यताओं में सिन्धुघाटी की सभ्यता अत्यन्त महत्वपूर्ण सभ्यता मानी जाती है। सन् 1920 के पहिले भारत की प्राचीनतम सभ्यता आर्य सभ्यता मानी जाती थी पर मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई से यह स्पष्ट हो गया कि सिन्धु घाटी की सभ्यता आर्य सभ्यता से भी प्राचीन है। सन् 1920 में पुरातत्व विभाग की देख-रेख में सिन्धु घाटी की खुदाई की गई। 1922 में मोहनजोदड़ो में खुदाई की गई। इस खुदाई के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने अपने मत प्रस्तुत किये हैं। आर० डी० बनर्जी, श्री दयाराम साहनी आदि विद्वानों ने खुदाई में प्राप्त होने वाली वस्तुओं के आधार पर अपने-अपने विचार व्यक्त किये। सन् 1921 में लाहौर से 120 मील दूर मान्टोगोमरी जिले में स्थित हड़प्पा की खुदाई के सम्बन्ध में श्री दयाराम साहनी का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। डा० आर० के० मुकर्जी ने इस सभ्यता को 325-2750 ई० पू० का माना है और डा० मैके का मत है कि यह सभ्यता कम से कम 2500 ई० पू० की है।

सिन्धु के तट पर मोहनजोदड़ो और रावी के तट पर हड़प्पा बसा था। खुदाई में 40 बस्तियों का पता चला है जिनमें नगर, ग्राम, कस्बे सभी सम्मिलित हैं। मोहन-जोदड़ो और हड़प्पा इनके मुख्य नगर हैं। दोनों नगर एक दूसरे से 150 मील दूर थे। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सिन्धु सभ्यता का क्षेत्र काफी विस्तृत था। सर जान मार्शल के अनुसार इस सभ्यता का विस्तार गंगा नदी के मैदान तक था। उनके शब्दों में—

"One thing that stands out clear and unmistakable both at Mohan-jo-daro and Harappa is that the civilization hither to revealed is not incipient civilization but one already an age old and stereotyped on the Indian soil with many millenia of human endeavour behind. Thus must be recognised with Persia, Mesopotamia and Egypt – one of the most important area where the civilizing processes were initiated and developed."

—Sir John Marshall.

यह एक नगर सभ्यता थी क्योंकि खुदाई में विशाल नगरों के अवशेष मिले हैं। खुदाई के अवशेषों से यह पता चलता है कि जहाँ आज रेगिस्तान दिखाई पड़ता है वहाँ किसी समय हरे-भरे मैदान और जंगल थे। बर्तनों पर बने हुये चित्रों से यह स्पष्ट है कि इन मैदानों में शेर, हाथी, घोड़े आदि भी होंगे। भेड़िया, रीछ, गैंडा मुख्य पशु थे।

सिन्धु सभ्यता की विशेषताएँ

सिन्धु घाटी की सभ्यता की निम्नलिखित विशेषतायें थीं—

(1) नागरिक सभ्यता—विशाल नगरों से यह स्पष्ट है कि यह सभ्यता नगर प्रधान सभ्यता थी और इन नगरों का विदेशों से व्यापारिक सम्बन्ध था।

(2) **समष्टिवादी सभ्यता**—खुदाई में विशाल स्नानागारों तथा सभा-भवनों के भग्नावशेष इस बात के द्योतक हैं कि उस काल के लोग सामूहिक जीवन व्यतीत करते थे। किसी भी राजा या राजमहल का कोई चिह्न नहीं मिलता।

(3) **काँस्यकालीन सभ्यता**—काँसे का प्रयोग इस काल में अधिक हुआ। अतः हम इसे काँस्यकालीन सभ्यता मान सकते हैं।

(4) **शान्ति-प्रधान सभ्यता**—खुदाई में कहीं भी कवच, तलवार एवं अन्य युद्ध सामग्री नहीं उपलब्ध हुई है। अतः यह प्रतीत होता है कि इस काल के लोग सामरिक प्रवृत्ति के न होकर शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करना अधिक पसन्द करते थे। भाला, कुल्हाड़ी, धनुषबाण आदि आखेट सामग्री उस काल के लोगों का आखेट के प्रति प्रेम ही प्रदर्शित करता है।

(5) **धर्म द्विदेवतामूलक था**—इस काल में दो देवताओं की पूजा की जाती थी प्रथम पुरुष और दूसरा नारी। सिन्धु-वासी पुरुष और नारी दोनों को ही श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे।

सिन्धु सभ्यता के निवासी

कुछ विद्वानों के मतानुसार यह आर्य जाति की सभ्यता है; पर जान मार्शल जैसे विद्वान ने इस मत का खण्डन करते हुये कहा है कि सिन्धु घाटी की सभ्यता आर्य सभ्यता से भिन्न है। अतः वे आर्य नहीं थे।

गार्डन चाइल्ड के अनुसार सिन्धु सभ्यता के निवासी सुमेरियन थे; परन्तु इसके समर्थन में कोई निश्चित प्रमाण न होने से यह बात भी ठीक नहीं प्रतीत होती। राखल दास बनर्जी के अनुसार यहाँ के निवासी द्रविड़ जाति के थे। इनके मत के समर्थकों का कथन है कि एक समय ऐसा था जब द्रविड़ लोग पंजाब, सिन्धु, बलूचिस्तान तथा भारत के अन्य भागों में फैले हुये थे। भारत के पश्चिमी क्षेत्र में द्राविड़ भाषा से मिलती हुई ब्राहुई भाषा बोली जाती थी; अतः भाषा के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ये लोग द्रविड़ थे। परन्तु सांस्कृतिक और शारीरिक वैषम्य होने के फलस्वरूप यह मत भी ठीक नहीं प्रतीत होता।

डा० गुहा तथा अन्य विद्वानों ने सिन्धु घाटी से प्राप्त अस्थिपंजरों, मूर्तियों आदि के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि इस समय के लोग एक जाति के न होकर विभिन्न जातियों के थे। ऐसा प्रतीत होता है कि व्यापार, नौकरी तथा अन्य प्रलोभनों से आकर्षित होकर विभिन्न जातियों के लोग इन नगरों में आकर बस गये थे। इन विद्वानों के अनुसार सिन्धु प्रदेश में अधिकतर भूमध्यसागरीय प्रोटोआस्ट्रालायड, मंगोलियन तथा अल्पाइन जाति के लोग निवास करते थे। अल्पाइन और भूमध्यसागरीय जाति के लोग

अधिक सभ्य और सुसंस्कृत थे। ऐसा प्रतीत होता है कि इन्हीं जातियों ने सिन्धु घाटी के निर्माण में योग दिया होगा। इस प्रकार सिन्धु घाटी के निवासियों को मिश्रित जाति का कहना तर्कसंगत प्रतीत होता है और विभिन्न जातियों का यहाँ आना कोई आश्चर्य-जनक बात नहीं है क्योंकि सिन्धु व्यापार का प्रमुख केन्द्र था। इस सम्बन्ध में मार्शल ने लिखा है—"सिन्धु घाटी विभिन्न प्रकार की सभ्यताओं के संयोग का स्थल बनी।"

"Placed in Sind with harbours and coasts, it became the meeting ground of widely divergent types of humanity."

— Marshall.

इस सम्बन्ध में श्री हरिदत्त वेदालंकार ने लिखा है—"सिन्धु सभ्यता एक उल्का तारे की भाँति प्रतीत होती है जो सहसा अज्ञात प्रदेश से प्रकट होकर कुछ समय के लिये खूब चमकता है। इसका उद्गम अनिश्चित है और अन्त के सम्बन्ध में भी यही कल्पना है कि बाढ़ और आक्रान्ता इसके आकस्मिक अवसान के प्रधान कारण थे। यह निश्चित नहीं कि ये आक्रमणकारी आर्य थे या अन्य कोई जाति। वैदिक आर्यों से इसका क्या सम्बन्ध था, यह भी बड़ा जटिल प्रश्न है। मोहनजोदड़ो की लिपि पढ़े जाने के बाद ही इन समस्याओं का समाधान होगा।

सिन्धु सभ्यता का काल

नागरीय तथा व्यापार प्रधान सभ्यता किस काल की थी इस तथ्य पर भी विद्वान एकमत नहीं हैं। परन्तु यह सभ्यता आर्य सभ्यता से प्राचीन है इस तथ्य से बहुतांश विद्वान सहमत हैं। सिन्धु घाटी की सभ्यता को 3200 ई० पू० के आस-पास की और वैदिक काल की सभ्यता को 2500 ई० पू० से 2000 ई० पू० तक की मानना अधिक उचित होगा।

भौगोलिक स्थिति

सिन्धु घाटी की सभ्यता के विकास में उसकी भौगोलिक स्थिति ने बड़ा योगदान दिया था। प्रायः सभी सभ्यताओं का विकास नदियों के तट पर हुआ था। अन्य नदियों की भाँति ही सिन्धु नदी की घाटी भी अपनी भौगोलिक विशेषताओं के कारण यहाँ के रहने वालों को सभ्य व उन्नतिशील बनाने में सहायक सिद्ध हुई। खुदाई में कोई भी युद्ध सामग्री का उपलब्ध न होना इस बात का परिचायक है कि सिन्धु प्रदेश की भौगोलिक दशा ऐसी थी जिसमें बाहरी आक्रमण का कोई भी भय नहीं था और पूर्ण शान्ति बनी रहती थी। सिन्धु नदी के जल व उसके द्वारा लाई हुई मिट्टी ने सम्पूर्ण घाटी को अत्यन्त उपजाऊ बना दिया था। इसके अतिरिक्त प्राचीन काल में आज की अपेक्षा सिन्धु प्रदेश में वर्षा भी अधिक होती थी। अतः कृषि की दृष्टि से यहाँ सभ्यता का विकसित होना आवश्यक था। खुदाई में जो मुद्रायें मिली हैं उन पर बने व्याघ्र, हाथी,

गैंडा आदि पशुओं के चित्र इस बात के द्योतक हैं कि यहाँ वर्षा अवश्य होती होगी। पक्की ईंटें व नालियाँ यह बताती हैं कि वर्षा पर्याप्त मात्रा में होती थी। भौगोलिक स्थिति के अनुकूल होने के कारण ही इस प्रदेश के विदेशों से व्यापारिक सम्बन्ध भी अच्छे थे।

नगर-व्यवस्था

सिन्धु घाटी के निवासियों की सामाजिक दशा का पता निम्नलिखित तथ्यों से चलता है—

(1) नगर व सड़कों की दशा—मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के जो अवशेष मिले हैं उनसे विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि उस समय नगरों का निर्माण व्यवस्थित रूप में किया जाता था। सड़कें उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम की ओर जाती थीं और एक दूसरे को समकोण पर काटती थीं। नगर की प्रमुख सड़कों की चौड़ाई तैंतीस फीट तक पाई गई है। कम से कम चौड़ी गली चार फीट की है। परन्तु सड़कें तथा गलियाँ कच्ची ही होती थीं।

(2) इमारतें—सिन्धु घाटी के भग्नावशेषों से प्रकट होता है कि उस समय की भवन-निर्माण कला बड़ी ही उच्चकोटि की थी। सड़क के दोनों ओर भवनों का निर्माण किया जाता था। मकानों में प्रयुक्त पक्की ईंटें विभिन्न रंगों की होती थीं। भवन छोटे व बड़े दोनों प्रकार के होते थे। नीचे की मंजिल से ऊपर जाने के लिये सीढ़ियाँ होती थीं। विशाल भवनों में दरवाजों, खिड़कियों तथा सीढ़ियों की व्यवस्था थी। आँगनों में फर्श किया जाता था। मकानों की बाहरी दीवार विशेष रूप से चौड़ी और सुदृढ़ बनाई जाती थी। यह चौड़ाई 4 से 6 फुट तक होती थी। मकानों के प्रवेश-द्वार सड़कों की ओर बनाये जाते थे।

(3) नालियों की व्यवस्था—नगर के गन्दे पानी को बाहर निकालने के लिये नालियाँ बनाई गई थीं। घरों की नालियाँ बाहर जाकर सड़कों की नालियों से मिल जाती थीं। नालियाँ पक्की ईंटों की बनी होती थीं। ढकी हुई नालियाँ भी होती थीं। सड़कों और नालियों की व्यवस्था का वर्णन करते हुये गार्डन और चाइल्ड ने लिखा है—"बहुत से स्थानों में सुनियन्त्रित सड़कें हैं। नालियों के निर्माण का ढंग उत्तम है, उनकी नित्य सफाई होती है जिससे ज्ञात होता है स्थानीय सरकारें सुदृढ़ थीं, इन स्थानीय सरकारों का शासन इतना सुन्दर था कि सड़कें और गलियाँ निश्चित योजना के अनुसार बनती थीं और बाढ़िया का भी उन पर असर नहीं होता था।

"Many are well planned streets and a magnificent system of drains, regularly cleared out, reflects the vigilance of some regular municipal government. Its Authority was strong enough to secure the observance of town-planning bye-

laws and the maintenance of the approved lines for streets and lanes over several reconstructions rendered necessary floods."

—Gordon Childe.

(4) कूपों की व्यवस्था—कुछ कूपों के अवशेष भी प्राप्त हुये हैं। व्यक्तिगत व सार्वजनिक दोनों ही प्रकार के कूप होते थे।

(5) जलाशय व स्नानागार—इस खुदाई में एक विशाल जलाशय मिला है जो 39 फीट लम्बा, 23 फीट चौड़ा और 9 फीट गहरा है। यह पक्की ईंटों का बना हुआ है। इसके अन्दर जाने के लिये सीढियाँ बनी हैं। इस जलाशय के चारों ओर बरामदे भी हैं। इसमें आठ स्नानागार दक्षिण-पश्चिम की ओर बने हैं। मैकी नामक विद्वान के अनुसार कुछ विशेष धार्मिक अवसरों पर पुजारी लोग इसमें स्नान करते थे। साधारण जनता तालाब में हो स्नान करती थी। तालाब के पास में ही एक कुआँ था जिससे तालाब को भरा जाता था। इस तालाब को खाली करने के लिये नल बने थे। इसके पास में एक भवन था जिसमें गर्म जल की व्यवस्था थी।

(6) स्वच्छता—इन नगरों में स्वच्छता की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। मल-मूत्र के लिये शोषक कूपों की व्यवस्था की गई थी। इस विषय में श्री ए० एल० बाशम ने लिखा है कि यह प्रबन्ध सामान्यत: नगरपालिका जैसी संस्था द्वारा किया जाता होगा। उन्होंने इस सम्बन्ध में लिखा है—"सिन्ध के लोगों का पानी के बहाव का ढंग बहुत से स्वायत्त शासनों ने ग्रहण किया। रोमन लोगों को छोड़कर अन्य किसी सभ्यता के पोषकों का इतना सुन्दर ढंग नहीं था।"

"The unique severage system of the Indus people must have been maintained by some municipal organisation, and is one of their most impressive achievements.. No other ancient civilization until that of the Romans had so efficient a system of drains."

—A. L. Basham.

सामाजिक दशा

(1) समाज का सङ्गठन—ध्वंसावशेषों से यह पता चलता है कि समाज को उस समय चार भागों में विभक्त किया गया था—विद्वान, योद्धा, व्यवसायी तथा श्रमजीवी। विद्वानों के अन्तर्गत पुजारी, वैद्य तथा ज्योतिषी आते थे। जनता की रक्षा का पूरा भार योद्धा वर्ग के ऊपर होता था। तीसरे वर्ग में व्यापारी तथा अन्य उद्योग-धन्धों के व्यक्ति आते थे। चौथे वर्ग में साधारण नौकर तथा श्रमजीवी आते थे। इसी वर्ग में किसान, मछुये, टोकरी बनाने वाले तथा चमड़े का कार्य करने वाले आते थे।

(2) **भोजन**—यह लोग अधिकतर गेहूँ तथा जौ खाते थे, क्योंकि जौ तथा गेहूँ—दोनों ही वस्तुयें उत्खनन में प्राप्त हुई हैं। ये लोग चावल का प्रयोग भी करते थे। कुछ खजूर के बीज भी प्राप्त हुये हैं। कुछ अधजली अस्थियाँ तथा छिलके मिले हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि यह लोग मछली, मांस आदि भी खाते थे। फल, अण्डे तथा दूध का प्रयोग भी यह लोग करते थे। इन लोगों का भोजन स्वच्छ तथा स्वास्थ्य-वर्द्धक होता था।

(3) **वस्त्र**—सिन्धु घाटी के निवासी सूती तथा ऊनी दोनों प्रकार के वस्त्रों का प्रयोग करते थे। वस्त्रों का स्वरूप किस प्रकार का था इस सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद हैं। सम्भवतः इनके वस्त्र साधारण ही होते थे। अन्वेषकों को एक पुरुष की मूर्ति प्राप्त हुई है जिसमें वह शाल ओढ़े हुये है। उस मूर्ति को देखने से यह पता चलता है कि शाल बायें कन्धे के ऊपर से और दाहिनी काँख के नीचे से बाँधा जाता था। धोती की तरह का एक वस्त्र शरीर के निम्न भाग पर पहना जाता था। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि शरीर को ढकने के लिये दो प्रकार के वस्त्रों का प्रयोग किया जाता था—एक निम्न भाग को ढकने के लिये और दूसरा ऊपरी हिस्से को ढकने के लिये। खुदाई में जो मूर्तियाँ तथा मिट्टी के खिलौने मिले हैं उनसे यह अनुमान लगाया गया कि स्त्रियाँ कमर से ऊपर के हिस्से में कमीज जैसा वस्त्र पहनती थीं और कमर से नीचे जाँघ तक एक लुंगी। स्त्रियों के लिये एक विशेष प्रकार का वस्त्र होता था। यह सिर के पीछे की ओर पंखे की तरह उठा रहता है।

(4) **शृङ्गार**—स्त्री व पुरुष दोनों ही शृंगार करते थे। पुरुष दाढ़ी तथा मूँछें रखते थे। परन्तु कुछ लोग मूँछ मुड़वाये भी रहते थे। पुरुष छोटे व बड़े दोनों ही प्रकार के बाल रखते थे। बालों को पीछे करके कंघी भी करते थे। जिन लोगों के बड़े बाल होते थे वे चोटी भी बाँधे रहते थे। स्त्रियाँ सिर पर वस्त्र बाँधे रहती थीं अतः उनके बालों के विषय में कुछ विशेष जानकारी नहीं है।

(5) **गहने**—सिन्धु घाटी के स्त्री व पुरुष दोनों को ही गहनों से प्रेम था। हार, भुजबन्द, कंगन तथा अँगूठी आदि गहने अधिक प्रचलित थे। स्त्रियाँ कुछ विशेष गहनों से अपने शरीर को सजाये रहती थीं। उनमें से मुख्य हैं—करधनी, नयना, बाला, पायजेब आदि। सभी गहने विभिन्न धातुओं के और जवाहिरातों के बनते थे। धनवानों के गहने चाँदी, हाथी दाँत, मोगमेदक रत्न और अन्य कीमती पत्थरों के होते थे। खुदाई में पीतल के दर्पण व हाथी दाँत की कङ्घियों के भी कुछ अवशेष मिले हैं। शृंगार की अन्य वस्तुयें भी प्राप्त होती हैं।

(6) **मनोरंजन के साधन**—पुरुषों के मनोरंजन का मुख्य साधन शिकार था। ऐसे अनेक चित्र मिले हैं जिनमें पुरुषों को शिकार करते हुये दिखाया गया है। एक

चित्र में एक पुरुष बारहसिंहे का शिकार करता हुआ दिखाया गया है। शेरों से लड़ते हुये भी एक पुरुष का चित्र प्राप्त हुआ है। इसी प्रकार चीते, गैंडे और जंगली सुअरों के चित्र भी मिले हैं। इन समस्त चित्रों से यह स्पष्ट होता है कि शिकार ही इनके आमोद-प्रमोद का मुख्य साधन था। इन लोगों को चिड़िया उड़ाने का भी शौक था। मछली पकड़ना तो इनका नित्य का धन्धा था। बच्चे मिट्टी के खिलौने बनाकर उनसे खेलते थे। पुरुषों को शतरंज व जुये से भी प्रेम था। वे संगीत भी पसन्द करते थे। वे नृत्य तथा गान को बड़ा महत्व देते थे तथा विभिन्न प्रकार के वाद्य-यन्त्रों का प्रयोग करते थे। कुछ ऐसे चित्र भी प्राप्त हुये हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि मुर्गों, बैलों तथा कबूतरों को लड़ाकर वे अपना मनोरंजन करते थे। बच्चों के लिये मिट्टी की गाड़ियाँ तथा अन्य खिलौने बनाये जाते थे। कुछ भोपुओं और चिड़ियों के चित्र भी प्राप्त हुये हैं। श्री पद्मिनी सेन गुप्ता के शब्दों में—

"Gambling was obviously a favourite amusement and various kinds of dice have been found as well as counters."

(7) **स्त्रियों की दशा**—सिन्धु घाटी की स्त्रियों की दशा अच्छी थी। पर्दे की प्रथा न थी। समाज में स्त्रियों का सम्मान होता था। स्त्री का मुख्य कार्य शिशु-पालन ही था। धार्मिक अनुष्ठानों में स्त्रियों का महत्वपूर्ण योगदान होता था। मातृदेवी की लोग पूजा करते थे जिससे यह अनुमान लगाया जाता है कि स्त्री को माता के रूप में मानकर उसका सम्मान होता था।

(8) **आने-जाने के साधन**—सिन्धु-सभ्यता के युग में बैलगाड़ी ही मुख्य सवारी थी। हड़प्पा की खुदाई में एक ताँबे का वाहन भी प्राप्त हुआ है जो देखने में आजकल के इक्के के समान है।

(9) **मृतक व्यवस्था**—सिन्धु घाटी के लोग मृतक संस्कार भी करते थे। मोहनजोदड़ो की खुदाई में कहीं पर भी किसी कब्रिस्तान का कोई चिह्न नहीं प्राप्त हुआ है जिससे यह स्पष्ट होता है कि यहाँ के लोग शव को जलाते थे। हड़प्पा में अवश्य ही एक कब्रिस्तान मिला है जिससे अनुमान लगाया जाता है कि ये लोग मृतक को जलाकर उसकी अस्थियों को एक कलश में बन्द करके दफना देते थे। सर जान मार्शल के अनुसार मृतक संस्कार के लिये तीन तरीके प्रयोग में लाये जाते थे—

(1) सारे शरीर को पृथ्वी में गाड़ दिया जाता था।

(2) दाह कर्म करके राख के अवशेषों को पृथ्वी में गाड़ दिया जाता था।

(3) शव को जानवरों को खाने के लिये डाल दिया जाता था और बाद में बची हुई हड्डियों को गाड़ दिया जाता था।

मार्शल का यह भी मत है कि अधिकतर दूसरी विधि ही काम में लाई जाती थी।

(10) दवाइयाँ—इस युग में दवाइयों का प्रयोग किस रूप में होता था इस विषय में अधिक जानकारी नहीं है। मछली की हड्डी और हिरन का सींग दवाई के रूप में प्रयुक्त होता था। मूँगा, नीम की पत्ती और शिलाजीत जैसी कोई चीज दवा के काम आती थी, ऐसा अनुमान किया जाता है।

आर्थिक जीवन

सिन्धु घाटी के लोगों के सामाजिक जीवन के अध्ययन से ही यह ज्ञात हो जाता है कि वहाँ के निवासियों की आर्थिक दशा कितनी अच्छी थी। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा जैसे विशाल नगर वहाँ के निवासियों की आर्थिक दशा के परिचायक हैं। निम्नलिखित व्यवसायों एवं पेशों से उनके आर्थिक जीवन का और भी अधिक ज्ञान प्राप्त होता है—

(1) कृषि—ये लोग खेती करते थे। खेती इनका मुख्य घन्धा था। गेहूँ, जौ, खजूर आदि वस्तुयें ये लोग उत्पन्न करते थे। कपास की खेती भी होती थी। अन्न को इकट्ठा करने के लिये बड़े अन्नागार होते थे जिसके पास में ही अन्न को पीसने की भी व्यवस्था रहती थी।

(2) पशु-पालन—ये लोग अपने जीविकोपार्जन के लिये पशु भी पालते थे। मुहरों पर जो चित्र मिलते हैं उनसे यह प्रतीत होता है कि गाय, बैल, भैंस आदि इस काल के मुख्य पशु रहे होंगे। इसके अतिरिक्त बकरी, सुअर, कुत्ते, हाथी आदि पशु भी यह लोग पालते थे। इन पालतू पशुओं के अतिरिक्त भालू, चीता, गैंडा, बन्दर, खरगोश आदि पशुओं से भी यह लोग परिचित थे। ऊँट और घोड़े का कोई भी चिह्न नहीं मिलता।

(3) आखेट—यहाँ के लोग आखेट-प्रेमी थे। इसके अतिरिक्त वे लोग मांसाहारी भी थे, अतः पशुओं का शिकार व्यापक रूप से करते थे। वे मांस, मछली, अण्डे आदि का सेवन भी करते थे। अतः उनका व्यवसाय मछली पकड़ना भी था। पशुओं के शिकार से वे अर्थोपार्जन भी करते थे। पशुओं के बाल, खाल तथा अस्थियों से विभिन्न प्रकार की वस्तुयें बनाई जाती थीं तथा उनका व्यापार होता था।

(4) कातना-बुनना—इस युग में कताई-बुनाई भी होती थी। खुदाई में बहुत से तकुये और सूत की नलियाँ प्राप्त हुई हैं जो इस बात की परिचायक हैं कि कताई साधारण जनता में प्रचलित थी। धनी लोगों की नलियाँ कीमती चमकीली मिट्टी की बनी हुई होती थीं तथा साधारण जनता की सादी मिट्टी व सीपी की। कुछ ऐसे वस्त्रों का भी आभास हुआ है कि जिनसे विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि इन वस्त्रों की रुई मोटे तार वाली आधुनिक भारतीय रुई से मिलती हुई होगी। इसकी भीतरी रचना मरोड़दार होती थी। ऊन का प्रयोग ये लोग गरम कपड़े बनाने के लिये करते थे तथा अन्य वस्त्र रुई के बनाये जाते थे।

(5) मिट्टी के बर्तन आदि बनाना—सिन्धु घाटी के लोग शिल्प-कला में बड़े पटु थे। खुदाई में मिट्टी के बर्तन प्राप्त हुये हैं। ये बर्तन कुम्हार के चाक द्वारा बनाते थे और फिर उन पर चित्रकारी करते थे। अनेक आकृतियाँ इन बर्तनों पर मिलती हैं। पहले चाक पर बर्तन बनाया जाता था फिर उस पर एक प्रकार का लेप किया जाता था जिससे उस पर चमक आ जाती थी। तत्पश्चात् उस पर चित्रकारी करके भट्ठी में पका लिया जाता था। ये बर्तन बड़े ही चमकीले व सुन्दर होते थे।

मिट्टी के अतिरिक्त पाषाण व अन्य धातुओं के भी बर्तन बनाये जाते थे।

(6) धातु का प्रयोग—उस समय जिन धातुओं का प्रयोग किया जाता था उन्हें देखकर उस समय की आर्थिक दशा का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। इस समय सोना, चाँदी, काँसे तथा शीशे का प्रयोग किया जाता था। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा से प्राप्त हुये बर्तन इस काल के धन-धान्य पूर्ण होने के परिचायक हैं। ताम्र और काँस्य के अधिक बर्तन उपलब्ध हुये हैं। उनके आकार और सुन्दरता को देखकर आश्चर्यचकित होना पड़ता है। इससे यह स्पष्ट है कि यह सभ्यता पाषाण-काल के बाद की है। साधारणतः जनता अधिकतर ताम्र और काँस्य का प्रयोग ही करती थी। कुछ कुल्हाड़ियाँ, ताँबे के बने हुये औजार और आरी मिली हैं। कुछ पत्थर काटने की छेनियाँ भी मिली हैं। इस प्रकार धातुओं की वस्तुयें बनाकर लोग जीविकोपार्जन करते थे।

(7) घरेलू वस्तुएँ—वे लोग अन्य घरेलू वस्तुयें बनाकर उनका व्यवसाय करते थे। कुर्सियाँ, तिपाइयाँ और चौकियाँ भी मिली हैं। कुछ मिट्टी के बने हुये दीपक प्राप्त हुये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे लोग मोमबत्ती या अन्य किसी ऐसी ही वस्तु का प्रयोग करते थे।

(8) व्यापार—उस समय सिन्धु प्रदेश का विदेशों से व्यापारिक सम्बन्ध था। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में बहुत-सी ऐसी वस्तुयें भी मिली हैं जो वहाँ नहीं पैदा होती थीं। अतः वे विदेशों से आई होंगी। सोना, चाँदी, ताँबा आदि यहाँ नहीं होता था; वरन् विदेशों से ही आता था। विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि ये वस्तुयें ईरान व अफगानिस्तान से आती थीं। मूँगा, मोती, लकड़ी, कीमती पत्थर आदि भी विदेशों से आते थे। आने-जाने के लिये स्थल और जल दोनों ही मार्गों का प्रयोग होता था। स्थल मार्ग के लिये बैलगाड़ी व इक्के आदि थे। कुछ जहाजों व नावों के चित्र प्राप्त हुये हैं जिनसे अनुमान लगाया जाता है कि जलमार्गों के लिये जहाजों व नावों का प्रयोग किया जाता था।

सिन्धु घाटी की सभ्यता की बहुत-सी वस्तुयें विदेशों में भी पाई गई हैं। सुमेरिया में कुछ मुद्रायें मिली हैं जो यह प्रकट करती हैं कि सुमेरिया से भी सिन्ध का

व्यापारिक सबन्ध था। पश्चिम एशिया के देशों से भी यहाँ के निवासियों के व्यापारिक सम्बन्ध थे। इस प्रकार यहाँ का व्यापार अत्यन्त उन्नत दशा में था।

इस युग के नाप-तौल के पैमाने भी विद्वानों ने खोज निकाले हैं। खुदाई में तराजू भी मिली है जिससे स्पष्ट है कि तौलने के लिये तराजू को प्रयोग किया जाता था। इसके साथ बाँटों का इस्तेमाल होता था। हड़प्पा व मोहनजोदड़ो में बहुत से बांट मिले हैं। कुछ बाँट तो इतने बड़े थे कि रस्सी में बाँधकर उठाये जाते थे। छोटे बांट भी मिले हैं जिनसे अनुमान लगाया गया है कि इन छोटे बाँटों का प्रयोग जौहरी करते थे। सीपी का बना हुआ फुट का एक खण्ड प्राप्त हुआ है जो शायद लम्बाई नापने के लिये प्रयोग में लाया जाता था। इस प्रकार नाप-तौल के सभी साधनों को देखते हुये हम कह सकते हैं कि इनकी आर्थिक दशा बहुत अच्छी थी।

धर्म

मोहनजोदड़ो और हड़प्पा से प्राप्त होने वाली मुहरें तथा अन्य चित्र यहाँ के लोगों के धार्मिक विश्वासों का भी परिचय देते हैं। खुदाई में अनेक ऐसी मूर्तियाँ मिली हैं जिनसे इनके धार्मिक जीवन का भली भाँति पता चलता है। इनके धर्म और धार्मिक विश्वासों के विषय में निम्नलिखित बातें उल्लेखनोय हैं—

(1) बहुदेववाद—यहाँ के लोग अनेक देवी, देवताओं की आराधना करते थे। विद्वानों के अनुसार दो मुख्य शक्तियों की पूजा की जाती थी। परम पुरुष और परम नारी।

(2) मातृ पूजा—सिन्धु सभ्यता के लोग मातृ देवी की भी पूजा करते थे। कुछ ऐसी मूर्तियाँ मिली हैं जिनमें एक ऐसी नारी का चित्र है जो अर्द्ध-नग्न है। उसकी कमर के चारों ओर एक मेखला है और सिर पर एक विशेष वस्त्र है जिसे देखकर यह आभास होता है कि इसी को परम नारी के रूप में मानकर पूजा की जाती थी। मार्शल ने इसे महादेवी के रूप में माना है। यह सत्य भी है क्योंकि माता की आराधना बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। हड़प्पा में एक लम्बी मोहर प्राप्त हुई जिसमें पृथ्वी या मातृदेवी का चित्र है, जिसकी योनि से एक अंकुर निकल रहा है और पास में छुरी लिये हुये एक पुरुष और हाथ ऊपर उठाये हुये एक स्त्री खड़ी है जो सम्भवतः देवी को बलि चढ़ाने के लिये लाई गई थी। उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि यहाँ के लोग सृष्टि का आरम्भ नारी शक्ति द्वारा मानते थे।

(3) मूर्ति पूजा—यद्यपि मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई में किसी भी मन्दिर का भग्नावशेष नहीं मिला है परन्तु यह अनुमान लगाया जाता है कि सिन्धु सभ्यता के लोग मूर्तिपूजक थे। उत्खनन में अनेक लिंग मूर्तियाँ और योनि मूर्तियाँ प्राप्त

हुई हैं। विद्वानों के मतानुसार सिन्धु घाटी के लोग सृष्टिकारिणी शक्ति के रूप में इनकी पूजा करते थे।

देवी, देवताओं का मानवीकरण--विश्व की अन्य जातियों की भाँति इन लोगों ने भी अपने देवी, देवताओं को मनुष्य के रूप में देखा। मुहरों और मूर्तियों में मनुष्य की आकृति चित्रित है। यह इस बात का प्रमाण है कि ये लोग मनुष्य के गुणों को देवी, देवताओं पर आरोपित कर उनकी पूजा करते थे। इस प्रकार इन लोगों ने देवताओं और मनुष्यों में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया था।

(4) शिवोपासना—हड़प्पा की खुदाई में एक ऐसी मुहर प्राप्त हुई है जिस पर बने हुये चित्र में शिव की मूर्ति का आभास होता है। यह मूर्ति सिंहासन पर विराजमान है और योग-मुद्रा में दिखाई गई है। इसके दायें एक हाथी और व्याघ्र, तथा बाईं ओर एक बारहसिंहा और भैंस है। सिंहासन के नीचे सींग वाले दो हरिण हैं। इस मूर्ति के सिर पर भी दो सींग प्रदर्शित किये गये हैं। सर जान मार्शल ने कुछ ऐसे तथ्य प्रस्तुत किये हैं जिनसे यह पता चलता है कि यह मूर्ति शिव जी की है। वे तथ्य निम्न-लिखित हैं—

(1) शिव अन्तर्यामी एवं त्रिकालदर्शी हैं। संसार की कोई भी वस्तु उनसे छिपी हुई नहीं है। शिव की इसी शक्ति को प्रदर्शित करने के लिये सिन्धु घाटी के लोगों ने उनके त्रिमुखी होने की कल्पना की है।

(2) हड़प्पा से प्राप्त मुहर में देवता की मूर्ति के साथ पशुओं के चित्र भी अंकित हैं और शिव जी भी पशुपति हैं।

(3) शिव जी जिस त्रिशूल को धारण किये हैं उसी त्रिशूल के समान अंग, मुहर में देवता के शीश पर दिखाया गया है। अतः यह अनुमान लगाया गया है कि शायद इसी से त्रिशूल की परम्परा का उदय हुआ है।

(4) मूर्ति में देवता-योग-मुद्रा में चित्रित किये गये हैं और शिव जी की योग-साधना को हिन्दू धर्म ने विशेष महत्व दिया है।

इसके अतिरिक्त कुछ विद्वान इसे चतुर्भुजी देवता का प्रतिरूप मानते हैं। श्री रमाप्रसाद चन्दा के विचार में यह ब्रह्मा, विष्णु और शिव की चतुर्भुजी प्रतिमाओं का पूर्व रूप है।

(5) पशु पूजा—मुहरों पर पशुओं के चित्र मिले हैं। पत्थर और मिट्टी की मूर्तियों से यह कल्पना की गई है कि ये लोग पशुओं की भी पूजा करते थे। पूजित पशुओं को विद्वानों ने तीन भागों में बाँटा है—

(1) पौराणिक पशु जिनमें मानवीय और पाशविक दोनों ही रूप दिखाई देते हैं।

(2) विलक्षण पशु, जो यद्यपि पौराणिक नहीं हैं परन्तु फिर भी असाधारण हैं जैसे एक श्रृंगी पशु।

(3) साधारण पशु जैसे हाथी, बारहसिंहा, व्याघ्र, हरिण, भैंस आदि। इस प्रकार इस काल में पशुओं की पूजा भी की जाती थी तथा लोग इन पशुओं को पवित्र मानते थे।

(6) **जल पूजा**—नदियों को अति प्राचीनकाल से पवित्र माना गया है। सिन्धु प्रदेश के उत्खनन में जो जलकुण्ड मिला उसी से यह अनुमान लगाया गया है कि सिन्धु प्रदेश के लोग जल पूजा भी करते होंगे।

(7) **पादप पूजा**—वृक्षों के चित्रों से यह पता चलता है कि ये लोग वृक्षों की भी पूजा करते थे। पीपल, नीम आदि वृक्षों को बहुत पवित्र माना जाता था। एक चित्र में एक देवता वृक्षों के मध्य में खड़े हैं और उनके सन्निकट ही एक उपासक विनीत भाव से खड़ा है। शायद वह पीपल का ही वृक्ष है। पीपल के वृक्ष की पूजा अब भी हिन्दुओं में होती है।

(8) **सूर्य व अग्नि की पूजा**—सिन्धु प्रदेश के लोग अग्नि की भी पूजा करते थे क्योंकि कुछ ऐसी वस्तुयें मिली हैं जिनसे यह पता चलता है कि इस युग में अग्नि शालायें भी थीं। वहाँ अग्नि देवता को बलि भी दी जाती थी। कुछ मुहरों पर स्वस्तिका तथा चक्र बना हुआ है जिससे यह अनुमान लगाया गया है कि यह लोग सूर्य के उपासक थे।

(9) **प्रजनन शक्ति की आराधना**—शिव की उपासना में योनि तथा लिंग पूजा का विशेष महत्व माना गया है जिससे यह अनुमान लगाया गया है कि यहाँ के लोग योनि तथा लिंग की प्रतियाँ बनाकर प्रकृति की प्रजनन शक्ति की भी पूजा करते थे। कुछ ऐसे पत्थर प्राप्त हुये हैं जो योनि तथा शिव लिंग के प्रतीक हैं। इस प्रकार ये लोग प्रजनन शक्ति के भी उपासक थे। यह बात भी हिन्दू धर्म से काफी मिलती है।

(10) **अनुष्ठान**—हिन्दू धर्म की तरह कुछ विद्वानों ने सिन्धु घाटी के लोगों के धर्म को अनुष्ठानमूलक भी बताया है। उनका कथन है कि विशाल स्नानागार और उसके समीप के अन्य स्नानागारों से यह प्रकट होता है कि सिन्धु प्रदेश में समय-समय पर धार्मिक समारोह व विशाल पर्व आदि होते होंगे और लोग इन बड़े पर्वों पर स्नान करने के लिये यहाँ आते होंगे। कुछ विद्वानों ने वृत्ताकार पाषाण-खण्ड से इस बात का अनुमान लगाया है कि ये पाषाण-खण्ड शायद वेदी स्तम्भ या यज्ञ स्तम्भ थे जिनके समीप सिन्धु के निवासी किसी प्रकार की धार्मिक क्रियायें सम्पन्न करते थे। इस प्रकार

धार्मिक रूढ़ियों और अनुष्ठानों का पर्याप्त विकास इस काल में था। डा० रमेशचन्द्र मजूमदार के अनुसार सिन्ध निवासियों के धर्म एवं आर्यों के बाद के हिन्दू धर्म में परस्पर घनिष्ठ सबन्ध था। उन्होंने लिखा है—"अतः हमें स्वीकार करना पड़ता है कि हिन्दू सभ्यता और सिन्ध की सभ्यता में सावयव सम्बन्ध था।"

"We must therefore hold that there is an organic relationship between that ancient culture of Indus Valley and in Hinduism of to-day."

—Dr. R. C. Majumdar.

(11) अन्ध-विश्वास—सिन्धु प्रदेश में कुछ मोहरें तथा तावीज भी मिले हैं जिनसे यह अनुमान लगाया गया है कि इनमें धर्म में अन्ध-विश्वास भी था। ये तावीज आदि अनिष्ट निवारण व कल्याण लाभ के लिये प्रयोग में लाते थे।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दू धर्म की अनेक विशेषतायें सिन्धु घाटी के लोगों में पाई जाती थीं। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि सिन्धु निवासियों का धर्म हिन्दू धर्म का पूर्व रूप था। हिन्दू धर्म पर इसके धर्म की गहरी छाप है। हिन्दू धर्म के पुनर्जन्म के सिद्धान्त के चिह्न भी प्राप्त हुये हैं। सिन्धु निवासियों का धर्म और आर्यों के बाद के हिन्दू धर्म में गहरा सम्बन्ध दिखलाई पड़ता है। ए० एल० बाशम के शब्दों में—"हड़प्पा और बाद को हिन्दू सभ्यता में कुछ तत्व ऐसे हैं जो हिन्दू धर्म के आरम्भिक साहित्य में नहीं मिलते।"

"The religion of the Harappa people and some features suggesting those characteristics of later Hinduism which are not to be found in the earliest stratum of Indian religious literature.',

—A. L. Basham.

कला

सिन्धु घाटी के निवासी विभिन्न कलाओं के ज्ञाता थे। जो सामग्री प्राप्त हुई है वह वहाँ के लोगों के कला-प्रेम की स्पष्ट परिचायक है। उत्खनन में जो मूर्तियाँ मिली हैं उनको Sir John Marshal को बड़ा ही आश्चर्य हुआ और उन्होंने लिखा है—

"When I first saw them, I found it difficult to edieve that they were Pre-Historic they seemed so completely to upset all established idea about early art. Modelling such as this was unprove in the ancient world, upto the dellenistic age of Greece."

यहाँ के निवासियों को निम्नलिखित कलाओं का विशेष ज्ञान था—

(1) **मूर्ति निर्माण कला**—इस काल में मूर्तियाँ पत्थरों, भूरी तथा पीली चट्टानों और सेलखड़ी से काटकर बनाई जाती थीं। पत्थर और काँसे की समूची और कोरी मूर्तियों से कला की सजीवता प्रकट होती है। दाहिने पाँव पर खड़ी हुई एक नर्तकी की मूर्ति बड़ी सजीव और सुन्दर है। इन मूर्तियों की प्रमुख विशेषतायें यह थीं कि इनमें गाल हड्डियां स्पष्ट रहती थीं, गर्दन छोटी, मोटी तथा मजबूत होती थी और आँखें पतली तथा तिरछी होती थीं। हड़प्पा से प्राप्त होने वाली लाल पत्थर की मूर्ति में मांसपेशियों का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया गया है। इस प्रकार की कला यूनानी कला से उत्कृष्ट कला कही जा सकती है। यूनानी कला में साज-सज्जा तो बहुत है परन्तु वह सूक्ष्मता नहीं जो इस कला में पाई जाती है। यूनानी कलाकार स्थूलता की ओर अधिक ध्यान देते थे और सिन्धु घाटी के कलाकार सूक्ष्मता की ओर। हृदयगत भावों को चित्रित करने में सिन्धु घाटी के कलाकार बहुत पटु थे।

एक नारी की नृत्य करती मूर्ति में गति और भाव दोनों ही प्रकट हो रहे हैं। इसकी नृत्य मुद्रा त्रिभंगी है।

(2) **चित्र कला**—चित्र कला इस काल में उन्नति के शिखर पर थी। मुहरों की चित्रकारी अत्यन्त सजीव है। मुहरों पर साड़ों और भैंसों की चित्रकारी उनकी इस कला का सजीव रूप हमारे सम्मुख रखती है। यह सुन्दर चित्रकारी उनकी चित्रकला की श्रेष्ठता का परिचय देती है।

(3) **मृण्भाण्ड कला**—उत्खनन में मृण्भाण्ड कला के भी बहुत सुन्दर नमूने मिले हैं। मृण्भाण्ड चाक की सहायता से बनते थे। इनमें से कुछ तो साधारण हैं परन्तु अनेक प्रकार के चित्रों से अलंकृत हैं। इनमें से अधिकांश चित्र पशुओं के हैं। पात्रों को अलंकृत करने का उतना प्रयास नहीं किया जाता था जितना उन्हें उपयोगी बनाने का। मिट्टी के सुन्दर खिलौने एवं गाड़ियाँ आदि बनाई जाती थीं।

(4) **मुद्रा निर्माण कला**—सिन्धु घाटी की खुदाई में बहुत-सी मुद्रायें मिली हैं जो हमें यह बताती हैं वहाँ की मुद्रा-निर्माण कला कितनी उच्चकोटि की थी। मुहरें भिन्न-भिन्न प्रकार के पत्थरों, धातुओं, हाथी दाँत व मिट्टी की बनी होती थीं। इनके भिन्न-भिन्न आकार होते थे। इनमें से कुछ वर्गाकार भी हैं। अधिकांश मुहरों पर पशुओं के चित्र बने हैं और लेख लिखे हैं। कुछ विशेष प्रकार की मुहरों पर स्वस्तिक भी बना है जिसका अपना धार्मिक महत्व है। सूर्य पूजा का संकेत हमें यहीं से मिलता है।

(5) **कताई व रंगाई की कला**—टेकुये तथा टेकुओं की मेखलाओं से यह

सिद्ध होता है कि सिन्धु के निवासी सूत तथा ऊन बनाने में बड़े चतुर थे। रँगाई की कला में भी वे बड़े पटु थे।

(6) **धातु कला**—ये लोग काँसा, चांदी और तांबा आदि विभिन्न धातुओं की चीजें बनाते थे। मूल्यवान रत्नों को काटकर यह लोग आभूषण बनाते थे। सोने के आभूषण भी बनाये जाते थे। शंख का प्रयोग अधिक मात्रा में किया जाता था तथा कलाकार इससे विभिन्न प्रकार की वस्तुयें बनाते थे।

(7) **ताम्र-पत्र निर्माण कला**—बहुत से ताम्र-पत्र भी प्राप्त हुये जो आकार में वर्गाकार तथा आयताकार हैं। इन ताम्र-पत्रों के एक ओर मनुष्य तथा पशु की आकृति बनी हुई है और दूसरी ओर लेख है। यह ताम्र-पत्र ताबीज के समान प्रतीत होते हैं। इन पर लिखे हुये लेख नक्काशी से युक्त हैं।

(8) **लेखन कला**—सिन्धु सभ्यता की खुदाई से प्राप्त वस्तुओं से सिद्ध होता है कि यहाँ के लोग लिखना अवश्य जानते थे। यद्यपि इस काल का कोई भी लेख, पत्थर या मिट्टी के पात्र पर नहीं प्राप्त हुआ है परन्तु लगभग 550 मुहरें अवश्य प्राप्त हुई हैं जिन पर कुछ लिखा हुआ है। यद्यपि इस लिपि के बारे में कुछ निश्चय नहीं किया जा सका है पर कुछ विद्वानों का मत है कि यह वही लिपि है जिसका प्रयोग एलम, मिस्र, सुमेर आदि पश्चिम एशिया के देशों में हुआ करता था। ऐसा आभास होता है कि मुख्यतः यह लिपि दाहिनी ओर से बाईं ओर लिखी जाती थी। परन्तु कहीं-कहीं पर यह लिपि बायें से दायें भी देखने को मिलती है। स्मिथ एवं गैड जैसे विद्वानों का मत है कि यह लेखन-शैली चित्र-प्रणाली की है।

(9) **सङ्गीत तथा नृत्य कला**—सिन्धु निवासी संगीत कला व नृत्य कला के भी प्रेमी थे। धातु की बनी हुई नृत्य करती हुई एक स्त्री की मूर्ति इस बात की परिचायक है कि नृत्य कला की इस काल में विशेष उन्नति हुई थी। नर्तकी का शरीर नग्न है परन्तु वह आभूषणों से सुसज्जित है। इसके केश बड़े ही सुन्दर बनाये गये हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि ये लोग नृत्य-कला के बड़े शौकीन थे।

कुछ ऐसे अवशेष भी मिले हैं जिनसे इनके वाद्य-प्रेम का परिचय भी प्राप्त होता है। पक्षियों की कुछ ऐसी मूर्तियाँ मिली हैं जिनकी पूछ से सीटी या बाँसुरी बजाई जा सकती है। तबले और ढोल के भी कुछ चित्र प्राप्त हुये हैं। इस प्रकार यह प्रमाणित है कि ये लोग संगीत-प्रेमी भी थे।

राजनीतिक दशा

सिन्ध निवासियों की राजनीतिक दशा के बारे में कोई विशेष जानकारी नहीं हुई है। परन्तु यह तो स्पष्ट है कि सिन्ध, पंजाब, पूर्वी बिलोचिस्तान तथा काठियावाड़

सभ्यता के क्षेत्र में एक संगठन, एक व्यवस्था, एक शासन सत्ता के सूत्र में बँधे थे। इस बात का स्पष्ट प्रमाण हमें इस बात से मिलता है कि सम्पूर्ण क्षेत्र में एक ही प्रकार की मूर्तियाँ बनाई जाती थीं, एक ही प्रकार की लिपि प्रचलित थी, एक ही प्रकार के भवनों का निर्माण होता था तथा नाप-तौल की प्रणाली भी एक ही प्रकार की थी। अतः विद्वानों का मत है कि सिन्धु सभ्यता का क्षेत्र एक विशाल साम्राज्य था। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा जैसे विशाल साम्राज्य की दो राजधानियाँ रही होंगी और इन लोगों ने शासन के लिये दो केन्द्र बना लिये होंगे। उत्तर में हड़प्पा और दक्षिण में मोहनजोदड़ो। हड़प्पा उत्तरी साम्राज्य की राजधानी रही होगी और मोहनजोदड़ो दक्षिणी साम्राज्य की। इससे यह सिद्ध होता है कि सिन्धु साम्राज्य का शासन बड़ा ही व्यवस्थित व संगठित रहा होगा।

विदेशों से सम्बन्ध

सिन्धु घाटी की सभ्यता का अध्ययन करने से हमें यह प्रतीत होता है कि उसकी बहुत-सी बातें विश्व की दूसरी सभ्यताओं में मिलती हैं। सुमेर सभ्यता और सिन्धु सभ्यता में काफी समानता परिलक्षित होती है। यह समानता पारस्परिक सम्पर्क के कारण ही हो सकती है। उर, किश, अस्मर, तेप, गवरा और सूसा में कुछ मोहरें प्राप्त हुई हैं जो हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की मोहरों से मिलती-जुलती हैं। इन मोहरों के आकार, स्वरूप आदि भी बहुत मिलते-जुलते हैं। इसके अतिरिक्त तेप, अस्मर में हड़प्पा प्रणाली पर निर्मित मिट्टी और हड्डी की बनी हुई अन्य सामग्री भी प्राप्त हुई हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इस काल में सिन्धु और सुमेर में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था। परन्तु दोनों सभ्यताओं में किसने किसको प्रभावित किया इस विषय पर विद्वानों में मतभेद है। हाल महोदय का कथन है कि सभ्यता के क्षेत्र में सुमेर भारत का ऋणी है। इटली की खुदाई में अति प्राचीन और एक विशेष प्रकार की ताँबे की पिन प्राप्त हुई है जो आकार, प्रकार व स्वरूप में सिन्धु !प्रदेश की पिनों से मिलती है। इससे स्पष्ट होता है कि सिन्धु प्रदेश का इटली से भी सम्बन्ध रहा होगा। मिस्र और सिन्धु की बहुत-सी वस्तुओं में समानता दृष्टिगोचर होती है। मोहनजोदड़ो में एक ताँबे की कुल्हाड़ी मिली है जो पूर्व मिनोआकालीन क्रीट और ट्राय द्वितीय की कुल्हाड़ियों के समान है। इस आधार पर विद्वानों ने सिन्धु प्रदेश और इजियन प्रदेश में भी सम्बन्ध स्थापित किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि सिन्धु प्रदेश के व्यापारियों ने मेसोपोटामिया तथा मिस्र के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किये थे। व्यापार के साथ-साथ सांस्कृतिक प्रभाव भी अवश्य पड़ा होगा। कुछ विद्वानों ने उपर्युक्त विवरण के आधार पर सिन्धु सभ्यता का समय

2300 ई० पू० से 2000 ई० पू० के बीच का माना है। स्टुअर्ट पिगोट के शब्दों में—"हड़प्पा की सभ्यता की निश्चित तिथि अभी तक नहीं ज्ञात हो सकी है परन्तु यह सभ्यता 5000 वर्ष ईसा से पूर्व विकास की सीमा पर थी। जब पाश्चात्य और पूर्वी सभ्यताओं के संयोगिक गुणों का ज्ञान होगा तब यह स्पष्ट हो जायगा कि यह अवस्था 2300 और 2000 ई० पू० के अन्दर रही होगी।"

"While the antecedents of the Harappa Civilization still elude us, we can only say that in its mature form it is not likely to be earlier than about 2500 B. C. and that the only reasonable close point of contact with the West when written records, are available, is between the years 2300 and 2000 B. C."

— Stuart Piggot.

इसके अतिरिक्त यह तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वह सभ्यता उन सभ्यताओं की समकालीन है जो उस समय मिस्र, सीरिया और ईराक में थीं।

सिन्धु घाटी की सभ्यता और वैदिक सभ्यता की तुलना

विभिन्न इतिहासकारों ने अनुमान लगाया है कि सिन्धु घाटी की सभ्यता की समकालीन नील, दजला, फरात की घाटियों की सभ्यतायें हैं। परन्तु इस सम्बन्ध में कोई भी निश्चित मत नहीं है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सिन्धु सभ्यता वैदिक सभ्यता से सर्वथा भिन्न थी। सर जान मार्शल के अनुसार दोनों सभ्यताओं का अन्तर निम्न हैं—

(1) निवास सम्बंधी अन्तर—सिन्धु सभ्यता एक नागरिक तथा व्यापार प्रधान सभ्यता थी परन्तु वैदिक सभ्यता ग्रामीण तथा कृषि प्रधान थी। इस नगर प्रधान सभ्यता में बड़े-बड़े भवन थे जो पक्की ईंटों के बने हुये थे। विशाल, पक्के स्नानागार, कुएँ, नालियाँ आदि थीं परन्तु वैदिक सभ्यता के लोग नावों में रहते थे। वे बाँस और पत्तों की कुटिया बनाकर रहते थे।

(2) वर्ग सम्बंधी अन्तर—सिन्धु प्रदेश के निवासी मूर्ति पूजा में विश्वास करते थे। अतः उन्होंने मूर्तियों की प्रतिष्ठा की परन्तु वैदिक सभ्यता के लोग मूर्तिपूजक नहीं थे। इन लोगों ने सिन्धु निवासियों की भाँति देवता में मानवी गुणों का आरोपण किया है पर उनकी मूर्तियों के अवशेष नहीं मिलते। सिन्धु निवासी शिव तथा शक्ति की पूजा करते थे और देवी को देवता से अधिक स्थान देते थे। इसके विपरीत वैदिक काल

में शिव का कहीं भी स्थान नहीं था और देवी का स्थान देवता से निम्न था। वैदिक काल में अग्नि की पूजा की जाती थी। प्रत्येक आर्य के घर में अग्निकुण्ड का होना आवश्यक माना जाता था परन्तु सिन्धु घाटी के लोग अग्नि को विशेष महत्व नहीं देते थे। अतः धार्मिक विश्वासों व रीति-रिवाज सम्बन्धी काफी अन्तर परिलक्षित होता है।

(3) धातु प्रयोग में अन्तर—धातु प्रयोग में दोनों सभ्यताओं में महान अन्तर था। वैदिक सभ्यता के लोग आरम्भ में सोने तथा ताँबे का प्रयोग करते थे और बाद में वे चाँदी, लोहे तथा काँसे का प्रयोग करने लगे थे। इसके विपरीत सिन्धु सभ्यता के लोग मुख्यतः पाषाण का प्रयोग करते थे। धातुओं में सोने की अपेक्षा चांदी का प्रयोग अधिक करते थे। लोहे से वे बिल्कुल ही अनभिज्ञ थे।

(4) अश्व के प्रयोग में अन्तर—सिन्धु काल के निवासी अश्व के महत्व को नहीं जानते थे परन्तु वैदिक काल के निवासी घोड़े और गाय को विशेष महत्व देते थे। वैदिककालीन लोगों ने घोड़े की सहायता से अनेक जातियों पर विजय प्राप्त की। सिन्धु प्रदेश में एक-आध चिह्न जो अश्व के मिले हैं उनसे यही प्रकट होता है कि व्यापारियों के माध्यम से अश्व यहाँ यदा-कदा आया करते थे।

लेखन कला में अन्तर—सिन्धु घाटी के निवासी लिखने की कला से पूर्णरूप से परिचित थे। इसी कारण स्थापत्य और शिल्प-कला सिन्धु घाटी में अधिक विकसित हुई थी परन्तु इस क्षेत्र में आर्य लोग बहुत पीछे थे।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि इन दोनों सभ्यताओं में काफी अन्तर है। वैदिक काल के लोगों को लोहे की जानकारी हो चुकी थी परन्तु सिन्धु काल के लोगों को उसकी जानकारी नहीं थी। अतः सिन्धु सभ्यता वैदिक सभ्यता से पहले की प्रतीत होती है। प्रोफेसर लूनिया के शब्दों में—

"यह निर्विवाद स्पष्ट है कि यह सभ्यता आर्यों के साथ भारत में नहीं आई।"

"One thing is certain and can no longer be contested civilization did not come to India with the Aryans."

सिन्धु घाटी की सभ्यता का विनाश

सिंन्धु घाटी की सभ्यता का विनाश कब हुआ इस विषय में भी मतभेद है। कुछ विद्वानों का मत है कि इस सभ्यता का विनाश 1500 ई० पू० के लगभग हुआ। इस विनाश का क्या कारण था इस विषय में भी कोई लिखित प्रमाण या

ऐतिहासिक तथ्य प्राप्त नहीं होता है। परन्तु फिर भी अनुमान लगाने से निम्न कारण प्रतीत होते हैं :—

(1) **भूकम्प**—कुछ विद्वानों के अनुसार किसी विकराल भूकम्प ने या भीषण प्रलय ने ही इस सभ्यता का विनाश कर डाला होगा।

(2) **जल-प्लावन**—कुछ इतिहासकारों का मत है कि इस समय शायद सिन्धु के प्रवाह की दिशा में परिवर्तन हुआ होगा और उसमें अचानक ही जल बढ़ गया होगा जिससे पूरी सभ्यता जल समाधिस्थ हो गई होगी।

(3) **राजनीतिक एवं आर्थिक विघटन**—राजनीतिक एवं आर्थिक विघटन के फलस्वरूप भी सिन्धु सभ्यता का विनाश हुआ था, ऐसी भी विद्वानों की धारणा है।

(4) **बाह्य आक्रमण**—सिन्धु सभ्यता के विनाश का सबसे प्रबल कारण बाह्य आक्रमण माना जाता है क्योंकि उत्खनन में अस्थिपंजर बहुत अधिक मात्रा में मिले हैं। इन्हीं के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि शायद किसी बाह्य आक्रमण के फलस्वरूप ऐसा हुआ होगा।

जलवायु परिवर्तन एवं अनावृष्टि—कुछ विद्वानों की धारणा है कि जलवायु अनुकूल न होने के कारण यहाँ के निवासियों ने इस स्थान को त्याग दिया था। अन्य विद्वानों का मत है कि अनावृष्टि के फलस्वरूप वहाँ के निवासियों की सभ्यता नष्ट हो गई।

इस सभ्यता के नाश का चाहे जो भी कारण रहा हो परन्तु इसमें किंचित-मात्र भी सन्देह नहीं कि यह सभ्यता बड़ी उच्चकोटि की थी। अति प्राचीन काल में इतनी उन्नत सभ्यता का होना एक आश्चर्यजनक बात है।

सारांश

सिन्धु घाटी की सभ्यता भारत की प्राचीनतम सभ्यता है। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई में इस सभ्यता का पता चला था। यह एक नागरिक, समष्टिवादी, काँस्यकालीन, शान्ति प्रधान सभ्यता है।

सिन्धु घाटी के निवासी कौन थे, इस बारे में पर्याप्त मतभेद है। कुछ लोग उनको आर्य मानते हैं और कुछ द्रविड़। सत्य तो यह है कि यहाँ विभिन्न जातियों के लोग आकर बस गये थे। इस सभ्यता को लगभग 3200 ई० पू० का मानना उचित होगा।

सिन्धु घाटी के निवासियों की सामाजिक दशा बहुत अच्छी थी। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा दोनों ही विशाल नगर थे जिनमें चौड़ी-चौड़ी सड़कें थीं। कुछ

इमारतों के अवशेष भी मिले हैं। नालियाँ पक्की होती थीं। एक जलाशय भी खुदाई में मिला है जिसके पास ही एक कुआँ है। ये लोग स्वच्छता की ओर विशेष ध्यान देते थे। ये लोग अधिकतर गेहूँ खाते थे। समाज चार भागों में विभाजित था—विद्वान, योद्धा, व्यवसायी तथा श्रमजीवी। ये ऊनी तथा सूती दोनों ही प्रकार के वस्त्र पहनते थे। स्त्री व पुरुष दोनों ही शृंगार करते थे। विभिन्न प्रकार के गहने भी मिले हैं जिनमें हार, भुजबन्द, कंगन, अँगूठी आदि मुख्य हैं। इनके मनोरंजन का मुख्य साधन आखेट था। जंगली सुअरों के चित्र मिले हैं। वे शतरंज और संगीत के प्रेमी भी थे। बच्चों के लिये मिट्टी की गाड़ियाँ, भोपू आदि होते थे। स्त्रियों का समाज में बड़ा आदर था। माता को बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त था। ये लोग मातृदेवी की पूजा करते थे। बैलगाड़ी इनकी मुख्य सवारी थी। ये घोड़े का प्रयोग नहीं करते थे। मृतक को जलाने तथा गाड़ने दोनों ही प्रकार की प्रथाएँ प्रचलित थीं। मोहनजोदड़ो में एक कब्रिस्तान भी मिला है।

इनकी जीविका के मुख्य साधन कृषि, पशु-पालन, आखेट, कताई-बुनाई, मिट्टी के बर्तनों का निर्माण, धातु की वस्तुओं का निर्माण और व्यापार थे। भारत के उस काल में सुमेर से बड़े अच्छे व्यापारिक सम्बन्ध थे।

इनके धर्म की मुख्य बातें ये थीं—बहुदेववाद, मातृपूजा, मूर्तिपूजा, देवी, देवताओं का मानवीकरण, शिवोपासना, जल की पूजा, सूर्य व अग्नि की पूजा, प्रजनन शक्ति की आराधना, अनुष्ठान। ये लोग अन्ध-विश्वासी भी थे।

सिन्धु घाटी के निवासी विभिन्न कलाओं के ज्ञाता थे। एक नारी की नृत्य करती हुई मूर्ति इनकी कला की सजीवता का सुन्दर उदाहरण है। इनकी मोहरों पर साड़ों और भैंसों के चित्र मिलते हैं। बर्तन बनाने की कला भी काफी विकसित थी। कुछ बर्तनों के अवशेष भी मिले हैं। ये लोग मुद्रा निर्माण कला से भी परिचित थे। पत्थर, धातु और हाथी दांत की बनी हुई मोहरें मिली हैं। कुछ टेकुये भी मिले हैं जिससे प्रतीत होता है कि ये कताई-बुनाई के साथ ही रँगाई की कला से परिचित थे। कुछ ताम्र-पत्र प्राप्त हुये हैं जिन पर पशुओं की आकृति बनी हुई है। इनकी मोहरों पर लिखावट भी है जिससे प्रतीत होता है कि ये लेखन-कला से भी परिचित थे। संगीत और नृत्य का भी इन्हें शौक था।

इनकी राजनीतिक दशा के विषय में अधिक ज्ञात नहीं है। विद्वानों का यह मत अवश्य है कि इन लोगों की दो राजधानियाँ थीं—मोहनजोदड़ो और हड़प्पा। सुमेर और मिस्र से इनके अच्छे सम्बन्ध थे।

सिन्धु घाटी की सभ्यता वैदिक सभ्यता से भिन्न है। ये भिन्नता निवास-सम्बन्धी, धर्म-सम्बन्धी, धातु-प्रयोग सम्बन्धी, अश्व प्रयोग सम्बन्धी और लेखनकला-सम्बन्धी तथ्यों द्वारा स्थापित की गई हैं।

सिन्धु घाटी की सभ्यता का विनाश क्यों और कब हुआ इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। अनुमान द्वारा इसके विनाश के ये कारण प्रस्तुत किये जा सकते हैं—भूकम्प, जल-प्लावन, राजनीतिक एवं आर्थिक विघटन, बाह्य आक्रमण, जलवायु में परिवर्तन तथा अनावृष्टि।



चीन की सभ्यता और संस्कृति

(CHINESE CIVILIZATION AND CULTURE)

अध्याय | 10

साम्राज्य-विस्तार का युग

(AGE OF THE DEVELOPMENT OF THE EMPIRE)

प्रश्न 1—कन्फ्यूशियस के दार्शनिक विचारों के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं ?

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

What do you know about the philosophy of Confucius ?

(Allahabad University)

प्रश्न 2—ईसवी पूर्व छठीं और पाँचवीं शताब्दियों में चीन की दार्शनिक प्रणालियों पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये ।

(लखनऊ विश्वविद्यालय)

Write a short essay on the chief philosophical system of China in the sixth and fifth centuries B. C.

(Lucknow University)

प्रश्न 3—चाऊ वंश के समय में चीन की व्यवस्था का वर्णन कीजिये ।

(लखनऊ विश्वविद्यालय)

Give an account of the conditions of China under the Chou dynasty.

(Lucknow University)

प्रश्न 4—चीनी इतिहास के प्रारम्भ के विषय में आप क्या जानते हैं ?

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

What do you know about the beginning of Chinese history.

(Gorakhpur University)

प्रश्न 5—शी-हुआंग-ती के शासन-काल का संक्षिप्त परिचय दीजिये ।

Give a short account of the rule of Shi-Huang-Ti.

संसार के अति प्राचीन सभ्य देशों में चीन का विशेष स्थान है । इतिहासकारों ने यह सिद्ध कर दिया है कि वर्तमान मानव सभ्यता का आरम्भ सबसे पहले एशिया में हुआ । संसार की तीन विशाल सभ्यताओं में दो का जन्म एशिया में ही हुआ था ।

प्राचीन भारतीय सभ्यता का क्षेत्र समस्त प्रायद्वीप से लेकर दक्षिणी एशिया और समीपवर्ती द्वीपों तक कहा जाता है। चीनी सभ्यता का प्रभाव मध्य एशिया और जापान देश तक पड़ा। यद्यपि चीन को आज बर्बर देश की संज्ञा दी जाती है और चीन के कार्य-कलाप मानवता को चुनौती दे रहे हैं परन्तु यह भी कहना अनुचित नहीं है कि चीन ने विश्व संस्कृति की वह सृष्टि की है जो आज बहुत से सभ्य देशों को ज्ञात नहीं है। 'चीनी संस्कृति की महानता निःसन्देह जिज्ञासावाद से परे है।' चीनी सभ्यता और संस्कृति की विशेषता यही है कि उस पर पुरोहित वर्ग का प्रभाव कभी नहीं पड़ा जबकि संसार के अन्य देशों में धर्म के नाम पर खून की नदियाँ बहीं, चीन के इतिहास में धार्मिक कलह का नाम भी नहीं आता है।

विद्वान फ्रांसीसी लेखक वाल्टेयर (Voltaire) के अनुसार—

"The body of this Empire, has existed, 4,000 years without having undergone any sensible alternation in its laws, customs, language or even in its fashions of apparel...... The organisation of this empire is, in truth, the best that the world has ever seen."

(Quoted by Will Durant in 'Our Oriental Heritage'.)

चीन की भौगोलिक सीमा

चीन देश संसार के विशालतम देशों में गिना जाता है। पूरब की ओर प्रशांत महासागर, पश्चिम में रूस और तुर्किस्तान तक इसकी सीमायें थीं। उत्तर में टुण्ड्रा प्रदेश, गोबी का मरुस्थल तथा दक्षिण में यह देश हिन्द-चीन से घिरा हुआ था। संसार के सभी देशों से अधिक इसकी जनसंख्या है तथा इस विशाल भूखण्ड में कई प्रकार की जलवायु पाई जाती है। मंचूरिया का ठण्डा प्रदेश है और कहीं-कहीं पर कड़ी गर्मी भी पड़ती है। साधारणतया इस क्षेत्र की जलवायु को समशीतोष्ण कहा जाता है। चीन अपनी नदियों, पर्वत श्रेणियों तथा घने जङ्गलों के कारण संसार के अन्य सभी देशों से अलग है।

चीनी सभ्यता की प्राचीनता एवं निवासी—चीनी सभ्यता को इतिहासकारों ने 7000 वर्ष पुरानी बताया है। यद्यपि सारे देश में अधिकतर मंगोलियन जाति के लोग निवास करते हैं परन्तु फिर भी विभिन्न आक्रमणकारी जातियों का रक्त यहाँ के निवासियों में मिला हुआ है और आक्रमणकारियों की वर्णसंकर सन्तानें इस समय सारे देश में फैली हुई हैं जिनमें सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और आचार-विचार में अन्तर होने के कारण संघर्ष होता रहता है और जो आज भी परिलक्षित होता है।

चीनियों के विश्वास और संस्कार

चीनियों के विश्वास के अनुसार विश्व का निर्माण महान देवता प आन-कू ने किया। उन्होंने हथौड़े से ठोक-ठोक कर संसार का निर्माण किया और जब 22 लाख वर्ष में भी पूरे विश्व का निर्माण न कर सके तब अपने प्राण त्याग दिये। उनके श्वाँस से वायु और बादल, आवाज से गर्जन, धमनियों से नदियों, मज्जा से धरातल, बालों से वनस्पतियों, हड्डियों से धातुओं और पसीने से वर्षा का निर्माण हुआ। अति दीर्घ अवस्था के कारण प आन-कू के शरीर में जो कीड़े लग गए थे उन्हीं से मनुष्य जाति का जन्म हुआ। इस प्रकार उनके जीवन-काल में तो नहीं परन्तु आत्म-त्याग से संसार के निर्माण का कार्य सम्पूर्ण हुआ। यही कारण है कि प्राचीनकाल से ही चीनी, कला और विश्वकर्मा को आदर की दृष्टि से देख रहे हैं और उनकी ध्वजा में हथौड़े का चिह्न है।

चीन का राजनीतिक इतिहास

चीन के राजनीतिक इतिहास को ट्रीट (Treat) के अनुसार तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) 2852 ई० पू० से लेकर 206 ई० पू० तक (साम्राज्य-विस्तार का युग)

(2) 206 ई० पू० से लेकर 1644 तक (तारतारों से संघर्ष का काल)

(3) 1644 से आधुनिक काल तक (योरोपीय जातियों से सामंजस्य का युग)

साम्राज्य विस्तार का युग

(अ) आलोक काल

फू-सी (Fu-Hsi)—इस युग में प्रथम सम्राट फू-सी 2852 ई० पू० में चीन की गद्दी पर बैठा और चीनियों को प्रारम्भिक सभ्यता का आलोक प्राप्त हुआ। इसके राज्य-काल में साम्राज्ञी के सहयोग से चीनियों ने विवाह आदि के नियम बनाए। पढ़ना-लिखना, पशु-पालन और रेशम के उद्योग का सूत्रपात भी इसी के राज्य-काल में हुआ।

शेन-नुङ्ग (Shen-Nung)—यह दूसरा सम्राट था जिसने चीनी सभ्यता के विकास में एक पग और आगे बढ़ाया। इसके जीवन-काल में लकड़ी के बने हुये हलों का आविष्कार हुआ, व्यापार-पद्धति और औषधि-शास्त्र का सूत्रपात इसी के राज्य-काल में हुआ। इसने 2737 ई० पू० से लेकर २697 ई० पू० तक राज्य किया।

हुयांग-ती (Huang-Ti)—यह चीन के ऐतिहासिक काल का बड़ा पराक्रमी शासक कहा जाता है। इसने ईंटों के मकान बनवाए, ग्रहों और नक्षत्रों के निरीक्षण

के लिये ज्योतिष-मन्दिरों का निर्माण करवाया, चीनी कैलेन्डर में सुधार किये और कृषि क्षेत्र में जमीनों का बँटवारा तथा कर पद्धति (Revenue System) में सुधार किए। इन्होंने चीन निवासियों को चुम्बक पत्थर का प्रयोग सिखाया, गाड़ियों में पहिये लगवाए। इन्होंने अपने दरबार में इतिहासवेत्ताओं की नियुक्ति की। इस प्रकार वर्तमान सभ्यता की ओर महान देश को अग्रसर किया। इनका कार्यकाल 2697 ई० पू० से 2597 ई० पू० कहा जाता है।

याओ (Yao)—यह इस वंश का सबसे बड़ा और महान राजा कहा जाता है। इसके शासन-काल की तुलना भारतीय सम्राट जहाँगीर से की जाती है। इन्होंने अपने महल के बाहर एक ढोल लगवाया था जिसे फरयादी बजाकर सम्राट के समक्ष अपनी फरियाद सुना सकता था। जहाँगीर ने इसी प्रकार महल के बाहर घण्टी लगवाई थी। इस सम्राट ने एक यह भी प्रबंध किया था कि जनता अपनी शिकायत या फरियाद महल के बाहर लगे हुये तख्ते पर लिख सके और वह तख्ता सम्राट के समक्ष प्रेषित कर दिया जाता था। इस सम्राट की प्रशंसा महान चीनी दार्शनिक कन्फ्यूशियस ने की है। इस प्रजावत्सल सम्राट ने 100 वर्ष तक अर्थात् अपनी 116 वर्ष की आयु तक राज्य किया। इसका व्यक्तिगत जीवन अत्यन्त सरल था। यह साधारण कपड़े और चीनी टोपी पहनता था। इसके रथ का रङ्ग लाल था और उसमें सफेद घोड़े जोते जाते थे। गर्मी के दिनों में यह सूती कपड़े और जाड़े में मृग-चर्म पहनते थे। ये लकड़ी के चमचे से भोजन करते थे और आडम्बरहीन जीवन व्यतीत करते थे। भारतीय इतिहासकारों ने इनके रहन-सहन की तुलना राजर्षि जनक से की है जिनका शासन-काल महाकाव्य के युग में एक उज्ज्वल अध्याय है।

शून (Shun)—इस वंश का अन्तिम सम्राट शून हुआ जिसने अपने अग्रजों की भांति प्रजा की भलाई और सुधार को अपने जीवन का ध्येय बनाया। इसी के राज्य-काल में प्रसिद्ध इन्जीनियर यू (Yu) ने ह्वांगहो नदी जिसे चीन का शोक कहते हैं, की भयंकर बाढ़ों को रोकने का प्रयास किया।

कला-कौशल और व्यापार में भी इसने कई सुधार किये। चीनी कलैंडर में सुधार किया गया। नाप और तौल के बाटों में भी वांछनीय परिवर्तन किये गये। शिक्षा के क्षेत्र में भी इसके सुधार उल्लेखनीय हैं। इसके राज्य-काल के प्रारम्भिक काल में अध्यापक लम्बे-लम्बे बेतों का प्रयोग करते थे परन्तु इसने बेतों की लम्बाई छोटी करवा दी क्योंकि इसका विश्वास था कि बच्चों को शारीरिक दण्ड देने से उनका बौद्धिक और शारीरिक विकास रुक जाता है।

इस सम्राट ने अपने अन्तिम काल में प्रसिद्ध इंजीनियर यू (Yu) का सिंहासन अपने सिंहासन के पास ही लगवाया। सम्राट शून (Shun) के स्वर्गारोहण के साथ स्वर्गीय सम्राटों का राज्य समाप्त हो जाता है।

(ब) सिया वंश (Hsia Dynasty)

इस वंश का नाम सिया (Hsia) इसलिये पड़ा कि चीनी भाषा में सिया का अर्थ सभ्य है अर्थात् इस राजवंश के लोग अपने को सभ्य कहते थे।

सम्राट शून के शासन के समाप्त होने पर सिया वंश (Hsia dynasty) की नींव प्रसिद्ध इंजीनियर यू ने डाली जिसका सिंहासन अन्तिम दिनों में शून ने अपने सिंहासन के पास डलवाया था।

यू के शासनकाल में एक चीनी ने चावल की शराब बनाई। सम्राट ने जब उस शराब को पिया तो उसने प्याले को जमीन पर पटक दिया और कहा कि सम्भवतः एक दुर्दिन ऐसा होगा जब इसी नशे के कारण मेरे वंशजों को राज्य से हाथ धोना पड़ेगा। इतना ही नहीं उन्होंने इस आविष्कारक को देश निकाला दे दिया और सारे राज्य में शराब के निर्माण तथा प्रयोग पर पाबन्दी लगा दी।

इस वंश का अन्तिम सम्राट चीये (Chieh) था जो अत्यन्त विलासी था और इसी कारण उसे शीघ्र ही अपने राज्य से हाथ धोना पड़ा।

इस वंश में लगभग 17 सम्राटों ने 439 वर्ष तक राज्य किया जिसके उपरांत शांग (Shang) अथवा चिन वंश की नींव पड़ी।

(स) शांग वंश (Shang Dynasty)

इस वंश का शासनकाल 1766 ई० पू० से लेकर 1125 ई० पू० तक, 641 वर्ष रहा। इस वंश में 28 सम्राट हुये जिनमें सबसे प्रसिद्ध सम्राट यू-यी (Wu-Yi) था और अन्तिम सम्राट चाऊ-सीन (Chou-Hsin) था। शांग सम्राटों ने खेती की उन्नति की ओर विशेष ध्यान दिया। यद्यपि कला-कौशल और साहित्य में भी इस युग में काफी उन्नति हुई। प्राचीन काल में चीनी लोग पीतल और हाथी दाँत पर चित्र-लिपि लिखते थे। इस युग में बाँस के पत्तों पर भी लिखना आरम्भ किया गया और स्याही का आविष्कार हुआ। इस युग में लेखक कलम के स्थान पर कूँची का प्रयोग करते थे। जीविकोपार्जन का मुख्य साधन खेती था। समाज में किसान और जिमीदार दो वर्ग थे। लोग अधिकतर चीते, भालू और भेड़ियों का शिकार करते थे। भेड़ें, कुत्ते और घोड़े पालते थे।

सेना का सङ्गठन अत्यन्त दृढ़ था। एक सेना में लगभग 5000 व्यक्ति रहते थे जो पैदल, रथी और घुड़सवार अंगों में विभाजित किये जाते थे। हथियार अधिकतर पीतल के होते थे, लोहे का प्रयोग कम होता था।

इस काल में वास्तुकला अत्यन्त आकर्षक और सुन्दर होती थी। धातुओं के पात्र और हस्त-निर्मित सामग्री अब भी इस काल की कला की कहानी कहती है। किसी-किसी वस्तु पर लेख भी लिखे हुये मिलते हैं।

दैनिक जीवन में धर्म का विशेष स्थान था और बलिदानों का विशेष महत्व था। मुख्य-मुख्य अवसरों पर नदियों और पृथ्वी पर बलिदान दिए जाते थे। तारों और नक्षत्रों से मनुष्य के भाग का सम्बन्ध माना जाता था। इसी आधार पर कुछ काल के उपरांत नक्षत्र-शास्त्र का आरम्भ हुआ। शांग-सी को सबसे बड़ा देवता माना जाता था और इन्हें प्रसन्न करने के लिये कभी-कभी नर-बलि भी दी जाती थी। जीवन में आमोद-प्रमोद और नृत्य, संगीत का विशेष महत्व था। बाजों में ढोलक और बाँसुरी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इस वंश का साम्राज्य-विस्तार पीली नदी (शांसी) प्लेटो से लेकर शाटुङ्ग पर्वत तक था। विगत शताब्दियों में इस प्रदेश में बहुत-सी ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त हुई जो ब्रिटेन, स्काटलैण्ड और शिकागो के संग्रहालयों (Museums) में सुरक्षित है।

शांग वंश के अन्तिम सम्राट चाऊ सिन (Chou-Hsin) के शासन-काल में जनता ने सम्राट के विरुद्ध 1122 ई० पू० में विद्रोह कर दिया। जनता के प्रतिनिधि वू-वांग (Wu-Wang) ने चाऊ-सिन (Chou-Hsin) को परास्त किया और चाऊ वंश की नींव डाली।

(द) चाऊ वंश

इस वंश में 37 सम्राट हुए और उनके जीवन काल में चीन निवासियों ने प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति की। इस वंश का काल 1122 ई० पू० से लेकर 325 ई० पू० तक माना जाता है। प्रसिद्ध विद्वान मेक्सस के अनुसार—

"यू वाङ्ग के अनुयायी पश्चिमी आक्रमणकारी जाति के थे।"

चाऊ वंश के सम्राट उत्तरी चीन के निवासियों से सम्बन्धित थे अर्थात् इनकी संस्कृति और जाति में तत्कालीन चीन निवासियों से भिन्नता थी।

यू वांग सिद्धांतवादी व्यक्ति था। इतिहासकारों ने लिखा है कि चाऊ वंश को शक्तिशाली बनाने का श्रेय यू वांग को ही है। अपने शासन-काल के तीन वर्ष में इस सम्राट को पूर्व के आश्रित राज्यों से घोर युद्ध करना पड़ा था और अन्त में उसने उन्हें अपने वंश में कर लिया।

शासन कार्य करने के लिये अधिकारियों की नियुक्ति परीक्षा पास कर लेने के उपरांत होती थी और शासकों का मुख्य कर्त्तव्य यह था कि जनता में नैतिकता पर विश्वास हो और संगठन की भावना दृढ़ हो। इस वंश के राजाओं ने पाठशालाओं, विश्रामगृहों और अस्पतालों का निर्माण कराया। सारे साम्राज्य में अनुचित कार्यों पर रोक थी।

चाऊ वंश के शासन-काल में केन्द्रीय सरकार और प्रांतीय सरकारों के सम्बन्ध उतने दृढ़ नहीं थे जितने कि होने चाहिये। वस्तुतः प्रांतीय सरकारें अधिक शक्तिशाली

थीं जिसका फल यह हुआ कि केन्द्रीय सरकार का पतन होने लगा और देश में वैमनस्य की वृद्धि हुई।

इसी काल में हूणों ने चीन पर आक्रमण किया जिसके फलस्वरूप सामन्तों ने राजसत्ता अपने हाथों में ले ली। बहुत से स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना हुई परन्तु इन सब राज्यों के शासक चाऊ राजवंश के सामन्त ही थे और इनका अधिकार अपने क्षेत्र पर एक सम्राट की तरह ही था। वह राज्य आपस में समय-समय पर युद्ध किया करते थे इसी कारण कन्फ्यूशियस ने पारस्परिक युद्ध की भर्त्सना की है। प्रसिद्ध इतिहासकार के० सी० लातूरे के मतानुसार इस काल की तुलना मध्यकालीन योरुप से की जा सकती है। योरुप की ही भाँति इस काल में साम्राज्य-विस्तार हुआ, सांस्कृतिक समाजों की स्थापना हुई और उनका विकास हुआ। सामन्तशाही युग में दर्शन, साहित्य और कला क्षेत्र में चीन योरुप से आगे ही बना रहा।

इस युग में पाँच प्रमुख राज्य थे—

(1) ची (685—643 ई० पू०)
(2) मुंग (650—637 ई० पू०)
(3) शिन (639—628 ई० पू०)
(4) चिन (659—621 ई० पू०)
(5) चू (613—591 ई० पू०)

ये पाँचों राज्य आपस में लड़ा करते थे परन्तु इन्होंने देश की सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति में तथा विधान सहिताओं के निर्माण में महान योगदान दिया। आपस की लड़ाइयों के फलस्वरूप चिन राज्य में कालान्तर में सब सामन्त राज्यों को जीतकर एक कर लिया। इसी राज्य के नाम से सारे देश का नाम चीन पड़ा। चाऊ वंश के राज्य को सामन्तशाही का युग भी कहते हैं क्योंकि जैसा ऊपर बताया जा चुका है सभी प्रमुख राज्यों के शासक चाऊ वंश के सामन्त थे।

उपर्युक्त पाँच राज्यों में ची (Ts'i or Ch'i) राज्य से चीन के शासन प्रबन्ध का आरम्भ हुआ। इसके प्रधान शासक कुआन-चुङ्ग (Kuan-Chung) ड्यूक हुआन (Duke Hu·n) के परामर्शदाता थे। इन्होंने आमदनी, मछली और नमक पर टैक्स लगाकर राज्य के विद्वानों को पुरस्कृत किया और गरीबों की सहायता की। इनकी प्रशंसा कन्फ्यूशियस ने भी की है। राजनीति विशारदों का विचार है कि राज्य शासन और व्यवस्थित सरकार चलाने की प्रणाली का आविष्कार कुआन-चुंग (Kuan-Chung) ने ही किया।

चीन के सामन्तों में विभाजन की प्रथा थी। एक ड्यूक और मारक्विस को एक तिहाई मील का क्षेत्र शासन के लिए दिया गया था। इसी प्रकार अर्ल, बाईकाउन्ट

और बैरन के भी अधिकार क्षेत्र विभाजित थे। राज्य-विधान और शासन-पद्धति की देखभाल करने के लिए अधिकारी नियुक्त किये जाते थे। पाँच जिलों के अधिकारी को चैंग (Chang), दस जिलों के अधिकारी को मार्शल (Marshall) या शुई (Shui) की उपाधि दी जाती थी। तीस जिलों के अधिकारी को उच्चतम उपाधि मिलती थी। सभी अधिकारी सामन्त के सलाहकार, कोर्ट के सदस्य और प्रबन्धक थे। इनका मुख्य कार्य सामन्त को शासन कार्यों की सूचना देना और परामर्श देना था। समय-समय पर यह सामन्त दरबार में इकट्ठा होते थे। सामन्त न्याय और दण्ड को अपने अधिकार में रखते थे। पुराने लोगों का विश्वास सम्राट पर अधिक था इसी कारण राज्य का मुख्य प्रबंधक कभी-कभी सम्राट के नाम से सम्बोधित किया जाता था। पाँचवें वर्ष सम्राट देश का भ्रमण करता था। उस समय जनता में विशेष समारोह मनाया जाता था। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए बलि दी जाती थी, वयोवृद्ध लोगों को पुरस्कार दिये जाते थे तथा संगीतज्ञ और कवियों द्वारा सम्राट का मनोविनोद कराया जाता था। सम्राट खेतों और बीजों का निरीक्षण करता था, नए खेतों को जोतने वाले किसानों को राजकीय सहायता दी जाती थी। इस प्रकार सामन्तवादी युग भूमि-वितरण के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

जनता में आखेट की प्रथा थी। गर्मी और बसन्त के दिनों में जंगली पशुओं का शिकार किया जाता था। इस काल में नीची श्रेणी के लोगों को कठिन परिश्रम भी करना पड़ता था। अनुभवी व्यक्तियों को सरकार द्वारा भूमि दी जाती थी परन्तु 60 वर्ष के पश्चात् उस भूमि पर पुनः शासन का अधिकार हो जाता था।

इस युग में रंगाई, हस्तकला, वास्तुकला, विभिन्न प्रकार की काष्ठकला और नकाशी आदि कार्यों को विशेष प्रोत्साहन मिला। इसी युग में ताँबे के सिक्कों का प्रचलन हुआ। धनी लोग सोना, मोती और जवाहरात का उपयोग करते थे।

चाऊ वंश के प्रथम सम्राट वेन (Wen) और उसके दो पुत्रों के कार्य अधिक सराहनीय हैं। सम्राट वेन (Wen) की जागरूकता, तत्परता और कर्त्तव्यनिष्ठा से चीन एक शक्तिशाली राष्ट्र बन गया। इस युग में कला-कौशल तथा साहित्य एवं भाषा, संगीत आदि की विशेष उन्नति हुई। इसी युग में महान दार्शनिक कुङ्ग-फू-जे (Kung-Fu-Tze) जिन्हें कन्फ्यूशियस के नाम से भी पुकारा जाता है उत्पन्न हुये। कन्फ्यूशियस एक प्रसिद्ध कवि भी थे और इनकी 305 कविताओं का संग्रह एक विशेष पुस्तक शी-चीन में मिलता है।

इस युग में कई महान दार्शनिक उत्पन्न हुये जिनकी अमिट छाप आज भी चीन पर है।

(1) वेन-वांग (Wen-Wang)—ये चाऊ वंश के जन्मदाता माने जाते हैं। कहा जाता है कि एक बार इन्हें किसी अपराध के कारण कारावास का दण्ड दिया गया

और यहीं पर इन्होंने प्रथम दार्शनिक ग्रन्थ 'परिवर्तनशील जगत' (Book of Changes) की रचना की जिसे कन्फ्यूशियस ने भी सराहा है और कहा कि पुस्तक का अध्ययन 50 वर्ष में भी नहीं हो सकता।

(2) **तेंग-शीह (Teng-Shih)**—यह भी एक बहुत प्रसिद्ध दार्शनिक थे और इनकी स्पष्टवादिता के कारण चेंग राज्य के शासक ने इन्हें मरवा डाला था।

(3) **लाओत्जे (Laotze)**—इस युग के महानतम दार्शनिकों में इनका नाम प्रसिद्ध है। बहुत काल तक यह चाऊ राज्य के पुस्तकालय के संरक्षक रहे थे परन्तु राजनीतिक झंझट से छुटकारा पाने के लिये ये अपने पद को त्यागकर किसी गाँव में जाकर रहने लगे थे।

किंवदन्ती है कि चाऊ राज्य छोड़ते समय सीमा प्रान्त के रक्षक यीन-सी (Yin-Hsi) ने इनसे एक पुस्तक लिखने का अनुरोध किया और ये अमर वाणी को लेखनी-बद्ध करने के लिये पुनः पुस्तकलय में लौट आये। पुस्तक रचना के उपरान्त ये राज्य को छोड़कर अपने गाँव में चले गये। इनके नाम का शाब्दिक अर्थ प्राचीन शिक्षक है। इनका वास्तविक नाम ली (Li) था।

लाओत्जे के सिद्धान्तानुसार भौतिक जगत की चिन्ता उचित नहीं है। इससे बुद्धिमान को उदासीन ही रहना चाहिये और प्राकृतिक चिन्तन में लीन रहना चाहिये। अपने सिद्धांत को स्पष्ट करते हुये इन्होंने लिखा है कि भौतिक ज्ञान कोई गुण नहीं है बल्कि भौतिक शिक्षा के विकास से दुष्ट व्यक्तियों की वृद्धि होती है। इनके मतानुसार दार्शनिकों की सरकार सबसे निकृष्ट है जो केवल लम्बे-लम्बे सिद्धांतों का प्रतिपादन कर सकते हैं जिनका उपयोग व्यावहारिक जगत में कठिन है।

लाओत्जे का यह भी मत है कि बुद्धिमानों और विद्वानों के कारण स्वतंत्र जीवन नष्ट हो जाता है और समाज के विभिन्न अंग दुर्बल हो जाते हैं क्योंकि वे रेखागणित (Geometry) के वर्गों की तरह समाज का निर्माण करते हैं और उसी के अनुरूप नियम बनाते हैं। जब साधारण मनुष्य शासक बनता है तब वह स्वतंत्र जीवन का प्रेमी होता है और जनता के जीवन को कम के कम नियंत्रित रखना चाहता है। इस कृत्रिमता के अभाव में सीधे-सीधे मार्ग से राज्य का विकास होता है।

राज्य की आर्थिक उन्नति के लिये कम से कम सरकारी नियंत्रण होने चाहिये क्योंकि नियंत्रणों के कारण धनिक वर्ग का धन और शक्तिशाली की शक्ति की वृद्धि होती है।

समाज में स्वतंत्रतापूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए न तो पुस्तकों की आवश्यकता है, न वकीलों की, केवल ग्रामीण उद्योग ही इस अवस्था को बनाये रख सकते हैं।

लाओत्जे ने अपने धार्मिक सिद्धांत से यह सिद्ध कर दिया कि समाज को रूढ़िवाद की आवश्यकता नहीं है। उनके सिद्धांत के अनुसार प्रकृति का कार्यक्रम समय की गति से चला करता है। इस नियम को चीनी भाषा में 'ताओ' और भारत में 'शाश्वत' नियम कहा जाता है। प्रकृति एवं मानव जीवन के सभी नियम इस शाश्वत नियम के अधीन हैं।

'ताओ' सिद्धांत को स्पष्ट करते हुये लाओत्जे ने लिखा है कि प्रागैतिहासिक युग (Pre-historic Age) में भौतिक सभ्यता नहीं थी जिसके कारण लोग सुखी थे और उनका जीवन सरलतम था। नाना प्रकार के आविष्कारों एवं नियमों ने मनुष्य के जीवन को दुखी बना दिया और उसी समय से दार्शनिकों का विलाप आरम्भ हो गया।

लाओत्जे भौतिकवाद (Materialism) के घोर विरोधी थे। उनका विचार था कि बुद्धिमान लोगों को पुस्तकों से और सुधारवादियों से दूर हटकर प्रकृति की गोद में रहना चाहिये और शिशु की भाँति प्राकृतिक नियमों को चुपचाप मान लेना चाहिये। इसी से परम शान्ति प्राप्त हो सकती है। प्रकृति अपना कार्य निरन्तर करती है परन्तु किसी पर कोई अधिकार नहीं जताती। जब कार्य पूरा हो जाता है तब वह पुनः अपने उद्गम स्थल को लौट जाती है। यही ज्ञान वास्तविक ज्ञान है और शाश्वत नियम है। सब मनुष्यों को इसीलिये उचित ढंग से अपने कर्त्तव्यों को पूरा करना चाहिये, किसी प्रकार प्राकृतिक नियमों का विरोध नहीं करना चाहिये और यदि उसे प्रकृति की ओर से बाधा प्राप्त होती हो तो चुपचाप अपने मार्ग से हट जाना चाहिये और धैर्य तथा शान्ति से विजय मार्ग पर अग्रसर होना चाहिये।

'ताओ' सिद्धान्त को स्पष्ट करने के उपरान्त लाओत्जे ने कहा कि यदि तुम किसी से झगड़ा नहीं करते तो कोई तुमसे झगड़ा नहीं करेगा। हानि के बदले दया, बुरे व्यवहार के बदले अच्छा व्यवहार, कठोरता के बदले कोमलता का व्यवहार करने से सफलता मिलती है। संसार में जल सबसे कोमल वस्तु कही जाती है परन्तु वही जल कड़ी से कड़ी चट्टान को भी ध्वस्त कर देता है।

इस महान दार्शनिक का कहना है कि यद्यपि बुद्धिमान व्यक्ति सर्वोच्च स्थान का अधिकारी है परन्तु उसकी आन्तरिक इच्छा चुपचाप सरल और शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करने की होती है। शान्ति बुद्धि की कुञ्जी है। 50 वर्ष की आयु में व्यक्ति को उसके ज्ञान की कमजोरी मालूम हो जाती है। अगर व्यक्ति बुद्धिमान है तो

अपनी बुद्धिमत्ता को छिपाने की कोशिश करता है। किसी अज्ञानी की भाँति दूसरों का विरोध नहीं करता। बुद्धिमान पुरुष संसार के धन और शक्ति की परवाह नहीं करता। लाभ हानि की भी उसे चिन्ता नहीं होती। तभी वह ऋषि-पदवी पाने का अधिकारी होता है।

यह कहा जाता है कि लाओत्जे को विचित्र वाणी से विचलित होकर कन्फ्यूशियस उससे मिलने के लिए लोयांग (Lo-yang) नगर आया। लाओत्जे ने उससे कहा कि जिस महान व्यक्ति से तुम मिलने आये हो उसकी हड्डियाँ भी चूर-चूर होकर मिट्टी में मिल गई है, केवल उनकी कृतियाँ मात्र अवशेष हैं। जब आवश्यकता होती है वह महान व्यक्ति जगत का नेतृत्व करने के लिये उठ खड़ा होता है परन्तु समय से पूर्व यदि वह कोई कार्य करता है तो प्रकृति उसमें बाधक होती है। जिस प्रकार सफल व्यापारी अपने धन को छिपा लेता है और निर्धन का-सा व्यवहार करता है उसी प्रकार महान व्यक्ति का व्यवहार साधारण और सरलतम होता है। लाओत्जे ने उसे परामर्श दिया कि यदि तुम अपनी इच्छाओं का दमन कर लो, अनुपयोगी स्नेह को त्याग दो और अव्यवस्थित उद्देश्यों से मुँह मोड़ लो तभी तुम महान बन सकते हो अन्यथा निरर्थक बातों से किसी का चरित्र भी महान नहीं हो सकता।

लाओत्जे के यह सिद्धान्त भारतीय वेदान्तियों से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। भारतीय नेताओं पर लाओत्जे के सिद्धान्तों की स्पष्ट छाप है।

(4) कन्फ्यूशियस (Confucius)—चीन के इस महान सुधारक का जन्म 551 ई० पू० में लू राज्य के एक प्रसिद्ध प्रतिष्ठित परिवार में हुआ। पिता की मृत्यु अल्प आयु में होने के कारण बालक का लालन-पालन माता द्वारा हुआ। बाल्यावस्था में ही वह धार्मिक अनुष्ठानों और प्राचीन साहित्य के अध्ययन का प्रेमी था। 19वें वर्ष में विवाह के उपरान्त 22वें वर्ष में उसने विद्यार्थियों को शिक्षा देने का कार्य आरम्भ किया। किंवदन्ती है कि उसने लगभग 3000 विद्यार्थियों को इतिहास, काव्य और शिष्टाचार में शिक्षित किया। उसकी नियुक्ति 54 वर्ष की आयु में राज्य द्वारा पुलिस मन्त्री के स्थान पर हुई परन्तु राजा के अनैतिक आचरण के कारण वह उस पद पर अधिक काल तक नहीं टिक सका। लू राज्य से त्याग-पत्र देने पर वह कई राज्यों में ऐसे राजा की खोज में गया जो उसके आदर्श विचारों को व्यावहारिक रूप देने के लिए सन्नद्ध हो। परन्तु इस कार्य में उसे सफलता नहीं मिली। अन्ततः वह लू राज्य में लौट आया और यहीं 72 वर्ष की आयु में उसका देहान्त हो गया। मृत्यु से कुछ दिन पहले उसे यह गीत गाता हुआ पाया गया—

"बड़े से बड़ा पहाड़ भी टूटेगा,

मजबूत से मजबूत लोहा भी टूटेगा
और बुद्धिमान पुरुष भी पौधे की तरह मुरझाएगा।"

इस समय उसने अपने प्रिय शिष्य जे-कुङ्ग से कहा—"समस्त राज्य में कोई ऐसा शासक नहीं है, जो मुझे अपना उस्ताद बनाने को तत्पर हो। मेरी मृत्यु का समय आ गया है।"

कन्फ्यूशियस एक बहुमुखी प्रतिभा वाला व्यक्ति था, यद्यपि उसकी निष्ठा नैतिक और राजनीतिक दर्शन में अधिक थी फिर भी उसने विभिन्न विषयों पर समय-समय पर अपने विचार व्यक्त किये हैं।

(क) दार्शनिक कन्फ्यूशियस—कुछ विद्वानों का मत है कि कन्फ्यूशियस न तो धर्मोपदेशक था और न किसी नये मत का प्रवर्तक। उसके सिद्धान्त शुद्ध और व्यावहारिक जीवन के सिद्धान्त हैं, जो मनुष्य को शान्ति की ओर बढ़ाते हैं। अतः उसे नीति-उपदेशक कहना अधिक उचित है। उसका सिद्धान्त था कि व्यवहार नीति का आधार सदाचार है। परिवार समाज की सबसे बड़ी इकाई है और व्यक्ति सबसे छोटी इकाई है। इसलिए समाज का सुधार उसी अवस्था में सम्भव हो सकता है जब व्यक्ति का सुधार हो। व्यक्ति के सुधार का मार्ग यही है कि वह मन, वचन और कर्म से सत् तथा ज्ञान की खोज करे और आत्म-विकास करे। बहुतेरे सामाजिक दोषों का कारण अनुदारता और स्वार्थपरता है। इसीलिए कन्फ्यूशियस ने उपदेश दिया कि जो व्यवहार तुम दूसरों के साथ नहीं कर सकते, उस व्यवहार की इच्छा दूसरों से अपने प्रति मत करो। अच्छे मनुष्य के लिये तीन गुण अत्यन्त आवश्यक हैं—प्रतिभा, साहस और परोपकार की भावना। इनको वह मनुष्य के चरित्र के त्रिपाद कहता है। विद्वान मनुष्य हमेशा अपने प्रति सजग रहता है। सजगता का मुख्य आधार आत्म-परीक्षण है और आत्म-परीक्षण का अभिलाषी कभी दूसरों के दोष ढूंढ़ने वाला और दूसरों की बुराई करने वाला नहीं हो सकता। इसीलिये कन्फ्यूशियस ने उच्च मनुष्य के लिये 8 बातें आवश्यक बताई हैं—

(1) स्पष्ट दृष्टि
(2) दयाभाव
(3) दूसरों का आदर करना
(4) सत् व्यवहार
(5) सजगता
(6) विचार विनिमय
(7) क्रोध में विवेकशीलता
(8) साधनों का उचित उपयोग।

कन्फ्यूशियस ने यह भी कहा है कि आदर्श मनुष्य अपनी उन्नति के साथ मानव जाति की उन्नति का अभिलाषी होता है।

अपने इन्हीं विचारों के कारण उसने समस्त मानव जाति का कल्याण किया। उसके यह शाश्वत नियम आज भी मानवता के पथ-प्रदर्शक हैं। उसने शुद्ध दार्शनिकता अर्थात् आत्मा-परमात्मा, स्वर्ग-नरक आदि के विषयों पर विचार नहीं व्यक्त किये। उसका यह सिद्धांत था कि मानव जीवन में इतनी समस्याएँ हैं कि मनुष्य को पारलौकिक विषयों पर विचार करने की न तो आवश्यकता और न अवकाश ही है। वह कभी असाधारण वस्तुओं, आध्यात्मिक जीवों, अव्यवस्था और शक्ति के कौतुक आदि के विषय में बातचीत नहीं करता था। एक बार जब उससे प्रेतात्माओं के विषय में पूछा गया तो उसने उत्तर दिया कि जो मनुष्य की सेवा नहीं कर सकता वह प्रेतात्माओं की सेवा कैसे करेगा?

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कन्फ्यूशियस के दर्शन-शास्त्र में अन्य दर्शन-शास्त्रों की तुलना में आचार व्यवहार अधिक है। उसके नैतिक सिद्धान्त की प्रशंसा करते हुये डॉ० विल ड्यूराण्ट ने कहा है—

'It is a consel of perfection. It is one of the golden tenets of philosophy."

(ख) कन्फ्यूशियस और राजनीति—कन्फ्यूशियस का कथन था कि राजनीतिक सार्वभौमिकता का आधार जनता है। जिस शासन को जनता का विश्वास नहीं प्राप्त है वह शासन स्थायी नहीं हो सकता। उसके विचारानुसार शासन के लिये तीन वस्तुएँ आवश्यक हैं—

(1) खाद्य-सामग्री
(2) युद्ध-सामग्री
(3) जनता का शासन में विश्वास

शासन में विश्वास को वह युद्ध और खाद्य सामग्री से भी अधिक आवश्यक मानता था। वह यह भी मानता था कि शासन के लिये ज्ञानी मन्त्रियों की बहुत बड़ी आवश्यकता होती है। ज्ञानी पुरुष ही विदेशी प्रभाव से दूर रहेगा, अपनी स्वतन्त्र सत्ता बनायेगा, विलासिता से अलग रहेगा, धन का उचित बँटवारा करेगा, दण्ड कम करेगा और जनता की शिक्षा में अधिक विश्वास रखकर ऊँच-नीच का भेदभाव नहीं रक्खेगा। इसी सिद्धान्त के आधार पर कन्फ्यूशियस ने समता का सिद्धान्त (Doctrine of Equality) प्रतिपादित किया जिसके अनुसार राज्य का कर्त्तव्य समान रूप से सभी नागरिकों की रक्षा और भरण-पोषण करना है। कोई-कोई विद्वान इसी कारण कन्फ्यूशियस को समाजवादी (Socialist) कहते हैं। उनका यह भी विचार है कि कन्फ्यूशियस सामन्तशाही की व्यवस्था में क्रान्ति करके समाजवाद (Socialism) की स्थापना करना चाहता था। कन्फ्यूशियस ने यह भी कहा है कि

राजा, प्रजा के समक्ष जीवन का वह उच्च आदर्श प्रस्तुत करे जिससे कर्मचारी यायप्रिय हों और अन्यायी पदाधिकारियों का उन्मूलन हो। अपने इन विचारों को व्यावहारिक रूप देने के लिए वह किसी राजा का गुरु बनना चाहता था। उसने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में इस अभिलाषा को एक शिष्य पर बड़े स्पष्ट रूप में प्रकट भी किया था।

(ग) साहित्यकार कन्फ्यूशियस—कन्फ्यूशियस के समस्त साहित्य को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम भाग में जो साहित्यिक ग्रन्थ हैं उन्हें सामूहिक रूप से 'पाँच-चींग' (Five-Chings) की संज्ञा दी जाती है।

(1) ली-ची (Li-Chi)—इस ग्रन्थ में समाज और धर्म की क्रियाओं का वर्णन है जो समाज की व्यवस्था, शक्ति, चरित्र-निर्माण और मानसिक एवं शारीरिक शक्ति के विकास के लिए आवश्यक है।

(2) ई-चींग (I-Ching)—इस पुस्तक में संसार की परिवर्तनशीलता का विस्तृत वर्णन है।

(3) चून-चीऊ (Ch'un-Ch'iu)—इस शब्द का अर्थ 'शरद और बसन्त की घटनाएँ' हैं। पुस्तक के नामकरण से ही विषय स्पष्ट हो जाता है कि इस पुस्तक में लू राज्य की विभिन्न घटनाओं का वर्णन किया गया है।

(4) शू-चींग (Shu-Ching)—यह एक ऐतिहासिक पुस्तक है जिसमें चीन के उन सम्राटों के शासन की घटनाओं और कहानियों का वर्णन है जिन्होंने चीनी जाति को सभ्य बनाया।

(5) शी-चींग (Shi-Ching)—इस पुस्तक में मनुष्य के चारित्रिक सिद्धान्तों और उन ढंगों का वर्णन है जिनके द्वारा मानव जीवन उच्चतम बन सकता है।

किंवदन्ती है कि कन्फ्यूशियस ने इन पुस्तकों की रचना अपने शिष्यों के शिक्षण और उन्हें भूलों से बचाने के लिये की।

दूसरे वर्ग में चार ग्रन्थ हैं जिन्हें 'चार शू' (Four-Shu) कहा जाता है।

(1) लुन-यू (Lun-Yu)—इस ग्रन्थ की रचना कुछ विद्वानों के अनुसार कन्फ्यूशियस के शिष्यों ने की है जिसमें उनके गुरु के उपदेशों, विचारों और नीति का संग्रह है।

(2) चुङ्ग-युङ्ग (Chung-Yung)—इस पुस्तक के शीर्षक का अर्थ 'मध्यम मार्ग का रास्ता' है। इस पुस्तक का प्रणेता कन्फ्यूशियस का पौत्र कुंग-चु (Kung-Chu) था।

(3) ता-सूए (Ta-Hsueh)—इस पुस्तक में महान नैतिक शिक्षा की विवेचना है।

(4) मेंग-जु-शू (Meng-Tzu-Shu)—इस पुस्तक की रचना भी कन्फ्यूशियस के शिष्यों द्वारा की गई बताई जाती है। इसका आधार भी लौकिक जीवन है।

कन्फ्यूशियस की शिक्षाओं का प्रभाव

कन्फ्यूशियस के विचार और उसकी शिक्षायें इतनी स्थायी थीं कि उसकी मृत्यु के उपरान्त भी उसके सिद्धान्त अमर रहे और उसके अनुयायियों ने उन्हीं के आधार पर विभिन्न मतों का प्रतिपादन किया। मेन्शीयस (Mencius) का मत सर्वप्रमुख माना जाता है जो कन्फ्युशियस वाद का विकसित स्वरूप है। सरल और सत्यता के कारण कन्फ्यूशियस की शिक्षाओं में विशेष जीवनी-शक्ति का प्रतिपादन हुआ जिससे वह प्रतिकूल वातावरण में भी नष्ट न हो सकी।

शी हांग टी (Shi Huang Ti) ने भी कन्फ्यूशियस के ग्रन्थों से नवीनवाद को जन्म देने का असफल प्रयत्न किया। सम्राट वू ती और ताई-सुंग ने कन्फ्यूशियस वाद की बड़ी प्रशंसा की है। नागरिकों ने भी कन्फ्यूशियस की पुण्य स्मृति में विभिन्न नगरों में मन्दिर निर्माण कराए तथा अनुष्ठान और यज्ञ किये। कन्फ्यूशियस की शिक्षाओं को पत्थरों पर लिखाया गया और विद्यालयों की पाठ्य पुस्तकों में सम्मानित स्थान दिया गया।

कन्फ्यूशियस वाद की सबसे बड़ी देन चीन को राष्ट्रीय एकता प्रदान करना है। उसने चीन को दार्शनिकता और अमरता प्रदान की तथा चीनी संस्कृति को उज्ज्वल बनाया जिसके कारण आज भी चीन की जनता अपने को कन्फ्यूशियस की सन्तान कहती है।

एक ओर तो कन्फ्यूशियस के सिद्धान्तों ने चीनी राष्ट्र को सुदीर्घकालीन ऐतिहासिक पद पर विरोधों से लोहा लेने की शक्ति प्रदान की, दूसरी ओर इन सिद्धान्तों ने और उनकी कठोरता एक कठोर अनुशासन ने चीन में जड़ता को भी जन्म दिया जिसके कारण चीनी जनता का बौद्धिक विकास कालान्तर में रुक गया और चीनी परम्पराओं और रूढ़ियों का अनुगमन करने लगे। कठोर सदाचार ने चीनी राष्ट्र को उन स्थलों से दूर कर दिया जिनके द्वारा नवीन जीवन और सरस अनुभूतियों का सृजन होता था। आमोद-प्रमोद एवं राग-रंग को भी कोई मान्यता नहीं मिली।

(5) माङ्ग-जे या मेन्शीयस (Mencius)—मेन्शीयस का समय 378 ई० पू० से 288 ई० पू० तक का माना जाता है। इस पर कन्फ्यूशियस के ग्रन्थों से

अधिक प्रभाव इसकी माता का पड़ा था जिसे चीनी इतिहासकारों ने आदर्श माँ के रूप में पुकारा है। अपने गुरु की भाँति वह भी अपने विचारों को व्यावहारिक रूप देने के लिए किसी राजा की खोज में विदेशों में भटकता फिरा था।

मेन्शियस एक शांतिप्रिय दार्शनिक था। उसने घोषणा की कि यद्यपि मैं युद्ध वीर और योग्य कूटनीतिज्ञ हूँ फिर भी युद्ध की भर्त्सना करता हूँ। क्योंकि युद्ध मानव समाज के लिये विध्वंसकारी है, सेना तथा अधिकारियों का संहारक है। वह युद्ध को सभ्य समाज का कलङ्क समझता था और राज्य के सुसंचालन में धर्म को प्रमुख स्थान देता था। उसका विचार था कि धर्म पर आधारित राज्य ही समृद्ध हो सकता है और नागरिकों को भी अपने सुख और समृद्धि के लिए प्रयत्न करना अत्यन्त आवश्यक है।

मेन्शियस प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार देना चाहता था जिससे जनता का हित हो सके। उसका विश्वास था कि मनुष्य स्वभाव से अच्छा होता है और इसलिए अच्छी प्रवृत्ति को बढ़ाने के लिए सरकार को अच्छे राज्य-कर्मचारी नियुक्त करना चाहिये। अज्ञान और निर्धनता के कारण समाज में दुर्व्यवस्था उत्पन्न होती है, इसलिए राज्य को जनता की गरीबी दूर करने के उपाय करने चाहिये।

तत्कालीन शासकों ने उसके सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया और इनकी घोर निन्दा की। उस काल के साम्यवादी नेता सू-सींग (Hsu-Hsing) का कहना था कि राज्य के प्रमुख कर्मचारी मजदूरी होने चाहिये। परन्तु मेन्शियस कहता था कि सरकार को चलाने का कार्य पढ़े-लिखे लोगों को करना चाहिये। अतः साम्यवादी दल ने ही मेन्शियस के सिद्धांतों का विरोध किया। मेन्शियस का एक विचित्र सिद्धांत यह था कि जनता अत्याचारी शासकों के विरुद्ध विद्रोह कर सकती है परन्तु उसने युद्ध की प्रवृत्ति को बुरा कहा। उसके विचार में युद्ध एक महान अपराध था जिसके कारण शासक और प्रजा में शत्रुता उत्पन्न होती है।

कन्फ्यूशियस के बाद चीनी दार्शनिकों में मेन्शियस को ही स्थान दिया जाता है और उसी के कारण 1911 ई० के विद्रोह को प्रोत्साहन मिला।

(6) सून-जे (Hsun-Tze)

मनुष्यों के विषय में सून-जे के विचार मेन्शियस के विपरीत थे। वह कहता था कि मनुष्य स्वाभाविक रूप से बुराइयों से भरा हुआ है और इसी के कारण समाज में बुराइयाँ और अपराध उत्पन्न होते हैं। सरकार का कर्त्तव्य है कि शिक्षा और कानून द्वारा मनुष्य में अच्छे गुण उत्पन्न करे तभी मनुष्य में आत्म-त्याग की भावना उत्पन्न होगी और अच्छी सरकार का निर्माण होगा।

सून-जे प्रकृति को एक मन्दिर न मानकर कारखाना मानता है। उसका विश्वास है कि मनुष्य अपनी बुद्धि से बाकी कार्यों को पूरा करता है। कोई-कोई विद्वान उसे शुन कुआंग के नाम से भी पुकारते हैं। युद्ध के विषय में उनका मत है कि युद्ध शस्त्रों से नहीं करना चाहिये बल्कि शत्रुओं की प्रजा को सदाचरण से जीतने का प्रयास करना चाहिये। युद्ध काल तक यह एक उच्च राज्य-कर्मचारी के पद पर आसीन रहा और 235 ई० पू०, 70 वर्ष की आयु में इनकी मृत्यु हुई।

(7) चुयांग-जे (ChuangTze)

इतिहासकारों ने इन्हें आदर्शवादी दार्शनिक के नाम से पुकारा है। कुछ काल तक यह खी-युआन नगर में एक छोटा-सा राज्य-कर्मचारी रहा। वी राज्य के शासक ने इन्हें प्रधान-मंत्री पद देना चाहा परन्तु इन्होंने अस्वीकार कर दिया। लाओत्जे की भाँति इनका मत भी था कि सम्राट और शासक दुराचारी होते हैं। वह किसी चोर से कम नहीं होते। इनका कथन था कि प्राचीनतम सम्राटों के पहले चीन का स्वर्ण युग था जब न कोई सम्राट और न कोई सरकार थी। मनुष्य पशु-पक्षियों के साथ एक ही परिवार के सदस्यों की भाँति रहता था। किसी में ऊँच-नीच का भेद-भाव न था। इनका कहना था कि बुद्धिमान व्यक्ति शासनकर्त्ताओं और दार्शनिकों से दूर रहकर सरल जीवन व्यतीत करता है, कम बोलता है, निजी सम्पत्ति नहीं रखता और 'ताओ धर्म' का पालन करता है।

यह विश्व को एक रहस्यमय अव्यक्त एकता मानते थे और सरल जीवन में विश्वास करते थे। इनका विचार था कि मनुष्य प्रकृति के अंतहीन चक्र में तरह-तरह के रूप धारण करता है, मृत्यु भी एक प्रकार की शांति निद्रा है जो कि केवल रूप परिवर्तन के लिये होती है और पुनर्जन्म निद्रा से जागरण है।

(8) मो-ती अथवा मां-त्जू

इन्होंने भी चीन में स्वतंत्र सम्प्रदाय की स्थापना की। कन्फ्यूशियस के समान यह भी लू राज्य में रहता था और समाज कल्याण उसका ध्येय था। वह मानता था कि समाज की भलाई विश्व बन्धुत्व में है न कि धार्मिक अनुष्ठानों और व्यक्तिगत कल्याण में। वह कहता था कि मनुष्य की भलाई इसी में है कि वह ईश्वर की इच्छा के अनुसार जीवन बिताये। ईश्वर सबको प्यार करता है इसलिये सभी मनुष्यों को आपस में प्यार करना चाहिये और संसार को अपना परिवार मानना चाहिए। वह आक्रमणात्मक युद्धों को बुरा मानता था परन्तु रक्षात्मक युद्ध का पक्षपाती था प्रेतात्माओं में उसका विश्वास था परन्तु उन आत्माओं को प्रसन्न करने के लिये वह अपव्ययपूर्ण अनुष्ठानों का विरोधी था।

मेन्शियस ने उसके सिद्धांत की घोर आलोचना की है। उसके विपरीत विचार दूसरे दार्शनिक यांग-चू ने प्रकट किये हैं। यांग-चू मानता था कि मनुष्य का जीवन दुखों से भरा हुआ है और उनको दूर करने का उपाय करना मूर्खता है। सुखों का उपभोग करने वाले ही दुष्कर्मी कहे जाते हैं। मरने के बाद तथाकथित सदाचारी और दुराचारी सबकी एक-सी ही गति होती है।

(9) फा-चिया सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय का प्रसिद्ध दार्शनिक हान-फेई-त्जू था। वह और उसके समर्थक कन्फ्यूशियस के विचारों के विरोधी थे। उनका विचार था कि राजा अच्छे आदर्शों और चरित्र द्वारा प्रजा को अच्छे मार्ग पर ला सकता है। मनुष्य स्वभाव से ही दुष्ट होता है और राजा का धर्म उसे सुधारने का प्रयत्न करना है। कानून इस विषय में विशेष सहायक होता है। सुचरित्र राजा सरलता से नहीं मिलता और यदि आरम्भ में अच्छे चरित्र वाला हुआ भी तो यह नहीं कहा जा सकता कि वह आगे भी अच्छे चरित्र का रहेगा। कानून अपरिवर्तनशील होते हैं इसलिए उनकी सहायता से ही सुशासन उत्पन्न किया जा सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चाऊ-वंश के शासन में जो दार्शनिक विचारधारा चीन ने विश्व को प्रदान की, चिरंतन और चिरकालीन है। इस दार्शनिक विचारधारा के फलस्वरूप ही चीन में नवजीवन का आलोक आया।

चाऊ वंश की दो शाखाएँ पश्चिमी चाऊ वंश और पूर्वी चाऊ वंश हो गई थीं जिनकी राजधानी हाओ और लोयांग थीं जो धीरे-धीरे समाप्त हुईं और अंत में चिन वंश ने सभी सामन्त राज्यों को समाप्त किया।

शी हुयांग-ती

शी हुयांग-ती की माता चीन की सम्राज्ञी थी जिसका अवैध सम्बन्ध उसके प्रधानमन्त्री लू (Lu) से था जो शी हुयांग-ती का पिता हुआ।

शी हुयांग-ती ने सभी सामन्त राज्यों को मिलाकर चीनी साम्राज्य की स्थापना की। कहा जाता है कि उसने अपने पिता को आत्महत्या करने के लिये बाध्य किया और माता को मरवा डाला। इस प्रकार 12 वर्ष की आयु में वह गद्दी पर बैठा और 25 वर्ष की आयु में अपना विजय अभियान आरम्भ कर दिया। उसने 6 महान राज्यों पर अपना अधिकार कर लिया। उनके नाम निम्न-लिखित हैं—

(1) हान राज्य	230 ई० पू० में
(2) चाओ राज्य	228 ई० पू० में

(3) वी राज्य 225 ई० पू० में
(4) चु राज्य 223 ई० पू० में
(5) येन राज्य 222 ई० पू० में
(6) ची राज्य 221 ई० पू० में

अन्तिम राज्य ची को जीतकर उसने अपना विजयाभियान समाप्त किया और इस प्रकार चीन में एक चक्रवर्ती साम्राज्य की स्थापना की।

यह अत्यन्त अनुदार और कठोर शासक था। इसका स्वभाव भी बड़ा क्रूर और निर्दयी था, परन्तु अन्तर में यह अत्यन्त डरपोक था। इतिहास में यह बहुत महान सम्राट समझा जाता है।

शी हुयांग-ती के कार्य—यह चक्रवर्ती सम्राट तो बन ही गया था परन्तु उसके पश्चात् उसने चीन की सुरक्षा के लिये सुप्रसिद्ध चीन की दीवाल का निर्माण कराया जिसकी लम्बाई 1500 मील थी और इसके द्वारा बर्बर जातियों के आक्रमणों को रोकने में सफलता मिली। प्रसिद्ध मनीषी वाल्टेयर का कथन है कि मिस्र के पिरामिड इस दीवार के समक्ष तुच्छ प्रतीत होते हैं। इस वृहत दीवार के बनने में 10 वर्ष लगे। इसका फल यह हुआ कि हूणों ने चीन पर आक्रमण करना आरम्भ किया जिसके कारण रोम साम्राज्य का पतन हुआ।

शी हुयांग-ती का शासन-प्रबन्ध—शी हुयांग-ती के शासन की निम्नलिखित विशेषताएँ थीं—

(1) उसने ली-स्सू (Li-Ssu) को अपना प्रधानमंत्री बनाया था जो लिगेलिस्ट विचारों का था।

(2) वह राज्य द्वारा निर्मित क़ानूनों का उल्लङ्घन करने वालों को कठोर से कठोर दण्ड देने का समर्थक था। उसका मत था कि राज्य द्वारा निर्मित कानून ईश्वरीय कानून है और उनका पालन अवश्य ही होना चाहिये।

(3) उसके राज्य में समस्त सत्ता केन्द्र में निहित थी। केन्द्रीय सरकार की शक्तियाँ बहुत अधिक थीं। समस्त राज्य को 36 जिलों में विभाजित कर दिया गया था और प्रत्येक जिले के शासन के लिए एक शासक (Civil Governor), एक सेनाध्यक्ष (Military officer) तथा अन्य अफसरों की नियुक्ति की गई थी। जिले के शासन में इन लोगों को पूर्ण स्वतन्त्रता मिली हुई थी परन्तु वे सब केन्द्र के अधीन थे।

(4) वह जमीदारी प्रथा में विश्वास नहीं करता था, उसके राज्य में भूमि का मालिक किसान ही था। समस्त देश की अर्थ-व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के के लिये राजकीय सिक्के भी चलाये गये थे।

(5) उसने यातायात और गमनागमन की सुविधा के लिए अनेक सड़कों का निर्माण करवाया। यह समस्त सड़कें उसकी राजधानी होएनयांग से विभिन्न दिशाओं में जाती थीं। राजधानी में उसका बड़ा भव्य और सुन्दर महल था। इसके अतिरिक्त अनेक राजप्रासाद भी निर्मित कराये गये थे।

(6) उसने राजधानी की शोभा को बढ़ाने के लिये राज्य के 120,000 धनी और शक्तिशाली परिवारों को राजधानी में लाकर बसाया। उसका विश्वास था कि यदि यह परिवार राजधानी में रहेंगे तो राजधानी की शोभा तो बढ़ेगी ही साथ ही विद्रोह भी कम होगा।

शी हुयांग-ती का साम्राज्य-विस्तार—चीन में आंतरिक राजनीतिक एकता स्थापित करने के उपरांत उसने देश की सीमा के बाहर भी अपने राज्य को बढ़ाने की चेष्टा की। गीच जाति के लोगों के देश चेकिआँग को जीतकर हिंदचीन के समीप तक अपनी सीमा बढ़ाई। क्वांग-तुङ्ग प्रदेश का उपनिवेश भी उसी ने बनाया। सियंग नू नामक जाति को परास्त करके उसने राज्य की सीमा काँसू प्रदेश में लनचाऊ तक बढ़ाई। कोरिया के राज्यवंश ने भी उसका प्रभुत्व स्वीकार किया। इस विशाल प्रदेश पर उसने 210 ई० पू० तक राज्य किया और सारे राज्य में शांति बनाये रखने की पूर्ण व्यवस्था की।

एक विचित्र व्यक्तित्व—शी हुयांग-ती एक विचित्र व्यक्तित्व का व्यक्ति था। यद्यपि उसने बहुत से राज्यों पर विजय प्राप्त की, परन्तु उसे चीनी इतिहासकारों ने उतना उच्च स्थान नहीं दिया है जितना अन्य सम्राटों को। इसका मुख्य कारण उसकी अनुदार नीति था। उसका व्यक्तित्व देखने में ही बहुत भयानक था। उसके रूप-रंग की चर्चा करते हुये विल ड्यूरांट (Will Durant) ने लिखा है—

"A man with a very prominent nose, with large eyes, with the chest of a bird of prey, with the voice of a jackal, without beneficience, and with the heart of a tiger or wolf."

वह वेश बदलकर अपने राज्य में घूमता था और जहाँ कहीं भी कोई अपराधी मिल जाता उसे कड़ा दण्ड देता था। उसके राज्यकाल में विज्ञान को प्रोत्साहन दिया गया और वह वैज्ञानिकों का आदर भी किया करता था। इसके विपरीत वह साहित्यकारों और दार्शनिकों का घोर विरोधी था यह कहा जाता है कि उसकी इस नीति का घोर विरोध हुआ और चीनी विद्वानों का एक प्रतिनिधि मण्डल उससे मिला। परन्तु उसने उनकी माँगों को ठुकरा दिया। इसके अतिरिक्त जनता के अधिकारों पर भी उसके राज्य में कुठाराघात हुआ।

उसका प्रधानमंत्री ली-स्सू भी उसी की भाँति इतिहासकारों का विरोधी था। उसकी राय से सम्राट ने समस्त ऐतिहासिक ग्रंथों को जलवा दिया। केवल

विज्ञान की पुस्तकों को नहीं जलाया गया और कुछ दर्शन की पुस्तकें भी अविशिष्ट रहीं। उसके इस कार्य का विरोध करने वालों को कड़ी सजा दी गई। यह कहा जाता है कि उसने लगभग 640 विद्वानों को मौत के घाट उतार दिया और जब जनता उसके इस कार्य का विरोध किया तो जनता पर भी घोर अत्याचार किये गये।

शी हुयांग-ती के अत्याचारों के फलस्वरूप जनता उसे बहुत गिरी हुई नजरों से देखने लगी। कहा जाता है कि अपने जीवन के अंतिम दिनों में वह बहुत अधिक दुखी रहता था। वह अपने हाथ में सदैव एक नंगी तलवार लिये रहता था। जीवन के अंतिम दिनों में वह बिल्कुल पागल-सा हो गया और अमरत्व की खोज करने लगा। उसने एक ऐसा आविष्कार करने का प्रयत्न किया जिससे वह कभी न मरे।

शी हुयांग-ती एक बड़े विचित्र व्यक्तित्व का मनुष्य था। एक ओर तो वह बहुत अधिक पराक्रमी और वैज्ञानिकों का आदर करने वाला था और दूसरी ओर दार्शनिकों और साहित्यकारों का विरोधी। कहा जाता है किसी भी राजा को साहित्यकार और इतिहासकार ही जीवित रखते हैं। यदि कोई राजा साहित्यकारों और इतिहासकारों की नजरों में गिर जाता है तो उसके श्रेष्ठ कार्य भी छिप जाते हैं। यही हाल शी-हुयांग-ती का भी हुआ। इतना अधिक पराक्रमी होने पर और कई राज्यों को जीतने पर भी इतिहासकारों ने उसे गौरव नहीं प्रदान किया। इसमें किंचित् मात्र भी सन्देह नहीं कि यदि उसमें यह पागलपन न होता तो उसकी गणना भी चीन के श्रेष्ठ सम्राटों के मध्य होती।

शी हुयांग-ती की मृत्यु और चिन वंश का पतन

जीवन के अन्तिम दिनों में वह अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा के लिये बहुत चिंतित रहता था। इसी कारण अपने शयन-कक्ष बदला करता था। उसने नागरिकों की स्वतन्त्रता का हनन किया था, उसने बहुत बेगार ली थी और बहुत से लोगों को बल-पूर्वक चीन देश छोड़कर उपनिवेश में रहने के लिये बाध्य किया था। इस कारण उसके तानाशाही शासन से जनता दुखित हो उठी थी। उसकी हत्या की भी चेष्टा की गई परन्तु षड्यन्त्रकारी सफल न हुये। उसने षड्यन्त्रकारियों को बड़ी क्रूरता के साथ स्वयम् अपने हाथों से काटा।

अन्तिम काल में उसकी क्रूरता और विलासिता बहुत बढ़ गई थी। 210 ई० पू० में जब उसकी मृत्यु हुई तब उसका मन्त्री बड़े गुप्त ढंग से उसके शव को राजधानी में लाया।

उसके उत्तराधिकारी पुत्र ने शव पर एक बड़ी समाधि बनवाई। किंवदन्ती है कि शव के साथ कई जीवित सुन्दरियाँ गाड़ दी गईं क्योंकि उस काल में ऐसा विश्वास किया जाता था कि यह सुन्दरियाँ पारलौकिक जीवन में उसका साथ देंगी। समाधि की छत पर उसके साम्राज्य का एक मानचित्र भी बनाया गया जिससे उसकी स्मृति चिरस्थायी रह सके।

साम्राज्य का अन्त

शी हुयांग-ती की मृत्यु के एक वर्ष पूर्व से ही चेंग-शेंग और वु-कुआंग नामक नेताओं ने राजवंश के विनाश के लिये प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया था। कृषक बहुत बड़ी संख्या में इस विद्रोही सेना में भर्ती हुये। दूसरी ओर वह सामन्त भी जो राज से च्युत कर दिये गये थे अपना सर उठाने लगे। यद्यपि चेंग-शेंग और वु-कुआँग क्रमशः धोखे से मारे गये परन्तु विद्रोह को अग्नि जलती ही रही और सामन्तों ने विद्रोही सेना संचालन करके 207 ई० पू० तक चिन वंश का विनाश कर डाला। अन्त में हन वंश का आरम्भ हुआ।

सारांश

चीन की सभ्यता विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से है। चीन की जलवायु समशीतोष्ण है और यहाँ विभिन्न जातियों के लोग निवास करते हैं। चीनियों के विश्वासानुसार प आन-कु ने संसार की रचना की है।

चीन के राजनीतिक इतिहास को तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है। पहला युग साम्राज्य-विस्तार का युग कहा जा सकता है। यह युग 2852 ई० पू० से 206 ई० तक माना जाता है। इस युग के आरम्भिक राजाओं को हम अलोक काल के शासकों के नाम से पुकार सकते हैं। इस काल में फू-सी, शेन-नुंग, हुआँगती, याओ और शून नामक राजाओं ने राज्य किया। तत्पश्चात् चीन में सिया वंश का राज्य हुआ। सिया सम्राटों में यू, चीये आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। सिया वंश के पश्चात् शाँग वंश का शासन हुआ जिसमें 28 सम्राट हुये। इस वंश का सबसे प्रसिद्ध सम्राट यू-यी और अन्तिम सम्राट चाऊ-सीन था। तत्पश्चात् चाऊ-वंश के हाथ में चीन की बागडोर आई। यह युग चीन के इतिहास का महत्वपूर्ण युग है। इस युग में पाँच प्रमुख राज्य थे। इस युग में सामन्तशाही प्रथा को अपनाया गया। इन सामन्तों में विभाजन की प्रथा थी। जनता में आखेट की प्रथा व्यापक मात्रा में थी। रँगाई, हस्तकला, वास्तुकला और अन्य प्रकार की कलाओं का इस युग में बहुत अधिक विकास हुआ।

इस काल को हम दार्शनिक काल के नाम से भी पुकार सकते हैं। इनमें वेन-वांग, तेंग-शीह, लाओत्जे, कन्फ्यूशियस, मेन्शियस, सून-जे, चुयाँग-जे, मो-ती आदि

के नाम प्रसिद्ध हैं। इन दार्शनिकों में सबसे प्रमुख कन्फ्यूशियस हुआ। जिनका जन्म 551 ई० पू० में लू राज्य में हुआ था। वह एक महान दार्शनिक, उत्कट राजनीतिज्ञ और श्रेष्ठ साहित्यकार था। उसके अनुसार श्रेष्ठ मनुष्य में स्पष्ट दृष्टि, दयाभाव, दूसरों का आदर करने की भावना, सद्व्यवहार, सजगता, विवेकशीलता आदि की भावना होना आवश्यक है। शासन के लिये तीन वस्तुएँ आवश्यक हैं—खाद्य-सामग्री, युद्ध-सामग्री, जनता का शासन में विश्वास। कन्फ्यूशियस सामन्तवादी व्यवस्था में क्रांति करके समाजवाद की स्थापना करना चाहता था। उसके ग्रन्थों को 'पाँच-चींग' की संज्ञा दी गई है। कन्फ्यूशियस की विचारधारा ने चीन में राष्ट्रीय एकता स्थापित करने में बड़ा योग दिया।

चाऊ वंश के पश्चात् शी हुयांग-ती चीन का प्रसिद्ध सम्राट हुआ। उसने साम्राज्य-विस्तार की नीति को अपनाया। उसका व्यक्तित्व बड़ा विचित्र था। उसने जनता पर तरह-तरह के अत्याचार किये। वह इतिहासकारों और दार्शनिकों का विरोधी था परन्तु वैज्ञानिकों का आदर करता था। उसकी मृत्यु 210 ई० पू० में हुई।

———

अध्याय | 11

हन काल

(HAN DYNASTY)

प्रश्न 1—हन वंश के समय में चीन ने सांस्कृतिक क्षेत्र में क्या उन्नति की ?

(लखनऊ विश्वविद्यालय)

What cultural progress was made by China in the time of the Hans ?

(Lucknow University)

प्रश्न 2—चीनी सभ्यता के इतिहास में हन काल की महत्ता को स्पष्ट कीजिये ।

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

Explain the significance of the Han period in the history of Chinese civilizations.

(Allahabad University)

हन-वंश का इतिहास

हन-वंश की गिनती चीन के वैभवशाली रचनात्मक काल में की जाती है । इस वंश का कार्यकाल 426 वर्ष रहा । चीन के उत्थान का जो प्रयत्न चीन वश के काल में आरम्भ हुआ था उसकी पराकाष्ठा हन-काल में हुई । इस समय चीन देश में सभ्यता, संस्कृति और शासन-व्यवस्था का अति अधिक विकास हुआ ।

हन-वंश के राज्यकाल को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) पूर्व हन-वंश (206 ई० पू०—23 ई०)

(2) उत्तर हन-वंश (23 ई०—220 ई०)

पूर्व हन-वंश

इस वंश की स्थापना ल्यू पंग नामक व्यक्ति ने की थी और इस वंश का काल 206 ई० पू० से 195 ई० पू० तक माना जाता है । यद्यपि ल्यू पंग का जन्म एक नीचे परिवार में हुआ था परन्तु अपनी योग्यता, तत्परता और विलक्षण बुद्धि के कारण वह बहुत उन्नति कर गया । चीन शासन में वह साधारण कर्मचारी था, परन्तु

शी हुयांग-ती की मृत्यु के पश्चात् उसने एक विशाल सेना संगठित करके राजसत्ता को हस्तान्तरित करने के लिये विद्रोह किया। इसी काल में सियंग यू नामक प्रभावशाली व्यक्ति से उसका सम्पर्क हुआ। वह ल्यू पंग का सबसे शक्तिशाली प्रतिद्वन्दी था और अन्त में ल्यू पंग ने उसे परास्त करके उसके पिता और पत्नी को बन्दी बना लिया सियंग यू ने आत्म-हत्या कर ली।

ल्यू पंग का शासन—संसार के इतिहास में ल्यू पंग की गणना उन महान व्यक्तियों में की जाती है जिन्होंने अपने उत्साह और योग्यता के बल पर गद्दी प्राप्त की। इसे काओत्सू अथवा काओती नाम से भी पुकारा जाता है। कुशल सेनानायक होने के अतिरिक्त वह चतुर शासक था। साधारण जनता से उसे स्वाभाविक सहानुभूति थी। वह बराबर कहा करता था, कि सम्राट होने का मुझे कोई गर्व नहीं है। चिन वंश के कठोर कानूनों को शिथिल करके उसने उदार शासन की स्थापना की। दरबार के शिष्टाचार के प्रतिबन्धों को हटाकर व्यक्तिगत विषयों में राजकीय प्रबन्धकों के हस्तक्षेप को कम किया। वह कन्फ्यूशियस के सिद्धान्त को मानता था, कि सम्राट का वास्तविक कर्त्तव्य जनता के हितों की रक्षा करना है। वह और उसका प्रधान मन्त्री लू-चिया कन्फ्यूशियस के मत पर निष्ठा रखते थे। कन्फ्यूशियस के अनुयायी विद्वानों की सहायता से उसने दरबार के शिष्टाचार और शासन सम्बन्धी नियमों की एक विधि तैयार कराई। योग्यता के आधार पर उच्च पदों पर व्यक्तियों की नियुक्ति को आवश्यक घोषित किया। उसने अपनी राजधानी वेई नदी के तट पर चंगम नगर में बनाई। इसमें प्रायः सभी धर्मों के मन्दिर और पुजारी थे। साम्राज्य का विभाजन भी नवीन ढंग से किया गया। सारे देश को मण्डलों में बाँटा गया। मण्डल का सर्वोच्च अधिकारी राजकुल का व्यक्ति होता था। उसे वंग कहते थे। उसका कार्य यह भी था कि सम्राट को गुप्त सूचनाएँ देता रहे। वंग की सहायता के लिये सेना होती थी जिसका नायक सम्राट द्वारा नियुक्त कोई विश्वसनीय व्यक्ति होता था। परोक्ष में वह सामन्तवाद का विरोधी था परन्तु प्रकट में उसने उसका विरोध नहीं किया।

उसके शासन-काल में कर्मचारियों को जागीरें दी गई थीं और उन पर उच्च राज्यकर्मचारियों का नियन्त्रण रहता था जिससे वह सम्राट के विपरीत कोई कार्य न करने लगें। जीवन के अन्तिम काल में उसके राज्य में विद्रोह की प्रवृत्तियाँ पनपने लगीं और उनके दमन में वह तत्पर हो गया। यह कार्य पूरा न हो पाया कि 195 ई० पू० में उसकी मृत्यु हो गई।

अन्तिम काल में वह सियंग नू नामक जाति के लोगों के विरोध को दबाने में असफल हुआ और अन्त में उनके नेता माऊ तोन से पराजित होकर उसे समझौता

करना पड़ा। उसे अपने पक्ष में करने के लिये उसने बहुत-सा द्रव्य और एक अत्यन्त सुन्दरी उसको भेंट की।

दुर्बलता का युग (195 ई० पू०—141 ई० पू०)

ल्यू पंग की मृत्यु के पश्चात् उसकी स्त्री लू हाऊ ने शासन की बागडोर सम्भाली और अपने अल्प वयस्क पुत्र हुइ टी को गद्दी पर बैठाया। हुइ टी ने पंग के सबसे प्रिय पुत्र को मरवा डाला। हुइ टी की मृत्यु के उपरान्त भी 180 ई० पू० तक लो हाऊ ही शासन का संचालन करती रही यद्यपि भाई की मृत्यु के उपरान्त वेंग टी सिंहासन पर बैठा। वेंग टी ने सुधारों का असफल प्रयत्न किया।

वेंग टी के उत्तराधिकारी पुत्र वेन टी ने अपने शासन को लोकप्रिय बनाने के लिए कर कम किए और दण्ड विधान को सरल किया। परन्तु सफलता प्राप्त होने के पूर्व ही 141 ई० पू० में उसकी मृत्यु हो गई।

वू-टी (Wu-Ti)

इसी नाम के अन्य राजवंशों के शासकों से प्रथक करने के लिए इसे हन-वंशी सम्राट वू-ती कहा जाता है। इसके काल में इतिहास में युगान्तकारी परिवर्तन हुये और हन-वंश की समृद्धि चरम सीमा पर पहुँच गई। राज्याभिषेक के समय उसकी अवस्था केवल 16 वर्ष की थी परन्तु उसने शासन कार्यों को बड़े उत्तरदायित्व और योग्यता के साथ 54 वर्ष तक सम्भाला।

उसके शासन-काल में साम्राज्य-विस्तार, शासन संगठन और जनता का सर्वोन्मुखी विकास हुआ। उसने अपने राज्य का विस्तार उत्तर-पश्चिम, उत्तर-पूर्व और दक्षिण दिशाओं में किया।

विजयाभियान—गद्दी पर बैठने के बाद उसने बर्बर जातियों को परास्त करके कोरिया, मन्चूरिया, अनाम, हिन्दचीन और तुर्किस्तान को अपने साम्राज्य में मिलाया।

साम्राज्य की सुरक्षा के लिए उसने सियंग नू जाति को पराजित करना बहुत आवश्यक समझा। उसने इस कार्य की सफलता के लिए युद्ध और कूटनीति दोनों का सहारा लिया। वू-ती ने कुशल राजनीतिज्ञ चंग-येन को अपना राजदूत बनाकर सियंग नू के विरुद्ध यूची लोगों की सहायता प्राप्त करने के लिये भेजा। फिर सियंग नू के विरुद्ध उसने तीन युद्ध किये। पहले युद्ध में सियंग नू को ओदोंस की सीमा के बाहर भगा दिया और इस प्रकार राजधानी चंगम को सुरक्षित किया। दूसरा युद्ध 121 ई० पू० में हुआ जिसमें नू जाति की करारी हार हुई और वह कांसू की पश्चिमोत्तर सीमा के बाहर भगा दिये गये। तीसरे युद्ध में चीनी नायकों वे चिंग और हुओ चु

पिंग के नेतृत्व के कारण सियङ्ग नू जाति के लोग पूर्णरूप से परास्त हो गये। भारतवर्ष की कुषाण वंश इसी जाति की एक शाखा का नाम है।

उत्तर पश्चिम की दिशा में वू-ती ने टेरिम और इली घाटी में रहने वाली जातियों को परास्त किया जिसके कारण उसे पश्चिमी देशों के साथ चीन का सम्पर्क बढ़ाने के लिए कई मार्ग मिल गये। बैक्ट्रिया, पार्थिया और सोगेन्डियाना से राजदूतों का आदान-प्रदान हुआ।

जैक्सार्टिज की घाटी में फर्घना का स्थानीय राजवंश राज्य करता था। उसने वू-ती को घोड़े भेंट करने से इन्कार कर दिया और प्रस्ताव वाहक चीनी राजदूत को मरवा डाला। वू-ती इस पर अत्यन्त क्रोधित हुआ और एक लाख व्यक्तियों की विशाल सेना उसने ली-कुआंग-ली के नेतृत्व में फर्घना के लोगों को परास्त करने के लिये भेजी। आधे सैनिक भूख-प्यास से मार्ग में ही मर गये और चीनी सेना को करारी हार उठानी पड़ी। दूसरी बार फिर चीनी सेना भेजी गई जिससे फर्घना की सेना को बड़ी कठिनाई से परास्त किया। कई इतिहासकारों ने इस युद्ध की तुलना रोम के विजय युद्धों से की है। विजय के उपरान्त वू-ती ने वहाँ एक ऐसे व्यक्ति को गद्दी पर बैठाया जो सदा के लिए वू-ती का सहायक और अधीन बन गया। इस विजय के फलस्वरूप पार्थिया से सम्पर्क का मार्ग खुला और पार्थिया के शासक ने सम्राट को प्रसन्न करने के लिये नटों और जादूगरों का एक दल उसके पास भेजा।

उत्तर-पूर्व की दिशा में भी वू-ती ने मन्चूरिया के दक्षिणी भाग और कोरिया के उत्तरी भाग को अपने अधीन करके राज्य का विस्तार किया। यद्यपि यह प्रदेश पहले चीन के अधीन हो चुके थे परन्तु तत्कालीन शासक सम्राट का आधिपत्य स्वीकार नहीं करते थे। वू-ती ने सेना भेजकर शासक को परास्त किया और उन शासकों द्वारा शासित समस्त भाग अपने अधीन कर लिया। 108 ई० पू० में उसने पिंगयङ्ग में एक बड़ा उपनिवेश स्थापित किया। इतिहासकारों का कथन है कि इसी प्रदेश से होकर चीनियों ने जापान में चीनी सभ्यता का प्रसार किया।

दक्षिण भाग में यांगट्सी और अन्नम नदियों के दक्षिण में रहने वाली जातियों को पुनः अपने अधीन करके वू-ती ने अपना साम्राज्य विस्तार किया। दक्षिण की विजयों में नन यूयेह की विजय बहुत महत्वपूर्ण है। यह क्षेत्र अत्यन्त उपजाऊ और सम्पन्न माना जाता था। शिन हांग-ती के एक कर्मचारी ने चिन वंश के पतन के उपरान्त वहाँ एक राज्य निर्माण किया था। इसके शासक पहले तो सिन वंश की अधीनता स्वीकार करते थे परन्तु आगे चलकर अपने को स्वतन्त्र राजा कहने लगे। इस राज्य की राजधानी कैन्टन थी। नन यूयेह को जीतने के उपरांत आर्थिक दृष्टि से उसको बड़ा लाभ हुआ। उसने नहरों का निर्माण किया और खेती का विकास

किया। कई छोटे-छोटे राज्य भी कालान्तर में जीते गये और इस प्रकार चीन का साम्राज्य बहुत बड़ा हो गया।

साम्राज्य विजय का वास्तविक रहस्य वू-ती का सैनिक संगठन है। चिन काल में रथ सेना मुख्य समझी जाती थी परन्तु इसने घुड़सवार सेना को प्रधानता दी जिसके कारण सेना में गतिशीलता उत्पन्न हुई। वू-ती के समय से कुछ दिन पूर्व रोम साम्राज्य का विस्तार किया गया था फिर भी चीनी साम्राज्य का आकार रोम साम्राज्य से किसी भाँति कम नहीं था।

घरेलू नीति— वू-ती के शासन सुधारों का प्रधान लक्ष्य केन्द्रीय शक्ति को दृढ़ करना था। वह सामन्तवाद और उच्च कुलों द्वारा शासन का विरोधी था। इसलिये उसने पदाधिकारियों की नियुक्ति में योग्यता को प्रधानता दी। कर्मचारियों को सेवाओं के लिये पुरस्कार दिये जाते थे। उनका चुनाव प्रतियोगिता परीक्षाओं द्वारा होता था। यह पद्धति वू-ती ने स्वयं पहली बार आरम्भ की थी। उसने एक प्रशिक्षण विद्यालय खोला जिसमें चुनाव के बाद कर्मचारियों को शासन के विषयों की व्यावहारिक शिक्षा दी जाती थी।

उसने प्रान्तीय शासन को भी दृढ़ बनाने की चेष्टा की। राज्यपालों की सहायता के लिये योग्य राज्य कर्मचारी नियुक्त किये जाते थे जो राज्यपाल के कार्यों की सूचना सम्राट को देते थे। सम्पत्ति विभाजन का नया कानून भी इसी में बना जिसके कारण बड़ी-बड़ी रियासतें शीघ्र समाप्त हो गईं।

उसके शासन सम्बन्धी आदर्श कन्फ्यूशियस के सिद्धान्तों पर आधारित थे। उसने कन्फ्यूशियस के एक अनुयायी को जन-शिक्षा का निर्देशक नियुक्त किया था। कन्फ्यूशियस के सिद्धान्तों द्वारा वह शासकों में नैतिकता की वृद्धि और आचारों में प्राचीन परम्पराओं का समावेश करना चाहता था। कन्फ्यूशियस मत के मानने वाले कुङ्ग सुन हुङ्ग और तुङ्ग चुङ्ग शु उसके बड़े परामर्शदाता थे। तुङ्ग चुङ्ग शु महान नैतिकतावादी था और विश्वास करता था कि सम्राट के कामों का प्रभाव ईश्वर की ओर से उसकी प्रजा पर पड़ता है। अर्थात् अन्यायी और पापी शासक के समय में दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि, अनावृष्टि और भूकम्प आदि दैवीय आपत्तियाँ आती हैं। वू-ती के शासन-काल में ही ईश्वरवाद को अधिक प्रधानता दी गई और दैवीय प्रभाव की प्रधानता को विशेष स्थान दिया गया।

आर्थिक नीति—साम्राज्य विस्तार के कारण व्यापारिक और आर्थिक नीति में भी महान परिवर्तन हुये। व्यापार पर राजकीय नियन्त्रण वस्तुओं का मूल्य निर्धारण, नाप-तौल की एकता आदि के नियम वू-ती के काल में ही बनाये गये। राजकीय व्यापार प्रथा का भी सूत्रपात हुआ। राज्य उत्पादित खाद्यान्न आदि को सस्ते मूल्य में खरीदता

था और मँहगी के समय में अधिक मूल्य पर बेचता था। नमक और लोहे के व्यापार का स्वामित्व राज्य को ही था। खेतों की सिंचाई के लिए नहरों का निकालना, यातायात के लिये राजमार्गों का निर्माण आदि कार्यों से साम्राज्य का आर्थिक विकास तो हुआ ही साथ ही राजनीतिक एकता को भी बल मिला। उसने कर वसूल करने की प्रणाली में भी पर्याप्त सुधार किये और मुद्रा नीति परिवर्तन की। राजकोष को बढ़ाने के लिये नये उपाय अपनाये गये जैसे जिन व्यक्तियों को अर्थ-दण्ड दिया जाता था उन्हें कारावास का दण्ड सरल दिया जाता था।

बौद्धिक उत्थान—वू-ती के काल में साहित्य सृजन का कार्य तेजी से हुआ। इस काल का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ शिह ची है जिसमें ऐतिहासिक संग्रह है। इसकी रचना सू-म-चियेन ने की थी। यह विद्वान अपने दीर्घ पर्यटन के कारण साम्राज्य के विभिन्न क्षेत्रों के भौगोलिक और सांस्कृतिक ज्ञान में पटु था। उसने प्रारम्भ से लेकर वू-ती के राज्य-काल तक का चीनी इतिहास लिखा है जो अन्य इतिहास लेखकों के लिये एक प्रमाणिक साधन है।

धार्मिक नीति—सम्राट की दीर्घायु और शक्ति वृद्धि के लिये तथा साम्राज्य की एकता के लिए वू-ती ने बहुत से धार्मिक सुधार भी किये। उसने जनता को विश्वास दिलाया कि सम्राट केवल राज्य का प्रधान नहीं वरन धर्म का भी प्रधान है। उसके शासन-लाल में दो धार्मिक अनुष्ठान—फेंग और शन किये गये। शन द्वारा पृथ्वी देवी और फेंग द्वारा आकाश देव की आकाश देव की आराधना की गई। उसका विश्वास था कि अनुष्ठानों के कारण प्रजा का कल्याण और राजा-प्रजा के पारस्परिक सम्बन्ध उन्नत होते हैं। अन्तिमकाल में वह ताओ वाद की ओर अधिक अग्रसर हुआ। उसने अमरत्व प्राप्त करने के लिये औषधियों का पता लगाने हेतु लोगों को विभिन्न देशों में भेजा।

मृत्यु और पूर्व हन-वंश का पतन—वू-ती की मृत्यु 87 ई० पू० में हुई। उसके परलोकगामी होने के उपरान्त 100 वर्ष तक हन-वंश का अधः पतन होता रहा। इस काल में 7 राजाओं ने राज्य किया जिनमें 5 साधारण प्रतिभा के शासक थे। उनके काल में विद्रोह, षड्यन्त्रों तथा बाहरी आक्रमणों का बोलबाला रहा। अयोग्य उत्तराधिकारियों के कारण प्रथम शताब्दी में ही इस वंश का शासन समाप्त हो गया।

वाङ्ग मङ्ग

पूर्व हन-वंश के पतन के उपरान्त शासन की बागडोर वांग मंग के हाथ में आई। कुछ विद्वान इसे हन-वंश का ही सम्राट मानते हैं और कुछ इसके वंश को हन-वंश से भिन्न मानते हैं। इसने सिन-हवांग टी की उपाधि धारण की। इसका

शाब्दिक अर्थ 'नव-सम्राट' है । कई चीनी इतिहासकारों ने इसके राज्य का बड़ा बुरा रूप चित्रित किया है क्योंकि इसने कई षड्यन्त्रों और हत्याओं के उपरान्त साम्राज्य की बागडोर सम्भाली थी । जिस समय वह सिंहासन पर बैठा था चीन की आन्तरिक स्थिति काफी चिन्ताजनक हो गई थी । वू-ती की भू-व्यवस्था की प्रतिक्रिया में बड़े-बड़े जमीदारों का जन्म हुआ जो कृषकों पर अत्याचार करते थे । दासों की दशा किसानों से भी बुरी थी । दासों का स्वामी अपने दास को प्राण-दंड तक दे सकता था ।

वांग मंग स्वयम् विद्वान था और राजनीतिज्ञों से हमेशा दूर रहता था। अपने शासन-काल के प्रथम वर्ष में ही उसने आन्तरिक स्थिति में सुधार करने का प्रयास किया ।

वस्तुओं का मूल्य निर्धारित कर दिया गया, भूमि को राष्ट्रीय सम्पत्ति घोषित कर दिया गया और बड़ी-बड़ी रियासतों का अन्त कर दिया गया । भूमि-वितरण का फिर से उचित ढंग अपनाया गया । दास-प्रथा समाप्त कर दी गई । नमक और लोहे पर राज्य का स्वामित्व रहा । राज्य में नई मुद्राओं का प्रचलन किया गया । गरीबों को राज्य की ओर से बिना सूद के ऋण दिया गया ।

उसने प्राचीन साहित्य की सुन्दर व्यवस्था की । ल्यूसिन नामक विद्वान की सहायता से पुराने ग्रन्थों का पुनः सम्पादन करवाया और सभी प्राचीन पुस्तकों की सूची तैयार कराई । शिक्षा प्रचार के प्रति उसने तरह तरह के ढंग अपनाए । वह कन्फ्यूशियस के सिद्धान्तों को मानता था अतः उसके अनुयायियों को विशेष प्रोत्साहन दिया और कन्फ्यूशियस के नाम पर बने हुये प्रसिद्ध मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया ।

अनाज वितरण की व्यवस्था को सुधारने के लिये उसने भोज्य पदार्थों को राज्य की ओर से खरीदकर बेचने के नियम बनाये । घरेलू उद्योग धन्धों के लिये व्यक्तियों को बहुत कम सूद पर कर्ज दिया जाता था ।

इसके शासन के अन्तिम काल में सीमा प्रान्त में विद्रोह आरम्भ होने लगे । सियंग नू जाति के लोगों ने वांग मंग के साम्राज्य के पश्चिमी-उत्तरीय भाग पर आक्रमण कर दिया । उसके क्रान्तिकारी परिवर्तनों के कारण धनी वर्ग और पुराने जमीदार भी रुष्ट थे । अतः उन्होंने भी विद्रोह आरम्भ कर दिया । बूढ़ा होने के कारण सम्राट उनका दमन न कर सका । दक्षिण में टांगकिंग नामक प्रदेश स्वतन्त्र हो गया । केन्द्र में लिउस नामक व्यक्ति के अधिनायकत्व में साम्राज्य विरोधी शक्तियाँ संगठन-बद्ध हो गईं और 23 ई० में वांग मंग मार डाला गया । यद्यपि वांग मंग मार डाला गया परन्तु उसके परिवर्तनों और सुधारों की छाप साधारण जनता पर वर्तमान रही और तुरन्त ही उत्तर हन वंश आरम्भ हो गया ।

उत्तर हन वंश (23 ई० से 220 ई०)

इस वंश का सबसे पहला शासक कुश्रंग वू-ती हुआ। इसने 30 वर्ष शासन किया और चीन की आन्तरिक स्थिति को दृढ़ करने का प्रयास किया। उसने अपनी राजधानी लोयम में बनाई। पूर्व हन वंश की शासन-पद्धति के आदर्श के अनुसार उसने भी शासन को संगठित किया। साम्राज्य विभाजन का आधार और शासन संस्थाओं के नाम भी पूर्व हन-वंश के अनुसार ही थे। इसी कारण बहुत से इतिहासकारों ने उसे पूर्व हन वंश की शाखा कहा है। उसके दरबार में बहुत से विद्वान थे और उसने उच्च शिक्षा के लिये एक विद्यालय भी खोल रक्खा था। कुश्रंग वू-ती की मृत्यु 53 ई० में हुई।

कुश्रंग वू-ती की मृत्यु के उपरान्त शासकों में अधिकांश अयोग्य और अल्पवयस्क व्यक्ति हुये। राजकुल की स्त्रियों ने भी राजनीति में भाग लेना आरम्भ किया और राजगद्दी के प्रति तरह-तरह के षड्यन्त्रों की आयोजना हुई। अन्तःपुर में शिखंडियों (हिजड़ों) का प्रभाव बढ़ने लगा और 190 ई० तक शासन का सारा कार्य उन्हीं के संकेत पर चला।

190 ई० में तुङ्ग चो नामक सेनापति ने सारी शक्ति अपने हाथ में ले ली और चीनी सम्राट उसके इशारों पर चलने लगा। तुङ्ग चो ने अपने शासनकाल में बड़ी कठोरता को अपनाया। फलतः 192 ई० में वह मार डाला गया।

उसकी मृत्यु के पश्चात् 220 ई० तक कई दुर्बल शासक हुये जिनके कारण चीन की दशा दिन पर दिन गिरती गई। 220 ई० में साओ पेई नामक व्यक्ति ने हन-वंश को समाप्त करके एक नवीन राजवंश की नींव डाली जो वेई वंश के नाम से प्रसिद्ध है।

इसी काल में तातारों के आक्रमण बढ़ने लगे परन्तु चीनी संस्कृति के विकास का क्रम जारी रहा। तातारी लोग चीनियों से मिश्रित हो गये और चीनी संस्कृति का विकास होता रहा।

हन-काल में सांस्कृतिक विकास

तरह-तरह के परिवर्तनों और विकासों को देखते हुये यह काल चीनी इतिहास में महत्वपूर्ण युग है। संस्कृति की दृष्टि से इस काल में काफी विकास हुआ। दोनों कालों में चीन में राजनीतिक एकता थी, विभिन्न देशों के साथ पारस्परिक सम्पर्क था और सभ्यताओं का आदान-प्रदान हो रहा था। काले सागर से लेकर चीन तक विभिन्न देशों की कलायें एक दूसरे से प्रभावित हुईं जिनका प्रत्यक्ष प्रमाण टेरिम घाटी की खुदाई, मंगोलिया के समीप कब्रों में गड़ी हुई वस्तुओं और विभिन्न क्षेत्रों के भग्नावशेष प्रस्तर खण्डों से स्पष्ट होता है। चीनी संस्कृति के गुणों से सियंग नू जाति

के लोग भी प्रभावित हुए थे। पश्चिमी और मध्य एशिया तथा रोम में चीन के रेशम का विशेष सम्मान था। चीनी लोगों ने भी पारसी, यूनानी और बेबिलोनियन कलाओं का अनुकरण किया। इस काल के धातु के बर्तनों पर कुछ ऐसी आकृतियाँ उपलब्ध हैं जो चीन के लिये नितांत नई थीं। इस देश के लोगों ने बाहरी देशों से शीशे का बनाना इसी काल में सीखा और विभिन्न प्रकार की मदिरायें निर्मित हुई। कोरिया के एक स्थल की खुदाई में प्राप्त बर्तनों पर सुनहरे ढंग का रोगन (पालिश) मिलता है। इतिहासकार अनुमान करते हैं कि यह भी बाह्य सम्पर्क का फल था।

हन नरेश मध्य एशिया के घोड़ों की सवारी को बहुत पसन्द करते थे। इन घोड़ों की घास 'अलफलफा' मध्य एशिया से लाकर चीन में लगाई गई थी। अंगूर की खेती और अन्य प्रकार के पौधे चीन में प्रथम बार आरोपित किये गये। चीनियों का भूगोल विषयक ज्ञान काफी बढ़ चुका था।

चीनियों ने यूनानी संगीत, चिकित्सा दर्शन, गणित और ज्योतिष को इसी युग में अपनाया तथा अपने गुणों से यूनान वासियों को प्रभावित किया।

शिक्षा और साहित्य का विकास

हन वंश के काल में प्रायः एक ही भाषा और एक ही लिपि का प्रचलन था जिसके कारण विदेशियों से सम्पर्क में तथा विचार-विनिमय में सरलता हुई। देश में बहुत काल तक आन्तरिक शान्ति थी जिससे लोगों में अध्ययन की रुचि उत्पन्न हुई। 125 ई० से उच्च पदों पर नियुक्ति के लिए लिखित परीक्षायें ली जाने लगीं। अतः महत्वाकांक्षी व्यक्ति विद्योपार्जन के लिये कटिबद्ध हो गये। प्रसिद्ध नगरों में विश्व-विद्यालय खोले गये। केवल चंगन के विश्वविद्यालय में लगभग 30000 विद्यार्थी थे। सम्राटों के पुस्तकालय विविध विषयों की पुस्तकों से भरे हुये थे। राजकीय पुस्तकालय में लगभग 13000 दुर्लभ ग्रन्थ थे। विद्यालयों के अतिरिक्त वरिष्ठ विद्वान आचार्य अपने घरों पर विद्यार्थियों को शिक्षा देते थे। शिक्षण संस्थाओं में केवल प्राचीन ग्रन्थों का अध्यापन किया जाता था। प्राचीन ग्रन्थों के प्रामाणिक संस्करण, अनुवाद और टिप्पणियाँ भी प्रस्तुत की गईं। इसी कारण इतिहासकार इस युग को 'लेखकों का काल' कहते हैं। वैद्यक, ज्योतिष, खगोल और युद्ध शास्त्र के विषयों पर महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना इस काल में हुई।

घटनाओं के आधार पर सही इतिहास हन काल में ही लिखना प्रारम्भ किया गया। माओ चियंग, ओड्स आदि लेखकों ने महत्वपूर्ण ग्रन्थों का संग्रह किया। प्रसिद्ध ऐतिहासिक संग्रह 'शु चिंग' का नवीन संस्करण इसी युग में तैयार किया गया।

ल्यू सियङ्ग और ल्यू सिन नामक दो विद्वानों ने 'चन कुओत्से' नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया जिसमें वांग मंग के शासन-काल की घटनाओं का प्रशंसापूर्ण वर्णन

किया गया है । शुश्रो वेन नामक एक प्रमाणित शब्द-कोष भी इसी काल में प्रस्तुत किया गया। ल्यू ऐन नाम के लेखक ने ताश्रो ते-चिंग नामक ग्रन्थ का संग्रह किया जिसमें 'ताश्रो वाद' की उत्पत्ति और उसके विकास का इतिहास है। इसी काल में प्रसिद्ध ग्रन्थ 'शिह-ची' की रचना सू-म-चियेन ने की। यह एक ऐतिहासिक संस्मरण है। इस ग्रन्थ की रचना में उसे पूरे 10 वर्ष लगे थे और इसमें ची के 2000 वर्षों का इतिहास है। इस ग्रन्थ में पर्याप्त उपयोगी सामग्री चीन के अतीत निर्माण के विषय में मिलती है। शासक वर्ग की अपव्ययता, क्रूरता और स्वार्थ भावना की कटु आलोचना भी इस ग्रन्थ में है। सफल ऐतिहासिक ग्रन्थ होने के अतिरिक्त यह उच्चकोटि को साहित्यिक रचना है जिसमें विभिन्न क्षेत्रों की भौगोलिक सामग्री भी प्रस्तुत की गई है। इन सभ्यता के विविध अंगों के सम्बन्ध में सूचनाओं का भंडार भी इस ग्रन्थ में पाया जाता है।

हन काल में ही पन पियाओ नामक साहित्यकार ने सू-म-च्येन के ग्रन्थ के ऊपर विस्तृत आलोचना लिखी और उसके पुत्र पन कु ने चियेन-हन शू नामक ग्रन्थ बनाया जिसमें प्रारम्भिक हन वंश का इतिहास है। यह ग्रन्थ पूरा नहीं हो पाया था कि उसको मृत्यु हो गई; अतः उसकी बहन 'पनचाओ' ने अपने भाई के कार्य को पूरा किया।

कविता संग्रह, ऐतिहासिक तथा समालोचनात्मक ग्रन्थों के अतिरिक्त इस काल में एक नवीन शैली का विकास हुआ जो अत्यन्त सरल, मधुर और प्रभावपूर्ण थी। इस काल के काव्य ग्रन्थों में चाऊ काल के साहित्यिक आदर्शों का बहुत कुछ अनुकरण किया गया है।

हन-कालीन दर्शन

हन काल में कोई मौलिक दर्शन-ग्रन्थ का निर्माण नहीं हुआ। केवल प्राचीन विचारधाराओं का ही विकास किया गया। मो-ती के अनुयायी पहली शताब्दी के अन्त तक विद्यमान थे और उस काल के राजाओं ने लिगेलिस्टिक विचारधारा को अपनाया। इस काल में ताओवाद और कन्फ्यूशियसवाद दो विचारधाराएँ विकसित हुईं। ताओवाद का आदर राजकुल में हुआ। हुआइ-नन-त्सु नामक व्यक्ति इस काल में ताओवाद का विशेष प्रचारक था। इस वंश के एक शासक ने लाओत्ज की जन्म-भूमि में श्रद्धापूर्वक पूजा की थी और उसकी याद को स्थिर रखने के लिये अपनी राजधानी में एक विशाल मन्दिर बनवाया था। उत्तर हन-वंश के काल में प्रत्येक ताओवादी को 5 बुशेल चावल प्रतिवर्ष अपने सम्प्रदाय को दान देना पड़ता था। कालान्तर में इन व्यक्तियों को इसी नाम से पुकारा जाने लगा। चंग-ताओ-लिंग ने ताओवादियों का सङ्गठन विशेष रूप से किया। ताओवादी सम्राट की स्वेच्छाचारिता का घोर विरोध करते थे और नागरिकों के विचारों की

स्वतन्त्रता के पक्षपाती थे। व्यक्तियों के निजी विषयों में राज्य का हस्तक्षेप भी उन्हें मान्य नहीं था।

राजाओं के संरक्षण में ताओवाद पनपा तो जनता ने कन्फ्यूशियस मत का स्वागत किया। प्रारम्भ में चीनी राजाओं ने इस मत के प्रति उदासीनता बरती परन्तु कुछ ही काल में चीनी सम्राटों ने इस मत का स्वागत किया और पाठ्य-पुस्तकों में इस मत से सम्बन्धित रचनाएँ पढ़ाई जाने लगीं, परीक्षाओं में प्रश्न पूछे जाने लगे और मत की मुख्य शिक्षाएँ पत्रों पर लिखी गईं। वङ्ग चुङ्ग और यङ्ग सियङ्ग आदि व्यक्तियों ने इस विचारधारा को बढ़ाने की चेष्टा की।

वंग चुङ्ग—यह चेकियांग के एक गरीब परिवार में उत्पन्न हुआ था। गरीबी के कारण पुस्तकें मोल लेने में असमर्थ था अतः उसने विधिशास्त्रों का अध्ययन पुस्तक विक्रेताओं की दुकानों में बैठकर किया। कालान्तर में उसने लोगों को अन्धविश्वासों से मुक्त कराने की चेष्टा की। वह ईश्वर की अटलता और आत्मा के अमरत्व में विश्वास करता था।

यंग सियंग—यह वङ्ग चुङ्ग का समकालीन न था। इसका विश्वास था कि मनुष्य में स्वभावतः अच्छाई बुराई का सम्मिश्रण है। यह कन्फ्यूशियस मत से अत्यन्त प्रभावित था इसलिये इसे पूरे तौर से स्वतन्त्र विचारक नहीं कहा जा सकता।

विज्ञान

हन काल में विज्ञान की भी विशेष रूप से उन्नति हुई। धूप-घड़ी का आविष्कार दूसरी शताब्दी में और पानी की घड़ी का आविष्कार प्रथम शताब्दी में हुआ। सू-म-चियेन का बनाया हुआ पंचांग आज भी कई स्थानों में प्रामाणिक माना जाता है। उसने साल में 365 दिन रक्खे हैं।

इसी काल में बहुत से वैज्ञानिक यन्त्रों का भी आविष्कार हुआ। तत्कालीन समाज में दुर्भिक्ष, ग्रहण, बाढ़ आदि को दैवीय प्रकोप माना जाता था परन्तु वङ्ग-चुङ्ग नामक वैज्ञानिक ने यह सिद्ध कर दिया कि यह प्राकृतिक घटनाएँ हैं और इनका समय पहले से जाना जा सकता है। विद्युत् को प्राचीन लोग ईश्वरी दण्ड मानते थे। परन्तु वङ्ग-चुङ्ग ने सिद्ध कर दिया कि यह अग्नि का ढेर है। उसके समस्त वैज्ञानिक विवेचन 'लुन हैंग' नाम के ग्रन्थ में मिलते हैं। उसने गणना द्वारा यह सिद्ध कर दिया था कि 180 दिन में चन्द्र ग्रहण और 42 महीनों के अन्तर से सूर्य ग्रहण होता है। भूकम्प जानने के यन्त्र का आविष्कार भी इसी काल में चेंग-हेंग ने किया। चंग-चुङ्ग चिग नामक चिकित्सक ने विभिन्न प्रकार के ज्वरों के कारण और निदान पर ग्रन्थ-रचना की।

धर्म

हन कालीन धर्म को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) स्थानीय धर्म (2) राजकीय धर्म

स्थानीय धर्म के अन्तर्गत चीन के प्राचीन देवताओं की पूजा की जाती थी। प्रत्येक प्राकृतिक तत्व के अलग-अलग देवता थे। जनता पित्रों की पूजा में भी विश्वास करती थी। समस्त देवी देवताओं की पूजा का सामूहिक स्वरूप हन देव-समाज था। इस काल की समाधियों की दीवारों पर देवी देवताओं के चित्र थे।

राजकीय धर्म का लक्ष्य सम्राट का सम्मान बढ़ाना था। इसके अनुसार आकाश देव (तियेन) की पूजा की जाती थी और जनता को बतलाया जाता था कि हन सम्राट आकाश देव का प्रतिनिधि स्वरूप पृथ्वी पर है। इस तरह जनता में सम्राट के प्रति विश्वास और भक्ति की भावना भरी गई। जनता में पंचतत्वों की पूजा की जाती थी जिनमें पृथ्वी सबसे प्रमुख तत्व था। इसी आधार पर फेंग और शन नामक धार्मिक अनुष्ठान सम्राट द्वारा किये जाते थे।

बौद्ध धर्म का आगमन

इन काल में चीन में बौद्ध धर्म का आगमन हुआ। दूसरी शताब्दी ई० पू० में एक चीनी राजदूत ने यूची लोगों से बौद्ध धर्म के बारे में सुना था। प्रथम शताब्दी में बौद्ध भिक्षु और अनुयायी चीन के तत्कालीन सम्राट के एक भाई के संरक्षण में रहते थे। चीन के मिंग ती नामक सम्राट ने स्वप्न में एक दिव्य पुरुष को देखा था जिसने उसके व्यक्तित्व पर प्रभाव डाला था। दूसरे दिन दरबार में एक मन्त्री ने बताया कि वह, दिव्य पुरुष शाक्य मुनि गौतम बुद्ध थे। इस काल से जीवन भर मिंग ती बौद्ध मत का अनुयायी हो गया और बौद्ध धर्म-ग्रन्थों को चीन लाने के लिये उसने दो राजदूत भारतवर्ष भेजे जो 65 ई० में भारतीय बौद्ध पुजारियों और धर्म ग्रन्थ को लेकर चीन लौटे। उनके रहने के लिये मिंग ती ने एक विशाल मन्दिर का निर्माण कराया। यह बौद्ध धर्म का प्रथम मन्दिर था। 190 ई० में एक बौद्ध देवालय का भी निर्माण कराया गया। द्वितीय शताब्दी के प्रारम्भ में लोयङ्ग में बौद्ध भिक्षुक रहते थे।

बौद्ध धर्म का मुख्य विषय मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति करके एहिक जीवन से मुक्ति प्राप्त करना था। यह शिक्षायें चीन की स्वदेशी परिस्थितियों के अनुकूल नहीं थीं। चीन के निराशावादी विचारक लौकिक जीवन को व्यर्थ नहीं मानते थे। वे लौकिक जीवन के सम्बन्ध में आशावादी थे और यहाँ के दार्शनिक समाज को सुखी बनाने में प्रयत्नशील थे। ताओवादी विचारक गम्भीर चिन्तन में विश्वास करते थे और संसार को मिथ्या बताते थे। इन विचारों में असमानता अधिक थी। अपने पारलौकिक गुणों के कारण ही बौद्ध धर्म चीन में पल्लवित हो सका।

बौद्ध धर्म के चीनी प्रचारकों में अन-शिह-काओ नामक पार्थियन राजकुमार का नाम उल्लेखनीय है। उसने राज्य-सिंहासन का त्याग करके बौद्ध धर्म की दीक्षा ली थी

और अपने अनुयायियों के द्वारा कुछ बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद चीनी भाषा में कराया था। सबसे पहले ताओवाद के समर्थकों ने बौद्ध प्रचारकों का स्वागत किया। परन्तु थोड़े ही समय के बाद चीनियों ने बौद्ध धर्म को विरोधी धर्म घोषित कर दिया क्योंकि कन्फ्यूशियस मतावलम्बी बौद्ध धर्म से जलते थे। यही कारण था कि इस काल में बौद्ध धर्म को चीन में आशातीत सफलता न मिल सकी।

संगीत एवं मनोविनोद

इन युग में संगीत और मनोविनोद के साधनों की भी विशेष उन्नति हुई। संगीत को राजा और प्रजा दोनों ही अच्छा समझते थे। इसलिये तीन प्रकार के बाजों का आविष्कार हुआ—

(1) वीणा—बैक्ट्रिया वालों के सम्पर्क से इस यन्त्र का आविष्कार हुआ। इसका प्रारम्भिक नाम पिपा था।

(2) कुङ्ग हाऊ—इसके स्वरूप और प्रयोग के विषय में अब कोई जानकारी नहीं है।

(3) जिथर—इसमें 14 तार होते थे और यह बाँस का बना होता था।

इस काल में लोग नृत्य, नटों की कला और चमत्कारों में अधिक आनन्द लेते थे। कुत्ते की दौड़ और मुर्गों का युद्ध भी दिल बहलाव का प्रिय ढंग था। तरह-तरह की क्रीड़ायें आयोजित की जाती थीं जिनमें वेइ-ची सबसे प्रसिद्ध क्रीड़ा थी।

अन्य क्षेत्रों में उन्नति

इस युग में सबसे अधिक वाणिज्य में विकास हुआ क्योंकि साम्राज्य का सीमा विकास बड़ी तेजी से हो रहा था। सभी राज्यों से व्यापारी सौदागर को लाते और ले जाते थे। रोम और चीन निवासी व्यापारिक सम्बन्ध इसी युग में कायम कर सके। रोम सम्राट ने अपने कुल व्यापारियों को राजदूत बनाकर चीन भेजा था। चीन का सिल्क विदेशों में बहुत प्रिय हो गया था। चमड़े, ऊन, फल और दालचीनी का विशेष रूप से निर्यात होता था। आयात में शीशा, घोड़ा, बहुमूल्य पत्थर, हाथी दाँत की वस्तुयें, ऊनी तथा रेशमी वस्त्र आदि मुख्य थे।

हन काल के पहले चीनी लोग बाँस और लकड़ी की तख्तियों पर या सिल्क पर लिखते थे परन्तु दूसरी शताब्दी के प्रारम्भ में लुङ्ग नामक हन वंश के एक पदाधिकारी ने बाँस की छाल, सन वृक्षों की छाल और कपड़ों के टुकड़ों तथा मछली पकड़ने के जालों के मिश्रण से कागज बनाने का ढंग खोज निकाला। एक नवीन प्रकार की लेखनी की भी खोज की गई तथा लिखने की नई प्रणाली का भी प्रचार किया गया जो सभी प्राचीन लिपियों से अधिक सुन्दर, सरल और वैज्ञानिक थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हन युग में चीन में राजनीतिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक विकास प्रचुर रूप से हुआ। चीनी इतिहास का यह काल अत्यन्त महत्वपूर्ण काल का माना जाता है। बर्न्स का कथन है—"चीनी इतिहास में हन परिवार का काल अत्यन्त आलोकपूर्ण रहा है।"

"The Han dynasty marks one of the most splendid Periods in Chinese History."

—Burns.

सारांश

इस वंश की गणना चीन के वैभवशाली रचनात्मक काल में की जाती है। इस काल को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। पूर्व हन-वंश जो 206 ई० पू० से 23 ई० तक रहा और उत्तर हन-वंश जो 23 ई० से 220 ई० तक रहा। पूर्व हन-वंश का संस्थापक ल्यू पंग था। उसके पश्चात् दुर्बलता का युग आया जो 141 ई० पू० तक रहा। तत्पश्चात् वू-ती नाम का प्रतिभाशाली सम्राट चीन की गद्दी पर बैठा। उसने सियंग नु जाति को पराजित किया, उत्तर पश्चिम में टेरिम और इली घाटी की जातियों पर विजय पाई। जैक्सार्टिज की घाटी में उसने बड़ी कठिनाई से अपना अधिकार किया। उत्तर-पूर्व में उसने मन्चूरिया के दक्षिणी भाग और कोरिया के उत्तरी भाग पर विजय प्राप्त की। उसने अपने शासन में अनेक सुधार भी किये तथा प्रान्तीय शासन को दृढ़ बनाया। उसके राज्य-काल में बहुत सी वस्तुओं को राजकीय नियन्त्रण में ले लिया गया। उसके शासन काल में दो धार्मिक अनुष्ठान फेंग और शन किये गये। 87 ई० पू० में उसकी मृत्यु हो गई। तत्पश्चात् इस वंश में कोई प्रतिभा-शाली सम्राट नहीं हुआ और प्रथम शताब्दी में ही इस वंश का पतन हो गया।

पूर्व हन-वंश के पश्चात् शासन की बागडोर वांग-मंग के हाथ में आई। इसका साम्राज्य-काल षड्यन्त्रों और हत्याओं से परिपूर्ण था। 23 ई० में वांग मंग मार डाला गया। बहुत से इतिहासकारों ने उसे पूर्व हन-वंश का शासक ही माना है।

उत्तर हन-वंश का पहला शासक कुअंग वू ती हुआ। उसकी मृत्यु 53 ई० में हुई। उसके पश्चात् अनेक छोटे-छोटे सम्राट हुये जिन्होंने थोड़े-थोड़े समय तक राज्य किया।

हन-काल में चीन का बहुत अधिक सांस्कृतिक विकास हुआ। इस काल में चीन का विदेशों से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था। चीन के रेशम की खपत मध्य एशिया और रोम में बहुत अधिक था। इसी युग में चीनियों ने यूनानी संगीत, चिकित्सा-शास्त्र, गणित और ज्योतिष को अपनाया। शिक्षा के क्षेत्र में भी पर्याप्त उन्नति हुई। 125 ई० तक उच्च पदों की नियुक्ति के लिये लिखित परीक्षाएँ होने लगी थीं। इससे

विद्योपार्जन की प्रवृत्ति को बढ़ाने में सहायता मिली। इस युग में चंगन का विश्व-विद्यालय बहुत प्रसिद्ध था जिसमें 3000 विद्यार्थी थे। घटनाओं के आधार पर इतिहास इसी युग में लिखा गया। ल्यू सियङ्ग और ल्यू सिन नामक दो विद्वानों ने 'चन कुओत्से' नामक ग्रन्थ लिखा जो इतिहास की दृष्टि से बहुत प्रसिद्ध है। इस युग में पन पियाओ नाम का एक और प्रसिद्ध साहित्यकार हुआ। इस काल में एक नवीन शैली का भी विकास हुआ।

इस काल में सम्राटों ने 'लिगेलिस्टिक' विचारधारा को अपनाया। ताओवाद और कन्फ्यूशियस मत का प्रचार बहुत अधिक हुआ। इस युग के दार्शनिकों में वंग-चुङ्ग और यङ्ग सियङ्ग के नाम उल्लेखनीय हैं। इस काल में कई वैज्ञानिक यन्त्रों का भी आविष्कार हुआ। वुङ्ग-चुङ्ग ने सिद्ध किया कि विद्युत् ईश्वरीय दंड नहीं वरन् अग्नि का ढेर है। धर्म के दो रूप देखने को मिलते हैं—स्थानीय धर्म, राजकीय धर्म। स्थानीय धर्म में चीन के प्राचीन देवताओं की पूजा की जाती थी। राजकीय धर्म में आकाश देव (तियेन) की पूजा की जाती थी। बौद्ध धर्म का आगमन भी चीन में इसी युग में हुआ। अनेक बौद्ध भिक्षु इस युग में चीन गये। 65 ई० में चीन बौद्ध धर्म का प्रथम मन्दिर बना।

———

अध्याय | 12

तंग काल (टांग काल)
(TANG DYNASTY)

प्रश्न 1—किन कारणों से टांग काल अत्यधिक महत्वपूर्ण था ?
(लखनऊ विश्वविद्यालय)

For what reasons was the period of T ang dynasty noteworthy ?
(Lucknow University)

प्रश्न 2—टांग वंश के समय में चीनी सभ्यता के प्रसार का संक्षिप्त वर्णन कीजिये। (लखनऊ विश्वविद्यालय)

Briefly describe the growth of Chinese civilization during the Tang dynasty.
(Lucknow University)

चीनी सभ्यता के इतिहास में तंग काल युग परिवर्तनकारी काल कहा जाता है। सन् 618 ई० में तंग राज्य वंश की स्थापना हुइ और चंगगन नामक नगर राजधानी स्थापित की गई। फिट्जराल्ड के अनुसार—"टांग परिवार का संगठन चीनी इतिहास में महान परिवर्तनकारी है।"

"The consolidation of the Tang dynasty is a turnir g point in the history of China."

—Fitzerald.

इस काल में देश का सर्वाङ्गीण विकास हुआ। इसकी राजधानी की स्थिति विकास के लिये अति अनुकूल थी। इस वंश के संस्थापक का नाम लि युग्रन था। परन्तु इतिहासकार उसे काओत्सु के नाम से पुकारते हैं। यद्यपि उसने केवल आठ वर्ष 618-626 ई० तक राज्य किया परन्तु इतने ही अल्पकाल में उसने अपने प्रतिद्वन्दियों के दाँत खट्टे कर दिये।

ताइ सुङ्ग

ताइ सुङ्ग का राज्यकाल 627 ई० से 649 ई० तक माना जाता है। 21 वर्ष की आयु में अपने पिता काओत्सु की मृत्यु के उपरान्त उसने चीन की गद्दी प्राप्त की।

किसी-किसी इतिहासकार का मत है कि सम्राट बनने के लिये इसने अपने 10 भाइयों की हत्या की। उसका राज्यकाल चीन के इतिहास का जाज्वल्यमान युग है। शासन का संगठन, साम्राज्य की समृद्धि और सभ्यता का विकास एवं राजवंश की शक्ति को पराकाष्ठा तक पहुँचाने का श्रेय इसी सम्राट को है।

गद्दी पर बैठने के उपरान्त इसने हूणों को मार भगाया और जो प्रान्त चीनी साम्राज्य से बाहर हो गये थे उन्हें फिर से अपने राज्य में मिलाया। तुर्क जातियों को इस सम्राट ने अपने वश में किया और वहाँ के छोटे-छोटे राज्यों ने उसकी प्रभुता स्वीकार की।

शासन सुधार—उच्च पदों पर नियुक्त करने के लिये प्रतियोगिता परीक्षाएँ इसके युग में ली गईं और योग्य व्यक्तियों का चुनाव किया गया। सेना और राजकीय विभागों के लिये अलग-अलग कर्मचारी नियुक्त किये गये। ताइ सुङ्ग ने सारे राज्य को 10 प्रान्तों में बाँटा और राज्यकुल से सम्बन्धित योग्य व्यक्तियों को इन क्षेत्रों का राज्यपाल बनाया। प्रान्तों का विभाजन भी छोटे-छोटे क्षेत्रों में किया गया; विभिन्न भागों की देखभाल के लिये इम्पीरियल कमिशनर्स नियुक्त किये जो राजधानी में रहकर समय-समय पर अपने अधीन क्षेत्रों का दौरा करते थे। जितने भी महत्वपूर्ण पद थे उनके लिये योग्य व्यक्तियों का चुनाव राजधानी में ही होता था। इस प्रकार प्रान्तों पर केन्द्रीय नियन्त्रण था। कृषि आदि के विकास के लिये नहरें निर्मित की गईं।

अन्य सुधार—इस सम्राट ने बलिदान की प्रथा को रोका और कन्फ्यूशियस की स्मृति में एक मन्दिर का निर्माण कराया। यह सम्राट विद्वान पुरुषों को विशेषकर इतिहास, दर्शन, गणित और काव्य के प्रतिभाशाली व्यक्तियों को सम्मान प्रदान करता था।

सैनिक सुधार—उसने अपनी सेना को और विशेषकर अश्व सेना को सुदृढ़ किया। सैनिकों को नवीन अस्त्रों के प्रयोग की शिक्षा दी गई और उन्हें रण-पद्धति में चतुर बनाया गया। उत्तरी सीमा की सुरक्षा के लिये उसने वहाँ किले-बन्दी की और तुर्कों को दबाने के लिये उचित मार्ग अपनाया। उसकी सेना ने पूर्वी तुर्कों को दबाकर उनका भू-भाग छीन लिया और कुछ ही दिनों के बाद पश्चिमी तुर्कों को भी कुचल डाला।

सीमा विस्तार—अपनी उत्तम सेना के सहयोग से उसने मंगोलिया के खितान और दक्षिणी मन्चूरिया के मंगोलों का दमन किया। काशागर, यारकन्द, समरकन्द और बुखारा आदि प्रदेशों के शासकों ने भी चीन का आधिपत्य स्वीकार किया। ताइ सुङ्ग की मृत्यु के काल तक रूसी तुर्किस्तान और अफगानिस्तान भी चीनी साम्राज्य में मिला लिये गये थे।

वैदेशिक सम्बन्ध—ताइ सुङ्ग कुशल सेनानायक ही नहीं था बल्कि कूटनीति का पंडित भी था। दूर देशों के शासकों के साथ उसने प्रेम-पूर्ण सम्बन्ध स्थापित किये। उसने भारतवर्ष में राजदूत भेजा और तिब्बत के सम्राट को आत्मसात करने के लिये एक चीनी राजकुमारी से उसका विवाह किया। जिन देशों को उसने जीता था उन देशों में चीनी प्रथाओं और बौद्ध धर्म का प्रचार किया। उसकी कूटनीति के कारण जंगली जातियाँ भी घबड़ा गईं। इसी कारण समकालीन लेखकों ने ताइ सुङ्ग के ऐश्वर्य की बड़ी प्रशंसा की है। विल ड्यूरांट का कथन है—"इसके पूर्व चीन में न तो इतना धन था, न इतनी प्रचुर मात्रा में खाद्य सामग्री थी, न इतने आरामदेह घर थे और न इतने सुन्दर कपड़े थे।"

"Never before had China known such wealth, never had she enjoyed such abundant food, such comfortable houses, such exquisite clothing."

—Will Durant.

साम्राज्य की आर्थिक स्थिति—इस युग में साम्राज्य का खजाना धन-धान्य से भरा हुआ जैसा कि पहले कभी नहीं था। नागरिक सिल्क के वस्त्रों का खूब व्यापार करते थे। चीन के गाँवों में भी सिल्क के कारखाने थे। जो कारखाना राजधानी के समीप था उसमें हजारों मजदूर काम करते थे। इस राजा के युग में साहित्य और कला का भी विशेष विकास हुआ। राजकीय पुस्तकालय में ग्रन्थों की संख्या इस समय लगभग 54000 पहुँच चुकी थी।

मृत्यु—मृत्यु के कुछ दिन पूर्व उसका ध्यान जेलों के सुधार और नीति की ओर भी गया। उसने यह नियम बनाया कि किसी व्यक्ति को मृत्यु-दण्ड देने के पहले राजा को तीन दिन का उपवास करना चाहिये। 649 ई० में उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र काओत्सुंग चीन का शासक बना।

काओत्सुङ्ग (649-683 ई०)

काओत्सुंग भी अपने पिता के समान ही वीर और विजयी था। उसने मन्चूरिया और कोरिया को अपने अधीन किया। जापानी जहाजी बेड़े को हराकर चीनियों की जलशक्ति का भी परिचय दिया। 649 ई० तक पश्चिम के तुर्कों को पूर्ण रीति से हराकर आक्सस नदी के पास के क्षेत्रों पर अपना अधिकार जमा लिया। इस युग में तंग साम्राज्य की सीमा भारतवर्ष तक पहुँच गई। अरब के लोग भी उसका लोहा मानते थे।

धार्मिक सुधार (Religious Reforms)—काओत्सुंग ने फेंग और शन नामी बलिदान की परम्परा को फिर से आरम्भ किया जिससे राजा की शक्ति और

समृद्धि का प्रदर्शन हो सके। सम्राट बौद्ध मत को मानता था इसलिये उसके समय में चीन में कई मठ स्थापित किये गये।

अन्तिम काल—उसके राज्य के अन्तिम काल में देश में विद्रोह की अग्नि भड़कने लगी थी। तिब्बतियों के विद्रोह के फलस्वरूप टेरिम की घाटी के कुछ प्रसिद्ध नगर साम्राज्य से निकल गये। तुर्कों ने भी ट्रान्सोक्सिग्राना से चीनियों को खदेड़ दिया।

बु हाऊ (683-705 ई०)

यह महिला कुग्रत्सुंग की प्रेमिका थी और काम्रो के जीवन के अन्तिम काल में शासन की समस्त बागडोर इसने अपने हाथों में ले ली थी। काम्रो की मृत्यु के उपरान्त उसने उसके कई पुत्रों को मरवाकर अपनी स्थिति को दृढ़ बनाया। इसका निजी जीवन भ्रष्टाचारों से भरा हुआ था परन्तु शासन बहुत कड़ा था। 705 ई० में 80 वर्ष की आयु में षड्यन्त्र द्वारा इसका वध करा दिया गया।

705 ई० से 712 ई० तक 7 वर्ष में कई अयोग्य व्यक्ति चीन की गद्दी पर बैठे और अन्त में 712 ई० में सुअन सुंग के हाथ में शासन की बागडोर आई।

सुअन सुङ्ग (712-756 ई०)

प्रारम्भिक अवस्था में सुअन सुंग बहुत सफल शासक था। उसने सभी षड्यन्त्रकारियों का दमन बड़ी चतुराई से कर दिया। पश्चिम में तुर्क और मंगोलिया को उसने तंग सम्राटों के अधीन किया। तिब्बत और अरब के सत्ताधारियों ने भी उसके सामने घुटने टेके। समरकन्द, बुखारा, ताशकन्द, तुर्किस्तान, पामीर और काश्मीर तक के राजाओं की सहायता सुअन सुंग ने की। उसके दरबार में कलाकारों और साहित्यकारों की भीड़ जमा रहती थी। इसी युग में लिपो, तुफू आदि कवि और हनकन, और बंग वेई नामक चित्रकार उत्पन्न हुये।

राज्य के अन्तिम काल में अनलुशन नामक व्यक्ति के संरक्षण में एक विद्रोही दल उठ खड़ा हुआ। सुअन सुंग बूढ़ा होने के कारण इस विद्रोह को न दबा सका और तंग वंश की बहुत-सी धाक समाप्त हो गई।

तंग वंश का अधःपतन

यद्यपि शासन सत्ता पर ग्रहण अनलुशन के विद्रोह से लग चुके थे परन्तु राजवंश के नाश होने में लगभग 150 वर्ष लग गये। राज्य के विनाश के मुख्य कारण निम्नलिखित थे—

(1) गृह-युद्ध (2) वाह्य आक्रमण (3) भ्रष्ट शासनकर्त्ता
(4) विलास प्रिय राजा (5) अराजकता

उत्तर पश्चिम की सीमा से जंगली जातियों ने कई आक्रमण किये। सुग्रन सुंग की मृत्यु के उपरान्त राजगद्दी के लिए कई पारिवारिक युद्ध हुये। तिब्बत के आक्रमण ने भी साम्राज्य को गहरी चोट पहुँचाई और राजधानी वंगगन को जीत लिया। अब उच्च पदों पर वंश परम्परा के आधार पर नियुक्तियाँ होने लगीं; अतः अयोग्य व्यक्ति शासन-प्रबन्ध में घुसने लगे। सम्राट की सत्ता जनता में क्षीण होने लगी। प्रान्तों पर से केन्द्र का अधिकार कम होने लगा। समुद्री डाकू, बन्दरगाहों को लूटने लगे। 880 से लेकर 907 ई० तक कई विद्रोह हुये जिनके कारण तंग वंश केवल इतिहास के पन्नों में रह गया।

तंग कालीन धर्म

धार्मिक दृष्टि से तंग सम्राट बहुत सहिष्णु थे और उन्होंने कई धर्मों के विकास में योगदान दिया। इस युग में चीन में निम्नलिखित धर्म प्रचलित थे—

(1) बौद्ध धर्म (2) ईसाई धर्म
(3) मनीच धर्म (4) इस्लाम धर्म

(1) बौद्ध धर्म

सम्राटों के संरक्षण में कई बौद्ध भिक्षुओं ने धार्मिक प्रचार किया और इसी युग में तीन सम्प्रदाय स्थापित हुए—

(क) फासियांग सम्प्रदाय (ख) चेन येन सम्प्रदाय (ग) विनय सम्प्रदाय

फासियांग सम्प्रदाय की स्थापना एक भारतीय आचार्य ने की थी और इसमें चीनी बौद्ध दर्शन को व्यक्त किया गया है। यह सम्प्रदाय बहुतांश में आदर्शवादी था और इस सम्प्रदाय द्वारा रचित ग्रन्थों में तर्क-सम्मत व्याख्या प्राप्त होती है। धार्मिक अनुभूति का मार्ग इस सम्प्रदाय के अनुयायियों ने योगाभ्यास को बतलाया है।

चेन येन सम्प्रदाय की स्थापना एक भारतीय तन्त्रवाद के आधार पर हुई। कुछ लोग इसे बौद्ध धर्म का भ्रष्ट सम्प्रदाय मानते हैं। इसके मानने वाले धार्मिक आडम्बर और कर्म-काण्ड में विश्वास करते थे।

विनय सम्प्रदाय का नाम चीन में लूत्सुंग सम्प्रदाय था। इसका जन्मदाता ताओ सुग्रन था। इस सम्प्रदाय के मानने वालों का विश्वास था कि मोक्ष प्राप्ति के लिये नैतिकता और सदाचार अति आवश्यक हैं।

बौद्ध धर्म के प्रचारकों में भारतीयों का आविष्ट योग है। भारतीय प्रचारकों में निम्नलिखित अति प्रसिद्ध हैं —

(1) प्रभाकर मित्र (2) शुभाकर सिंह (३) वज्र बोध
(4) अमोघ वज्र (5) बोधि रुचि

(1) **प्रभाकर मित्र**—यह भारत के नालन्दा विश्वविद्यालय का बौद्ध आचार्य था। उस काल में नालन्दा विश्वविद्यालय शिक्षा का अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र था। तिब्बत और चीन से विद्यार्थी यहाँ अध्ययन करने के लिये आते थे। प्रभाकर मित्र तंग काल में बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये चीन गया। उसका जन्म एक राजकुल में हुआ था और उसने नालन्दा में रहकर शीलभद्र से महायान सूत्रों का गूढ़ अध्ययन किया था और बौद्ध दर्शन को गहन दृष्टि से देखा था। विदेशी होते हुये भी भारतीय विश्वविद्यालय में शिक्षक के पद पर इसकी नियुक्ति की गई और फिर वह चीन चला गया जहाँ तंग सम्राट ने उसे चीनी भाषा मे बौद्ध ग्रन्थों के अनुवाद का काय सौंपा। 633 ई० में चीन में ही उसने निर्वाण प्राप्त किया।

(2) **शुभाकर सिंह**—यह अपने को बुद्ध के पैतृक कुल में मानता था। नालंदा विश्वविद्यालय में बौद्ध साहित्य का गहन अध्ययन करने के उपरान्त वह धर्म प्रचार के लिये चंगगन गया और उसने चीन सम्राट को कई प्रतिलिपियाँ भेंट की। कुछ दिन के बाद वह लायंग आया और यहाँ उसका सम्पर्क बोधरुचि नामक दूसरे बौद्ध प्रचारक से हुआ। उसने चीन में शिक्षक के रूप मे बहुत ख्याति प्राप्त की और विशेष ढंग से बौद्ध अध्यात्मवाद का आरम्भ किया। कई बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद भी चीनी भाषा में उसने किया। 99 वर्ष की आयु में 735 ई० में स्वर्ग सिधारा।

(3) **बज्र बोध**—यह दस वर्ष की अवस्था में नालन्दा विश्वविद्यालय में अपना राज परिवार छोड़कर आया था। कई वर्ष तक नालन्दा और वल्लभी में अध्ययन करने के उपरान्त वह काँची के पल्लव सम्राट नरसिंह पोत वर्मा के दरबार में आया। वहाँ से वह लंका गया और फिर चीन जाकर तंग सम्राट को 'महाप्रज्ञापारमिता सूत्र' की एक प्रतिलिपि भेंट की। लगभग 7 वर्ष तक उसने कई बौद्ध धर्म के ग्रन्थों का अनुवाद चीनी भाषा में किया। 732 ई० में इसकी मृत्यु हुई।

(4) **अमोघ बज्र**—इसका चीनी नाम पुकोंग था और यह बज्रबोध का शिष्य था। कई वर्ष तक बज्रबोध के साथ लोयंग में रहा और फिर बौद्ध ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ हस्तगत करने के लिये चीन से लंका होकर भारत पहुँचा। तीन वर्ष तक दन्तविहार नामक मठ में कई बौद्ध सम्प्रदायों का गहन अध्ययन किया और 500 भारतीय ग्रन्थ लेकर वह 740 ई० में चीन लौटा जहाँ लगभग 24 वर्ष तक बौद्ध धर्म का प्रचार किया एवं 75 से अधिक ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। उसका मुख्य ध्येय तंग काल में बौद्ध धर्म की विविध शाखाओं में एकता लाना था।

(5) **बोधि रुचि**—यह दक्षिण भारत का निवासी था और यशघोष नामक बौद्ध भिक्षु से प्रभावित होने के कारण इसने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली और बौद्ध साहित्य का अध्ययन आरम्भ किया। जिस समय वह चालुक्य दरबार में था। एक चीनी

राजदूत के आग्रह पर वह जल-मार्ग से चीन पहुँचा। चीन में उसने कई भिक्षुओं की सहायता से बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद प्रारम्भ किया। जब वह चंगगन आया तंग सम्राट ने उसके रहने के लिये एक मठ का निर्माण कराया। यहीं उसने 7 वर्ष में महायान ग्रन्थ का अनुवाद किया। उसने 50 से अधिक ग्रन्थों का अनुवाद किया। रत्नकूट उसका अन्तिम अनुवादित ग्रन्थ है। 156 वर्ष की आयु में, 727 ई० में उसने स्वर्ग गमन किया।

(2) ईसाई धर्म

तंग सम्राटों में धार्मिक सहिष्णुता अधिक थी। चीन में ईसाई धर्म का प्रवेश भी इसी सहिष्णुता के कारण हुआ। इस काल में ईसाई मतावलम्बियों की दो शाखायें थीं—

(क) नेस्टोरियन

(ख) जैकोबाइट

नेस्टोरियन शाखा मानने वाले ईसा मसीह में देवताओं और मनुष्यों दोनों ही प्रकार की शक्तियों को मानते थे।

जैकोबाइट शाखा के भक्त ईशा मसीह को केवल ईश्वरीय शक्ति मानते थे।

तंग काल में चीन में कई गिरजाघरों का निर्माण कराया गया और धार्मिक पुस्तकों का अनुवाद किया गया। ईसाई धर्म का प्रचार करने वालों में ए-लो-पेन का नाम उल्लेखनीय है। जब यह चीन आया तो ताइ सुंग का शासन-काल था और उसने इसका बड़े प्रेम से स्वागत किया।

(3) मनीच धर्म

यह धर्म पारसियों के प्रभाव से ओत-प्रोत था। पश्चिम में मेसोपोटामिया और भूमध्य सागर के देशों में इसके अनुयायियों की संख्या यथेष्ट थी। 7वीं शताब्दी के अन्त में इसका समावेश चीन में हुआ। राजधानियों में धर्म मन्दिरों की स्थापना की गई और अनुयायियों के घरों में धर्म ग्रन्थों का पाठ होता था।

(4) इस्लाम धर्म

तंग काल में अरब से व्यापारी चीन आया करते थे। विद्वानों का ख्याल है यही व्यापारी इस्लाम धर्म को भी अपने साथ लाए। किंवदन्ती है कि मोहम्मद साहब के एक सम्बन्धी चीन आये थे और उन्होंने एक मकबरा बनवाया था।

व्यापारी वर्ग में कुछ यहूदी भी थे अतः उन्होंने भी अपने छोटे से वर्ग में यहूदी धर्म का प्रचार किया। यहूदी कुशल व्यापारी थे इसलिये धर्म के प्रपंच में अधिक नहीं पड़े।

ताम्रोवाद

तुंग युग के राजाओं में कन्फ्यूशियस के धर्म की अधिक मान्यता थी। इस मत के अनुसार पारिवारिक जीवन सर्वप्रथम था और इसी कारण गृहस्थ लोग इस धर्म में अधिक आस्था रखते थे। सम्राटों की प्रेरणा से कन्फ्यूशियस के मन्दिर बनाये गये, विद्यार्थियों को इस मत के ग्रन्थों का पाठ कराया जाता था। तुंग काल में ताम्रो मत का प्रसिद्ध विद्वान लू येन था। व्यवहार के क्षेत्र में वह व्यक्तिवादी था और चाहता था कि हर एक मनुष्य मोक्ष प्राप्ति के लिये प्रयत्न करे। इसी युग में तु यु ने तुङ्ग तियेन नामक ग्रन्थ लिखा और ल्यू चिह ची ने शिह तुंग नामक ग्रन्थ का सृजन किया। गद्य साहित्य के क्षेत्र में हन यू ने गद्य रचना का एक नवीन युग आरम्भ किया।

तुङ्ग कालीन संस्कृति

काव्य—संस्कृति के विकास की दृष्टि से तंग काल को चीनी सभ्यता का दूसरा स्वर्ण युग माना जाता है। कविता, साहित्य, दर्शन और धर्म सभी में चीनी संस्कृति का एक नवीन युग दिखलाई देता है। इस युग में कई प्रसिद्ध कवि हुए जिनमें निम्नलिखित तीन उल्लेखनीय हैं—

(क) लिपो (ख) तुफू (ग) पोचुइ

(क) लिपो—साहित्यकार होने के अतिरिक्त इसे घूमने-फिरने, मदिरापान और कामनियों के संग रंगरेलियों का बहुत शौक था। यह सुश्रन सुंग का दरबारी कवि था और सम्राट की प्रेमिका यंग कुई फी के विषय में कई कवितायें लिखी। कुछ लोग उसे चीन का कीट्स कहते हैं। यह सुदूर पश्चिम प्रदेश का निवासी था।

(ख) तुफू—यह भी सुश्रन सुंग का दरबारी कवि था और लिपो का सहयोगी था। प्रारम्भ में उसने आशावादी कविता की रचना की परन्तु ज्यों-ज्यों अवस्था बढ़ती गई वह उदासीनता की ओर अग्रसर होता रहा। हो सकता है कि उस काल में गृह युद्ध और खून-खराबी का जो दौर चल रहा था उसी कारण वह उदासीन हो गया हो। इसकी रचनाओं में प्रकृति का सुन्दर चित्रण है। तत्कालीन समालोचकों ने उसे तंग काल का सर्वोत्तम कवि माना है।

(ग) पोचुइ—सोचुइ के विषय में लाटूरेट का मत है—"बहुत काल तक उसकी बहुत-सी कविताएँ लोकप्रिय थीं और छोटे-बड़े सबकी जिह्वा पर थीं।"

"For years many of his poems were enormously popular and were on the lips of high and low."

यह कई वर्षों तक राजकीय पदों पर रह चुका था। कन्फ्यूशियस के सिद्धान्तों की छाप इसकी रचनाओं पर स्पष्ट रूप से पड़ी है। इसकी रचनाएं अलंकार विहीन परन्तु सुन्दर और प्रभावशाली हैं। सरल शब्दों में उसने नैतिक उपदेश दिये हैं जिसके कारण उसकी रचनायें सरलतापूर्वक कंठस्थ हो सकती हैं।

गद्य—तंग युग में यात्राओं के वर्णन, उपन्यासों और कथा साहित्य को विशेष प्रोत्साहन मिला। इस युग की कथाओं में गद्य और पद्य मिश्रित शैली के दर्शन होते हैं जिसे भारतीय साहित्यकारों ने चम्पू साहित्य कहा है। यात्राओं के वर्णन प्रायः सरल, बोधगम्य शैली में थे। सांस्कृतिक अवस्थाओं के अध्ययन के लिये इसी काल में नवीन साहित्य का जन्म हुआ। उपन्यासों में उस समय की सामाजिक दशा का स्पष्ट दर्शन होता है।

तंग युग में जितने साहित्यकार उत्पन्न हुये उतने शायद किसी भी प्राचीन युग में उत्पन्न नहीं हुये थे।

कला

तंग युग की कला की विवेचना करते हुये पाल एच० क्लाइड ने अपनी पुस्तक दि फार ईस्ट (The Far East) में लिखा है—"छगन में वस्तु निर्माण कला और नक्काशी का काम चरम सीमा पर था। इसकी जनसंख्या लगभग दो लाख थी और संसार के सर्वोत्तम नगरों में गिना जाता था।"

"Architecture and sculpture reached new peaks of excellence Changan, the capital with the population of nearly two million it 742, was one of the world's finest cities architecturally."

—Paul H. Clyde.

इस युग की कला के विकास में बौद्ध धर्म ने बहुत योगदान दिया है और कला में भारतीय तत्वों का समावेश मिलता है। भारत के मन्दिरों की भाँति यहाँ के मन्दिरों में भी प्रतिमायें हैं। चीन के मूर्ति निर्माणकारों ने गांधार कला (Gandhar Art) की विशेषताओं का अनुकरण किया है। मेन की प्रतिमाओं में दीवारों पर पूरी कला की छाप है। भावभंगी, वस्त्र और केश विन्यास सभी भारतीय हैं। इनके विलक्षण सौंदर्य, सजीवता और स्वाभाविकता को देखकर लाटुरेट (Latourette) नामक विद्वान ने कहा है—"कुछ लोगों की दृष्टि में पच्चीकारी का काम उत्कृष्ट सीमा पर था।"

"Painting now attained a high pinnacle—in the judgment of some, the highest in the Chinese History."

— Latourette.

इस काल का सबसे प्रसिद्ध कलाकार वु-ताओ-सुअन था। उसने चित्रकला में एक नया ढंग अपनाया और विषय की प्रधानता इसी काल में दिखाई देती है। चंगगन और

लोयन के मन्दिरों की दीवारों में इसकी कृतियाँ आज भी विद्यमान हैं। इसी काल का दूसरा प्रसिद्ध चित्रकार वंग वेई था जिसने चित्रकारी के क्षेत्र में ही नहीं बल्कि कविता और चिकित्सा के क्षेत्र में भी विशेष ख्याति प्राप्त की थी।

चित्रकारी के क्षेत्र में इस युग में दो प्रकार की शैलियाँ अपनाई गईं—

(क) उत्तरी

(ख) दक्षिणी

उत्तरी शैली में इस देश की परम्परागत चित्रकला का प्रभाव है। इस शैली का प्रसिद्ध आचार्य ली-सु-सुअन था। हनकन भी प्रसिद्ध चित्रकार था जिसके बनाये हुये अश्वों के चित्र अब भी प्राप्त होते हैं। चीनी सम्राटों को अश्वों की भेंट का चित्रण उसने बड़ी सफलता से किया।

दक्षिणी शैली में गाढ़े रंग का प्रयोग होता था और यह बहुतांश में नवीन तथा मौलिक शैली थी। वंग-वेई इस शैली का ख्यातिमान चित्रकार माना जाता है।

मुद्रण कला—कहा जाता है कि चीन में ही सबसे पहले मुद्रण कला आरम्भ हुई और लकड़ी के छापों द्वारा चीनी और संस्कृत ग्रन्थ छापे गये। पुरानी जगहों की खुदाई में एक बौद्ध ग्रन्थ चीनी भाषा में लिखा हुआ प्राप्त हुआ है। इससे पता लगता है कि उक्त ग्रन्थों की प्रतियाँ मुफ्त वितरित की गई थीं। ज्ञात होता है कि मोहरों द्वारा छपाई का विकसित रूप लकड़ी के अक्षर थे।

रंगमंच की उन्नति—इतिहासकारों के अनुसार चीन में नाट्य-कला का आरंभ चाऊ वंश में हुआ। तान सम्राट मेंग हुआंग के संरक्षण में एक नाट्य दल बनाया गया। चीनी नाट्य-कला की विशेष उन्नति शुंग और मंगोल काल में हुई। चीनी लेखकों ने कहा है कि मनुष्य की मानसिक उदासी दूर करने के लिये ही ऋषियों ने संगीत और नाट्य-कला की रचना की थी। तंग काल में चीनी रंगमंच का विकसित रूप देखने को मिलता है। कदाचित् शुंग वंश के कलाकारों को इनसे बहुत अधिक प्रेरणा मिली थी।

विभिन्न संस्कृतियों के विकास के कारण तंग काल चीनी सभ्यता के इतिहास में विशेष स्थान रखता है। इसी कारण लेखक लाटुरेट ने लिखा है—"तांग लोगों के युग में चीन कई शताब्दियों तक संयुक्त और सभ्य देशों में रहा।"

"Under the T'ang China was for centuries a unified, prosperous and highly civilized empire."

—Latourette.

दूसरा इतिहास लेखक बागची कहता है—सभी दृष्टियों से यह चीन के विकास का उच्चतम युग था।"

"This was the most glorious period of the history of China in all respects."

—Bagchi.

सारांश

चीनी सभ्यता के इतिहास में तंग-काल युग-परिवर्तनकारी काल माना जाता है। इस वंश का संस्थापक 'ली यवन' था जिसने 618 ई० से 626 ई० तक शासन किया। इस युग के अन्य सम्राटों में ताइ सुंग, काओत्सुंग, वु हाऊ, सुअन सुंग के नाम उल्लेखनीय हैं। सुअन सुंग के पश्चात् राजगद्दी के लिये कई पारिवारिक युद्ध हुये और उसके फलस्वरूप तंग-वंश का पतन हुआ।

सम्राट ताइ सुंग ने इस युग में अनेक शासन-सुधार किये। उसने समस्त राज्य को 10 प्रान्तों में बाँट दिया। प्रान्तों का विभाजन भी छोटे-छोटे क्षेत्रों में कर दिया गया। परन्तु इन पर केन्द्रीय नियन्त्रण ही रहा। उसने बलिदान प्रथा को रोका और अपनी अश्व सेना को सुदृढ़ बनाया। उसने विदेशों से अच्छे सम्बन्ध स्थापित किये और एक तिब्बती राजकुमारी से विवाह किया।

तंग-काल में चीन में चार धर्म प्रचलित थे—बौद्ध, ईसाई, मनीच और इस्लाम। इस युग में बौद्ध धर्म के तीन सम्प्रदाय बने—फासियांग सम्प्रदाय, चेन येन सम्प्रदाय और विनत सम्प्रदाय। बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये अनेक भारतीय बौद्ध चीन गये। इनमें प्रभाकर, शुभाकर सिंह, वज्र बोध, अमोघ वज्र और बोधि रुचि के नाम उल्लेखनीय हैं। ईसाई धर्म की भी इस युग में दो शाखाएं हो गईं—नेस्टोरियन, जैकोब्राइट। पारसियों के प्रभाव के कारण मनीच धर्म भी प्रचलित रहा। अरब के व्यापारी अपने साथ इस्लाम धर्म भी लाये। इन धर्मों के अतिरिक्त ताओवाद का भी प्रचार हुआ।

इस युग के कवियों में लिपो, तुफू और पोचुइ के नाम उल्लेखनीय हैं। इस युग की कला में बौद्ध धर्म का विशेष प्रभाव है। इस युग का सबसे प्रसिद्ध कलाकार वु-ताओ-सुअन था। चित्रकारी में उत्तरी और दक्षिणी दो प्रकार की शैलियाँ अपनाई गई थीं। कहा जाता है कि इस युग में मुद्रण कला का भी आरम्भ हो चुका था। चीन में नाट्य-कला का आरंभ चाऊ वंश में हुआ। तंग काल में चीनी रंगमंच का विकसित रूप देखने को मिलता है।

सभी दृष्टियों में यह काल चीन की सांस्कृतिक उन्नति का महत्वपूर्ण काल था।

———

अध्याय | 13

शुङ्ग वंश

(SUNG DYNASTY)

प्रश्न 1—शुङ्ग काल में चीन की सांस्कृतिक उन्नति पर प्रकाश डालिये।

Write a short account of the cultural development of China during Sung Dynasty.

प्रश्न 2—चीन के सांस्कृतिक विकास में शुङ्ग काल का क्या महत्व है ?

What is the importance of Sung period in the development of the culture of China ?

प्रारम्भिक दशा—तंग वंश के पतन के उपरान्त लगभग 50 वर्ष चीन में घोर अव्यवस्था और अराजकता रही। इस काल में समस्त साम्राज्य 5 भागों में विभक्त हो गया और सभी राज्यों में दुरावस्था का वातावरण रहा। इतिहासकारों ने इसी कारण इस काल को राजनीतिक दुर्बलता का युग कहा है।

जिस महान व्यक्ति ने चीन को इस दुरावस्था से उबारा उसका नाम चाओ कुअंग विन है। उसे ताइत्सु भी कहते हैं।

शुङ्ग वंश की स्थापना—ताइत्सु या ताई-सु ने सुंग वंश की नींव डाली। चीनी इतिहासकार इस युग के चीन के इतिहास को द्वितीय स्वर्ण युग कहते हैं। क्योंकि इस युग में प्रशासन, सामाजिक व्यवस्था, संस्कृति, साहित्य और कला सभी क्षेत्रों में महान उन्नति हुई।

ताइत्सु का शासन—ताइत्सु ने 960 से लेकर 976 ई० तक राज्य किया। इसका साम्राज्य तंग और हन वंश के सम्राटों की तुलना में अधिक बड़ा नहीं था परन्तु इसने शासन कार्यों में महत्वपूर्ण सुधार किये। शासकीय क्षेत्रों में कन्फ्यूशियस के अनुयायियों की नियुक्ति की गई और प्रतियोगिता परीक्षाओं को स्थान दिया गया। उसने ऐसे नियम बनाये जिससे अमीर लोग गरीबों का शोषण न कर सकें तथा देश समाजवाद की ओर अग्रसर हो सके। जिस वंश की इसने नींव डाली उस वंश का राज्य लगभग 200 वर्ष चीन में रहा। इसे उत्तरी शुंग वंश कहते हैं।

वांग आन-शी— वांग-आन-शी उत्तरी शुंग-वंश का सर्वश्रेष्ठ राजा माना जाता है। यह 1021 ई० में गद्दी पर बैठा। पहले यह सम्राट शेन-सुंग का मुख्य सलाहकार था। इसका व्यक्तित्व अत्यन्त महान और विचार उदार थे। इसने जनता में नव-ज्योति लाने के लिये कई महान कार्य किये। इसका विचार था कि राज्य को व्यापार, कृषि और उद्योगों को स्वयम् करना चाहिये जिससे श्रमिकों की उन्नति हो सके और धन कुबेर उनका शोषण न कर सकें। इसी के कारण शुङ्ग युग महान युग कहा गया है।

उत्तर शुङ्ग काल का अन्त—उत्तर शुङ्ग काल का अन्त 1122 ई० में तारतारों के आक्रमण के कारण हुआ। इस वंश का एक राजकुमार भागकर दक्षिण चला गया जहाँ उसने दक्षिणी शुङ्ग वंश की नींव डाली और लीन यान को (वर्तमान हांगचाऊ) अपनी राजधानी बनाया। इसके चीनी सेनापति यू यून जेन ने सर्वप्रथम तारतारों के विरुद्ध युद्ध में बारूद का प्रयोग किया।

दक्षिणी शुङ्ग वंश का अन्त 1279 ई० में हुआ। इस काल का अन्तिम सम्राट हुई सुंग था जिसने राजधानी में एक कला की संस्था की स्थापना की थी। बर्बर तातार जातियों के नेता द्वारा कैद हो जाने पर सम्राट हुई-शुंग का अन्तिम काल कारागार में ही बीता। सम्राट के पतन के उपरान्त उसकी राजधानी पीयेन लियांग में यद्यपि विकास कार्य रुक गया परन्तु लीन यान में लगातार विकास का कार्य होता रहा। शुङ्ग सम्राटों के युग में चीनी सभ्यता और संस्कृति में जिन दिशाओं में उन्नति हुई उनका विवरण नीचे दिया जाता है।

शासन-सुधार

शुंग काल में शासन सम्बन्धी निम्नलिखित सुधार हुये। लाटुरेट के अनुसार सुधार के निम्नलिखित अंग थे :—

(1) **बजट निर्माण**—राज्य की भलाई के विचार से यह निश्चय किया गया कि बजट बनाने के लिये एक आयोग हो जिससे वार्षिक व्यय में अधिक से अधिक बचत हो सके।

(2) **कृषि और मजदूरों का सुधार**—पहले खेती करने के लिये किसानों की नियुक्ति सरकार द्वारा की जाती थी। सम्राट वांग ने इस प्रथा को बन्द किया और महाजनों के चंगुल से किसानों को बचाकर राज्य की ओर से कम सूद पर रुपया देना आरम्भ किया। कृषि के लिये बीज और औजार भी दिये जाते थे जिनका मूल्य उपज बेचने के उपरान्त किसान चुका देते थे। बाढ़ नियन्त्रण के लिये भी कई योजनाएँ तैयार की गईं। मूल्य नियन्त्रण के लिये प्रत्येक जिले में आयोग बनाये गये जिससे जनता को विशेष लाभ पहुँचा। भूमि को बराबर हिस्सों में विभाजित किया गया और प्रति वर्ष

कर लगाने के लिये उस भूमि का मूल्यांकन किया जाता था। सम्पत्ति कर की व्यवस्था भी इसी युग में हुई।

(3) **सेना का पुनर्गठन**—सिपाही और साधारण, दो भागों में सेना का विभाजन किया गया। देश की सुरक्षा का भार सिपाहियों पर और शान्ति व्यवस्था का भार साधारण व्यक्तियों पर रक्खा गया। आवश्यकता पड़ने पर बड़े परिवारों के व्यक्ति की नियुक्ति सैनिक कार्य के लिये की जा सकती थी। घोड़ों की सेना को दृढ़ बनाने के लिये कई नवीन योजनाएँ बनाई गईं।

(4) **राजकीय परीक्षाएँ**— राजकीय परीक्षाओं में प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन आवश्यक किया गया।

(5) **व्यापार का राष्ट्रीयकरण** - सरकार ने व्यापारों को अपने हाथ में ले लिया। उपज खरीद ली जाती थी जिसमें से कुछ अंश स्थानीय प्रयोग के लिये अलग कर दिया जाता और बाकी उपज विभिन्न क्षेत्रों को भेज दी जाती थी।

(6) **पेन्शन**—बुड्ढों, गरीबों और बेकार व्यक्तियों के लिये सरकार द्वारा पेन्शन दी जाती थी।

शिक्षा-सम्बन्धी सुधार

उत्तरी शुंग काल में शिक्षा और परीक्षा के प्रबन्ध में महान परिवर्तन किये गये। शिक्षा का ध्येय यह था कि बालक वास्तविक घटनाओं की जानकारी प्राप्त कर सके केवल शब्दाडम्बर को मान्यता न दें। कन्फ्यूशियस के सिद्धांतों का अधिक से अधिक प्रयोग व्यक्ति अपने जीवन में करें इस ओर भी विशेष ध्यान दिया गया। बालकों को प्रारम्भिक इतिहास, भूगोल और अर्थशास्त्र की शिक्षा दी जाती थी परन्तु परीक्षाओं में इस प्रकार के प्रश्न पूछे जाते थे जिनसे कंठाग्र करने की प्रथा को समाप्त किया जा सके।

व्यापार नीति में सुधार

शुंग काल में विदेशों के साथ व्यापार में विशेष उन्नति हुई। शायद इससे पूर्व कभी इतनी उन्नति नहीं हुई थी। इस उन्नति का पहला कारण तो यह था कि चीन में जहाजों के निर्माण की कला पहले से अधिक विकसित हो गई थी। दूसरा कारण यह था कि चीनी नागरिकों ने सुदूर समुद्र में दिशाओं का पता लगाने के लिये एक विशेष प्रकार के यंत्र की खोज कर ली थी। व्यापार में विकास होने के कारण चीन के बन्दरगाहों की मान्यता बढ़ गई। सबसे पहले दक्षिण पूर्व तथा भारत जाने वाले समुद्री मार्गों पर चीन का अधिकार स्थापित हुआ। कैन्टन और चुंगचाऊ के बन्दरगाहों पर आयात और निर्यात काफी मात्रा में होता था। इसी कारण व्यापार को नियन्त्रित करने

के लिये राज्य की ओर से पदाधिकारी नियुक्त किये गये और कुछ वस्तुओं पर राज्य का विशेषाधिकार घोषित किया गया। राजकीय वस्तुओं की बिक्री वही व्यापारी कर सकते थे जिनको राज्य की ओर से मान्यता प्राप्त थी। शुंग सम्राटों ने विदेशों से आने वाले व्यापारियों को भी बहुत-सी सुविधायें दी थीं। जो विदेशी व्यापारी चीन के बन्दरगाहों में रहते थे उनके निजी झगड़ों को निपटाने के लिये उनके देश के ही कानून लगाये जाते थे। अधिकतर अरब वाले चीन से अधिक व्यापार करते थे। कुछ अरब के सौदागर चीन में ही बस गये थे और चीनी महिलाओं से विवाह भी कर लिया था। विदेश से आये हुये व्यापारियों में यहूदियों की भी यथेष्ट संख्या थी। शुंग सम्राटों ने विदेशों में अपने राजदूत भेजकर व्यापारियों को चीन आने का निमन्त्रण दिया था।

जापान और चीन में भी काफी मात्रा में व्यापार होता था। जैन सम्प्रदाय के जापानी अपने मत के केन्द्रों के दर्शन करने के लिये चीन आया करते थे। धार्मिक और सांस्कृतिक कारणों से भी चीन और जापान का घना सम्बन्ध था। सुमात्रा, जावा, एशिया माइनर और चम्पा आदि देशों ने व्यापारिक सुविधाओं को प्राप्त करने के लिये चीन में दूत-मण्डल भेजे थे। चीनी व्यापारी मिस्र, रोम, सिसली और यूनान आदि सुदूर देशों में जाते थे जिसके कारण उन्हें भूगोल का अच्छा ज्ञान हो गया था। चीन से निर्यात होने वाली वस्तुयें प्रायः सीसा, सोना, चीनी मिट्टी के बर्तन, चंदन, चाँदी आदि थे। पर्याप्त संख्या में चीनी व्यापारियों के बाहर जाने के कारण चीनी मुद्राएँ भी निर्यात होती रहीं। यही कारण है कि जंजीबार, सिंगापुर आदि सुदूर देशों में भी चीनी मुद्रायें गड़ी हुई मिली हैं। मुद्राओं के निर्यात को रोकने के लिये चीन ने आमोद-प्रमोद की सामग्री पर कर बढ़ा दिया था। शुंग नरेशों के ही काल में चीन में नोटों का भी चलन आरम्भ हो गया था। चाय का प्रयोग और बहुतांश में अफीम का प्रयोग भी शुंग काल की देन है।

साहित्य

शुंग काल में कई प्रकार के ग्रन्थों की रचना हुई। चीन का सम्पूर्ण इतिहास, 'तुंग-तिह' नामक ग्रन्थ की रचना, ऐतिहासिक व्यक्तियों के जीवन चरित्र का वर्णन और बहुत से प्राचीन ग्रन्थों का नवीन संस्करण इस युग में हुआ। प्राचीन लेखकों पर भी कई आलोचनात्मक ग्रन्थ इस युग में लिखे गये। विश्व-कोष की रचना का कार्य भी इसी युग में आंरम्भ हुआ। गद्य साहित्य का तो जन्म ही शुंग युग में माना जाता है। बहुत से विद्वान कहते हैं कि शुंग काल के ग्रन्थों में विशेषकर गद्य ग्रन्थों से बहुत-सी अशुद्धियाँ हैं परन्तु वास्तविकता तो यह है कि इन ग्रन्थों में विलक्षण इतिहास सम्बन्धी सामग्री छिपी हुई है। इस समय का काव्य प्राचीनता की बेड़ियों से जकड़ा हुआ है

परन्तु काव्य में विशेष प्रतिभा और आन्तरिक भावनाओं का समावेश दृष्टिगत होता है। फूलों और फलों की विभिन्न जातियों पर भी कितने ही वैज्ञानिकों ने लेख लिखे हैं।

कला

शुंग युग में कला के क्षेत्र में भी काफी उन्नति हुई क्योंकि कला को कुछ राजकीय संरक्षण भी प्राप्त था। हुइ सुअंग नामक सम्राट ने चित्रकला और सुलेख कला की शिक्षा के लिये पाठशालायें खोल रक्खी थीं। इस वंश के अन्य सम्राटों ने भी कला के विकास की परम्परा को अपनाया। शाओ यंग (Shao Yung) को तो अपने देश और देश की कला पर इतना गर्व था कि उसने कहा था—"मैं सुखी हूँ क्योंकि मैं मनुष्य हूँ पशु नहीं, पुरुष हूँ स्त्री नहीं, चीनी हूँ, असभ्य नहीं और संसार के महान आश्चर्य-जनक नगर लियोंग में रहता हूँ।"

"I am happy because I am a human and not an animal; a male, and not a female; a Chinese and not a barbarian; and because I live in Loyang, the most wonderful city in all the world."

(Quoted by Goodrich.)

वास्तुकला के सृजन में चीनी मिट्टी का प्रयोग बहुत अधिक होता था। बौद्ध धर्म से सम्बन्धित होने के कारण इस युग में मूर्तिकला की सन्तोषजनक उन्नति नहीं हुई परन्तु चित्रकारी के क्षेत्र में विशेष उन्नति हुई। चित्रकारों द्वारा प्रस्तुत वनस्थलियों और प्राकृतिक स्थानों के चित्र सफलतापूर्वक बनाये गये हैं। पशु-पक्षियों और फूल-पत्तियों के चित्र भी अत्यन्त सुन्दर प्राप्त हुये हैं। इस सम्बन्ध में लाटुरेट ने लिखा है—"शुंग लोगों के समान चित्रकला का शायद कोई दृश्य संसार में दृष्टिगोचर नहीं हुआ है।"

"Probably no landscape painting equal to the Sung had ever appeared anywhere in the world."

—Latourette.

चित्रकारी में प्रायः एक ही रंग का प्रयोग होता था। कई प्रसिद्ध चित्रकार इस समय चीन में थे। इनमें से कुछ का वर्णन किया जा रहा है—

(1) कुओ चुंग शु—इसकी ख्याति पर्वतों के दृश्य चित्रण करने में थी।

(2) कुओ सी—इतने चित्रकला के बारे में एक ग्रन्थ लिखा था। उसके द्वारा की हुई चित्रकारी के अंश मन्दिरों और राजमहलों की दीवारों पर मिलते हैं।

(3) मितेई—इसने चित्रकला की नई पद्धति का रूप स्पष्ट किया और अपने विषय में समकालीन कलाकारों के मध्य उसका सर्वश्रेष्ठ स्थान था।

(4) सिया कुइ—उसने भी समुद्र से सम्बन्ध रखने वाले जैसे ज्वार भाटा-आदि के चित्र बनाये है।

(5) लि लुंग मियेने—चित्रकार होने के अतिरिक्त वह एक सफल कवि और गद्यकार भी था। इसने चित्रकला में बहुत ख्याति प्राप्त की।

वास्तुकला के क्षेत्र में इस युग में काफी उन्नति हुई। कहा जाता है कि 1103 ई० में इस कला पर आठ सुन्दर ग्रन्थ लिखे गये परन्तु इनमें वर्णित नमूने काठ के बने होने के कारण नष्ट हो गये।

विभिन्न धातुओं की कला भी इस युग में प्रचलित थी। ऐसा कहा जाता है कि इस युग में लाख के बने हुये खिलौने आदि भारत और अरब देशों को भेजे जाते थे। जेड पत्थर के द्वारा भी इस युग में कई चीजों का निर्माण किया गया है। शुंग काल में काँसे के बड़े-बड़े बर्तन भी बनाये गये। इनमें शराब के बर्तन और कढ़ाव मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त काँसे के हथियार, आइने, ढोलक और अन्य सुन्दर वस्तुयें बनाई गईं। काँसे की बनी हुई सुन्दरतम वस्तुओं में एक धूपदान है जो भैंस की तरह का बना हुआ है और जिस पर प्रसिद्ध दार्शनिक लाओत्जे बैठा हुआ है।

धर्म एवं दर्शन

धर्म एवं दर्शन की दृष्टि से भी शुंग काल का विशेष महत्व है। चूँकि यह काल साहित्यिक और कलात्मक उन्नति का काल था; अतः इसमें धर्म एवं दर्शन की उन्नति होना स्वाभाविक था।

चीन में आरम्भ से ही कन्फ्यूशियस विचारधारा प्रचलित थी। जब महायान बौद्ध धर्म ने चीन में प्रवेश किया तो बहुत से चीनी बौद्ध धर्मानुयायी हो गये। शुंग काल निओकन्फ्यूशियन मत के प्रसार के लिये प्रसिद्ध है। वास्तव में यह धर्म ताओ-वाद और बौद्ध धर्म का सम्मिलित रूप था। इस मत का आरम्भ तंग काल में हो चुका था। शाओ यंग और चेंग हाओ आदि दार्शनिक इस दिशा में पहले ही कदम उठा चुके थे परन्तु इस मत को निश्चित रूप देने वाला चु सी नाम का एक शुंगकालीन व्यक्ति ही था।

चु सी—चु सी बौद्ध धर्म एवं कन्फ्यूशियस मत से प्रभावित था। उसने इन दोनों का समन्वय अपनी विलक्षण बुद्धि के द्वारा बड़ी सुगमता से किया। इसका जन्म 1130 ई० में हुआ। अपने आरम्भिक जीवन से ही यह धर्म एवं दर्शन में विशेष रुचि रखता था। चु सी के धर्म की निम्नलिखित विशेषतायें थीं—

(1) चु सी बौद्धों की भाँति ध्यान में विश्वास करता था। निओकन्फ्यूशियन मत पर विश्वास करने वाले उसके चारों ओर एकत्रित रहते थे। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि उसके धर्म ने भी बौद्धों के विहार जीवन को मान्यता प्रदान की थी।

(2) निओकन्फ्यूशियन मत के अनुयायी अचानक ही ज्ञान की प्राप्ति में विश्वास करते थे।

(3) इस मत के अनुयायियों का कहना था कि सम्पूर्ण प्रकृति को तर्क द्वारा ही समझा जा सकता और यह कार्य तभी हो सकता है जब हम प्रकृति को सूक्ष्म रूप से देखने का प्रयास करें। इस मत के अनुयायी सत्य की प्राप्ति के लिये अध्ययन को विशेष महत्व देते थे।

(4) चु सी का मत था कि यह संसार ली और ची नामक दो तत्वों का बना हुआ है। ली भौतिक तत्व और ची आध्यात्मिक तत्व का द्योतक है।

(5) इस धर्म के मतानुयायियों के अनुसार ब्रह्म अनन्त एवं सर्वव्यापी है। चु सी ने उस ब्रह्म को ताई ची के नाम से पुकारा है। उसका कहना था कि ताई ची ने यिन और यंग दो तत्वों को बनाया है। यिन नारी तत्व है और यंग पुरुष तत्व। इन तत्वों ने भी सृष्टि-रचना में मदद की है। इनके संयोग से आग, पृथ्वी, जल आदि बने हैं।

(6) इस मत के अनुयायी नैतिकता को विशेष महत्व देते थे।

(7) इस मत के अनुयायी विराग में विश्वास करते थे। इस दृष्टि से वे कन्फ्यूशियन मत के विरोधी थे।

चु सी के अतिरिक्त इस युग में एक और महान दार्शनिक हुआ जिसका नाम वाँग-यांग-मींग था। यह महायान बौद्ध धर्म को मानने वाला था। इसका मत था कि आत्मचिंतन और आत्मज्ञान ही व्यक्ति के जीवन को सुधार सकता है। वह कहता था कि प्रकृति में कोई खराबी नहीं है। बुराई मनुष्य के मन में होती है और यदि मनुष्य अपना मन शुद्ध कर ले तो प्रकृति की सभी वस्तुयें शुद्ध प्रतीत होंगी।

इन दोनों दार्शनिकों में चु सी के विचारों का प्रभाव चीनी जनता पर अधिक पड़ा और उसके बहुत से अनुयायी हो गये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शुंग काल दर्शन, साहित्य, कला आदि समस्त दृष्टियों से एक युगान्तकारी काल था। चीनी इतिहासकारों ने इस काल की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इस काल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस काल में चीनी सभ्यता और संस्कृति का प्रसार सुदूर देशों में हुआ और एशिया की विभिन्न संस्कृतियों पर चीनी संस्कृति की छाप पड़ी।

सारांश

तंग वंश के पतन के पश्चात् लगभग 50 वर्ष चीन में अराजकता की स्थिति रही। 960 ई० में ताइत्सु ने शुंग-वंश की नींव डाली। उत्तर शुंग-वंश का सर्वश्रेष्ठ राजा वांग-आन-शी था जो 1021 ई० में गद्दी पर बैठा था। 1122 ई० में तारतारों के आक्रमण के कारण शुंग वंश का अन्त हुआ। दक्षिणी शुंग वंश का अन्त 1279 ई० में हुआ इस वंश का अन्तिम सम्राट हुई-शुंग था।

इस युग के शासन सम्बन्धी सुधारों में बजट निर्माण, कृषि और मजदूरों का सुधार, सेना का पुनर्गठन, राजकीय परीक्षायें, व्यापार को राष्ट्रीयकरण, बेकारों और वृद्धों को पेंशन आदि प्रमुख हैं। व्यापार नीति में भी सुधार किया गया। इस युग में चीन व्यापार का एक प्रमुख केन्द्र बन गया था। शिक्षा और परीक्षा के प्रबन्ध में अनेक सुधार किये गये। कन्फ्यूशियस के सिद्धांतों की शिक्षा अधिक दी जाती थी। कण्ठाग्र करने की प्रथा को समाप्त किया गया। अनेक साहित्यिक ग्रन्थ लिखे गये जिनमें 'तुंग-सिंह' नामक ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। इस युग की वास्तुकला में चीनी मिट्टी का प्रयोग बहुत अधिक हुआ। चित्रकारी की विशेष उन्नति हुई। इन कलाकारों में कुआँ चुंग शु, कुआँ सी, मितेई, सिया आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

दर्शन के क्षेत्र में निओकन्फ्यूशियन मत का प्रसार हुआ। इस मत को निश्चित रूप देने वाला चु सी नाम का एक विद्वान था। इसके अतिरिक्त वाँग-याँग-मोंग नाम का प्रसिद्ध दार्शनिक भी इसी युग में हुआ।

इस काल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस काल में चीनी सभ्यता और संस्कृति का प्रसार सुदूर देशों में हुआ।

———

अध्याय | 14

चीन की संस्कृति और उसे भारत की देन

(CHINESE CULTURE AND CONTRIBUTION OF INDIA TO IT)

प्रश्न 1—चीनी दर्शन और कला पर बौद्ध धर्म के प्रभाव का मूल्यांकन कीजिये।

(लखनऊ विश्वविद्यालय)

Evaluate the influence of Buddhism on Chinese Philosophy and Art.

(Lucknow University)

प्रश्न 2—चीन में भारतवर्ष के बौद्ध प्रचारकों के ऊपर एक ऐतिहासिक लेख लिखिये।

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

Write a historical essay on the Indian Buddhist missionaries in China.

(Allahabad University)

प्रश्न 3—चीन की सभ्यता के विकास के मुख्य कारण क्या थे? विवेचना कीजिये।

Discuss the main reasons for the development of Chinese Culture.

चीन की सभ्यता विश्व की श्रेष्ठतम सभ्यताओं में से एक रही है। वर्तमान चीन को देखकर यह विश्वास भी नहीं किया जा सकता कि यहाँ के लोग प्राचीन काल में सुसंस्कृतज्ञ और शांति-प्रेमी रहे होंगे। चीन ने कला के क्षेत्र में संसार को महान भेंट दी है। उसकी प्राचीन सभ्यता की जितनी भी प्रशंसा की जाय कम है। प्रो० विल ड्यूरांट (Prof. Will Durant) ने इसे एशिया की श्रेष्ठतम सभ्यता स्वीकार करते हुए लिखा है—

'If we wish to understand this civilization, we must forget for a moment the bitter and chaos and helplessness into

which it has been thrown by its own internal weakness and by contact with superior genius and machines of the West; we must see it at any of its many apogees—under the Chou princes or Ming Huang, or Hui Tsung, or K'ang—hsi. For in those quiet and beauty-loving days, the Chinese represented without doubt the highest civilization and the ripest culture that Asia, or perhaps any Continent, had yet achieved."

('Vide Oriental Heritage')

यह सभ्यता जो इतनी अधिक विकसित हो सकी उसके कुछ प्रमुख कारण थे जिनमें से मुख्य की चर्चा यहाँ की जा रही है। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि चीन वाले निम्नलिखित गुणों के फलस्वरूप ही इतनी अधिक उन्नति कर सके—

(1) शान्तिप्रियता
(2) विशाल-हृदयता
(3) गुण-ग्राहकता
(4) सहिष्णुता
(5) अध्ययनशीलता

(1) **शान्तिप्रियता**—चीनी सभ्यता एक शान्ति प्रधान सभ्यता है। भारत की भाँति ही चीन राजाओं की मारकाट और योद्धाओं की वीरता से गौरवान्वित नहीं हुआ बल्कि गौरवपूर्ण पद साहित्यकारों, कलाकारों और विद्वानों के द्वारा ही प्राप्त हुआ। यद्यपि यह कहना ठीक है कि चीन का इतिहास मारपीट लूटपाट से भरा हुआ है परन्तु युद्ध राजाओं में ही होते थे, प्रजा शान्तिप्रिय थी। चीन की संस्कृति का उत्थान वहाँ की प्रजा ने किया है।

(2) **विशाल-हृदयता**—चीनी दार्शनिकों ने चीन के निवासियों पर वह अमिट छाप डाली कि उनके हृदय विशाल हो गये। कनफ्यूशियस, मेन्सयस और मूत्स के विचार विश्वबन्धुत्व की भावना से ओत-प्रोत थे। यही कारण है कि चीनी सभ्यता देश की परिमित सीमाओं में बँधकर नहीं रही और उसका प्रसार हर जगह हुआ।

(3) **गुण-ग्राहकता**—चीन की जनता गुणों का आदर करना जानती थी। वह यह जानती थी कि श्रेष्ठ विचारकों का किस तरह आदर करना चाहिये। जो बौद्ध भिक्षु एवं अन्य विद्वान चीन गये उनका बड़ा सम्मान हुआ और चीनियों ने उनसे बहुत कुछ सीखने का प्रयास किया।

(4) **सहिष्णुता**—सहिष्णुता चीनियों का विशेष गुण था। वह समय के अनुसार अपने को परिवर्तित करने वाले थे। वे बड़े उदार थे और दूसरों की बातों

को सुनने के लिये सदैव तत्पर रहते थे। चीन में एक ओर ताओवाद चला और दूसरी ओर बौद्ध धर्म की शिक्षाएँ भी प्रचलित हुईं। भारत, यूनान, ईरान एवं अन्य स्थानों के अनेक विचारक चीन गये और उन्होंने वहाँ अपने-अपने मत का प्रतिपादन किया। संसार के इतिहास में धर्म के नाम पर जितना अधिक रक्त बहा है उतना और किसी कारण से नहीं बहा। परन्तु चीन ही ऐसा देश था जहाँ धर्म के नाम पर बहुत कम रक्तपात हुआ।

(5) **अध्ययनशीलता** – चीनी आरम्भ से ही अध्ययनशील थे। वे साहित्य और दर्शन का अध्ययन करते थे। विज्ञान और कला के प्रति भी उनका अनुराग था। चीनियों के विद्यानुराग की चर्चा करते हुये राबर्ट हार्ट ने लिखा था—

"चीनी गुण की पूजा करते हैं, वे साहित्य से आनन्द प्राप्त करते हैं और प्रत्येक स्थान पर उनकी लघु गोष्ठियाँ होती हैं, जहां वे एक दूसरे के निबन्धों और कविताओं पर परस्पर विचार व्यक्त करते हैं।"

"इसी विद्यानुराग के कारण जिस समय संसार की और जातियाँ लड़ रही थीं, चीन साहित्य और कला की उन्नति में व्यस्त था।' इसी के फलस्वरूप बी० ए० रेनफ ने लिखा है—

"कलाओं, साहित्य एवं दर्शन में सुदुरपूर्व के पास जो कुछ भी है वह लगभग सम्पूर्णतः प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से चीनी प्रतिभा की उपज है।"

चीन को भारत की देन

चीन को भारत की बहुत बड़ी देन है। चीन और भारतवर्ष में प्राचीनकाल से ही बड़े घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गये थे। अतीतकाल में चीन और भारत के बीच व्यापारिक सम्बन्ध अच्छे थे। अनेक भारतीय यात्री चीन गये थे और बहुत से चीनी नालन्दा और तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने के लिये भारत आये थे। ये यात्री अपने साथ भारतीय दर्शन, साहित्य और कला को भी चीन ले गये। विभिन्न क्षेत्रों में जो कुछ चीन को भारत ने दिया उसकी चर्चा नीचे की जा रही है।

बौद्ध धर्म

भारतीय बौद्ध धर्म ने चीन को बहुत अधिक प्रभावित किया। यद्यपि वहाँ की जनता के लिये बौद्ध धर्म को ग्रहण करना एक आश्चर्यजनक बात है परन्तु इसमें कोई दो राय नहीं है कि बौद्ध धर्म ने चीन को बहुत कुछ दिया। भारत के बौद्ध प्रचारकों ने चीन जाकर इस धर्म का प्रचार किया। काश्यप मातंग एवं धर्मरक्ष

नामक दो बौद्ध प्रचारकों ने भारतीय ग्रन्थों का चीनी में अनुवाद किया। इन ग्रन्थों में बौद्ध धर्म की शिक्षाओं पर प्रकाश डाला गया है। सबसे पहले मोत्सू नामक विद्वान पर इन ग्रन्थों और बौद्ध धर्म का प्रभाव पड़ा।

आगे चलकर इस धर्म को राजाश्रय भी प्राप्त हुआ। 265 ई० से 290 ई० तक साम्राट वू ने कई मठों का निर्माण कराया। राजाश्रय में ही भारतीय ग्रन्थों का अनुवाद हुआ और 317 ई० से 417 ई० तक अनूदित ग्रन्थों की संख्या 373 तक पहुँच गई। चौथी शताब्दी में नानकिंग और चंगगन में बौद्ध मठ बनवाये गये। सम्राट वेन-ती ने भी बौद्ध धर्म की उन्नति में काफी योग दिया। 386 ई० में शे-हू नामक सम्राट ने घोषणा की—

"बौद्ध एक ऐसे देवता हैं जिनकी उपासना बाहरी देशों में की जाती है अतएव यह उचित ही है कि मैं भी उनकी अराधना करूं। मैं अपनी प्रजा को बुद्ध की उपासना के लिए आज्ञा देता हूँ। यदि मेरे राज्य के लोग चाहें तो वे बौद्ध धर्म का अनुसरण कर सकते हैं।"

वेई वंश के शासन में भी बौद्ध धर्म को काफी उन्नति हुई। सम्राट वूतो ने 15 चैत्य बनवाये और एक बौद्ध सभा का आयोजन किया। हुयेन-वेंग-ती ने भी दो मठ बनवाये। वेई वंश के शासन काल में लोयंग और चंगगन बौद्ध धर्म के प्रधान केन्द्र बन गये थे। इस सम्बन्ध में पी० सी० बाग्ची ने लिखा है "वी, लियोंग और छंगन के संरक्षण में चीन बौद्ध धर्म का महान केन्द्र रहा।"

"Under the patronage of the Wei, Loyang and Ch'ang-gan became the great centres of Buddhist activities in China.."

—P. C. Bagchi.

इन स्थानों पर 47 मठ निर्मित कराये गये। कहा जाता है कि इस युग में चीन में बौद्धों की संख्या लगभग 50,000 हो गई थी।

भारतीय बौद्ध धर्म ने चीन के निवासियों की आध्यात्मिक उन्नति की। इस धर्म ने वहाँ के निवासियों को आत्मिक संतोष तो दिया ही इनकी सभ्यता को और भी कुछ दिया। इस देश का विस्तृत वर्णन करते हुये पाल एच० क्लाइड ने अपनी पुस्तक "The Far East" में लिखा है—"बौद्ध धर्म ने चीन में धर्म से अधिक आत्मिक संतोष प्रदान किया। भारतीय विज्ञान, कला, ज्योतिष शास्त्र का विकास हुआ। भाषा विदेशी शब्दों के प्रयोग से समृद्धशाली बनी। चीनी मूर्ति निर्माण कला, चित्र कला छपाई इत्यादि की प्रचुर उन्नति हुई जो चीनी संस्कृति की स्थाई निधि हुई। कालांतर में कन्फ्यूशियन विचार धारा फैली परन्तु उसमें भी बौद्ध विचारों की आत्मा थी।"

को सुनने के लिये सदैव तत्पर रहते थे। चीन में एक ओर ताओवाद चला और दूसरी ओर बौद्ध धर्म की शिक्षाएँ भी प्रचलित हुईं। भारत, यूनान, ईरान एवं अन्य स्थानों के अनेक विचारक चीन गये और उन्होंने वहाँ अपने-अपने मत का प्रतिपादन किया। संसार के इतिहास में धर्म के नाम पर जितना अधिक रक्त बहा है उतना और किसी कारण से नहीं बहा। परन्तु चीन ही ऐसा देश था जहाँ धर्म के नाम पर बहुत कम रक्तपात हुआ।

(5) **अध्ययनशीलता** – चीनी आरम्भ से ही अध्ययनशील थे। वे साहित्य और दर्शन का अध्ययन करते थे। विज्ञान और कला के प्रति भी उनका अनुराग था। चीनियों के विद्यानुराग की चर्चा करते हुये राबर्ट हार्ट ने लिखा था—

"चीनी गुण की पूजा करते हैं, वे साहित्य से आनन्द प्राप्त करते हैं और प्रत्येक स्थान पर उनकी लघु गोष्ठियां होती हैं, जहां वे एक दूसरे के निबन्धों और कविताओं पर परस्पर विचार व्यक्त करते हैं।"

"इसी विद्यानुराग के कारण जिस समय संसार की और जातियाँ लड़ रही थीं, चीन साहित्य और कला की उन्नति में व्यस्त था।' इसी के फलस्वरूप बी० ए० रेनफ ने लिखा है—

"कलाओं, साहित्य एवं दर्शन में सुदुरपूर्व के पास जो कुछ भी है वह लगभग सम्पूर्णतः प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से चीनी प्रतिभा की उपज है।"

चीन को भारत की देन

चीन को भारत की बहुत बड़ी देन है। चीन और भारतवर्ष में प्राचीनकाल से ही बड़े घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गये थे। अतीतकाल में चीन और भारत के बीच व्यापारिक सम्बन्ध अच्छे थे। अनेक भारतीय यात्री चीन गये थे और बहुत से चीनी नालन्दा और तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने के लिये भारत आये थे। ये यात्री अपने साथ भारतीय दर्शन, साहित्य और कला को भी चीन ले गये। विभिन्न क्षेत्रों में जो कुछ चीन को भारत ने दिया उसकी चर्चा नीचे की जा रही है।

बौद्ध धर्म

भारतीय बौद्ध धर्म ने चीन को बहुत अधिक प्रभावित किया। यद्यपि वहाँ की जनता के लिये बौद्ध धर्म को ग्रहण करना एक आश्चर्यजनक बात है परन्तु इसमें कोई दो राय नहीं है कि बौद्ध धर्म ने चीन को बहुत कुछ दिया। भारत के बौद्ध प्रचारकों ने चीन जाकर इस धर्म का प्रचार किया। काश्यप मातंग एवं धर्मरक्ष

नामक दो बौद्ध प्रचारकों ने भारतीय ग्रन्थों का चीनी में अनुवाद किया। इन ग्रन्थों में बौद्ध धर्म की शिक्षाओं पर प्रकाश डाला गया है। सबसे पहले मोत्सू नामक विद्वान पर इन ग्रन्थों और बौद्ध धर्म का प्रभाव पड़ा।

आगे चलकर इस धर्म को राजाश्रय भी प्राप्त हुआ। 265 ई० से 290 ई० तक साम्राट वू ने कई मठों का निर्माण कराया। राजाश्रय में ही भारतीय ग्रन्थों का अनुवाद हुआ और 317 ई० से 417 ई० तक अनूदित ग्रन्थों की संख्या 373 तक पहुँच गई। चौथी शताब्दी में नानकिंग और चंगगन में बौद्ध मठ बनवाये गये। सम्राट वेन-ती ने भी बौद्ध धर्म की उन्नति में काफी योग दिया। 386 ई० में शे-हू नामक सम्राट ने घोषणा की—

"बौद्ध एक ऐसे देवता हैं जिनकी उपासना बाहरी देशों में की जाती है अतएव यह उचित ही है कि मैं भी उनकी अराधना करूं। मैं अपनी प्रजा को बुद्ध की उपासना के लिए आज्ञा देता हूँ। यदि मेरे राज्य के लोग चाहें तो वे बौद्ध धर्म का अनुसरण कर सकते हैं।"

वेई वंश के शासन में भी बौद्ध धर्म की काफी उन्नति हुई। सम्राट वूती ने 15 चैत्य बनवाये और एक बौद्ध सभा का आयोजन किया। हुयेन-वेंग-ती ने भी दो मठ बनवाये। वेई वंश के शासन काल में लोयंग और चंगगन बौद्ध धर्म के प्रधान केन्द्र बन गये थे। इस सम्बन्ध में पी० सी० बाग्ची ने लिखा है "वी, लियोंग और छंगन के संरक्षण में चीन बौद्ध धर्म का महान केन्द्र रहा।"

"Under the patronage of the Wei, Loyang and Ch'ang-gan became the great centres of Buddhist activities in China.."

—P. C. Bagchi.

इन स्थानों पर 47 मठ निर्मित कराये गये। कहा जाता है कि इस युग में चीन में बौद्धों की संख्या लगभग 50,000 हो गई थी।

भारतीय बौद्ध धर्म ने चीन के निवासियों की आध्यात्मिक उन्नति की। इस धर्म ने वहाँ के निवासियों को आत्मिक संतोष तो दिया ही इनकी सभ्यता को और भी कुछ दिया। इस देश का विस्तृत वर्णन करते हुये पाल एच० क्लाइड ने अपनी पुस्तक "The Far East" में लिखा है—"बौद्ध धर्म ने चीन में धर्म से अधिक आत्मिक संतोष प्रदान किया। भारतीय विज्ञान, कला, ज्योतिष शास्त्र का विकास हुआ। भाषा विदेशी शब्दों के प्रयोग से समृद्धशाली बनी। चीनी मूर्ति निर्माण कला, चित्र कला छपाई इत्यादि की प्रचुर उन्नति हुई जो चीनी संस्कृति की स्थाई निधि हुई। कालांतर में कन्फ्यूशियन विचार धारा फैली परन्तु उसमें भी बौद्ध विचारों की आत्मा थी।"

"Buddhism however, brought more to China than the spiritual satisfaction of religion. Indian Science and art came too. Chinese astronomy was enriched, the written language became less rigid through the adoption of foreign terms; Chinese sculpture and painting took on new and deeper forms; block printing was used in the making of Buddhist and other books. These were permanent contributions to China's culture. In time Buddhism as a religion tended to give place to the rising influence of Neo-Confucianism; yet much of the nobility of Buddhist thought and spirit remained."

Paul H. Clyde.

साहित्य

साहित्य के क्षेत्र में भी चीन को भारत की बहुत बड़ी देन है। बौद्ध साहित्य का अनुवाद चीनी भाषा में किया गया। इन अनुवादकों में कुमारजीव का नाम सबसे पहले लिया जाता है। प्रभाकर मित्र के निरीक्षण में भी बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद किया गया। महायानी और हीनयानी दोनों ही प्रकार के ग्रन्थों का अनुवाद किया गया। अनूदित महायान साहित्य तीन रूपों में मिलता है—

(1) विनय पिटक (2) सूत्र-पिटक (3) शास्त्र

"बोधिसत्वचर्यानिदेश" के दो अनुवाद 421 ई० और 431 ई० में किये गए। "बौधिसत्व प्रतिमोक्ष" के भी दो अनुवाद मिलते हैं।

चीन का महायान सूत्र-पिटक पाँच रूपों में मिलता है—

(क) प्रज्ञापारमिता

(ख) रत्नकूट

(ग) महासन्निपात

(घ) अवन्तक

(ङ) निर्वाण

चीन में महायानी साहित्य में सबसे प्रसिद्ध "महाप्रज्ञापारमिता सूत्र-शास्त्र" माना जाता है जो नागार्जुन की रचना है और जिसका अनुवाद चीनी भाषा में किया गया है।

हीनयानी साहित्य को भी तीन रूपों में देखा जा सकता है—

(1) विनय पिटक (2) सूत्रपिटक (3) अभिधर्म पिटक

विनय पिटक के पाँच अनुवाद मिलते हैं। हर सम्प्रदाय के विनयपिटक का अलग अनुवाद मिलता है। सूत्रपिटक भी पाँच भागों में बाँटा गया है परन्तु चीनी

में केवल चार ही भागों का अनुवाद मिलता है। इन अनुवादकों में काश्मीर के गौतम-संघ देव और गुणभद्र का नाम उल्लेखनीय है।

कला

भारत ने कला के क्षेत्र में भी चीन को बहुत कुछ दिया। बौद्ध धर्म ने चीन की कला के विकास में बड़ा भारी योगदान दिया। इस सम्बन्ध में फिट्जराल्ड महोदय ने लिखा ह— "कला के क्षेत्र म हेलिनिस्टिक शैली का असर मध्य एशिया से सुदूर पूर्व में आया।"

"In the realm of art, it served as the conduit by which Hellinistic influence flowed eastward across central Asia."

—Fitzerald.

मूर्ति कला के विषय में चीन ने भारत से बहुत कुछ सीखा। जो चीनी यात्री भारतवर्ष आये वे भारत से कला के बहुत से नमूने ले गये। ह्वेन सांग भारत से 3 फी० ऊँची सोने की एक प्रतिमा और 3 फीट 5 इंच ऊँची लकड़ी एवं चांदी की दो मूर्तियाँ ले गया। हुइ लुन भी नालन्दा से एक प्रतिकृति ले गया था। इन्हीं के आधार पर चीन के कलाकार ने अनेक मूर्तियाँ बनाईं।

प्राचीन काल में युन-कंग, लाँग-मेन और तुन-हुअंग बौद्ध कला के मुख्य केन्द्र थे। इन स्थानों पर अजन्ता और एलोरा की गुफाएं एवं बौद्ध मन्दिर मिलते हैं। गुफाओं की दीवारों पर गाँधार कला की भाँति की चित्रकारी मिलती है। "शिखरयुक्त" मन्दिर भी चीन को भारत की देन है। लायंग में 516 ई० में इस प्रकार का एक मन्दिर था। भारतीय स्तूपों की तरह के स्तूप भी चीन में मिले हैं।

चीन की चित्रकारी को भी बौद्ध धर्म ने प्रभावित किया। इस संबन्ध में प्रो० लाटूरेट का मत है—बौद्ध गान विद्या और वस्तु निर्माण कला ने चीनियों को प्रोत्साहित किया। शुंग युग में सर्वोत्तम चित्र कला तंग और बौद्ध कला का ही प्रोत्साहन था।

"Buddhist themes and iconography were a great stimulus to the Chinese. Some of the best Chinese painting was done under the inspiration of Buddhism in both the Tang and Sung dynasties."

- Latourette.

अतीत काल में शाक्य-बुद्ध, बुद्ध-कीर्ति और कुमार बोध जैसे चित्रकार चीन गए थे और वहाँ उन्होंने भारतीय चित्रकला का प्रभाव छोड़ा था। भारतीय चित्रकला के 6 अंग मानते हैं। चीनी चित्रकारों ने भी इन अंगों को स्वीकार किया है। ये अंग हैं—रूप, प्रमाण, भाव, सौन्दर्य-योजन, सादृश्य, वर्णिकभंग।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चीनी कला भारतीय कला से अवश्य ही प्रभावित हुई है।

संगीत

संगीत के क्षेत्र में भी चीन भारत का ऋणी है। 581 ई० में चीन में एक राजकीय उत्सव हुआ जिसमें अन्य देशों के अतिरिक्त भारत के संगीतज्ञ भी गये थे। छठी शताब्दी में भारतीय संगीत का पर्याप्त ज्ञान चीनियों को हो गया था। सम्राट काउत्स ने संगीत पर भारतीय प्रभाव को बढ़ते हुये देखकर उसे अवैध घोषित कर दिया था। 578 ई० में "सुजीव" नाम का एक भारतीय संगीतज्ञ चीन गया था। बोधि नामक एक संगीतज्ञ ने अपनी कला का प्रदर्शन चीन में किया था। ऐसा विश्वास किया जाता है कि चीनी संगीतज्ञ भरत मुनि के नाम से परिचित थे। चीनी संगीत में भी भारतीय संगीत की भाँति 7 स्वरों को आधार बनाया गया है।

विज्ञान

विज्ञान के क्षेत्र में भी भारत ने चीन को प्रभावित किया। चिकित्सा-शास्त्र के अनेक ग्रन्थों का अनुवाद चीनी में हुआ है। इन ग्रन्थों में "रावणकुमार तन्त्र" और "काश्यप संहिता" प्रमुख है। चीन में भारत के तान्त्रिकों का भी मान होता था जो जादू-टोने के द्वारा रोगों को दूर करते थे। ज्योतिष विद्या में भी चीन को भारत की देन है। 718 ई० में एक भारतीय विद्वान ने चीन के सम्राट को एक कैलेण्डर भेंट किया था। सुइ वंश और तंग वंश के सम्राटों के दरबारों में भारतीय ज्योतिषी गये थे। भारतीयों की भांति चीनियों का भी यह विश्वास था कि मनुष्य के भाग्य पर नक्षत्रों का प्रभाव पड़ता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, कला आदि क्षेत्रों में चीन को भारत की बहुत बड़ी देन है। इस संबन्ध में स्मिथ महोदय का कथन नितांत सत्य है कि—"संस्कृति के क्षेत्र में भारत न चीन को अधिक योगदान दिया और पाया कम।"

"In the field of culture, India has givea much more to China than what she has got from it."

—Smith.

सारांश

चीन की प्राचीन सभ्यता विश्व की श्रेष्ठतम सभ्यताओं में से एक थी। आधुनिक चीन को देखकर यह विश्वास भी नहीं किया जा सकता कि वहाँ के लोग प्राचीन काल में बहुत अधिक सुसंस्कृतज्ञ और शान्ति-प्रिय थे। चीन की सभ्यता के विकास के अग्रलिखित कारण थे —

(1) शान्ति-प्रियता
(2) विशाल हृदयता
(3) गुण-ग्राहकता
(4) सहिष्णुता
(5) अध्ययनशीलता

प्राचीनकाल में भारत ने चीन को बहुत कुछ दिया। भारत की चीन को सबसे बड़ी देन बौद्ध धर्म है। बौध धर्म ने चीन को सम्यक विचारधारा ही नहीं दी वरन् चीन की कला और साहित्य की उन्नति में भी बौद्ध धर्म का बहुत बड़ा हाथ रहा। तीसरी शताब्दी में चीन में बहुत से बौद्ध मन्दिर बन गये थे। महायानी और हीनयानी दोनों ही प्रकार के ग्रन्थों का चीनी में अनुवाद हुआ।

मूर्ति कला के क्षेत्र में भारत ने नवीन शैली दी। ह्वेन सांग जब भारत आया था तो अपने साथ दो मूर्तियाँ ले गया था। शिखर युक्त मन्दिर में भी चीन को भारत की देन है। 519 ई० में चीन में लोयंग नामक स्थान में एक बहुत सुन्दर बौद्ध मन्दिर था। चित्रकला के क्षेत्र में भी चीन को भारत की देन है। शाक्य बुद्ध और बुद्ध कीर्ति जैसे चित्रकार चीन गये और उन्होंने वहा भारतीय चित्रकला का प्रभाव छोड़ा। संगीत कला के क्षेत्र में भी चीन भारत का ऋणी है। 518 ई० के राजकीय उत्सव में भारत के कई संगीतज्ञ चीन गए थे। 578 ई० में 'सुजीव' नाम का भारतीय संगीतज्ञ चीन गया था। चीनी संगीत में भी भारतीय, सङ्गीत की भाँति 7 स्वर हैं।

ज्योतिष विद्या के क्षेत्र में भी भारत ने चीन को प्रभावित किया। 718 ई० में एक भारतीय विद्वान ने चीन के सम्राट को एक केलेन्डर भेंट किया था।

अतः हम कह सकते हैं कि केवल धर्म और दर्शन के क्षेत्र में चीन भारत का ऋणी नहीं है वरन् साहित्य, सङ्गीत, कला और विज्ञान के क्षेत्र में भी चीन को भारत की बहुत बड़ी देन है।

———

हित्ती सभ्यता और संस्कृति

CIVILIZATION AND CULTURE OF HITTIES

अध्याय | 15

हित्तियों की सभ्यता और संस्कृति

(CIVILIZATION AND CULTURE OF HITT/ES)

प्रश्न :—(1) हित्ती सभ्यता का प्रमुख विशेषताओं का विवरण दीजिए।

Discuss the chief features of Hitties Civilization.

(Gorakhpur University)

(२) हित्तियों के राजनीतिक इतिहास पर प्रकाश डालते हुये उनकी सांस्कृतिक उन्नति की चर्चा कीजिये। हित्तियों के विदेशों से सम्बन्धों का भी वर्णन कीजिये।

Throw light on the Political History of Hitties. Discuss the advancement of Hitties in the Cultural Field.

इतिहास जानने के साधन

हित्तियों के इतिहास के विषय में विशेष जानकारी नहीं है। कुछ समय पूर्व तक उनके विषय में जानने के साधन केवल पुरानी बाइबिल और मिश्री अभिलेखों में मिलने वाले उनके उल्लेख थे। इन साधनों से जो जानकारी प्राप्त होती है वह अत्यन्त सीमित है। उनसे यही पता चलता है कि फिलिस्तीन में इजराइलियों के आगमन के समय हित्ती नामक जाति निवास करती थी और उसने सोरिया में कुछ छोटे राज्य स्थापित किये थे। इन स्रोतों के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता था कि दूसरी सहस्राब्दी ई० पू० में इन लोगों ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी।

उन्नीसवीं शताब्दी में सीरिया और एशिया माइनर के बहुत से स्थानों पर ऐसे स्मारक प्राप्त हुये जिनसे हित्तियों के विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त हुई है। 1887 ई० में मिस्र में 'तैल-एल-अमर्ना' पत्र प्राप्त हुये जिनमें हित्ती जाति के शासकों की गति-विधि के विषय में जानकारी प्राप्त हुई थी। हित्ती शासक का(सुप्पिलुल्युमस्का)एक पत्र प्राप्त हुआ जिसमें "अखनाटम" के राज्यारोहण के अवसर पर उसे बधाई दी थी। कालान्तर में एशिया माइनर ने बोगजकोई नामक स्थान पर भी एक राजकीय अभिलेख संग्रहालय प्राप्त हुआ। इस संग्रहालय से अनेक अभिलेख प्राप्त हुये जिनसे यह पता

चलता है कि प्राचीन काल में हित्ती जाति की राजधानी बोगजकोई थी। उनसे यह भी जानकारी प्राप्त हुई कि हित्ती जाति का क्रीड़ा-स्थल फिलिस्तीन या सीरिया न होकर एशिया माइनर था। बोगजकोई के बैबिलोनियन भाषा में लिखे हुये अभिलेखों को तो पढ़ लिया गया है परन्तु हित्तियों की चित्राक्षर लिपि को पूरी तरह पढ़ा नहीं जा सका है और यही कारण है कि उनके सम्पूर्ण इतिहास की जानकारी विधिवत् प्राप्त नहीं होती।

अनातोलिया का भूगोल एवं जातियाँ

हमने पहले ही इस बात का उल्लेख किया है कि हित्तियों का क्रीड़ास्थल एशिया माइनर था। यूनानी भाषा में उसे अनातोलिया कहा जाता जिसे आजकल टर्की के नाम से पुकारा जाता है। यह प्रदेश विशाल पर्वतों से युक्त है। इसके उत्तर में सागर है, दक्षिण में भूमध्यसागर, पूर्व में अरमीनियन पर्वतमाला और पश्चिम में ईजियन समुद्र है। खनिज पदार्थों की दृष्टि से यह प्रदेश काफी धनी है और यही कारण है कि पश्चिमी एशिया एवं मिस्र में लौह युग को प्रारम्भ करने का श्रेय हित्तियों को प्राप्त है।

हित्ती एशिया माइनर के प्राचीनतम निवासी न थे। वे अनातोलिया में कब आये, इसके विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। परन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि अनातोलिया में उनका आगमन 18वीं शताब्दी से पूर्व ही हो चुका था क्योंकि इन्होंने बैबिलोन पर आक्रमण करके हम्मूराबी के वंश के सत्यानाश कराने में भाग लिया था।

राजनीतिक इतिहास

हित्तियों का राजनीतिक इतिहास छोटे-छोटे नगर राज्यों से प्रारम्भ होता है। इन नगर राज्यों का कार्यकाल 2,000 ई० पू० से कुछ पहले मानना पड़ता है। उनका सबसे पहला राजा, जिसके विषय में कुछ जानकारी प्राप्त होती है, कुस्सर नगर का शासक अनित्त था। उसने अन्य छोटे-छोटे राज्यों को जीतकर एक विशाल राज्य की स्थापना की और हत्तुसस (बोगजकोई) को अपनी राजधानी बनाया।

ऐतिहासिक परम्पराओं के आधार पर हित्तियों का प्रथम शासक लवर्नस था। उसका पुत्र हत्तुमिलिस और पौत्र मुर्सिलिस था। मुर्सिलिस ने एशिया माइनर में अपने राज्य को सुदृढ़ बनाया और उत्तरी सीरिया पर विजय प्राप्त की। उसने बैबिलोन पर आक्रमण करके हम्मूराबी के वंश का अन्त कर दिया। मुर्सिलिस के बाद तैलपिनस नामक प्रतिभाशाली राजा हुआ। उसके वंशजों ने एक विधि-संहिता की रचना की।

सुप्पिलिल्युमस

15वीं शताब्दी ई० पू० के मध्य हित्ती राज्य एक नवीन वंश के अधिकार में चला गया। इस काल में हित्ती राज्य पर अनेक विदेशी आक्रमण हुये। 1380 ई० पू० से लेकर 1335 ई० पू० तक सुप्पिलिल्युमस् नामक प्रतिभाशाली सम्राट ने हित्ती साम्राज्य को बहुत अधिक बढ़ा दिया। उसने अपनी राजधानी हत्तुसस् में सुरक्षा के लिये एक विशाल प्राचीर बनवायी। तत्पश्चात् उसने फरात नदी को पार करके मितन्नी राज्य पर अधिकार कर लिया। अब उसके लिये सीरिया को जीतना आसान था। कहा जाता है कि सुप्पिलिल्युमस् के वैभव से प्रभावित होकर मिस्र की रानी ने उसके पास यह पत्र भेजा कि उसके पति की मृत्यु हो चुकी है इसलिये वह सुप्पिलिल्युमस् के पुत्र को अपना पति बनाना चाहती है। सुप्पिलिल्युमस् ने अपने पुत्र को मिस्र भेजा परन्तु इसके पूर्व ही मिस्र में विद्राह हो गया और रानी का वध कर दिया गया। 1335 ई० पू० के लगभग सुप्पिलिल्युमस् की मृत्यु हो गई।

मुर्सिलिस द्वितीय और उसके उत्तराधिकारी—सुप्पिलिल्युमस् का पुत्र मुर्सिलिस द्वितीय अपने पिता की मृत्यु के बाद हित्ती सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। उसने पश्चिम में अजावा नाम के राज्य को पराजित किया। उत्तर-पूर्व में अनीहयस् को पराजित किया और सोरिया के विद्रोह को दबाया। 1306 ई० पू० के लगभग मुर्सिलिस की मृत्यु हो गई। इसके बाद उसका पुत्र मुवतल्लिस् ने राज्य किया। मुवतल्लिस् के शासन-काल में मिस्र के महत्वाकांक्षी सम्राट सेती प्रथम ने केनान के क्षेत्र को अपने राज्य में मिला लिया। परिणामस्वरूप हित्तियों और मिस्रियों के संबन्ध कटुतापूर्ण हो गये। 1286 ई० पू० में हित्तियों ने मिस्रियों को पराजित किया। 1279 ई० पू० में दोनों राज्यों के मध्य एक सन्धि हुई और 13 वर्ष बाद हित्ती सम्राट हत्तुमिलिस तृतीय (1275 ई० पू० - 1250 ई० पू०) ने अपने पुत्र के साथ मिस्र की यात्रा की।

साम्राज्य का पतन—हत्तुमिलिस अपने वंश का अन्तिम प्रतिभाशाली सम्राट था। इसके पश्चात् असीरिया की प्रतिद्वन्दिता, शासकों की अयोग्यता और फ्रागिमन एवं मुस्की जातियों के आक्रमणों के फलस्वरूप हित्तियों की शक्ति कम होती गई। 1190 ई० पू० में असीरियन सम्राट तिगलथपिलेसर प्रथम ने हित्ती राज्य को पूर्णतः नष्ट कर दिया।

नव हित्ती राज्य—हित्ती साम्राज्य के पतन के बाद भी हित्तियों के राजनीतिक और सांस्कृतिक वैभव के अवशेष साम्राज्य के दक्षिण-पूर्वी भागों में शेष रहे। असीरियन देशों में सीरिया को हित्ती देश के नाम से पुकारा गया है। पुरानी बाइबिल में भी उनका उल्लेख हुआ है। वास्तव में 'नव-हित्ती' राजाओं की भाषा और धर्म के

नहीं थे जो हित्ती साम्राज्य के निर्माता थे। विशाल साम्राज्य की स्थापना करने वाली हित्ती जाति और 'नव-हित्ती' शासकों में क्या सम्बन्ध थे इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। नव हित्ती राज्य के बहुत से अभिलेख अभी तक पढ़े नहीं जा सके हैं और इस कारण उनके इतिहास के विषय में कोई विशेष जानकारी नहीं है।

शासन-व्यवस्था

(1) **केन्द्रीय शासन**—हित्तियों ने सुदृढ़ केन्द्रीय शासन की व्यवस्था की थी। आरम्भ में राजा का पद सुरक्षित न था और वह सामन्तों द्वारा निर्वाचित होते थे। तेलपिनस् के शासन-काल से उत्तराधिकार का नियम लागू हुआ। हित्ती शासक अनेक उपाधियों को धारण करते थे। प्राचीन शासक "महाराज तबर्न विरुद' धारण करते थे। परन्तु साम्राज्य काल में वे "मेरे सूर्य विरुद" धारण करने लगे। राजा देश का प्रधान न्यायाधीश, पुजारी, और सेनापति होता था। वही पड़ोसी राजाओं से सन्धि एवं युद्ध की घोषणा करता था। उसका आदर प्राचीन पुजारी के रूप में होता था। बहुत से हित्ती शासकों के स्मारकों में राजा को उन्हें पुजारी के रूप में दिखाया गया है।

शासन-व्यवस्था में महारानी का पद भी अत्यन्त महत्वपूर्ण था। उनका विरुद "तवन्नन्नास" था। वे राज्य कार्यों में अपने पतियों के साथ भाग लेती थीं। हत्तू-मिलिस की महारानी ने मिस्र की महारानी के साथ पत्र-व्यवहार किया था। हित्ती शासन-व्यवस्था में राजा के स्वजनों का भी विशिष्ट स्थान था। इनको "महापरिवार" कहा जाता था। राज्य के प्रमुख पदाधिकारी यथा प्रधान कोषाध्यक्ष, प्रधान अगरक्षक, और प्रधान निरीक्षक आदि महापरिवार से ही नियुक्त होते थे। महापरिवार के सदस्यों और उनके अधीनस्थ सहकर्मियों को "पानकू" के नाम से पुकारा जाता था। महापरिवार और पानक के हाथ में ही शासन की सत्ता केन्द्रित रहती थी। उनकी एक सम्मिलित सभा होती थी जो आवश्यकता पड़ने पर राजा को परामर्श देती थी। प्राचीन काल में उसका अधिकार काफी विस्तृत था परन्तु तेलपिनस ने समस्त अधिकार अपने हाथ में लेकर सभा के महत्व को बहुत कम कर दिया। कालान्तर पर सम्राट के अधिकार बढ़ते गये और सभा का महत्व क्षीण पड़ता गया। इतना होने भी हित्ती सामन्तों का पर्याप्त महत्व रहा। सामन्तों को राजाओं का जागीरें प्राप्त हुई थीं और यह सामन्त भी राजाओं की रथ सेना एकत्रित करते थे।

(2) **प्रान्तीय व्यवस्था**—आरम्भ में हित्ती राज्य बहुत छोटा था और उसकी प्रान्तीय व्यवस्था अत्यन्त सरल थी। अधिकतर नगरों के प्रशासन के लिये नगर-सभाओं का संगठन किया गया था और नगरों का शासन मुख्य रूप से मन्दिरों के पुजारियों के द्वारा संपन्न होता था। आरंभ में हित्ता राजाओं और सेनापतियों को

गवर्नर बनाया था। शनैः शनैः हित्ती साम्राज्य की वृद्धि के साथ प्रान्तीय व्यवस्था भी जटिल होती गई। साम्राज्य काल में हित्ती साम्राज्य में कई प्रकार के प्रान्त थे। पहले प्रकार में कार्समिस और अलप्पो जैसे सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नगर आते थे। दूसरी कोटि में ऐसे राज्य आते थे जिन्होंने हित्ती सम्राट की प्रभुसत्ता को समाप्त कर लिया था परन्तु वे पर्याप्त मात्रा में स्वतन्त्रता का उपभोग करते थे। तीसरे वर्ग में पूर्णतः अधीनस्थ राज्य आते थे जिनका शासन स्थानीय राजपुत्रों की राय से होता था और उनकी नियुक्ति हित्ती सम्राट द्वारा की जाती थी। हित्ती सम्राटों ने अपने अधीनस्थ शासकों और गवर्नरों को स्वामिभक्त बनाये रखने का हर संभव प्रयास किया। अधीनस्थ शासक वार्षिक कर देते थे और सम्राट के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करते थे। अधीनस्थ शासक जब अधीनता स्वीकार करते थे तो उन्हें देवता के सम्मुख सौगन्ध खानी पड़ती थी कि वह हित्ती सम्राट के प्रति वफादार रहेंगे। हित्ती सम्राट अधीनस्थ राजाओं और प्रान्तीय गवर्नरों पर कड़ी निगाह तो रखते ही थे परन्तु उनके साथ विवाह सम्बन्ध भी स्थापित करते थे।

(3) **सैन्य व्यवस्था :**—हित्तियों ने एक सुदृढ़ सेना की स्थापना की थी। उनकी सेनाओं की शक्ति का केन्द्र उनके रथ थे। यह रथ घोड़ों के द्वारा खींचे जाते थे। हित्तियों के प्रारम्भिक काल की सेना के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता परन्तु इतना अवश्य स्वीकार किया जायगा कि सिप्पुलिल्यूमस के समय से हित्ती की सेना में रथों की बहुलता हो गई थी। इन रथों में ६ पहिये रहते थे और रथ में चालक और योद्धा दो ही व्यक्ति बैठते थे। पैदल सेना में रथ सेना की संख्या से अधिक होते थे। परन्तु पदात् सैनिकों का महत्व अपेक्षाकृत कम था। सम्भवतः हित्ती अश्वारोही सेना नहीं रखते थे और न वे जल बेड़े का प्रयोग करते थे। हित्तियों की स्थायी सेना थी या नहीं, इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। परन्तु ऐसा अनुमान है कि उन्होंने अपनी रक्षा के लिये स्थायी सेना अवश्य रखी होगी।

हित्ती बसन्त और ग्रीष्म ऋतु में ही अपने सामरिक अभियान करते थे। वह दुर्गों पर घेरा डालने की कला में अत्यन्त निपुण थे। उन्होंने अपनी रक्षा के लिये राज्य में किलेबन्दी की थी। उदाहरण के लिये हत्तुसस ने एक प्राचीर का निर्माण करवाया था।

प्रारम्भ में हित्ती शत्रु नगरों को खूब लूटते थे परन्तु साम्राज्य युग में इनमें राजनीतिक चेतना उत्पन्न हो गई और वह किसी शत्रु पर आक्रमण करने के पूर्व आक्रमण का कारण भी बतलाते थे। शत्रु को अपने में सुधार करने के लिये भी पर्याप्त अवसर प्रदान करते थे और शत्रु को पराजित कर वह उसके प्रति वैसा ही व्यवहार करते थे जैसे कि शत्रु इनसे व्यवहार करते थे। यदि कोई शत्रु आत्म

समर्पण करता था और राजभक्ति की शपथ लेता था तो इससे सन्धि कर ली जाती थी और यदि कोई शत्रु बल का प्रयोग करता था तो उसको जीत कर उसके राज्य को लूट कर जला दिया जाता था और राज्य के निवासियों को बंदी बना लिया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि हित्ती असीरियनों की तरह कठोर अमानुषिक व्यवहार शत्रुओं से नहीं करते थे।

(4) न्याय और दण्ड व्यवस्था :—हित्तियों के कानूनों के विषय में जानकारी बोगजकोई की खुदाई में प्राप्त अभिलेखों से होती है। उनके कानूनों पर बेबिलोनियन कानूनों का प्रभाव है परन्तु दोनों में कुछ अन्तर है। उसकी न्यायव्यवस्था में सबसे छोटी अदालतें नगर समितियां होती थीं। बोगजकोई के उत्खनन मे दो अभिलेख ऐसे प्राप्त हुए हैं जिनमें कुल मिलाकर 200 धाराएं हैं। वास्तव में उन्हें हित्तियों की विधि संहिता कहनी चाहिये। उनकी इस विधि संहिता में नगर समितियों का उल्लेख एक बार हुआ है। शायद यह समितियां जन न्यायालय ही थे और राज्य सरकार का उन पर बहुत कम प्रभाव रहता था। प्रान्तों में न्याय का कार्य सैनिक अधिकारी करते थे और वे नगर समितियों और स्थानीय पदाधिकारियों से सहयोग प्राप्त करते थे। न्याय की सर्वोच्च सत्ता सम्राट में ही निहित थी, महत्वपूर्ण मुकदमे उसके पास आते थे। हित्तियों की न्याय-व्यवस्था और उनके न्याय के क्षेत्र मे कार्य करने का ढंग पर्याप्त समुन्नत था। उनकी दन्ड व्यवस्था भी काफी प्रगतिशील थी। प्रारम्भिक काल में अभियोगी अपराधी को खुद दन्ड देते थे। यदि अभियोग करनेवाला व्यक्ति मर जाता था तो उसका कोई सम्बन्धी अपराधी को दन्ड देता था। उनके यहां जैसे को तैसा सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की गई थी और यदि कोई व्यक्ति किसी का दांत तोड़ देता तो उस व्यक्ति से दांत तोड़नेवाले का दांत तोड़वा दिया जाता था। बाद में यह अनुभव किया गया कि यह व्यवस्था उचित नहीं है और हित्तियों ने अपने दृष्टिकोण को सुधारवादी बनाया। उन्होंने क्षतिपूर्ति के सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की। यदि कोई व्यक्ति किसी नागरिक के पैर तोड़ देता था तो उस पर 20 शेकल चाँदी का जुर्माना किया जाता था और यह चांदी उस व्यक्ति को दे दी जाती थी जिसका पैर तोड़ डाला गया। दास या दासी का पैर तोड़ देने पर 10 शेकल चांदी ही देनी पड़ती थी।

हित्तियों की दन्ड व्यवस्था प्रगतिशील के साथ उदारवादा थी। बलात्कार, राजाज्ञा का विरोध और दासों के लिये स्वामी को आज्ञा का पालन न करना भयंकर अपराध थे। परन्तु इन पर मृत्यु दन्ड नहीं दिया जाता था। शत्रु पर कालाजादू, पशुओं के सहवास और राजप्रसाद में चोरी करने पर मृत्युदन्ड दिया जाता था। कुल 8 अपराध ऐसे थे जिन पर मृत्यु दन्ड दिया जाता था। शेष अपराधों पर अन्य प्रकार के दन्ड दिये जाते थे। नर हत्या के लिये किसी प्रकार के दन्ड का उल्लेख विधि सहिता में नहीं हुआ है।

सामाजिक व्यवस्था

(1) वर्ग-व्यवस्था :— हित्ती समाज के दो वर्ग थे। पहला वर्ग सामन्तों का था। वास्तव में राज्य की समस्त बागडोर सामन्त वर्ग के हाथ में ही थी। यह सामन्त वर्ग अत्यधिक ऐश्वर्य का जीवन व्यतीत करता था। दूसरा वर्ग साधारण जनता थी। शासन की व्यवस्था में साधारण जनता का कोई हाथ नहीं रहता था।

कार्य की दृष्टि से साधारण जन भी दो वर्गों में विभाजित था—कृषक और दस्तकार। दस्तकारों में चर्मकार, लोहार और जुलाहे आदि थे। इनका उल्लेख हित्ती अभिलेखों में स्पष्ट रूप से हुआ है। साधारण जन नागरिक स्वतन्त्रता का उपभोग तो करते थे परन्तु राज्य किसी भी समय उनसे बेगार ले सकता था।

(2) दास प्रथा :— हित्ती समाज में दास प्रथा भी विद्यमान थी। दासों की व्यवस्था कैसी थी इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। कुछ अभिलेखों में यह उल्लेख मिलता है कि दासों पर उनके स्वामियों का पूर्ण अधिकार होता था और स्वामी अपने दासों के अंग भङ्ग भी करा सकता था। परन्तु दूसरी ओर हित्ती संहिता में दासों के और जीवन शरीर रक्षा के लिये उसी प्रकार के नियम मिलते हैं जिस प्रकार के नियम अन्य वर्ग के लोगों के लिये मिलते हैं। अन्तर केवल इतना है कि यहाँ अन्य नागरिकों के प्रति किये गये अपराधों की क्षति पूर्ति काफी अधिक थी। दासों के प्रति किये गये अपराधों के प्रति वह क्षतिपूर्ति कम थी। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी साधारण नागरिक को सताने पर जो दन्ड भुगतना पड़ता था, किसी दास को सताने पर उसका आधा दन्ड भुगतना होता था।

उपर्युक्त विरोधाभास से ऐसा प्रतीत होता है कि हित्ती समाज में दासों के दो वर्ग थे—एक प्रकार के दासों का शरीर, जीवन और परिवार आदि पर उनके स्वामियों का पूर्ण अधिकार होता था परन्तु दूसरे वर्ग के दासों में जीवन, शरीर और परिवार आदि पर उनके स्वामियों का अधिकार नहीं होता था। यह भी हो सकता है कि कानून न स्वामियों के दासों पर अधिक अधिकार न हो परन्तु व्यवहार में स्वामी दासों को सताते थे।

(3) पारिवारिक सङ्गठन :— ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में हित्ती समाज में मातृसत्तात्मक परिवार प्रथा विद्यमान थी परन्तु हित्ती कानूनों से यह पता चलता है कि दूसरी सहस्राब्दी ई० पू० में उनके परिवार में पितृसत्तात्मक व्यवस्था हो गई थी। पिता का अपने पुत्रों और पुत्रियों पर पूरा अधिकार होता था। यदि कोई पिता किसी व्यक्ति के पुत्र की हत्या कर देता था तो उसे दन्ड स्वरूप अपने पुत्र को देना पड़ता था। यदि किसी पुरुष की पत्नी व्यभिचारिणी होती थी तो पुरुष को उसे मनमाना दन्ड देने का अधिकार था।

(4) विवाह व्यवस्था—हित्ती समाज में वैवाहिक व्यवस्था अत्यन्त उच्च कोटि की थी। मां, बहिन, सास और पुत्री आदि से समागम नहीं किया जा सकता था। परन्तु किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर उसकी विधवा मृत व्यक्ति के भाई और भाई के न होने पर उसके पिता और उसके भी न होने पर भतीजे तक से भी विवाह कर सकती थी। सम्भवतः हित्ती समाज का उद्देश्य मृतक के वंश को चलाये रखना था और इसी कारण इस प्रकार के नियम बनाये गये थे। पिता की मृत्यु के बाद सौतेली मां से भी समागम करने का अधिकार किसी व्यक्ति को प्राप्त था।

(5) स्त्रियों की दशा—हित्ती समाज में आरम्भिक काल में स्त्रियों की दशा काफी अच्छी थी। कुछ रानियों के पुजारियों के पद पर आसीन होने और शासन कार्यों में भाग लेने की भी उल्लेख हुआ हैं। पितुहिप नामक रानी के सहशासिका होने और राजसंरक्षिका होने का उल्लेख मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि हित्ती समाज में प्रारम्भिक काल में नारी का जो गौरव प्राप्त था कालान्तर में वह गौरव प्राप्त न रहा और स्त्री को भोगविलास की सामग्री मात्र बना दिया गया।

आर्थिक व्यवस्था

(1) कृषि कर्म और भूमि व्यवस्था—जलवायु की दृष्टि से अनातोलिया का क्षेत्र कृषि के लिये अच्छा न था परन्तु फिर भी हित्ती समाज में लोगों का मुख्य कार्य कृषि ही था। समाज कृषि प्रधान था और इस कारण भूमि का महत्व बहुत अधिक था। अधिकतर भूमि पर राजा का ही अधिकार होता था और वही अपने कृपापात्रों को यह भूमि प्रदान करता था। मन्दिरों का भी पर्याप्त भूमि पर अधिकार था और यह मन्दिर भी लगान पर भूमि देते रहते थे। साधारण जनता को दो प्रकार से भूमि मिल सकती थी—एक तो राजा का कृपापात्र बनकर और दूसरे सैनिक एवं योद्धा बन कर। राजा के द्वारा जो भूमि किसी को प्रदान की जाती थी उसे बेचने का अधिकार उस व्यक्ति को मिलता था।

हित्ती समाज में गेहूँ और जौ की खेती अधिक होती थी उनका उपयोग खाने और शराब बनाने दोनों के लिये ही होता था। अङ्गूर से शराब बनाने और जैतून का तेल निकालने का उल्लेख भी प्राप्त होता है।

(2) पशुपालन—कृषि कर्म के अतिरिक्त हित्तियों का एक मुख्य उद्यम पशुपालन भी था। वे घोड़ा, बैल, गधा, सुअर, खच्चर, भेड़े, बकरी आदि पशु पालते थे। कदाचित एशिया माइनर में हित्तियों ने ही घोड़ा का प्रयोग किया था। पशुओं के पालने आदि के विषय में भी विधि संहिता में नियम दिये हुये हैं। यदि कोई व्यक्ति किसी का जानवर उधार ले लेता था और वह मर जाता था तो उस व्यक्ति को उसे

दूसरा जानवर देना होता था परन्तु यदि वह यह सौगन्ध खा लेता था कि वह ईश्वर की इच्छा से मर गया तो वह जानवर देने से बच सकता था।

(3) उद्योग (लौह उद्योग का प्रारम्भ)—हित्ती शासकों ने अनातोलिया के खनिज भान्डार का पूरा लाभ उठाया। चांदी और ताँबे का प्रयोग कुछ पहले से हो रहा था। परन्तु हित्तियों ने अपने उपकरण बनाने के लिये सर्व प्रथम लोहे का प्रयोग किया। लोहा अनातोलिया में बहुलता से प्राप्त होता था। हित्तियों ने लोहे का प्रयोग तो प्रारम्भ किया परन्तु दूसरी सहस्राब्दी में इसका प्रयोग अत्यन्त सीमित था। इसका कारण यह था कि लोहा पिघलाने की प्रथा अत्यन्त कठिन थी और फलस्वरूप अधिकतर बर्तन बनाने के लिये ताँबे और कांसे का प्रयोग होता था। लोहे की बनी हुई तलवारें और देवमूर्तियों का उल्लेख हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि मन्दिरों की मूर्तियों का निर्माण, और राजाओं के अस्त्रों को बनाने के लिये लोहा प्रयुक्त होता था और शेष सभी वस्तुएं ताँबे, कांसे और चांदी की बनती थीं।

(4) व्यापार :—हित्तियों के आन्तरिक और विदेशी व्यापार के सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती है। यह अवश्य ज्ञात होता है कि इस समाज में विनिमय का माध्यम चांदी की छड़े और अन्य छल्ले थे। छोटे भार के बांट शीशे के बनते थे। शेकल भार की इकाई थी और ६० शेकल का एक मीना होता था। विधि संहिता में भेड़ बकरा, खाद्यान्न, मांस और भूमि आदि के मूल्य दिये हुये हैं जिनसे पता चलता है कि इन वस्तुओं के मूल्य निर्धारित थे। एक भेड़ का मूल्य एक शेकल और एक बकरी का $\frac{2}{3}$ शेकल था। चांदी के विनिमय का माध्यम बेबिलोन के प्रभाव के अनुसार ही बनाया।

ऐसा प्रतीत होता है कि हित्ती अपने पड़ोसी देशों के साथ अत्यधिक मात्रा में व्यापार करते थे। असीरियन व्यापारी अनातोलिया से ताँबे का निर्यात करते थे। वस्त्र और टीन बेबिलोनिया से अनातोलिया आता था। साम्राज्य काल में हित्तियों का व्यापार काफी कम हो गया था। हित्तियों का पश्चिम में ईजीयन प्रदेश के साथ भी व्यापारिक सम्बन्ध थे। इसके भी उल्लेख मिलते हैं।

भाषा एवं साहित्य

(1) भाषाएँ—बोगजकोई में प्राप्त हित्तियों के अभिलेखों में कम से कम 8 भाषाओं का प्रयोग किया गया है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हित्ती समाज में 8 भाषाएं बोली जाती थीं। केवल हित्ती और अक्कादी दो ही भाषाओं का प्रयोग मुख्यतयः करते थे। अन्य भाषाओं का प्रयोग केवल नाम मात्र के लिये होता था। उनकी प्रसिद्ध भाषा हित्ती ही थी। भाषा परिवार में हित्ती की भाषा का स्थान कहाँ

निर्धारित किया जाय इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इनकी अन्य प्रमुख भाषा अक्कादी भाषा थी। इस भाषा का प्रयोग पश्चिमी एशिया की अन्तर्राष्ट्रीय भाषा होने के फलस्वरूप किया गया था। इन भाषाओं के अतिरिक्त सुमेरियन, हुर्री, लूवियन, पालाई आदि भाषाओं का प्रयोग भी यत्र-तत्र किया जाता था।

(2) साहित्य—हिति साहित्य को तीन रूपों में देखा जा सकता है। प्रथम कोटि में राजकीय अभिलेख आते हैं। इन अभिलेखों में इतिहास के प्रति विशेष रुचि प्रकट की गई है। साथ ही उनका साहित्यिक महत्व भी बहुत अधिक है। इन अभिलेखों में अधिकतर हित्ती सम्राटों के भाषण संग्रह किये गये हैं। हतुसिलिस प्रथम का "राजनीतिक वसीयतनामा" नामक भाषण अत्यन्त प्रसिद्ध है। हतुसिलिस तृतीय का एक अभिलेख तो उसकी आत्मकथा ही बन गया है।

हित्तियों का दूसरे प्रकार का साहित्य आख्यान साहित्य है। इस प्रकार के साहित्य पर प्रकाश डालनेवाले अभिलेख अधिककर खन्डित अवस्था में हैं। साहित्यिक दृष्टि से इन आख्यानों का अधिक मूल्य नहीं है। आख्यानों में पद्य का प्रयोग नहीं हुआ है और कथानक बर्बर होते हुये भी मनोरंजक हैं। हित्ती अभिलेखों में जो आख्यान प्राप्त हुये हैं उनमें कुछ विदेशी भी हैं। उदाहरण के लिये इन अभिलेखों में बेबीलोनिया क गिल्गामेश आख्यान में सम्मिलित थे। हित्तियों का तृतीय प्रकार का साहित्य धार्मिक साहित्य है। इस साहित्य में "नामदेव का वध" और "लुप्त देवता" अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। "नामदेव का वध" में "ऋतुदेव" और "नामदेव" के संघर्ष का चित्रण है। ऋतुदेव को तेलिपिनु नामक देवता का प्रतीक कहा जाता है। लुप्त देव की कथा में देवताओं द्वारा खोये हुये लुप्तदेव का पता लगाने का चित्रण किया गया है। इन दोनों ग्रन्थों का साहित्यिक दृष्टि से विशेष महत्व नहीं है। साथ ही धार्मिक और नैतिक दृष्टि से यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण नहीं है। यह है कि इन ग्रन्थों के द्वारा हित्तियों के धार्मिक विश्वासों का पता चलता है।

हित्ती कला

हित्तियों की कला के विषय में हमें पर्याप्त जानकारी उपलब्ध हो रही है। अनातोलिया की प्रारम्भिक कला के अवशेष अलजहुमुक नामक स्थान पर प्राप्त हुए हैं। यहाँ कुछ रजत एवं ताम्र की पशु मूर्तियाँ, स्वर्ण पात्र, एवं आभूषण आदि प्राप्त हुए हैं। अनातोलिया की प्राचीन कला के स्पष्ट दर्शन वहां के निवासियों के द्वारा हाथ से बनाये गये मिट्टी के बरतनों में होते हैं। इन बरतनों पर अनेक चित्र भी बनाये गये हैं।

साम्राज्य काल में हित्तियों ने कला के क्षेत्र में बहुत अधिक उन्नति की। इस काल में हाथ से बने हुये मिट्टी के बरतनों के स्थान पर चक्र द्वारा बनाये गये पालिश

किये गये सुन्दर मिट्टी के बरतन प्राप्त होते हैं। इस युग में राजप्रासादों और मन्दिरों की दीवारों के निचले भाग में पाषाण खन्डों पर बनी हुई विशाल मूर्तियाँ भी अत्यन्त प्रशंसनीय हैं। वास्तव में साम्राज्य काल में पाषाण, स्थापत्य और वास्तुकला दोनों का ही अत्यधिक विकास हुआ। यहाँ हम हित्तियों की विभिन्न प्रकार की कला की चर्चा संक्षेप में कर रहे हैं।

(1) भवन-निर्माण कला :—हित्तियों ने पत्थर का प्रयोग अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया है। इनकी राजधानी हत्तुसस (आधुनिक बोगजकोई) पश्चिमी एशिया का सबसे पहला पाषाण के बने हुये प्राचीर से युक्त नगर था। यह नगर लगभग ऊँचे पठार पर बना हुआ था। इसकी लम्बाई लगभग 2200 मीटर और चौड़ाई लगभग 1100 मीटर थी। शायद विस्तार में यह नगर बेबिलोन से भी बड़ा था। इस नगर के चारों ओर एक दोहरी प्राचीर बनाई गई थी जो दोनों ओर पत्थर से बनी हुई थी और जिसके मध्य में पत्थर के टुकड़े भरे हुये थे। इसकी लम्बाई लगभग 5500 मीटर थी और दोनों प्राचीरों में स्थान-स्थान पर चतुर्भुज तोरण (Tower) बने हुये थे। हत्तुसस के अतिरिक्त हित्तियों के अन्य प्रमुख नगर इकोनियन, लंमाना और कोमना आदि थे। वास्तव में यह छोटे-छोटे कस्बे ही थे।

बोगजकोई की खुदाई में कुछ भवनों के अवशेष भी प्राप्त हुये हैं जिनके द्वारा हित्ती वास्तुकला का पर्याप्त परिचय प्राप्त होता है। इन भवनों में पांच मन्दिर अत्यन्त प्रमुख थे। इन मन्दिरों में एक केन्द्रीय प्रांगण होता था और उसके जोड़ों में लघुकक्ष होते थे यहाँ बेबिलोनियन मन्दिरों में गर्भगृह मुख्य द्वार के सम्मुख प्रांगण के बीच में बना होता था हित्ती मन्दिरों में गर्भगृह प्रांगण के एक कोने में बना होता था। इन मन्दिरों में वातायन का भी सुन्दर प्रबन्ध था। ऐसा प्रतीत होता है कि इन मन्दिरों में दर्शन करने का अधिकार कुछ ही लोगों को प्राप्त था। हित्तियों ने वास्तु कला के क्षेत्र में कुछ नवीन प्रयोग किये थे। उन्होंने राजप्रासादों के अग्रभाग में द्वार मण्डल (Porch) की व्यवस्था की थी जिसमे जाने के लिये सीढ़ियाँ बनी होतो थीं। कालान्तर में हित्तियों की इस व्यवस्था को असीरियनों ने अपनाया।

(2) स्थापत्य कला :—हित्तियों की स्थापत्यकला के दर्शन भवनों को अलंकृत करने के लिये बनाई गई मूर्तियों में होते हैं। इनके द्वारा निर्मित रिलीफ चित्र अत्यन्त प्रसिद्ध हैं ; हित्ती राजाओं की कुछ मूर्तियाँ देवता की पूजा करते हुये भी प्राप्त हुई हैं।

हित्ती स्थापत्य कला का सबसे सुन्दर उदाहरण मजिलीकम की विशाल दीर्घा (Gallery) है। इस गैलरी में देवताओं और देवियों को चलने की मुद्रा में निर्मित किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे दो जुलूस एक दूसरे से आकर मिल रहे हों देवियों का नेतृत्व हेपत नामक देवी कर रही हैं। कदाचित वह मातृ शक्ति का प्रतीक

हैं। हेपत के पीछे एक लघु देवता की मूर्ति है और उसके पीछे द्विमुखी चील पर दो देवियों को दिखाया गया है। इनके साथ ही अन्य देवी देवताओं को भी चित्रित किया गया है। देवी और देवताओं के धड़ को सीधे परन्तु सिर और पैरों को पार्श्व (Profile) की ओर दिखाया गया है।

हित्ती रिलीफ-चित्रों का एक अत्यन्त सुन्दर उदाहरण बोगसकोई की एक दरवाजे के पार्श्व में बनी हुई एक योद्धा की मूर्ति है। इस मूर्ति के सीने को इतना उभार दिया गया है कि कुछ वहाँ उसे स्त्री योद्धा का चित्र मानते हैं परन्तु यह धारणा उचित नहीं है। इन मूर्तियों के अतिरिक्त कुछ अन्य लघु मूर्तियाँ भी प्रात हुई हैं।

(3) **मुद्रा-निर्माण कला** :—हित्तियों की मुद्राएं भी प्राप्त हुई हैं जिनके ऊपर रिलोफ चित्रों में प्राप्त मिलती जुलती आकृतियाँ बनाई गई हैं। यह मुद्राएँ बेलन, शंकु (कोन) और घन (Cube के आकार की प्राप्त हुई हैं और उनके बीच में या तो चित्राक्षर लिपि में कुछ लिखा हुआ है या देवता या उसके प्रतीक का चित्र बना हुआ है। कुछ मुद्राओं में उन्हें प्रचलित करने वाले राजाओं की आकृत्तियाँ बनी हुई हैं। तारकोंदेमांस की द्विभाषी रजत मुद्रा हित्ती मुद्रा कला का सबसे सुन्दर नमूना है।

हित्ती धर्म

आरम्भ में अनातोलिया के निवासी जानवरों और प्राकृतिक शक्तियों जैसे पेड़, नदी और देवता आदि की पूजा करते थे। दूसरी सहस्राब्दी ई० पू० में उन्होंने अपने देवताओं को मानवीय रूप दिया। इन देवताओं में ऋतुदेव तेसुब और उसकी पत्नी हेपत की पूजा की जाती थी। हेपत को सिंहवाहिनी के रूप में चित्रित किया गया है। वहाँ एक शौसक नामक देवी की पूजा होती थी जिन्हें हत्तुसिलिस तृतीय ने अपनी व्यक्तिगत देवी बनाया था। अरेन्ना नगर की सूर्य देवी भी मुख्य थी। हित्तियों ने बेबिलोनियन और सुमेर देवताओं यथा अनु, एनलिल और इया आदि को भी अपना लिया था। इस प्रकार हित्ती साम्राज्य के विभिन्न प्रदेशों में विभिन्न देवी देवताओं की पूजा होती थी।

हित्ती सम्राटों ने अपने विभिन्न प्रान्तों के निवासियों को अपने-अपने धर्म को मानने की पूरी छूट दी थी। कालान्तर में विभिन्न सम्प्रदायों को सम्भालने के फलस्वरूप एक राष्ट्रीय धर्म का विकास हुआ और विभिन्न सम्प्रदायों के देवी देवताओं में तादात्म्य स्थापित किया गया। यहाँ हम इस धर्म की चर्चा संक्षेप में कर रहे हैं :—

(1) **प्रमुख देवी-देवता**—हित्ती राष्ट्रीय धर्म में मातृ देवी की उपासना को अधिक महत्व प्रदान किया गया था। सर्वोच्च पद अरिन्ना को 'सूर्यदेवी' को दिया गया था और उसे "हित्ती देश की रानी", पृथ्वी और आकाश की रानी आदि कहा गया

था उसे ही हित्ती राज्य की संरक्षिका माना गया था। उत्तर काल में जब हित्ती धर्म पर हुर्री जाति का प्रभाव पड़ा तो उसे देवी का तादात्म्य हुर्री देवी 'देवता' या 'हेपत' या 'हेपित' के साथ कर दिया गया। 'सूर्य देवी' के पति का नाम 'ऋतु देव' था और इसके लिए 'हित्ती देश का स्वामी', 'स्वर्ग स्वामी' आदि विशेषणों का प्रयोग किया जाता था। हुर्री देवी 'हेवत' के द्वारा 'सूर्य देवी' का तादात्म्य होने पर 'ऋतुदेव' का तादात्म्य 'हेवत' के पति 'तैसुब' से कर दिया गया। हित्ती राज्य धर्म में सूर्य देवी को भी महत्व पूर्ण स्थान प्राप्त हुआ था और अनेक हित्ती सम्राट 'सूर्य' की उपाधि धारण करके अपने को गौरवशाली समझता था।

(2) धर्म में कर्मकाण्ड—हित्ती धर्म में हिन्दू धर्म की भाँति ही पूजापाठ और कर्मकांड की प्रधानता था। हित्ती भी हिन्दुओं की भाँति देवालयों में गाते थे और देवताओं को स्नान कराते, भोजन-पान कराते और उनके मनोरंजन के लिये संगीत और नृत्य आदि का आयोजन करते थे। पुजारियों की शारीरिक स्वच्छता और पवित्रता का बहुत अधिक ध्यान रखा जाता था। पशुबलि की प्रथा भी विद्यमान थी। भेड़ों और बकरियों को बलि देना अत्यन्त पुण्यकार्य समझा जाता था। कुछ कलाकृतियों में राजा और रानी को एक पात्र में जल लिये हुए और एक सेवक को पीछे एक पशु को पकड़े हुये दिखाया गया है। कदाचित वह पशु बलि के लिये लाया गया है। राजा धर्म में नरमेध की प्रथा कोई उल्लेख नहीं मिलता है।

(3) हित्ती देवालय—उत्खनन मे हित्तियों के छोटे बड़े मन्दिरों के अवशेष भी प्राप्त हुये हैं। छोटे मन्दिरों में यद्यपि कई देवताओं की मूर्तियाँ होती थीं परन्तु एक ही पुजारी होता था। बड़े मन्दिरों में अनेक पुजारी रहते थे। साधारण मन्दिरों में देव मूर्ति के स्थान पर देवता के प्रतीक जैसे ऋतु देव के स्थान पर उनके प्रतीक वृषभ की मूर्ति रखना ही प्रर्याप्त समझा जाता था परन्तु बड़े मन्दिरों में देवताओं की विशालकाय मूर्तियाँ स्थापित की जाती थीं। कुछ नगरों में मन्दिर स्थानीय प्रशासन के केन्द्र थे और वहाँ बड़ी संख्या में कर्मचारी नियुक्त किये जाते थे।

(4) देवता और मनुष्य—हित्ती अपने देवताओं को अदृश्य और अमर मानते थे। परन्तु अन्य बातों में उन्हें मनुष्यों के तुल्य ही माना जाता था। देवताओं के मनुष्यों से वही सम्बन्ध थे जो स्वामी और दासों के होते हैं। मनुष्य को उसकी लापरवाही के फलस्वरूप जो दण्ड प्राप्त होता था उससे देवता को सन्तुष्ट किये बिना छुटकारा नहीं पाया जाता था। हित्ती अपने ऊपर आई हुई मुसीबतों के कारण देवताओं के ऊपर लापरवाही बतलाते थे। वे देवताओं की इच्छा कई उपायों से ज्ञात करते थे। उनका विश्वास था कि देवता अपनी इच्छा मनुष्य को स्वप्न में बतलाते हैं। बलि दिये गये पशु यकृति को देखकर भी भविष्य को जानने का प्रयत्न किया जाता था।

(5) **धर्म में जादू का स्थान**—हित्ती धर्म में जादू का अत्यन्त प्रमुख स्थान था। आसुरी शक्तियों से सहायता लेने के लिये काले जादू और पुण्यात्माओं की सहायता के लिये सफेद जादू का प्रयोग काम में लाया जाता था। जादू विषयक अनुष्ठान भी किये जाते थे। इस प्रकार के अनुष्ठानों का धर्म से विशेष सम्बन्ध था।

(6) **परलोकवाद** - हित्ती परलोक में विश्वास करते थे या नहीं, इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। कुछ विद्वानों ने तो मुद्राओं पर ऐसे दृश्यों की कल्पना की है जिनसे पारलौकिक जीवन की झांकी का आभास होता है। एक मुद्रा पर एक उच्च आसन पर विराजमान न्यायाधीश को चित्रित किया गया है। इसके सामने एक सेवक, एक मृत व्यक्ति को प्रस्तुत कर रहा है। इससे यह आभास मिलता है कि जैसे परलोक में मृतात्मा का न्याय हो रहा हो और एक मुद्रा में मृतात्मा को भयानक देवों द्वारा दिये गये भोजन को करते हुये चित्रित किया गया है।

हित्तियों का विदेशों से सम्बन्ध

(1) **मिस्र से सम्बन्ध** - हित्ती साम्राज्य को मिस्र की महान देन है। पश्चिमी एशिया ईजियन प्रदेश को मिस्र से जोड़ने वाली कड़ी हित्ती राज्य ही रहा। यद्यपि मिस्रवासियों के लिये अनातोलिया अनजान और रहस्यमय था और वे इच्छा रखते हुये भी उस पर अपना अधिकार न जमा सके परन्तु हित्तियों के लिये मिस्र दूर होते हुये भी अत्यन्त आकर्षक था। जब हित्तियों ने मितन्नी राज्य को समाप्त करके उत्तरी सीरिया पर विजय प्राप्त कर ली तो उनकी सीमायें मिस्र की एशिया राज्य की सीमाओं को छूने लगीं। फलस्वरूप हित्ती कला और लिपि आदि पर मिस्र वासियों का विशेष प्रभाव पड़ा। हित्ती कलाकृतियों में प्रयुक्त "पदायुक्त-सूर्य-चक्र" मिस्र वासियों के प्रभाव का ही सूचक है। मिस्री लिपि की प्रेरणा से ही कदाचित हित्तियों को चित्राक्षरलिपि का विकास हुआ।

(2) **बेबिलोनिया और असीरिया से सम्बन्ध** - बेबिलोनियनों से हित्तियों के सम्बन्ध अधिक घनिष्ठ नहीं थे। बेबिलोनियन हित्तयों को बर्बर समझते थे। परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से तीसरी सहस्राब्दी ई० पू० की अन्तिम शताब्दियों में बेबिलोनिया का प्रभाव अनातोलिया पर पड़ा था। इस प्रभाव का कारण असीरियन व्यापारी थे। इन असीरियन व्यापारियों ने २५ वीं शताब्दी ई० पू० के बाद अनातोलिया में अपने व्यापारिक उपनिवेशों को स्थापित किया था। असीरियनों के माध्यम से ही हित्तियों को बेबिलोनिया की व्यापार पद्धति, पशुबलि, शकुन विचारने की विद्या और विभिन्न देवी देवताओं के साथ ही अपनी हित्ती जाति को बेबीलोयिनों की प्रमुख देन कीलाक्षर लिपि और मिट्टी की पाटियों पर लिखने की प्रथा है।

असीरियन कला पर हित्तियों का प्रभाव दृष्टिगत होता है। 'हित्ती द्वार मण्डप' इस सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय है। धार्मिक क्षेत्र में भी असीरियनों पर हित्तियों का प्रभाव स्पष्ट होता है।

(3) हिन्दू धर्म से सादृश्य :— हित्ती धर्म से हिन्दू धर्म का अप्रत्यक्ष सम्बन्ध प्रतीत होता है। हिन्दू धर्म के 'शिव' हित्ती धर्म के 'ऋतुदेव' से सादृश्य रखते हैं। मातृशक्ति की पूजा दोनों ही धर्मों में प्रचलित थी। दोनों धर्मों में पशुओं को देवताओं का वाहन माना गया है। हित्ती धर्म में हिन्दू धर्म की भांति ही अनुष्ठानों और पूजा आदि को स्थान दिया जाता था। यह सादृश्य किस आधार पर है इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता।

(4) ईजियन प्रदेश से सम्बन्ध :-- पश्चिमी एशियाई सांस्कृतिक धाराओं को ईजियन सभ्यता के निर्माताओं तक पहुँचाने का श्रेय बहुत कुछ हित्तियों को प्राप्त है। हित्तियों और ईजियन प्रदेश का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध था। हित्ती और ईजियन धर्मों और कला कृतियों में सादृश्य के दर्शन होते हैं। बहुत से विद्वानों का मत है कि हित्ती और मिलोवन जातियाँ एक ही थीं परन्तु यह मत उचित प्रतीत नहीं होता है। हां यह अवश्य है कि दोनों जातियों में अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध थे।

(5) एट्रूस्कन जाति और हित्तियों के सम्बन्ध :— इटली की एट्रूस्कन जाति पर भी हित्तियों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा था। इस जाति ने इटली और रोम की सभ्यता के निर्माण में महान योगदान दिया। एट्रूस्कनों के धर्मों की आकृत्तियों में बहुत अधिक साम्य के दर्शन होते हैं। एट्रूस्कनों का नाम भी हित्ती नामों से मिलता जुलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि एट्रूस्कन जाति का मूल हित्ती जाति ही है। यूनानी आख्यानों के अनुसार एट्रूस्कन जाति का मूल निवास स्थान एशिया माइनर या सीरिया था। ऐसा अनुमान किया जाता है कि हित्ती साम्राज्य के पतन के पश्चात हित्ती जाति का एक भाग पश्चिम की ओर बढ़कर इटली पहुँचा और वहां वे एट्रूस्कन जाति के नाम से विख्यात हुआ।

सारांश

हित्ती जाति के इतिहास के जानने के साधन पुरानी बाईबिल, मिश्री अभिलेख, और बोगजकोई की खुदाई में प्राप्त हुये अभिलेख हैं। हित्तियों का क्रीड़ास्थल एशिया माइनर था। यूनानी भाषा में उसे अनातोलिया कहा जाता था इसका आधुनिक नाम टर्की है। हित्तियों का राजनीतिक इतिहास छोटे-छोटे नगर राज्यों से प्रारम्भ होता है। सिप्पुलिल्युमस और मुर्सिलिस द्वितीय के शासन काल में हित्तियों ने बहुत अधिक उन्नति की और हित्तियों ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। हित्तियों का अन्तिम

प्रतिभाशाली राजा हत्तुसिजिस हुआ। 1190 ई० पू० में असीरियन तिगलथपिलेसर ने हित्ती राज्य को पूर्णतः नष्ट कर दिया। हित्तियों के 'नव-हित्तो' से क्या सम्बन्ध थे इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता।

हित्तियों ने सुदृढ़ केन्द्रीय शासन की स्थापना की थी। सम्राट ही देश का प्रधान न्यायाधोश, पुजारी और सेनापति होता था। महारानी का भी बहुत अधिक आदर होता था और राजा के स्वजनों का भी अत्यधिक सम्मान होता था। हित्ती राज्य की प्रान्तीय व्यवस्था अत्यन्त सरल थी। राजा प्रान्तीय शासकों पर बड़ी कड़ी निगरानी रखता था। हित्तियों की सेना का प्रमुख केन्द्र उनके रथ थे। वे बसन्त और ग्रीष्म में सामरिक अभियान करते थे। हित्ती कानूनों पर बेबिलोनियन कानूनों का कुछ प्रभाव देखने को मिलता है। न्याय व्यवस्था के क्षेत्र में उन्होंने पर्याप्त उन्नति की थी और उनकी दण्ड व्यवस्था भी उन्नतिशील थी। कुल आठ अपराधों पर ही मृत्यु दण्ड का विधान था।

हित्ती समाज में वर्ग व्यवस्था विद्यमान थी। प्रथम वर्ग सामन्तों का और दूसरा जनता का होता था। आकार की दृष्टि से साधारण जनता के दो वर्ग थे – कृषक और दस्तकार। हित्ती समाज में दास व्यवस्था भी विद्यमान थी। एक प्रकार के दासों के शरीर, जीवन और परिवार पर उनके स्वामियों का पूर्ण अधिकार था। परन्तु दूसरे प्रकार के दासों पर उनके स्वामियों के इस प्रकार के अधिकार न थे। समाज में मातृसत्तात्मक परिवार की प्रथा थी। वंश परम्परा को चलाये रखना आवश्यक समझा जाता था। स्त्रियों का पर्याप्त सम्मान होता था।

जलवायु की दृष्टि से अनातोलिया कृषि योग्य न था परन्तु फिर भी हित्तियों का मुख्य कार्य कृषि था। वह घोड़ा, बैल, गधा, खच्चर और बकरी आदि पशु पालते थे। लौह उद्योग के प्रारम्भ का श्रेय उन्हें प्राप्त है। वे विदेशों से व्यापार भी करते थे।

बोगज़कोई की खुदाई में प्राप्त अभिलेखों में कम से कम 8 भाषाओं का प्रयोग किया गया है परन्तु हित्तियों की मुख्य भाषा हित्ती और अक्कादी थी। हित्तियों के साहित्य को तीन रूपों में देखा जा सकता है—प्रथम कोटि में राजनीतिक अभिलेख, दूसरी कोटि में साहित्यिक आख्यान और तीसरी कोटि में धार्मिक साहित्य आते हैं। धार्मिक साहित्य में 'नामदेव का वध' और 'लुप्त देवता' अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

हित्तियों ने साम्राज्य काल में कला के क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति की थी। उनकी राजधानी हत्तुसस अत्यन्त सुन्दर था और उसमें अनेक राजप्रासाद बनवाये गये थे। हित्ती स्थापत्य कला का सबसे सुन्दर नमूना मजलोकम की विशाल दीर्घा है। रिलीफ

चित्रों के अत्यन्त सुन्दर उदाहरण बोगजकोई के एक दरवाजे के पार्श्व में बनी हुई एक योद्धा की मूर्ति है। हित्तियों की मुद्राएँ भी प्राप्त हुई हैं।

आरम्भ में हित्ती प्रकृति के उपासक थे और हर प्रदेश के अपने अलग-अलग देवता थे। कालान्तर में राजवर्ग का विकास हुआ। हित्तियों के धर्म की केन्द्रबिन्दु मातृशक्ति थी। हित्तियों ने सर्वोच्च पद अरिन्ना को सूर्य देवी को दिया। सूर्य देवी के पति ऋतुदेव थे। उत्खनन में हित्तियों के मन्दिरों के अवशेष भी प्राप्त हुये हैं। साधारण मन्दिरों में देवता के प्रतीक और बड़े मन्दिरों में देवता की विशाल मूर्तियां होती थीं। हित्ती कर्मकाण्ड में भी विश्वास करते थे। उनके यहां बलिप्रथा भी विद्यमान थी। देवताओं को अदृश्य और अमर माना जाता था और किसी विपत्ति का कारण देवताओं का क्रोध माना जाता था। धर्म में जादू का स्थान भी था। कदाचित् वे परलोकवाद में विश्वास करते थे। हित्तियों के धर्म और हिन्दू धर्म में पर्याप्त सादृश्य के दर्शन होते हैं।

हित्तियों के विदेशों से भी सम्बन्ध थे। हित्ती सभ्यता को मिस्र की महान देन है। बेबिलोनिया से उन्होंने कीलाक्षर लिपि को ग्रहण किया और असीरियन कला पर हित्ती प्रभाव है। ईजियन प्रदेश से भी उनके सम्बन्ध थे। ऐसा प्रतीत होता है कि इटली की एट्रूस्कन जाति हित्तियों की ही एक शाखा थी।

यहूदी (हीब्रू) सभ्यता और संस्कृति

CIVILIZATION AND CULTURE OF HEBREWS

अध्याय 16

यहूदी (हीब्रू) सभ्यता और संस्कृति

प्रश्न 1—हीब्रू लोगों के धर्म और संस्कृति का संक्षिप्त विवरण दीजिए। (इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

Give a brief account of the religion and culture of Hebrews.

प्रश्न 2—'हीब्रू' लोग कौन थे? उनके धर्म और संस्कृति का विवरण दीजिये। (इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

Who were the Hebrews? Give a brief account of their religion and culture.

प्रश्न 3—यहूदियों के धर्म और दर्शन का परिचय दीजिये। (गोरखपुर विश्वविद्यालय)

Give an account of the religion and philosophy of Hebrews.

प्रश्न 4—हीब्रू संस्कृति के महत्व पर प्रकाश डालिये। (गोरखपुर विश्वविद्यालय)

Throw light on the importance of the Hebrew culture.

संसार की विभिन्न सभ्यताओं में यहूदी सभ्यता का विशेष महत्व है। कुछ विद्वान यहूदी सभ्यता को सेमेटिक सभ्यता के नाम से भी पुकारते हैं क्योंकि यहूदी लोग मूलतः सेमेटिक परिवार के थे।

यहूदियों का देश फिलीस्तीन लगभग 150 मील लम्बी एक पट्टी है। इसके पूर्व में अरब का रेगिस्तान और पश्चिम में भूमध्यसागर है। यहाँ की मुख्य नदी जार्डन है और इस देश का क्षेत्रफल दस हजार वर्ग मील से भी कम है। यहूदियों से पूर्व यहाँ फिनीशियनों का राज्य था। जहाँ तक देश की अर्थ-संपत्ति का प्रश्न है यह देश अत्यन्त निर्धन है। यहाँ की अधिकांश भूमि खेती के योग्य नहीं है। वर्षा बहुत कम और शीत ऋतु में होती है। परन्तु कदाचित आज से 3000 वर्ष पूर्व यह देश इतना शुष्क और अनुर्वर नहीं था। उस समय यहाँ पर्याप्त वर्षा होती थी और यहाँ से अनाज, तेल, शहद, अंगूरी शराब आदि मिस्र जाते थे। उस समय यह एशिया

और अफ्रीका को जोड़ने वाली कड़ी था। बाइबिल में इसे "दूध और शहद" का देश कहा गया है।

प्राचीन काल में फिलीस्तीन विभिन्न संस्कृतियों के मिलन का केन्द्र था। इन संस्कृतियों के आपसी मिलन के फलस्वरूप यहां सदैव संघर्ष का वातावरण प्रस्तुत रहा। विभिन्न जातियों के आपसी युद्ध सदैव होते रहे और यही कारण है कि फिलीस्तीन के यहूदी कभी भी शान्तिपूर्ण जीवन नहीं व्यतीत कर सके।

राजनीतिक इतिहास

यहूदी जाति के संबन्ध में दो प्रकार के विचार स्पष्ट किए जाते हैं। इनको इजरायल और हिब्र दो नाम दिये जाते हैं और इन्हें सेमेटिक परिवार की एक शाखा माना जाता है। कहा जाता है कि यहूदियों के आदि पूर्वज अब्राहमसुमेर के उर नामक नगर में निवास करते थे। वहाँ से वह हर्रान होते हुये फिलीस्तीन गए। यहाँ ईश्वर ने उन्हें वंश प्रदान करने का वचन दिया और इसीलिए यहूदी फिलीस्तीन को ईश्वर का दिया हुआ देश मानते हैं।

अब्राहम के दो पुत्र हुये—इस्माइल और आइजक। आगे चलकर आइजक का पुत्र जेकब इजरायल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आइजक के समय में फिलीस्तीन में भयंकर अकाल पड़ा और वे दोनो भाई फिलीस्तीन छोड़ कर मिस्र चले आये तथा नील नदी के डेल्टा प्रदेश में रहने लगे। यहाँ वे और उनके वंशज लगभग 130 वर्ष मिस्र के निवासियों के दास बनकर रहे। उनको दासत्व जीवन से छुड़ाने वाले मूसा थे जो स्वयं भी यहूदी थे परन्तु उन्होंने एक मिस्री राजकुमारी से विवाह कर लिया था। मूसा ने यहूदियों को केवल दासत्व से मुक्त ही नहीं कराया वरन् उन्हें एकता के सूत्र में सम्बद्ध किया और "दस ईश्वरीय आदेशों" (टेन कमाण्डमेण्ट्स) के रूप में एक नवीन जीवन-दर्शन दिया। तत्पश्चात् यहूदी "ईश्वर द्वारा प्रदत्त देश"—फिलीस्तीन जीतने के लिये चले। वहाँ उस समय केनानी नाम की एक दूसरी सेमेटिक जाति राज्य कर रही थी। इस विजय-यात्रा में उन्हें थोड़ी सफलता ही मिली और वे फिलीस्तीन का बहुत थोड़ा भाग ही केनानियों से छीन पाये। 1100 ई० पू० में इन्होंने गाजा और जाफा के बीच के समुद्रतटीय भाग को अपने अधिकार में ले लिया। परन्तु उन्हें फिर केनानियों के सम्राट जोशुआ का स्वामित्व स्वीकार करना पड़ा। इस समय यहूदियों का शासन जजों के हाथ में था। 1025 ई० पू० में उन्होंने सोल नामक व्यक्ति को अपना राजा चुना। इसे ही यहूदी राज्य का प्रथम संस्थापक मानना चाहिये।

सॉल :—संयुक्त यहूदी राज्य के प्रथम सम्राट सॉल ने 1025 से 1000 ई० पू० तक राज्य किया। इसकी सेनाएं फिलीस्तीनों के विरुद्ध पराजित हुईं और इस कारण इसने आत्म हत्या कर ली।

डेविड—जिस समय सॉल फिलीस्तीनों से पराजित हो रहा था, डेविड ने अपनी स्थिति को सुधारा और सोल के पुत्र इश्बाल को हटाकर स्वयं सम्राट बन बैठा। इसके बाद उसने पश्चिम में फिलीस्तीनों, उत्तर में सीरियाई राज्यों, दक्षिण में एडोम राज्यों, पूर्व में अम्माने और मोआब राज्यों को पराजित किया तथा हम्मार तथा टायर से मित्रता स्थापित की। इस प्रकार यहूदी राज्य काफी विस्तृत और सुरक्षित हो गया। इसने अपनी राजधानी येरुसलम में बनवाई। 975 ई० पू० के लगभग इसकी मृत्यु हो गई।

सोलोमन—इसने 975 ई० पू० से लेकर 935 ई० पू० तक राज्य किया। यह संयुक्त यहूदी राज्य का अन्तिम सम्राट था। यह एक विद्वान और योग्य सम्राट था। इसके राज्यकाल में येरुसलम एक प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र बन गया। इसने नए राजप्रासाद और एक विशाल मन्दिर बनवाया।

रेहोबाम और संयुक्त यहूदी राज्य का पतन—सोलोमन के पश्चात रेहोबाम सम्राट बना। इसी समय उत्तर के दस कबीलों ने विद्रोह कर दिया और फलस्वरूप यहूदी राज्य दो भागों में बँट गया उत्तर में इजरायल और दक्षिण में जूडा। लगभग 200 वर्ष ये दोनों स्वतन्त्र राज्य रहे परन्तु 722 ई० पू० में असीरियनों ने इजरायल को जीत कर उसका स्वतंत्र अस्तितत्र समाप्त कर दिया।

जूडा राज्य लगभग 100 वर्ष तक स्वतन्त्र राज्य रहा। 586 ई० पू० में बेबेलोनिया के शासक नेबूशद्रेज्जर ने इसको अपने अधीन कर लिया। उसने इसको खूब लूटा और बहुत से लोगों को बन्दी बना लिया। 539 ई० पू० में ईरान के हखामशी सम्राट कुरुष साइरस) ने इस पर अपना आधिपत्य जमा लिया। उसने यहूदियों को फिलीस्तीन लौटने और येरुशलम में मन्दिर बनवाने की आज्ञा प्रदान कर दी। हखामशी सम्राटों के राज्य-काल में यहूदियों के नये राज्य की बहुत अधिक उन्नति हुई हखामशी सम्राटों का राज्य 332 ई० पू० तक रहा। तत्पश्चात् सिकन्दर महान का आक्रमण हुआ और उसके बाद मिस्र के टालेमी सम्राटों ने इस पर अपना अधिकार कर लिया। 63 ई० पू० में वह रोम के साम्राज्य में सम्मिलित हो गया। इसके बाद लगभग 2000 वर्ष यहूदी संसार के विभिन्न देशों में इधर उधर बिखरे रहे। सन् 1948 ई० में पुनः इजरायल राज्य की स्थापना हुई जो आज एक स्वतन्त्र देश है।

यहूदी कानून और दण्ड-व्यवस्था

यहूदी कानून और न्याय व्यवस्था बहुत अधिक विकसित थी। कुछ विद्वानों का मत है कि इनका न्याय-विधान हम्मूरबी के न्याय-विधान से भी अधिक विकसित थी। उनकी प्रतिभा की सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति उनके न्याय विधान में हुई। यहूदियों

को न्यायोविधान "ओल्ड टेस्टामेन्ट" की पहली पाँच पुस्तकों "पेन्टातुएच" में मिलता है। यहूदी लोग इसे तौरा: के नाम से पुकारते हैं जिसका शाब्दिक अर्थ होता है उपदेश। इनकी रचना कब हुई इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। इनके प्राचीनतम अंशों के दो संस्करण उपलब्ध हुये हैं जो शायद जूडा और इजरायल में 8वीं शताब्दी ई० पू० में लिखे गये। जहाँ तक सामाजिक व्यवस्था का प्रश्न है इनके कानून हम्मूरबी के कानूनों से बहुत कुछ मिलते हुये हैं। 'बुक ऑव कॉवेनेन्ट" कानून की बहुत सुन्दर पुस्तक है। इसके अतिरिक्त प्राचीन यहूदी कानून "ओल्डर डे कालॉग" तथा 'बुक ऑव होलीनेस" में भी मिलते हैं। "बुक ऑव ड्यूटेरोनॉमी" आज भी सुरक्षित है जिसे D कहा जाता है। कहा जाता है कि बेबिलोनियन दासता से छुटकारा पाकर यहूदियों ने पुजारियों की विधिसंहिता का निर्माण किया। इसे P के नाम से पुकारा जाता है। कहा जाता है कि 444 ई० पू० एजरा नामक पुजारी ने समस्त यहूदियों से "बुक ऑव दि लॉ ऑव मोजिज" को पढ़वाया और तब से सदैव के लिए यहूदियों ने इसे अपने कानून के रूप में स्वीकृत किया। यहूदी कानूनों पर धर्म का काफी प्रभाव है। कुछ विद्वानों ने यहूदी कानूनों को तीन भागों में विभाजित किया है—

(क) कर्म-काण्ड विषयक
(ख) सामाजिक
(ग) नैतिक

परन्तु यह विभाजन तर्क-संगीत नहीं प्रतीत होता है। यहूदियों का यह विश्वास था कि उनके कानून या:वेह द्वारा हजरत मूसा को दिए गये थे; प्रत्येक यहूदी या:वेह की इच्छा का पालन करना अपना परम कर्त्तव्य समझता था।

यहूदी विषय-संहिता बड़ी व्यापक थी। उसमें धार्मिक उपासना सम्बन्धी और नैतिक विषय तो मिलते ही थे साथ ही साथ विभिन्न प्रकार के रोगों और उनके उपचार एवं समाज की अन्य बातों की भी व्यापक चर्चा मिलती थी। इस लए विल-ड्यूराण्ट ने ठीक ही लिखा है—

"यह धर्म का दैनिक जीवन के प्रत्येक विस्तार के नियामक और राज-कौशल के आधार के रूप में प्रयोग का इतिहास में पूर्णतम प्रयास था।"

यहूदी कानूनी-व्यवस्था में जनतान्त्रिक प्रणाली को अपनाया गया था। न्यायाधीशों का निर्वाचन जनता द्वारा होता था और उनसे यह आशा की जाती थी कि वे रिश्वत और भेंट नहीं लेंगे और किसी का भी पक्ष नहीं लेंगे। राजाओं से यह उम्मीद की जाती थी कि वे विधान की एक प्रति अपने पास रखेंगे और नवविवाहित, डरपोक, अंगूर का नवीन बाग लगाने वाले व्यक्तियों एवं कारीगरों को सैनिक सेवा में भर्ती के लिये बाध्य नहीं करेंगे। वे अपने को कानून का सेवक समझेंगे। राजा

को आवश्यकता से अधिक धन भी एकत्रित करने का अधिकार नहीं था और वह निरंकुश सैनिक सत्ता नहीं स्थापित कर सकता था।

न्यायाधीशों को धर्म का पुजारी और न्यायालय को देवता का मन्दिर माना जाता था। दण्ड-व्यवस्था "जैसे को तैसा" सिद्धान्त पर आधारित थी। निम्नलिखित अपराधों पर मृत्यु-दण्ड दिया जाता था—

(1) किसी की हत्या करने पर
(2) पिता पर आक्रमण करने पर
(3) जादू-टोना करने पर
(4) अप्राकृत मैथुन पर
5 मूर्ति पूजा पर
(6) व्यभिचार के फलस्वरूप
(7) दास की चोरी पर

अपराधी को दण्ड देने का कार्य उसके संबंधियों द्वारा किया जाता था। ब्याज लेने की सख्त मनाही थी। झूठी गवाही देने वाला उसी दण्ड का भागी माना जाता था जो उसकी गवाही सत्य होने पर अपराधी को दिया जाता था। इस प्रकार यहूदी विधान में बुद्धि और हृदय दोनों का आश्रय लिया जाता था।

सामाजिक दशा

दासों की दशा—यहूदी अपने बन्दी शत्रुओं को दास बना लेते थे। अपेक्षाकृत, वे दासों के साथ अच्छा व्यवहार करते थे। दासों के जीवन पर उनके मालिकों का अधिकार नहीं होता था। वे लकड़ी काटने और खान-खोदने का कार्य करते थे और सप्ताह में उन्हें एक दिन की छुट्टी मिलती थी। उन्हें संपत्ति अर्जित करने और अपनी स्वतन्त्रता खरीदने का भी अधिकार था।

परिवार— समाज में संयुक्त-परिवार की प्रथा प्रचलित थी। परिवार में पिता का स्थान बहुत ऊँचा था। वह अपनी पत्नी का निरंकुश स्वामी था। उसे अपनी पुत्रियों को बेचने का भी अधिकार था। अपने परिवार के सदस्यों के जीवन पर उसका पूर्ण अधिकार होता था।

स्त्रियों की दशा - यद्यपि यह ठीक है कि परिवार का स्वामी पुरुष होता था परन्तु माता के रूप में स्त्री का काफी सम्मान होता था। रशेल, मिडियम तथा ईस्थर आदि प्रसिद्ध यहूदी स्त्रियाँ हुई हैं।

विवाह अधिकतर माता-पिता द्वारा निश्चित किया जाता था परन्तु प्रेमविवाह के उदाहरण भी मिलते हैं। ये लोग दूसरे कबीलों की स्त्रियों का हरण भी करते थे।

पुरुष कई विवाह कर सकता था और विवाह योग्य कुमारियों और बाँझ स्त्रियों को नीची निगाह से देखा जाता था। ये लोग ब्रह्मचर्य को पाप समझते थे। स्त्री का पर पुरुष के सम्बन्ध होने पर प्रेमी को मृत्यु-दण्ड दिया जाता था। वेश्यागमन की प्रथा प्रचलित थी और सीरिया आदि देशों से आई हुई स्त्रियाँ अन्य व्यापारों के साथ रति-व्यापार भी करती थीं।

अन्य विशेषताएँ—यहूदी समाज अतिथि-सत्कार को विशेष महत्व देता था। वे अनाथों की सहायता करते थे। कर्ज दिया तो जाता था परन्तु कर्ज पर ब्याज नहीं लिया जाता था। चूँकि यहूदी सदैव लड़ते ही रहे अतएव अधिक पुत्र उत्पन्न करने वाले माता-पिता को आदर की दृष्टि से देखा जाता था।

आर्थिक दशा

यहूदियों की आय का मुख्य साधन पशुपालन था। वे लोग आगे चलकर जैतून, अंगूर और अंजीर की खेती भी करने लगे थे। सोलोमन के शासन-काल में उद्योग-धन्धे भी प्रचलित हो गये थे और इनका व्यापार येरुसलम तक ही सीमित नहीं रह गया था वरन् सीडोन और टायर आदि में भी प्रचलित हो गया था।

यहूदियों के अनुसार व्यक्तिगत संपत्ति जमा करना दैवीय अधिकार था। किसी पुरुष की संपत्ति केवल उसकी जायदाद ही नहीं वरन् उसके पशु, स्त्री, बच्चे आदि भी थे।

यहूदी धर्म

संसार को यहूदियों की सबसे बड़ी देन उनका धर्म है। उनके धर्म के विकास को हम 5 भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(1) मूसा से पूर्व का युग

(2) एक देवपूजा का युग

(3) सुधारवादी युग

(4) बेबिलोनियन बन्दी-जीवन का युग

(5) हखामशी प्रभाव का युग

मूसा से पूर्व का युग—मूसा से पूर्व के युग में यहूदियों के धर्म की निम्नलिखित विशेषताएँ थीं—

(1) उनका कोई राष्ट्रीय देवता नहीं था।

(2) वे बहुदेववादी थे।

(3) वे सर्वचेतनवादी भी थे अर्थात् सभी चेतन वस्तुओं; जैसे बैल, भेड़, नाग आदि की पूजा भी करते थे।

(4) वे अन्ध-विश्वासी थे और उनके धर्म में जादू, टोने, पिशाच, विद्या और वल क्रिया आदि का महत्व था।

(5) वे ओझाओं और पुजारियों को बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे।

(6) वे केनानियों के "बालीम" (देवताओं) को प्रजनन का पुरुषतत्व और एँस्थोरेत को स्त्री तत्व मानते थे।

एक देवपूजा का युग—इस युग का आरम्भ हजरत मूसा के क्रान्तिकारी विचारों से होता है। उनके धर्म में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं—

(1) एक देवपूजावाद में विश्वास करते थे और वह देव याः वेह था। परन्तु वे एकेश्वरवादी नहीं थे।

(2) याः वेह का स्वरूप क्या था इस विषय में कुछ भी स्पष्ट नहीं है। हजरत मूसा ने उनके लिए कहा था 'मैं वह हूँ', परन्तु इसके यह अर्थ नहीं है कि वे निगुण रूप में उपासक थे। आगे चलकर याःवेह को युद्ध का देवता माना गया था।

(3) यहूदी याः वेह को प्रकाश, सदाचार और न्याय का स्रोत मानते थे।

(4) मूसा के इस धर्म की छाप अन्य धर्मों पर पड़ी है। हजरत मूसा को जो दस आदेश (Ten Commandent) दिए गए थे उनके विशिष्ट रूप को अन्य धर्मावलम्बियों ने अपनाया है।

(5) इस युग में भी कर्म-काण्ड और बलि पर बहुत जोर दिया गया था और पुजारियों को बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता था। अतः तत्कालीन धर्म न तो नैतिक माना जा सकता है और न उसे पूर्ण रूप से आध्यात्मिक कहा जा सकता है।

सोलोमन के शासन काल में तो इतना अधिक पतन हुआ कि धर्म में नैतिकता नाम की कोई चीज ही नहीं रह गई। अतएव उसमें परिवर्तन की आवश्यकता पड़ी।

सुधारवादी युग—नवीं शताब्दी ई० पू० तक यहूदियों के धर्म में अन्ध-विश्वास का साम्राज्य स्थापित हो चुका था। वाह्याचारों और आडम्बरों का इतना अधिक बोलबाला था कि धर्म में परिवर्तन की विशेष आवश्यकता महसूस हुई। इस सुधार को लाने वाले यहूदी नबी अथवा पैगम्बर थे। वे बड़े विचित्र व्यक्तित्व के लोग थे। अभी तक कुछ नबी ऐसे थे जो लोगों से कुछ धन लेकर उनके भाग्य का दर्शन कराया करते थे परन्तु नवीं शताब्दी ई० पू० और उसके बाद कुछ सच्चे नबी हुये जो केवल भाग्य-द्रष्टा न होकर समाजवादी थे। उन्होंने समाज को भ्रष्टाचार और विलासिता से दूर करने का प्रयास किया। ये नबी गड़रिये तथा किसान वर्ग

के थे। इन नबियों में एलिजा और एलिशा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन दोनों के पश्चात् अमोस, होसिया, माइका और आइसेआ का नाम लिया जाता है।

सच्चे नबियों के धर्म के विषय में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं।

(1) इन्होंने पुरातन विचारधारा को समाप्त करके नवीन विचारधारा का श्रीगणेश किया।

(2) ये विशुद्ध एकेश्वरवादी थे।

(3) ये याःवेह को न्याय, प्रकाश और ज्ञान का स्रोत मानते थे और समस्त मनुष्यों का पिता समझते थे।

(4) इन्होंने धर्म के नैतिक पक्ष पर अधिक जोर दिया। दया, पवित्रता, न्याय, मानव के सबसे सुन्दर आभूषण हैं और अन्याय, आर्थिक-शोषण तथा भ्रष्टाचार मानव को पतन की ओर ले जाते हैं।

७वीं शताब्दी ई० पू० में जेरेमिया (Jermiah) नाम का प्रसिद्ध नबी (पैगम्बर) हुआ जिसने कहा कि परमात्मा मानव शरीरधारी नहीं है। वह सर्व शक्तिमान आत्मा है। उसने जूडा नरेश से नेबूशद्रेज्जर की आधीनता स्वीकार करने के लिये कहा जिसे यहूदियों ने देश के साथ विश्वासघात समझा परन्तु येरूशलम के पतन के पश्चात् उसकी भविष्यवाणी सत्य प्रतीत हुई।

बेबिलोनियन बन्दी-जीवन का युग—येरुसलम के पतन के पश्चात् यहूदियों को उनके पाप का प्रायश्चित मिल गया। उन्हें बन्दी जीवन व्यतीत करना पड़ा। अतएव नबियों में भी परिवर्तन हुआ और उनकी वाणी अधिक प्रेमपूर्ण और मृदु हो गई। यहूदियों के धर्म पर बेबिलोनियन संस्कृति का प्रभाव पड़ा और बेबिलोन में बन्दी यहूदियों के धर्म में परिवर्तन होने लगा। अतएव नबियों के मत से धर्म का क्रिया पक्ष को फिर से बल दिया गया। नैतिक सिद्धान्तों के बजाय सम्बन्धी नियमों का प्रचार होने लगा।

हखामशी युग—इस युग में भी यहूदी धर्म में अनेक परिवर्तन हुए। 'ईरानियों का आदर्श था समता, न्याय, सत्य और विवेक। यहूदियों को अपने विशिष्ट राष्ट्रीय ईश्वर पर अमिट विश्वास था पर दोनों के आदर्श एक दूसरे के विरोधी थे। जिस समय ईरानी सम्राट आर्तक्षत्र (404 ई० पू०—369 ई० पू०) के अति प्राचीन देवी, देवता अनहिता और मित्र अर्थात् सूर्य की पूजा को राजकीय रूप से मान्यता प्रदान कर दी तो समस्त साम्राज्य के लोगों के विश्वासों की ओर उसका इस तरह उदारता दिखलाना कट्टर यहूदियों को बुरा लगा।'

इस युग में यहूदियों के धार्मिक विश्वासों में निम्नलिखित परिवर्तन हुये —

(1) अभी तक यहूदी धर्म विशुद्ध लौकिक धर्म था। वे लोग परलोक में अधिक विश्वास नहीं करते थे। परन्तु अब उनका धर्म परलोकवादी हो गया।

(2) इस युग में उनके धर्म में द्वैतवादी भावना का समावेश हुआ।

(3) अब वे विश्वास करने लगे कि शीघ्र ही संसार में एक मसीहा आएगा और तब ईश्वरीय साम्राज्य (Kingdom of God) की स्थापना होगी तथा समस्त संसार में ज्ञान का प्रकाश छा जायेगा।

(4) यहूदी मृत आत्माओं के पुनर्जीवन और अन्तिम न्याय (Last Judgement) में विश्वास करने लगे।

दर्शन

यहूदियों का जीवन-दर्शन धार्मिक विश्वासों पर आधारित था। वे धार्मिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न नहीं करते थे बल्कि प्राचीन चली आती हुई परिपाटियों पर ही चलने का प्रयत्न करते थे। उदाहरण के लिये उनका विश्वास था कि ईश्वर एक है और सबको समदृष्टि से देखता है। परन्तु दूसरी ओर वे अपने को उसका प्रिय पुत्र मानते थे और कहते थे कि अन्य जातियों की अपेक्षा ईश्वर यहूदियों पर अधिक कृपालु है। यह विरोधाभास उनकी अन्य बातों में भी था। एक ओर वे ईश्वर की बनाई हुई सृष्टि का उपभोग करने की बात करते थे और दूसरी ओर घोर निराशावादी एवं शंकाओं से युक्त थे। उनके इस निराशावाद और आशंकावाद की निश्चित झलक 'बुक ऑव ए वेल जिएस्टिज' में देखने को मिलती है। इस पुस्तक में लिखा है कि मनुष्य को सुख और दुःख की प्राप्ति होना संयोग की बात है। अच्छे आदमी कष्ट पा सकते हैं और बुरे आदमी सुख प्राप्त कर सकते हैं। ज्ञान मूर्खता से श्रेष्ठ है परन्तु उससे मनुष्य का त्राण नहीं हो सकता। प्रत्येक व्यक्ति की मृत्यु होती है और पारलौकिक जीवन में सुख की कल्पना करना मूर्खता है। अच्छे और बुरे सभी व्यक्तियों का एक सा हाल होता है। यहूदी मृत्यु-दिन को जन्म-दिन की अपेक्षा श्रेष्ठ मानते थे।

यहूदी साहित्य

साहित्य के क्षेत्र में यहूदियों ने काफी उन्नति की थी। धर्म और साहित्य दो ही क्षेत्रों में यहूदियों ने संसार को कुछ दिया है। इनकी सर्वोत्तम साहित्यिक कृति 'ओल्ड टेस्टामेंट' अथवा पुरानी बाइबिल है। इसकी गणना समस्त विश्व के श्रेष्ठतम ग्रंथों में की जाती है। इस ग्रन्थ में अनेक आख्यान, कथाएं, गीत, नबियों

की वाणियाँ आदि हैं। रूथ, आइजक, रेबेक, सेम्सन और डिलायला, ईस्थर, डेनियाल आदि की कथाएं संसार की श्रेष्ठतम कथाओं में से मानी जाती हैं।

काव्य साहित्य में मूसा और डेबौरा के गीतों का विशेष महत्व है। यह गीत धर्म गीत हैं और इन पर बेबिलोनियन गीतों का प्रभाव है। इन गीतों में भक्ति की उद्दाम सरिता बही है। भक्ति के साथ ही कहीं-कहीं रौद्र रस और वीर रस की भी अभिव्यक्ति हुई है।

यहूदियों का अधिकतर पथ साहित्य धर्म पर आधारित है परन्तु 'सोलोमन के गीत' के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती। इसकी रचना किस समय हुई और इसका रचयिता कौन था, इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। इस गीत पर मिस्री प्रभाव और यूनानी प्रभाव दृष्टिगत होता है। इस गीत में प्रेम की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

बाइबिल के मुहावरे की पुस्तक (Book of Proverbs) भी यहुदियों की साहित्यिक प्रतिभा की परिचायक है। इस पुस्तक में यहुदियों के सांसारिक ज्ञान के विषय में पता लगता है। कहा जाता है कि इसकी रचना सोलोमन ने की थी। अधिकांश मुहावरों पर सुमेरियन, मिस्री और यूनानी प्रभाव प्रतीत होता है।

यहूदियों के साहित्य प्रेम का उत्कृष्टतम रूप 'बुक ऑव जॉब' (Book of Job) नामक पुस्तक में देखने को मिलता है। यह एक प्राचीनतम बेबिलोनियन कथा का रूपान्तर है। कहा जाता है कि इसकी रचना पाँचवी शताब्दी ई० पू० में हुई थी। इस पुस्तक का मूल विषय है कि सुकर्मी लोग क्यों कष्ट पाते हैं? कथा का नायक जाब एक सदाचारी, पुण्यात्मा और धार्मिक व्यक्ति है परन्तु उसे तरह-तरह के कष्ट उठाने पड़ते हैं। फलस्वरूप वह ईश्वर को सर्वशक्तिमान राक्षस मान बैठता है। उसके अनुसार ईश्वर मनुष्य मात्र का दुश्मन हो जाता है। इसके पश्चात् याः वेह आकाशवाणी द्वारा प्रकृति के भीषण और अति गुरु रूप को, जाब के सामने प्रकट करते हैं। फलस्वरूप उसमें फिर परिवर्तन होता है और वह यह मानने लगता है कि मनुष्य अपनी क्षुद्र बुद्धि के कारण ही ईश्वर की महिमा को नहीं समझ पाता और अपने कष्टों के लिए उसे दोष देता है।

'बुक ऑफ जॉब' नामक पुस्तक में प्रक्षिप्त अंश बहुत अधिक मात्रा में देखने को मिलता है। अनेक लोगों के हाथों में पड़ने के कारण पुस्तक के मूल रूप में परिवर्तन हो गया है। परन्तु इसमें किंचित मात्र भी संदेह नहीं कि यह यहूदी साहित्य की उत्कृष्टतम रचना है। कार्लाइल के मतानुसार यह संसार की सर्वश्रेष्ठ रचना है।

कला

कला के क्षेत्र में यहूदियों की देन बहुत कम है। वास्तु-कला, स्थापत्यकला, और चित्र कला में वे कुछ भी उन्नति नहीं कर सके। केवल उन्होंने संगीतकला में कुछ उन्नति की थी। प्रार्थनाओं में वे वाद्ययंत्रों का प्रयोग करते थे। येरुसलम का स्वर्ण मन्दिर भी यहूदियों की देन है। कहा जाता है कि इस मन्दिर के निर्माण के लिए राजा सोलोमन ने फिनीशिया से कुशल कारीगर बुलवाए थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यहूदियों ने राजनीति के क्षेत्र में विश्व को कुछ नहीं दिया, सामाजिक क्षेत्र में भी वे बेबिलोनियनों, और मिस्रियों से पीछे थे परन्तु धर्म और साहित्य के क्षेत्र में उनकी विशेष देन है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं उनकी सभ्यता का विकास तो इतना अधिक नहीं हुआ परन्तु संस्कृति ने विश्व को अमूल्य देन दी। उनके नैतिक धर्म को ईसाइयों ने अपनाया और 'ओल्ड टेस्टामेंट' को बाइबिल का अभिन्न अंग मान लिया।

सारांश

यहूदियों का देश फिलीस्तीन है। यहूदियों को इजरायल और हिब्रू नाम से भी पुकारा जाता है। यहूदियों के पूर्वज का नाम इब्राह्म था। 1025 ई० पू० में सोल नामक व्यक्ति यहूदी राज्य का प्रथम संस्थापक हुआ। उसके पश्चात् डेविड (दाउद) और सोलोमन (सुलेमान) नाम के दो प्रसिद्ध सम्राट हुए। रेहोबाम के समय में यहूदी राज्य दो भागों में बँट गया इजरायल और जूडा। 722 ई० पू० में असीरियनों ने इजरायल को जीत लिया। जूडा का पतन 586 ई० पू० में नेबूशद्रेज्जर के हाथों हुआ। 539 ई० पू० में हखामशी सम्राट साइरस ने इस पर अपना आधिपत्य कर लिया। 63 ई० पू० में यह रोम साम्राज्य में सम्मिलित हो गया। इसके पश्चात् 2000 वर्ष यहूदी इधर-उधर बिखरे रहे और अन्त में सन् 1948 में इजरायल एक स्वतन्त्र राष्ट्र बना।

यहूदियों की न्याय-व्यवस्था बहुत विकसित थी। इनका न्याय विधान 'ओल्ड टेस्टामेंट' की पहली पाँच पुस्तकों में मिलता है। इसके अतिरिक्त कानून की और पुस्तकें भी मिलती हैं। यहूदी कानून धर्म पर आधारित था। इस कानूनी व्यवस्था में दण्ड के लिए 'जैसे को तैसा' सिद्धांत को अपनाया गया था। न्यायाधीशों का निर्वाचन जनता द्वारा होता था। सम्राट ही सर्वोच्च न्यायाधीश होता था।

यहूदी समाज में दासों की दशा अपेक्षाकृत अच्छी थी। संयुक्त परिवार की प्रथा प्रचलित थी। स्त्रियाँ अपने स्वामी की सम्पत्ति समझी जाती थीं। विवाह अधिकतर माता पिता द्वारा निश्चित किए जाते थे। वेश्यावृत्ति भी प्रचलित थी। ये लोग अतिथि-सत्कार को विशेष महत्व देते थे।

इनकी आय का मुख्य साधन पशुपालन था। पुरुष की सम्पत्ति उसकी जायदाद ही नहीं वरन् उसके पशु, स्त्री और बच्चे आदि भी होते थे।

यहूदी धर्म के विकास को 5 भागों में विभाजित कर सकते हैं—(1) मूसा से पूर्व का युग, (2) एकदेवपूजा का युग, (3) सुधारवादी युग, (4) बेबिलोनियन बन्दी-जीवन का युग, (5) हखामशी प्रभाव का युग। मूसा से पूर्व के युग में उनका कोई राष्ट्रीय देवता नहीं था। एकदेवपूजा का युग मूसा के क्रान्तिकारी विचारों के लिए प्रसिद्ध है। इनका देवता याःवेह था। सुधारवादी युग का विशेष महत्व है। इस युग के लोग विशुद्ध एकेश्वरवादी थे। इस युग के नबियों पैगम्बरो) में एलिजा, एलिशा, अमोस, हौसिया, माइका, आइसेआ और जेरेमिया के नाम प्रसिद्ध हैं। बेबिलोनियन बन्दी-जीवन के युग में यहूदियों में विशेष धार्मिक परिवर्तन हुए। हखामशी युग में यहूदी पारलौकिक विचारधारा को मानने लगे।

यहूदी दर्शन में संसार की गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न नहीं है। ये लोग घोर निराशावादी थे और इनके दर्शन में विरोधी तत्व बहुत अधिक मात्रा में मिलते हैं। ये लोग मृत्यु दिन को जन्म दिन से श्रेष्ठ मानते थे।

यहूदी साहित्य में 'ओल्ड टेस्टामेन्ट' का विशेष महत्व है। इसमें विभिन्न प्रकार की कहानियाँ हैं। मूसा और डेबौराः के गीत भी प्रसिद्ध हैं, जो धार्मिक हैं। 'सोलोमन का गीत' प्रेम प्रधान है। बाइबिल की मुहावरे की पुस्तक भी मिलती है। इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना 'बुक ऑव जाब' है जिसमें इस विषय पर प्रकाश डाला गया है कि अच्छे मनुष्य क्यों कष्ट पाते हैं।

कला के क्षेत्र में यहूदियों की विशेष देन नहीं है। येरुसलम का स्वर्ण मन्दिर प्रसिद्ध है। यहूदियों की संसार को देन उनका धर्म और साहित्य ही है। ईसाई धर्म पर उनकी छाप है।

———

खाल्दी युग में बेबिलोनियन सभ्यता और संस्कृति

BABYLONIAN CIVILIZATION AND CULTURE IN CHADEAN PERIOD

अध्याय | 17

खाल्दी (चैल्डियन) पुनर्जागरण
(CHALDEAN RENEISSANCE)

प्रश्न 1—'चैल्डियन' कौन थे ? उनकी प्रमुख सफलताओं का परिचय दीजिये। (गोरखपुर विश्वविद्यालय)

Who were the Chaldeans ? Give an account of their main achievements.

प्रश्न 2—"छठी शताब्दी पूर्व में नेबुचेडरेज्जर एशिया का महान सम्राट था"—विवेचन कीजिये। (लखनऊ विश्वविद्यालय)

Nabuchadrazzar was a great monarch in Asia in sixth century B. C.—Discuss. (Lucknow University)

प्रश्न 3—चैल्डियनों की सांस्कृतिक उन्नति पर प्रकाश डालिये और विश्व इतिहास में बैबिलोन का स्थान निर्धारित कीजिये।

Discuss the cultural progress of the Chaldean and put the place of Babylon in the world history.

चैल्डियन जाति

बैबिलोन ने अनेक जातियों के उत्कर्ष और पतन को देखा है। असीरिया के आधिपत्य के समाप्त होने के पश्चात् बेबिलोन में सेमेटिक जाति की एक शाखा ने अपना आधिपत्य जमा लिया चैल्डियन शासकों के राज्यकाल में बैबिलोन वैभव की चरम सीमा तक पहुँच गया और यही कारण है कि बैबिलोन के इतिहास में चैल्डियनों का शासन-काल अत्यन्त महत्वपूर्ण समझा जाता है।

चैल्डियन बहुत समय से बैबिलोनिया पर अधिकार करने की सोच रहे थे। उन्होंने ऐरेमियनों के साथ असीरियन साम्राज्य काल में बैबिलोनिया में प्रवेश किया। ये चैल्डियन छोटे-छोटे कबीलों में बँटकर बैबिलोन में आये थे और यही कारण था कि असीरियन उनको दबाने में सफल हो गये थे। सार्गान द्वितीय के शासन काल में मर्दुक

बल्दान नाम का एक अत्यन्त योग्य सरदार चैल्डियनों की शाखा में हुआ। उसने चैल्डियनों को संगठित किया और ऐरेमियनों एवं एलमियों को असीरियनों के विरुद्ध उकसाया। 721 ई० पूर्व में मर्दुक बल्दान ने असीरियनों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और बैबिलोन पर अधिकार कर लिय। 12 वर्ष तक बैबिलोन पर उसका शासन रहा परन्तु अंत में सार्गोन ने उसे हटा दिया और बैबिलोन पर फिर अधिकार कर लिया।

सार्गोन से पराजित होने के पश्चात् भी चैल्डियन निरुत्साहित नहीं हुये और वह बराबर सर उठाने का प्रयास करते रहे। असीरियन सम्राट असुरबनिपाल ने नेबुपलेसर नामक एक चैल्डियन सरकार को गवर्नर नियुक्त किया और असुरबनिपाल की मृत्यु के बाद मौका पाकर नेबुपलेसर ने बैबिलोन पर अधिकार कर लिया।

राजनीतिक उत्कर्ष, शासन-व्यवस्था और सामाजिक एवं आर्थिक जीवन

(इस सम्बन्ध में 'बेबीलोनिया की सभ्यता और संस्कृति' नामक अध्याय 3 देखिये)

चैल्डियन धर्म और दर्शन

(1) धार्मिक एवं दार्शनिक पुनर्जागरण– चैल्डियन अपने को प्राचीन बेबिलोनिया के वंशज मानते थे। यही कारण था कि उन्होंने अपने शासन-काल में प्राचीन बेबिलोनियों की शासन-पद्धति को अपनाया था। कानून, उद्योग और व्यापार आदि के क्षेत्र में भी उन्होंने प्राचीन मान्यताओं को अपनाया था परन्तु हम्मुराबी के शासन-काल से लेकर नेबुचैडरेज्जर के शासन काल तक जीवन-दर्शन के क्षेत्र में जो अन्तर आ गया था, उसका प्रभाव चैल्डियनों पर पड़ना स्वाभाविक था और यही कारण है कि चैल्डियन युग में प्राचीन बेबिलोनिया की सभ्यता के बाह्य रूप को अपना लिया गया परन्तु सांस्कृतिक क्षेत्र में काफी परिवर्तन हुये। बेबिलोनिया के इतिहास के युग को भौतिक उन्नति की दृष्टि से 'पुनर्जागरण का युग' कहा जाना चाहिये। सांस्कृतिक क्षेत्र में पर्याप्त अन्तर देखने को मिलता है।

(2) देवताओं का व्यक्तित्व– चैल्डियनों का धर्म बेबिलोनिया के प्राचीन धर्म से प्रभावित अवश्य था परन्तु दोनों युगों के धार्मिक विश्वासों में महान अन्तर हो गया था। चैल्डियन काल में भी मर्दुक को देवताओं में सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया। बेबिलोनिय और चैल्डियनों के देवताओं में भी पर्याप्त अन्तर था। बेबिलोनियन अपने देवताओं में मानवीय दुर्बलताओं के दर्शन करते थे। परन्तु चैल्डियनों ने अपने देवताओं को सर्वशक्तिमान माना। बेबिलोनियन मन्त्र बल से अपने देवताओं को वश में करने की बात करते थे परन्तु चैल्डियनों ने ग्रहों से तादात्म्य पर बल दिया।

(3) आध्यात्मिक चेतना—चैल्डियन देवताओं को सर्वशक्तिमान और भाग्य विधाता मानते थे और यही कारण था कि उन्होंने अनेक ऐसे पूजागीत और स्तुतियों को लिखा जिनमें देवताओं को मनुष्य के कर्मों पर विचार करने वाला बतलाया गया। यद्यपि चैल्डियन देवताओं को बलि इत्यादि देते थे परन्तु इसके साथ उन्होंने सदाचार के पक्ष पर भी बल दिया था।

(4) चैल्डियन भाग्यवाद—चूंकि चैल्डियन देवताओं को अपने कार्यों का नियंता मानते थे इसलिये वे बहुत अधिक भाग्यवादी बन गये थे। भाग्यवाद का यह रूप बेबिलोनियनों में देखने को नहीं मिलता। चैल्डियनों का कहना था कि मनुष्य देवताओं की इच्छाओं को नहीं जान सकता और जो कुछ उसके भाग्य में लिखा है वही होता है। चैल्डियनों के भाग्यवाद में परलोक सुख की भावना नहीं थी। वे यह नहीं मानते थे कि देवताओं पर श्रद्धा रखकर उन्हें परलोक में सुख मिलेगा और इसलिये उनकी इच्छाओं को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेना चाहिये। भाग्यवादी होने का एक-मात्र कारण देवताओं के रहस्य को न समझ पाना मात्र था।

(5) चैल्डियन निराशावाद—चैल्डियनों के भाग्यवादी होने ने ही उन्हें निराशावादी बना दिया। बेबिलोनियन युग के मनुष्य कर्त्तव्य पक्ष पर अधिक बल देते थे परन्तु चैल्डियन युग में देवताओं की तुलना में मनुष्य को तुच्छ बना दिया गया और फलस्वरूप वे सत्कर्म विहीन हो गये। धर्म का भौतिक जीवन से कोई भी सम्बन्ध न रहा। चैल्डियन देवताओं की स्तुति, सदाचारी बनने और परलोक की प्राप्ति के लिये नहीं करते थे बल्कि वे देवताओं से भयभीत रहते थे और उनकी स्तुति सुख से जीवन व्यतीत करने, धन और पुत्र आदि प्राप्ति के लिए करते थे।

(6) सदाचार का लोप—प्राचीन काल में बेबिलोनियन सदाचारमय जीवन व्यतीत करते थे परन्तु चैल्डियन युग में बेबिलोनियनों का व्यावहारिक जीवन अत्यन्त दूषित हो गया था। चैल्डियनों के काल में बेबिलोनियन वेश्यालयों के लिये समस्त संसार में बदनाम था। प्रत्येक स्त्री को जीवन में कम से कम एक बार ईश्वर के मन्दिर में पर पुरुष के साथ सम्भोग करना होता था। प्रत्येक मन्दिर में अनेक देवदासियां रहती थीं जो भोगविलास की सामग्री थीं। मदिरालय वेश्यावृत्ति के केन्द्र थे और विवाह के पूर्व भी स्त्री-पुरुष स्वच्छन्दतापूर्वक समागम करते थे। पिता-माता ही विवाह तय करते थे परन्तु अधिकतर पुरुष अपनी कन्याओं को बेच देते थे। कन्या खरीदने वाला व्यक्ति उससे विवाह करने का वचन देता था। निर्धन पुरुष अपनी लड़कियों से वेश्यावृत्ति कराते थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चैल्डियन युग में बेबिलोनियन भौतिक दृष्टि से बहुत गिर गए थे और भौतिक सुखों को चिन्ता में ही रत रहते थे। जीवन से सदा-

चारिता कोसों दूर हो गयी थी। साहित्य और कला की उन्नति पर लोगों का ध्यान नहीं था वल्कि वे अपनी वेश भूषा और बालों को बनाने में ही रत रहते थे।

वैज्ञानिक प्रगति

चैल्डियनों ने विज्ञान के क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति की थी। चूंकि वे भाग्यवादी थे और ग्रहों आदि पर बहुत अधिक विश्वास करते थे इसलिये खगोल विद्या और ज्योतिष में उनकी विशेष अभिरुचि थी। चैल्डियनों ने खगोल विद्या के क्षेत्र में उतनी अधिक उन्नति की थी यह इस बात से स्पष्ट है कि बैबिलोन के पतन के 800 वर्ष पश्चात् रोमन साम्राज्य में उनके देश को 'खगोल विद्या की माता' के नाम से पुकारा जाता था। कहा जाता है कि तीसरी शताब्दी ई० पू० में चैल्डियन पुजारी वें रासाँस की भविष्यवाणी से प्रसन्न होकर एथेन्स के निवासियों ने उसकी मूर्तियाँ स्थापित की थीं।

चैल्डियनों ने समय के विभाजन की प्राचीन पद्धति में कुछ परिवर्तन किया। पहली बार सप्ताह को 7 दिनों में विभाजित किया। 1 दिन को उन्होंने 12 घन्टों और 1 घन्टे को 120 मिनटों में बाँटा। सूर्य और चन्द्र ग्रहण के अध्ययन में भी उन्होंने पर्याप्त अभिरुचि दिखलाई। ग्रहों के पता लगाने के क्षेत्र में वे अन्य जातियों के ज्ञान की अपेक्षा काफी आगे बढ़ गये थे। उनकी तत्सम्बन्धी भविष्य वाणियां अधिकतर सत्य होती थीं। उनके इस ज्ञान का लाभ हेलेनिस्टिक युग के वैज्ञानिकों ने बहुत अधिक उठाया। चैल्डियन युग में बैबिलोन में नीबू-रेमन्नु नाम का एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक हुआ जिसके द्वारा निर्धारित किये गये वर्ष की लम्बाई और आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा निर्धारित किये गये वर्ष की लम्बाई में केवल 26 मिनट का अन्तर है। 5वीं शताब्दी ई० पू० में वहाँ किडन्नु नाम का खगोल वेत्ता हुआ जिसको पृथ्वी की धुरी के वार्षिक झुकाव की खोज का श्रेय प्राप्त है। चैल्डियनों ने नक्षत्रों को 12 राशियों में विभाजित किया था और इस प्रकार चैल्डियन खगोल विद्या के क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति कर गये थे।

खगोल विद्या के साथ ही चैल्डियनों ने विज्ञान की अन्य शाखाओं यथा गणित, चिकित्सा, रसायन और भौतिकी आदि के क्षेत्र में भी बहुत उन्नति की थी।

कला

चैल्डियन युग में कला के क्षेत्र में भी बड़े क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। हेरोडोट्स ने चैल्डियन युगीन बैबिलोन के वैभव और कलात्मक उन्नति का अत्यन्त सजीव चित्रण किया है।

(1) **वास्तुकला**—चैल्डियन युग में बैबिलोनियन वास्तुकला अपनी उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गई। चैल्डियन सम्राटों ने निर्माण कार्यों में विशेष अभिरुचि दिखलाई और नेबुचेडरेज्जर को पश्चिमी एशिया के महान निर्माताओं में माना जाता है।

उसने वैबिलोन नगर को फिर से सुन्दर और सुव्यवस्थित बनाने का प्रयास किया। बैबिलोन की सुरक्षा के लिये उसने पुरानी आन्तरिक प्राचीर को पूरा कराया और एक नवीन वाह्य प्राचीर बनवाई। दोनों प्राचीरों के मध्य विशाल दुर्ग बनवाया। प्राचीरों के अतिरिक्त उसने अनेक खाइयाँ भी बनवाईं तथा उसने पुल भी बनवाये थे। "एबुल शबु" (विजयमार्ग) नामक प्रसिद्ध मार्ग को बनवाने का श्रेय उसे है। चैल्डियन युग के 'जिगुरत' विश्व विख्यात है। सम्राट नेबुचेडरेज्जर द्वारा रानी के लिये बनवाया गया "बेबिलोनिया का झूलता हुआ बाग" संसार के 7 आश्चर्यों में से एक है। चैल्डियन युग में वेबिलोन के अतिरिक्त अन्य नगरों में भी भवन निर्मित करवाये गये। सप्पर और ईशन में बनवाये गए मन्दिर अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

(2) **स्थापत्य कला**—चैल्डियन युग में वैबिलोन के निवासी पत्थर के तराशने की कला में माहिर थे। उन्हें बहुरंगी ईटों से रिलीफ मूर्तियां बनाने का भी विशेष शौक था। कांच पर वे कारीगरी करते थे। चैल्डियन युग के कुछ ही रिलीफ चित्र प्राप्त हुये हैं परन्तु कला की दृष्टि से वे अत्यंत उच्चकोटि के हैं।

(3) **चित्र कला**—चित्र कला के क्षेत्र में इस युग में कोई विशेष उन्नति नहीं हुई। चैल्डियन युग के चित्रकार मन्दिरों की दीवारों और मूर्तियों पर चित्रकारी करते थे परन्तु उनकी यह कला अन्य देशों की चित्रकला को देखते हुये उच्च कोटि की नहीं है।

(4) **अन्य कला**—उपर्युक्त कलाओं के अतिरिक्त चैल्डियन युग में वैबिलोन के निवासियों को संगीत कला, मुद्रा-निर्माण कला और आभूषणों के निर्माण का भी शौक था। वहाँ के निवासी सगीत के विशेष प्रेमी थे। वीणा, मंजीरा, तुरही; मशक बांसुरी इत्यादि वाद्य यन्त्र बजाने में अत्यन्त निपुण थे। स्त्रियों को आभूपण पहनने का भी विशेष शौक था जो इस बात का स्पष्ट परिचायक है कि वहां के कलाकारों को आभूषणों के बनाने में भी विशेष दक्षता प्राप्त थी।

विश्व इतिहास में बैबिलोन का स्थान

विश्व इतिहास में वैबिलोन का अपना विशिष्ट स्थान है। राजनीतिक और सांस्कृतिक दोनों ही क्षेत्रों में ससार के विभिन्न नगरों की अपेक्षा वेबिलोन की महान देन है। यहां हम सक्षेप में बैबिलोन की लोकप्रियता और विश्व इतिहास में उसके स्थान की चर्चा संक्षेप में कर रहे हैं :—

(1) **राजनीतिक उत्कर्ष का केन्द्र** - बैबिलोन राजनीतिक उत्कर्ष का बहुत बड़ा केन्द्र रहा है। उसने अत्यधिक राजनीतिक उथल पुथल को देखा है। यह नगर उजड़ने के बाद पुनः बसा है। सम्राट हम्मुरावी के शासन काल में यह नगर अत्यधिक उन्नति कर गया था परन्तु फिर उसका पतन हो गया। चैल्डियन युग के सम्राटों में

विशेष कर नेबुचेडरेज्जर ने वहां सुदृढ़ शासन की स्थापना करके बैबिलोन के राजनीतिक और सांस्कृतिक महत्व को बहुत अधिक बढ़ा दिया।

(2) **भाषा और लिपि की लोकप्रियता**—प्राचीन काल में बेबिलोनियन भाषा और उनकी कीलाक्षर लिपि ने अन्य देशों की भाषाओं और लिपियों को बहुत अधिक प्रभावित किया। मिस्री सम्राटों ने उस लिपि को अपनाया। उत्तरी मेसोपोटामिया के मितन्नी शासकों और अनातोलिया के हित्तियों ने भी कीलाक्षर लिपि को अपनाया। बैबिलोन के पतन के पश्चात् फारस के हखामशी सम्राटों ने भी अपनी प्राचीन भाषा के लिये कीलाक्षर लिपि के आधार पर एक चिह्न सूची बनायी।

(3) **साहित्य और धर्म की लोकप्रियता**—बैबिलोनियन साहित्य और धर्म भी अन्य देशों में बहुत अधिक प्रसिद्ध हुये। बेबिलोनिया का साहित्य अधिकतर धार्मिक ही था और बेबिलोनियन भाषा और लिपि के साथ ही उनके साहित्य और धर्म का प्रचार स्वयमेव हुआ।

(4) **घनिष्ठ व्यापक सम्बन्ध**—अति प्राचीन-काल में बेबिलोनियनों का व्यापारिक सम्बन्ध विभिन्न स्थानों से था। सुमेरियनों ने पूर्व में एलम और सिन्धु प्रदेश और उत्तर में असीरिया के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किये थे। हम्मुराबी के शासन काल में पश्चिमी देशों के साथ बेबिलोनिया का व्यापारिक सम्बन्ध अत्यन्त दृढ़ हो गया। कालांतर में ये सम्बन्ध और अधिक विकसित हुये।

(5) **पश्चिमी एशियाई जातियों और यूनान पर प्रभाव**—बैबिलोन का महत्व इसलिए और अधिक है कि उसने पश्चिम एशियाई जातियों और यूनान पर अपनी भाषा, लिपि और साहित्य तथा राजनीतिक विचारधारा का प्रभाव डाला। असीरियन, केनानी, हित्ती, यहूदी जातियाँ उनसे बहुत अधिक प्रभावित हुईं। हित्तियों और यहूदियों के माध्यम से बेबिलोनियनों के साहित्य का प्रभाव यूनानियों पर भी पड़ा। यूनानी राष्ट्र-वीर हरक्युलिज का चरित्र गिलगामीस के चरित्र से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। बेबिलोनियनों के "ईस्तर और तामूज आख्यान" ने भी यूनानियों को बहुत अधिक प्रभावित किया। यूनानी देवी एफ्रोडाइट और उसके प्रेमी एडोनिश की कथा बेबिलोनिया के एक कथा का रूपान्तर मात्र ही प्रतीत होती है। देदालुस नामक इंजीनियर के पुत्र इकारोस की कथा और एटन गडरिया की कथा में भी पर्याप्त साम्य है।

यूनान सांस्कृतिक क्षेत्र में अत्यधिक उन्नति कर गया। यूनानियों पर बेबिलोनियनों का प्रभाव इस बात का स्पष्ट साक्षी है कि बेबिलोन की संस्कृति विश्व की विभिन्न संस्कृतियों में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। बेबिलोनिया का प्रभाव एलम, ईरान और यूनानियों पर बहुत पड़ा ही, साथ ही भारतवासी भी बेबिलोनिया से प्रभावित हुए। डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी का मत है कि भारत में भार की इकाई के लिये प्रयुक्त होने वाला "मन" बेबिलोनियन शब्द 'मीना' से बना है।

अंत में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अपनी राजनीतिक उथल-पुथल और सांस्कृतिक उन्नति की दृष्टि से विश्व के इतिहास में बेबिलोनिया का अपना अलग स्थान है। यद्यपि यह ठीक है कि बेबिलोन की संस्कृति मिस्र, भारत और चीन की संस्कृतियों को अपेक्षा निम्न कोटि की है परन्तु फिर भी बेबिलोन अपना अलग स्थान रखता है।

सारांश

बैबिलोन में असीरियन आधिपत्य समाप्त होने के पश्चात् चैल्डियनों ने अपना राज्य स्थापित किया। चैल्डियन युग में नेबुपलेस्सर और नेबुचेडरेज्जर नाम के दो प्रतिभाशील शासक हुए जिनकी चर्चा हम अध्याय 3 में कर चुके हैं।

चैल्डियन अपने को प्राचीन बेबिलोनियनों का वंशज मानते थे। इस युग में धार्मिक एवं दार्शनिक पुनर्जागरण हुआ। चैल्डियन युग में मर्दुक देवता को अत्यधिक महत्व प्रदान किया गया। चैल्डियन भाग्यवादी और निराशावादी थे। चैल्डियनों ने विज्ञान के क्षेत्र में भी पर्याप्त उन्नति की थी। 800 वर्ष पश्चात् रोमन साम्राज्य में उनके देश को 'खगोल विद्या की माता' के नाम से पुकारा जाता था। चैल्डियनों ने पहली बार सप्ताह को 7 दिन में विभाजित किया। उन्होंने 1 दिन को 12 घन्टों और एक घन्टे को 120 मिनटों में बांटा। पृथ्वी की धुरी के वार्षिक झुकाव की खोज का भी श्रेय उन्हें प्राप्त है। उन्होंने नक्षत्रों को 12 राशियों में विभाजित किया था। गणित, चिकित्सा, रसायन और भौतिकी आदि के क्षेत्र में उन्होंने पर्याप्त उन्नति की थी।

चैल्डियन युग में कला के क्षेत्र में भी बड़े क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये। इस युग में बेबिलोनियन वास्तु कला अपनी उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गई थी। चैल्डियन सम्राट नेबुचेडरेज्जर को गणना एशिया के महानतम निर्माताओं में की जाती है। उसके द्वारा निर्मित बेबिलोनिया का "झूलता हुआ बाग" संसार के 7 आश्चर्यों में से एक है। चैल्डियन युग के जिगुरत विश्व विख्यात है। इस युग में स्थापत्य कला की भी अपार उन्नति हुई। बहुरंगी ईंटों से रिलीफ मूर्तियां बनाई गई। चित्र कला के क्षेत्र में इस युग में विशेष उन्नति नहीं हुई। चैल्डियन चित्रकार मंदिरों की दीवारों और मूर्तियों पर चित्रकारी करते थे परन्तु वे उच्चकोटि की नहीं होते थे। चैल्डियन संगीत, कला, मुद्रा निर्माण कला और आभूषणों के निर्माण के भी शौकीन थे।

विश्व के इतिहास में बैबिलोन का अपना अलग स्थान है। यह राजनीतिक उत्कर्ष का अत्यंत प्रसिद्ध केंद्र रहा है। बैबिलोनियन भाषा और उसकी कीलाक्षर लिपि विश्व विख्यात है। बैबिलोनियन साहित्य और धर्म भी विश्व विख्यात रहे हैं। संसार के विभिन्न देशों से बेबिलोनियन के बड़े घनिष्ठ सम्बन्ध रहे हैं। यूनानी संस्कृति पर बेबिलोनिया का प्रभाव है। बेबिलोनिया का प्रभाव एलम, ईरान और भारत की संस्कृतियों पर भी पड़ा। यह ठीक है कि बैबिलोन की संस्कृति मिस्र, भारत और चीन की अपेक्षा निम्न कोटि की है परंतु उसका अपना अलग स्थान है।

— — —

मिस्र की सभ्यता और संस्कृति

CIVILIZATION AND CULTURE OF EGYPT

अध्याय 18

प्राग्वंशीय और पिरामिड युग

प्रश्न 1—प्राचीन मिस्रवासियों के धार्मिक-जीवन का वर्णन कीजिये।
(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

Describe the religious life of the ancient Egyptians.
(Allahabad University)

प्रश्न 2—पिरामिड काल के मिस्रवासियों की धार्मिक धारणाओं तथा कला का विवरण दीजिए। (गोरखपुर विश्वविद्यालय)

Give an account of the religious belief and art of the Egyptians in the age of Pyramids. (Gorakhpur University)

प्रश्न 3—कला एवं स्थापत्य के क्षेत्र में प्राचीन मिस्रवासियों की कृतियों का वर्णन कीजिए। आप इस विचार से कहाँ तक सहमत हैं कि वे विश्व के सबसे बड़े निर्माता थे? (इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

Describe the achievements of the ancient Egyptians in the sphere of art and architecture. How far do you agvee with the view that they were the greatest builders in the world?
(Allahabad University)

प्रश्न 4—पिरामिड-कालीन मिस्र के साहित्य, विज्ञान और कला की विवेचना कीजिये। (गोरखपुर विश्वविद्यालय)

Discuss the literature, Science and art of Pyramid period of Egypt. (Gorakhpur University)

भूमिका

मिस्र उत्तर पश्चिम में स्थित है। यह नील नदी के किनारे बसा हुआ है। इसके उत्तर में भूमध्य सागर, पश्चिम में लीबिया के रेगिस्तान, दक्षिण में नील के महाप्रपात और पूर्व में लालसागर है। नील नदी की मिस्र को महान देन है। मिस्र को 'नील नदी का वरदान' कहा जाता है। मिस्र मूलतः लीबियन रेगिस्तान का एक भाग है।

इसके केवल मध्यवर्ती भाग में नील नदी ने 10 से लेकर 20 मील चौड़ी और 30 से लेकर 40 फिट मोटी खेती के योग्य मिट्टी की एक पट्टी बना दी है। इस प्रकार मिस्र का उर्वर प्रदेश उसके कुल क्षेत्रफल का 3·5 प्रतिशत है। परन्तु यह प्रदेश इतना उपजाऊ है कि यहाँ चावल, रुई, और गन्ने की खेती बहुत अधिक मात्रा में होती है। मिस्रियों को अपने कृषि कर्म के लिए केवल नील पर ही निर्भर रहना पड़ता है, इसीलिए हेरोडोटस ने मिस्र को 'नील का वरदान' कहा है।

मिस्र के राजनीतिक इतिहास को हम चार भागों में बाँट सकते हैं—(1) प्राग्वंशीय युग, (2) पिरामिड युग, (3) मध्य-राज युग और (4) साम्राज्यवादी युग।

प्राग्वंशीय युग

(1) राजनीतिक इतिहास :— इस युग में मिस्र की क्या दशा थी, इसके विषय में ठीक जानकारी नहीं है। 5000 ई० पूर्व से लेकर 3200 ई० पूर्व तक का काल प्राग्वंशीय युग के नाम से पुकारा जाता है। विद्वानों का ऐसा मत है कि आरम्भ में मिस्र छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। ये राज्य एक दूसरे से संघर्ष किया करते थे परन्तु धीरे-धीरे यह राज्य आपस में मिलने लगे। यहीं से मिस्र में राजनैतिक एकता की भावना का जन्म हुआ और आगे चलकर मिस्र में दो विशाल राज्य हो गये—

(1) उत्तरी राज्य।
(2, दक्षिणी राज्य।

उत्तरी और दक्षिणी राज्यों को संयुक्त करके राजनीतिक एकता की स्थापना मेना (मिनीज) ने की। मेना के उत्तराधिकारियों के विषय में कहा जाता है कि मिस्र के प्रथम दो वंशों के 18 राजाओं ने 420 ई० तक राज्य किया। इनके इतिहास के विषय में अधिक जानकारी नहीं है।

(2) सांस्कृतिक उन्नति :– इस युग में सांस्कृतिक विकास के चिह्न दृष्टिगत होते हैं। इस युग में पर्याप्त सामाजिक और आर्थिक उन्नति हो चुकी थी। मिस्र वाले सिंचाई की समुचित व्यवस्था जान गए थे। उनके यहां कानून निश्चित था। कुटुम्ब, समाज की इकाई समझी जाती थी। स्त्री और पुरुष दोनों ही सौंदर्य-प्रेमी थे। वे तरह-तरह के आभूषण पहनते थे जिनमें उच्चकोटि का ग्लेज़ होता था। मृण्ड-भाण्ड कला का उनके यहां पर्याप्त विकास हो चुका था। उनके बर्तनों में सुन्दर पालिश की जाती थी और एक प्रकार की चित्राक्षर-लिपि भी प्रचलित थी। इस युग में ही संसार का सबसे पहला कलेण्डर बना जिसके अनुसार एक वर्ष में 13 महीने और 365 दिनों की कल्पना की गई थी।

पिरामिड युग

तीसरी शताब्दी ई० पूर्व में मिस्र में बड़े विप्लवकारी परिवर्तन हुये। 1980ई० पूर्व में तृतीय वंश की स्थापना मिस्र में हुई। इस वंश का काल मिस्र की भौतिक उन्नति का एक महत्वपूर्ण काल था। जोसेर के शासन काल में सीढ़ीदार पिरामिड बनवाये गये।

जोसेर के उत्तराधिकारियों ने भी उसकी विद्वत्ता का लाभ उठाया। जोसेर के समय में ही लिपि में अनेक सुधार किये गये। इस वंश का अंतिम नरेश नेफु था जिसने मिस्र में पहले ढलवां पिरामिड का निर्माण करवाया।

तृतीय वंश के पश्चात् मिश्र में चतुर्थ वंश का शासन आरम्भ हुआ। इस युग का प्रसिद्ध शासक खफू था जिसने मिस्र का सबसे बड़ा पिरामिड बनवाया। इसके पुत्र खेफे ने सबसे छोटा पिरामिड बनवाया। इस युग के बने पिरामिडों में मेन्कुरे के बनवाये हुये पिरामिड भी प्रसिद्ध हैं।

2750 ई० पूर्व में यूसरेकाफ ने मिस्र में पाँचवे वंश के शासन की नींव डाली। इसके पुत्र सहुरे ने मिस्र की सीमा को बढ़ाने का प्रयत्न किया परन्तु उसके शासन-काल में पुजारियों और सेनापतियों की महत्वाकांक्षा के कारण केन्द्रीय शक्ति कम होती गई।

पिरामिड युग में भी मिस्र ने काफी उन्नति की थी। इस युग में सम्राट देश का सर्वोच्च पुरोहित समझा जाता था। वही अन्य पुरोहितों की नियुक्ति करता था। वही देश का सर्वोच्च न्यायाधीश होता था और अपने नीचे एक न्यायाधीश और 6 अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति करता था। नगर का शासन राज्यपाल द्वारा किया जाता था जिसकी नियुक्ति सम्राट द्वारा होती थी।

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इस युग में मिस्र में पिरामिडों का निर्माण बहुत अधिक मात्रा में हुआ। ये पिरामिड अपनी भव्यता और कलात्मकता के फलस्वरूप आज भी ससार के आश्चर्यों में माने जाते हैं।

शासन-व्यवस्था

(1) **सम्राट**—सम्राट को फराओ भी कहा जाता था। उसे सूर्यदेव रे का प्रतिनिधि समझा जाता था। मिस्र में शासन व्यवस्था के लिये जनतांत्रिक प्रणाली नहीं अपनाई गई थी। साम्राज्य की समस्त शक्ति राजा के हाथ में केन्द्रित रहती थी। वही राज्य का सर्वोच्च सेनापति, न्यायाधीश और पुजारी होता था। उसे सभी प्रकार के अधिकार प्राप्त थे। वही विधानों का निर्माता और धार्मिक कार्यों का सृष्टा समझा जाता था। साम्राज्य के समस्त अधिकारी उसके अधीन रहते थे और उनकी इच्छा उसकी इच्छापर निर्भर करती थी। समय-समय पर सम्राट निरंकुश भी हो जाता था। वह सबसे

बड़ा पुरोहित था, अतः धार्मिक क्षेत्र में भी उसे बड़ा सम्मान प्राप्त था। मिस्र के निवासी बड़े धर्मभीरु थे और धर्म का सबसे बड़ा पुरोहित होने के फलस्वरूप राजा के विरुद्ध किसी भी प्रकार का विद्रोह करना पाप समझते थे।

इसमें किंचित मात्र भी सन्देह नहीं है कि मिस्र में सम्राट निरंकुश हो सकता था और बहुत से ऐसे सम्राट हुये जिन्होंने निरंकुशता को अपनाया परन्तु यह कार्य तभी तक चलता रहा जब तक राजा योग्य, प्रतिभाशाली और सशक्त रहे। जब अयोग्य सम्राट गद्दी पर आसीन हुये तो सामन्तों और पुरोहितों ने जोर पकड़ा। समस्त साम्राज्य में अनेक सामन्त होते थे जो छोटे-छोटे भूखण्डों के स्वामी होते थे। वे अपने अपने भूखण्डों का शासन करते थे। राजा सदैव इनकी ओर से सतर्क रहता था कि कहीं ये लोग विद्रोह न कर दें। अतः योग्य शासकों ने इन सामन्तों को सदैव दबाकर ही रक्खा।

(2) **प्रधान मन्त्री**—शासन-व्यवस्था में सम्राट की सहायता के लिये अनेक अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। सम्राट का प्रधान मन्त्री इन अधिकारियों में सर्वश्रेष्ठ स्थान रखता था। आरम्भ में यह पद युवराज को प्राप्त होता था परन्तु कालांतर में सम्राट किसी भी योग्य व्यक्ति को इस पद पर आसीन कर सकता था। यह प्रधान-मन्त्री अपने समस्त कार्यों के लिये जनता के प्रति उत्तरदायी न होकर सम्राट के प्रति उत्तरदायी था। प्रधानमन्त्री ही राजा के नाम पर समस्त कार्य करता था। उसके मुख्य कार्य इस प्रकार थे—

(1) जनगणना एवम् कर-संग्रह करवाना, (2) राजाज्ञाओं को प्रसारित करना, (3) सार्वजनिक-कल्याण कार्यों की व्यवस्था करना, (4) नीचे के न्यायालयों के विरुद्ध अपीलें सुनना, (5) राजवंश की देखरेख करना, और (6) अधीनस्थ कर्मचारियों पर नियन्त्रण रखना।

(3) **कोषाध्यक्ष**—मिस्री राज्य का एक दूसरा प्रमुख अधिकारी "प्रधान कोषाध्यक्ष" होता था। उसका कार्य सम्पूर्ण देश की वित्त-व्यवस्था को नियन्त्रित करना होता था। उसके नीचे 2 उप कोषाध्यक्ष होते थे जिनका कार्य राजप्रासादों, मन्दिरों और पिरामिडों के निर्माण की व्यवस्था था।

(4) **प्रान्तीय व्यवस्था**—पिरामिड युग में प्रशासन में सुव्यवस्था के लिये सम्पूर्ण मिस्र को लगभग 50 प्रांतों में बाँटा गया था। उनका शासन राज्यपालों के हाथों में रहता था जिन्हें फराओं द्वारा नियुक्त किया जाता था। प्रान्तों की शासन-व्यवस्था केन्द्रीय शासन व्यवस्था की तरह की थी। केन्द्र और प्रान्तों के सम्बन्धों को बनाये रखने में राजकोषागार का बहुत बड़ा हाथ होता था। प्रान्तीय गवर्नर कर के रूप में अनाज, शहद, पशु और अन्य वस्तुयें इकट्ठी करते थे और उन्हें राजकोषागार में

जमा कर देते थे। प्रान्तों की आय, भूमि और सिंचाई आदि से सम्बन्धित कार्यालय केन्द्रीय सरकार के सम्पर्क में ही रहते थे। इन प्रान्तों को 'नौम्स' और उनके गवर्नरों को 'नोमार्च' कहा जाता था। बार्नेस ने लिखा है—

"Under the old kingdom, the administrative units were the territorial divisions, the nomes. At the head of each was an appointive royal official called nomarch. The nome constituted a small state modelled on the kingdom and bound to the central government through certain agencies like the treasury department or the land and irrigation offices."

—Barnes.

(5) **न्याय-व्यवस्था**—मिस्र में न्याय-व्यवस्था बहुत अच्छी नहीं थी। ईरान की न्याय-व्यवस्था की अपेक्षा वहां की न्याय व्यवस्था निकृष्ट थी। कोई संविधान न होने के कारण न्याय के लिये परम्पराओं का आश्रय लिया जाता था। ग्रामों में सामन्तों द्वारा न्याय किया जाता था और नगरों में नगर-पतियों द्वारा। इनके ऊपर स्थानीय न्यायालय होते थे जिनमें निम्न न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध अपीलें की जा सकती थीं। सम्राट ही देश का सर्वोच्च न्यायाधीश, एवं उसकी राज्यसभा ही सर्वोच्च न्यायालय थी। राजा का निर्णय अंतिम था और उसके विरुद्ध कहीं भी अपील नहीं की जा सकती थी। अधिकतर अर्थ-दण्ड की प्रथा प्रचलित थी। गम्भीर आरोपों के लिये मृत्यु-दण्ड देने और अंगों को काटने की प्रथा को भी अपनाया गया था।

सामाजिक जीवन

(1) **वर्ग विभाजन**—मिस्र का समाज 5 वर्गों में विभाजित था—राज्य परिवार, सामन्त, पुजारी, मध्यम वर्ग और दास। मध्यम वर्ग में लिपिक, व्यापारी, कारीगर और स्वतंत्र किसान आते थे। राज परिवार, सामन्तों और पुजारियों को विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त थी। वर्ग व्यवस्था लचीली थी और हर व्यक्ति कोई भी पेशा अपना सकता था, केवल राज परिवार के सदस्य इस अधिकार से वञ्चित थे। दास वर्ग की दशा अच्छी न थी। इनका धन और जीवन अपने स्वामियों की इच्छा पर निर्भर करता था। ये लोग राजवंश, पुरोहित वर्ग और सामन्त वर्ग की सेवा करते थे और बदले में इनको अनाज और शरीर ढकने के लिये वस्त्र दिये जाते थे।

मिस्र का वर्ग विभाजन उतना कठोर नहीं था जितना कि भारत की जाति प्रथा। उच्च और निम्न वर्ग में इस प्रकार का अन्तर देखने को नहीं मिलता था जिस प्रकार कि भारत की जातीय व्यवस्था में देखने को मिलता है। स्वेन ने लिखा है कि दोनों वर्गों में भेद भारत के जातिवाद का सा नहीं था। छोटे से छोटा व्यक्ति भी धर्म-गुरू या राज्याधिकारी हो सकता था।

"The distinction between two groups was not sufficient to constitute a caste system, such as existed in India. It was possible for an individual to pass from the lower class to the other even as high as priesthood or to a leading government position."

—Swain.

(2) **रहन-सहन**—मिस्र के उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के लोगों के रहन-सहन में बहुत बड़ा अन्तर था। उच्च वर्ग के लोग बड़े-बड़े भवनों में रहते थे जिनकी खिड़कियों और दरवाजों पर गहरे रंग में रंगे हुये पर्दे पड़े रहते थे। उनकी घर की फर्श पर दरियाँ बिछी रहती थीं। कमरों में सुन्दर पलंग, कुर्सियां, अलमारियां और सोने चांदी ताँवे, पत्थर के बने हुये बहुमूल्य पात्र रखे रहते थे। उच्च वर्ग के लोगों के भवन के चारों तरफ बगीचा होता था। किन्हीं-किन्हीं घरों में कृत्रिम सरोवर भी होता था। उच्च वर्ग की स्त्रियाँ जूड़े बाँधती थीं और सुगंधित तेल, गालों की सुर्खी और लिपिस्टिक आदि का प्रयोग करती थी। पुरुष दाढ़ी बनवाते थे और बड़े-बड़े विग धारण करते थे। स्त्रियाँ भी विग धारण करती थी। 10 वर्ष से कम आयु वाले बच्चे अधिकतर नंगे रहते थे निर्धन लोग गन्दे मुहल्लों में रहते थे। उनकी हालत अत्यन्त दयनीय था और उनकी झोपड़ियाँ बड़ी बुरी हालत में रहती थीं। उनके बर्तन टूटे-फूटे होते थे और उनके पास फर्नीचर नाम की कोई चीज नहीं होती थी।

(3) **पारिवारिक जीवन**—मिस्री समाज की इकाई परिवार थी। परिवार की सम्पत्ति पर उत्तराधिकार का नियम प्रचलित था। परिवार का मुखिया पुरुष ही होता था परन्तु स्त्री का भी सम्मान होता था। परिवार में अत्यन्त स्नेहपूर्ण वातावरण रहता था।

(4) **स्त्रियों की दशा**—मिस्र में स्त्रियों को बहुत अधिक सम्मान प्राप्त था। उनमें पर्दे की प्रथा नहीं थी। वे पुरुषों की भाँति आर्थिक और सामाजिक कार्य कर सकती थीं और राजकीय कार्यों में भी भाग ले सकती थीं। मिस्र के समाज में नारियों को इतनी अधिक स्वतन्त्रता थी कि वे अपना विवाह स्वयं ही कर सकती थीं। बहुधा भाई-बहन में ही विवाह हो जाता था। विवाह के पूर्व स्त्री पति से यह वचन ले लेती थी कि वह इसकी इच्छा का आदर करेगा। बहु-विवाह की प्रथा मिस्र के समाज में प्रचलित नहीं थी, परन्तु राजवंश के लोग कभी-कभी एक से अधिक विवाह कर लेते थे। अधिक पुत्र उत्पन्न करने वाली स्त्री को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। यद्यपि वेश्यावृत्ति की प्रथा प्रचलित थी परन्तु बहुत कम लोग वेश्यागामी होते थे। पति अपनी पत्नी को आसानी से तलाक नहीं दे सकता था। उसे उस पर भ्रष्टाचार का आरोप लगाना पड़ता था। मैक्समूलर ने मिस्र की स्त्रियों के अधिकारों के विषय में ठीक ही लिखा है

"नील घाटी की सभ्यता के समान ऊंचा स्थान किसी भी सभ्यता में स्त्रियों को नहीं था।"

"No people, ancient or modern, has given women so high a legal status as did the inhabitants of Nile Valley."

स्त्रियाँ अपने सौंदर्य को बढ़ाने के लिये लिपिस्टिक, नेल पालिश आदि का प्रयोग करती थीं। इत्र, तेल का प्रयोग भी व्यापक मात्रा में होता था। मिस्र की नारियों के विषय में ठीक ही लिखा गया है, "मिस्र की स्त्रियों ने बहुत कम मात्रा में अलङ्कारों और सौंदर्य सज्जा के विषय में सीखा।"

"The women of ancient Egypt could learn very little from us in the matter of cosmetics or jewellery."

आर्थिक व्यवस्था

(1) **कृषि कार्य**—मिस्र एक कृषि प्रधान देश था। वहां गेहूँ, जौ, मटर, सरसों, जैतून, अंजीर, सन, अंगूर व्यापक मात्रा में उत्पन्न किये जाते थे। मिस्र की भूमि बहुत अधिक उपजाऊ थी। बिना हल चलाये वहाँ खेती की जा सकती थी। सिंचाई का मुख्य साधन नील नदी थी। सिंचाई के लिये मिस्र में तालाब और नहरों का जाल बिछाया गया था।

खेती की अधिकतर भूमि सामन्तों और पुरोहितों के ही पास थी। वे श्रमिकों और दासों के द्वारा अपनी भूमि में खेती करवाते थे। सम्राट के पास भी खेती के लिये बहुत अधिक भूमि थी। बहुत से सामन्त स्वयं भी खेती करते थे। सरकार की ओर से किसानों को सहायता की जाती थी। किसानों की सुविधा के लिये मिस्र में सौर पंचांग का आविष्कार किया गया था। किसान अपनी उपज का 10 से लेकर 20 प्रतिशत तक राजकीय कोष में देते थे।

(2) **पशुपालन**—मिस्र के निवासियों की आय का दूसरा साधन पशुपालन था। इनके मुख्य पालतू पशु-गाय, भेड़, बकरी और गधा थे। पालतू बन्दर बोझा उठाने और फल तोड़ने के काम आते थे। मुर्गियां भी पाली जाती थीं।

(3) आखेट—मिस्र में आखेट की प्रथा भी प्रचलित थी। पशु-पक्षियों का शिकार किया जाता था। मारे गये पशुओं का मांस खाने के काम में और खाल कपड़ा बनाने के काम में लाई जाती थी। नील नदी और भूमध्य सागर में बहुत अधिक मछलियाँ होती थीं अतएव ये लोग मछलियां पकड़ने का काम भी करते थे।

(4) **उद्योग**—मिस्र में उद्योग धंधों के लिये अधिक सुविधा नहीं थी। इसका मुख्य कारण यह था कि वहां लकड़ी और खनिज पदार्थों की कमी थी। परन्तु वे लोग बहुत सा माल पड़ोस के देशों से मंगाते थे और बदले में पाषाण, ताम्र, वैदूर्य और नीलमणि आदि पड़ोसी देशों को भेजते थे। वे तांबे को पिघला कर अस्त्र और

बर्तन बनाते थे। हाथी दांत के कार्य में वे बड़े पटु थे। हाथी दांतों का आयात वे असीरिया और नूबिया से करते थे। वे सुन्दर जलपोत भी बनाते थे। कुम्हार की कला और पाषाण कला का भी काफी विकास हुआ था। चाक की सहायता से वे अति सुन्दर प्याले, गिलास और तश्तरियां बनाते थे। कागज का आविष्कार सबसे पहिले मिस्र में ही हुआ। वे अपने हाथ से रुई के कपड़े बनाते थे परन्तु ये कपड़े रेशम के कपड़ों की भांति प्रतीत होते थे। पशुओं से प्राप्त चमड़ी से भांति-भांति के वस्त्र और ढोल इत्यादि बनाते थे। पिपाइरस पौधा हल्की नाव, चप्पल, चटाई और रस बनाने के काम में आता था। कताई-बुनाई की प्रथा भी उनके यहां प्रचलित थी। वहाँ के उच्च वर्गीय लोग लिलन के वस्त्र बहुत अधिक मात्रा में पहनते थे।

(5) **व्यापार**—मिस्र के निवासी फोनेसिया, सीरिया, क्रीट और भारत आदि से व्यापार करते थे। व्यापार के लिये अधिकतर जल-मार्ग ही प्रयोग में लाये जाते थे। नील नदी इनके आवागमन का मुख्य माध्यम थी। मिस्र में मुद्र-प्रणाली नहीं प्रचलित थी। अतः विनिमय का माध्यम चीज का अदल-बदल ही था। व्यापारिक सम्बन्ध अवश्य लिखा-पढ़ी करके स्थापित किया जाता था। आर्डर देने और रसीद की प्रथा भी प्रचलित थी। वसीयतनामे भी लिखे जाते थे। रुक्का, धरोहर आदि की प्रथा भी प्रचलित थी। मिस्र में अनेक कारखाने थे, जहां अधिकतर दासों से मजदूरों का कार्य लिया जाता था।

(6) **आर्थिक सङ्गठन के दोष**—मिस्री आर्थिक संगठन का सबसे बड़ा दोष यह था कि वहां केन्द्रीयकरण अत्यन्त प्रबल रूप में विद्यमान था। वहां राज्य और समाज के हित को एक माना गया था और इसीलिये राज्य सबसे बड़ी व्यापारिक संस्था थी। प्राचीन राज्य युग में यह प्रवृत्ति इतनी प्रबल नहीं थी परन्तु पिरामिड जैसे विशाल भवनों के निर्माण के फलस्वरूप राज्य के विभिन्न क्षेत्र में आर्थिक नियंत्रण बढ़ता गया और निजी व्यापारियों की संख्या घटती गई।

धार्मिक जीवन

मिस्र के समाज में धर्म की प्रधानता थी। राज्य-व्यवस्था और धर्म एक दूसरे के पूरक हो गये थे। कला पर भी धामिक प्रभाव था। यूनानियों के अनुसार मिस्र के निवासी बहुत धर्मनिष्ठ थे। वे सम्राटों को देवता का प्रतिनिधि समझते थे। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में धर्म का विशिष्ट स्थान था। मिस्र के धर्म के विषय में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं:—

(1) **बहुदेववाद**—मिस्र के निवासी बहुदेववादी थे। वे प्रकृति के विभिन्न रूपों में अपने देवी-देवताओं की पूजा करते थे। देवताओं में सूर्य का महत्वपूर्ण स्थान था। इसको वे अधिष्ठाता-तत्व समझते थे और बड़ी श्रद्धापूर्वक उसकी पूजा करते थे। उनका विश्वास था कि सूर्य ही संसार का नियामक है। सम्राट अपने को सूर्य-

पुत्र के नाम से सम्बोधित करता था। मंदिरों में सूर्य की प्रतिमाएं बहुत अधिक मात्रा मे पाई गई हैं। सूर्य के अतिरिक्त वे आकाश, जल, सरिता, अग्नि, वायु की भी पूजा करते थे।

कालान्तर में अमेनहोतेप चतुर्थ ने वहुदेववाद का खण्डन किया। उसने अपने साम्राज्य में सभी देवी-देवताओं की पूजा को बन्द करवाने का आदेश दिया और सूर्य देवता (एटन) की पूजा को ही स्वीकार किया। इस प्रकार उसने एकेश्वरवाद की स्थापना करने का प्रयास किया परन्तु आगे चलकर जनता ने एकेश्वरवादी विचार-धारा का फिर परित्याग कर दिया और पुनः अनेक देवी देवताओं की आराधना होने लगी।

(2) मंदिर और पूजाविधि—मिस्र में मंदिरों को देवग्रह माना जाता था और इसीलिए उनका निर्माण उसी प्रकार किया जाता था जिस प्रकार अन्य घर होते थे। पिरामिड युग के मंदिरों में आगे की ओर एक खुला हुआ आंगन होता था। उसके पीछे एक विशाल कक्ष तथा उसके पीछे भण्डार के रूप में काम आने वाले छोटे-छोटे कमरे होते थे। इन छोटे कमरों के बीच में ही गर्भगृह होता था जिसमें लकड़ी की बनी हुई देवमूर्ति स्थापित की जाती थी। देवमूर्ति को अत्यन्त सुन्दर आभूषणों से अलंकृत किया जाता था। देव पूजन की विधि उसी प्रकार थी जिस प्रकार की हिन्दू धर्म में पाई जाती है। मूर्ति को भोग लगाया जाता था, उसे वस्त्रादि अर्पित किये जाते थे तथा उसे गायन-वादन से संतुष्ट किया जाता था। मदिरों की आय के दो साधन थे—राज्य की ओर से की गई सहायता और भक्तों द्वारा दान में दी गई सामग्रियां। जो सामग्री देवता पर चढ़ाई जाती थी उसका उपभोग पुजारी करते थे और भक्तों को प्रसाद भी बांटा जाता था। देवाख्यानों में लिखी हुई तिथियों पर विशेष उत्सव उसी प्रकार मनाये जाते थे जिस प्रकार भारत में रामनवमी, विजय दशमी आदि मनाये जाते हैं।

(3) पशु-पूजा एवं वृक्ष-पूजा—मिस्र के निवासी देवी-देवताओं के अतिरिक्त अनेक पशुओं की भी पूजा करते थे। पशुओं को देवताओं का रूप उनकी उपादेयता और उपयोगिता के आधार पर दिया गया था। वे लोग भेड़ और वृषभ की पूजा करते थे। भेड़ को एमनरा देवता, वृषभ को टा देवता मानते थे।

वे वृक्षों की भी पूजा करते थे। खजूर को सबसे अधिक सम्मान की दृष्टि से देखते थे।

(4) कर्मकाण्ड एवं पुजारी वर्ग :—प्रारम्भ में मिस्र के धर्म में कर्मकाण्ड का महत्व नहीं था। पुजारी-वर्ग धर्मनिष्ठ था। पुजारी अपनी विद्वत्त और धर्मनिष्ठा के कारण जनता के श्रद्धा के पात्र बन गये थे। बाद में, पूजन में कर्मकाण्ड की प्रधा-

नता हो गई। कर्मकाण्ड और अनुष्ठानों के कारण पुजारी वर्ग को बहुत अधिक महत्व दिया जाने लगा। फलस्वरूप, पुजारी वर्ग में लोलुपता और स्वार्थ की भावना ने प्रवेश किया। अंध-विश्वास और जन्तर-मन्तर में जनता का विश्वास हो गया और पुजारी वर्ग ही इन जन्तरों-मन्तरों का सम्पादन करते थे। मिस्र के मंदिरों में देवदासियां रहती थीं जिन्होंने आगे चलकर वेश्याओं का रूप ले लिया। बहुदेववाद, पुरोहितवाद और कर्मकाण्ड ने धर्म के वास्तविक स्वरूप को इतना नष्ट कर दिया कि मिस्र-निवासियों के धर्म में नैतिकता का स्थान न रहा।

(5) पारलौकिक जीवन :—मिस्र निवासी, पारलौकिक जीवन में विश्वास करते थे। वे आत्मा में विश्वास करते थे। पुनर्जन्म में भी कदाचित उन्हें विश्वास था। उनका कहना था कि मृत्यु के पश्चात् भी मनुष्य सुख-दुख का अनुभव करता है। इसी कारण वे मृतक के साथ खाने पीने की सामग्री, अस्त्र, आभूषण आदि रख देते थे। पिरामिड युग में जो मृतक शरीर रखे गये हैं उनको 'ममी' के नाम से पुकारा गया है।

मिस्र के निवासियों का यह मत था कि हर मनुष्य में एक शक्ति-विशेष "का" होती है जो जन्म के समय उसके साथ आती है, जीवन भर रहती है और मृत्यु के बाद भी उससे विलग नहीं होती। इस 'का' को मिस्र-वासियोंने मानव शरीर का प्रतिरूप कहा है। यही कारण था कि मिस्रवासी मृतकों के साथ भोजन-सामग्री आदि रख देते थे। उनमें यह भय रहता था कि यदि भोजन-सामग्री आदि नहीं रखी जाएगी तो कहीं 'का' अपने मल का ही भक्षण न करने लगे। इस 'का' के अतिरिक्त मिस्रवासी आत्मा में भी विश्वास करते थे और उनका कहना था कि शरीर में आत्मा उसी प्रकार निवास करती है जिस प्रकार वृक्ष पर पक्षी। आत्मा और "का" में क्या सम्बन्ध था, इस विषय में कोई निश्चित जानकारी नहीं है।

मिस्र के निवासी अपने मृतकों को भी इसी दुनिया का निवासी मानते हैं। ' पिरामिड टेक्स्ट्स" में विभिन्न स्थलों पर "मृतकों की दुनिया" की कल्पना की गई है जहाँ प्रतिदिन संध्या समय सूर्य देवता जाते हैं। एक स्थल पर "पाताल" का भी उल्लेख हुआ है जहाँ मृत आत्मायें सूर्य देव की नाव का इन्तजार किया करती हैं।

"यारूलोक" का भी उल्लेख हुआ है जहां पूण्य आत्मायें आनन्दमय जीवन व्यतीत करती हैं। इससे स्पष्ट है कि मिस्र के निवासी पाप और पुण्य में भी विश्वास करते हैं। वहाँ के निवासियों का मत था, "मृत्यु के पश्चात् मनुष्य को ओसेरिस नामक देवता के सामने जाना पड़ता है। वहाँ उसके कर्मों का ब्यौरा लिखा जाता है। अच्छे कर्म करने वालों को स्वर्ग की और बुरे कर्म करने वालों को नरक की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मिस्र के निवासी आत्मा को अमर मानते थे और शरीर की नश्वरता पर विश्वास करते थे। वे कर्मवादी थे और उन्हें पाप पुण्य पर भी विश्वास था।'

(6) **धर्म और राजनीति का सम्बन्ध**—मिस्र की राजनीति में, धर्म का प्रभाव बहुत अधिक रहा। पुजारियों का राजनीति के क्षेत्र में काफी हस्तक्षेप रहा। इस सम्बन्ध में एच० ई० वार्न्स ने लिखा है, "मिस्र के धर्म ने मिस्री राजनीति में प्रमुख भाग लिया। धर्मगुरुओं का वर्ग बहुत शक्तिशाली था और उसका मिस्र के जीवन पर गहरा असर था। शक्तिशाली राजाओं के काल में वे राजा के अधीन थे परन्तु जब धर्मगुरुओं की शक्ति विभाजन कार्यों में लगती थी तब केन्द्रीय शक्ति कमजोर होती थी। यह धर्मगुरु वर्ग फराओं की शक्ति को क्षीण करने और अपनी शक्ति बढ़ाने के लिये किसी भी आन्दोलन से सहयोग करने के लिये तत्पर रहते थे।"

दर्शन

मिस्र के पिरामिड युग के दर्शन का अध्ययन 2 रूपों में किया जा सकता है—(1) नैतिक दर्शन, (2) राजनीतिक दर्शन।

(1) **नैतिक दर्शन**—पिरामिड युग के मिस्रियों के दार्शनिक विचार "मेम्फिस के धर्मशास्त्र" में देखने को मिलते हैं। इस ग्रन्थ मे मेम्फिस के देवता टाः का आवाहन करते हुए उसे देवताओं का हृदय और जीभ कहा गया है, दूसरे शब्दों में टाः को जगत का कारण और निर्माता माना गया है।

नैतिक दर्शन का केन्द्र-विन्दु "मात का सिद्धान्त" माना जाता है। "मात" शब्द का क्या अर्थ है इसके विषयमें कुछ नहीं कहा जा सकता। कहीं इसका अर्थ न्यायहोता है और कहीं नियम, कहीं व्यवस्था और कहीं सत्य। इस शब्द का प्रयोग सामाजिक, वैधानिक आदि अनेक अर्थों में भी हुआ है। कदाचित भारतीय वैदिक ऋषियों के 'ऋत' के समान ही इसका प्रयोग हुआ था। मिस्र के निवासियों के अनुसार समस्त देवता "मात्" पर निर्भर हैं। समस्त दैवी शक्तियां उसकी आज्ञानुसार चलती हैं। इसके फलस्वरूप समाज में न्याय और सत्य की प्रतिष्ठा होती है।

(2) **राजनीतिक दर्शन** मिस्र के राजनीतिक दर्शन के अनुसार संसार की सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था में पूर्ण परिवर्तन नहीं होता। परिवर्तन होता है, परन्तु फिर वही अवस्था आ जाती है। जैसे दिन, रात में बदलता है और रात के बाद पुनः दिन आ जाता है। संसार का सृजन भी एकाकी घटना है। संसार की उत्पत्ति के समय सूर्य देव "रे" ने अव्यवस्था को समाप्त करके देव-व्यवस्था "मात्" की स्थापना की थी। सूर्य देवता के उत्तराधिकारी सम्राट फराओं ने इस व्यवस्था को बनाने का निरन्तर प्रयत्न किया। उनके अनुसार उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी का भी कार्य करने का अधिकार नहीं है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मिस्र का दर्शन मिस्र की राजनीतिक

व्यवस्था के अनुकूल था । धर्म और दर्शन ने ही मिस्र को राजनीतिक चेतना प्रदान की
और उसकी संस्कृति का बहुत अधिक विकास हो सका ।

शिक्षा एवं साहित्य

(1) शिक्षा—पिरामिड युग में शिक्षा एवं साहित्य के क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति हुई
थी । मिस्रवासी लिपि ज्ञान से भी परिचित थे । आरम्भ में वहां चित्राक्षर लिपि का
प्रयोग होता था जिसमें कुल मिलाकर 2000 चित्र थे । कालान्तर में वहां "हाइरेटिक"
लिपि का विकास हुआ । इस प्रकार की लिपि का प्रयोग पत्रादि लिखने के लिये किया
जाता था । चित्राक्षर लिपि का प्रयोग स्मारकों पर लेख उत्कीर्ण करने के लिये किया
जाता था । 8 वीं शताब्दी ई० पूर्व के लगभग मिस्र में "डिमॉटिक" लिपि का प्रयोग भी
होने लगा जो एक प्रकार की शार्टहैण्ड लिपि थी । लिपि के साथ ही मिस्र निवासियों ने
लिखने पढ़ने की सामग्री का भी समुचित प्रबन्ध किया था । उन्होंने पैपिरस नाम के वृक्ष से
कागज का निर्माण किया था । वे नरकुल की लेखनी बनाते थे ।

पिरामिड युग में समस्त मिस्र में पाठशालाओं का जाल सा बिछा हुआ था ।
प्रारम्भिक शिक्षा मंदिरों में स्थित पाठशालाओं में दी जाती थी और पुजारी शिक्षण
कार्य करते थे । आगे शिक्षा प्रदान करने के लिये सरकार की ओर से पाठशालायें
खोली गई थीं और योग्य विद्यार्थियों के लिये निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गई थी ।
लेखन कार्य पर अधिक बल दिया जाता था और विद्यार्थियों को चित्राक्षर और द्रुत
दोनों ही लिपियाँ सिखाई जाती थीं ।

(2) साहित्य—पिरामिड युग का साहित्य अधिकतर धार्मिक और दार्शनिक
है । इस युग में महाकाव्यों, नाटकों और साहित्यिक आख्यानों की रचना नहीं हुई ।
"पिरामिड टेक्स्ट्स" इस युग की प्रमुख रचना है । इसमें मिस्री सभ्यता की झांकी सुर-
क्षित है । इसके साथ ही दर्शनशास्त्र की भी कुछ कृतियाँ प्राप्त होती हैं । केगेम्ने तथा
टाः होतेष आदि मंत्रियों ने अपने ज्ञान को लिपिवद्ध किया था । यह कृतियाँ नीति ग्रन्थ
कहलाती हैं । इनके उपलब्ध संस्करण मध्य-राज युग के पूर्व के नहीं हैं और इसीलिये
इनका अध्ययन अगले अध्याय में किया गया है ।

विज्ञान

पिरामिड युग में विशुद्ध विज्ञान का प्रकाश भी नहीं है । मिस्रवासी विज्ञान के
केवल उन्हीं क्षेत्रों में रुचि रखते थे जिनका जीवन में व्यावहारिक महत्व होता था परन्तु
उन्होंने विज्ञान के क्षेत्र में अत्यधिक उन्नति थी । नक्षत्रों और गृहों का भेद उन्होंने
आकाश का मानचित्र बनाकर मालूम कर लिया था । सौर पंचांग का आविष्कार भी
हो गया था । वे जोड़, घटाना, भाग, अच्छी तरह जानते थे परन्तु गुणा से अपरि-
चित थे ।

चिकित्साशास्त्र के क्षेत्र में उन्होंने प्रर्याप्त उन्नति कर ली थी और चिकित्सकों का एक वर्ग के रूप में जन्म हो चुका था। यद्यपि चिकित्साशास्त्र के क्षेत्र में उनके कुछ नुस्खे तो अधिक उपयोगी थे परंतु अंधविश्वासों और ओझाओं की लोकप्रियता के कारण इस क्षेत्र में बहुत अधिक प्रगति नहीं हो पायी। उस युग में मिस्र के निवासी मानव-शरीर संरचना से विशेष परिचित नहीं थे और उन्हें भौतिक एवं रसायन शास्त्र का भी ज्ञान नहीं था।

कला

(1) **वास्तुकला**—मिस्र के निवासियों की वास्तुकला का प्रत्यक्ष रूप उनके द्वारा बनाये गये पिरामिडों में देखने को मिलता है। कुछ विद्वानों का मत है कि इन पिरामिडों का निर्माण राज्य की आर्थिक व्यवस्था बिगड़ने के कारण राजाओं द्वारा जनता को कार्य में लगवाने के लिये करवाया गया था परंतु ये मत उचित नहीं प्रतीत होते। वास्तव में पिरामिडों की रचना राज्य और फराओं की अनश्वरता और गौरव को व्यक्त करने के लिये किया गया था अपने इस उद्देश्य में मिस्रवासी अवश्य ही सफल रहे। मिस्र के ये पिरामिड संसार के 7 आश्चर्यों में से एक माने जाते हैं।

आरम्भ में पिरामिडों के निर्माण में कच्ची ईंटों का प्रयोग किया जाता था परंतु बाद में पाषाण-खण्डों का निर्माण होने लगा। 2980 ई० पूर्व में सीढ़ीदार पिरामिड का निर्माण हुआ। उसके कुछ ही समय बाद जिन पिरामिडों का निर्माण हुआ वे अवश्य ही प्रशंसनीय हैं। 2900 ई० पूर्व तक जब खिजेह में खुफू के सुप्रसिद्ध "विशाल पिरामिड" का निर्माण प्रारम्भ हुआ तो मिस्र के निवासी इस कला में दक्ष हो चुके थे। हेरोडोट्स का मत है कि इस पिरामिड का निर्माण 1 लाख व्यक्तियों ने 20 साल में किया था। 420 फुट ऊँचा और 755 फुट लम्बा यह पिरामिड 13 एकड़ भूमि में बना हुआ है और तत्कालीन मिस्री कला का ज्वलंत प्रमाण है।

पिरामिडों के अतिरिक्त इस युग में अनेक भवनों का निर्माण हुआ था। स्तम्भों की सहायता से बड़े-बड़े कक्ष और छते बनाने में मिस्र के कलाकार अत्यन्त निपुण थे परंतु तत्कालीन मिस्र की कला के उज्ज्वल प्रमाण उनके पिरामिड ही हैं। मिस्र के पिरामिडों के विषय में जे० ए० स्वेन ने लिखा है :—

"The tremendous task involved in building an structure of such proportion without modern machinery is a marvel to civilised man."

—J. A. Swain.

इन पिरामिडों के निर्माण के उद्देश्यों के विषय में एक विद्वान ने ठीक ही लिखा है—"इनके निर्माण का उद्देश्य तत्कालीन राज्य के गौरव को सदैव के लिए

सुरक्षित रखना था।'" इसमें किंचित मात्र भी संदेह नहीं कि मिस्र के इन विशाल पिरामिडों ने उस युग को सदैव के लिये स्मरणीय बना दिया है।

(2) **मूर्ति कला**—पिरामिड युग में पाषाण और धातु दोनों ही प्रकार की मूर्तियाँ बनीं। अनेक रिलीफ चित्र भी बनाये गये। पत्थर की बनी मूर्तियों में विशालता, सुदृढ़ता और रूढ़िवादिता के दर्शन होते हैं। राजाओं की मूर्तियां अधिकतर बैठे हुई बनाई गई। इन बैठी मूर्तियों में खेफ्रे और हेमसेत की मूर्तियां, जो क्रमशः काहिरा और लूव्रे संग्राहलयों में सुरक्षित हैं, विशेष प्रसिद्ध हैं। खड़ी मुद्रा की मूर्तियों में रानोफर पुजारी की मूर्ति उल्लेखनीय है। खेफ्रे के पिरामिड के समक्ष स्थित 'विशाल स्फिंक्स' नामक मूर्ति अत्यन्त भव्य है। इस मूर्ति का शरीर सिंह का है और सिर फराओ खेफ्रे का।

मिस्र में मूर्तियों को या यथार्थिक भाव प्रदान करनेके लिये उन्हें स्वाभाविक रंगों में रंगा जाता था और आंखें पत्थरी विल्लौर से बनाई जाती थीं। परन्तु इतना होने पर भी ये मूर्ति स्वाभाविक नहीं प्रतीत होती हैं। मूर्तियों में भावहीनता के दर्शन होते हैं। उनमें विशालता और गौरव तो है परन्तु भावों का प्रदर्शन नहीं होता। दूसरी ओर साधारणजनों की मूर्तियाँ यथार्थ और सुन्दर हैं। इन मूर्तियों में "शेख की मूर्ति' और 'लिपिक की मूर्ति' अत्यन्त सजीव और सुन्दर हैं।

पिरामिड युग के कलाकारों ने धातु की मानव मूर्तियाँ भी बनाई। इन मूर्तियों में पेपी प्रथम की काठ के ऊपर ताम्रपत्र चढ़ा कर बनाई गई मूर्ति अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त 'हियराकोनपोलिस' के पवित्र 'श्येन की प्रतिभा' भी उल्लेखनीय है। इन दोनों ही मूर्तियों की आँखें ज्वाला-कांच की बनाई गई हैं।

पिरामिड युग के रिलीफ चित्रों में अस्वाभाविकता के दर्शन होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस युग में मोटाई और गोलाई दिखाने में मिस्री कलाकारों का कठिनाई का अनुभव होता था। इस अस्वाभाविकता के होने पर भी मिस्र के रिलीफ चित्र देखने योग्य हैं।

(3) **चित्रकला** - मिस्र के कलाकार अपने रिलीफ चित्रों को अनेक रंगों में रंगते थे। परन्तु पिरामिड युग तक उनकी चित्रकला अधिक उन्नति नहीं कर सकी थी हां, यह अवश्य है कि मिस्र के चित्रकार मूर्तिकारों को अपेक्षा परम्पराओं के बन्धन में जकड़े हुये नहीं थे और वे स्वतन्त्र रूप से चित्र बनाते थे।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पिरामिड युग में मिस्र ने पर्याप्त सांस्कृतिक उन्नति की थी। उनकी वास्तुकला संसार में अपनी भव्यता के लिये आज भी प्रसिद्ध है और मिस्र के पिरामिड संसार के 7 आश्चर्यों में से हैं। ये पिरामिड

इतना समय व्यतीत हो जाने के बाद भी अपने गौरव को प्रदर्शित कर रहे हैं। अरब की एक कहावत है कि "समस्त संसार समय से पीड़ित है परन्तु समय पिरामिड से पीड़ित है।"

"All world fears time, but the time fears the Pyramids."

सारांश

मिस्र नील नदी के किनारे बसा है। इसके उत्तर में भूमध्य-सागर, पश्चिम में लीबिया, के रेगिस्तान, दक्षिण में नील के महा प्रपात और पूर्व में लालसागर है। मिस्र को 'नील का बरदान' कहते हैं। प्रागैतिहासिक युग में यहां लीबियन और सेमेटिक जातियों के साथ ही एक अन्य जाति भी निवास करती थी।

मिस्र के राजनीतिक इतिहास को 4 भागों में बाँटा जा सकता है। इस अध्याय में हमने प्राग्वंशीय युग और पिरामिड युग का वर्णन किया है। 5000 ई० पूर्व से लेकर 3200 ई० पूर्व तक के काल को प्राग्वंशीय युग के नाम से पुकारा जाता है। इस युग में मिस्र वालों ने थोड़ी बहुत उन्नति की थी। तत्पश्चात् पिरामिड युग का प्रारम्भ होता है। इस युग में मिस्र ने पर्याप्त उन्नति की। पिरामिड युग को शासन-व्यवस्था में सम्राट या फराओ का अत्यधिक महत्व था। वह निरंकुश होता था। उसको सहायता देने के लिये प्रधानमंत्री और कोषाध्यक्ष होते थे। सम्पूर्ण मिस्र को 50 प्रान्तों में विभाजित किया गया था और न्याय-व्यवस्था अच्छी नहीं थी। समाज में 5 वर्ग थे—राज्य परिवार, सामन्त, पुजारी, मध्यम वर्ग और दास। प्रथम तीन वर्गों की स्थिति अच्छी थी, परन्तु दासों की दशा बहुत गिरी हुई थी। वर्ग विभाजन कठोर नहीं था। ऊँचे वर्ग और निम्न वर्ग के रहन-सहन में बड़ा अन्तर था। मिस्र के निवासी अत्यन्त विलासितामय जीवन व्यतीत करते थे। वह अपनी सौंदर्य-सज्जा का विशेष ध्यान रखते थे। लोगों का मुख्य उद्यम कृषि था परन्तु साथ ही पशु-पालन, आखेट, और विभिन्न प्रकार के उद्योगों का भी प्रचलन था। व्यापार भी उन्नत दशा में था।

पिरामिड युग के निवासी बहु-देववादी थे और वे सूर्य को विशेष महत्व प्रदान करते थे। मन्दिरों को देव-गृह माना जाता था और पूजा-विधि उसी प्रकार की थी जैसी भारत के हिन्दू-धर्म में प्रचलित है। पशु-पूजा और वृक्ष पूजा भी प्रचलित थी। कर्म-काण्डों का बोल-बाला था और जन्तर-मन्तर को भी मान्यता प्राप्त थी। पुजारी वर्ग का बहुत अधिक महत्व था। मिस्र के निवासी पुनर्जन्म में विश्वास करते थे और उनका मत था कि 'का' नाम की शक्ति मनुष्य के साथ जीवन पर्यन्त तो रहती ही है साथ ही वह मरने पर भी अलग नहीं होती। यही कारण था कि वे मृतकों के साथ भोजन-सामग्री आदि रख देते थे। 'पिरामिड टेक्स्ट्स' में मृतकों की दुनिया, पाताल और यारुलोक का भी उल्लेख किया गया है। मिस्र की राजनीति में भी धर्म का प्रभाव था।

पिरामिड युग के मिस्रियों के धार्मिक विचार 'मेम्पिस के धर्म-शास्त्र' में देखने को मिलते हैं। 'मात् का सिद्धान्त' प्रचलित था। सम्राट को सूर्य देवता रे का उत्तराधिकारी माना जाता था।

मिस्रवासी चित्राक्षर—लिपि हाइरेटिक और डिमॉटिक-लिपि का प्रयोग करते थे। समस्त मिस्र में पाठशालाओं का जाल था। योग्य विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी। लेखन-कार्य पर अधिक बल दिया जाता था। इस युग के साहित्य में, 'पिरामिड टेक्स्ट्स' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। विज्ञान के क्षेत्र में इस युग में विशेष उन्नति नहीं हुई थी। मिस्रवासी केवल व्यावहारिक विज्ञान को मान्यता प्रदान करते थे। पंचाँग का आविष्कार हो गया था और नक्षत्रों और गृहों के भेदों के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त हुई थी। चिकित्सा शास्त्र में उन्होंने पर्याप्त उन्नति की थी परन्तु साथ ही जन्तर-मन्तर और ओझाओं को भी मान्यता दी गई थी।

पिरामिड युग अपनी वास्तुकला के लिये विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मिस्र के पिरामिड संसार के 7 आश्चर्यों में से एक हैं। प्रारम्भ में पिरामिड कच्ची ईंटों के बनते थे परन्तु बाद में वे पाषाण खंडों से बनने लगे थे। पिरामिडों में खुफू का पिरामिड अत्यन्त प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि इस पिरामिड का निर्माण एक लाख व्यक्तियों ने 20 वर्षों में किया था। 420 फुट ऊंचा और 755 फुट लम्बा यह पिरामिड 13 एकड़ भूमि में बना हुआ है और तत्कालीन मिस्र की वास्तुकला का ज्वलन्त उदाहरण है। वास्तुकला के साथ ही मूर्ति कला का भी इस युग में विकास हुआ। पत्थर की बनी मूर्तियों में खेफ्रे और हेमसेत की मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं। 'शेख की मूर्ति' और 'लिपिक की मूर्ति' अत्यन्त प्राणवान हैं परन्तु राजाओं की मूर्तियों में भावहीनता है। धातु मूर्तियों में पेपो प्रथम की मूर्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है। रिलीफ चित्रों का भी निर्माण हुआ था और चित्रकला परम्पराओं के बन्धनों में जकड़ी हुई नहीं थी।

पिरामिड युग में पर्याप्त सांस्कृतिक उन्नति हुई थी और यह युग अपने पिरामिडों के फलस्वरूप सदैव ही स्मरणीय रहेगा।

———

अध्याय | 19

सामन्तवादी या मध्य युग

प्रश्न—मध्य-राज्य युग की संस्कृति और सभ्यता के विषय में आप क्या जानते हैं ?

What do you know about the culture and civilization of the middle ages?

2475 ई० पूर्व में 6ठे वंश के पतन के पश्चात् मिस्र के प्राचीन राज्य और पिरामिड युग का भी अन्त हो गया। इसके बाद लगभग 300 वर्ष तक मिस्र में अराजकता की स्थिति रही। 7वें, 8वें, नवें, दसवें वंशों के शासन-काल में मिस्र की कोई विशेष उन्नति नहीं हुई। मिस्र के दसवे वंश का पतन 2160 ई० में हुआ। 11वां वंश 2160 से लेकर 2000 ई० पूर्व तक चला। 12वें वंश की स्थापना 2000 ई० पूर्व में हुई। इस युग का शासन 1788 ई०पू०तक चला। इस युग का संस्थापक एमेनेम्हेत प्रथम माना जाता है। इसके पश्चात् इसके वंशजों ने काफी समय तक राज्य किया। इसके उत्तराधिकारियों में शेशोसुत का नाम उल्लेनीय है। उसने नील नदी को एक नहर द्वारा लाल सागर से मिलवाया था।

शासन-व्यवस्था

(1) सामन्तवादी व्यवस्था—मिस्र के इतिहास में 11वें और 12वें वंश का शासन-काल मध्य-राज्य-युग के नाम से पुकारा जाता था। इस युग में मिस्र में मध्यकालीन योरोप की भांति सामन्तवाद का प्रचलन रहा। मिस्र छोटे-छोटे अनेक राज्यों में विभाजित हो गया और राज्यों में सामन्त शासन करने लगे।। 12 वें वंश के शासन-काल को छोड़कर मध्य राज्य युग में मिश्री सामन्त और जागीरदार अनियंत्रित रहे। वे फराओ की भांति ही सेना रखते थे और अपनी जागीरों के प्रधान धर्माधिकारी, सेनापति एवं न्यायाधीश होते थे।

(2) फराओं की स्थिति—पिरामिड युग की अपेक्षा मध्य-युग में फराओ अत्यन्त दुर्बल हो गया। कुछ नियम और परम्पराएं इस प्रकार की थीं वह सामन्तों पर थोड़ा-बहुत नियंत्रण रख पाता था अन्यथा फराओ का उन पर नियन्त्रण बिल्कुल ही न रह पाता। बड़े-बड़े सामन्तों के पास दो प्रकार की जागीरें थीं। एक प्रकार की जागीर

उत्तराधिकार में प्राप्त होती थी और दूसरी राजकीय होती थी जिसका स्वामी फराओ माना जाता था। ये भूमि,सामन्त तभी प्राप्त करते थे जब फराओ उनके स्वामित्व को मान्यता प्रदान कर देता था। दूसरी प्रथा यह थी कि प्रत्येक जागीर के हितों और वहाँ पाले जाने वाले पशुओं की देख-रेख के लिए कुछ केन्द्रीय पदाधिकारी नियुक्त रहते थे। ये केन्द्रीय पदाधिकारी भी छोटे जागीरदारों पर नियंत्रण रखते थे। तीसरा नियंत्रण जागीरदारों पर यह होता था कि इन जागीरदारों को केन्द्रीय सरकार को वार्षिक कर भेजना होता था।

(3) आय के साधन—मध्य-राज्य युग में फराओ की आय पिरामिड युग को अपेक्षा बहुत कम हो गई थी। सामन्त बहुत कम कर देते थे और सामन्तों की जागीरें बढ़ जाने के फलस्वरूप भी फराओ की आय कम हो गई। अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिये ही मध्य-राज्य युग के राजाओं ने नूबिया का सोने की खानों और अन्य स्थानों में बिखरे हुये बहुमूल्य पत्थरों की खानों से लाभ उठाने का प्रयत्न किया। पुन्ट के साथ उनके व्यापारिक सम्बन्ध बहुत अधिक थे। सीरिया और फिलिस्तीन पर आक्रमण करके भी उन्होंने अपनी आय को बढाया था।

(4) शासन-व्यवस्था में परिवर्तन—मध्य-राज्य युग की शासन-व्यवस्था पिरामिड युग की शासन व्यवस्था के समान ही थी। परन्तु इसमें छोटे-बड़े परिवर्तन किये गये। इस युग में प्रधानमंत्री का स्थान फराओ से बड़ा था और वह किसी बड़ी जागीर का स्वामी होता था। प्रधानमंत्री पद अब जागीरदारों को ही प्राप्त होता था। प्रधानमंत्री के नेतृत्व में 'तीस का सदन' (House of thirty) नाम की संस्था का निर्माण हुआ था। यह संस्था न्याय-व्यवस्था से सम्बन्धित थी। तीसरा परिवर्तन यह हुआ कि अब फराओ व्यक्तिगत सुरक्षा और उपद्रवी सामन्तों को नियन्त्रण में रखने के लिये अपने पास एक वेतन-भोगी स्थायी सेना रखता था। यद्यपि यह सेना बहुत कम होती थी परन्तु फिर भी फराओ, उसके राजप्रसादों और दुर्गों की रक्षा करती थी।

सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था

मध्य-राज्य युग की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था भी पिरामिड युग को भाँति ही थी। केवल उसमें थोड़े से परिवर्तन हुये थे। इस युग में सामन्त समाज सबसे प्रतिष्ठित वर्ग हो गया था और सामन्तों की गति-विधि का केन्द्र राजधानी न होकर अपनी-अपनी जागीरें और प्रान्तीय नगर थे। इस युग में मध्यम वर्ग अपेक्षाकृत अधिक प्रतिष्ठित और समृद्ध हो गया था। धीरे-धीरे राजपुरुष वर्ग अस्तित्व में आने लगा था। लिपिकों के पेशे को बहुत अधिक सम्मानित माना जाता था। कृषक और दास खेती करते थे और मौका मिलने पर वे मजदूरी भी करते थे।

धर्म और दर्शन

मध्य-राज्य युग में पिरामिड युग की अपेक्षा धर्म और दर्शन के क्षेत्र में भी कुछ परिवर्तन हुये थे। यहां उनको चर्चा हम संक्षेप में कर रहे हैं :—

(1) **'रे' की प्रतिष्ठा में वृद्धि**—मध्य-राज्य युग में पिरामिड युग की अपेक्षा सूर्य देव रे का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया। अन्य देवताओं के पुजारी भी अपने देवताओं के नाम के साथ रे का नाम जोड़ने लगे। ऐसा प्रतीत होता है कि मध्य-राज्य युग में सूर्य देवता की एकेश्वरवादी प्रवृत्ति भी पनपी।

(2) **ओसेरिस की प्रतिष्ठा में वृद्धि** - मध्य राज्य युग में रे के साथ ही ओसेरिस की प्रतिष्ठा में भी वृद्धि हुई। रे के सम्मान में वृद्धि का कारण मूलतः राजनीतिक था परन्तु ओसेरिस की प्रतिष्ठा का कारण उसकी साधारण जनों में लोकप्रियता थी। साधारण जनता ओसेरिस के प्रति अत्यधिक श्रद्धा रखती थी।

(3) **परलोकवादी विचारधारा में अन्तर**—मध्य-राज्य युग में पिरामिड युग की अपेक्षा परलोकवादी विचारधारा में भी कुछ अन्तर आ गया। पिरामिड युग में ओसेरिस को परलोक का न्यायाधीश स्वीकार किया गया था परन्तु मध्य-राज्य युग में उसका महत्व और अधिक बढ़ गया और वही परलोकवाद का मूलाधार बन गया। मध्य राज्य युग में यह मान्यता प्रचलित हुई कि प्रत्येक मृतात्मा ओसेरिस के न्यायालय में जाती है और ओसेरिस अपने 42 न्यायाधीशों की सहायता से उसके कर्मों की जाँच करता है। विभिन्न ढङ्गों से उसकी जाँच होती है। जो मृतात्मा इस जाँच में खरी उतरती है उसे यारुलोक में स्वर्गीय सुख प्राप्त होता है। परन्तु जो खरी नहीं उतरती उसे घोर यातनाएँ सहन करनी होती हैं। मध्य-राज्य युग में पारलौकिक जीवन को भी विभिन्न प्रकार के सङ्कटों से पूर्ण माना गया है। परलोक में भी मृतात्मा को सर्प, घड़ियाल आदि भयभीत करते हैं। यही कारण था कि इस युग में मृतक की शव-पेटिका पर अनेक जादुई मन्त्र लिख दिये जाते थे।

(4) **धर्म में सदाचार का स्थान**—मध्य-राज्य युग में धर्म में सदाचार को विशेष महत्व प्रदान किया गया था। कर्मवाद को मान्यता प्रदान की गई और यह कहा गया कि जो व्यक्ति जैसा कर्म करता है उसी के अनुसार उसे फल मिलता है। फलस्वरूप व्यक्ति को अच्छे कर्म करना चाहिये।

साहित्य

मध्य-राज्य युग में साहित्य और दर्शन के क्षेत्र में भी विशेष उन्नति हुई। इस युग का कथा साहित्य अत्यन्त उच्चकोटि का था। 'सिनुहे' नामक सामन्त की कथा अत्यन्त लोकप्रिय है। इसी प्रकार एक 'नाविक की कहानी' भी अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस

युग में नीति-साहित्य भी बहुत अधिक मात्रा में लिखा गया। इस नीति-साहित्य में 'टः होतेप की नीति' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वह 5वें वंश के फराओ का मन्त्री और मेम्फिस का गवर्नर था। वृद्धावस्था में उसने अपने पुत्र को सुख देने के लिये अपने अनुभवों को 42 पैराग्राफों में लिपिबद्ध किया। उसके यह अनुभव ही नैतिक आदर्श बने। नीति-ग्रन्थों में 'मुखर कृषक का आवेदन' भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 'एमेनेम्हेत के उपदेश' भी अपना अलग महत्व रखते हैं। इन उपदेशों से यह पता चलता है कि मध्य-राज्य युग में मिस्रवासियों का जीवन निराशावाद की ओर अधिक झुका हुआ था। मिस्री निराशावाद की सबसे प्रभावशाली अभिव्यक्ति 'वीणावादक के गान' में हुई है। 'इपुवेर की भविष्यवाणी' यहूदी बाइबिल की याद दिलाती है। इसका भी अपना अलग महत्व है।

कला

(1) वास्तु-कला—मध्य-राज्य युग की वास्तु-कला के विषय में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है क्योंकि उस युग के भग्नावशेष प्राप्त नहीं होते। हेलियोपोलिस आदि नगरों में बनवाये गये मन्दिरों के चिह्न भी प्राप्त नहीं होते। केवल कुछ गुहा-समाधियाँ ही प्राप्त हुई हैं। यद्यपि इस युग में मस्तबाओं का भी निर्माण हुआ परन्तु गुहा-समाधियों का अधिक महत्व है। इस युग के पिरामिड बहुत छोटे और अधिकतर ईंटों के बनते थे। हवारा का पिरामिड विशेष प्रसिद्ध है।

(2) मूर्ति-कला—मध्य-राज्य युग की मूर्ति-कला प्राचीन राज्य युग और पिरामिड काल की अपेक्षा अधिक उन्नत दशा में थी। एमेनेम्हेत की 50 फुट ऊँची मूर्ति इस युग की मूर्ति-कला का सुन्दर उदाहरण है।

(3) अन्य कलाएँ—मध्य-राज्य युग में स्वर्ण की कला का विकास भी हुआ। राजकुमारियों और रानियों के अनेक आभूषण और मुकुट प्राप्त हुये हैं। इनमें से कुछ आभूषण तो ऐसे हैं जो आज के युग में भी नहीं बनाये जा सकते। इस युग की चित्र-कला भी लगभग उसी प्रकार की है जिस प्रकार की पिरामिड युग की चित्र-कला है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सभ्यता और संस्कृति की उन्नति की दृष्टि से मध्य-राज्य युग विशेष प्रसिद्ध नहीं है। सत्य तो यह है कि मिस्र के इतिहास में पिरामिड युग को जो गौरव प्राप्त है वह मध्य-राज्य युग को नहीं प्राप्त है। पिरामिड युग में बने हुये मिस्र के पिरामिड आज भी संसार के 7 आश्चर्यों में से गिने जाते हैं जबकि मध्य-राज्य युग के पिरामिडों को यह गौरव प्राप्त नहीं है।

सारांश

2475 ई० में पिरामिड युग समाप्त होता है। इसके बाद मिस्र में 300 वर्षों तक घोर अराजकता रही। 12वें वंश के शासन में मिस्र में महान परिवर्तन हुआ। 11वें और 12वें वंश का शासन-काल मध्य-राज्य युग के नाम से पुकारा जाता है। इस युग में सामन्तवादी प्रथा पनपी और फराओ के अधिकारों में कमी आई। मिस्रवासियों के सामाजिक और आर्थिक जीवन में भी कुछ परिवर्तन हुये। रे और ओरेसिस देवताओं की प्रतिष्ठाओं में वृद्धि हुई। पारलौकिक जीवन के विचारों में अन्तर आया और धर्म में सदाचार को विशेष स्थान प्राप्त हुआ। इस युग में साहित्य के क्षेत्र में विशेष उन्नति हुई। 'सिनुए नामक सामन्त की कथा', 'टः होतेप की नीति', 'एमेनेम्हेत का गान' और 'इपूवेर की भविष्यवाणियाँ' आदि इस युग के प्रसिद्ध साहित्यिक ग्रन्थ हैं।

वास्तु-कला के क्षेत्र में मध्य-राज्य युग को वह गौरव प्राप्त नहीं है जो पिरामिड युग को प्राप्त है। एमेनेम्हेत की 50 फुट ऊँची मूर्ति इस युग की मूर्ति-कला का सुन्दर उदाहरण है। मूर्ति-कला के साथ ही स्वर्णकार की कला और चित्र-कला का विकास इस युग में हुआ।

— —

अध्याय | 20

साम्राज्य युग

प्रश्न 1—मिस्र के साम्राज्य युग की सांस्कृतिक उन्नति के विषय में आप क्या जानते हैं ?

What do you know about cultural progress of Egypt in the Imperialistic age ?

प्रश्न 2—अखनाटन के धार्मिक विचारों का वर्णन कीजिये ।

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

Describe the religious beliefs of Akhnatan.

(Gorakhpur University)

राजनीतिक स्थिति

मिस्र के 12वें राज्यवंश का पतन 1788 ई० पूर्व में हुआ । इसके बाद बहुत समय तक अराजकता की स्थिति बनी रही । 18वें वंश का प्रथम सम्राट अहमास प्रथम था । वह बड़ा योग्य शासक था । उसने विस्तारवादी नीति को अपनाया । सबसे पहले उसने सीरिया और फिलस्तीन पर आक्रमण किया । उसके पुत्र थुट्मोज प्रथम ने भी उसी की नीति का अनुसरण किया और अपनी सत्ता कार्शमिस तक स्थापित की । थुट्मोज प्रथम के बाद उसकी पुत्री हतशेपसुत गद्दी पर बैठी । यह संसार की सर्वप्रथम महिला थी जिसने अपने देश की बागडोर अपने हाथ में सँभाली थी । उसने स्त्रियों की वेशभूषा का परित्याग करके पुरुष की वेशभूषा और दाढ़ी-मूछ धारण की । वह अपनी वीरता के लिये बहुत प्रसिद्ध थी । वह बड़ी लोकप्रिय थी । उसके शासन-काल में व्यापार को भी बढ़ावा मिला ।

हतशेपसुत की मृत्यु के पश्चात् 1479 ई० पूर्व में थुट्मोज तृतीय गद्दी पर बैठा । वह साम्राज्यवादी शासक था । उसने सीरियन, फोनेशियन, हिट्टाइट, असीरियन और केन्नाइट जातियों को जीत लिया । इसका साम्राज्य समस्त भूमध्य-सागर प्रदेश में फैला हुआ था । 1411 ई० पू० में आमेनोहोतेप तृतीय गद्दी पर बैठा । इसके काल में अनेक प्रासादों और देवालयों का निर्माण हुआ है । तत्पश्चात् 1375 ई० पू० में इसका पुत्र आमेनोहोतेप चतुर्थ सम्राट हुआ । वह एक शांति-प्रेमी शासक था । इसके शासन-

काल में मिस्र में बहुदेववाद की प्रथा प्रचलित हुई। इसके पूर्व के लोग एकेश्वरवादी थे। इसके बाद ही मिस्र के इस वंश का अन्त हो गया।

उन्नीसवें वंश अथवा दूसरे साम्राज्य का संस्थापक तूतेनखामेन था। उसका सेनापति हमहाब था जो बड़ा योग्य था। इसके उत्तराधिकारियों में सेती प्रथम और रेमेसिस द्वितीय के नाम प्रमुख हैं। रेमेसिस द्वितीय भी बड़ा साहसी और बलवान शासक था। उसने फिलस्तीन पर विजय प्राप्त करके हित्तियों के विरुद्ध 'देश का युद्ध' लड़ा था। 1269 ई० पू० में हित्तियों ने सन्धि कर ली और इसने लक्सोर के मन्दिर के निर्माण कार्य को बढ़ावा दिया। करनाक के मन्दिर के पूर्व कक्ष को पूरा करवाया और अनेक मूर्तियों का निर्माण करवाया। 67 वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हो गई।

रेमेसिस द्वितीय के पश्चात् उन्नीसवें राजवंश का पतन बड़ी शीघ्रता से हो गया। 1205 ई० पूर्व में सल्नांख ने बीसवें वंश की स्थापना की। इसके उत्तराधिकारी रेमेसिस तृतीय ने भी मिस्र की ख्याति को बढ़ाया। 18वें से लेकर 20वें वंश के शासन तक साम्राज्यवादी युग चला।

बीसवें वंश के पश्चात् इक्कीसवें वंश की स्थापना 1090 ई० पू० में हुई। 21वें वंश के शासन-काल के पश्चात् 945 ई० पू० में मिस्र में लीबियनों का अधिकार हो गया जो 712 ई० पू० तक चलता रहा। इसके पश्चात् इथिओपियनों ने 663 ई० पू० तक मिस्र में राज्य किया। 670 ई० पू० से 663 ई० पू० तक मिस्र असीरियनों के अधीन रहा। 663 ई० में साम्तिक ने असीरियनों को भगा दिया और उसके वंश का शासन बहुत समय तक चला। नीको द्वितीय के शासन-काल में एशिया पर भी आक्रमण किए गये। इसके शासन-काल में मिस्र व्यापार का बड़ा भारी केन्द्र बन गया। इसका पतन 525 ई० पू० में हुआ और ईरान के हखामशी सम्राट ने मिस्र को अपने राज्य में मिला लिया। मिस्र अब परतन्त्र राज्य था।

ईरानियों के पश्चात् 332 ई० पू० से 48 ई० पू० तक मिस्र पर यूनानियों ने राज्य किया और इसके पश्चात् 30 ई० पू० में मिस्र रोम का एक प्रान्त बन गया।

शासन-व्यवस्था

(1) फराओ की प्रतिष्ठा में वृद्धि—साम्राज्यवादी युग में फराओ की प्रतिष्ठा में बहुत अधिक वृद्धि हुई। सामन्तवादी युग में सामन्तों के प्रभाव के फलस्वरूप फराओ की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। परन्तु इस युग में उसकी स्थिति में सुधार हुआ और मध्य-राज्य युगीन सामन्तवाद समाप्त हो गया। पुराने सामन्त फराओ के सेनापति या सभासद-मात्र रह गये और फराओ का सेना पर पूर्ण नियन्त्रण हो गया। वही साम्राज्य की शासन-व्यवस्था के प्रत्येक अंग को नियंत्रित करने लगा।

(2) मन्त्री की स्थिति—फराओ को उसके शासन में सहायता देने के लिए मंत्री की नियुक्ति की जाती थी। साम्राज्य युग में यह पद महत्वपूर्ण बना रहा लेकिन राज्य की गतिविधि का क्षेत्र बढ़ने के फलस्वरूप। 18वें वंश के फराओ ने एक के स्थान पर दो मंत्रियों की नियुक्ति की। एक मंत्री उत्तरी मिस्र के लिये नियुक्त किया जाता था, जिसका कार्यालय हेलियोपोलिस में होता था। दूसरा मंत्री दक्षिणी मिस्र के लिये नियुक्त किया जाता था और वह फराओ के साथ थीबिज में रहता था। दक्षिणी मिस्र में रहने वाला मंत्री उत्तरी मिस्र में रहने वाले मंत्री की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होता था। वह राज्य के प्रादेशिक कार्यालय की गतिविधि पर पूर्ण नियंत्रण रखता था और देश की आय-व्यय पर भी उसका पूर्ण नियंत्रण रहता था। वह अपनी रिपोट प्रति वर्ष मिस्री फराओ को देता था। जिस समय फराओ युद्ध के लिये चला जाता था उस समय उसकी शक्ति बहुत अधिक बढ़ जाती थी।

(3) न्याय-व्यवस्था—साम्राज्यवादी युग में न्याय के समस्त अधिकार मंत्री के हाथ में आ गये थे। उसके दरबार में ही सभी मुकदमे निर्णीत होते थे। साथ ही जिले की स्थानीय अदालतें भी थीं जहाँ स्थानीय पुजारी और सिविल पदाधिकारी मंत्री के प्रतिनिधि की हैसियत से मुकदमों का निर्णय करते थे। न्यायाधीशों का अलग से कोई पद नहीं था। मिस्र में उस युग में विधि-संहिता विद्यमान थी परन्तु उनके कानूनों के विषय में निश्चित जानकारी नहीं है। कानून का सबको पालन करना होता था और किसी भी अपराधी को बिना उस पर मुकदमा चलाए दंडित नहीं किया जा सकता था।

(4) सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था साम्राज्य युग में सामन्तवादी प्रथा समाप्त हो गई थी और स्थानीय शासन के लिये बहुत से राज्य-कर्मचारी नियुक्त किये गये थे। परिणाम यह था कि मध्यम वर्ग को आगे बढ़ने का अधिक अवसर मिला था और एक ऐसे राजपुरुष वर्ग का उदय हुआ था जिसमें प्राचीन सामन्त और मध्य दोनों ही वर्ग के लोग सम्मिलित थे। इस वर्ग का नवीन उच्च स्तर कुलीन वर्ग था जिसमें फराओ के सभापति और उच्च पदाधिकारी होते थे। साम्राज्य युग में मध्यम वर्ग के लोगों के लिए सैनिक-सेवा अनिवार्य था और सैनिकों का प्रभाव बहुत अधिक बढ़ गया था। सिविल सेवा के लिये फराओ इन सैनिकों पर ही निर्भर रहता था। निम्न वर्ग की अवस्था पहले की अपेक्षा कुछ सुधर गई थी।

साम्राज्य युग में राज्य की आर्थिक उन्नति के लिये अनेक प्रयास किये गये। देश की समस्त भूमि सरकारी नियन्त्रण में आ गई। केवल मन्दिरों की भूमि को छोड़ दिया गया। इस भूमि को फराओ अपने कृपापात्रों को जोतने के लिए देता था। देश के उद्योग-धन्धों पर राज्य का नियन्त्रण हो गया और विदेशी व्यापार पर भी राज्य का पूर्ण नियन्त्रण स्थापित हो गया था। इन सरकारी नियन्त्रणों के फलस्वरूप स्थिति में विशेष सुधार नहीं हुआ।

अखनाटन की धार्मिक क्रान्ति

साम्राज्य युग में अखनाटन नाम का एक अत्यन्त प्रसिद्ध सम्राट हुआ। उसने धर्म के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण परिवर्तन किये और 'अखनाटन की धार्मिक क्रांति' मिस्र के इतिहास में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

अखनाटन से पूर्व की धार्मिक स्थिति

अखनाटन से पूर्व की धार्मिक स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। साम्राज्य युग में भी राजपुरुषों और सैनिकों के साथ ही पुजारियों का प्रभाव काफी बढ़ता गया। पुजारियों को मन्दिरों की भेंट और चढ़ावों से बहुत अधिक आय होती थी। राजकीय आय का बहुत बड़ा भाग मन्दिरों को दे दिया जाता था। ऐसा अनुमान किया जाता है कि मिस्र का भूमि 1।7 भाग पुजारियों के अधिकार में था जबकि वह केवल जन-संख्या की 2 प्रतिशत मात्र थी। मध्य-राज्य युग में धर्म और सदाचार में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया था वह समाप्त हो गया। धर्म के संरक्षक भोग विलासमय जीवन व्यतीत करने लगे और धनलोलुपता एवं भ्रष्टाचार का बोलबाला हो गया। जादू-टोने पर लोगों को बहुत अधिक विश्वास हो गया और धर्माधिकारी साधारण जनता को परलोक का भय दिखला कर उससे धन वसूल करने लगे। पापमोचक प्रमाण-पत्र बहुत अधिक मात्रा में बिकने लगे। ऐसा विश्वास हो गया कि इन पापमोचक प्रमाण-पत्रों को खरीदने पर पाप करने पर भी व्यक्ति को परलोक में कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा।

इसी समय मिस्र में ऐकेश्वरवादी प्रवृत्ति बलवती हुई। मिस्र के अन्य देशों से सम्बन्ध बढ़ जाने के फलस्वरूप अन्य देवा-देवताओं के विषय में भी मिस्रियों को जानकारी प्राप्त हुई। परन्तु वे यह मानते थे कि उनके देवता ही सर्वोच्च देवता हैं। इस भावना ने एकेश्वरवादी प्रवृत्ति को जन्म दिया।

इन परिस्थितियों में 1375 ई० पूर्व एमेनहोतेप चतुर्थ उर्फ अखनाटन ने मिस्र के राजनीतिक और धार्मिक जीवन में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी।

अखनाटन का धर्म

(1) **अखनाटन का एटनवाद**—एमेनहोतेप चतुर्थ उर्फ अखनाटन मिस्र का ही नहीं समस्त विश्व इतिहास का शायद सबसे विलक्षण शासक था। वह अत्यन्त भावुक, सुकुमार, संवेदनशील, विचारशील और आदर्शवादी था। परन्तु साथ ही उसमें कर्मठता और दृढ़ता भी विद्यमान थी। आरम्भ में ही उसने पुजारी वर्ग में व्याप्त भ्रष्टाचार का विरोध किया और एटन नामक एक नवीन देवता की उपासना के लिये जनता को प्रोत्साहित किया। एटन देवता की प्रशंसा करते हुये उसने अपना नाम अखनाटन रख लिया। एटन वास्तव में सूर्यदेव रे का दूसरा नाम था परन्तु अखनाटन उसे केवल मिस्र का ही नहीं वरन् समस्त संसार का एक मात्र देवता मानता था। उसकी कल्पना

बौद्धिक सूर्य के रूप में नहीं वरन् जीवनदायक प्रकाश के रूप में की जाती थी। सूर्य को अखनाटन एक निराकार दैवीय शक्ति मानता था जो किरणों के रूप मे समस्त संसार में व्याप्त रहती थी।

अखनाटन के एटनवाद में पुराने अन्ध-विश्वासों के दर्शन नहीं होते। उसका कथन था कि एटन समस्त मनुष्यों का पिता है और ससार का नियामक है। उसने अपने धर्म में नैतिकता का समावेश किया था और उसका कथन था कि एटन न्यायशील और सत्यप्रिय है और वह हिंसापूर्ण विजयों का विरोधी है। वह निराकार है और सूर्य चक्र उसका प्रतीक है।

एटन की उपासना सूर्योदय और सूर्यास्त के समय की जाती थी। इस उपासना में अधिक चढ़ावे, कर्मकाण्ड, तन्त्र-मन्त्र और पुजारियों की आवश्यकता नहीं होती थी। केवल हृदय मे एटन का ध्यान किया जाता था और उसकी स्तुति एवं श्रद्धा के रूप में कुछ पुष्प, पत्र और फल चढ़ाये जाते थे। अखनाटन का मत था कि एटन उसी से प्रसन्न होते हैं जो सच्चे हृदय से उनको स्तुति करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अखनाटन का एटनवाद सादगी, पवित्रता और नैतिकता से युक्त था और उसमें आडम्बरता का कहीं भी स्थान नहीं था।

(2) अखनाटन का परलोकवाद—अखनाटन का परलोकवाद अत्यन्त सरल था। अखनाटन ने प्राचीन पुजारियों द्वारा प्रस्तुत पारलौकिक जोवन को मान्यता नहीं प्रदान की। उसने असोरिस के अस्तित्व को भो स्वीकार नहीं किया। अखनाटन का मत था कि मृत्यु के पश्चात् कुछ समय तक मनुष्य की आत्मा स्वर्ग में निवास करती है अथवा वह उन स्थानों पर चली जाती हैं जो जीवित अवस्था मे उसको अच्छे लगते हैं। वहाँ उसे अतीव आनन्द की प्राप्ति होती है। अखनाटन नरक की कल्पना नहीं करता। उसका मत था कि देवता एटन अत्यन्त दयालु है और वह किसी भी मनुष्य को नरकीय पीड़ाएँ नहीं दे सकता। दुष्टात्माओं को वह केवल यह दण्ड देता है कि मृत्यु के बाद उनके अस्तित्व का पूर्ण विनाश हो जाता है।

(3) एकेश्वरवादी विचारधारा - अखनाटन ने आरम्भ में अन्य देवताओं के प्रति सहिष्णुता की नीति को अपनाया और अपने धर्म का प्रचार किया। उसने अपने नवीन देवता के लिए एक भव्य मन्दिर बनवाया। जब प्राचीन धर्मानुयायियों को यह विश्वास हो गया कि वह एटन को ही एक मात्र देवता बना देगा तो उन्होंने उसका विरोध आरम्भ किया। परिणामस्वरूप अखनाटन ने अन्य सभी देवताओं के मन्दिरों को बन्द करवा दिया और उनके पुजारियों को बाहर निकाल दिया। इस प्रकार अखनाटन ने एकेश्वरवाद का प्रचलन किया।

अखनाटन के बाद का धर्म

अखनाटन के विचार उसके समय के अनुकूल नहीं थे। परिणाम यह हुआ कि उसकी मृत्यु के बाद उसका धर्म समाप्त हो गया। उसके दामाद ने उसके धर्म को फिर

प्रतिष्ठित करना चाहा परन्त पुजारियों के विरोध के फलस्वरूप उसे उसके कार्य में अधिक सफलता नहीं मिली और कालान्तर में पुनः प्राचीन धर्म प्रचलित हो गया।

अखनाटन का मूल्यांकन

अखनाटन के विषय में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न विचार हैं। कुछ उसे अत्यधिक महान व्यक्तित्व वाला बतलाते हैं और कुछ निर्दयी एक अत्यधिक महत्वाकांक्षी। इन दोनों प्रकार के विद्वानों में प्रथम कोटि के विद्वानों का मत ही अधिक समीचीन प्रतीत होता है। ब्रेस्टेड और वीगेल आदि विद्वानों ने अखनाटन को एक महान् शासक और धर्म-प्रचारक बतलाया है। अखनाटन को सरल और आडम्बर रहित एकेश्वरवाद को प्रचलित करने का श्रेय प्राप्त है। यह ठीक है कि उसने पुजारियों को दबाया परन्तु उसने यह कार्य तभी किया जब पुजारी उसके धर्म को चोट पहुँचाने लगे। अपने आदर्शों को मूर्त्त रूप देने के लिए अखनाटन ने अपना सब कुछ दे दिया। यदि अख्याटन के विचार मिस्र में विद्यमान रहते और अजाटन धर्म का पतन न हो गया होता तो मिस्र में कालान्तर में जो भीषण रक्तपात हुआ वह नहीं होता।

साहित्य

साम्राज्य युग के साहित्य में अखनाटन के द्वारा एटन की प्रशंसा में लिखे गये दो स्रोत अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इसके साथ ही एमेनेमोप का उपदेश भी विशेष स्थान रखता है। अखनाटन के प्रभाव के फलस्वरूप लिखे गये 'व्यक्तिगत धर्मनिष्ठा के श्रोत' भी उल्लेखनीय हैं। साम्राज्य युगोन मिस्र के धार्मिक साहित्य में 'बुक आफ डेड' का अपना अलग महत्व है। लौकिक साहित्य में अनेक प्रेम-गीत लिखे गये। ये प्रेम-गीत उर्दू गजलों की भाँति प्रतीत होते हैं। काव्य साहित्य के साथ ही इस युग में कथा साहित्य भी खूब लिखा गया। 9वें वंश के शासन-काल में कथा साहित्य में विशेष उन्नति हुई। कथा-साहित्य में अधिकतर जन-कथाएँ हैं और साम्राज्य युग में ये साहित्यिक रूप धारण करने लगी थीं। इस युग की कथाओं में 'एक अभागे राजकुमार की कथा', और 'दो भाइयों की कहानी' विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

कला

(1) वास्तुकला—साम्राज्य युग की वस्तु-कला को वह गौरव प्राप्त नहीं है जो पिरामिड युग की कला को प्राप्त है। इस युग में पिरामिडों का महत्व अधिक नहीं रहा परन्तु कुछ मन्दिरों का निर्माण अवश्य हुआ। इन मन्दिरों में 'कार्नाक का मन्दिर,' 'आबूसिम्बेल का मन्दिर' और 'लक्सोर का मन्दिर' विशेष रूप से उल्लेलनीय हैं। कार्नाक का मन्दिर सम्भवतः विश्व का विशालतम् भवन है। लक्सोर का मन्दिर अपने सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध है।

(2) स्थापत्य कला—साम्राज्य युग में स्थापत्य के क्षेत्र में भी उन्नति हुई। प्रत्येक मन्दिर में अनेक मूर्तियों का निर्माण किया गया था। इस युग की स्थापत्य कला पिरामिड युग की स्थापत्य कला से मिलती-जुलती है। अन्तर यह है कि समय की गति के साथ इसकी विशालता में अन्तर आ गया। थट्मोस तृतीय और रेमेसिस द्वितीय द्वारा निर्मित पाषाण मूर्तियाँ गगनचुम्बी हैं। अखनाटन के शासन-काल में हुई धार्मिक क्रान्ति के फलस्वरूप मूर्ति-कला को विशेष प्रोत्साहन मिला। लूव्र संग्रहालय में रखी हुई चूना-पत्थर की मूर्ति अखनाटन-काल की सबसे सुन्दर मूर्ति है। रानी नोफ़ेतीति की बलुवा पत्थर और चूना पत्थर से बनी हुई दो मूर्तियाँ भी इस युग की स्थापत्य-कला का सुन्दर उदाहरण हैं।

(3) अन्य कलाएँ—वास्तु-कला और स्थापत्य-कला के साथ ही इस युग में अन्य कलाओं का भी विकास हुआ। चित्रकला का जन्म पिरामिड युग में हो चुका था परन्तु उसका पर्याप्त विकास साम्राज्य युग में ही हुआ। मिस्री चित्रकला का सबसे सुन्दर नमूना अखनाटन के समय में ही प्राप्त होता है। कलाकारों ने दिवालों पर अनेक चित्र बनाये थे। इन चित्रों में 'बनैले बैल की कुदान' और 'भयभीत हिरण की दौड़' आदि के चित्र विशेष सुन्दर हैं।

साम्राज्य युग में काष्ठ, चर्म और स्वर्ण निर्मित फर्नीचर, आबनूस और हाथी-दाँत के बक्से, सोने और बहुमूल्य पत्थरों से युक्त रथ, स्वर्ण-पत्रों से मंडित सिंहासन आदि बनाये गये। इनमें साम्राज्य युग की कलात्मकता झलकती है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि मिस्र के सांस्कृतिक जीवन में साम्राज्य युग का भी अपना अलग स्थान है। साम्राज्य युग का सबसे अधिक सांस्कृतिक महत्व अखनाटन की क्रान्ति के फलस्वरूप है। जहाँ वास्तु-कला आदि के क्षेत्र में पिरामिड युग से आगे बढ़ जाता है वहाँ अखनाटन के धार्मिक विचारों के फलस्वरूप साम्राज्य युग का महत्व पिरामिड युग से अधिक हो जाता है।

सारांश

1788 ई० पूर्व में साम्राज्य युग का प्रारम्भ हुआ और यह युग 1090 ई० पूर्व तक चला। तत्पश्चात् मिस्र परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ना गया और 30 ई० पूर्व में वह रोम का एक प्रान्त बन गया। साम्राज्यवादी युग में फराओ की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई और न्याय-व्यवस्था सुगठित रही। मन्त्री की स्थिति में भी सुधार हुआ। समाज में राजपुरुष वर्ग अस्तित्व में आया और मध्यम वर्ग आगे बढ़ता गया। आर्थिक क्षेत्र में कृषि और व्यापार आदि का राष्ट्रीयकरण हो गया।

साम्राज्य युग में अखनाटन नाम का एक अत्यन्त प्रसिद्ध सम्राट और धर्म-प्रचारक हुआ। उसने प्राचीन पुजारी-प्रथा को समाप्त किया और धर्म के आडम्बरता को दूर किया। उसने एक नवीन देवता एटन की उपासना पर बल दिया जो सूर्य देव रे का दूसरा रूप था। अखनाटन के धर्म में आडम्बरता का कोई स्थान नहीं था और उसने प्राचीन पुजारियों द्वारा प्रचलित पारलौकिक जीवन को मान्यता नहीं प्रदान की और नारकीय यातनाओं को भी स्वीकार नहीं किया। उसने एकेश्वरवादी विचारधारा का प्रचलन किया। अखनाटन के बाद उसका धर्म अधिक नहीं चल सका।

साहित्य के क्षेत्र में 'अखनाटन के स्रोत', 'एमेंनेमोप का उपदेश', 'बुक आफ दी डेड,' 'अभागे राजकुमार की कथा', और 'दो भाइयों की कथा' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कार्नाक का मन्दिर, आबूसिम्बेल और लक्सोर के मन्दिर इस युग की वास्तुकला के नमूने हैं। स्थापत्य के क्षेत्र में भी इस युग में उन्नति हुई और अनेक मूर्तियों का निर्माण किया गया। थट्मोस तृतीय और रेमेसिस द्वितीय द्वारा निर्मित मूर्तियाँ गगनचुम्बी है। अखनाटन के समय मिस्री चित्रकला अपने गौरव के चरम-शिखर पर पहुँच गई। साथ ही अन्य कलाओं का भी विकास हुआ।

यदि पिरामिड युग का महत्व भव्य पिरामिडों के फलस्वरूप है तो साम्राज्य युग का महत्व अखनाटन की धार्मिक क्रान्ति के फलस्वरूप है।



ईजियन सभ्यता और संस्कृति

AEGEAN CIVILIZATION AND CULTURE

अध्याय | 21

ईजियन सभ्यता और संस्कृति

(AEGEAN CIVILIZATION AND CULTURE)

प्रश्न 1—ईजियन सभ्यता की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिये ।
(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

Give an account of the chief features of Aegean civilization.
(Gorakhpur University)

प्रश्न 2—"रोम और पश्चिम की सभ्यता की जननी यूनान की सभ्यता, ईजियन सभ्यता की पुत्री है" – इस सन्दर्भ में ईजियन सभ्यता के विकास पर प्रकाश डालिये ।

"Greek civilization, the mother of the civilization of Rome and the West is the daughter of Aegean civilization."—Write about the development of Aegean civilization in connection with this statement.

प्रश्न 3– ईजियन कला के सम्बन्ध के विषय में आप क्या जानते हैं ?
What do you know about the Aegean Art ?

प्रश्न 4—क्रीट संस्कृति के महत्व पर प्रकाश डालिये ।
(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

Throw light on the importance of Crete.
(Gorakhpur University)

योरुप मे सभ्यता का आरम्भ और विकास ईजियन प्रदेश में हुआ । यूनान और एशिया माइनर के बीच के समुद्र को ईजियन सागर के नाम से पुकारा जाता है । अति प्राचीन काल में इस सागर के अन्य छोटे-छोटे द्वीप जैसे क्रीट (Crete), ट्राय (Troy), टिरिंस Tiryns) और माइसीन (Mycene) आदि अति उन्नत दशा में थे । इन समस्त द्वीपों में जिस सभ्यता का विकास हुआ उसे ही हम ईजियन सभ्यता के नाम से पुकारते हैं । यद्यपि इन विभिन्न द्वीपों में विकसित होने वाली सभ्यताओं में थोड़ा-थोड़ा अन्तर है और विभिन्न सभ्यतायें विभिन्न कालों में विकसित हुई हैं परन्तु इन सबकी आत्मा एक ही प्रतीत होती है ।

ईजियन सभ्यता के विषय में बहुत दिनों तक विद्वानों को कुछ पता नहीं था। सन् 1870 में हेनरिक श्लीमेन ने ट्राय की खुदाई करके इस सभ्यता का पता लगाया। इसके पश्चात् उसने टिरिंस और माइसीन में भी खुदाई की। 1894 में आर्थर इवान्स द्वारा क्रीट की अति प्राचीन राजधानी नौसास (Knossas) का पता लगाया गया। इस प्रकार यह देखने को मिला कि अब तक जितनी भी प्राचीन सभ्यतायें विकसित हुई थीं वे नदियों के काठों में विकसित हुई थीं परन्तु यह सभ्यता समुद्र की उत्ताल तरङ्गों में विकसित हुई। इस प्रदेश में इस विशाल सभ्यता के विकसित होने के निम्नलिखित कारण थे—

(1) यह स्थल एशिया, अफ्रीका और योरुप तीनों के निवासियों के लिये अति सुगम था। यह प्रदेश बन्दरगाहों के लिये उपयुक्त रहा।

(2) ईजियन प्रदेश में जल और थल अत्यन्त निकट थे। समुद्र का कोई भाग थल से 40 मील से अधिक नहीं था।

(3) ईजियन सागर में यात्रा करने वालों को जलधाराओं से सहायता मिलती थी। वायु का प्रवाह भी यात्रियों के लिये अनुकूल होता था। गर्मी के दिनों में ईटेशियन वायु चलती थी जो जहाजों को आसानी से साईक्लेड्स से क्रीट तक ले जाती थी।

इस प्रकार समस्त भौगोलिक विशेषताओं के कारण ये प्रदेश सामुद्रिक व्यापार की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ और इसी कारण यहाँ की सभ्यता का बहुत अधिक विकास हुआ। ग्लाट्ज का यह कथन बिल्कुल ठीक है—"ईजियन सागर नाविक विद्या को पाठशाला बन गया जहाँ प्रत्येक राष्ट्र ने नाविक विद्या सीखी।"

"The Aegean sea became the naval school from which lessons were handed on to all the nations of the world."

— Glotz.

ईजियन संसार की जलवायु सम थी। यहाँ के लोगों की आवश्यकताएँ बहुत कम थीं। अति अल्प परिश्रम के द्वारा ही उनकी जीवन की समस्त आवश्यकताएँ पूरी हो जाती थीं। समय की अधिकता ने ही उनमें कला के प्रति अभिरुचि उत्पन्न कर दी और इस प्रदेश में कला का बहुत अधिक विकास हुआ। इस सभ्यता का प्रभाव संसार के अनेक क्षेत्रों पर पड़ा। एक लेखक ने तो यहाँ तक लिख दिया है कि रोम और यूनान की सभ्यताओं से प्रभावित होने के बहुत पहले संसार ईजियन सभ्यता से प्रभावित हो चुका था। (Before it was Romanised, before it was Hellenised, the ancient world was Aegeanised.)

सभ्यता का उद्भव

इस सभ्यता का उद्भव कहाँ से हुआ इस प्रश्न पर विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत है। स्पेंग्लर के अनुसार यह मिस्र-सभ्यता की ही एक शाखा है। अन्य विद्वान कहते

हैं कि यद्यपि यह ठीक है कि इस सभ्यता की बहुत सी बातें मिस्र की सभ्यता से मिलती हुई हैं परन्तु इसे मिस्र की सभ्यता की उपशाखा नहीं माना जा सकता। यह भी नहीं कहा जा सकता कि इसका जन्म पूर्णतया एशिया माइनर की सभ्यता से हुआ। इस सम्बन्ध में विल ड्यूरांट महोदय ने अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है—"हमें यह मानने का अवसर है कि क्रीट में जो संस्कृति उत्पन्न हुई उसका आदि-स्थल एशिया था परन्तु वह अलौकिक रही।"

"Let us believe that in its racial origins, the Cretan culture was Asiatic, in many of its arts Egyptians; in essence and total it remained unique."

—Will Durant.

अतः हम कह सकते हैं कि इस सभ्यता का उदय चाहे जिस सभ्यता से उदय हुआ हो परन्तु इसकी कुछ विशेषताएँ हैं जो संसार की अन्य सभ्यताओं से बिलकुल भिन्न हैं।

इतिहास

उत्तर-पाषाण काल—ईजियन सभ्यता का सबसे पहले विकास क्रीट में हुआ। पूर्व-पाषाण काल में ईजियन प्रदेश में मनुष्यों के निवास करने का कोई चिह्न नहीं प्राप्त होता। ईजियन प्रदेश की सबसे प्राचीन सभ्यता उत्तर-पाषाण कालीन ही है। इसका समय 6000 ई० पू० से 3000 ई० पू० के बीच का माना जाता है। इस युग में मिट्टी की मूर्तियाँ, तकलियाँ, करघे आदि व्यापक मात्रा में बनाये जाते थे।

पूर्व-मिनोअन काल—इस काल तक यहाँ के निवासी ताम्र में टिन मिलाकर काँस्य बनाना सीख गए थे। इस युग तक लोगों को अक्षर-ज्ञान भी हो गया था। प्रारम्भिक काँस्य युग में ट्राय नगर पाँच बार बना और नष्ट हुआ।

मध्य-मिनोअन काल—मध्य-काँस्य युग में क्रीट की सभ्यता का बहुत अधिक विकास हुआ। इस सभ्यता के निर्माता भी वही लोग थे जिन्होंने पूर्व-मिनोअन सभ्यता का विकास किया था। इस युग में नोसस (Knossus), फेस्टस (Phaestus) और मल्लिया (Mallia) में अनेक राजप्रासाद बनवाये गये। इनमें भाण्डारगृह भी होते थे। अनेक मन्दिर भी बने। नालियों की सुन्दर व्यवस्था थी। इस युग में मृण्भाण्ड कला और भित्त चित्रकला का भी पर्याप्त विकास हुआ। मध्य मिनोअन युग में एक भूकम्प आया जिससे फेस्टॉस, मोक्लोस तथा गूनियां के राजप्रासाद नष्ट हो गए।

उत्तर-मिनोअन काल— यह क्रीट के दीर्घ जागरण का युग है। बहुत समय के पश्चात् इस सभ्यता का पुनः विकास हुआ। इस युग के विषय में एक विद्वान ने लिखा है—"सोलहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दियाँ मिस्री सभ्यता की चरम सीमा की अवस्थाएँ हैं और यह क्रीट के लिए पौराणिक एवं स्वर्णिम युग है।"

"The 16th and 15th Centuries before our era are the zenith of Aegean civilization, the classic and golden age of Crete."

इस काल में फेस्टॉस, टाइलिस, नोसोस, ट्रियाडा तथा गूनियां में विशाल महल बनवाये गये। समस्त क्रीट राजनीतिक एकता के सूत्र में बंध गया और बहुत अधिक भौतिक उन्नति हुई। इस युग में ईजियन प्रदेश के मिस्र के साथ बड़े अच्छे व्यापारिक सम्बन्ध थे। इस युग में वास्तुकला, चित्रकला और मूर्तिकला का बहुत अधिक विकास हुआ।

शासन-व्यवस्था

क्रीट की शासन-व्यवस्था के सम्बन्ध में जो कुछ भी जानकारी उपलब्ध हुई है वह भित्ति-चित्रों और संकेतिक तथ्यों के द्वारा हुई है। इस सभ्यता में दैवीय व्यवस्था को अपनाया गया था।

सम्राट क्रीट के नरेशों की उपाधि 'मिनोग्रा' थी। सम्राट ही राज्य का प्रधान पुजारी, प्रधान सेनापति और प्रधान न्यायाधीश होता था। उसकी सहायता के लिये अन्य कर्मचारी होते थे जो अधिकतर अभिजात वर्ग के ही होते थे। कर में राजा को खाद्यान्न और पेय वस्तुओं की प्राप्ति होती थी। राजप्रासाद में विशाल भाण्डार होते थे। व्यवस्था के लिये सम्राट अनेक लिपिकों की भी नियुक्ति करता था जो आय-व्यय का निरीक्षण और रजिस्ट्री का कार्य करते थे।

सैन्य व्यवस्था—सम्राट के पास राज्य की सुरक्षा के लिये एक सेना होती थी। सुरक्षा के लिये जल-सेना का विशिष्ट स्थान था। राजा ही सेनापति होता था और उसकी मदद के लिये अन्य सैनिक होते थे। इनके हथियार पतली बर्छियाँ, धनुष और ढालें होते थे। ये लोग चमड़े के शिरस्त्राण और कवच धारण करते थे। कदाचित् रथ का प्रयोग भी ये लोग करते थे जिनमें अश्वों को जोता जाता था। हेजिया, त्रियादा में एक राजपत्र प्राप्त हुआ जिससे इनकी सैनिक व्यवस्था का पता चला है। इसमें एक सेनानायक राजाज्ञा प्राप्त कर रहा है।

न्याय व्यवस्था—राजा ही देश का सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। इवान्स में न्यायालय के ध्वंसावशेष प्राप्त हुये हैं जिनसे पता चलता है कि सम्राट ऊंचे सिंहासन पर बैठकर न्याय करता था। अधिकतर कारावास का दंड दिया जाता था। यह कारावास अधिकतर पृथ्वी के अन्दर होते थे।

राज्य की आय—उपहार और कर, राज्य की आय के मुख्य साधन थे। इनके अतिरिक्त राज्य की आय फैक्ट्रियों, मिलों और दूकानों द्वारा भी होती थी। इसी आय के द्वारा राज्य के कर्मचारियों को वेतन दिया जाता था।

सामाजिक जीवन

जीवन के प्रति दृष्टिकोण—ईजियन नागरिक आनन्दमय जीवन व्यतीत करने के पक्षपाती थे। वे स्वतन्त्रता और सौंदर्य के प्रेमी थे। यही कारण था कि उनके राज-प्रासाद और राजमार्ग चहल-पहल से युक्त रहते थे। वे 'जिम्रो और जीने दो' सिद्धान्त को मानने वाले थे।

सम्मिलित परिवार—इनके समाज में सम्मिलित परिवार की प्रणाली प्रचलित थी। इसी कारण इनके घर भी विशाल होते थे। मिनोआकाल के एक भवन का ध्वसावशेष मिला है जिसकी निचली मजिल में ही 20 कमरे थे। परन्तु आगे चलकर सम्मिलित परिवार की प्रथा टूटने लगी थी।

रहन-सहन—यहाँ के लोगों का रहन-सहन काफी उच्चकोटि का था। इनके राजप्रासाद स्नानगृहों, वातायनों, प्रकाशकूपों और नाट्य-गृहों आदि से युक्त रहते थे। इनकी स्वच्छता की ओर भी विशेष ध्यान दिया जाता था। जाड़े से रक्षा के लिये भट्ठियाँ होती थीं और नालियों की भी सुन्दर व्यवस्था होती थी। कदाचित् ये लोग शतरंज जैसा कोई खेल खेलते थे।

वस्त्र एवं आभूषण—ईजियन श्रीमन्तों की वेशभूषा काफी सादी होती थी। जाँघिये के ऊपर लुङ्गी बाँधने की प्रथा थी। शरीर के ऊपरी भाग पर कोई कपड़ा नहीं पहना जाता था परन्तु कभी-कभी कोई कपड़ा ओढ़ लिया जाता था। वे पैरों में जूते भी पहनते थे।

स्त्रियाँ और पुरुष दोनों ही आभूषण पहनते थे। उनके मुख्य आभूषण नेकलेस, मुद्रिका, कर्णफूल आदि थे। धनी वर्ग धातुओं के आभूषण पहनता था और निर्धन वर्ग मूंगे और कौड़ियों के आभूषण धारण करता था।

आमोद-प्रमोद—ये लोग मुष्टि युद्ध, कुश्ती और मानव-पशु युद्धों के शौकीन थे। वे आखेट-प्रेमी भी थे। एक शतरंज जैसे खेल का भी चित्र मिला है। एक चौकोर खानों वाली सुन्दर मेज मिली है जिसमें हस्तिदन्त, सोना, चाँदी और बहुमूल्य पाषाणों का प्रयोग किया गया है।

स्त्रियों की दशा—क्रीट के समाज में महिलाओं को बहुत ऊंची दृष्टि से देखा जाता था। सामाजिक जीवन में स्त्रियों को बहुत अधिक स्वतन्त्रता दी गई थी। पर्दे की प्रथा नहीं थी और स्त्रियाँ भी पुरुषों की भाँति उत्सवों आदि में भाग लेती थीं। कुछ सीलें मिली हैं जिनसे पता लगता है कि स्त्रियों को मिट्टी के बर्तन बनाने का विशेष शौक था। ऐसे भी अनेक चित्र मिले हैं जिनमें मुष्टिका-प्रहार के द्वारा एक स्त्री महिषों से युद्ध कर रही है। स्त्रियों और पुरुषों के नागरिक अधिकारों में कोई भेद नहीं था। स्त्रियाँ नवीनता को पसन्द करती थीं। वे जूड़े बाँधती थीं और

इस प्रकार के ब्लाउज पहनती थीं जिनके कालर ऊपर उठे रहते थे और बांह, गर्दन तथा स्तन खुले रहते थे। कुछ चित्रों में स्त्रियों को हैट धारण किये हुये भी दिखाया गया है।

आर्थिक दशा

यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि ईजियन प्रदेश में कृषि की दशा अच्छी नहीं थी। इन लोगों को खाद्य पदार्थों के लिये अन्य देशों पर निर्भर रहना पड़ता था। इनकी आय के मुख्य साधन उद्योग धन्धे ही थे। राजकीय और व्यक्तिगत दोनों ही प्रकार की फैक्ट्रियाँ यहाँ विद्यमान थीं। जिनमें कपड़ा मृण्भाण्ड और धातु का कार्य होता था। राजकीय फैक्ट्रियाँ अधिक उन्नत दशा में थीं और इन फैक्ट्रियों में बहुत सी स्त्रियां कार्य करती थीं। इस सम्बन्ध में ग्लाट्ज ने लिखा है—"सैकड़ों स्त्रियां जो कपड़ा मिलों में काम करती थीं रानी की आज्ञापालक थीं।"

"The hundreds of women employed in the royal textile factory worked under supervision of the queen."

—Glotz.

ईजियन लोग शक्ति संचालित यन्त्रों का प्रयोग नहीं जानते थे। वे अधिकतर मनुष्य की मेहनत पर ही निर्भर रहते थे परन्तु फिर भी उसकी फैक्ट्रियों में आधुनिक प्रणाली को अपनाया गया था। उनकी दशा का वर्णन करते हुये प्रसिद्ध इतिहासकार बर्न्स ने लिखा है—"यद्यपि वे शक्ति से चलने वाली मशीनों का उपयोग नहीं करते थे फिर भी उत्पादन प्रचुर मात्रा में होता था और उस काल में मजदूरों का केन्द्रीयकरण और नियन्त्रण भी होता था तथा कार्यों का बँटवारा भी होता था।"

"While they did not use power driven machinery, they were engaged in large scale production, and there was division of labour and centralized control and supervision of workers."

यहाँ उत्पादित माल सुदूर देशों में जाकर बिकता था। ईजियन लोग कुशल व्यापारी थे और उपनिवेश स्थापना में भी वे बड़े जागरूक थे। व्यापार के लिये जल-मार्ग का ही अधिक प्रयोग होता था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ईजियन निवासियों ने औद्योगीकरण की नीति को अपनाया था जो अति प्राचीनकाल में अपने ढङ्ग का पहला प्रयास था।

धर्म

ईजियन धर्म के विषय में विशेष जानकारी नहीं है परन्तु फिर भी जो कुछ कल्पना और कुछ चित्रों के आधार पर ज्ञात हुआ उसकी चर्चा यहाँ की जा रही है। इनके धर्म के विषय में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं।

बहुदेववाद—ये लोग बहुदेववादी थे। पुजारी का इनके यहाँ बहुत सम्मान होता था। ये लोग देवी-देवताओं के अतिरिक्त पाषाण-पूजा, आयुध-पूजा, वृक्ष-पूजा, पशु-पूजा भी करते थे।

(क) पाषाण-पूजा—ईजियन निवासियों का यह मत था कि पर्वतों की चोटियों के पत्थरों में देवीय-शक्तियां वास करती हैं। अतः ये लोग पत्थरों की पूजा उन्हें विभिन्न आकार देकर करते थे। कभी ये लोग स्तम्भ बनाकर उनकी पूजा करते थे और कभी परशु पूजा करते थे। ये लोग परशु को देवलोक से फेंका हुआ वज्र समझते थे। प्रारम्भ में परशु पत्थर के ही होते थे परन्तु कालान्तर में धातु के बनने लगे।

(ख) शस्त्र-पूजा—यहाँ के निवासी शस्त्रों की भी पूजा करते थे। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि ये लोग आयुध पूजा में विश्वास करते थे। ये लोग ढाल को दैवी प्रतीक मानकर उनकी पूजा करते थे। ढाल को ये लोग बहुत पवित्र मानते थे। यहाँ के अनेक पूजा-गृहों, पवित्र-वृक्षों और मुद्रिकाओं आदि पर ढाल के चित्र प्राप्त होते हैं।

(ग) पशु-पूजा—ईजियन-संसार में पशु-पूजा का भी विशेष महत्व था। एक चित्र में पूजा के लिये जाते हुये लोग गधे की खाल को ओढ़े हुये हैं और दूसरे चित्र में स्त्रियाँ गीदड़ों की खाल पहने हुए हैं। पशुओं के अनेक चित्र उपलब्ध हो रहे हैं।

पशुओं के साथ ही साथ ये लोग पक्षियों की भी पूजा करते थे। पक्षियों में कपोती को बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता था। अनेक पूजा-गृहों, पात्रों, स्तम्भों और वृक्षों आदि पर पक्षियों के चित्र मिलते हैं।

(घ) पादप-पूजा—विश्व के अधिकांश देशों में किसी न किसी काल में पादप-पूजा प्रसिद्ध रही है। ईजियन निवासी प्रकृति की विभिन्न शक्तियों के उपासक थे, अतः उन शक्तियों के प्रतीक वृक्षों की पूजा करते थे। वृक्ष-पूजा से सम्बन्धित अनेक चित्र प्राप्त हुए है। एक चित्र में सृष्टि देवी एक वृक्ष के नीचे चित्रित की गई है। एक अन्य चित्र में सागर-देवी अपनी नाव में एक लता के नीचे विराजमान हैं। एक चित्र में दानव वृक्षों को सींचते हुये चित्रित किए गए हैं।

मातृदेवी की पूजा—जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि ईजियन समाज में स्त्रियों का स्थान बहुत ऊंचा था। कदाचित इसी के फलस्वरूप मातृ देवी की उपासना को विशेष महत्व दिया गया। यह देवी समस्त ब्रह्माण्ड की अधिकारिणी और पृथ्वी, स्वर्ग तथा रसातल की सम्राज्ञी समझी जाती थी। जग-माता के रूप में इनकी उपासना होती थी। माता के प्रतीक सर्प तथा फाख्ता माने जाते थे। यही दोनों माता के चिरसंगी समझे जाते थे। माता के अनेक चित्र मिलते हैं। कभी वह बालकों का पोषण करती हुई चित्रित की गई है, कभी पशुओं के मध्य में विराजमान है और फूलों से युक्त वृक्षों के नीचे आसीन है। ईजियन समाज मे देवी-देविताओं का मानवीकरण किया गया था। यही कारण है कि मातृ-देवी का स्वरूप स्त्रियों जैसा हो है।

23

यह विश्वास किया जाता था कि माता पर्वत की ऊंची-ऊंची चोटियों पर निवास करती हैं परन्तु स्वेच्छा से सागर-विहार भी करती हैं। वह स्वर्ग में भी निवास करती है परन्तु सेवकों के आर्तनाद से व्याकुल होकर भू लोक पर आती है। प्रकाश और अन्धकार माता की इच्छानुसार ही होते हैं। एक चित्र में सूर्य और चन्द्रमा को उनकी आराधना करते हुये चित्रित किया गया है।

माता जगत-पालक होने के साथ-ही-साथ जगत-संहारक भी है। उनका दुर्गा का रूप भी चित्रित किया गया है। एक चित्र में वह सिंह के सहित वीर वेश में चित्रित की गई हैं और उनके हाथों में धनुष-बाण और परशु है।

देवता को पूजा--ईजियन लोग मातृदेवी के साथ ही एक देवता क भी उपासना करते थे। इस देवता को माता के पुत्र अथवा प्रेमी के रूप में चित्रित किया गया है। इस प्रकार इनका धर्म द्विदैववादी था। कभी-कभी उसे पुत्र के रूप में अंकित किया गया है। कभी वह सिंहों से खेलता हुआ और कभी माता के पीछे जाता हुआ चित्रित किया गया है। यूनानी उसे 'वेल्केनोस' और 'क्रीट का जियस" नाम से पुकारते थे।

कुछ विद्वानों का यह मत है कि आरम्भ में इस देवता को माता का पुत्र ही माना जाता था परन्तु कालान्तर में उसे देवी के प्रेमी के रूप में चित्रित किया गया है। उसका प्रतीक वृषभ था। उसका और मातृ देवी दोनों का प्रतीक 'दोहरा परशु' था। क्रीट वासियों का यह विश्वास था कि जिस स्थान पर यह चिन्ह बना दिया जाता था वह स्थान देवता द्वारा रक्षित रहता है।

इस देवता को संसार का पालक और संहारक दोनों ही माना गया है। इस देवता की संतुष्टि के लिए अनेक प्रकार के यज्ञ किये जाते थे जिनमें बैलों की बलि दी जाती थी।

धर्म-प्रतीक—वृषभ, दोहरे पशु तथा नाम आदि प्रतीकों के अतिरिक्त ईजियन अन्य देवी शक्तियों और उनके प्रतीकों को पूजा करते थे। सूर्य, चन्द्र स्वस्तिक तथा 3 का चिन्ह अत्यधिक पवित्र माने जाते थे। अनेक वेदियों, बर्तनों तथा मूर्तियों पर स्वस्तिक का चिन्ह बना हुआ मिलता है। 'तीन की संख्या' इनमें बड़ी कल्याण-कारक मानी जाती थी। उत्खनन में प्रत्येक पवित्र वस्तु अधिकतर तीन की संख्या में उपलब्ध हुई है जैसे तीन स्तम्भ, तीन मूर्तियां, तीन वृक्ष और तीन ढालें।

इन चिन्हों के अतिरिक्त वृषभ का सींग भी धर्म-चिन्ह माना जाता था और उसे राजमहलों की छतों और वेदिकाओं पर बनाया जाता था।

मन्दिर और पूजा-विधि—प्रारम्भिक काल में क्रीटवासियों के पूजा-गृह नहीं होते थे। वे खुले मैदानों में वृक्षों के नीचे और पर्वतों के ऊपर देवताओं की उपासना करते थे। कालान्तर में अपने देव-स्थान की रक्षा के लिये उन्होंने ईंट-पत्थर

का घरौंदा बनाना प्रारम्भ किया। तत्पश्चात् उपहार आदि में आई हुई सामग्री को रक्षा के लिये कक्ष बनने लगे। इस प्रकार मन्दिरों का श्रो गणेश हुआ। यह मन्दिर सामाजिक उपासना के लिए होते थे और इनका निर्माण पर्वतों के ऊपर अथवा किसी अन्य उच्च स्थान पर होता था। व्यक्तिगत पूजा के लिए घरों में स्तम्भ बनाये जाते थे, मूर्तियाँ और वेदियाँ भी बनाई जाती थीं। देवालय में अनेक प्रकार के उपकरण संगृहित रहते थे।

मन्दिर के प्रवेश के पूर्व उपासक अपने को जल और तेल से पवित्र करता था। तत्पश्चात् वह अर्घ्य देता था और देवी को खाद्यान्न, पेय तथा फल-फूल समर्पित करता था। बलि को प्रथा भी प्रचलित थी। गाय, बैल भेड़ और बकरी की बलि दी जाती थी। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि क्रीट का समाज नारी प्रधान था। अतः देवालय में अधिकतर स्त्रियाँ ही रहती थीं जो मनुष्य को देवता के समीप ले जाने वाला स्रोत समझी जाती थीं। पुजारियों की संख्या अपेक्षाकृत कम होती थी। पुजारियों की वेश-भूषा बहुत पवित्र समझी जाती थी, अतः पुजारी वर्ग भी यही वेश-भूषा धारण करता था। क्रीट का राजा भी धार्मिक कार्यों के अवसर पर स्त्रियों जैसी वेश-भूषा धारण करता था। इस वेश-भूषा में चर्म की बनी हुई स्कर्ट (Skirt) प्रमुख था। पूजा करने वालों में भी स्त्रियों की संख्या अधिक होती थी। अनेक ऐसे चित्र मिले हैं जिनमें स्त्रियाँ सामूहिक पूजन कर रही हैं। मन्दिरों में धूप-बत्ती जलाने की प्रथा भी प्रचलित थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस स्त्री-प्रधान समाज के धर्म में कर्मकाण्ड का विशेष महत्व था। यहाँ के उत्सव भी धार्मिक भावना से प्रेरित रहते थे।

ईजियन लिपि

ईजियन लिपि की सबसे बड़ी समस्या यह है कि वह लिपि आज तक भली भाँति पढ़ी नहीं जा सकी है। उनकी लिपि को चित्राक्षर लिपि ही कहा जायगा। इसमें लगभग 135 चिन्ह होते थे। इस लिपि के कुछ अक्षर मिश्री और कुल 40 अक्षर हित्ती लिपि से मिलते-जुलते हैं। क्रीट का सबसे महत्वपूर्ण अभिलेख 1908 ई० में मिला है। साढ़े छः इंच व्यास की मिट्टी की तश्तरी पर लिखे हुये इस लेख मे 241 चित्राक्षर हैं। ब्यूरी का मत है कि यह कोई मन्त्र है और इसे क्रीटी नहीं कहा जा सकता।

मिनोअन-काल में चित्राक्षर-लिपि के साथ ही रेखा-लिपि का भी विकास हुआ। यह लिपि तो बाएं से दाएँ लिखी जाती थी अथवा पहली पंक्ति बाएँ से दाएँ और दूसरी दाएं से बाएं लिखी जाती थी। इसमें लगभग 90 चिन्ह थे और इस लिपि को भी अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है।

वैज्ञानिक प्रगति

ईजियनों की लिपि के न पढ़े जाने के कारण उनकी वैज्ञानिक प्रगति की भी विशेष जानकारी नहीं है। जो कुछ थोड़ी बहुत जानकारी प्राप्त हुई है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि उनका गणित दशमलव पद्धति पर आधारित था। भार-प्रणाली पर बेबिलोनियों का प्रभाव दृष्टिगत होता है। वे खगोल-विद्या की भी थोड़ी बहुत जानकारी रखते थे और शायद उनके पास उनका पंचांग भी था। इंजीनियरिंग के क्षेत्र में भी उनकी थोड़ी बहुत जानकारी थी।

ईजियन कला—कला के क्षेत्र में ईजियन निवासियों ने बहुत अधिक उन्नति की थी। वे सौन्दर्योपासक थे और प्रकृति की प्रत्येक वस्तु को सुन्दरतम रूप देने का प्रयास करते थे। उनकी कला की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

(1) वैयक्तिकता—ईजियन कला में वैयक्तिता के दर्शन होते हैं। उनकी सील मोहरों में कलाकारों के स्वयम् के व्यक्तित्व की झलक है। यद्यपि उन्होंने विभिन्न कलाओं से कुछ न-कुछ ग्रहण किया परन्तु उसे चित्रित करने में उन्होंने अपनी सूझ-बूझ और व्यक्तित्व का परिचय दिया है।

(2) सर्वाङ्गीणता—मेसोपोटामिया और मिस्र की कलाएँ एकांगी कलाएँ हैं। वे या तो राजाओं की छत्रछाया में पनपी हैं या धर्म का आधार लेकर विकसित हुई हैं परन्तु ईजियन कला सर्वाङ्गीण है। उसमें जीवन का वास्तविक रूप चित्रित किया गया है। वह धार्मिक या राजाओं की कला न रहकर हमारी और आपकी कला बन गई है।

(3) रूढ़िविहीनता—ईजियन कला रूढ़ियों के बन्धन से बंधकर नहीं रही है। उस कला में कलाकारों के हृदय का उन्मुक्त रूप से प्रस्फुटन हुआ है। कलाकार की कल्पना ने कला को और अधिक सजीव बना दिया है। क्रीट के कलाकारों ने किसी भी कला का अन्धानुकरण नहीं किया।

(4) सारग्राहिता—क्रीट के कलाकारों ने विभिन्न कलाओं से सीखा है। बेबिलोनियन सिलेण्डर्स एवं ट्राय के दो हाथ वाले प्यालों की तरह की चीजें क्रीट में भी बनीं। मिस्र की धार्मिक परम्परा का भी क्रीट की कला पर प्रभाव है। मिस्र के कलाकारों की तरह ही यहाँ के कलाकारों ने स्त्रियों को गोरे रंग का और पुरुषों को ताँबे के से रंग का चित्रित किया है।

(5) सामग्री का प्रभाव—यहाँ की कला पर उसकी सामग्री का प्रभाव भी दृष्टिगत होता है। उनकी कला में संगमरमर का प्रयोग नहीं के बराबर हुआ है परन्तु चूना-प्रस्तर और स्टेटाइट अधिक मात्रा में प्रयुक्त हुये हैं। इसका कारण यह था कि वहाँ संगमरमर नहीं प्राप्त होता था और चूना-प्रस्तर और स्टेटाइट की

अधिकता थी। पीली मिट्टी की अधिकता के कारण उसका प्रयोग भी व्यापक मात्रा में हुआ है।

(6) विभिन्न कलाओं का सामंजस्य—क्रीट में विभिन्न कलाओं में सामंजस्य स्थापित हुआ है। स्वर्णकार की कला और कुम्हार की कला में एकरूपता के दर्शन होते हैं। जो भाव चित्रकार अपने चित्र में प्रदर्शित करता था वही भाव मूर्तिकार अपनी मूर्ति में। इस समानता ने ईजियन-कला के विकास में बहुत बड़ा योगदान दिया।

(7) प्राकृतिकता--ईजियन-कला नैसर्गिक कला है। प्रकृति के विभिन्न रूपों का चित्रण इस कला में हुआ है। यहाँ के चित्रकारों ने प्रकृति के विभिन्न रूपों को अपनी तूलिका में बाँध लिया है।

(8) सजीवता—क्रीट के कलाकारों ने सजीवता की ओर विशेष ध्यान दिया है। कोई-कोई चित्र तो बिल्कुल वास्तविक प्रतीत होते हैं। पत्रों से रहित वृक्षों का वसन्त को निहारना, गड़रिये के लड़के द्वारा उछलते हुए वृषभों के कान पकड़ना, दूध पिलाती हुई गायों के चित्रों में बड़ी सजीवता है।

(9) पूर्णता— ईजियन कला में पूर्णता के दर्शन होते हैं। यहाँ जीवन के विभिन्न रूपों के चित्र मिलते हैं। सिंहासन पर विराजमान राजमहिषी के चित्रण में जो पूर्णता है वही पूर्णता बालू पर क्रीड़ा करते हुये मल्लाह के चित्र में परिलक्षित होती है।

(10) लघुता—क्रीट की कला में विशालता के दर्शन नहीं होते। उसमें सत्यता और सुन्दरता तो है परन्तु भव्यता नहीं। उनके सभी चित्र काफी छोटे हैं। सीलों, मुद्रिकाओं और हाथी-दाँत की लघुकृतियों में उनकी कला का वास्तविक रूप प्रगट हुआ है। उनकी समाधियाँ और मूर्तियाँ आदि भी लघु हैं। क्रीट के कलाकारों ने अपनी दक्षता का प्रदर्शन लघु-पात्र, प्याले और तश्तरियाँ आदि बनाने में किया है।

कला

(1) वास्तुकला—ईजियन वास्तुकला का ज्ञान हमें नोसोस, माइसिनी, फैस्टॉस, टिरिस तथा ट्राय के राजप्रासादों, अन्य भवनों और मकबरों से होता है। नोसोस का राजप्रासाद ईजियन वास्तुकला का सर्वोत्तम नमूना है। नोसोस पहाड़ी क्रीट के उत्तरी तट के बीच में थोड़ी दूर पर स्थित थी। यहाँ हो यह विशालकाय प्रासाद बनवाया गया था जो लगभग साढ़े छः एकड़ भूमि में विस्तृत था। इसमें घुसने के लिये दक्षिण की ओर प्रवेश द्वार था। केन्द्रीय प्रांगण बहुत बड़ा था जिसके चारों ओर फैक्ट्रियाँ, राजकीय कार्यालय, भाण्डारगृह आदि थे। इसमें स्नानगृहों, शौचालयों, प्रकाश-

कूपों तथा जल एवं सफाई की भी सुन्दर व्यवस्था थी। दीवालों पर चित्र बने हुये थे। इसमें एक 'दोहरे परशु का कक्ष' था जिसमें 'दोहरे परशु' का चिन्ह बना था।

फेस्टास में निर्मित क्रीट का राजप्रासाद भी बहुत भव्य था। टिरिन्स का राजप्रासाद तो इतना भव्य था कि उसे देखकर यूनानियों ने कहा था कि यह मानव निर्मित है ही नहीं।

राजप्रासादों के अतिरिक्त अन्य भवनों के ध्वंसावशेष भी मिले हैं। वासलिकी में पूर्व-मिनोअन काल का एक भवन मिला है जो आयताकार है। इसको बनाने में ईट, मिट्टी और लकड़ी का प्रयोग किया गया है। इसकी निचली मंजिल में ही 20 कमरे हैं। चमेजी (Chamaizi) में एक अन्य भवन प्राप्त हुआ है जो मिनोअन-कालीन प्रतीत होता है। इसमें 12 कमरे हैं और हर कमरे में एक द्वार है। भवन के बाहर भी एक द्वार है। फर्श मिट्टी के ही बने हुये हैं।

ईजियन लोगों में सामूहिक दफन की प्रथा प्रचलित थी। गोर्निया (Gournia) में कुछ मकबरे और अनेक अस्थि-पंजर मिले हैं। मकबरे मधु-मक्खी के छत्ते की तरह गोल होते थे। शवों के साथ हाथी-दाँत की सिलें, पत्थर और संगमरमर के बर्तन, हथियार और मूर्तियाँ भी मिली हैं।

क्रीट की वास्तुकला अन्य कलाओं की अपेक्षा गिरी हुई थी। उस काल में भव्यता तो है परन्तु सुन्दरता के दर्शन नहीं होते। उपयोगिता की भावना तो क्रीट के कलाकारों में विद्यमान थी परन्तु वास्तुकला में सुन्दरता की भावना के दर्शन नहीं होते। क्रीट की वास्तुकला के विषय में ठीक ही कहा गया है—क्रीट का निर्माण आधुनिक काल के अन्तर्राष्ट्रीय ढंग का था। उसमें त्याग की भावना प्रबल थी आन्तरिक विकास को बाह्य से अधिक महत्व दिया जाता था।

"The Architecture of Crete may be said to have ressembled the modern international style in its sacrifice of form to utility and in its emphasis upon a pleasing and livable interior as more important than external beauty."

(2) **तक्षण और स्थापत्य**—क्रीट की तक्षण और स्थापत्यकला बहुत उच्चकोटि की थी। तक्षण-कला में विशालता का प्रभाव है। मिस्र के कलाकारों की भांति यहाँ के कलाकारों ने विशाल मूर्तियों को नहीं बनाया है परन्तु उन्होंने लघु-पात्र, मोहरें, तश्तरियाँ और फूलदान आदि बड़ी सुन्दरता से बनाएँ हैं। ये सब चीजें मिट्टी, हाथी-दाँत और अन्य धातुओं की बनती थीं। परवर्ती मिनोअन युग की 6 इन्च ऊँची नागदेवी अथवा पुजारिण की मूर्ति हाथी-दाँत द्वारा बनाई हुई है। इस मूर्ति के दोनों हाथों में सर्प है और वह लहँगा, चुस्त ब्लाउज और ऊंचा हैट पहने हुए हैं। एक प्रकार की सेलखड़ी के बने हुए 'कृषकों के पात्र' भी बहुत सुन्दर हैं। स्टीटाइट के बने हुए 'राजा के पात्र' में एक शासक को अपने सैनिकों का स्वागत करते हुए दिखाया गया है। 'घूसेबाजों

के पात्र' में घूँसे बाजी को चित्रित किया गया है। स्वर्णकारी की कला के उत्कृष्ट नमूने सोने के बने हुए दो प्याले हैं। इन प्यालों में बनैले वृषभों की मूर्तियां तक्षित की गई हैं।

इन नमूनों के अतिरिक्त एक कांस्य की बनी हुई उपासक की मूर्ति, मुरली धर की मूर्ति, सर्प-देवी का चित्र आदि भी प्रसिद्ध हैं।

(3) मृ-कुम्हार कला—प्राचीन मिनोअन-युग में मिट्टी के वर्तन हाथ से बनाए जाते थे अतः वे सुन्दर नहीं होते थे। मध्य-मिनोअन-युग में चाक और मिट्टी का आविष्कार हुआ और फलस्वरूप अनेक सुन्दर घड़े, प्याले और तश्तरियां बनाई गई। ये वर्तन बड़े चिकने और सुडौल हैं। सर्पिल रेखाओं वाले मिट्टी के बर्तन अधिक प्रसिद्ध हैं। ईजियन कुम्हारों की कला के दो सुन्दर नमूने गूर्निया से प्राप्त गहरे कत्थई रंग के दो अष्टपाद हैं।

(4) चित्रकला—चित्रकला में ईजियन कलाकार अत्यन्त प्रवीण थे। उनके चित्रों में जीवन के विविध रूपों को चित्रित किया गया है। चित्र गीले प्लास्टर पर किए गए चूने के लेप पर बनाते थे। अधिकतर प्राकृतिक दृश्यों और वनस्पतियों को चित्रित किया गया है, परन्तु उसमें यथार्थता के दर्शन नहीं होते। 'कप बेयरर' चित्र उनकी कला का सर्वोत्कृष्ट नमूना है। इसमें एक लम्बे व्यक्ति को अपने हाथ में एक प्याला लिए हुए दिखलाया गया है। हेगिया, टियाडा में प्राप्त एक चित्र में एक काली बिल्ली को तीतर की ओर बढ़ते हुए दिखलाया गया है। इस चित्र में बड़ी सजीवता है। शिलाओं के मध्य उड़ते हुए पक्षी का चित्र, उड़ती हुई मछली का चित्र उनकी कला का निश्चित रूप हमारे सम्मुख रखते हैं। नृत्य करती हुई एक स्त्री का चित्र भी बहुत सुन्दर है। माइसिनियन नगरों के भित्ति चित्रों में सैनिक-जीवन की झाँकी प्रस्तुत की गई है।

ईजियन चित्र कला का सबसे बड़ा दोष यह है कि इन चित्रों के निर्माण में बहुत जल्दबाजी की गई है। चूने के लेप पर शीघ्रता से चित्रकारी करने के कारण कहीं-कहीं चित्रों में फूहड़पन की झलक भी देखने को मिलती है जैसे गुलाब को हरा भी चित्रित किया जा सकता था और पौधों को उलटा भी बनाया जा सकता था।

नृत्य एवं संगीत कला—इन लोगों में नृत्य और संगीत कला का भी प्रचार हो चुका था। इनके राजप्रासादों में नाटक के लिए कमरा होता था। इनके नाटक संगीत और नृत्य का सम्मिश्रण होते थे। नाचते-गाते हुए पुरुषों और स्त्रियों के बहुत से चित्र मिलते हैं। नृत्य करती हुई एक स्त्री का चित्र तो बहुत सुन्दर है। यह लोग वीणा, बांसुरी और शंख बजाना जानते हैं।

ईजियन सभ्यता का मूल्यांकन

ईजियन सभ्यता पाश्चात्य सभ्यताओं की जननी है। विश्व की अनेक सभ्यताओं को ईजियन लोगों की बहुत बड़ी देन है। क्रीट निवासी सर्वप्रथम नाविक थे, सामुद्रिक व्यापार और औपनिवेशीकरण का आरम्भ यहीं से हुआ। यूनानी धर्म पर यहाँ के निवासियों के धर्म का प्रभाव है। क्रीट के नागरिक संगटन, राजनीतिक पद्धति और माप-तौल की प्रणाली से भी यूनानियों ने बहुत कुछ ग्रहण किया। साइप्रस के धर्म और भाषा, सिसली के पत्रों और तलवारों, इटली के बर्तनों आइबेरिया के परशु, और कपोती तथा फीनेशिया की वर्णमाला पर ईजियन सभ्यता का प्रभाव प्रतीत होता है। रेने ने इस सभ्यता के यूनान और अन्य देशों पर प्रभाव को चित्रित करते हुए ठीक ही लिखा है—"ग्रीक सभ्यता जो योरुपीय और रोम की सभ्यता की जननी है, वह ईजियन सभ्यता की पुत्री थी।"

"Greek civilization, the mother of the civilization of Rome and the West is the daughter of Aegean civilizatio

—Reinach.

सारांश

यूनान और एशिया माइनर के बीच के समुद्र को ईजियन सागर के नाम से पुकारा जाता था। अति प्राचीनकाल में इस सागर के छोटे-छोटे द्वीपों जैसे क्रीट, ट्राय, टिरिंस और माइसीन आदि में जिस सभ्यता का जन्म हुआ उसे ईजियन सभ्यता के नाम से पुकार जाता है। भौगोलिक कारणों से यहाँ की सभ्यता का विकास हुआ। यहां के इतिहास को उत्तर-पाषाण-काल, मध्य-मिनोअन-काल, उत्तर-मिनोअन-काल में विभाजित किया गया है। मिनोअन-काल में यहाँ को सभ्यता का सबसे अधिक विकास हुआ।

ईजियन शासन-व्यवस्था में सम्राट का महत्वपूर्ण स्थान था। वह राज्य का प्रधान पुजारो, सेनापति और प्रधान न्यायाधीश होता था। उनकी सुरक्षा के लिए एक सेना होती थी। इस युग में जलसेना का भो विशिष्ट स्थान था। अधिकतर कारावास का दण्ड देने की प्रथा थी जो अधिकतर पृथ्वी के अन्दर होते थे। राज्य की आय के मुख्य साधन कर और व्यापार था।

ईजियन समाज में सम्मिलित-परिवार की प्रथा थी। इनका रहन-सहन बड़ी उच्च कोटि का और वेष भूषा सादी थी। स्त्रियों और पुरुष दोनों हो आभूषण पहनते थे जिनमें मुद्रिका, कर्णफूल और नैक्लेस प्रसिद्ध थे। मुष्टि-युद्ध, कुश्ती और मानव पशु युद्ध इनके आमोद-प्रमोद के मुख्य साधन थे। क्रीट का समाज स्त्री-प्रधान था। स्त्रियाँ पुरुषों की भाँति ही समस्त कार्य करती थीं। वे नवीनता की पक्षपाती थीं।

क्रीट में कृषि अधिक नहीं होती थी। यहाँ के निवासियों ने औद्योगीकरण की नीति को अपनाया था और अनेक फैक्ट्रियों की स्थापना की थी।

ये लोग बहुदेववादी थे। मातृ-पूजा और देवता की पूजा का विशेष महत्व था। इन दोनों का प्रतीक 'दोहरा-पशु' था। ये लोग शस्त्र-पूजा, पाषाण-पूजा, पशु-पूजा, और पादप-पूजा में भी विश्वास करते थे। स्वस्तिका और 3, धर्म के प्रतीक चिह्न माने जाते थे। वृषभ का सींग भी धर्म चिह्न माना जाता था। आरम्भ में यह खुले में ही पूजा करते थे परन्तु कालान्तर में मन्दिरों का निर्माण हुआ। मन्दिरों में स्त्रियाँ ही अधिकतर पुजारिनों का कार्य करती थीं। बलि की प्रथा प्रचलित थी।

ईजियन लिपि के दो रूप मिलते हैं चित्राक्षर-लिपि, रेखा-लिपि। चित्राक्षर-लिपि में 135 चिह्न थे और मिनोअन-कालीन रेखा-लिपि में 90 चिह्न थे। वैज्ञानिक क्षेत्र में इनकी प्रगति की विशेष जानकारी नहीं है। इन्हें दशमलव प्रणाली, खगोल विद्या और इन्जीनियरिंग का थोड़ा बहुत ज्ञान था।

ईजियन-कला में वैयक्तिकता, सर्वांगीणता, रूढ़िविहीनता; सारग्राहिता, प्राकृतिकता, सजीवता, पूर्णता, लघुता और विभिन्न कलाओं के सामंजस्य के दर्शन होते हैं। वास्तुकला के नमूने नोसी, माइसिनी, फेस्टास, टिरिंस और ट्राय के राज-प्रासाद हैं। इनके भवन एवं मकबरे भी मिलते हैं। वासिलकी के एक भवन में नीचे की मंजिल में ही 20 कमरे मिले हैं। गूर्नियाँ के मकबरे का विशेष महत्व है। इनकी वास्तुकला अपेक्षाकृत निकृष्ट थी। तक्षण और स्थापत्य कला में इन्होंने विशेष उन्नति की थी। अनेक पात्र, मोहरें, तश्तरियाँ और फूलदान प्राप्त हुए हैं। 6 इन्च ऊँची नागदेवी अथवा पुजारिन की हाथी दाँती की बनी मूर्ति बहुत सुन्दर है। उपासक की मूर्ति और मुरलीधर की मूर्ति में भी सजीवता है। ये लोग मिट्टी के बर्तन बनाने की कला में प्रवीण थे। गूर्नियाँ में प्राप्त दो कत्थई रंग के अष्टपाद इनकी इस कला के परिचायक हैं। चित्रकला में ये विशेष उन्नति कर चुके थे। जीवन के विभिन्न रूपों का चित्रण इनकी चित्रकला में हुआ। 'कप बेयरर' चित्र' काली बिल्ली और उड़ती हुई मछली के चित्र इनकी चित्रकला के सुन्दर नमूने हैं। इनकी चित्रकला में प्रकृति का भी चित्रण है। ये नृत्य और संगीत से भी परिचित थे। ये लोग वीणा, बाँसुरी और शंख बजाते थे।

ईजियन सभ्यता ने विश्व की अनेक सभ्यताओं पर अपनी छाप डाली है। एक विद्वान ने तो यहाँ तक कह दिया है कि रोम और पश्चिम की सभ्यता ईजियन सभ्यता की पुत्री है।

———

यूनान की सभ्यता और संस्कृति

GREEK CIVILIZATION AND CULTURE

अध्याय | 22

होमर काल और 'क्लासिकल' यूनान का जन्म

(HOMERIC AGE AND THE BIRTH OF 'CLASSICAL' GREEK)

प्रश्न 1—ग्रीक इतिहास में होमरिक युग का क्या महत्व है ?

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

What is the importance of the Homeric Age in Greek History.

(Allahabad University)

प्रश्न 2—यूनान की होमरकालीन संस्कृति का वर्णन कीजिये।

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

Describe the Greek culture in Homeric age.

(Gorakhpur University)

प्रश्न 3—स्पार्टा के संविधान तथा प्रथाओं का वर्णन कीजिये। स्पार्टावासियों तथा एथेंसवासियों की जीवन-विधि में क्या अन्तर था ?

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

Describe the constitution and customs of Sparta. Point out the difference between the Spartan and the Athenian ways of life.

(Allahabad University)

प्रश्न 4—स्पार्टा के पतन के क्या कारण थे ? सोलन के सुधारों का संक्षेप में विवेचन कीजिये।

What were the reasons for the down-fall of Sparta ? Discuss in brief the reforms of Solan.

यूनानी सभ्यता का विश्व की सभ्यताओं में विशेष स्थान है। यह सभ्यता योरोपीय सभ्यता की जननी है। संसार ने यूनानवासियों से बहुत कुछ सीखा है। संसार की विभिन्न सभ्यताओं पर यूनान की सभ्यता की छाप है। रोम की मशहूर सभ्यता यूनानी सभ्यता की ऋणी है।

यूनान का प्रायद्वीप तीन ओर से भूमध्यसागर से घिरा हुआ है। उत्तरी और दक्षिणी यूनान के मध्य कोरिन्थ की खाड़ी स्थित है। यूनान और एशिया माइनर के

बीच ईजियन सागर लहराता है। इस सागर में अनेक द्वीप हैं जहाँ यूनान और एशिया की सभ्यताओं का सम्मिलन हुआ। यूनान के चारों ओर प्राचीन देश हैं पश्चिम में अफ्रीका है जिसके उत्तरी समुद्र तट पर कार्थेज की सभ्यता पनपी थी। कार्थेज के पूर्व में मिस्र देश है जिसकी सभ्यता विश्व की प्राचीनतम सभ्यता मानी जाती है। इसके साथ ही फोनेशिया, असीरिया, बेबीलोनिया, लीडिया, मेसीडोनिया आदि ऐसे देश थे जिन्होंने भी यूनान को प्रभावित किया था।

यूनान में पर्वतीय प्रदेशों की अधिकता है। यहाँ की जलवायु समशीतोष्ण है। प्राकृतिक विभाजन के आधार पर यूनान के तीन रूप मिलते हैं—

(1) उत्तरी यूनान
(2) मध्य यूनान
(3) दक्षिणी यूनान

उत्तरी यूनान के प्रमुख प्रान्तों में थेसली और एपरस थे। मध्य यूनान 9 राज्यों से युक्त था। इन राज्यों में एटिका सबसे प्रसिद्ध राज्य था जिसकी राजधानी एथेन्स थी। दक्षिणी यूनान में 7 राज्य थे। इन राज्यों में सबसे प्रमुख लकोनिया था जिसकी राजधानी स्पार्टा थी।

यूनानियों के आदि निवास-स्थान के विषय में विद्वानों का मत है कि यह बालकन प्रायद्वीप के उत्तर-पश्चिम में रहते थे। यह आर्य और अनार्य जाति की मिश्रित जाति के थे। ये चार उपशाखाओं में विभक्त थे —

(1) एकीअन
(2) आयोसियन
(3) आयोनियन
(4) डोरिअन

यूनान का इतिहास

अध्ययन की सुविधा के लिए हमने यूनान के प्राचीन इतिहास को 3 भागों में विभाजित किया है।

(1) होमर युग
(2) क्लासिकल युग (प्रारम्भिक काल)
(3) पेरिक्लिज युग और क्लासिकल यूनान का अन्त

इसके अतिरिक्त, कुछ विद्वान सिकन्दर महान के बाद के युग को भी यूनानी सभ्यता के इतिहास के अन्तर्गत रखते हैं परन्तु वास्तव में उस युग को हेलोनिस्टिक युग के नाम से पुकारना अधिक उत्तम होगा। इस युग की सभ्यता यूनानी सभ्यता से बिल्कुल भिन्न थी।

होमर काल

यह काल 1200 ई० पूर्व से 800 ई० पूर्व तक माना जाता है। इस युग को वीर-गाथा काल के नाम से भी पुकारा गया है। इसे महाकाव्यों का युग भी कहा गया है। यूनान के सर्वप्रथम कवि होमर ने ओडसी और इलियड नाम के दो महाकाव्यों की रचना की जिनमें यूनान के वीरों की गौरव गाथाएं अंकित की गई हैं। इन काव्यों का प्रभाव यूनान की जनता पर बहुत अधिक पड़ा और फलस्वरूप इस युग का नाम होमर-युग रक्खा गया।

राजनीतिक व्यवस्था

इलियड और ओडसी नामक महाकाव्यों में राजनीतिक व्यवस्था पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। इन्हों के आधार पर इस युग की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक अवस्थाओं का विवेचन करेंगे।

(1) राजा—सम्राट शासन का सर्वोच्च पदाधिकारी होता था। न्याय का वह मूल स्रोत था और उसे ही राज्य का वास्तविक पुरोहित माना जाता था। देखने में ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे वह बिल्कुल निरंकुश हो परन्तु राजा किसी व्यक्ति पर अत्याचार करने का अधिकारी नहीं था। सैद्धान्तिक रूप से तो उसे सर्वोच्च न्यायाधीश माना गया था परन्तु वास्तविकता यह थी कि अधिकतर वह मध्यस्थ का ही कार्य करता था। इसका कारण यह था कि यूनान में कोई सुसंगठित विधान नहीं था और परम्पराओं के आधार पर ही निर्णय किये जाते थे। सत्य तो यह है कि जनता स्वयं अपना निर्णय कर लेती थी और राजा को बहुत कम कार्य करना पड़ता था।

होमर-युग रक्तपात से परिपूर्ण था। अतः उस युग में सैनिक शक्ति के सुदृढ़ होने की अधिक आवश्यकता थी। सम्राट ही देश का सर्वोच्च सेनापति था। राजा की सहायता के लिये एक सेना थी जिसके शिक्षण, निवास आदि का प्रबन्ध राज्य की ओर से होता था। युद्ध के अवसर पर सम्राट स्वयं ही सेना का नेतृत्व करता था। सैनिकों के लिये अस्त्र-शस्त्र जैसे भाले, बरछियाँ, तलवार, कवच, शिरस्त्राण आदि बनाने का कार्य भी राजा का ही था।

होमर-काल में सम्राट को सर्वोच्च पुरोहित भी माना जाता था। राजनीतिक और धार्मिक दोनों ही दृष्टियों से सम्राट का महत्वपूर्ण स्थान था।

2) अन्य सभाएँ – वीरकाथा काल में समाज की इकाई परिवार थी। परिवारों से फ्रैट्रा बनता था। हर फ्रैट्रा का एक सामन्त होता था और सामन्त ही अपने बीच में से सबसे अधिक शक्तिशाली सामन्त को सम्राट बना देते थे। शासन के कार्य में सम्राट को परामर्श देने के लिये इनकी सभाएं होती थीं—

(1) ब्यूल

(2) एगोरा

एगोरा स्वतन्त्र नागरिकों की सभा थी और ब्यूल में केवल सामन्तों का ही स्थान रहता था। ये सभाएं राजा के समस्त कार्यों पर विचार करने का अधिकार रखती थीं परन्तु इनके अधिकारों और कर्त्तव्यों का निश्चय नहीं किया गया था। फलस्वरूप ये दोनों सभाएं भली-भाँति से कार्य नहीं कर पाती थीं। सत्य तो यह है कि इस युग में राजनीतिक चेतना का अभाव था और इसी कारण साम्राज्य की अधिक उन्नति नहीं हो सकी। इस सम्बन्ध में बर्न्स का मत है—"होमर-काल में ग्रीक लोगों की संस्थायें अत्यन्त आरम्भिक थीं। सभी छोटी-छोटी जातियाँ बाह्य नियत्रण से स्वतंत्र थीं। राजनीतिक शक्ति इतनी क्षीण थी कि उसे राज्य की संज्ञा देना ही कठिन है।"

"The political illustrations of Homeric Greeks were exceedingly primitive. Each little community of villages was independent of external control but political authority was so tenuous that it would not be too much to say that the State scarcely existed at all."

-- Burns.

सामाजिक व्यवस्था

परिवार—परिवार ही समाज की इकाई थी। अनेक परिवार एक ही समूह में रहते थे। प्रत्येक सदस्य को पिता की आज्ञा माननी पड़ती थी। वह परिवार के किसी सदस्य को दंड दे सकता था। अपने बच्चों को वह देवताओं को संतुष्ट करने के लिये भेंट कर सकता था। यद्यपि यह ठीक है कि परिवार में पिता का महत्वपूर्ण स्थान था परन्तु ऐसा बहुत कम होता था कि किसी पिता ने परिवार के अन्य सदस्यों पर अत्याचार किया हो।

स्त्रियों की दशा होमर-कालीन समाज में स्त्रियों की दशा अच्छी थी। उनका मुख्य कार्य बच्चों का पालन-पोषण ही था परन्तु वे समाज के प्रत्येक क्षेत्र में अपना दखल रखती थीं। गृह-लक्ष्मी के रूप में तो उनका आदर था ही, साथ ही वे सार्वजनिक कार्यों में भी भाग लेती थीं। नारी ही इस युग के पुरुषों की प्रेरणास्रोत थी। इस युग के बड़े-बड़े संघर्ष स्त्रियों के कारण ही हुये।

विवाह प्रथा—होमर-कालीन समाज में विवाह स्वयं स्त्री पुरुष द्वारा तय न किये जाकर युवती के पिता और उसके होने वाले दामाद द्वारा तय किया जाता था। वास्तव में स्त्रियाँ खरीदी जाती थीं। कोई पुरुष किसी स्त्री के पिता को तय किया हुआ धन देकर उसकी कन्या को प्राप्त कर सकता था।

रहन-सहन—होमर-कालीन समाज में लोगों का रहन-सहन बड़ा साधारण था। पुरुष अपने शरीर के ऊपरी भाग पर एक बिना सिला हुआ वस्त्र डाल लेते

थे। उसी वस्त्र के द्वारा नीचे के हिस्से को भी ढकते थे। जाँघिये और लंगोट का भी प्रयोग करते थे। अधिकतर लोग नंगे पैर रहते थे परन्तु कभी-कभी जूतों का भी प्रयोग करते थे। पुरुष बड़े-बड़े बाल और दाढ़ी-मूछ रखते थे तथा स्त्रियों के समान ही आभूषणों का प्रयोग करते थे।

आमोद-प्रमोद—आमोद-प्रमोद का मुख्य साधन आखेट था। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के दौड़ों का प्रचलन भी इस युग में हो चुका था।

खान-पान—यहां के निवासियों का मुख्य भोजन, अन्न, तरकारी और मछली था। मदिरा का प्रयोग उच्च वर्ग में प्रचलित हो चुका था।

वर्ग व्यवस्था का रूप—होमर कालीन समाज में वर्ग-व्यवस्था थी। साधारणतः समाज अभिजात, मध्य और निम्न श्रेणी में विभाजित किया गया था। परन्तु इस वर्ग-व्यवस्था की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि परिश्रम का महत्व सभी वर्गों के लिये अधिक था। अभिजात वर्ग के लोग निम्न वर्ग के लोगों की नियुक्ति तो करते थे परन्तु अपना कार्य करने के लिए स्वयं तैयार रहते थे।

आर्थिक जीवन

होमर कालीन समाज में कृषि का महत्व बहुत अधिक था। चूंकि यहाँ की सभ्यता आक्रमण प्रधान सभ्यता थी अतः कृषिकर्म की ओर विशेष ध्यान दिया गया था। इस युग में यूनान में विभिन्न प्रकार के कुटीर उद्योग प्रचलित हो गये थे, परन्तु व्यापार पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया था। दैनिक-जीवन में प्रयोग होने वाले वस्त्र अधिक मात्रा में बनाये जाते थे। तलवार बनाने वाले, सुनारों, कुम्भकारों, घड़ी बनाने वालों को अच्छी दृष्टि से देखा जाता था। इस युग के लोग दूसरों पर निर्भर रहने के पक्षपाती नहीं थे। वे गाय, बैल, भेड़, बकरी, सुअर, घोड़े आदि पशुओं को पालते थे और अपने दैनिक जीवन के वस्त्रों का निर्माण करने का स्वयं प्रयत्न करते थे। इस सम्बन्ध में बर्न्स लिखता है—

"For the most part every household made it own tools, wore its own clothing and raised its own food."

'मर्चेन्टस' नामक शब्द का प्रयोग होमर कालीन युग में नहीं हुआ था। चीजों के आदान-प्रदान द्वारा ही लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी परन्तु आगे चलकर कुशल व्यापारी होने लगे थे।

दर्शन एवं धर्म

होमर के महाकाव्यों का अध्ययन करने से तत्कालीन धर्म के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। इस युग के मनुष्य सांसारिक और आशावादी थे। वे अपना जीवन आनन्दपूर्वक व्यतीत करना चाहते थे, अतः धर्म का स्वरूप भी वास्तविक

था। नैतिकता की ओर अधिक ध्यान न देकर यथार्थवादी दृष्टिकोण को अपनाया गया था। आत्मा और परमात्मा, यम, नियम, प्राणायाम और लोक, परलोक के विषय में यह लोग चिंतित नहीं थे। पाप, पुण्य पर भी यह लोग विचार नहीं करते थे। इस युग में प्राकृतिक तत्वों का पूजन किया गया था और अनेक देवी-देवताओं को मान्यताएँ प्रदान की गई थीं। देवताओं का निवास ओलिम्पस पर्वत पर माना जाता था और यह विश्वास किया जाता था कि देवता अमर है। इस युग के देवताओं में जियस (आकाश-देव), अपोलो (सूर्य-देव) और एथिना (युद्ध-देवी) का स्थान मुख्य था।

यूनान के निवासियों का यह विश्वास था कि यदि देवताओं की आराधना की जायेगी तो देवता प्रसन्न होकर मनुष्य को सुख और शान्ति प्रदान करेंगे। देवताओं की पूजा सर्वत्र की जाती थी। पुजारी-वर्ग का धर्म में कोई स्थान नहीं था।

यह ठीक है कि होमर-युग में यूनानी बड़े यथार्थवादी थे, परन्तु इसके यह अर्थ नहीं कि उनमें नैतिकता की भावना बिल्कुल नहीं थी। वे माता-पिता, गुरुजनों आदि के प्रति बड़े विनम्र थे। वे परोपकार को भी महत्व प्रदान करते थे परन्तु शत्रुओं के प्रति किसी भी प्रकार को दया दिखलाने के पक्षपाती नहीं थे।

साहित्य और कला

होमर-काल, यूनानी इतिहास में संघर्ष-काल के नाम से प्रसिद्ध है। संघर्ष के मध्य साहित्य और कला की उन्नति की कल्पना नहीं की जा सकती। यही कारण था कि इस युग में साहित्य और कला की बहुत कम उन्नति हुई। इस युग में चारणों द्वारा गीत गाये जाते थे, यही इनका काव्य था और यही इतिहास।

कला के क्षेत्र में भी महाकाव्यों द्वारा कुछ प्रकाश नहीं डाला गया। वास्तुकला के विषय में अवश्य कुछ संकेत किया गया है। इस कला के क्षेत्र में यूनानियों ने थोड़ी-बहुत उन्नति की थी। वे अपने मकानों का निर्माण पक्की ईंटों द्वारा करते थे। फर्श और छत बनाने में बांस, मिट्टी आदि का प्रयोग किया जाता था। कला की दृष्टि से इनके घर सुन्दर नहीं होते थे। उपयोगिता की ओर भी विशेष ध्यान नहीं दिया गया था। साधारण घरों में किसी भी स्नानागार अथवा पाकशाला का उल्लेख नहीं मिलता। इस युग में कुछ राज-भवन भी बनवाये गये जो अपेक्षाकृत अधिक सुन्दर थे।

सत्य तो यह है कि होमर काल में यूनान की विशेष सांस्कृतिक उन्नति नहीं हुई। कला आदि के क्षेत्र में इन लोगों ने कोई विशेष उन्नति नहीं की थी। इस युग का सभ्यता यूनान की आरम्भिक सभ्यता के नाम से पुकारी जाती है। अतः इस

बात की आशा नहीं की जा सकती कि इस युग में यूनान ने वैसी हो उन्नति की होगी जैसा कि उसके आगे आने वाले कालों में हुई।

क्लासिकल यूनान का जन्म

यूनान के इतिहास में 800 ई० पू० से लेकर 469 ई० पू० तक का युग विशेष महत्व रखता है। इस युग में यूनान में नागरिक-राज्यों का उदय हुआ। होमर-काल की सभ्यता ग्राम सभ्यता है। इस युग में नगरों का बहुत अधिक विकास हुआ। नगरों के उदय का मुख्य कारण यह था कि 800 ई० पू० तक राज्यों के सामन्तों की शक्ति इतनी अधिक बढ़ गई थी कि ऐसा प्रतीत होता था कि वे सम्राट को पद से हटा देंगे। 800 ई० पू० और 700 ई० पू० के मध्य यूनान में यह सामन्तवादी अथवा कुलीनतत्रीय व्यवस्था चलती रही। 800 ई० पू० के पहले यूनान में राजतत्रीय व्यवस्था थी, परन्तु 800 ई० पू० के लगभग कुलीनतंत्रीय (Oligarchical) व्यवस्था स्थापित हुई। इसका विनाश करके टिरिस ने एक नई व्यवस्था स्थापित की। 600 और 500 ई० पू० के मध्य यूनान में जनतंत्रात्मक शासन पनपा। अनेक छोटे-छोटे नगर-राज्य स्थापित हुये और इसमें जनतत्रात्मक प्रणाली को अपनाया गया। इन नगर-राज्यों में एथेन्स, थेबीज, मेगारा, कोरिन्थ, मिलीटस और स्पार्टा प्रमुख थे।

नगर राज्य का लघुत्व

जितने भी नगर-राज्य थे वे सब बहुत छोटे थे। यह व्यवस्था विभिन्न कारणों से यूनान के अनुकूल थी। यूनान की भौगोलिक स्थिति ने छोटे-छोटे नगर-राज्यों के बनने में सहयोग दिया। साथ ही यूनान में यातायात और आवागमन के साधन इतने अच्छे नहीं थे कि पर्वतीय प्रदेशों में सुचारु रूप से शासन व्यवस्था की जा सके। इस कारण भी नगर राज्य अधिक उपयोगी सिद्ध हुये। यूनानियों की आवश्यकतायें बहुत कम थीं। वे साधारण और सरल जीवन व्यतीत करते थे, अतः छोटे-छोटे नगर-राज्यों में ही उनको वास्तविक आनन्द की प्राप्ति हो सकती थी। सदैव से ही यूनानी जनतांत्रिक थे, अतः उन्होंने नगर-राज्यों को अपने लिये बहुत उपयोगी समझा।

इन समस्त राज्यों में जनता द्वारा शासन होता था और सभी मनुष्यों को शासन में दखल देने का अधिकार था।

विभिन्न नगर-राज्यों में स्पार्टा और एथेन्स का विशेष महत्व है। अतः हम विस्तार से इन राज्यों की चर्चा करेंगे।

स्पार्टा (Sparta)

स्पार्टा तेलीपोनेसस अर्थात् दक्षिणी यूनान के लेकोनिया प्रदेश का प्रधान नगर था। यह उत्तर-पूर्व और पश्चिम में पर्वतीय श्रेणियों से घिरा हुआ था। इस राज्य में कोई बन्दरगाह न था, इस कारण शेष यूनान से कटा हुआ था। यही कारण है कि जिस समय यूनान में जनतंत्रवादी विचारधारा का उदय हो रहा था स्पार्टा में सैनिकवाद और निरंकुशवाद को अपनाया गया था। जनतांत्रिक युग में स्पार्टा एक ऐसा अपवाद था जहाँ सैनिकवादी व्यवस्था को अपनाया गया। इसका मुख्य कारण यह था कि यहाँ के निवासी 'डोरियन' जाति के थे जिन्होंने यूनान में बाहर से प्रवेश किया था अर्थात् वहाँ के मूल निवासियों को परास्त करके अपने शासन की स्थापना की थी। इस जाति को सदैव इस बात का डर बना रहता था कि कहीं यूनान के मूल निवासी इनके विरुद्ध विद्रोह न कर दें। अतएव उन्होंने निरंकुश और कठोर सैनिकवादी शासन को अपनाया था।

लाइकर्गस स्पार्टा का विधान

600 ई० पू० के लगभग स्पार्टा में एक नई व्यवस्था को लागू किया गया था जिसे लाइकर्गस के नाम से पुकारा जाता है। 625 ई० पू० में स्पार्टा में लाइकर्गस नाम का व्यक्ति पैदा हुआ। इस समय स्पार्टा की दशा बहुत चिंतनीय थी। देश में अशान्ति थी और सदैव बाह्य-आक्रमण का भय बना रहता था। इसी संकटकालीन परिस्थितियों में स्पार्टा के पदाधिकारियों ने लाइकर्गस को निमंत्रित करके एक नये संविधान का निर्माण करने का आदेश दिया। इसके बनाये हुए सिद्धान्त ही स्पार्टा में प्रचलित हुये।

इस संविधान के अनुसार स्पार्टा की राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन किये गये। संविधान के 4 मुख्य अंग थे :—

(1) सम्राट
(2) सेनेट
(3) असेम्बली
(4) डायरेक्टरी

(1) **सम्राट**—स्पार्टा में द्विराजात्मक व्यवस्था को अपनाया गया था। दो राजाओं की नियुक्ति निरंकुशता को रोकने के लिये की गई थी। ये दोनों सम्राट ही राज्य के सर्वोच्च सेनापति, पुरोहित और न्यायाधीश होते थे। ये दोनों सेनेट की राय से ही कार्य करते थे।

(2) सेनेट सेनेट को जरूसिया (Gerusia) नाम से पुकारा जाता था। इसमें 28 सदस्य होते थे जो अपेला (Apella) द्वारा चुने जाते थे। इनके

सदस्यों की आयु 60 वर्ष से अधिक होना अनिवार्य थी । दोनों सम्राट भी इसके सदस्य होते थे । सेनेट ही स्पार्टा की व्यवस्थापिका सभा व सर्वोच्च न्यायालय थी ।

(3) **असेम्बली**—असेम्बली को अपेला (Apella) के नाम से पुकारा जाता था । इसमें लगभग 8000 सदस्य होते थे । राज्य के प्रत्येक स्वतन्त्र नागरिक जिसकी आयु 30 वर्ष हो गई होती थी; को इसका सदस्य माना जाता था । इसी सभा के द्वारा जेरूसिया और डायरेक्टरी के सदस्यों को चुना जाता था । जरूसिया द्वारा पारित बिलों को कानून का रूप देना भी इसी सभा का कार्य था । आरम्भ में इस सभा का अध्यक्ष सम्राट हुआ करता था परन्तु बाद में डायरेक्टरी के सदस्य ही इसके अध्यक्ष होते थे । इस सभा को केवल मत देने का अधिकार था ।

(4) **डायरेक्टरी**—इसके सदस्यों को 'एफर' (Ephors) के नाम से पुकारा जाता था जिनकी संख्या 5 थी । ये असेम्बली द्वारा निर्वाचित किये जाते थे । 556 ई० पू० के बाद एफरों की शक्ति का बहुत अधिक विस्तार हो गया । यही नागरिकों की शिक्षा की व्यवस्था करती थी और विदेश नीति का सचालन करती थी । जरूसिया और अपेला की मध्यस्थता भी यही करती थी । इस प्रकार हम देखते हैं कि स्पार्टा का शासन न तो मूल रूप में राजतन्त्र था और न अभिजाततन्त्र था, न कुलीन-तन्त्र था और न प्रजातन्त्र था । इसके सम्बन्ध में एक विद्वान ने लिखा है—"स्पार्टा की सरकार आकार में राजसत्तात्मक थी, सिद्धान्त में गणराज्य थी और वस्तुतः वर्ग-तन्त्रात्मक थी ।"

"Spartan Government was in form a monarchy, in thoray republic and in reality an oligarchy."

संविधान और अन्य विशेषतायें

स्पार्टा के संविधान में नागरिकों को स्वस्थ, अनुशासित और सैनिक शिक्षा में दक्ष करने वाली बातों का समावेश किया गया था । नागरिक तन्दुरुस्त बन सकें इसके लिये कुछ निश्चित नियम बनाये गये थे, जो निम्न हैं—

(1) नये पैदा हुये कमजोर बच्चों के वध करने का अधिकार उनके पिता को था । तन्दुरुस्त बच्चों को भी 3 दिन तक पहाड़ की खोह या जंगलों में छोड़ दिया जाता था । यदि वह वहाँ बच जाते थे तो उन्हें उनकी माँ के पास लाया जाता था ।

(2) 7 वर्ष से 20 वर्ष तक की आयु के बालकों को राजकीय शिविरों में सैनिक-शिक्षा देना अनिवार्य था । वहाँ इनकी शिक्षा इस प्रकार होती थी कि उनका स्वास्थ्य बढ़ सके ।

(3) 20 वर्ष की आयु में वे विवाह करते थे परन्तु स्त्री-पुरुष, गृहस्थ-जीवन नहीं व्यतीत कर सकते थे। वे बैरकों में रहते थे और पति-पत्नी चोरी से एक दूसरे से मिलते थे।

(4) 30 वर्ष की आयु में युवक वयस्क समझा जाता था। इस समय वह असेम्बली में भाग लेने का अधिकारी होता था। 30 वर्ष और 60 वर्ष की आयु के मध्य भी लोगों को सैनिक-शिक्षा मिलती थी।

(5) विवाह सबके लिये आवश्यक था और अविवाहित लोगों को मत देने का अधिकार नहीं रहता था। विवाह का मूल उद्देश्य हृष्ट-पुष्ट संतान उत्पन्न करना था। स्वस्थ बच्चे के लिये कोई भी पुरुष पर-स्त्री से सम्पर्क स्थापित कर सकता था और कोई भी स्त्री पर-पुरुष से मिल सकती थी।

(6) स्त्रियाँ अधिकतर घरों में रहती थीं परन्तु वे भी शारीरिक व्यायाम मल्ल-युद्ध में भाग लेती थीं। सार्वजनिक समारोहों में वे नग्न अवस्था में नाचती थीं। उन्हें भी स्वास्थ्य का विशेष ध्यान रखना पड़ता था।

इस संविधान के अनुसार पूँजीवादी मनोवृत्ति को दबाया गया था और लोगों को देश-भक्ति का पाठ पढ़ाने का प्रयास किया गया था। इस युग में लोहे की मुद्रायें प्रचलित थीं और सोने-चाँदी के आयात पर प्रतिबन्ध लगाया गया था। विदेश यात्रा करने पर भी मनाही थी। स्वतन्त्र-नागरिकों के लिये व्यापार, व्यवसाय करना भी वर्जित था।

स्पार्टा में यह व्यवस्था हेलोटी को वश में करने के लिये लागू की गयी थी। यह स्वतन्त्र नागरिकों के अधीन रहते थे और उन्हें सैनिकों की सेवा भी करनी पड़ती थी। इनकी देख-रेख के लिये गुप्तचर व्यवस्था भी अपनाई गयी थी।

संविधान की आलोचना

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि यहाँ की शासन व्यवस्था न पूर्ण रूप से राजतांत्रिक थी और न गणतांत्रिक अथवा कुलीनतांत्रिक। इस व्यवस्था में समाज को बहुत अधिक महत्व दिया गया था और समाज के लिये व्यक्ति का बलिदान किया जा सकता था। इस व्यवस्था का दुष्परिणाम यह था कि स्पार्टा में साहित्यकारों, वैज्ञानिकों और कलाकारों का अभाव हो गया। इस अवस्था की आलोचना करते हुए एक लेखक ने लिखा है—"सोलन ने एथेन्स वालों को मनुष्य बनाया था तो लाइकर्गस ने स्पार्टा वालों को यन्त्र बना डाला।"

स्पार्टा में मनुष्य का जीवन इतना यंत्रवत हो गया कि जीवन से आनन्द दूर हो गया। वहाँ के निवासी सभी प्रकार के सुखों से वंचित कर दिये गये थे।

स्पार्टा का पतन

स्पार्टा का शासन सैनिक शक्ति के जोर पर चलता था। कालांतर में स्पार्टा का एथेन्स से युद्ध हुआ जिसमें एथेन्स की पराजय हुई परन्तु उसके कुछ समय पश्चात् 371 ई० पू० में ल्यूक्ट्रा के युद्ध में स्पार्टा को थेबीज के हाथों पराजय का मुख देखना पड़ा। इसके पश्चात् कुछ समय के लिये स्पार्टा पुनः स्वतंत्र हुआ परन्तु अन्त में सिकन्दर महान के हाथों इसका पतन हुआ।

स्पार्टा के पतन के बहुत से कारण थे। वहाँ का कठोर शासन ही इसके पतन का मूल कारण था। जनता का राज्य के प्रति विश्वास नहीं था। इस कारण स्पार्टा के पतन का जनता ने स्वागत ही किया। फारस और स्पार्टा का युद्ध तथा थेबीज और स्पार्टा का युद्ध भी स्पार्टा के पतन के कारण थे। इसके साथ ही मेसीडोनिया के अभ्युदय ने स्पार्टा की प्रगति को धक्का लगाया था। इन्हीं सब कारणों से स्पार्टा का पतन हुआ। इसके पतन की चर्चा करते हुये एक विद्वान ने लिखा है—**"स्पार्टा का पतन अवश्यम्भावी था इसकी नींवें पहले ही हिल चुकी थीं और अनेक धक्कों ने इसे जर्जरित बना दिया था। आश्चर्य तो यह है कि स्पार्टा का पतन हुआ और उसके लिये कोई रोया भी नहीं।"**

एथेन्स (Athens)

प्राचीन काल में एथेन्स यूनान का सबसे प्रमुख नगर था। यहाँ यूनानियों की आयोनियन शाखा निवास करती थी। आरम्भ में एथेन्स में राजतन्त्रात्मक व्यवस्था थी। इस राजतन्त्रीय व्यवस्था का अन्तिम शासक कोड्रस था। उसकी मृत्यु के पश्चात् शासन की समस्त सत्ता सामन्तों के हाथ में आ गई। इन सामन्तों की दो सभाएं थीं जिनमें से एक सभा में ९ आर्कन अथवा संरक्षक होते थे जो राज्य-कार्य के लिये उत्तरदायी होते थे। दूसरी सभा 'काउन्सिल आफ एरियोपेगस' थी, जिसके सदस्य भूतपूर्व आर्कन होते थे। वास्तव में इस सभा के सदस्य, आर्कनों को निरंकुश होने से रोकते थे। इस सभा को अनुशासनहीन नागरिकों को दंड देने और अति गम्भीर मुकदमों पर विचार करने का अधिकार था।

इस समय तक एथेन्स के कानूनों को कोई लिखित रूप नहीं प्राप्त हुआ था। कोई न्याय-व्यवस्था न होने के फलस्वरूप सामन्तवर्ग कृषकों पर अत्याचार करता था और उनकी दशा दासों से भी गिरी हुई थी। 632 ई० पू० में साइलोन नामक सामन्त ने एथेन्स में अपना शासन स्थापित करने का प्रयास किया। उसे सफलता

नहीं मिली परन्तु उसके इस प्रयत्न से प्रेरणा पाकर 621 ई० पू० में ड्रेको नामक व्यक्ति ने कानूनों को लिखित रूप देने का प्रयास किया। उसके कानूनों से कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। आर्थिक शक्ति ज्यों की त्यों बनी रही और सामाजिक दशा में भी कोई सुधार नहीं हुआ। फलस्वरूप 594 ई० पू० में सोलन नामक व्यक्ति को आर्कन चुना गया और उससे सुधारों की आशा की गई।

सोलन के सुधार

सोलन बहुत अधिक बुद्धिमान राजनीतिज्ञ था। उसने एथेन्स की सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन करने का प्रयास किया। समाज को चार भागों में विभाजित किया गया—

(1) 500 बुशल से अधिक आय वाले।
(2) 300 से 500 बुशल की आय वाले।
(3) 200 से 300 बुशल की आय वाले।
(4) स्वतन्त्र श्रमिक।

प्रथम से सेनापति और आर्कन, द्वितीय से अन्य उच्च अधिकारी, और तृतीय से पदातियों और चतुर्थ से सामान्य सैनिकों की नियुक्ति होने लगी। सोलन ने शासन के क्षेत्र में भी पर्याप्त सुधार किये। उसने 'काउन्सिल आफ एरियोपेगस' में कोई परिवर्तन नहीं किया। ब्यूल की सदस्यता तीसरे वर्ग के लोगों के लिये खोल दी। इसके सदस्यों की संख्या 400 थी। असेम्बली (एक्लेसिया) के सदस्य श्रमिक वर्ग के लोग भी हो सकते थे। चारों वर्गों के लोग देश के सर्वोच्च न्यायाधीश हो सकते थे। उच्च न्यायालयों में आर्कनों के निर्णयों के विरुद्ध अपीलें सुनी जाती थीं।

सोलन ने निर्धन वर्ग की दशा को सुधारने के लिये विशेष प्रयास किया। उसने बहुत से लोगों के ऋणों को माफ कर दिया और ऋण न चुका सकने के कारण दास बनाये गये लोगों को मुक्ति प्रदान कर दी। उसने देश की आर्थिक नीति को भी सुधारने का प्रयास किया। भूमि नापने की प्रणाली प्रचलित हुई। मुद्रा-नीति में भी सुधार किये गये। विदेशी व्यापारियों और दस्तकारों को नागरिकता दे दी गई और खाने-पीने की चीजों के निर्यात पर कड़ी पाबन्दी लगा दी गई। प्रत्येक पिता को अपने पुत्र को किसी न किसी प्रकार की व्यापारिक शिक्षा देना अनिवार्य था। उसने पंचांग में भी सुधार किये और लोरियम में चाँदी की खानों की खुदाई आरम्भ करवाने का प्रयास किया।

सोलन मनुष्य के केवल शारीरिक उन्नति को महत्व नहीं देता था बल्कि बौद्धिक उन्नति को भी आवश्यक मानता था। जहाँ उसने एक ओर वेश्यावृत्ति को

वैध घोषित किया वहाँ बलात्कार को जघन्य अपराध ठहराया गया। उसने यह भी व्यवस्था की कि युद्ध में मारे गये व्यक्तियों के बच्चों के पालन के लिये राज्य ही उत्तर-दायी होगा।

सोलन का मूल्यांकन

सोलन की गणना यूनान के महानतम राजनीतिज्ञों में होती है। वह विभिन्न वर्गों के बीच सामंजस्य स्थापित करना चाहता था। उससे एक बार पूछा गया कि राज्य की स्थिरता कैसे रहती है तो उसने उत्तर दिया था—'**जब जनता शासक का और शासक अधिनियमों की आज्ञा का पालन करते हैं।**" सोलन मध्य-मार्ग पर चलने वाला था। एक ओर उसने उग्रदलीय नेताओं की इस माँग को ठुकरा दिया कि भूमि का समविभाजन हो और दूसरी ओर उसने इस बात को भी ठुकरा दिया कि सामान्य लोगों को मताधिकार न दिये जाएं। यद्यपि यह एथेन्स में जनतन्त्रवाद के बीज को पनपता हुआ नहीं देख पाया। परन्तु यह प्रगतिवादी वास्तव में एथेन्स के जनतन्त्र का निर्माता था।

क्लीस्थेनिज के सुधार

सोलन के पश्चात् कुछ दिनों टायरेन्टस एथेन्स का निरंकुश शासक बना। परन्तु कुछ ही दिनों बाद उसका पतन हो गया और क्लीस्थेनिज के नेतृत्व में जनतन्त्रवाद का विकास हुआ।

क्लीस्थेनिज ने बहुत से सुधार किये। उसने सामन्त वर्ग की शक्ति को कम कर दिया और समाज को 10 वर्गों में विभाजित कर दिया। शासन की व्यवस्था को जनतान्त्रिक बनाने के लिये ब्यूल को समाप्त करके 500 सदस्यों की सभा की स्थापना की। इसमें प्रत्येक जाति के 50-50 सदस्य होते थे। इस काउन्सिल को सर्वोच्च अधि-कार प्रदान किये गये थे, परन्तु उसके द्वारा पारित बिल असेम्बली के हाथ में आते थे जो उन्हें अस्वीकृत या संशोधित कर सकती थी। अर्थ-व्यवस्था और युद्ध की घोषणा के कार्य भी असेम्बली ही पूर्ण करती थी। एरियोपेगस के अधिकार कम कर दिये गये।

क्लीस्थेनिज ने आस्ट्रेसिज्म (Ostracism) का नियम चलाया जिसके अनुसार बहुमत से किसी व्यक्ति को देशद्रोही घोषित कर सकता था। उसने सेना का पुनर्गठन किया और दस सेनापतियों की एक समिति बनाई।

क्लीस्थेनिज के पश्चात् जनतन्त्र-प्रणाली और अधिक पनपती रही और पेरि-क्लीज के काल में तो यूनान की बहुत अधिक उन्नति हुई। उसका समय 461 ई० पू० से 429 ई० पू० तक का माना जाता है। उसके युग को यूनान के सांस्कृतिक इतिहास का 'स्वर्ण-युग' कहा जाता है।

सारांश

यूनान का प्रायद्वीप तीन ओर भूमध्य सागर से घिरा हुआ है। प्राचीन काल में यहाँ आर्य और अनार्य जाति की मिश्रित जाति के लोग रहते थे जिनकी चार उप-शाखाएं थीं—एकीअन, आयोसियन, आयोनियन, डोरियन। अध्ययन की सुविधा के लिए हमने यूनान के इतिहास को तीन भागों में बाँटा है—होमर युग, क्लासिकल युग (प्रारम्भिक काल) और पेरिक्लीज युग।

1200 ई० पू० से 800 ई० पू० तक का काल होमर-काल के नाम से पुकारा जाता है। यह युग रक्तपात से पूर्ण था। इस युग के शासक निरंकुश थे। सम्राट को परामर्श देने के लिये ब्यूल और एगोरा नाम की दो सभाएं होती थीं। पारिवारिक जीवन में पिता को बहुत अधिक अधिकार प्राप्त थे। विवाह ससुर और दामाद द्वारा तय होते थे। वास्तव में स्त्रियों को खरीदा जाता था। इनका रहन-सहन साधारण था। समाज तीन वर्गों में विभाजितत था—अभिजात, मध्य और निम्न। यहाँ के लोग आर्थिक दृष्टि से दूसरों पर निर्भर रहने के पक्षपाती नहीं थे। वे अपना कार्य स्वयम् करने में विश्वास करते थे। यह जीवन को आनन्दमय रूप में देखते थे और आशावादी थे। इस युग के देवताओं में जियस और अपोलो प्रसिद्ध थे। युद्ध की देवी एथेना थीं। साहित्य और कला के क्षेत्र में होमर-काल में यूनान की उन्नति नहीं हुई।

यूनान के इतिहास में 800 ई० पू० से 469 ई० पू० तक का युग विशेष महत्व का है। 800 ई० पू० में यूनान में कुलीनतन्त्रीय व्यवस्था की स्थापना हुई जिसका विनाश करके टिरिंस ने एक नई व्यवस्था स्थापित की। 600 ई० पू० और 500 ई० पू० के मध्य यूनान में जनतन्त्र का विकास हुआ। अनेक नगर-राज्यों की स्थापना हुई। इन नगर-राज्यों में स्पार्टा और एथेन्स का विशेष महत्व था।

स्पार्टा दक्षिणी यूनान के लौकोनिया प्रदेश का प्रधान नगर था। यहाँ डोरियन जाति के लोग निवास करते थे। यहाँ निरंकुश सैनिकवादी शासन की स्थापना की गई। 600 ई० पू० के लगभग लाइकर्गस ने स्पार्टा के संविधान का निर्माण किया। इसके अनुसार द्विराजात्मक व्यवस्था को अपनाया गया। दोनों सम्राटों की सहायता के लिये जेरूसिया नाम की संस्था होती थी जिसमें 28 सदस्य होते थे जिन्हें अपेला कहा जाता था। वास्तव में यही संस्था स्पार्टा की व्यवस्थापिका सभा और सर्वोच्च न्यायालय थी। अपेला (असेम्बली) में लगभग 8000 सदस्य होते थे। 30 वर्ष की आयु का राज्य का प्रत्येक स्वतन्त्र नागरिक इसका सदस्य होता था। असेम्बली के सदस्यों द्वारा डायरेक्टरी का निर्माण किया जाता था जिसमें पाँच सदस्य होते थे जिन्हें एफर कहते थे। इस संविधान में नागरिकों के

स्वास्थ्य की ओर विशेष ध्यान दिया गया था। स्पार्टा में सोने-चांदी के आयात और विदेश यात्रा की मनाही कर दी गई। इस संविधान के अनुसार समाज को विशेष महत्व दिया गया था। समाज के लिये व्यक्ति का बलिदान किया जा सकता था। स्पार्टा के निवासियों का जीवन यन्त्रवत् था। वहाँ के निवासी सुखों से वंचित कर दिये गये थे।

एथेन्स में यूनानियों की आयोनियन शाखा निवास करती थी। आरम्भ में यहाँ राजतन्त्रात्मक व्यवस्था थी, फिर सामन्तशाही की स्थापना हुई और फिर जनतन्त्र का विकास हुआ। यहाँ के सुधारकों में सोलन का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसने समाज को चार भागों में विभाजित कर दिया और ब्यूल को सदस्यता कम आयु वाले लोगों के लिये खोल दी। चारों वर्ग के लोग सर्वोच्च न्यायाधीश बन सकते थे। उसने निर्धन वर्ग की दशा सुधारने का विशेष प्रयास किया और लोगों का ऋण माफ कर दिया और भूमि नापने की नवीन प्रणाली को अपनाया। विदेशी व्यापारियों और दस्तकारों को नागरिकता प्रदान की। सोलन के पश्चात् क्लोस्थेनिज ने सामन्त वर्ग के अधिकारों को और कम कर दिया और समाज को 10 वर्गों में बाँटकर जनतांत्रिक प्रणाली को विकसित करने का प्रयास किया। तत्पश्चात् जनतान्त्रिक प्रणाली एथेन्स में पनपती रही और कालान्तर में पेरिक्लीज काल में यूनान की बहुत अधिक उन्नति हुई।

———

अध्याय | 23

पेरिक्लीज काल और 'क्लासिकल यूनान' का पतन

(PERICLEAN AGE AND THE FALL OF 'CLASSICAL GREEK')

प्रश्न 1—यूनान के सांस्कृतिक इतिहास में पेरिक्लीज का युग स्वर्ण युग क्यों कहा जाता है ?

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

Why the Periclean age is called the golden period in the cultural history of Greece.

(Gorakhpur University)

प्रश्न 2—पेरिक्लीज काल में कला और साहित्य के क्षेत्रों में हुई प्रगति का वर्णन कीजिये।

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

Give an account of the development of art and literature in the Periclean age.

(Allahabad University)

प्रश्न 3—पेरिक्लीज युगीन यूनानियों की दार्शनिक और साहित्यिक उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिये।

(गोरखपुर विश्वविद्यालय)

Give an estimate of the philosophical and political achievements of the Greeks in Periclean age.

(Gorakhpur University)

प्रश्न 4—5वीं शती ई० पू० के ग्रीस के महान विचारकों और लेखकों के विषय में आप क्या जानते हैं ?

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

What do you know about the great thinkers and writers of Greece in the fifth century B. C.

(Allahabad University)

पेरिक्लीज संसार के उन महान पुरुषों में है जो बहुत काल तक युगान्तकारी गिना जाता रहा है। इसने यूनानी विचारधारा को परिवर्तित, संवर्धित और प्रवाहित किया तथा इतिहास पर अमिट छाप डाली। इसी कारण उसके काल को यूनानी साम्राज्य का स्वर्ण युग कहा जाता है।

पेरिक्लीज ने शौर्य और समाज-सुधार अपनी माता और पिता के गुणों से प्राप्त किया था। अत: यह गुण उसकी पैतृक सम्पत्ति थे। प्रारम्भिक अवस्था में उसे प्रसिद्ध विद्वानों और कलाकारों के सम्पर्क का अवसर मिला था जिसके कारण पेरिक्लीज में संस्कृति के आवश्यक गुण अनायास उत्पन्न हो गये थे। वह अत्यन्त उदारवादी शासक, सुधारक, कला-प्रेमी और जनतन्त्रवादी था। एथेन्स का जीर्णोद्धार इसी के काल में हुआ।

पेरिक्लीज सिद्धांतवादी और आचार का अनुरागी न था। वह राजनीति को एक प्रकार का रंगमंच समझता था जिस पर सारे समाज का कल्याण आधारित होता है और राजनीतिज्ञ को समय-समय पर सत्य, असत्य, दया और कठोरता आदि का आश्रय लेना पड़ता है। उसका व्यक्तिगत जीवन अत्यन्त शुद्ध था। जब यूनान में स्वाभिमान और देश-प्रेम का क्रिय-विक्रय हो रहा पेरिक्लीज एथेन्स के निवासियों को शिष्ट जीवन का मार्ग प्रदर्शित कर रहा था। वह गम्भीर प्रकृति का और अल्प-भाषी व्यक्ति था परन्तु आवश्यकतानुसार वह आगबबूला भी हो उठता था। यद्यपि उसका जन्म उच्च श्रेणी में हुआ था परन्तु राजनीतिक क्षेत्र में उसने जनता के आन्दोलन में साथ दिया और एथेन्स में जनतन्त्रवाद का विकास किया।

पेरिक्लीज की विदेश नीति

पेरिक्लीज राज्य का विस्तार चाहता था और उसकी यह भी इच्छा थी कि एथेन्स संसार की रानी बन जाय। उसे यह ज्ञात था कि विस्तार की इस योजना में स्पार्टा उसका प्रतिद्वन्दी होगा। इसलिए स्पार्टा को अलग कर देने की विस्तृत योजना बनाई गई। उसने आर्गोज: हेसली और मेगारा आदि नगरों से सन्धि की और शक्ति-संचय के लिये डेलोस संघ को भी अपने अधीन कर लिया। ईजिना, ट्रायजेन और एकिया से भी मित्रता की गई। ईरान से उसने केरियस की सन्धि की और ईरानी सम्राट ने ईजियन प्रदेश तथा एथेन्स पर आक्रमण न करने का वचन दिया। स्पार्टा से जो सन्धि की गई थी उसमें दोनों देशों ने समझौता किया था कि एक देश दूसरे देश के मित्र देशों से अलग सन्धि नहीं करेगा।

फारस का सामना करने के लिये यूनान और ईजियन सागर के तटवर्ती देशों ने एक सघ का निर्माण किया था। इस संघ का नेता एथेन्स था। पेरिक्लीज ने अपने पद का लाभ उठाकर नेक्साज, थेसाज को अपने अधीन किया तथा कैरिस्टस

नामक नगर को संघ में सम्मिलित होने के लिये बाध्य किया। इस सङ्घ में एक यह भी शर्त थी कि सभी सदस्य नगर-राज्य सङ्घ को जहाज देंगे। परन्तु आगे चलकर जहाजों के स्थान पर नगर-राज्य, सङ्घ को धन देने लगे। इस धन का संग्रह भी एथेन्स के ही पदाधिकारी करते थे। इस सङ्घ र एथेन्स का पूरा अधिकार हो गया। पेरिक्लीज ने अपनी शक्ति बढ़ाने में समुद्री बेड़े और सङ्घ के धन का पूरा उपयोग किया। जिन नगरों ने पेरिक्लीज की नीति का विरोध किया उन सबको उसने पराजित किया। डोलोस सङ्घ समुद्र के मार्गों की रक्षा करता था। पेरिक्लीज ने स्थल-मार्ग से अपने देश की रक्षा करने के लिये दोनों ओर मजबूत दीवारें बनवाईं। उसके शासन में ही आधीन राज्यों में एथेन्स के उपनिवेश बनाये गये और इन उपनिवेशों से कर लिये जाने लगे तथा उपनिवेशों के मुकदमों का फैसला एथेन्स में ही किया जाता था। इस प्रकार एथेन्स की प्रभुता में और वृद्धि हुई।

एथेन्स का पतन

पेरिक्लीज की विस्तारवादी नीति के कारण एथेन्स ने अभूतपूर्व उन्नति की परन्तु उसकी उग्र-नीति के कारण शत्रुओं की संख्या भी बढ़ी। बोशिया (Boetia) वालों ने एथेन्स के विरुद्ध राजद्रोह किया और कारोनिया के युद्ध में उसे पराजित कर दिया। इस हार से लाभ उठाकर मेगारा, लोक्रिस, फोसिस आदि नगरों ने भी अपने को एथेन्स से स्वतन्त्र घोषित कर दिया। पेलोपोनिसस के युद्ध में स्पार्टा से हार कर एथेन्स को बहुत बड़ी हानि उठानी पड़ी। इसी काल में 429 ई० में पेरिक्लीज की मृत्यु हो गई।

एथेन्स के बहुमुखी विकास में पेरिक्लीज का योग सदा स्मरण रक्खा जायगा यद्यपि साम्राज्यवादी नीति में उसे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई।

शासन-नीति

जब पेरिक्लीज के हाथ में एथेन्स की बागडोर आई उस समय दो परस्पर विरोधी वर्गों में एथेन्स का समाज विभाजित था। पहली श्रेणी में सामन्त और उच्च वर्ग के लोग थे जिनके हाथ में शासन की बागडोर थी और यह वर्ग जनता के शोषण में ही अपनी भलाई समझता था। एरियोपेगस इस वर्ग की प्रतिनिधि संस्था थी जिसके द्वारा राज्य का संचालन धनी वर्ग करना चाहता था। दूसरा वर्ग प्रगतिवादियों का था जिसमें गरीब और अधिकारों से हीन व्यक्ति सम्मिलित थे। परन्तु इन लोगों की संख्या बहुत अधिक थी और इनमें राजनीतिक चेतना का विकास हो चुका था। यह लोग अपनी प्रतिनिधि संस्था को एसेम्बली द्वारा शासन-सूत्र को अपने अधीन करना चाहते थे।

पेरिक्लीज ने प्रगतिवादी दल का साथ दिया और जिसके कारण जनतांत्रिक प्रणाली पनपने लगी। जैसा कि बर्न्स ने कहा है—

"The Athenian democracy attained its full perfection in the Age of Pericles."

लोकसभा (Assembly)—यह सभा जनता के मध्य श्रेणी और निम्न श्रेणी के व्यक्तियों की प्रतिनिधि सभा थी। पेरिक्लीज के समय में हर एक स्वतन्त्र नागरिक इस सभा का सदस्य हो सकता था और उसे मतदान का अधिकार प्राप्त था। इस सभा के अधिवेशन प्रायः प्रति सप्ताह होते थे और प्रत्येक सदस्य को कोई भी बिल पेश करने का अधिकार प्राप्त था। परन्तु यदि एक वर्ष के अनुभव के बाद उस बिल पर बने हुये नियम में दोष निकलता था तो प्रस्तावक को दण्ड दिया जाता था इसलिये लोग बहुत जल्दबाजी में बिल नहीं पेश करते थे। प्रत्येक बिल लोकसभा में पास हो जाने के उपरान्त ब्यूल नामक संस्था में भेजा जाता था।

ब्यूल - ब्यूल के सदस्यों की संख्या 500 थी और प्रत्येक वर्ग के 50 सदस्य इसमें चुने जाते थे। इन सदस्यों का कार्य-काल एक वर्ष होता था। सदस्य बारी-बारी से सभापति होते थे। प्रशासन के कार्यों के लिये पचास-पचास सदस्यों की 10 उपसभापतियाँ बनाई जाती थीं जो सार्वजनिक निर्माण, पदाधिकारियों के आचरण, वैदेशिक नीति और अर्थ-परीक्षा इत्यादि के कार्य करती थीं। ब्यूल को लोक-सभा के किसी बिल को अस्वीकार करने का अधिकार नहीं था। वह केवल पुनर्विचार के लिये अपनी सम्मति के साथ बिल को लोकसभा को वापस कर सकती थी।

न्याय-व्यवस्था

पेरिक्लीज के पूर्व एरियोपेगस देश का प्रमुख न्यायालय था। परन्तु पेरिक्लीज ने एक सार्वजनिक न्यायालय का निर्माण किया जिसे हेलियाय कहा जाता था और एरियोपेगस के सभी अधिकार इस न्यायालय को दे दिये गये थे। इस न्यायालय में 6000 हजार जज थे जिनकी नियुक्ति क्रमानुसार नागरिकों में से होती थी। इन्हें जूरर कहा जाता था। समस्त जूरर 500-500 की दस समितियों में बाँटे गये थे और 1000 जूरर आपत्ति काल के लिये सुरक्षित रक्खे गये। इनको वेतन दिया जाता था। इनके अतिरिक्त 30 न्यायाधीश विभिन्न प्रदेशों में घूम-घूमकर तात्कालिक न्याय करते थे। एरियोपेगस के अधीन चार अन्य न्यायालय थे और एरियोपेगस केवल हत्या और हिंसा के

मुकदमों का फैसला करता था । इस काल में दीवानी और फौजदारी कानून एक से थे दासों को और सम्पत्ति का हरण करने वालों को शारीरिक दण्ड दिया जाता था । नागरिकों को यह अधिकार था कि भ्रष्ट आचरण करने वाले अपनी माता, बहन, पुत्र या स्त्री की हत्या कर सकें । दीवानी के मुकदमों में जिन लोगों को डिग्री मिलती थी वे स्वयम् प्रतिवादी को उसका पालन करने के लिये बाध्य करते थे

शासन की समालोचना

पेरिक्लीज के शासन में सभी पदों पर केवल एथेन्स के ही नागरिक नियुक्त किये जाते थे । योग्यता अथवा शिक्षा को कोई विशेष महत्व नहीं था । जैसा कि विल ड्यूराण्ट ने लिखा है—

"Athenians do not believe in government of experts."

नागरिकों का जनतन्त्र में विश्वास था । केवल वही व्यक्ति नागरिक हो सकते थे जिनके माता पिता दोनों एथेन्स के नागरिक हों । एथेन्स के नागरिकों पर आगे चलकर विदेशियों से विवाह-सम्बन्ध करने पर भी रोक लगा दी । इस नीति से एथेन्स के निवासियों को अपनी नागरिकता पर गर्व हो गया । इससे सभी नागरिकों को समान अधिकार तो प्राप्त हुए परन्तु प्रशासन मे शिथिलता आ गई क्योंकि कभी-कभी अयोग्य और अकर्मण्य व्यक्तियों की नियुक्ति महत्वपूर्ण पदों पर हो जाती थी । जनतन्त्रवाद की इस नीति से केवल 1/7 जनसख्या एथेन्स की नागरिक हो सकती थी । दासों, स्त्रियों तथा विदेशियों को नागरिकता के अधिकार प्राप्त नहीं थे जिनके कारण उन पर घोर अत्याचार किये जाते थे ।

एथेन्स में विचारों को प्रगट करने की और इच्छानुसार देवताओं की पूजा करने की स्वतन्त्रता बहुत कम थी । परम्पराओं और प्रथाओं की आलोचना करने वालो को अपराधी समझा जाता था । केवल उन्हीं देवताओं की पूजा की जाती थी जो राजसत्ता द्वारा मान्य थे ।

उपर्युक्त लेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि पेरिक्लीज ने जनतन्त्र का अत्यधिक विकास किया और निम्न कोटि के व्यक्तियों को ऊंचे पद प्राप्त करने का अवसर मिला । इसी कारण स्पार्टा के लोग एथेन्स वालों से जलते थे । विल ड्यूराण्ट ने लिखा है कि स्पार्टा से जो व्यक्ति एथेन्स आते थे उन्हें ऐसा प्रतीत होता था जैसे वह किसी सैनिक-शिविर से क्रीड़ास्थल पर आ गये हों ।

धर्म

साधारणतया धर्म का अर्थ यह होता है कि कोई वर्ग कुछ ऐसे सिद्धान्त स्वीकार कर लेता है जिनके द्वारा आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध सम्भव हो जाता

है। धार्मिक संस्थाओं में मन्दिर और पुरोहितों का सङ्गठन आवश्यक होता है। परन्तु यूनान में न कोई मत था और न कोई मन्दिर। पुरोहितों को सिर्फ धार्मिक क्रियाएं कराने का अधिकार था। एक वैज्ञानिक ने लिखा है कि यूनान में प्रकृति के विभिन्न रूपों को देख और समझकर देवी-देवताओं के रूप में प्रतिष्ठित किया गया और इस प्रकार बाह्य जगत तथा अन्तर्जगत के साथ सम्बन्ध स्थापित किया गया। यूनानियों ने काम, क्रोध, मद, लोभ, घृणा आदि मनोवृत्तियों को भी देवी-देवताओं के रूप में प्रतिष्ठित किया और इस प्रकार यूनान में देवा-देवताओं की बाढ़ सी आ गई।

यूनानी कल्पना में व्यवहार की मान्यता इतनी अधिक थी कि लोग धन का आदान-प्रदान, सेनाओं का संचालन आदि सब देव-वंदना के उपरान्त ही करते थे। सभी जातियों और वर्गों के लोग किसी न किसी देवी-देवता से संरक्षित थे। इस प्रकार धर्म व्यावहारिक जीवन से घुल-मिल गया था और इसीलिए यूनानियों ने कभी मन्दिर या धार्मिक संस्था अलग स्थापित करने को चेष्टा नहीं की। यूनानियों के सभी देवी-देवताओं की प्रकृति मनुष्यों के समान थी केवल उनमें सौन्दर्य और अमरत्व का दैवीय गुण था।

कालान्तर में यूनानी लोग अन्ध-विश्वासों, भविष्य-वाणियों तथा शकुन-अपशकुनों में अधिक विश्वास करने लगे और दैवीय-शक्ति को सन्तुष्ट करने के लिये पशुओं की बलि दी जाने लगी। धार्मिक उत्सवों को भी देवताओं को प्रसन्न करने के लिये मनाया जाने लगा। इस उत्सवों में आमोद-प्रमोद, कला-प्रदर्शन, नृत्य-सङ्गीत और रास-रंग को महत्व दिया जाता था। कुछ स्थानों में देव-मन्दिरों का निर्माण भी कालान्तर में हुआ। यहाँ भक्त-जन उपहार और दान आदि से देवता को प्रसन्न करने का प्रयत्न करते थे और इच्छित फल की याचना करते थे।

भारत, चीन, ईरान आदि देशों में जिस प्रकार धार्मिक क्रान्तियाँ हुईं उसी प्रकार एथेन्स में भी उपर्युक्त धार्मिक कृत्यों के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ हुये। सबसे पहले पिण्डर ने साहित्य रचना द्वारा जनता का ध्यान अन्ध-विश्वासों के विरुद्ध दिलाया। इसी प्रकार यूरीपिडीज ने नाटक रचना करके धार्मिक कथाओं में बताई हुई देवताओं के न्याय की अराजकता पर क्षोभ प्रकट किया। एस्कोइलस और साफोक्लीज ने यूनान के बहुदेववाद पर प्रहार किया और एकेश्वरवाद का प्रतिपादन किया तथा जियस को देवताओं के सम्राट के रूप में प्रतिष्ठित किया।

दर्शन

यूनान की स्वतन्त्र विचारधारा को दर्शन ने सबसे अधिक प्रोत्साहन दिया। यूनानी दर्शन का प्रारम्भ 600 ई० पू० में हुआ और नित्यवादी तथा अनित्यवादी

सम्प्रदायों का जन्म हुआ। 5वीं सदी ई० पू० में अणुवादियों ने दोनों में मेल कराने का असफल प्रयत्न किया और यह स्वीकार किया कि विश्व के निर्माण करने वाले तत्व अनश्वर और असंख्य हैं। यद्यपि इनके आकार में भिन्नता है फिर भी इनके गुणों में समानता है। पेरिक्लीज का मित्र एनेक्जेगोरास इस विचार से पूर्ण रूप से सहमत नहीं था। उसने चेतन और अचेतन में भेद किया और यह माना कि विभिन्न तत्वों के सङ्गठन और विघटन से ही चेतन और अचेतन वस्तुओं का निर्माण होता है।

5वीं शताब्दी ई० पू० में एक नई तर्क-सम्मत विचारधारा का जन्म हुआ जिसने धार्मिक कथाओं में वर्णित दैवीय न्याय पर असहमति और असन्तोष प्रकट किया।

इसी युग में बहुत से विदेशियों ने आकर एथेन्स में नये सिद्धान्तों का प्रचार एवं प्रतिपादन किया। इन विचारकों को सोफिस्ट कहा जाता है। सर्वप्रथम सोफिस्ट गोरास था जिसने यह सिद्धान्त निकाला कि मनुष्य ही सब वस्तुओं का माप-दन्ड है। अर्थात् सत्य, न्याय, सौन्दर्य और सदाचार मनुष्य की आवश्यकताओं पर ही निर्भर होते हैं परन्तु ज्यों-ज्यों परिस्थितियों के कारण आवश्यकताएँ बदलती हैं त्यों-त्यों आदर्श भी बदलते जाते हैं। वैज्ञानिकों ने गोरास के इस सिद्धान्त को शंकावाद कहा और जोर्जियस ने इसको दूसरे रूप से ही समझाया। उसने कहा कि ज्ञान की प्राप्ति बिल्कुल असम्भव होती है क्योंकि किसी वस्तु का अस्तित्व है ही नहीं, इसलिए मनुष्य उसे जान नहीं सकता और यदि जान भी जाय तो उस ज्ञान को प्रकाशित नहीं कर सकता। थ्रेसीमेकस ने यह सिद्धांत रक्खा कि व्यक्तियों के आचरण के समस्त नियमों का निर्माण शक्तिवान अपने हित में करते हैं। न्याय नाम की कोई वस्तु संसार में नहीं है इसलिये चतुर मनुष्य वही है जो अपने शक्ति-बल से अपना हित पूरा कर सके। सोफिस्टों ने सामान्यजनों के अधिकारों का समर्थन और दास-प्रथा तथा युद्धों का विरोध किया। परन्तु वे समाज के उत्तरदायित्व को न समझ सके और सामाजिक परम्पराओं द्वारा निर्धारित आदर्शों को जड़ से उखाड़ने का प्रयत्न करने लगे। इसी युग में एथेन्स में एक ऐसे विचारक का जन्म हुआ जिसने सत्य को स्थायित्व और आदर्शों को दृढ़ता प्रदान की। इस महावीर का नाम सुकरात था।

सुकरात के कारण यूनानी दर्शन मुख्य रूप से एथेन्स का दर्शन बन गया। वह सोफिस्टों के सिद्धान्तों का विरोधी था। यद्यपि उसने स्वयम् कुछ नहीं लिखा परन्तु उसके शिष्यों के लेखों से उसकी भावनाएँ ज्ञात होती हैं। वह न तो विशुद्ध दर्शन के अध्ययन में, न क्लिष्ट धार्मिक समस्याओं के समाधान में विश्वास करता था। उसका मुख्य विषय आचार-शास्त्र था। वह कहा करता था कि देवता देखे नहीं

जा सकते। यदि मनुष्य सच्चाई के साथ अपना कार्य करे तो स्थायी सत्य के दर्शन कर सकता है। उसने अपने जीवन का लक्ष्य सत्य की खोज बनाया था। सुकरात के विचार अत्यन्त प्रगतिशील थे जिसके कारण एथेन्स के शासकों ने उस पर बालकों को भड़काने और एथेन्स की मान्यताओं की आलोचना करने का दोष लगाया। उसका मत था कि एथेन्स की देव भक्ति, सदाचार और जनतन्त्रवाद में विश्वास, वास्तविकता के विरुद्ध हैं। यह केवल ढोंगमात्र है। शासकों ने सुकरात को विषपान करके शरीर-त्याग करने के लिये बाध्य किया। जिस वर्ष सुकरात ने शरीर त्याग किया उसी वर्ष पेरिक्लीज भी मरा।

पेरिक्लीज युग के बाद सुकरात के दो अनुयायी प्लेटो (Plato) और अरस्तू (Arostitle) के नाम आते हैं जिन्होंने एथेन्स के सामाजिक जीवन में क्रान्ति उत्पन्न की। प्लेटो के अनुसार मनुष्य में सत्, रज और तम तीन गुण प्रधान होते हैं और मनुष्य को इन्हीं गुणों को समझकर कार्य करना चाहिये। जगत भी दो प्रकार का होता है—भौतिक और आध्यात्मिक। आध्यात्मिक जगत ऊंचा और चिरस्थायी है जिसे बुद्धिमान व्यक्ति ही प्राप्त कर सकते हैं। ईश्वर को पहचानना ही सबसे उत्तम विचार है। भौतिक जगत में हम जिन इन्द्रियों द्वारा वस्तुओं को देखते और परखते हैं वे आध्यात्मिक जगत के लिये अपूर्ण हैं। ज्ञान ही ऐसी शक्ति है जो आध्यात्मिक जगत से साक्षात्कार करा सकती है।

अरस्तू के विषय में कहा जाता है कि वह अपने समय का प्रकाण्ड विद्वान था और उसने कई शास्त्रों और विद्याओं का गूढ़ अध्ययन किया था। अरस्तू मनुष्य को राजनीतिक जीव मानता था और समाज के बाहर मनुष्य के अस्तित्व की कल्पना नहीं करता था। उसके विचार से आदर्श राजनीतिक संगठन पालिटी (Polity) है जो अधिनायकतन्त्र (वर्गतन्त्र) और जनतन्त्र के बीच की स्थिति है। शासन सत्ता को वह मध्य वर्ग के हाथ में रखना अधिक उचित समझता था। उसके विचार से संसार में दो ही तत्व हैं और दोनों एक दूसरे पर आश्रित हैं। इन दोनों तत्वों के संयोग से ही सृष्टि का निर्माण होता है। उसके विचार से वही मनुष्य उन्नति करता है जो भौतिक और आध्यात्मिक दोनों पक्षों का विकास कर लेता है। वह वैराग्य और तप का पक्षपाती नहीं था बल्कि समुचित जीवन व्यतीत करने का उपदेश देता था।

विज्ञान

प्रायः लोग समझते हैं कि यूनानी लोग विज्ञान के बहुत बड़े ज्ञाता थे परन्तु वास्तव में यह धारणा गलत है। विज्ञान-दर्शन एशिया की देन है। यूनान वालों ने केवल उनसे घनिष्ठता दिखलाई है। यूनान के वैज्ञानिक थैलीज ने प्रारम्भ में कुछ बीज-

गणित की खोजें कीं। पैथागोरस की खोजें उससे अधिक महत्वपूर्ण थीं। हिप्पोक्रेटिज और डिमोक्रेटिज ने इस विज्ञान को अधिक विकसित किया था। हिप्पोक्रेटिज ने रेखा-गणित की प्रथम पुस्तक का निर्माण किया।

पेरिक्लीज काल के वैज्ञानिकों ने चिकित्सा शास्त्र में प्रगति की थी। एम्पिडोक्लीज ने यह सिद्ध किया था कि रक्त हृदय से प्रवाहित होता है और शरीर के छोटे-छोटे छिद्र स्वास्थ्य प्रक्रिया में सहायक होते हैं। इटली निवासी अल्वमेयन ने यह बतलाया कि विचारों का केन्द्र-बिन्दु मस्तिष्क है। उसने पशुओं की शल्य-चिकित्सा प्रारंभ की, निद्रा-प्रक्रिया का अनुसन्धान किया और आप्टिक नर्व (Optic nerve) का ज्ञान प्राप्त किया। इसी काल में यूराईफोन ने प्लूरिसी को फेफड़ों की बीमारी बतलाया और यह भी बताया कि कब्ज अनेक रोगों का कारण होती है। हिप्पोक्रेटिज ने चिकित्सा-शास्त्र को धर्म और दर्शन-शास्त्र से अलग करके संक्रामक रोगों का पता लगाया और यह बतलाया कि रोग प्राकृतिक कारणों से होते हैं न कि दैवीय शक्तियों के प्रकोप से।

ज्योतिष के क्षेत्र में एम्पिडोक्लीज, पार्मेनिडिज और फाइलोलोस तथा डिमोक्रेटिज के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन्होंने कई महत्वपूर्ण सिद्धान्तों की खोज की—

(1) विश्व का निर्माण चार तत्व—क्षिति, जल, पावक और वायु से हुआ है।
(2) प्रकाश एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचने में समय लेता है।
(3) पृथ्वी गोल है।
(4) चन्द्रमा को सूर्य से प्रकाश मिलता है।
(5) आकाश-गङ्गा अनन्त विश्वों का समूह है।
(6) पृथ्वी सूर्य मण्डल में एक ग्रह मात्र है।
(7) चन्द्रमा पृथ्वी का निकटतम ग्रह है।
(8) ग्रहण का कारण सूर्य, चन्द्र है।

इन क्रान्तिकारी विचारों ने एथेन्स में बहुत हलचल मचाई और धर्म-गुरु विशेष रूप से पार्मेनिडिज की हत्या के लिये छटपटाने लगे। एनेक्जेगोरास को एथेन्स से भागकर अपनी जान बचानी पड़ी।

साहित्य

नाटक—पेरिक्लीज युग के दुःखान्त नाटकों में ही एथेन्सवासियों के साहित्यिक गुणों की छटा मिलती है। यूनान के नाटक कई दशाओं में अन्य देशों के नाटकों से भिन्न थे—

(1) इन नाटकों को आधारभूत कथायें धार्मिक थीं।

(2) रगमंच पर बहुत कम दृश्य दिखाये जाते थे।

(3) नारी के प्रेम का अभाव होता था।

(4) ये नाटक अधिकतर दुःखान्त होते थे।

नाटकों का प्रारम्भ डायोनाइसस के सम्मान में उत्सव से आरम्भ होता है। इस उत्सव में कुछ लोग बकरे का रूप बनाकर एक वेदी के चारों ओर नाचते और गाते थे तथा घटनाओं का गीतों में वर्णन करते थे। आगे चलकर नाच-गाना कम हो गया और सवाद के रूप में कथा का विकास होने लगा तो कालान्तर में नाटक के रूप में प्रस्तुत हुआ।

दुःखान्त नाटकों का संस्थापक एस्काइलस था। इसने 80 नाटक लिखे थे जिसमें रूढ़िवादी भावनाओं की अधिकता है। यह स्वयम् भाग्यवादी और आस्तिक था और सांसारिक जीवन की सत्यता में विश्वास नहीं करता था। दूसरा नाटककार सोफोक्लिस था। उसकी रचनाओं में संसार के प्रति अविश्वास और जीवन की क्षणभगुरता के प्रति गहरा क्षोभ प्रकट किया गया है। यूरीपिडीज ने धार्मिक कुरीतियों, अनैतिक परम्पराओं, स्त्रियों और दासों पर किये गये अत्याचारों को कड़ी आलोचना की है। उसने नारी जाति का प्राणदायक चरित्र प्रस्तुत किया है।

सुखान्त नाटककारों में एरिस्टोफेनिज सबसे अधिक प्रसिद्ध है। उसने जीवन की साधारण घटनाओं को लेकर धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक कुरीतियों पर आक्रमण किया है तथा राजनीतिज्ञों की खिल्ली उड़ाई है। इसके विषय में एक इतिहासकार ने लिखा है—"जिसने एरिस्टोफेनिज का अध्ययन नहीं किया वह एथेन्सवासियों को नहीं जान सकता।"

"No one who has not read Aristrophenes can know the Athenians."

काव्य - यूनान के इस युग का सबसे बड़ा कवि पिंडार कहा जाता है। यह यूनान के कई राजदरबारों में राजकवि नियुक्त हुआ और अत्यन्त कुशल गायक तथा वीणा बजाने वाला था। उसकी रचनाओं में आकुलता, श्रद्धा, देश-भक्ति की भावना कूट-कूट कर भरी है। राजनीतिक क्षेत्र में वह कुलीन वर्ग का समर्थक था। एथेन्स-वासियों ने इसी कारण उसका एक मूर्ति स्थापित कराई थी। सिकन्दर महान ने जब थ्रीबिज का नाश किया, उस समय उसने पिंडार के निवासस्थान को सुरक्षित छोड़ दिया।

इतिहास—हेरोडोटस और थ्यूसीडीडिज दो प्रमुख इतिहासकार इस युग में हुये। थ्यूसीडोडिज को वैज्ञानिक इतिहास का जन्मदाता और हेरोडोटस को इतिहास-शास्त्र का पिता कहा जाता है। हेरोडोटस ने मुख्य रूप से ईरान और यूनान के संघर्ष की कथा लिखी है परन्तु राजनीतिक घटनाओं के साथ साहित्य, कला, वेश-भूषा, धर्म

और शृङ्गार के साधनों आदि का भी विस्तृत वर्णन किया है। अतः उसके ग्रन्थ राजनीति से कम सम्बन्धित हैं और साहित्य से अधिक। थ्यूसीडीडिज कुशल सेनानी और योग्य सेनापति था। उसने एथेन्स और स्पार्टा के संघर्ष का वर्णन किया है। हेरोडोटस की भांति उसने सुनी हुई बातों को बिना सत्य की खोज किये हुये लिखने का प्रयास नहीं किया बल्कि तथ्यों की आलोचना निष्पक्ष भाव से काफी छान बीन के बाद की है। इसी कारण वह स्वयम् अपने ग्रन्थ को स्थायी निधि कहता था और मेकाले ने उसे महानतम् इतिहासकार माना है। अपने ग्रन्थ में उसने राजनीतिक पक्ष पर अधिक बल दिया है, सामाजिक और आर्थिक पक्षों पर प्रायः बिल्कुल प्रकाश नहीं डाला है।

कला

पेरिक्लीज ने जर्जरित एथेन्स को राजनीतिक और सांस्कृतिक केन्द्र-बिन्दु बनाने के लिये महान प्रयत्न किया। देश की सुरक्षा के लिये सड़कें चौड़ी कराई, दीवारें बनवाईं और राजधानी को बन्दरगाहों से मिलाया। उसने नगर की सफाई का भी उचित प्रबन्ध किया।

एथेन्स के मुख्य भवनों में सभा-भवन, संगीत-भवन और पार्थेनोन नाम का देवालय अत्यन्त प्रसिद्ध है जहाँ सम्राट स्वयम् जाया करता था और वक्तृतायें देता था अथवा संगीत तथा नृत्य प्रतियोगितायें आयोजित करवाता था। पार्थेनोन के देवालय को सफेद संगमरमर से बनाया गया था और टुकड़ों को इस प्रकार जोड़ा गया था कि कहीं निशान नहीं मालूम होता था। पेरिक्लीज के समय में यूनान की डोरिक और आयोनिक शैलियों का पूर्ण विकास हुआ जो कालान्तर में अत्यन्त लोकप्रिय हुईं।

पेरिक्लीज युग के कारीगरों ने सोने, कांसे और हाथी दाँत की उतनी ही सुन्दर मूर्तियों का निर्माण किया जितनी कि संगमरमर की मूर्तियों का। आगोस के कलाकारों में सबसे अधिक पोलिक्लीटस प्रसिद्ध है। उसने हेरा की स्वर्ण और हाथी-दाँत की मूर्तियाँ इतनी सुन्दर बनाई थीं कि उनकी तुलना फीडियास की एथेना की मूर्ति से की जाती है।

इसी युग में चित्र-कला की तीन शैलियाँ विकसित हुईं। फ्रेस्को विधि में ताजे प्लास्टर पर चित्र बनाये जाते थे। टैम्परा विधि में अण्डे की सफेदी मिलाकर गीले रंगों से कपड़े या बोर्ड पर चित्र बनाये जाते थे और एन्कॉस्टिक विधि में मोम मिलाकर रंगों का प्रयोग किया जाता था। इस काल की चित्रकला में वास्तुकला अधिक सहायक थी। इस युग के प्रमुख चित्रकारों में पोलिग्नोटस और परेसियस तथा ज्यूक्सिज आदि के नाम प्रमुख हैं।

मूल्यांकन

सांस्कृतिक दृष्टि से यूनान सदा अमर रहेगा यद्यपि राजनीतिक दृष्टि से उसका पतन हो चुका है। यूनान की सांस्कृतिक निधि पाश्चात्य सभ्यता में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। इसी कारण बर्न्स लिखता है—"ग्रीक लोग उन आदर्शों के जन्म-दाता थे जो आधुनिक युग में पश्चिम की देन माने जाते हैं।"

'The Greeks were the founders of nearly all those ideals which we commonly think of as peculiar to the west."

राजनीतिक चेतना का सर्वप्रथम प्रसूति-गृह यूनान को ही कहा जाता है। यहाँ जनतन्त्र के विविध उपकरणों जैसे प्रतिनिधि सभाओं, निर्वाचन, मताधिकार, न्याय की शाखाओं का विभाजन प्रचुर मात्रा में विकसित हुआ। एकतन्त्र और जनतन्त्र की भलाइयों, बुराइयों का ज्ञान भी सर्वप्रथम यूनानी साम्राज्य में ही दिख-लाई पड़ता है। यूनानी योद्धा अपने देश की स्वतन्त्रता, अपने विश्वास की स्वतन्त्रता और पूर्वजों की समाधियों की स्वतन्त्रता के लिये तथा अपनी सन्तान और स्त्रियों की स्वतन्त्रता के लिये बहुत काल तक लड़ते रहे। उनकी स्वतन्त्र भावना, उनके चिन्तन, दर्शन और विचार-प्रकाशन में स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ती है। यूनानियों ने सांसारिक जीवन को सुखी बनाने का सतत् प्रयत्न किया और इसीलिये देवी-देवताओं की कल्पना मानव रूप में की और कला तथा भाषा को रहस्यमयी न बनाकर प्राकृतिक रूप दिया। यूनानियों से अनुशासन और सन्तुलन की शिक्षा मिलती है। उन्होंने यथार्थवाद और आदर्शवाद में समन्वय किया, आर्थिक जीवन में भी उनकी सन्तुलन-भावना महान है।

यूनान की इन सभी विचारधाराओं ने मानव-जाति के सांस्कृतिक और बौद्धिक विकास में जो योगदान दिया है वह चिरन्तन और चिरकालीन है। यूनानी दर्शन बहु-मुखी है जिसके अन्तर्गत भौतिकवाद, अध्यात्मवाद, आदर्शवाद, प्रकृतिवाद, आत्मदर्शन, आचार-शास्त्र, समाज-शास्त्र, चिकित्सा-शास्त्र और मनोविज्ञान आदि पर समान रूप से सफलतापूर्वक कार्य किया गया है। यूनान के दर्शन पर प्लेटो को इतना विश्वास है कि उसने लिखा है—

"Until philosophers who are kings of the kings, and princes of this world, have the spirit and power of philosophy, cities will never have rest from their evils."

सारांश

पेरिक्लीज यूनान के महानतम् व्यक्तियों में गिना जाता है। उसने एथेन्स की सीमाओं का विस्तार करने का प्रयास किया। फारस का सामना करने के लिये उसने यूनान और ईजियन सागर के तटवर्ती देशों का एक सङ्घ बनाया जिसका नेता एथेन्स था। इस पद का लाभ उठाकर उसने एथेन्स की सीमाओं को बढ़ाया और अधीन राज्यों में एथेन्स के उपनिवेश बनाये। जब पेरिक्लीज का अभ्युदय हुआ, उस समय एथेन्स में दो वर्ग के लोग थे—सामन्त और प्रगतिवादी। सामन्तों की संख्या

एरियोपेगस थी और प्रगतिवादी वर्ग असेम्बली द्वारा शासन पर अपना कब्जा करना चाहता था। पेरिक्लीज ने प्रगतिवादी दल का साथ दिया। उसके काल में असेम्बली ही प्रतिनिधि सभा हो गई। ब्यूल के सदस्यों की संख्या 500 थी। ये लोकसभा (असेम्बली) द्वारा पारित किये गये बिल को अस्वीकार नहीं कर सकते थे। न्याय व्यवस्था के लिये पेरिक्लीज ने सार्वजनिक न्यायालय का निर्माण किया और एरियोपेगस के समस्त अधिकार इस न्यायालय को दे दिये। इस न्यायालय में 6000 न्यायाधीश (जूरर) क्रमानुसार नियुक्त होते थे। इस युग में निम्न वर्ग के लोगों को विशेष उन्नति हुई।

यूनानियों ने मानव वृत्तियों को ही देवी-देवताओं के रूप में प्रतिष्ठित किया था। पहले यहाँ देवालय आदि नहीं होते थे परन्तु कालान्तर में उनका निर्माण हुआ। यहाँ के धार्मिक सुधारकों में पिंडर, यूरीपिडीज और साफोक्लीज आदि के नाम लिये जा सकते हैं। 600 ई० पू० में यूनान में नित्य और अनित्यवादी सम्प्रदायों का जन्म हुआ। 5वीं सदी ई० पू० में अणुवादियों ने दोनों में मेल कराने का प्रयास किया। इसी युग में सोफिस्ट विचारधारा का भी प्रभाव बढ़ा। सर्वप्रथम सोफिस्ट गोरास था। सुकरात के विचारों ने यूनान की दार्शनिक विचारधारा में महान् परिवर्तन किया। वह सत्य का महान् उपासक था। उसने धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक कुरीतियों की आलोचना की। फलस्वरूप शासकों ने विष पीकर उसे आत्महत्या करने को बाध्य किया। उसके बाद उसके दो शिष्यों अरस्तू और प्लेटो ने दर्शन के क्षेत्र में क्रान्ति उत्पन्न की।

पेरिक्लीज काल में गणित, चिकित्सा शास्त्र और ज्योतिष के क्षेत्र में विशेष उन्नति हुई। हिप्पोक्रेटिज ने रेखागणित की प्रथम पुस्तक का निर्माण किया। एम्पिडोक्लीज और यूराइफ्रोन की चिकित्सा शास्त्र के क्षेत्र में महान देन है। ज्योतिष के क्षेत्र में एम्पिडोक्लीज, पार्मेनिडिज और फाइलोलोस तथा डिमोक्रेटिस के नाम उल्लेखनीय हैं। साहित्य के क्षेत्र में इस युग में अनेक नाटकों का सृजन हुआ। यह नाटक दुःखान्त और सुखान्त दोनों ही कोटियों के है। दुःखान्त नाटककारों में एस्काइलस और सुखान्त नाटककारों में एरिस्टोफेनिज के नाम प्रसिद्ध हैं। पिंडार इस युग का प्रसिद्ध कवि और गायक था। हेरोडोटस और थ्यूसीडीडिज नामक दो प्रसिद्ध इतिहासकार भी इस युग में हुये। एथेन्स के मुख्य भवनों में सभा भवन, संगीत भवन और पार्थेनोन कला की दृष्टि से प्रसिद्ध हैं। इस युग में हाथी-दाँत, काँसे और सोने की मूर्तियों का भी निर्माण हुआ। आर्गोस के कलाकारों में पोलिक्लीटस प्रसिद्ध है। चित्रकारों में पोलिग्नोटस का नाम सबसे ऊपर लिया जाता है।

इस युग की सबसे बड़ी देन उसकी दार्शनिक विचारधारा है।

— - —

हेलेनिस्टिक सभ्यता और संस्कृति
HELLENISTIC CIVILIZATION AND CULTURE

अध्याय | 24

हेलेनिस्टिक सभ्यता और संस्कृति

(HELLENISTIC CIVILIZATION AND CULTURE)

प्रश्न 1— हेलेनिस्टिक-सभ्यता से आप क्या समझते हैं ? साहित्य एवं विज्ञान के क्षेत्र में इसकी प्रमुख देन का विवेचन कीजिये।

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

What do you understand by the Hellenistic civilization ? Discuss its main contribution in the domain of literature and science.

(Allahabad University)

प्रश्न 2—साहित्य एवं विज्ञान के क्षेत्रों में हेलेनिस्टिक-काल की प्रधान उपलब्धियों का विवेचन कीजिये। हेलेनिस्टिक-सभ्यता यूनानी-सभ्यता से पृथक् क्यों मानी जाती है ?

Discuss the main achievements of the Hellenistic age in the domain of literature and Science Why should the Hellenistic civilization be regarded as distinct from the Greek ?

(Allahabad University)

प्रश्न 3—हेलेनिस्टिक काल की प्रमुख दार्शनिक शाखाओं एवं कलात्मक कृतियों का संक्षिप्त वर्णन कीजिये।

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

Give a brief outline of the main philosophic schools and artistic activities in the Hellenistic age.

(Allahabad University)

हेलेनिस्टिक सभ्यता सिकन्दर के साम्राज्य की देन थी। सिकन्दर ने अनेक प्रदेशों को जीता और जिन-जिन प्रदेशों में वह गया उन पर उसने यूनान की छाप डाली। विजित प्रदेशों में उसने छोटे-छोटे कस्बों और नगरों के रूप में उपनिवेशों का निर्माण किया। इस प्रकार यूनान का सम्पर्क संसार के विभिन्न देशों से हो गया और

यूनानी सभ्यता का सम्मिश्रण संसार की विभिन्न सभ्यताओं में हुआ। इसी समिश्रण से एक नवीन सभ्यता का जन्म हुआ जिसे हम हेलेनिस्टिक सभ्यता के नाम से पुकारते हैं।

हेलेनिस्टिक सभ्यता और यूनानी सभ्यता एक दूसरे से भिन्न हैं। यूनानी सभ्यता का केन्द्र यूनान था परन्तु हेलेनिस्टिक सभ्यता संसार के विभिन्न भागों से पनपी। सिकन्दर द्वारा विजित जितने भी प्रदेश थे वह सब हेलेनिस्टिक सभ्यता से परिपूर्ण हैं। यूनानी सभ्यता शुद्ध रूप से मौलिक थी परन्तु हेलेनिस्टिक सभ्यता मौलिक न होकर अनेक सभ्यताओं से मिश्रित थी और इस पर पूर्व की सभ्यताओं की गहरी छाप थी। यूनानी सभ्यता सादगी से युक्त थी परन्तु हेलेनिस्टिक सभ्यता विशालता से परिपूर्ण थी। यूनानी सभ्यता ग्रामीण जीवन में फली परन्तु हेलेनिस्टिक सभ्यता नागरिक सभ्यता थी।

हेलेनिस्टिक सभ्यता, सिकन्दर के आक्रमण की पृष्ठभूमि में

काल्डवेल का मत है "हेलेनिस्टिक सभ्यता सिकन्दर महान की विजयों के साथ अग्रसर हुई।"

"The Hellenistic age was ushered by the Campaigns of Allexender the Great."

– Caldwell.

चतुर्थ शताब्दी ईसा पूर्व में यूनान के राजनीतिक इतिहास में महान परिवर्तन हुआ। इस युग में स्पार्टा और एथेन्स की शक्ति का ह्रास हो गया और मैसीडोनिया (Macedonia) का अभ्युदय हुआ। 356 ई० पूर्व फिलिप नाम का एक कुशल सम्राट मेसीडोनिया (Macedonia) की गद्दी पर बैठा। उसने अपने साम्राराज्य की सीमाओं को बढ़ाने का प्रयास किया। 338 ई० पूर्व उसने थीबिस (Thebes) और एथेन्स (Athens) को जीत लिया। उसका प्रयास अपने साम्राराज्य को और अधिक बढ़ाने का था परन्तु 336 ई० पूर्व उसकी हत्या कर दी गई।

उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र सिकन्दर गद्दी पर बैठा, जो एक महान विजेता और साम्राज्य-निर्माता हुआ। सिकन्दर बहुत अधिक परिश्रमी और संघर्ष करने वाला व्यक्ति था। वह खेल-कूद में निपुण था और निर्भीक तीरंदाज तथा घोड़े की सवारी में पटु था। उसके विषय में विल ड्यूरान्ट ने लिखा है "वह अलौकिक रूप से सुन्दर था। उसका सुन्दर शरीर, कोमल नीली आखें और घुंघराले चमकीले बाल असाधारण रीति से सुन्दर थे।"

"He was handsome beyond all precedents for a king, with expressive features, soft blue eyes and luxuriant auburn hairs."

—Will Durant.

वह बड़ा विद्यानुरागी था। साहित्य और विज्ञान से उसको विशेष प्रेम है। वह अरस्तू का बहुत सम्मान करता था। उसके विद्यानुराग की चर्चा करते हुए प्लूटार्च लिखता है—"उसे ज्ञान की पिपासा समय के साथ बढ़ती गई। वह सब प्रकार के अध्ययन का प्रेमी था।"

"He had a voilent thirst and passion for learning which increased, as time went on. He was a lover of all kinds of reading and knowledge."

—Plutarch.

सिकन्दर बहुत महत्वाकांक्षी सम्राट था। सिंहासनारूढ़ होने के बाद दो वर्ष तक उसने अपनी आन्तरिक स्थिति को सुदृढ़ किया और 334 ई० पूर्व में उसने अपनी दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया। 333 ई० पूर्व में उसने पारसीक सेना को पराजित किया और दारा तृतीय पर विजय प्राप्त की। इसके बाद उसने सीरिया, मिस्र, बैबीलोनिया, फारस, बैक्ट्रिया तथा सोग्डियाना पर अपना सिक्का जमाया। 327 ई० पूर्व में उसने भारत पर आक्रमण करने के लिए हिन्दूकुश को पार किया। भारत में तक्षशिला के सम्राट आम्भी ने उसकी दासता स्वीकार कर ली। तत्पश्चात् सिकन्दर और पोरस में भीषण युद्ध हुआ। पोरस बन्दी बनाया गया परन्तु उसकी निर्भीकता को देखकर सिकन्दर ने उसको अपना मित्र बना लिया। सिकन्दर मगध की ओर बढ़ना चाहता था परन्तु उसके सेनानियों ने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया और सिकन्दर को वापस लौट जाना पड़ा। 323 ई० पूर्व में 33 वर्ष की अवस्था में वह स्वर्गलोक सिधार गया।

सिकन्दर के आक्रमण का महत्व

सिकन्दर के आक्रमण का विभिन्न देशों पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। यह महत्व केवल राजनीतिक ही नहीं है परन्तु धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी सिकन्दर के आक्रमण का विशाल प्रभाव पड़ा। सिकन्दर के आक्रमण के कारण राजनीतिक एकता का बल मिला और सम्राट भावना की पूजा को प्रोत्साहन मिला। उस सम्बन्ध में काल्डवेल लिखता है—"राजा की देवत्व शक्ति राजनीति और धर्म में हेलेनिस्टिक जगत में महान समझी जाने लगी और यह रोमन साम्राज्य में एकत्व का तत्व था।"

"The god king idea, however, became a powerful force in both politics and religion in the Hellenistic world and the predominent unifying eliment in the Roman Empire."

—Caldwell.

धर्म और दर्शन के क्षेत्र में यूनानी धर्म और दर्शन का प्रभाव संसार के विभिन्न देशों पर पड़ा। आर्थिक क्षेत्र में सिकन्दर के आक्रमण के फलस्वरूप नवीन व्यापारिक केन्द्रों की स्थापना हुई और पूँजीवाद को बढ़ावा मिला। यूनान के कलाकार विभिन्न

देशों में जाने लगे, अतः वहां की कला पर भी यूनानी प्रभाव पड़ने लगा। कलाकारों और साहित्यकारों के आदान-प्रदान के फलस्वरूप संसार के विभिन्न देशों के साहित्य में परिवर्तन हुआ।

इन विभिन्न परिवर्तनों के फलस्वरूप एक नयी सभ्यता का जन्म हुआ जिसे हम हेलेनिस्टिक सभ्यता के नाम से पुकारते हैं। आरम्भ में विद्वानों ने इस सभ्यता के महत्व को नहीं समझा परन्तु 19वीं शताब्दी के मध्य में ड्रायसेन (Droysen) ने इसके वास्तविक महत्व को प्रतिपादित किया और आज के युग में यह सभ्यता विश्व की महानतम् सभ्यताओं में मानी जाती है। इसके महत्व को चित्रित करते हुए कोलडवेल ने लिखा है—

"The age is of fu damental importance in the wor d history, since it was Hallenistic and not the Hallenic culture which influenced the Romans and which they transformed and transmitted to the Western World."

वह पुनः लिखता है—

"It is now considered an age of advancement of expansion and of great importance of interest in the story of mankind."

सभ्यता एवं संस्कृति

राजनैतिक परम्परा

हेलेनिस्टिक सभ्यता के युग में राजनीतिक विचारधारा में महान् परिवर्तन हुआ। संसार के विभिन्न देशों में जहाँ-जहाँ इस सभ्यता का प्रभाव पड़ा था वहाँ राजा अब तक एक साधारण व्यक्ति समझा जाता था परन्तु इस सभ्यता के प्रभाव से उसके स्वरूप में परिवर्तन हुआ। अब उसमें देवत्व की कल्पना की जाने लगी। इस सम्बन्ध में हेनरी एस० लूकस का कथन है—"हेलिनिस्टिक राज्यों का एक विशेष गुण राजा को देवता मानना था। प्रायः पूर्वी देशों में यह विचार सार्वजनिक रूप से फैला था कि राजा ईश्वर का प्रतिनिधि है।"

"One striking feature of the Hallenistic states was the belief that the ruler was a God. This idea throughout the Near East, was common. In Egypt, the Pharooh was a God, in Babylonia, the ruler was the spokesman of the God."

—Henry S. Lucas.

सम्राट में देवत्व की कल्पना करना हेलेनिस्टिक संसार के लिए बिल्कुल एक नई चीज थी। यूनान के नगरों व राज्यों में सम्राट में केवल मानवीय गुणों का समावेश देखा गया था परन्तु सिकन्दर के माध्यम से उनमें भी इस विचारधारा ने जन्म लिया

कि शासक ईश-पुत्र अथवा देवदूत है। सिकन्दर के पश्चात् सेल्यूकस ने तो अपने को पूर्णरूप से दैवी शासक माना था। पाश्चात्य विचारशील लोग साधारणतया किसी बात से प्रभावित होने वाले नहीं थे परन्तु पूर्व की भावना ने धीरे-धीरे उनके मस्तिष्क में यह बात बैठा दी कि सम्राट देवता तुल्य होता है। इस सम्बन्ध में एक विद्वान ने लिखा है—"इस प्रकार दैवीय राजा का सिद्धान्त निकट वर्ती पूरब से सिकन्दर महान एवं उसके उत्तराधिकारियों की विजयों के साथ पश्चिमी देशों में आया।"

"Thus the practice of having divine rulers, came from the near East, brought to the West by Alexander the Great and his successor."

इसी भावना से प्रभावित होकर विशाल रोम साम्राज्य में सम्राटों के पूजन का विधान किया गया। राजनीतिक क्षेत्र में हेलेनिस्टिक सभ्यता की यह सबसे बड़ी देन थी बाकी समस्त शासन यूनानियों के अनुरूप ही था।

सामाजिक स्थिति

हेलेनिस्टिक सभ्यता का युग विभिन्न जातियों के मिश्रण का युग था। सिकन्दर की विजय के फलस्वरूप साम्राज्य की सीमायें बहुत बढ़ गई थीं। फलस्वरूप व्यापारिक और आर्थिक प्रगति का अभियान हुआ और सामाजिक जीवन में सरलता के स्थान पर जटिलता और दुरूहता के दर्शन हुये। व्यापार की प्रधानता के कारण धनी और निर्धन के बीच की खाई बढ़ती गई। जीवन विलासिता की ओर बढ़ता गया और उसका स्तर ऊँचा उठता गया। ग्रामीण जीवन के नैसर्गिक वातावरण को छोड़कर लोग नागरीय होते गये। आरम्भ में लोगों ने दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयास किया फिर श्रृङ्गार आदि की सामग्री प्रचुर मात्रा में प्रचलित होने लगी। अनेक सड़कों, राजभवनों, संग्रहालयों, व्यायामशालाओं और रंगशालाओं का निर्माण हुआ। इस युग में 'सिकन्दरिया' नामक नगर बहुत उन्नति कर गया।

हेलेनिस्टिक सभ्यता के प्रभाव के फलस्वरूप लोगों का जीवन स्तर (Standard of living) ऊँचा उठ गया और उनमें नागरीय गुणों का समावेश होता गया। इस सम्बन्ध में प्रो० बर्न्स का कथन है "विश्व नगरों की स्थापना हेलिनिस्टिक युग में सामाजिक और आर्थिक दशाओं का फल है। यद्यपि बहुत सी जन-संख्या अब भी गाँवों में रहती थी परन्तु लोग नागरिक जीवन में कठिनाइयाँ होते हुये भी अधिक आकर्षित होते थे और नगर की चकाचौंध के कारण ग्रामों को छोड़कर नगरों में आते थे।"

"An interesting result of social and economic condition in the Hallenistic age was the growth of metropolitan cities. Despite the facts that a majority of the people still dwelt in the country, there was an increasing tendency for men to

become dissatisfied with the dullness of rural living and to flock into the cities where life was not easier but was atleast more exciting"

—Prof. Burns.

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस युग में उस नागरीय सभ्यता का प्रचार हुआ जो आज के युग की रीढ़ बनी हुई है।

आर्थिक दशा

हेलेनिस्टिक सभ्यता का वैभव उसके आर्थिक विकास के फलस्वरूप ही था। सिकन्दर की विजय के पूर्व विभिन्न देशों के आर्थिक विकास में एक दूसरे के साथ बहुत कम सम्बन्ध था। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में सिकन्दर महान के आक्रमण ने बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया। पूर्व और पश्चिम एक दूसरे के निकट आ गये। नवीन मार्ग बनाये गये और अनेक व्यापारिक केन्द्र खोले गये। एक देश का माल दूसरे देश में बहुत व्यापक मात्रा में जाने लगा। इस हेलेनिस्टिक सभ्यता की आर्थिक स्थिति का पता निम्नलिखित बातों से चलता है—

(1) **नगर जीवन**—हेलेनिस्टिक युग के आर्थिक विकास का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि नगरों का उदय हुआ। सिकन्दर के आक्रमण के बाद नगरों के अभ्युदय के फलस्वरूप वाणिज्य और व्यापार के विकास में सुगमता हुई। सिकन्दर और सेल्यूकस ने मिस्र और एशिया में कई नगर स्थापित किये।

(2) **व्यापार**—हेलेनिस्टिक सभ्यता व्यापार प्रधान थी। उस युग में आर्थिक उन्नति के लिये व्यापार महत्वपूर्ण साधन था। सिकन्दर की दिग्विजय के फलस्वरूप बहुत बड़े-बड़े बाजारों का निर्माण हुआ। धन और सूद की प्रथा में वृद्धि हुई और अधिकांश भागों में मजदूरी की दर कम हो गई। इनके अतिरिक्त शासक वर्ग ने भी व्यापार को प्रोत्साहन दिया। इस सम्बन्ध में प्रो० बर्न्स का मत है—"व्यापार और उद्योगों की उन्नति राज्य का राजस्व बढ़ाने का साधन थी।"

"The promotion of trade and industries by Government was a mean of augumenting the revenues of the State."

—Prof. Burns.

वस्तुओं का उत्पादन बढ़ने से व्यापार के क्षेत्र में और अधिक उन्नति हुई। इस युग में व्यापार के तीन प्रमुख केन्द्र थे—

(1) मिस्र का सिकन्दरिया, (2) पर्गमम, (3) मिलेटस।

सिकन्दरिया अपने तेल के व्यापार के लिये बहुत प्रसिद्ध था। सिकन्दरिया में राज्य की ओर से व्यापार होता था। पर्गमम में कपड़े का व्यापार अधिक मात्रा में होता था। मिलेटस में ईंट और कपड़े का व्यापार प्रमुख था।

राजकीय सुरक्षा के फलस्वरूप सोने और चाँदी के व्यापार में भी वृद्धि हुई। भारत से सोना और चाँदी सुदूर देशों में जाता था। सूती कपड़ा, बर्तन, भोग-विलास की सामग्री आदि के व्यापार में भी काफी वृद्धि हुई। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि इस युग की आर्थिक उन्नति व्यापार पर ही निर्भर थी। इस व्यवस्था में केन्द्रीयकरण की नीति पनपने लगी थी।

(3) **उद्योग धन्धे**—व्यापार की आधारशिला उद्योग धन्धे ही होते हैं। ज्यों-ज्यों व्यापार में सुगमता आती गई वैसे-वैसे उद्योग धन्धों का विकास होता गया। अनेक नये उद्योग खुले। इस युग के पूर्व अधिकतर लघु उद्योग धन्धों का ही प्रचलन था परन्तु हेलेनिस्टिक युग में वस्तु, धातु और काँच के सामान बनाने में बड़े-बड़े उद्योगों का विकास हुआ।

(4) **कृषि**—यद्यपि यह ठीक है कि हेलिनिस्टिक सभ्यता व्यापार प्रधान सभ्यता थी परन्तु इसके साथ ही कृषि के क्षेत्र में भी बहुत अधिक उन्नति हुई थी। इस सम्बन्ध में प्रो० बर्न् स ने लिखा है—"आर्थिक क्षेत्र में अन्य अवलम्बों के कारण खेती पर बुरा असर पड़ा। सबसे महान कारण खेती का एकत्रीकरण और खेतिहर जनता की कमी होना था।"

"Agriculture was profoundly affected by the new devel opment as any other branch of the economic life. The most striking phenomena were the concentration of holdings of land and the degradation of the agricultural population."

—Prof. Burns.

इस युग में कृषि का कार्य सामान्य कृषकों के हाथ से निकलकर भूमिपतियों के हाथ में जा रहा था। यद्यपि कृषि साधारण कृषक ही करते थे परन्तु लाभ अधिकतर भूमिपतियों को ही होता था। फलस्वरूप सामान्य कृषकों की दशा धीरे-धीरे गिरती जा रही थी। बड़े-बड़े फार्म भी खोले जाते थे जिनमें दासों को काम के लिये लगाया जाता था। एक ओर पूँजीवादी वर्ग पनप रहा था और दूसरी ओर साधारण कृषक वर्ग की दशा शोचनीय होती जा रही थी।

(5) **मुद्रा का प्रचलन**—इस युग ने क्रय-विक्रय के लिये मुद्रा को कारगर किया। यूनानियों ने फारस से बहुत अधिक मात्रा में सोना और चाँदी पाया गया और फलस्वरूप अनेक मुद्रायें ढाली गईं। सैनिकों को वेतन मुद्रा के रूप में ही प्राप्त होता था।

मुद्रा के प्रचलन के फलस्वरूप कई बैंक खोले गये। मिस्र में बैङ्कों की संख्या सबसे अधिक थी। अन्य भागों में अन्नागार हो बैङ्क का कार्य करते थे। फारस में

26

अनाज के रूप में ही कर वसूल किया जाता था और उसी रूप में सैनिकों को वेतन दिया जाता था।

इसमें किंचितमात्र भी सन्देह नहीं कि समस्त युग आर्थिक दृष्टि से बहुत महत्व-पूर्ण था। नये-नये उद्योग-धन्धों के विकास के फलस्वरूप विभिन्न देशों की आर्थिक उन्नति हो रही थी परन्तु इस अर्थ-प्रधान सभ्यता के कुछ दोष भी थे। सबसे बड़ा दोष तो यह था कि इससे पूंजीवादी प्रथा को प्रोत्साहन मिला। कृषकों का रक्त चूसकर बड़े-बड़े पूंजीपति अपना घर भरते थे। सामाजिक क्षेत्र में यद्यपि दास-प्रथा समाप्त करने का प्रयास किया गया था परन्तु निम्न वर्ग की आर्थिक दशा के फलस्वरूप वह दास बनने के लिये बाध्य होते थे। मजदूरी की दर बहुत कम थी और बेरोजगारी बढ़ती जा रही थी। बेरोजगारी की प्रथा को चित्रित करते हुये एक विद्वान ने लिखा है - "बड़े नगरों में बेरोजगारी की समस्या इतनी कठोर हो गई थी कि सरकार को बहुत से नाग-रिकों को मुफ्त अनाज देना पड़ता था।"

"Unemployment in the large cities was so serious a problem that Government had to provide free grains to many of the inhabitants."

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि हेलेनिस्टिक युग में आर्थिक व्यवस्था का वह रूप दिखलाई पड़ रहा था जो आधुनिक संसार के बहुत से देशों में देखा जा सकता है।

धर्म

हेलेनिस्टिक युग में विभिन्न सांस्कृतियों के मिलन के फलस्वरूप धर्म के क्षेत्र में भी महान परिवर्तन हुआ। इस युग की धार्मिक विशेषताओं की विवेचना—

(1) **पूर्वीकरण**—इस युग में यूनानी धर्म में पूर्व के धर्म का छाप परिलक्षित होती है। अब तक ये जिन देवताओं में विश्वास करते थे वे मानवीय दुर्बलताओं से युक्त थे। पूर्व में देवताओं की समस्त शक्तियों को जीवित माना गया था उनकी कल्पना अमृत्व और मुक्तिदायक के रूप में की गई थी। यह विचारधारा हेलेनिस्टिक युग में सभी जगह व्याप्त होती गई।

(2) **एकेश्वरवाद**—हेलेनिस्टिक युग में एकेश्वरवाद को बढ़ावा मिला। इसके पूर्व अनेक देवी-देवताओं की पूजा की जाती थी। परन्तु सिकन्दर महान की विजयों के कारण लोगों में एकेश्वरवाद के प्रति विश्वास बढ़ने लगा। इस युग में सरपिस नामक देवता की पूजा की जाती थी। इस सम्बन्ध में टार्न ने लिखा है—"सरपिस नाम का देवता ही सर्वोपरि माना जाता था यह मानव के मस्तिष्क की खोज थी।"

"Sarpis has been supposed to be the only God, ever successfully made by modern man."

— Torn.

मिस्र, बेविलोनिया, एशिया माइनर आदि में इसका पूजन होता था।

(3) **शक्ति उपासना** सरपिस के साथ ही उसकी पत्नी आईसिस की भी पूजा होती थी। प्रथम शताब्दी में इसकी पूजा का प्रचलन बहुत हो गया। टार्न ने लिखा है— 'प्रथम शताब्दी में यह माना जाने लगा था कि यदि कोई विश्व धर्म था तो वह यही था।"

"By the Ist century, it must have seemed that if there was to be a universal religion it could be only this."

—Torn.

ऐसा विश्वास था कि भौतिक फलों की प्राप्ति के लिये आईसिस की पूजा ही एक मात्र साधन थी।

यह ठीक है कि इस युग में एकेश्वरवाद की प्रथा को प्रोत्साहन मिल रहा था परन्तु फिर भी विभिन्न देशों में बहुदेववाद की प्रथा प्रचलित थी। जीयस, हैड्स, मार्डुक और ओरीसिस का पूजन भी विभिन्न देशों में होता था।

(4) **मूर्ति-पूजा एवं अवतारवाद**—इस युग में मूर्ति-पूजा का भी प्रचलन हुआ। यह मूर्ति-पूजन कदाचित् भारतीय प्रभाव था। विभिन्न देशों में अनेक देवालयों का निर्माण किया गया। कुछ देशों में अवतारवादी विचारधारा भी दृढ़ होती थी। महापुरुषों, सम्राटों को देवताओं के प्रतिनिधि के रूप में देखा जाता था।

(5) **कर्मकाण्ड एवं ज्योतिष**—इस युग में कर्मकाण्ड की प्रथा भी प्रचलित थी। अनेक अनुष्ठान किये जाते थे। यह माना जाता था कि मनुष्य का भाग्य ग्रहों के द्वारा संचालित होता है। अतएव ग्रहों का शांत करने के लिये अनेक प्रकार की धार्मिक क्रियायें की जाती थीं।

मिस्र और बेबीलोनिया के प्रभाव के फलस्वरूप लोगों में ज्योतिष के प्रति रुचि बढ़ने लगी थी। जन्म-पत्र अधिक मात्रा में बनने लगे थे। लोग भाग्यवादी हो गये थे और उनको यह विश्वास हो गया था कि मनुष्य स्वयं कुछ नहीं करता, जो कुछ भाग्य में लिखा होता है वही होता है।

(6) **सम्राट-पूजा**—पूर्व में लोग सम्राट में देवत्व की कल्पना करते थे। भारत में सम्राट को ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था। फलस्वरूप हेलेनिस्टिक संसार में भी राजा की पूजा होने लगी। हेलेनिस्टिक सम्राटों को सोतर, थिओस और एपिफेनीज जैसी उपाधियाँ दी गई थीं, जो देवत्व की परिचायक थीं।

दर्शन

दर्शन के क्षेत्र में भी हेलेनिस्टिक युग में महान परिवर्तन हुआ था। पेरिक्लीज के काल में यूनान में एक विकसित दर्शन का रूप स्पष्ट हुआ था। इस दर्शन का प्रभाव

समस्त हेलेनिस्टिक संसार पर पड़ा। हेलेनिस्टिक दर्शन के विषय में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं—

(1) इस युग में विभिन्न दर्शनों के बीच में एकता स्थापित हुई।

(2) हेलेनिस्टिक दर्शन में आन्तरिक शान्ति की ओर विशेष बल दिया गया। आर्थिक उन्नति के साथ ही मानव का जीवन आपत्तियों से परिपूर्ण हो गया।

(3) हेलेनिस्टिक दर्शन में विचारजगत और विश्वासजगत में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया गया। इस दर्शन का प्रेरणास्रोत सुकरात और प्लेटो के विचार हैं।

(4) हेलेनिस्टिक दर्शन बहुत अर्थों में आदर्शवादी है। इसमें रहस्यवादी भावना का भी पुट मिलता है।

इस युग के दर्शन को तीन रूपों में देखा जा सकता है—

(1) एपिक्यूरियन दर्शन, (2) स्टोइक दर्शन, (3) संशयवाद।

(1) एपिक्यूरियन दर्शन—एपिक्यूरियन दर्शन सुकरात के अद्वैतवादी विचारों से प्रभावित है। इस दर्शन का श्रेय एपिक्यूरस नामक व्यक्ति का है। उसका समय 341 ई० पूर्व माना जाता है। उसने अणुवाद की मीमांसा को अपनाकर अपने दर्शन का विकास किया।

एपिक्यूरस का मत था कि अणु प्रभाव के संयोग से ही समस्त संसार का सृजन हुआ है। वह देवत्व के अस्तित्व में विश्वास नहीं करता था। उसका कहना था कि देवता न तो मनुष्य की सहायता करते हैं और न उसको कष्ट ही देते हैं। एपिक्यूरस के धार्मिक विचारों को स्पष्ट करते हुये प्रो० थार्नडाइक ने लिखा है—"एपिक्यूरस ने सभी धर्मों और अन्ध-विश्वासों को अपने समय में त्याज्य घोषित किया क्योंकि यह मानवता को डराते-धमकाते थे। उसने संसार के आणविक सिद्धान्त को मान्यता दी। उसने सभी क्रियाओं को औद्योगिक सहयोग का अंश माना। मस्तिष्क और आत्मा को भी वह उच्चतम अणुओं का सहयोग मानता था जो मृत्यु के साथ नष्ट होता है, इस प्रकार भूत-प्रेतों और आत्मा की अनश्वरता का भी उसने विरोध किया।"

वह सुखवाद का विश्वासी था। उसके अनुसार मानव-जीवन का उद्देश्य सुख प्राप्त करना था। इस सुख की प्राप्ति में वह सदाचार का भी ध्यान रखता था। वह सदाचार को मान्यता देता था परन्तु ऐसे सदाचार का विरोधी था जो सुख को प्राप्त नहीं करवाता।

वह आत्मा और मरण के रूप को स्वीकार करता था। उसको भूतप्रेत वाद में भी विश्वास नहीं था। प्रकृति-राज्य को वह सर्वश्रेष्ठ मानता था और उसका कहना था

कि आधुनिक जटिलता पूर्ण जीवन प्रकृति राज्य की अवहेलना का ही दुष्परिणाम है। उसने समाज की विपत्ति की व्याख्या करने का प्रयास किया।

(2) **स्टोइक दर्शन**— हेलेनिस्टिक संसार में स्टोइक दर्शन का प्रभाव भी पड़ रहा था। इस दर्शन का प्रवर्तक जेनो नाम का एक विद्वान था जिसका जन्म साइप्रस में हुआ था। उसने एथेन्स में शिक्षा प्राप्त की और वहीं रहकर उसकी प्रतिभा का विकास हुआ। जेनो ने अपने दर्शन में सहिष्णुता और गुणों के अनुष्ठान पर अधिक बल दिया। उसका दर्शन विश्वबन्धुत्व की भावना से प्रेरित है। जेनो का मत था कि संसार के सभी व्यक्ति एकता के सूत्र में बंधे हुये हैं। किसी प्रकार का जातीय या वर्गीय भेदभाव उचित नहीं है। उसने जाति वर्ग और लिंग भेद की तीव्र आलोचना की थी। तत्कालीन दास-प्रथा का भी वह प्रबल शत्रु था। उसके दर्शन में बहुजनहिताय और बहुजनसुखाय की भावना के दर्शन होते हैं।

जेनो नैसर्गिक नियमों के पालन का पक्षपाती था। यद्यपि उसने परम्परागत धार्मिक नियमों के पालन की आलोचना नहीं की परन्तु तत्कालीन धार्मिक भावना से वह प्रसन्न नहीं था। वह देवालयों के निर्माण तथा मूर्ति-पूजा का भी विरोधी था। स्टोइक दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस दर्शन ने विभिन्न दर्शनों के सार तत्व को ग्रहण किया है। विभिन्न दर्शनों में मिलने वाले नैतिक और दार्शनिक विचारों का समन्वय ही स्टोइक दर्शन कहा जा सकता है।

स्टोइक दर्शन में जहाँ एक ओर वैयक्तिता है वहाँ दूसरी ओर सामाजिकता। इस दर्शन में सदाचारिता को विशेष महत्व दिया गया है। अपनी सदाचारिता के फलस्वरूप ही यह दर्शन वैयक्तिक दर्शन है। परन्तु जेनो इस सदाचारिता को समाज में भी फलीभूत होते देखना चाहता था। वह व्यष्टि के सदाचार से समष्टि के कल्याण के स्वप्न देखता था। यद्यपि यह ठीक है कि स्टोईक दर्शन में समाज के महत्व को चित्रित किया गया है परन्तु अपने मूल रूप में यह दर्शन व्यष्टिवादी था। यही कारण है कि बहुत से आलोचकों ने इस दर्शन की यह कह कर आलोचना की है कि यह दशन केवल कल्पनालोक का विषय है, व्यावहारिक जीवन में उसका उपयोग नहीं हो सकता है। टार्न का मत है—"उनका विश्व राज्य कभी पूर्ण नहीं हो सकता था।

"Their world state was in practice unrealisable."

— Torn.

स्टोइक विचारधारा के मानने वाले आत्मा को अमर मानते थे और बहुत से लोग संसार को विनाशशील समझते थे। इसका मत था कि संसार की गति किसी की चिन्ता नहीं करती। सब के सब एक दिन विनष्ट हो जाते हैं और आत्मा ही नष्ट नहीं होती। इन लोगों का यह भी कथन था कि संसार के परम्परागत नियमों में परिवर्तन तब तक नहीं हो सकता है जब तक कि पूरा संसार समाप्त न हो जाय। यह

मानता था कि एक दिन अवश्य ही संसार में विलय होगी और तब तक संसार के लोग छल और प्रपंच से दूर होकर आपस में प्रेम का व्यवहार करेंगे।

स्टोइक दर्शन सादगी को विशेष महत्व देता था। यह लोग अपनी आवश्यकताओं को बहुत कम रखते थे। एश्वर्यशाली और समृद्धिशाली जीवन व्यतीत करने के पक्ष में यह लोग नहीं थे। साथ ही सन्यास और विरक्ति में भी इनका विश्वास नहीं था। संसार में साधारण जीवन व्यतीत करना ही अपना कर्त्तव्य समझते थे। यह तर्कवादी भी थे। इनका मत था कि संसार का निर्माण तत्वों के द्वारा होता है। ईश्वर पर वह विश्वास करते थे और बहुत हद तक भाग्यवादी भी थे।

तत्कालीन समाज में स्टोइक दर्शन का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। बहुत से धर्म विचारक इस दर्शन से प्रभावित हुए। कालान्तर में इस दर्शन के रूप में परिवतन हुआ और इस दर्शन ने धर्म का रूप धारण कर लिया। स्टोइक धर्म में देव-पूजा को स्थान दिया गया और कर्मकांडों की प्रधानता थी। इस धर्म ने संसार के अन्य धर्मों को भी प्रभावित किया। ईसाई धर्म पर भी इसकी छाप है।

(3) संशयवाद—हेलेनिस्टिक समाज में पिरोह के संशयवाद का भी प्रचलन हुआ। इस संशयवादी दर्शन पर सुकरात और प्लेटो के दार्शनिक विचारों की छाप है। यह दर्शन सन्यास को विशेष महत्व देता था। यह भावना भारतीय सन्यास की भावना से बहुत मिलती है। इस सम्बन्ध में ट्रेवर का मत है—

"Pyrrho seems to have preached Hellenic type to Hindu renunciation both in action and in speculative thought."

इस दर्शन में तर्क को भी विशेष महत्व प्रदान किया गया था। सम्भावनावाद के सिद्धांत को ओर यह दर्शन झुका हुआ था। इस दर्शन के मानने वाले के अनुसार अन्तिम ज्ञान को प्राप्त करना मानव के लिए दुष्कर है। इस सम्बन्ध में पिरोह ने भी शंका प्रकट की है। इसीलिए इस दर्शन का नाम सशंयवादी दर्शन पड़ा है। इस दर्शन के मानने वालों में तिमन आर्केसिलत और लियूशियन के नाम प्रमुख हैं।

उपरोक्त दर्शन के अतिरिक्त हेलेनिस्टिक समाज में कुछ नई विचारधाराओं का प्रचलन हो रहा था। प्लेटो के अनुयायी उसके विचारों को प्रतिपादित कर रहे थे। अरस्तू को मानने वाले अरस्तू के विचारों के नैतिक पक्ष पर बल दे रहे थे। सिनिक विचारधारा के दार्शनिक भी अपनी ढपली अलग बजा रहे थे और एक्लेस्टिसिज्म नामक एक नई विचारधारा अलग प्रचलित हो रही थी। इस प्रकार इस युग में विभिन्न दर्शनों का विकास हो रहा था।

साहित्य

हेलेनिस्टिक युग साहित्यकारों के युग के नाम से पुकारा गया है। इस युग में काव्य, नाटक, गद्य और इतिहास के क्षेत्र में अनेक ग्रन्थों का सृजन किया गया।

(१) **काव्य**— इस युग के कवियों में कैलीमेकस का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। उसकी रचनाओं में पंडित्व का प्रदर्शन है। एपोलोनियस नाम का एक दूसरा कवि अपने महाकाव्य के फलस्वरूप बहुत अधिक प्रसिद्ध हुआ। यह कैलीमेकस का शिष्य था परन्तु कैलोमेकस ने इसके महाकाव्य की कड़ी आलोचना की थी। इस युग के कवियों में थियाक्रीटस का नाम सबसे ऊपर लिया जाता है। इसके काव्य में ग्रामीण जीवन की झलक है।

महाकाव्य के अतिरिक्त इस युग में कुछ गीतकाव्य भी लिखे गये। यह गीत-काव्य समाज के नैतिक उत्थान और जनता के मनोरजन के दृष्टिकोण को सामने रखकर लिखे गये। इस प्रकार के कवियों में मेनिप्पस तथा क्रेटस के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

यदि किंचित गहनता से विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि हेलेनिस्टिक युग में काव्य को आत्मा मर गई थी। सरस्वती, लक्ष्मी की दासी बन गई थीं। अतः जिन ग्रन्थों का सृजन हुआ उनमें न तो मौलिकता है और न रसात्मकता। इस काल के साहित्य की आलोचना करते हुए हेनरा एस० लूकस (Henry S. Lucas) ने लिखा है—"मिस्र के विद्वानों ने पुराण लिखे परन्तु उनके कोई अर्थ न थे। लिरिक उस युग मे अधिक प्रस्फुटित नहीं हुई।"

"The scholar of Alexanderia wrote epics, perfect in form but empty of meaning. Lyric poetry no longer flourished."

— Henrys. Lucas.

(2) **नाटक**— इस युग के नाटकारों में मैनेन्डर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कहा जाता है कि उसने 104 ग्रन्थों का सृजन किया था। उसके नाटकों में फक्कड़पन की झलक है। उसने सुखांत नाटकों का सृजन किया है। नाटकों में जहाँ एक ओर गहन विचारों का पुट है वहाँ दूसरी ओर तत्कालीन समाज की कुरीतियों के प्रति तीव्र प्रतिरोध की भावना है। उसके विषय में एक विद्वान ने लिखा है—"मैनेन्डर ने लगभग 325 ई० पूर्व में रचना की और उसके नाटक लिखने का ढंग ऐसा था कि वह आधुनिक नाटकों का आदि रचयिता माना जाता है।"

मैनेन्डर के अतिरिक्त फिलेमन नाम का भी एक प्रसिद्ध नाटककार हुआ। इस युग में हास्यरस प्रधान नाटक भी लिखे गये। इन नाटककारों में थियाक्रिटस का नाम

विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस कोटि के नाटक इटली तथा सिसली में प्रारम्भ हुए और आगे चलकर रोम में भी उनका प्रचलन हुआ।

(3) गद्य—गद्य के क्षेत्र में इस युग में विभिन्न प्रकार के यात्रा विवरण, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, राजनीतिक वक्तृताएँ आदि लिखी गईं। यूरोपियन साहित्य भी इस युग में प्रचलित हुआ। इस साहित्य के निर्माताओं में जेनाँ और ड्यिकिस के नाम उल्लेखनीय हैं। सिकन्दर के कृत्यों से जीवन-चरित्र लिखने की भावना भी लोगों में उत्पन्न हुई। टालमी ने सिकन्दर का चरित्र लिखा। क्लिटार्कस ने भी उसके चरित्र का चित्रण किया। प्राचीन साहित्य पर कुछ आलोचनाएँ भी लिखी गईं। होमर की कृतियों की आलोचना बहुत अधिक हुई।

इतिहास के क्षेत्र में कुछ सराहनीय कार्य किया गया। इस युग में इतिहासकारों ने पालिवियस का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसने "हिस्टरीज" नामक ऐतिहासिक ग्रन्थ का सृजन किया जिसमें विश्व इतिहासक की झलक दिखलाई देती थी। हायरोनिमस नाम का एक नया इतिहासकार भी इस युग में हुआ जिसने अपने इतिहास में सिकन्दर के काल की घटनाओं से लेकर पिरीस के काल तक की घटनाओं का चित्रण किया। फिलार्कस और पोसिडोनियस नामक इतिहासकारों ने तत्कालीन इतिहास पर प्रकाश डाला है। हेलेनिस्टिक युग के इतिहासकारों के मध्य निकोलस का नाम भी लिया जाता है। डिओडोरस नामक इतिहासकार ने 'हिस्टारिकल लिबर्टी' नामक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ में उसके पूर्व-कालीन इतिहास की चर्चा है।

इसके अतिरिक्त इस युग में कुछ फुटकर ऐतिहासिक ग्रन्थ भी लिखे गये। बेरोसन तथा मनेथो ने बेबिलोन और मिस्र का संक्षिप्त इतिहास लिखा। हेकाटोस ने भी मिस्र का इतिहास लिखा। फिलोफोरस के ग्रन्थ 'स्थेनियन क्रानिकल' में एथेन्स के संविधान और रीति-रिवाजों का वर्णन है। ईरैटोस्थनीज नाम का इतिहासकार भी इसी युग में हुआ। इसी युग में पेरिपेटेटिक वर्ग के इतिहासकारों ने भी कुछ ग्रन्थों का सृजन किया। थियोफ्रेस्टस इस वर्ग का प्रसिद्ध इतिहासकार था। डूरियस ने कला का इतिहास, कैमेकोलिया ने काव्य का इतिहास और डिकार्कस ने यूनानियों का सांस्कृतिक इतिहास लिखा। कुछ संस्मरण भी लिखे गये जिनमें सीटिरस द्वारा लिखित "लाइफ ऑफ यूरीपिडीज" विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

विज्ञान

यह काल अपनी वैज्ञानिक प्रगति के कारण बहुत प्रसिद्ध था। पाइथागोरस एवं अरस्तू जैसे महान वैज्ञानिक इस युग में उत्पन्न हुये। खगोल-विद्या, ज्यामित, अंक-गणित, रसायनशास्त्र, भौतिक-विज्ञान, शरीर-विज्ञान, चिकित्साशास्त्र एवं भूगोल के क्षेत्र में इस युग के वैज्ञानिकों ने बहुत उत्साह से कार्य किया। पश्चिम जगत को

विज्ञान की शिक्षा प्रदान करने का श्रेय इसी युग को है। इस सम्बन्ध में प्रो० बर्न्स का मत है—

"वास्तव में आधुनिक युग की अनेक भौतिक उपलब्धियाँ सिकन्दरिया के विज्ञान की खोजों के बिना फलीभूत नहीं हो सकती थीं।"

इस युग की वैज्ञानिक प्रगति को देखकर प्रश्न उठता है कि क्या कारण थे कि इस युग में इतनी वैज्ञानिक प्रगति हुई ? इसके निम्नलिखित कारण थे—

(1) **भौतिकतावादी समाज**—हेलेनिस्टिक युग का समाज भौतिकतावादी समाज था। अतएव संसार की सभी उपयोगी वस्तुओं का उपयोग वे करना चाहते थे। उस युग के बुद्धिजीवियों के समाज ने इस आवश्यकता की पूर्ति करने का प्रयास किया।

(2) **व्यापारिक उन्नति**—व्यापारिक उन्नति भी वैज्ञानिक उन्नति का एक कारण है। सुदूर देशों से व्यापार के फलस्वरूप मानव के हृदय में नवीन खोजों के प्रति अनुरक्ति उत्पन्न होना स्वाभाविक है। व्यापारियों द्वारा वैज्ञानिकों को आर्थिक सहायता भी दी जाती थी। अतएव वैज्ञानिक क्षेत्र में उन्नति होना अवश्यम्भावी था।

(3) **बौद्धिक आदान-प्रदान**—हेलेनिस्टिक युग में विभिन्न देशों के बुद्धिजीवियों के विचारों का आदान-प्रदान हुआ। इसके फलस्वरूप ही उनमें नवीन खोजों के प्रति उत्साह की भावना का जागरण हुआ।

(4) **राजाश्रय की प्राप्ति**—इस युग के बुद्धिजीवियों का राजाश्रय की प्राप्ति हुई। सिकन्दर के विषय में प्रो० बर्न्स ने लिखा है—

"Alexander himself had given some financial encouragement to the progress of research."

इस युग में राज्य की ओर से अनेक पुस्तकालयों की स्थापना करवाई गई और बहुत अधिक पुस्तकों का संकलन किया गया।

(5) **समय की पुकार**—वैज्ञानिक उन्नति इस काल की माँग थी। मनुष्य के जीवन-स्तर की उन्नति के साथ-साथ उसमें विलासिता की मात्रा बढ़ रही थी। वह और अधिक आनन्द प्राप्त करना चाहता था। इसलिये वैज्ञानिक उन्नति होना स्वाभाविक था।

ज्यामित और अङ्कगणित इस युग का सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ यूक्लिड था। उसने 'एलीमेंट्स' (Elements) नाम की पुस्तक लिखी जिसमें रेखागणित के प्रमुख सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला गया है। इस युग का एक अन्य गणितज्ञ एपोलोनियस था। गणित में Hyperbole और Parabole नामक शब्दों का प्रचलन इसी

वैज्ञानिक ने किया । इरैटोस्थनीज की गणना भी महान गणितज्ञों में की जाती है । गणितज्ञ के साथ ही वह कवि और इतिहासकार भी था । हिपार्कस केवल ज्योतिष विद्या का ही ज्ञाता नहीं था वरन् गणित के क्षेत्र में भी उसकी महान देन थी । उसने Trigonometry का प्रचलन किया । इस सम्बन्ध में प्रो० बर्न्स ने लिखा है—

"The most original of the ellenistic mathematicians was probably Hyporchus, who laid the foundations of both plain and spherical trignometry."

भौतिक-विज्ञान—भौतिक-विज्ञान के क्षेत्र में हेलेनिस्टिक युग की विशाल देन है । इस युग का सर्वश्रेष्ठ भौतिक वैज्ञानिक आर्कमिडीज था । उसकी तुलना न्यूटन से की जाती है । विल ड्यूरान्ट ने लिखा है—

"We must rank Archimedes with Newton and credit him with a sum of mathematical achievement unsurpassed by any one man in the world history."

आर्किमिडीज ने 10 ग्रन्थों की रचना की है । उसके जोड़ का वैज्ञानिक आगे आने वाली कई शताब्दियों तक नहीं हुआ ।

भौतिक-विज्ञान के क्षेत्र में टेसिवियस और हेरो के नाम भी उल्लेखनीय हैं । टेसिवियस ने आर्किमिडीज के सिद्धान्त "Loss of weight" को भली प्रकार प्रमाणित करके दूर देशों में प्रसारित करने का प्रयास किया । हेरो के विषय में कहा जाता है कि उसने वाष्प इंजन, थर्मस और फोर्स पम्प का आविष्कार कर लिया था परन्तु उन्हें प्रमाणित नहीं कर सका था । इस युग के अन्य वैज्ञानिको में एटिस्टार्कस और हेरोन के नाम उल्लेखनीय हैं । एटिस्टार्कस ने सूर्य घड़ी का निर्माण किया था ।

शरीर विज्ञान—इस विज्ञान का सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक हैरोफिलस था । उसने नाड़ी-विज्ञान के ऊपर खोज करके धमनियों और शिराओं के विषय में बतलाया था ।

चिकित्साशास्त्र—चिकित्साशास्त्र के क्षेत्र में भी हैरोफिलस की बहुत बड़ी देन है । उसके पश्चात इरेसिस्टेट्स का नाम आता है । उसने हृदय के ऊपर अनुसन्धान किया था । उसके सम्बन्ध में विल ड्यूराण्ट ने लिखा है—

"Such men made Alexanderia the Vienna of the ancient wor'd."

इस युग के भौतिक वैज्ञानिकों में फिलिनस, एस्किलपियाडीज, आगस्टम और गैलेन के नाम भी उल्लेखनीय हैं ।

इस युग में चीर फाड़ (surgery) का प्रचलन था । थार्नडाइक (Thorndike) ने लिखा है—"मिस्र के वैज्ञानिकों को टालमीज ने मनुष्यों और पशुओं की चीर फाड़ करने की आज्ञा दी थी ।"

प्राचीन लेखों से यह भी प्रतीत होता है कि इस युग के चिकित्सकों ने संक्रामक रोगों को भी दूर करने का प्रयास किया था। चिकित्सक निःशुल्क सेवा करने के लिये तत्पर रहते थे।

वनस्पतिशास्त्र—इस शास्त्र का सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक थिओफ्रेस्टस था। इसने दो पुस्तकों 'The History of Plants" और "The College of Plants', की रचना की थी।

जन्तु-विज्ञान - इस युग में लोगों का परिचय नये जानवरों से हुआ था। सेल्यूकस ने एथेन्स में भारत का शेर भेजा था। स्ट्रेटो ने जन्तु-विज्ञान पर एक ग्रन्थ का सृजन किया था।

ज्योतिष-विज्ञान— ज्योतिष-विज्ञान के क्षेत्र में सिकन्दरिया के वैज्ञानिकों ने विशेष उन्नति की थी। इस युग का सर्वप्रथम ज्योतिषी हैराविरीज था। इसका सिद्धान्त था कि पृथ्वी 24 घन्टों में अपनी कोली पर एक चक्कर पूरा कर लेती है। इसने सूर्य की दूरी, उसके व्यास और अन्य ग्रहों के विषय में खोज की थी। कहा जाता है कि इसने मार्स (Mars) और वीनस (Venus) नामक ग्रहों की चाल के विषय में बहुत खोज की थी। परन्तु इस वैज्ञानिक की खोज के विषय में और अधिक जानकारी प्राप्त नहीं हुई है। प्रो० थार्नडाइक ने लिखा है—"उसका महान कार्य ग्रहण के समय कोणों की सहायता से सूर्य और चन्द्रमा की पृथ्वी से दूरी और उनके आकार को ज्ञात करना था।"

इस युग के अन्य ज्योतिषयों में एलिस्टार्कस और एपोलोनियस के नाम प्रसिद्ध हैं। हिपार्कस को भी ज्योतिष शास्त्र का जानकार माना जाता है। उसके सम्बन्ध में थार्नडाइक (Thorndike) का मत है—"हिपार्कस को वह प्रशंसा नहीं मिल सकती जिसके कि वह योग्य है। कारण उसके अतिरिक्त किसी वैज्ञानिक ने नक्षत्रों और पृथ्वी के सम्बन्ध अथवा आत्मा और स्वर्ग के सम्बन्धों का विवेचन नहीं किया है।"

भूगोल—भूगोल के क्षेत्र में भी इस युग में कुछ उन्नति हुई और इस युग में पहली बार पृथ्वी की परिधि और उसके मानचित्र को प्रकट किया गया भूगोल-शास्त्रियों में ऐरेरोस्पेनीज का नाम सबसे ऊपर लिया जाता है।

कला

कला के इतिहास में हेलेनिस्टिक युग चिरस्मरणीय रहेगा। वास्तुकला और स्थापत्यकला के क्षेत्र में इस युग की महान देन है। इस युग की कला की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह कला असाम्प्रदायिक है। काल्डवेल ने लिखा है—

"Architecture and Art in Hellenistic Age was essentially secular in character."

वास्तुकला—वास्तुकला के क्षेत्र में इस युग के अनेक भवनों, सड़कों, क्रीड़ा-स्थलों और पुस्तकालयों के अवशेष प्राप्त हुये हैं। तत्कालीन नगर-विन्यास का इस कला में स्पष्ट दर्शन हुआ है। इस युग के प्रमुख नगरों में कोरिन्थ, सिराक्यूज, टैरेन्टम, मिसिलिया, रोड्स और पर्गमम विशेष प्रसिद्ध हैं। इस युग के विषय में ट्रेवर (Trever) ने लिखा है—

"The Hellenistic Age was an age of great cities and city buildings for beyond any thing known before."

इस काल में विशालकाय राजप्रासादों उत्तुंग देवालयों और विशाल रंगशालाओं का निर्माण किया गया था। अनेक स्थलों पर ज्योतिर्गृह बनवाये गये थे। सिकन्दरिया के ज्योतिर्गृह के विषय में प्रो० बर्न्स ने लिखा है—एक स्पष्ट उदाहरण मिस्र का ज्योतिर्गृह है जो लगभग 400 फिट ऊँचा है, तीन खण्ड का है और उसमें आठ खम्बे ज्योति और सिरे को संस्थान बनाये रखने के लिये हैं।

हेलेनिस्टिक काल में धार्मिक और अलौकिक दोनों ही प्रकार के भवनों का निर्माण हुआ। आलस्पिया का जियस मन्दिर इस काल की धार्मिक कला का सुन्दर नमूना है। मिलेटस का अपोलो मन्दिर, सिकन्दरिया का सर्रियम मन्दिर भी उल्लेखनीय हैं। पर्गमम में विद्यमान जियस की वेदी वास्तुकला की उन कला वृत्तियों में से है जिसने आगे के कलाकारों को विशेष प्रेरणा प्रदान की।

स्थापत्य कला—स्थापत्य कला के क्षेत्र में भी इस युग में उन्नति हुई। इस युग की मूर्ति कला के तीन केन्द्र थे—(1) रोड्स, (2) सिकन्दरिया और (3) पर्गमम विल ड्यूरान्ट का मत है—"स्थापत्य कला के क्षेत्र में इस युग के समान कभी उन्नति नहीं हुई थी।"

"Never has statuary be more abundant than in the Hellenistic Age."

—Will Durant.

कहा जाता है कि अकेले रोड्स में ही 100 मूर्तियाँ थीं। सिकन्दरिया की मूर्तियों में सुन्दर नक्काशी की गई थी और पर्गमम में अलौकिक मूर्तियों का निर्माण किया गया था। इस युग की मूर्तियों में जियस की वेदी का रिलीफ स्कल्पचर और एलेक्जेन्डर सर्कोफेगस, जिसमें सिकन्दर और उसके सैनिकों को दिखाया गया है, विशेष प्रसिद्ध हैं। आलेख्य मूर्तियों में डेमोस्थनीज की मूर्ति बहुत सुन्दर है। वैटिकन की एपोलो मूर्ति मेलोस की एफ्रोडाइट की मूर्ति, नाइक की मूर्तियां भी अति सुन्दर हैं। रोड्स की सूर्य देवता की मूर्ति भी देखते ही बनती है। रोडियन शैली पर निर्मित लाओकून की मूर्ति भी बहुत सुन्दर है। इस युग में कुछ छोटी-छोटी मूर्तियों का निर्माण भी किया गया। इन मूर्तियों में क्रीड़ा करते हुये हंस की मूर्ति, भेंड़ चराने वाली

वृद्धा स्त्री की मूर्ति और मन्दिरा का आनन्द लेते हुये उन्मत्त स्त्री की मूर्ति उल्लेखनीय है।

इस युग की कला पर यूनानी कला की छाप दृष्टिगत होती है। कला की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें आदर्श की अपेक्षा यथार्थ को अपनाया गया है और इस कारण कला में वास्तविक सौन्दर्य का प्रदर्शन हो सकता है। थार्नडाइक का मत है—"यथार्थ का कोई स्थान आदर्श में नहीं है और चाल तथा विवरण के स्थान पर सौन्दर्य को प्रतिष्ठा प्रदान की गई है।"

चित्रकला—इस युग की चित्रकला भी बहुत स्वाभाविक है। शासक-वर्ग चित्रकला प्रेमी था। सिकन्दर चित्रकला को बहुत आदर की दृष्टि से देखता था। मिस्र के सम्राटों ने भी चित्रकला को महत्व प्रदान किया था। इस कला के चित्र राजमहलों की दीवारों पर चित्रित मिलते हैं। इस युग के भित्ति-चित्रों में विशेषतया वर्णचयन और प्रदर्शन-चातुर्य है। भवनों के फर्श पर भी चित्रों का निर्माण किया जाता था। यह कार्य मिस्र और सीरिया में बहुत अधिक होता था। इस युग के चित्रकारों में एपिलीज का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हेलेनिस्टिक युग कला की दृष्टि से बहुत अधिक महत्वपूर्ण था। उस युग के कलाकार कला के क्षेत्र में बहुत अधिक ज्ञान रखते थे। इसी कारण उनकी कला का प्रसार सुदूर देशों में हुआ था। इस प्रसार के विषय में थार्नडाइक ने लिखा है—"हेलेनिस्टिक कला सारे पूर्वी भूमध्य सागरीय देशों में बैक्टीरिया और भारत तक फैल गई परन्तु रोम के सरदारों ने अधिकतर ग्रीक नगरों को भस्मसात करके अपनी सभ्यता को बढ़ावा दिया। सभी दिशाओं से जहाजों और गाड़ियों में भर कर चित्रकला और मूर्तिकला का सामान लाया गया।"

हेलेनिस्टिक सभ्यता की छाप विश्व को अन्य सभ्यताओं पर है। रोम की सभ्यता हेलेनिस्टिक सभ्यता की ऋणी है और आज भी इस युग की सभ्यता को विशेष महत्व प्रदान किया जाता है। काल्डवेल (Caldwell) का यह मत बिल्कुल ठीक है कि—

"It is now considered an age of advancement of expansion and of great importance and interest in the story of mankind."

सारांश

हेलेनिस्टिक सभ्यता यूनान की सभ्यता से भिन्न है। सिकन्दर महान द्वारा विजित देशों में जिस मिश्रित सभ्यता का उदय हुआ उसे ही हम हेलेनिस्टिक सभ्यता के नाम से पुकारते हैं। इस युग में सम्राट में देवत्व की कल्पना की गई।

समाज की भौतिक आवश्यकतायें बढ़ने लगीं और अनेक नगरों का उदय हुआ। लोग नगरों की ओर आने लगे। व्यापार को बहुत अधिक बढ़ावा मिला। विभिन्न देशों के बीच अच्छे सम्पर्क स्थापित हुये। क्रय-विक्रय के लिये मुद्रा को कारगर किया गया। बैङ्कों को संख्या में भी वृद्धि हुई। धर्म के क्षेत्र में एकेश्वरवाद को स्थापना हुई। पश्चिम के धर्म पूर्व के विचारों से प्रभावित हुये। मूर्ति-पूजा और अवतारवाद को भी बढ़ावा मिला। सम्राट-पूजा को विशेष महत्व दिया गया। विभिन्न दर्शनों के विकास की दृष्टि से भी इस सभ्यता का महत्व है। इस युग में एपिक्यूरियन, स्टोइक और संशयवादी दर्शनों का विकास हुआ। काव्य, गद्य, नाटक के क्षेत्र में भी विशेष उन्नति हुई। इस युग के इतिहासकारों में पालिवियस का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। डिओडारस ने 'हिस्टारिकल लिब्रर्टी' नामक ग्रन्थ इसी युग में लिखा।

भौतिकतावादी समाज, व्यापारिक उन्नति, बौद्धिक आदान प्रदान, राजाश्रय की प्राप्ति और समय की पुकार इस युग की वैज्ञानिक उन्नति के मुख्य कारण थे। इस युग के गणितज्ञों में यूक्लिड और हिपार्कस के नाम प्रसिद्ध हैं। भौतिक-विज्ञान के क्षेत्र में आर्किमिडीज की महान देन है। टेसिवियस का नाम भी उल्लेखनीय है। चिकित्सा शास्त्र के क्षेत्र में हेरोफिलस और इरैसिस्ट्रेटस ने महत्वपूर्ण कार्य किये। ज्योतिष और भूगोल के क्षेत्र में भी पर्याप्त उन्नति हुई।

हेलेनिस्टिक सभ्यता की कला के दर्शन सिराक्यूज, टैरेन्ट्स, रोड्स और पर्गेमम के विशालकाय भवनों और रोड्स सिकन्दरिया और पर्गेमम की मूर्तियों में होते हैं। रोड्स की सूर्य देवता की मूर्ति विशेष प्रसिद्ध है। वैटिकन की एपोलो मूर्ति, मेलोस की एक्रोडाइट की मूर्ति भी उल्लेखनीय है। इस युग की कला पर यूनानी कला की छाप है। चित्रकला का रूप राजमहलों पर बने चित्रों से ही स्पष्ट होता है। एमिलीज इस काल का प्रसिद्ध चित्रकार था।

हेलेनिस्टिक सभ्यता किसी एक देश की सभ्यता नहीं है वरन् उसका प्रसार सुदूर देशों में हुआ। रोम की सभ्यता पर इस सभ्यता की गहरी छाप है।

———

रोम की सभ्यता और संस्कृति

ROMAN CIVILIZATION AND CULTURE

अध्याय | 25

प्रारम्भिक काल

(EARLY PERIOD)

प्रश्न 1—रोम की भौगोलिक स्थिति और जातियों की विवेचना कीजिये। आरम्भिक काल में सांस्कृतिक क्षेत्र में रोम ने क्या उन्नति की ?

Discuss the Geographical conditions and tribes of Rome, Enumerate the cultural progress made by Rome in early period.

प्रश्न 2 एट्रस्कन-शासन में रोम की सांस्कृतिक उन्नति पर प्रकाश डालिये।

Cive an account of the cultural progress of Rome during Etruscan rule.

रोम की सभ्यता विश्व की महानतम् सभ्यताओं में से एक है। कुछ विद्वानों के अनुसार रोम की सभ्यता पर हेलेनिस्टिक छाप इतनी अधिक है कि उसे हेलेनिस्टिक सभ्यता का ही एक रूप कहा जा सकता है। प्रसिद्ध विद्वान स्वेन (Swain) के अनुसार—"बहुत से अंशों में रोम की सभ्यता पर हेलेनिस्टिक सभ्यता का असर है और इसके अतिरिक्त ग्रीक सभ्यता को भी अपने ढंग से अपनाया गया है।"

परन्तु रोम की सभ्यता को पूर्णतः हेलेनिस्टिक नहीं कहा जा सकता। उस सभ्यता में कुछ ऐसे तत्व हैं जो हेलेनिस्टिक सभ्यता में नहीं मिलते। रोम की सभ्यता ही पश्चिमी जगत की अन्तिम पुरातन सभ्यता है। उस सभ्यता को यूनानी और मध्यकालीन योरुप की सभ्यताओं के बीच की कड़ी कहा जा सकता है।

भौगोलिक स्थिति

रोम का इतिहास इटली का इतिहास नहीं वरन रोम नगर के उत्थान-पतन का इतिहास है। रोम नगर टाइबर नदी के किनारे स्थित है। ज्यों-ज्यों जनसंख्या बढ़ती गई, रोम को अपनी सीमायें बढ़ानी पड़ीं। धीरे-धीरे समीप की सात पहाड़ियों पर रोम के निवासियों का अधिकार हो गया और रोम सात पहाड़ियों का नगर कहलाने लगा। कालान्तर में रोम के निवासियों ने सम्पूर्ण इटली पर अपना अधिकार कर लिया और

रोम नगर रोम साम्राज्य में परिवर्तित हो गया। इटली दक्षिणी-योरुप का एक प्रायःद्वीप जिसके उत्तर में आल्पस पर्वत, दक्षिण और पश्चिम में भूमध्य सागर और पूर्व में एड्रियाटिक सागर है। इटली प्राचीन काल में समुद्र तट पर होने के कारण व्यापार का एक प्रसिद्ध केन्द्र था। यहाँ की जलवायु अच्छी थी अतः यहाँ सभ्यता का विकास बड़ी तेजी से हुआ।

जातियाँ

रोम की सभ्यता किसी एक जाति विशेष की सभ्यता नहीं है। अनेक जातियों ने इस सभ्यता के विकास में योगदान दिया है। इनमें से कुछ जातियों के लोग वहाँ के मूल निवासी थे और कुछ बाहर से आये थे। मूल निवासिनी जातियों के विषय में यह कहा जा सकता है कि पूर्व-पाषाण-काल में भूमध्यसागरीय जाति की कोई शाखा यहाँ निवास करती थी। काँस्य-काल में इण्डोयोरोपियन जातियों ने यहाँ प्रवेश किया था। ऐतिहासिक युग के आरम्भ में इटालियन जातियाँ लैटियम में निवास करती थीं। इन इटैलियन जातियों की दो शाखायें थीं—लैटिन और ओस्कन। इटली के उत्तर पश्चिमी भाग में लागुरियन जाति के लोग भी निवास करते थे।

बाहर से आने वाली जातियों ने रोम की सभ्यता को बहुत ऊँचा उठाया। इन जातियों में एट्रस्कन जाति मुख्य थी। इस जाति के सम्बन्ध में जेम्स एड्गर स्वेन (James Edgar Swain) का मत है—"एट्रस्कन लोगों की जन्मभूमि ज्ञात नहीं है परन्तु ये टाइबर नदी के किनारे इट्रसिया में 1000 वर्ष ई० पू० में बस गये थे। ये इतने चतुर कारीगर और इंजीनियर थे कि उन्होंने रोम के लोगों को कीचड़ साफ करना, पानी के बहाव के लिये नालियाँ बनाना और सड़कें बताना सिखाया। एट्रस्कन नगरों को अर्ध-सङ्घ में संयुक्त किया गया था और फौज ही महान संयोजनकारी शक्ति थी।"

इरानी और फोनेशिया की जातियों ने भी रोम सभ्यता को विकसित करने में बड़ा योगदान दिया।

रोम का राजनीतिक इतिहास

रोम का इतिहास जानने के मुख्य साधन अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों में डायोनाइसियस का 'रोमन एन्टिक्वीटीज' तथा टाइटस लोवियस का ग्रन्थ बहुत महत्वपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त प्लूटार्क, जूलियन फ्लोरस, डियोडोरस आदि ग्रन्थों के द्वारा भी रोम के इतिहास की जानकारी होती है। अनेक राजनीतिक-पत्र भी रोम के इतिहास पर प्रकाश डालते हैं। कलात्मक और साहित्यिक अविशिष्ट सामग्री के आधार पर भी रोम के इतिहास का पता लगता है।

प्राचीन रोमन लेखकों के अनुसार रोम की स्थापना 753 ई० पू० में हुई। इसका श्रेय रोमलस नामक व्यक्ति को दिया जाता है। आरम्भ में रोम एक छोटा सा नगर राज्य था जो टाइबर नदी के किनारे बसा हुआ था। यहाँ से इस सभ्यता का विकास इतना अधिक कैसे हुआ इसके विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। इस सम्बन्ध में बर्न्स का मत है—"हमें नहीं मालूम कि किस ढग से, किस तिथि को और टाइबर नदी की ऊँची भूमि पर कैसे समस्त निवासी एक आरम्भिक नगर था, एक जाति में बदल गये।"

"In what manner and in what date settlement on and around the elevations near the Tiber were welded into one community into a primitive city-we do not know."

रोम के प्राचीन इतिहास को तोन कालों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) राजतन्त्र काल (753-509 ई० पू०)

(2) गणतन्त्र-काल (509-317 ई० पू०)

(3) साम्राज्य-काल (317-476 ई० पू०)

राजतंत्र काल

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि रोम की स्थापना 753 ई० पू० में रोमलस नामक व्यक्ति द्वारा की गई थी। विद्वानों के अनुसार प्रागैतिहासिक काल में प्राचीन रोम के स्थान पर एक छोटा सा गाँव था। दसवीं शताब्दी ई० पू० में लैटिन जाति के लोगों ने इसके निकट एक दूसरा गाँव बसाया। इसके पश्चात् 7वीं शताब्दी ई० पू० तक लैटिन जाति ने 6 अन्य ग्राम बसाये और सैब्राइन जाति ने भी दो ग्राम बसाये। इस प्रकार 7वीं शताब्दी ई० पू० में रोम के स्थान पर 10 ग्राम थे। कालान्तर में इन्हीं ग्रामों ने मिलकर शक्तिशालो रोमन साम्राज्य की स्थापना की।

7वीं शताब्दी ई० पू० में एट्रस्कन नामक जाति ने रोम में प्रवेश करके टाइबर नदी के दोनों किनारों के क्षेत्र को जीत लिया। इस जाति का मुकाबला रोम को लैटिन जाति न कर सकी और उन्होंने राम के ग्रामों पर अपना अधिकार कर लिया। एट्रस्कन जाति ने लगभग 500 ई० पू० तक रोम में शासन किया और इस जाति के टार्क्विन प्रथम, सर्विवस टुलियस तथा टार्क्विन दि प्राउड नामक राजाओं के नाम ही ज्ञात हो सके। इसी जाति के शासन-काल को हम राजतन्त्र-काल के नाम से पुकारते हैं।

शासन-व्यवस्था

नगर-राज्य—एट्रस्कन-शासन में रोम ने नगर का रूप धारण कर लिया। अब रोम में छोटे-छोटे ग्राम सम्मिलित थे। इस काल में समस्त ग्रामों को तोड़कर एक

नई बस्ती बनाई गई। इस नगर की सुरक्षा के लिये चारों ओर एक दीवाल बनाई। नगर में राजप्रासाद और राजकीय भवन बने। इस बस्ती को 'विक्स-टस्क्स' के नाम से पुकारा जाता था। इस बस्ती में गन्दे पानी को बाहर निकालने की सुन्दर व्यवस्था थी। अनेक बाजार थे और यहाँ कलात्मक उन्नति भी हुई। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इसी शासन से वास्तविक रोम का जन्म हुआ। (Van Sickle) का मत है—"इट्रस्कन राजा ही रोम के वास्तविक निर्माता थे।"

"The Etruscan kings were the true founder of Rome."

धीरे-धीरे इन सम्राटों ने अपने राज्य को बढ़ाया और 400 वर्गमील के क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया।

सम्राट और उसकी सभा—शासन-व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिये एक सम्राट निर्वाचित किया जाता था। इसे बहुत अधिक अधिकार प्रदान किये गये थे। वह नगर-राज्य का प्रधान-न्यायाधीश, राज्य की सेना का सेनापति और राज्य का प्रधान पुरोहित होता था। उसे मृत्यु दण्ड प्रदान करने का अधिकार भी दिया गया।

सम्राट की सहायता के लिए दो सभाओं की स्थापना की गई थी—लोक सभा (कमोशिया क्यूरिआटा), सेनेट। लोकसभा के प्रतिनिधियों का निर्वाचन होता था। इस सभा में पेट्रेशियन तथा प्लेबियन वर्गों के लोग होते थे। इस सभा में सदस्यों की संख्या 30 थी और प्रत्येक प्रस्ताव पारित किये जाने के लिये इनमें से 16 का बहुमत आवश्यक होता था। सेनेट में केवल पेट्रेशियन वर्ग के प्रतिनिधि होते थे। यह सामन्तों की सभा होती थी और लोकसभा इसे मन्त्रणा देने का कार्य करती थी। सम्राट इन दोनों सभाओं की मन्त्रणा द्वारा शासन की व्यवस्था करता था।

समाज

एट्रस्कन काल में रोम का समाज दो वर्गों में विभाजित था—

(1) पेट्रीशियन

(2) प्लेबियन

पेट्रीशियन वर्ग को उच्च वर्ग समझा जाता था और उसे बहुत अधिक अधिकार दिये गये थे। पेट्रीशियन कुल में पिता को प्रधान स्थान दिया गया था। इस कुल में कई गोत्र होते थे जिन्हें 'जेन्ट्रीज' कहा जाता था। सभी गोत्रों के लोग अपने वर्ग के हित का ध्यान रखते थे। शासन के क्षेत्र में भी पेट्रीशियन वर्ग का आधिपत्य था।

प्लेबियन वर्ग निम्न वर्ग था। वह पेट्रीशियन वर्ग की भाँति संगठित नहीं था और उसे अपेक्षाकृत कम अधिकार प्राप्त थे। कोई भी प्लेबियन वर्ग का सदस्य

पेट्रीशियन वर्ग में सम्मिलित नहीं किया जा सकता था और दोनों वर्गों में वैवाहिक सम्बन्ध नहीं स्थापित हो सकते थे। प्लेबियन वर्ग के लोग दरिद्र थे और कभी पेट्री-शियन वर्ग के किसी व्यक्ति को अपना संरक्षक नियुक्त करते थे। यह संरक्षक उनकी आर्थिक व्यवस्था को सुधारने का प्रयत्न करता और वे बदले में उनकी सेवा स्वीकार करते थे।

इस समय के रोम के निवासी कट्टर देश-भक्त होते थे। वे शारीरिक विकास की ओर विशेष ध्यान देते थे और कृषि-कर्म करते थे। देश के लिये वे अपना सब कुछ अर्पित करने को तत्पर रहते थे।

आर्थिक दशा

रोम निवासियों का मुख्य उद्यम कृषि ही था। उनके यहाँ व्यापार की अधिक उन्नति नहीं हुई थी। मुद्रा का ज्ञान लोगों को नहीं था। गणना पशुओं की संख्या के अनुसार ही होती थी। चीजों के आदान-प्रदान द्वारा ही व्यापार होता था। लोहे का ज्ञान यहाँ के लोगों को नहीं था। ताँबा अवश्य प्रयोग में आता था। कृषि योग्य भूमि पर राज्य का अधिकार माना जाता था।

धर्म

एट्रस्कन लोग बहुदेववादी थे। उनके प्रमुख देवता ज्यूपिटर, जूनो तथा मिनर्वा थे। रोम में भी इस काल में इन्हीं तीन देवताओं की पूजा की जाती थी। इनका मुख्य देवता ज्यूपिटर था जिसकी पत्नी का नाम जूनो था। कारीगरों के देवता मिनर्वा थे। मार्स की भी पूजा की जाती थी जिसे लोग युद्ध का देवता कहते थे।

इस काल के निवासियों का धर्म लौकिक था। धर्म में नैतिकता नाम की कोई चीज नहीं थी। ये लोग मूर्ति-पूजा भी करते थे तथा परलोक में भी इनका विश्वास था। मुर्दों की कब्रें बनाई जाती थीं जिनकी दीवालों पर धार्मिक जीवन से सम्बन्धित दृश्य अंकित किये जाते थे।

साहित्य एवं कला

इस युग के साहित्य और कला के विषय में विशेष जानकारी नहीं है। केवल इतना ही ज्ञात है कि एट्रस्कन लोग किसी लिपि विशेष का प्रयोग करते थे। एट्रस्कन कलाकार पत्थर एवं तांबे की मूर्तियाँ बनाते थे। उनके बर्तनों पर काले रंग की पालिश होती थी तथा अनेक चित्र बने रहते थे। जिस सन्दूक में रखकर मुर्दे को गाड़ा जाता था उस पर भी एक चित्र बनाया जाता था। इनकी कला पर यूनानी प्रभाव भी था।

राज्यतन्त्र का पतन

500 ई० पू० के लगभग राज्यतन्त्र का पतन हुआ। एट्रस्कन जाति के विरोध में इटली के निवासियों ने विद्रोह किया। एट्रस्कन शक्ति यूनानियों के आक्रमण के फलस्वरूप बहुत क्षीण हो चुकी थी अतएव विद्रोहियों को सफलता मिली और एट्रस्कन जाति के हाथ से रोम सदैव के लिये निकल गया। तत्पश्चात् रोम में राज्यतन्त्र के स्थान पर गणतन्त्र की स्थापना की गई।

राजतन्त्रीय शासन की देन

राजतन्त्रीय युग में रोम की नींव पड़ी। इस युग में रोम पर एट्रस्कन जाति ने राज्य किया और इस युग के पश्चात् रोम से विदेशी शासन समाप्त हो गया। राजतंत्रीय युग वह नींव था जिस पर रोम की सभ्यता का भवन खड़ा किया गया। एट्रस्कन शासन के विषय में (Burg) ने लिखा है—"यदि एट्रस्कन लोगों का साम्राज्य न होता तो रोम का विधान ही दूसरे ढंग का होता।"

"Had it not been for the Etruscan domination, her constitution might well have taken a different form."

इस युग में रोम के चारों ओर एक दीवार बनाई गई जो वास्तुकला का एक सुन्दर उदाहरण है। यद्यपि यह कहना ठीक है कि इस युग में रोम ने उतनी अधिक उन्नति नहीं की जितनी अन्य युगों में परन्तु यह नहीं भूलना चाहिये कि रोम का निर्माण एक ही दिन में नहीं हुआ था (Rome was not built in a day.)। उसके निर्माण में विभिन्न जातियों और विभिन्न कालों के लोगों ने निरन्तर संघर्ष किया और राजतंत्रीय युग उस संघर्ष का प्रारम्भ था।

सारांश

रोम की सभ्यता योरुप की महानतम सभ्यता है। यह विभिन्न जातियों की सभ्यता है। रोम के प्रारम्भिक इतिहास एट्रस्कन जाति की महान देन है। यहाँ के प्राचीन राजनीतक इतिहास को हम तीन कालों में विभाजित कर सकते हैं—राजतन्त्र काल, गणतन्त्र काल, साम्राज्य काल।

राजतन्त्र काल रोम का प्रारम्भिक काल है। इस काल में एट्रस्कन जाति ने रोम पर राज्य किया। इनके शासन में रोम ने नगर-राज्य का रूप धारण किया। इस काल में सम्राट को असीमित अधिकार दिये गये थे। उसको मन्त्रणा देने के लिये दो

सभायें होती थीं—लोल सभा और सेनेट। प्रथम में पेट्रीशियन तथा प्लेबियन दोनों ही वर्गों के सदस्य रहते थे परन्तु सेनेट में केवल पेट्रीशियन वर्ग के ही सदस्य रहते थे। समाज दो वर्गों में विभाजित था—पेट्रीशियन, प्लेबियन। प्रथम उच्च वर्ग और दूसरा निम्न वर्ग था। दूसरा वर्ग पहले वर्ग के संरक्षण में रहता था।

इस युग का मुख्य उद्यम खेती ही था। मुद्रा का प्रचलन नहीं था। चीजों के आदान-प्रदान द्वारा व्यापार होता था। ये लोग बहुदेववादी थे। ज्यूपिटर, जूनो और मिनर्वा इनके प्रमुख देवता थे। धर्म में नैतिकता को स्थान नहीं था। इनके साहित्य और कला के विषय में विशेष जानकारी नहीं है। ये लोग पत्थर एवं तांबे की मूर्तियाँ बनाते थे। राजतन्त्र का पतन 500 ई० पू० के लगभग हुआ।

———

अध्याय | 26

गणतन्त्र काल

(REPUBLICAN PERIOD)

प्रश्न 1—रोम के इतिहास में गणतन्त्र काल का क्या महत्व है ?

What is the importance of Republican period in Roman History ?

प्रश्न 2 – गणतन्त्र काल में रोम के शक्ति-विस्तार के विषय में आप क्या जानते हैं ? इस विस्तार के सांस्कृतिक परिणामों का निर्देश कीजिये ।

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

What do you know about the growth of Roman power in the Republican period ? Indicate its cultural consequences.

(Allahabad University)

प्रश्न 3—गणतन्त्र काल में रोम की सांस्कृतिक उन्नति पर प्रकाश डालिये ।

Give an account of the cultural development of Rome in Republican period.

509 ई० पू० के लगभग रोम के ऊपर विरोधी आक्रमणों के काले बादल मडरा रहे थे । राजतन्त्रीय व्यवस्था के फलस्वरूप व्याप्त असन्तोष के कारण 509 ई० पू० में रोमवासियों ने गणतन्त्रीय शासन परम्परा का आरम्भ किया । इस गणतन्त्र की स्थापना रोम के निवासियों के एट्रस्कन जाति के विरुद्ध विद्रोह के फलस्वरूप हुई । इस व्यवस्था के फलस्वरूप रोम का समस्त शासन भार दो परिषदों को समर्पित कर दिया गया जिनका चुनाव सैनिकों द्वारा होता था ।

राजनीतिक इतिहास

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, 509 ई० पू० से 31 ई० पू० तक का युग गणतन्त्र युग के नाम से पुकारा जा सकता है । इस काल के इतिहास को हम अध्ययन की सुविधा के लिये दो कालों में विभाजित कर सकते हैं—

(1) बाह्य संघर्षों का युग (509 ई० पू०—133 ई० पू०)

(2) क्रान्ति का युग (133 ई० पू०—31 ई० पू०)

बाह्य संघर्षों का युग

इस युग में रोम-साम्राज्य का बहुत अधिक विस्तार हुआ। रोम का यह विस्तार कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। इसके अनेक व्यक्ति कई शताब्दी ई० पू० से परिश्रम कर रहे थे। काल्डवेल लिखता है–' रोम के लोगों का शक्ति प्राप्त करना क्रमिक विकास का फल था न कि किसी योजना का।"

"The Roman advanee to power had been evolutionary rather than planned."

— Caldwell.

वर्ज का मत है,—"रोम का निर्माण एक दिन में नहीं हुआ यह तथ्य केवल रोम नगर और उसकी सस्थाओं के बारे में नहीं है बल्कि उसके विश्व साम्राज्य के बारे में है।"

"That 'Rome was not built in a day' is true not only of the character and institions of the sovereign city, but also of her world Empire."

—Burg.

रोम के विस्तारवादी इतिहास को हम तीन अवस्थाओं में विभाजित कर सकते हैं—

(क) 508 ई० पू० से 272 ई० पू० तक (प्रथम अवस्था)
(ख) 272 ई० पू० से 201 ई० पू० तक (द्वितीय अवस्था)
(ग) 201 ई० पू० से 133 ई० पू० तक (तृतीय अवस्था)

(क) प्रथम अवस्था—508 ई० पू० के पूर्व रोम एक छोटा सा राज्य था और इसको कई शक्तियाँ घेरे हुये थीं। उत्तर में गाल, एट्रेस्कन और सेवाइन जातियाँ तथा दक्षिण में लैटिन, वाल्शियन और सेम्नाइट जातियाँ रोम के लिये सर दर्द बनी हुई थीं। इस काल में रोम ने समस्त जातियों पर विजय प्राप्त कर ली और सम्पूर्ण इटली पर अपना अधिकार कर लिया। 390 ई० पू० में गाल जाति ने रोम पर आक्रमण किया परन्तु वे रोम पर विजय प्राप्त न कर सके। 338 ई० पू० में रोम ने लैटिन जाति के भू भाग पर अधिकार कर लिया और 327-290 ई० पू० के सेम्नाइट युद्ध में सेम्नाइट जाति को जीत कर उसके भू भाग को छीन लिया इसके पूर्व ही उसने ऐट्रस्कन, सेवाइन तथा गाल जातियों को भी जीत लिया था। 272 ई० पू० तक दक्षिण के उपनिवेशों पर भी रोम का आधिपत्य स्थापित हो गया। इस प्रकार सम्पूर्ण इटली पर रोम का एकछत्र अधिकार हो गया।

द्वितीय अवस्था—इटली पर अधिकार करने के पश्चात् रोम का सबसे प्रबल संघर्ष कार्थेज से हुआ। कार्थेज जाति के लोग बड़े भयंकर योद्धा थे। इनके विषय में

जेम्स एडगर स्वेन ने लिखा है—कार्थेज निवासी समृद्धशाली लोग थे जिनके व्यापारिक केन्द्र रुम सागर के पच्छिमी किनारे पर थे। उनके पास बड़ी-बड़ी व्यापारिक नावें थी और सुसज्जित फौज थी जो रोमनों से अधिक शक्तिशाली थीं।"

"The carthaginians were prosperous commercial people with trading centres all along the Western Meditarranean cost. They had a large merchant marine and a well trained army, which seemed superior to that of Romans."

—James Edgar.

272 ई० पू० और 201 ई० पू० के मध्य रोम और कार्थेज के दो युद्ध हुये जिन्हें प्रथम और द्वितीय प्यूनिक युद्धों के नाम से पुकारा जाता है। वास्तव में यह युद्ध केवल दो सेनाओं का युद्ध नहीं था वरन् यह दो पुरातन सभ्यताओं का संघर्ष था।

प्रथम प्यूनिक-युद्ध 264 ई० पू० से 240 ई० पू० तक चला। कार्थेज अफ्रीका के उत्तर में भूमध्य सागर के किनारे एक छोटा सा नगर जिसने सिसली के पश्चिमी भाग, सार्डिनिया तथा कार्सिका और पश्चिमी भूमध्य-सागर के एक छोटे से द्वीप पर अधिकार कर लिया। रोम कार्थेज की बढ़ती हुई शक्ति से चिन्तित था। जब कार्थेज ने मसेना पर अधिकार कर लिया तब रोम भड़क उठा। मसेना के लोगों ने रोम से सहायता मांगी और रोम तथा कार्थेज के मध्य युद्ध हुआ। इस युद्ध में आरंभ में विजय श्री रोम के हाथ रही परन्तु रोम की सेना का नायक रेगलेस बन्दी बना लिया गया। इसके पश्चात् दोनों देशों में सन्धि का प्रस्ताव हुआ और रेगलेस सन्धि का प्रस्ताव लेकर इस शर्त पर गया कि यदि सन्धि न हुई तो वह पुनः कार्थेज लौट आयेगा। सन्धि की शर्तें रोम को मान्य न हुई, फलस्वरूप रेगलेस अपने वचन का पालन करता हुआ कार्थेज लौट आया जहाँ उसके साथ बड़ी निर्दयता का व्यवहार किया और उसकी मृत्यु हो गई। बाद में दोनों देशों में सन्धि हुई जिसके अनुसार सिसली, सार्डिनिया और कार्सिका पर रोम का अधिकार हो गया।

इसके पश्चात् रोम और कार्थेज में फिर एक बार युद्ध हुआ जिसे द्वितीय प्यूनिक युद्ध के नाम से पुकारा जाता है। इसका कारण यह था कि सिसली, सार्डिनिया और कार्सिका को खो देने के पश्चात् कार्थेज ने अपने राज्य को स्पेन की ओर बढ़ाना आरम्भ किया। रोम ने इसका विरोध किया और दोनों देशों में संधि हो गई। इस सन्धि के अनुसार कार्थेज अपना राज्य एब्रो नदी के उत्तर की ओर नहीं बढ़ा सकता था। आगे चलकर कार्थेज ने इस सन्धि को तोड़ दिया और स्पेन के सैगंटम पर आक्रमण कर दिया। सैगंटम रोम का मित्र था अतएव रोम और कार्थेज के बीच भयंकर युद्ध हुआ। कार्थेज की सेना की नेतृत्व हैनीवाल ने किया जो बड़ा भयंकर योद्धा और एक कुशल राजनीतिक था। उसे कार्थेज का नैपोलियन कहा गया है। हैनी-

वाल की बड़ाई करते हुये वेन सिकिल ने लिखा है—"किसी भी नाप से नापें वह अपने युग का एवं संसार महानतम व्यक्ति था।"

"Measured by any standard he was the greatest man of his time and one of the greatest men of the ancient world."

—Van Sickle.

कार्थेज और रोम के बीच आठ महीने तक युद्ध हुआ। कार्थेज की सेना हैनीवाल के नेतृत्व में इटली तक चढ़ आई और उसने उत्तरी इटली को रौंद डाला। गाल लोगों ने भी कार्थेज का साथ दिया। अपने देश से अत्यधिक दूर होने के कारण कार्थेज की सेना में बहुत कम सैनिक रह गए अन्यथा हैनीवाल सम्पूर्ण इटली पर अपना अधिकार जमा लेता। रोम के 10 सैनिकों से कार्थेज के एक-एक सैनिक ने मुकाबला किया परन्तु 202 ई० पू० में कार्थेज की हार हुई। हैनीवाल को पकड़ कर मृत्यु दन्ड दे दिया गया। इस युद्ध के फलस्वरूप संपूर्ण स्पेन पर इटली का साम्राज्य स्थापित हो गया। कार्थेज और रोम के मध्य सन्धि हुई जिसके अनुसार निश्चित किया गया कि कार्थेज प्रति वर्ष ईटली को 200 टेलेंट देगा।

प्रथम मैसीडन युद्ध (215 ई० पू० 205 ई० पू०)—इसी काल में प्रथम मैसीडन युद्ध भी हुआ। मैसीडन नरेश ने रोम के विरुद्ध कार्थेज की सहायता की थी, अतः रोम ने मैसीडन के विरुद्ध कुछ यूनान राज्यों को मिला लिया और मैसीडन पर आक्रमण हुआ। इस युद्ध का कोइ अन्तिम फैसला न हो सका और आगे चल कर भी रोम और मैसीडन के मध्य युद्ध हुये।

तृतीय अवस्था (201 ई० पू० 133 ई० पू०)—इस युग में रोम ने छः युद्ध किये जिनका विवरण नीचे दिया जा रहा है—

(1) तृतीय प्यूनिक युद्ध—यह युद्ध 149 ई० पू० से 146 ई० पू० तक चला और इसमें रोम की विजय हुई।

(2) द्वितीय मैसीडन युद्ध – यह युद्ध 200 ई० पू० से 196 ई० पू० तक चला। इस युद्ध में रोड्स और एथेन्स रोम के साथ मिल गए। युद्ध में कोई भी निर्णय नहीं हो सका।

(3) तृतीय मैसीडन युद्ध—यह युद्ध 171 ई० पू० से 167 ई० पू० तक चला। इस युद्ध में फिलिप पञ्चम के पुत्र पर्सियस ने मैसीडन की सेना का नेतृत्व किया परन्तु मैसीडन की हार हुई और मैसीडन को चार भागों में विभाजित कर दिया गया।

(4) चतुर्थ मैसीडन युद्ध—149 ई० पू० में मैसीडन के सभी राज्यों ने मिलकर रोम के विरुद्ध संघर्ष कर दिया। युद्ध में रोम की विजय हुई और 146 ई० पू० में सम्पूर्ण मैसीडन पर रोम का आधिपत्य हो गया।

(5) **कोरिंथ युद्ध**—यह युद्ध 146 ई० पू० में हुआ और रोम ने सम्पूर्ण यूनान को अपने अधीन कर लिया।

(6) **सीरिया युद्ध**—यह युद्ध इस कारण हुआ कि सीरिया ने मैसीडन की सहायता रोम के विरुद्ध की थी। यह युद्ध 192 ई० पू० से 189 ई० पू० तक चला और इसमें भी रोम की विजय हुई।

इस प्रकार 146 ई० पू० तक रोम एक बहुत शक्तिशाली राज्य बन गया। उसके राज्य में स्पेन, उत्तरी अफ्रीका, कार्सिका, सार्डियिना, इटली, मिस्र, मैसीडन, माल्टा यूनान और एशिया माइनर आदि सम्मिलित हो गये। 146 ई० पू० से 133 ई० पू० तक रोम ने अपनी स्थिति को सुदृढ़ किया परन्तु 133 ई० पू० में रोम की आन्तरिक क्रान्ति हुई जिससे गणतन्त्र की जड़ें हिल गईं।

साम्राज्य विस्तार का प्रभाव

रोम के साम्राज्य विस्तार का रोम पर बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा। वास्तव में यह एक परिवर्तन काल था। रोम की विजयों ने विशेषकर यूनान पर विजय ने रोम की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में बड़े महान परिवर्तन किये। इन परिवर्तनों की चर्चा नीचे की जा रही है—

(1) रोम की सेना में उच्च पदाधिकारी वही व्यक्ति नियुक्त किये जाने लगे जिन्होंने कम से कम 10 युद्ध लड़े हों और जिन्हें सैन्य-संचालन का पूर्ण ज्ञान हो। इस प्रकार रोम की सेना की शक्ति में वृद्धि हुई।

(2) कृषि-योग्य भूमि धनी वर्ग के हाथ में जाने लगी और साधारण नागरिक दरिद्र और हीन होने लगे। शोषण की प्रवृत्ति को भी बढ़ावा मिला।

(3) युद्ध के पश्चात् बेकारी अधिक बढ़ गई। पूँजीपतियों का प्रभुत्व बढ़ने लगा और शोषित वर्ग की दशा चिन्तिनीय होती गई। दास-प्रथा का भी प्रचार बड़ी तेजी से हुआ और सुन्दरियों के मूल्य लगने लगे।

(4) सेनेट की कार्य-क्षमता को देखकर सेनेट के अधिकारों में वृद्धि कर दी गई जिसका अनुचित लाभ उठाया गया और पक्षपात और खुशामद को बढ़ावा मिला।

(5) रोम को अत्यधिक धन की प्राप्ति हुई थी और इस कारण बैंक प्रथा का आरम्भ हुआ। धन की अधिकता के कारण उद्योग-धन्धों की ओर रोमवासियों का ध्यान कम हो गया और इस प्रकार औद्योगिक क्षेत्र में भी रोम की अवनति हुई।

(6) धन के आधिक्य के कारण समाज में दुराचारिता बहुत अधिक बढ़गई। पर्दे की प्रथा भी समाप्त हो गई और लोगों का नैतिक पतन भी हुआ।

(7) सांस्कृतिक क्षेत्र में भी रोम में महान परिवर्तन हुए। यूनानी कला, साहित्य, दर्शन और धर्म का रोमवासियों पर व्यापक प्रभाव पड़ा। वाह्य देशों के नवीन विचारों जिनमें यूनान के विचार मुख्य थे रोम वालों की विचारधारा में परिवर्तन ला दिया। इस सम्बन्ध में काल्डवेल लिखता है—"हेलिनिस्टिक विचारों ने आत्मिक और सामाजिक भित्तियों का विनाश कर दिया जिन पर रूढ़ियाँ निर्भर थीं।"

"Hellenistic ideas, destroyed the spiritual and social bases, upon which the traditions rested."

— Caldwell.

यूनान का प्रभाव रोम पर इतना अधिक पड़ा कि रोम की आत्मा मर गई। होरेस ने यहाँ तक लिख दिया है कि रोम ने यूनान को नहीं जीता वरन् यूनान ने रोम को जीत लिया।

क्रांति का युग

साम्राज्य-विस्तार के फलस्वरूप फैली कुरीतियों को रोकने में रोम का गणतन्त्र असफल रहा। वर्गगत संघर्ष पराकाष्ठा पर पहुँच गया। आप्टिमेट्स और इक्वेस्ट्रियन वर्गों की आपसी स्पर्धा ने रोम को बहुत बड़ा धक्का पहुँचाया। रोम की जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी और पूँजीपति अपनी थैलियों को भरते जा रहे थे। ग्रामीण जनता ग्रामों को छोड़कर नगरों को भागी चली आ रही थी फलस्वरूप अनेक राजनीतिक और सामाजिक समस्याएँ प्रस्तुत हो गईं। फलस्वरूप रोम में एक क्रान्ति हुई जिसका श्री गणेश कुछ सुधारकों ने अपने प्रयत्नों से किया। उन सुधारकों की चर्चा यहाँ की जा रही है।

टाइबेरियस ग्रेकस—इसे ग्रेकस के नाम से पुकारा जाता है। यह 133 ई० पू० में ट्रिब्यून निर्वाचित हुआ। इसने एक कानून बनाया जिसे 'ग्रेकस ला' के नाम से पुकारा जाता है। उसका यह मत था कि साम्राज्य की उन्नति के लिए विशाल भू-खण्डों को छोटे-छोटे भागों में बाँट दिया जाय। उसने स्वयं इस कार्य को पूर्ण किया और यह भी कानून बनाया कि एक व्यक्ति दुबारा ट्रिब्यून नहीं निर्वाचित हो सकता था।

गेयस ग्रेकस- यह टाइबेरियस का छोटा भाई था और 123 ई० पू० में ट्रिब्यून चुना गया। उसने निम्नलिखित सुधार किये—

(1) शासन को ट्रिब्यून के हाथों केन्द्रित कर दिया।

(2) सेनेट के राजनीतिक अधिकारों में कमी कर दी।

(3) इटली के सभी निवासी नागरिक बने।

(4) निर्धनों और अपाहिजों को आर्थिक सहायता दी गई।

(5) बिना अभियोग के मृत्यु-दण्ड देने की प्रथा को समाप्त कर दिया ।

(6) राज्य द्वारा कर रूप में पाया गया अनाज गरीबों को कम दामों में बेच दिया जाता था ।

(7) व्यापार के लिए अनेक राजमार्ग बनवाये तथा टैरेन्टम, कार्थेज और क्रोन्टन में व्यापारिक उपनिवेश बनवाए ।

गेयस मैरियस—यह गेयस ग्रेकस के बाद प्रसिद्ध हुआ । उसने सीजर वंश की राजकुमारी से विवाह किया था । इस कारण कुलीन वर्ग में भी वह बहुत प्रसिद्ध था । यह 106 ई० पू० में रोम का सेनापति चुना गया । उसने अनेक सैनिक सुधार किये और रोम की सेना को शक्तिशाली बनाया । प्रत्येक सैनिक को कम से कम 16 वर्ष तक सेना में कार्य करना पड़ता था । 100 ई० पू० में वह कौंसल बना और उसने अनेक राजनीतिक और आर्थिक सुधार किये । परन्तु इन सुधारों की अपेक्षा उसके सैनिक सुधारों का अधिक महत्व है ।

लिवियस ड्रूसस—यह 91 ई० पू० में ट्रिब्यून निर्वाचित हुआ । इसने जूरी प्रथा को बढ़ावा दिया और नये उपनिवेश स्थापित किये । इसने सुधारों की एक-एक योजना बनाई परन्तु उसे लागू करने के पूर्व ही मार डाला गया । इसकी मृत्यु से रोम में संवैधानिक-सुधारों की प्रथा समाप्त हो गयी ।

सुला—88 ई० पू० में यह अनिश्चित काल के लिए। रोम का डिक्टेटर बना । उसने कौंशल के अधिकारों को कम करके सेनेट के अधिकारों को बढ़ा दिया । प्रायटर की संख्या बढ़ाकर 8 कर दी और सेनेट में इक्वेस्ट्रियन वर्ग को प्रतिनिधित्व प्रदान किया । प्रोकौंसल, प्रायटर और क्वेस्टर के अधिकार निश्चित कर दिये गये और ट्रिब्यून के अधिकार भी कम कर दिये गये । उसने रोम को एक सुव्यवस्थित संविधान प्रदान किया । 79 ई० पू० में उसने पद का त्याग कर दिया ।

पाम्पी—इसका अभ्युदय सुला के बाद हुआ । इसने स्पेन के विरोध का दमन किया और सिसली तथा अफ्रीका को भी दबाकर रखा । इसी समय दासों की क्रान्ति हुई जिसने इटली को झकझोर दिया । पाम्पी इस क्रान्ति को दबाने में सफल हुआ । इसके काल में रोम की आय बढ़ी । सिसरों की उन्नति के फलस्वरूप उसकी उन्नति को धक्का लगा ।

सिसरो—70 ई० पू० में इसका अभ्युदय हुआ । इसने सिसली के राज्यपाल वेरेस के विरोध में एक पुस्तक 'आरेशन्स अगेन्स्ट गेयस वेरस' लिखी जिससे जनता उसकी विरोधी हो गयी और वेरेस को पद त्याग करना पड़ा । इसके चार विरोधी थे - सीजर, क्रेसस, मैरियस तथा केटीलाइन । परन्तु इन चारों को इसकी योग्यता के सम्मुख मुँह की खानी पड़ी । कैटीलाइन ने तो इसकी हत्या की योजना बनाई थी परन्तु वह

सफल न हुआ और अभियोग लगाकर उसे मृत्यु दण्ड दे दिया गया। सिसरों ने शासन से भ्रष्टाचार को दूर करने का प्रयास किया।

पम्पी, सीजर तथा क्रेसस—62 ई० पू० में पाम्पी का फिर अभ्युदय हुआ। उसने सीजर और क्रेसस से मिलकर एक गुट बनाया परन्तु यह गुट थोड़े समय बाद ही टूट गया। पाम्पी और सीजर में संघर्ष हुआ जिसे रोम का द्वितीय गृह युद्ध कहा जाता है। सेना ने सीजर की सहायता की और सेनेट ने पाम्पी की। पाम्पी पराजित हुआ और मिस्र भाग गया जहाँ उसकी हत्या कर दी गई। 46 ई० पू० में सीजर ने सेनेट को भी अपने वश में कर लिया और रोम का डिक्टेटर बना।

जूलियस सीजर का शासन—46 ई० पू० में सीजर बहुत अधिक ख्याति प्राप्त कर चुका था। उसने एक निरंकुश सम्राट की भाँति राज्य किया और अनेक उपाधियाँ धारण की। उसने इंपरेटर की उपाधि भी धारण की थी। उसे सर्वोच्च सैनिक अधिकार प्राप्त थे। वह किसी भी देश से युद्ध अथवा सन्धि कर सकता था। संविधान में संशोधन करने का अधिकार भी उसे प्राप्त था। धर्म के क्षेत्र में भी उसका सर्वोच्च स्थान था। उसे देवता की भाँति पूजा जाने लगा। देवताओं के बीच में उसकी गणना होने लगी। वह रोम का राष्ट्रपिता माना जाने लगा।

सीजर के सुधार

सीजर ने अनेक राजनैतिक, सामाजिक और शासन-सम्बन्धी सुधार किए—

राजनीतिक सुधार—सीजर बहुत उदारवादी था। उसने राजनीतिक क्षेत्रों की भ्रष्टता को दूर करने का प्रयास किया। रोम के साधारण नागरिक भी सेनेट में स्थान पाने लगे। स्पेन और गाल के निवासी भी सेनेट के सदस्य हो सकते थे। स्पेन और गाल के लोगों को भी नागरिकता दी गई और ये लोग भी सेना में भर्ती होने लगे। सेनेट के सदस्यों की संख्या 900 हो गयी नागरिक प्रशासन का भार महापालिकाओं को दिया गया। उसने एशिया की जनता के करों को कम कर दिया और फलस्वरूप उसे बहुत ख्याति मिली।

सामाजिक सुधार—सीजर ने कृषि को बढ़ावा दिया और बेकार मनुष्यों को कार्य में लगाया। अधिक ब्याज पर ऋण लेने या देने की प्रथा समाप्त कर दी गई। विलासिता पर पाबन्दी लगा दी गई। विजित प्रदेशों के साथ उसने बड़ा अच्छा व्यवहार किया और वहाँ की जनता में भी सुधार करने का प्रयास किया। उसने किसी निर्दोष को कभी सताया नहीं और न युद्ध में किसी कलात्मक कृति को नष्ट किया।

शासन सुधार—सीजर बड़ा उच्च कोटि का शासक था। यद्यपि उसने गणतन्त्र की व्यवस्था में परिवर्तन कर दिया और निरंकुश शासक बन बैठा परन्तु सेनेट के

ऊपरी ढांचे में कोई परिवर्तन नहीं किया। सभी कर्मचारी सीजर के प्रति उत्तरदायी थे परन्तु ऊपर से देखने में ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे सभी कार्य सेनेट द्वारा सम्पादित होते हैं। सेनेट का ढाँचा मात्र रह गया था और उसकी आत्मा सीजर में प्रवेश कर गई थी। वह प्रान्तीय राज्यपालों, कर्मचारियों और सैनिक पदाधिकारियों पर कठोर नियंत्रण रखता था।

इन सुधारों के अतिरिक्त सीजर ने साल में $364\frac{1}{4}$ दिन निश्चित किए और चौथे वर्ष एक दिन बढ़ा दिया जाता था। उसका कैलेण्डर काफी प्रसिद्ध हुआ।

सीजर की हत्या—सीजर की अधिनायकवादी प्रवृत्ति ने उसके अनेक दुश्मन बना दिए। अनेक महत्वाकांक्षी व्यक्ति उसके विरोधी हो गए थे। गणतंत्र के समर्थक सीजर से जलने लगे थे। अतएव उसके विरुद्ध एक षड्यंत्र रचा गया। इस षड्यन्त्र में ब्रूटस भी मिला हुआ था जिसको सीजर ने प्रायटर बनाया था। 44 ई० पू० में जब सीजर सेनेट में व्याख्यान दे रहा तो उसकी हत्या कर दी गई।

सीजर का मूल्यांकन - सीजर का नाम विश्व के महानतम व्यक्तियों में लिया जाता था। वह एक महान विजेता, सुधारक और निर्माणकर्ता था। नेपोलियन की भाँति उसमें अदम्य साहस और विलक्षण शक्ति थी। सिकन्दर की भाँति वह सदैव विरोधियों से लोहा लेने को तत्पर रहता था। साथ ही वह बहुत क्षमाशील भी था। उसका विरोधी पाम्पी भी उसकी क्षमाशीलता से प्रभावित था। वह एक उत्कृट राजनीतिक भी था। निरंकुश शासक होने पर भी उसमें गणतन्त्र के ऊपरी ढांचे को सुरक्षित रक्खा। इतिहास में महान विजेता, महान सुधारक हुए और महान राजनीतिक हुए परन्तु किसी में इतनी अधिक प्रतिभाओं का समन्वय देखने को नहीं मिलता जितनी की सीजर में थीं। ट्रेवर ने उसके विषय में लिखा है—"वह उन महान व्यक्तियों में था जिनका जन्म रोम में हुआ था। युद्ध कला और राजनीतिक में उसकी तुलना में संसार के कुछ ही लोगों को गिना जा सकता है।"

"He was the Greatest genius Rome produced and in the combined fields of war and politics few have been his equal in world History."

सीजर की मृत्यु के पश्चात् रोम में गृह-कलह का वह रूप देखने को मिला जिसने रोम के गणतन्त्रात्मक स्वरूप को नष्ट कर दिया। यही कारण है कि कुछ विद्वान सीजर को ही गणतन्त्र काल का अन्तिम प्रतिनिधि मानते हैं।

गणतंत्र काल का अंत

सीजर की हत्या 44 ई० पू० में की गई। 44 ई० पू० से 31 ई० पू० तक रोम के इतिहास में षड्यन्त्रकारी काल है। सीजर के अन्त्येष्ठि संस्कार पर एन्टोटी ने

ऐसा जोशीला भाषण दिया कि रोम के निवासी, सीजर के हत्यारों के विरोधी हो गये। कैसियस और ब्रूटस को रोम छोड़कर भागना पड़ा। आक्टेवियन नाम के सीजर के एक दत्तक पुत्र और ऐंटोनी के बीच विरोध था और दोनों के मध्य गृह-युद्ध हुआ। परन्तु ऐंटोनी ने बड़ी चालाकी से आक्टेवियन से मित्रता कर ली।

एन्टोनी, लेपिडस और आक्टेवियन ने मिलकर ब्रूटस और कैसियस का विनाश करना चाहा और उन्हें इस कार्य में सफलता भी मिली। कैसियस और ब्रूटस ने हारकर आत्महत्या कर ली। एन्टोनी ने आक्टेवियन की बहन आक्टेविया से विवाह कर लिया। परन्तु एन्टोनी और आक्टेवियन के सम्बन्ध भी बिगड़ गये। 36 ई० पू० में एन्टोनी ने मिस्र की शासिका क्लिओपात्रा से भी विवाह किया। फलस्वरूप आक्टेवियन जल उठा और 31 ई० पू० में उसने एन्टोनी के साथ युद्ध किया। जनता ने भी आक्टेवियन की सहायता की और पराजित होकर एन्टोनी एवं क्लिओपात्रा ने आत्म हत्या कर ली और आक्टेवियन रोम का सम्राट बना। इस प्रकार 31 ई० पू० में रोम का क्रान्तिकाल समाप्त हुआ। उसके साथ ही गणतन्त्र-युग का भी अन्त हुआ।

गणतंत्रकालीन शासन-व्यवस्था

कौंसल— गणतन्त्र काल में शासन का कार्य चलाने के लिए दो अधिकारियों की नियुक्ति होती थी जो कौंसल पुकारे जाते थे। इनकी नियुक्ति एक वर्ष के लिए की जाती थी। दोनों कौंसल एक दूसरे पर नियन्त्रण रखते थे। ये कौंसल ही शासक, सेनापति, न्यायाधीश तथा पुरोहित का कार्य किया करते थे। कौंसल जनता के प्रति उत्तरदायी होते थे और उन्हें सेनेट से मन्त्रणा लेनी होती थी।

कार्य अधिक हो जाने पर कभी-कभी प्रो-कौंसल की भी नियुक्ति की जाती थी जो कौंसल के अधीन कार्य करता था। कौंसल के अतिरिक्त अन्य पदाधिकारी भी होते थे जिनकी चर्चा नीचे की जा रही है—

प्रायटर— इनका कार्य दीवानी तथा फौजदारी के मुकदमों का निर्णय करना होता था। ये सेनेट का अधिवेशन भी बुला सकते थे और समय पड़ने पर इनको सैनिक अधिकार भी प्रदान कर दिये जाते थे।

सेन्सर— इनका कार्य जनसंख्या की गणना करना होता था। यही कार्यालय में पदाधिकारियों और प्रतिनिधियों की सूची रखते थे। सैनिकों को नियुक्ति करने का अधिकार भी इनको प्राप्त था। भ्रष्टाचार रोकने का कार्य भी यह करते थे। इनकी कालावधि डेढ़ वर्ष होती थी। अर्थ-सम्बन्धी कार्यों में भी इनका हाथ रहता था।

एडाइल—ये सार्वजनिक भवनों की देख-रेख करते थे, बाजारों का निरीक्षण करते थे और सामूहिक लाभ हेतु कार्य करते थे। जनता के मनोविनोद के लिए कार्य करना भी इनका कर्त्तव्य था।

क्वेस्टर- इनका कार्य फौजदारी के मुकदमों में सेनेट की सहायता करना होता था। पहले इनकी संख्या दो थी परन्तु बाद में बढ़ाकर 8 कर दी गई थी।

ट्रिब्यून—इनका कार्य शासन-संस्थाओं के ऊपर नियन्त्रण रखना था। इन्हें अपने कार्य करने के लिए शपथ ग्रहण करनी पड़ती थी। नागरिकों के हित के लिए ये सदैव चिन्तित रहते थे। ये सेनेट के कार्यों का निषेध भी कर सकते थे। इनकी संख्या 10 होती थी।

डिक्टेटर—संकटकालीन स्थिति में इसकी नियुक्ति होती थी। इसका कार्य-काल 6 मास होता था। ये डिक्टेटर अपने अधिकारों का दुरुपयोग नहीं करते थे यद्यपि ये निरंकुश होते और इन्हें इसी प्रकार के अधिकार प्राप्त होते थे।

रोम में तीन प्रकार की सभाएं होती थीं—

सेनेट– इसमें तीन सौ सदस्य होते थे। आरम्भ में केवल पैट्रीशियन वर्ग के लोगों को इसमें स्थान दिया गया परन्तु बाद में प्लेबियन वर्ग के लोग भी इसके सदस्य बनने लगे थे। सीजर के काल में अन्य जातियों के प्रतिनिधि भी इस सभा में सम्मिलित होने लगे थे। इस सभा के निम्नलिखित कार्य होते थे—

(1) सेना की नियुक्ति करना
(2) कर लगाना
(3) परराष्ट्र नीति का निर्धारण
(4) प्रो-कौंसल की नियुक्ति
(5) प्रान्तीय शासकों की नियुक्ति
(6) समस्त शासन का पर्यवेक्षण

इसके सदस्य बहुत अधिक प्रतिभाशील होते थे। कुछ ऐसे योग्य सदस्य होते थे जिनसे प्रत्येक विषय पर परामर्श लेना राज्य के हित में समझा जाता था। रोम में इस सेनेट ने बड़ी सुयोग्यता से कार्य किया। काल्डवेल का मत है—

"It has been maintained that no finer body of men has ever directed the course of any state with greater success that did the senate during Rome's rise to power."

— Caldwell.

कमिशिया सेंचुरियाटा—इस सभा का कार्य युद्ध और सन्धि के सम्बन्ध में निर्णय लेना होता था। यह सभा उच्च कर्मचारियों की नियुक्ति भी करती थी। इसके 193 सदस्य थे जिन्हें अपनी सम्पत्ति के अनुसार वोट देने का अधिकार था।

कमिशिया ट्रिबुटा—रोम में प्रजातन्त्रात्मक व्यवस्था का वास्तविक रूप इस सभा की स्थापना से ही चलता है। यह सबसे बड़ी प्रजातन्त्रात्मक सभा थी और 339 ई० पू० तक इसके अधिकारों में काफी वृद्धि हो गई थी। रोम का कोई भी नागरिक इस सभा में सम्मिलित हो सकता था। यद्यपि मतदान का अधिकार सदस्यों को ही था परन्तु प्रत्येक नागरिक अपना मत इस सभा के सम्मुख प्रस्तुत कर सकता था।

इस प्रकार रोम में गणतन्त्रात्मक व्यवस्था द्वारा शासन सचालित होता था।

प्रान्तीय शासन

रोम के गणतन्त्र राज्य में अनेक प्रान्त थे जिनके शासकों का नियोजन सेनेट करती थी। यह प्रान्तीय गवर्नर केन्द्र के प्रति उत्तरदायी होते थे और इनकी कालावधि 1 वर्ष होती थी। छोटे प्रान्तों के गवर्नरों को प्रो-प्रायटर और बड़े प्रान्तों के गवर्नर को कनसल कहा जाता था। प्रान्तों के लिये इनको असीमित अधिकार प्रदान किये गये थे परन्तु इन पर सेनेट का नियन्त्रण रहता था। कालान्तर में व्यावहारिक रूप में यह नियन्त्रण इतना कम हो गया कि ये गवर्नर जनता पर अत्याचार करने लगे। चूँकि इनका कार्य जनता से कर वसूल करना और न्याय करना होता था। अतः जनता इनसे पूरी तरह से दबी रहती थी। इन गवर्नरों के पास अपनी सेना भी होती थी परन्तु केन्द्रीय सरकार की अनुमति के बिना वे युद्ध अथवा शान्ति की घोषणा नहीं कर सकते थे।

रोम के गणतन्त्र के पतन होने का एक कारण प्रान्तीय शासन था। जनता गवर्नरों के अत्याचार से इतनी त्रस्त हो गई थी कि उसमें विद्रोह की भावना फैलने लगी थी। सीजर के राज्य-काल में जनता पर होने वाले इन अत्याचारों का दमन किया गया और इसी कारण सीजर ने गणतन्त्रात्मक रोम में निरंकुश शासक का रूप धारण किया।

सामाजिक दशा

गणतन्त्रकालीन रोम के समाज के विषय में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं—

पारिवारिक जीवन—रोम के निवासियों का पारिवारिक जीवन बहुत अच्छा था। परिवार का वयोवृद्ध ही गृहस्वामी माना जाता था और उनकी आज्ञा सब लोग मानते थे। परिवार में अनुशासन पर विशेष ध्यान दिया जाता था।

वर्ग व्यवस्था—गणतन्त्र काल में प्लेबियन वर्ग की दशा में सुधार किया गया था। किसी भी मजिस्ट्रेट को बिना आरोप लगाये किसी प्लेबियन को प्राण-दण्ड देने का अधिकार नहीं था। प्लेबियन तथा पैट्रीशियन वर्गों के बीच वैवाहिक सम्बन्ध भी होने लगे। इनके कानूनी विभेद को हटा दिया गया था। इस सम्बन्ध में एक विभाग संहिता का भी निर्माण किया गया था।

यद्यपि यह ठीक है कि इस काल में समाज में वर्ग-व्यवस्था को दूर करने का प्रयास किया गया परन्तु समाज में तीन वर्ग स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते थे—

(1) उच्च वर्ग
(2) मध्यम वर्ग
(3) दास वर्ग

उच्च वर्ग में पुरोहित और अन्य अभिजात व्यक्ति आते थे। मध्यम वर्ग में कृषक, शिल्पी और श्रमजीवी आते थे। दासों की दशा अच्छी नहीं थी। उनके जीवन का कोई मूल्य नहीं था और वे अपने स्वामी के हाथ की कठपुतली थे। कभी-कभी नागरिकों के मनोरंजन के लिये निहत्थे दासों को हिंसक पशुओं से लड़वाया जाता था।

स्त्रियों की दशा—इस काल में स्त्रियों की दशा अच्छी थी। वह गृह-स्वामिनी समझी जाती थी। पर्दा-प्रथा नहीं थी। स्त्रियों का मुख्य कार्य बालकों का पालन-पोषण ही माना जाता था परन्तु वे अन्य क्षेत्रों में भी दखल रखती थीं। उन्हें शिक्षा प्राप्त करने का भी अधिकार था।

आर्थिक व्यवस्था

गणतन्त्र काल में आर्थिक क्षेत्र में भी रोम में महान परिवर्तन हुए। साम्राज्य विस्तार के साथ ही साथ आर्थिक नीति में भी परिवर्तन आया। नए-नए प्रयोग होने लगे और आर्थिक जीवन की प्रगति का अभियान प्रारम्भ हुआ।

कृषि—अर्थ लाभ का मुख्य साधन कृषि ही था। रोम की सीमाएँ बढ़ जाने से कृषि की भी वृद्धि हुई। ये लोग गेहूँ जौ, मटर, बाजरा आदि मुख्य रूप से पैदा करते थे। बीन, लहसुन, गटियाँ तथा चुकन्दर भी उत्पन्न किये जाते थे। फलों में ये लोग सेब तथा अंजीर का प्रयोग करते थे। यूनान वालों के सम्पर्क से इन्होंने जैतून की खेती भी प्रारम्भ की थी। कृषि-कार्य के लिए घोड़ा, गधा और बैल प्रयोग में लाए जाते थे। इनके यहाँ सिंचाई की क्या व्यवस्था थी इनके विषय में अधिक जानकारी नहीं है।

पालतू पशुओं में ये लोग गाय और बकरी अधिक मात्रा में पालते थे।

व्यापार—गणतन्त्र काल में रोम में व्यापारिक उन्नति अधिक नहीं हुई। इस काल में रोमनिवासी व्यापार को हेय दृष्टि से देखते थे। रोम की सीमाएँ अवश्य बढ़ गई थीं और यदि वे चाहते तो सुदूर देशों से व्यापार कर सकते थे परन्तु रोमवासी व्यापार के प्रति सदैव उदासीन रहे। इसी कारण इस क्षेत्र में वे उन्नति नहीं कर सके।

उद्योग-धन्धे—रोम में उद्योग-धन्धे भी अधिक मात्रा में प्रचलित नहीं थे। ये लोग जीवनोपयोगी साधारण वस्तुओं के अतिरिक्त किसी चीज का निर्माण नहीं करते थे। इसके दो कारण थे—एक तो यह कि ये लोग व्यापार में कोई रुचि नहीं रखते थे और दूसरे यह है कि इस काल में बाहर से लूट का माल इतना अधिक आ गया था कि इनके दैनिक-जीवन की आवश्यकताएँ पूर्ण हो जाती थीं।

कृषि को छोड़कर इन्होंने आर्थिक दिशा में किसी भी क्षेत्र में उन्नति नहीं की। औद्योगिक-क्षेत्र में इनमें विलासिता के ही दर्शन होते हैं।

मुद्रा तथा बैंक—गणतन्त्र काल के पूर्व रोम में मुद्राओं की कमी थी। परन्तु गणतन्त्र काल में साम्राज्य विस्तार के फलस्वरूप इन्हें बहुत अधिक सोने-चाँदी की प्राप्ति हुई थी। स्पेन को खानों से इन्हें बहुत अधिक चाँदी के सिक्के प्राप्त हुए थे। इस मुद्रा व्यवहार के साथ-साथ रोम में इस युग में बैंक-प्रथा का आरम्भ हुआ। साधारण व्याज पर ऋण मिल जाता था और बैंक भी सूद देते थे।

धर्म एव दर्शन

प्राचीनकाल में रोम के पास अपना कोई धर्म नहीं था। ये लोग प्रकृति की शक्तियों के ही उपासक थे। प्राकृतिक शक्तियाँ दैवीय शक्तियों के रूप में मान्य होने लगीं थीं। नवीन दैवी-देवताओं की भी कल्पना की गई थी। गणतन्त्र काल में रोम के धर्म और दर्शन पर यूनान का काफी प्रभाव पड़ा। यूनानी प्रभाव के फलस्वरूप यहाँ के निवासियों की अपने परम्परागत देवताओं के प्रति श्रद्धा हट गई। लोग यह मानने लगे कि उनके प्राचीन देवताओं ने उन्हें छोड़ दिया। इसी कारण रोमवासियों ने यूनानी देवताओं की पूजा प्रारम्भ की। बहुत से रोम और यूनानी देवताओं में एकरूपता भी स्थापित की गई जैसे ज्यूपिटर और जियस में और जूनो तथा हेरा में।

ये लोग आत्मा में भी विश्वास करते थे, और आत्माओं का भी पूजन होता था। घर का वयोवृद्ध ही इस पूजन कार्य का संचालन करता था। मृत व्यक्ति को ये लोग बड़ी सावधानी से दफनाते थे क्योंकि इनका विश्वास था कि यदि वे ऐसा नहीं करेंगे तो मृतात्मा को कष्ट होगा।

ये लोग देवताओं की पूजा इसलिए करते थे कि देवता प्रसन्न होकर उनकी उन्नति में सहायक होंगे। इनके धर्म पर मिस्र, बेबलोनिया और चैल्डिया के धर्म का

प्रभाव भी पड़ा था। स्त्रियों के मध्य मिस्र की आइसिस की पूजा बहुत प्रचलित होती जा रही थी। धार्मिक क्षेत्र में ज्योतिष का भी विशेष महत्व था। साधारणतः सभी वर्गों के लोगों का धर्म पर विश्वास था परन्तु ज्यों-ज्यों रोम का पतन हुआ धर्म का स्थान भी गौण होता गया। उच्च वर्ग की विलासिता ने धर्म को भी भ्रष्टाचार से युक्त कर दिया। धर्म से नैतिकता नाम की चीज जाती रही, फलस्वरूप उसका पतन होता गया।

गणतंत्र काल में रोम में दर्शन का विकास हेलेनिस्टिक पृष्ठभूमि में हुआ। यहाँ के 'स्किपियोनिक' वर्ग के दार्शनिक स्टोइक दर्शन से प्रभावित हुए। यहाँ के दार्शनिकों ने यूनान के स्टोइक दार्शनिक पैनिटियम को रोम बुलाया और इस कारण स्टोइक दर्शन का प्रभाव रोम पर बहुत अधिक हो गया।

इसके पूर्व रोम की दार्शनिक विचारधारा पर इपिक्यूरियन दर्शन का प्रभाव था। द्वितीय शताब्दी ई० पू० में इस दर्शन ने रोमवासियों को प्रभावित किया था। यह दर्शन भौतिकवादी तत्वों को मान्यता देता था और जीवन को अधिक सुखमयब नाना ही इसका उद्देश्य था। परन्तु इस दर्शन में बौद्धिक और मानसिक उन्नति की भी क्षमता थी। रोम के भोगविलासी नवयुवकों ने इस दर्शन की भौतिकवादी विचारधारा का ही अपनाया और अज्ञानतावश दर्शन को अपने ढंग से समझा। इन्होंने दर्शन के उन्हीं तथ्यों को मान्यता दी जो विलासी जीवन का समर्थन करते थे। यूनान के स्टोइक दर्शन ने रोमवासियों की इस अज्ञानता को दूर करने का प्रयास किया। इस दर्शन के कारण प्राचीन रूढ़ियों और संकीर्णताओं का परित्याग करके रोमवासो नवीन दृष्टिकोण को अपनाने लगे। इस दर्शन ने रोमवासियों को अन्ध विश्वास की परिधि से बाहर निकालकर ज्ञान का प्रकाश दिया। कालान्तर में इसी दर्शन के प्रभाव के फलस्वरूप रोमन कानून का सृजन किया गया।

साहित्य

रोम में मौलिक चिन्तकों का अभाव था। गणतन्त्र काल में रोम के साहित्यकारों ने यूनानी साहित्य से प्रेरणा लेकर साहित्य का सृजन किया। इस काल में विलियस ऐंड्रोनिक्स ने होमर की ओडसी का अनुवाद किया। कालान्तर में इस काव्य पर अनेक समालोचनाएँ लिखी गईं। कैटलस नामक एक कवि ने लैटिन भाषा में कुछ भावपूर्ण गीत लिखे जिन पर यूनानी कवित्री सेफो और एलकेयम के काव्य की छाप प्रतीत होती है। ग्रेयस नेवियस नाम के एक कवि ने प्यूनिक युद्ध पर महाकाव्य का सृजन किया। ल्यूकेटियस नामक विद्वान ने 'डी रैरम नेचुरा' नामक एक काव्य का सृजन किया जो पूर्णतः मौलिक है। इस ग्रन्थ में सभ्यता के विकास का चित्रण किया गया है। और सम्पूर्ण ग्रन्थ दार्शनिक विचारधारा में ओत-प्रोत है।

इस युग के नाट्य साहित्य पर भी यूनानी छाप है। ग्रेयस नेवियस ने यूनानी दुःखान्त नाटकों का लैटिन में अनुवाद किया। इस युग में टेटेन्स और प्लेटस नामक दो प्रसिद्ध नाटककार हुए। टेटेन्स के नाटकों पर तो यूनानी प्रभाव बहुत अधिक है। परन्तु उसके नाटक सुखान्त हैं। उसने लगभग 20 नाटकों का सृजन किया जिनमें मानव-जीवन का सूक्ष्म विवेचन किया गया है। प्लेट्स के नाटकों में गम्भीरता की कमी है परन्तु उसकी भाषा में बहुत अधिक अलङ्कारिकता है।

इस युग के गद्य साहित्यकारों में सिसरो का नाम प्रमुख है। उसने गद्यात्मक पत्र शैली का आरम्भ किया। उसके पत्रों में वह शक्ति है कि उनको पढ़कर तत्कालीन समाज का वास्तविक रूप हमारे सम्मुख प्रगट हो जाता है। उसने यूनानी दर्शन वेत्ताओं के विचारों को एकत्रित करने का प्रयास किया है। यूनानी दर्शन और साहित्य से प्रभावित क्विन्टस एनियस का ग्रन्थ 'एनाल्स आफ रोम' बहुत अधिक प्रसिद्ध है। यह एक ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसके अठारह भाग हैं और जिसमें रोम का तब तक का सम्पूर्ण इतिहास है। फैबियस पिक्टर ने यूनानी भाषा में रोम का इतिहास लिखा और कैटो ने लैटिन भाषा में रोम का इतिहास लिखा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस युग के साहित्य पर यूनानी छाप बहुत अधिक है। पद्य, गद्य, नाटक और इतिहास सभी यूनानी साहित्यकारों से प्रेरणा लेकर लिखे गए है।

कला

गणतन्त्र काल में रोम में कला की भी विशेष उन्नति नहीं हुई। यहाँ की कला में भी यूनानी कलाकारों की छाप दृष्टिगत होती है। इस युग में देवालय देव-मन्दिरों की भाँति बनने लगे। मन्दिरों में स्थापित की जाने वाली मूर्तियाँ भी रोम में नहीं बनती थीं बल्कि अधिकतर यूनान से ही लाई जाती थीं। रोम के रईसों ने यूनान के आधार पर ही अनेक चित्रशालाएँ बनवाईं। रोम के बर्तन और आभूषणों पर भी यूनानी आभूषणों और बर्तनों की छाप है। रोम के कारीगर यूनान में ही शिक्षित किए जाते थे और यूनानी कलाकारों से प्रेरणा लेकर ही वे अपनी कलात्मक सामग्री का निर्माण करते थे।

रोम की कला को एट्रस्कन जाति की भी बहुत बड़ी देन है। रोम में वास्तु-कला में अवश्य कुछ प्रगति हुई। बड़े-बड़े राजमार्ग बनवाए गये। राजपथ बहुत चौड़े और सीधे होते थे। टेढ़े-मेढ़े और छोटे मार्गों को बनाने में रोम के कलाकार पटु नहीं थे। मूर्तिकला पर यूनानी प्रभाव बहुत अधिक था और इस युग में रोम में बहुत कम मूर्तियाँ बनाई गईं। रोम की चित्रकला पर कहीं-कहीं मिस्र का प्रभाव प्रतीत होता है। शव ले जाते समय रोमवासी कुछ चित्र साथ ले जाते थे इसी कारण

चित्रकला का थोड़ा बहुत विकास हुआ। वीर पुरुषों की प्रतिमाएँ स्थापित करने की परम्परा भी रोम में प्रचलित थी परन्तु यह प्रतिमाएँ भी बहुत कम मात्रा में बनती थीं और इनको बनाने वाले भी अधिकतर यूनानी कलाकार ही होते थे।

गणतन्त्रकालीन रोम की संस्कृति पर सम्यक रूप से विचार करने के पश्चात् हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि रोम के इस प्रजातन्त्रात्मक युग में अन्य कालों को देखते हुए अधिक उन्नति नहीं हुई। इस काल का महत्व उसकी प्रशासकीय व्यवस्था के फलस्वरूप ही है। साहित्य, धर्म, दर्शन और कला के क्षेत्र को देखते हुए तो यही कहना उचित प्रतीत होता है कि वास्तव में रोम ने यूनान को नहीं जीता बल्कि यूनान ने रोम को जीत लिया। राजनीतिक क्षेत्र में रोम की यूनान पर विजय हुई परन्तु सांस्कृतिक क्षेत्र में यूनान ने रोम को जीत लिया।

सारांश

रोम के गणतन्त्रकालीन इतिहास को दो कालों में विभाजित किया गया है—बाह्य संघर्षों का युग (50 ई० पू०—133 ई० पू०) और क्रान्ति का युग (133 ई० पू०-21 ई० पू०)

बाह्य संघर्षों के युग में सबसे पहले रोम ने समस्त इटली पर अधिकार किया। तत्पश्चात् उसने कार्थेज, मैसीडन और सीरिया को अपने राज्य में मिला लिया। 146 ई० पू० तक स्पेन, उत्तरी अफ्रीका, कार्सिका, सार्डियिन, मिस्र, मैसीडन, माल्टा, यूनान और एशिया माइनर आदि रोम साम्राज्य में सम्मिलित हो गये। इन विजयों के फलस्वरूप रोम को अपार धन की प्राप्ति हुई। क्रान्ति के युग में टाइबेरियस ग्रेकस, गेयस ग्रेकस, गेयस मैरियस, लिवियस ड्रूयस, सुला, पाम्पी, सिसरो आदि ने अपने-अपने ढंग से रोम में सुधार करने का प्रयास किया। इसके पश्चात् सीजर का अभ्युदय हुआ। वह बड़ा उदारवादी था। उसने एशिया की जनता के करों को कम कर दिया, कृषि को बढ़ावा दिया और जनता की उन्नति करने का प्रयास किया। यद्यपि वह निरंकुश शासक बन गया परन्तु कभी भी उसने गणतन्त्रवादी व्यवस्था को समाप्त करने का प्रयास नहीं किया। 44 ई० पू० में उसकी हत्या कर दी गई। उसके पश्चात् रोम में गृह क्रान्ति हुई और 31 ई० में रोम के गणतन्त्र युग का अन्त हो गया।

इसके युग के शासन का भार दो कौंसलों पर होता था जो जनता के प्रति उत्तरदायी होते थे। ये कौंसल ही शासक, सेनापति, न्यायाधीश तथा पुरोहित का कार्य करते थे। इनके अतिरिक्त विभिन्न कार्यों के संचालन के लिए प्रायटर, सेन्सर, क्वेस्टर, ट्रिब्यून और डिक्टेटर होते थे। सेनेट में तीन सौ सदस्य होते थे। सेनेट के मुख्य कार्य सेना की नियुक्ति करना, कर लगाना, परराष्ट्र-नीति का निर्धारण,

प्रो-कौंसल की नियुक्ति, प्रान्तीय शासकों की नियुक्ति, और समस्त शासन का पर्यवेक्षण थे। इसके साथ ही कमिशिया सेंचुरियाटा, और कमिशिया ट्रिबुटा नाम की संस्थाएं भी होती थीं। प्रान्तीय शासकों की नियुक्ति सेनेट करती थी। इन्हें कनसल और प्रो-प्रेक्टर के नामों से पुकारा जाता था।

रोम का समाज तीन वर्गों में विभाजित था—उच्च, मध्य और दास। रोम में पर्दा प्रथा नहीं थी। स्त्रियों को पुरुषों के साथ कार्य करने का अधिकार था। आर्थिक दृष्टि से रोम बहुत सम्पन्न था। व्यापार और उद्योग धन्धों के क्षेत्र में रोम ने विशेष उन्नति नहीं की थी। प्राचीन काल में रोम वालों का अपना कोई धर्म नहीं था। वे प्रकृति की शक्तियों के उपासक थे। इस युग में रोम के धर्म पर यूनान का काफी प्रभाव पड़ा। ये लोग आत्मा में विश्वास करते थे और धर्म के क्षेत्र में इनका दृष्टिकोण व्यवहारिक था। इस युग के दर्शन पर हेलेनिस्टिक दर्शन की छाप है। यहाँ की विचारधारा पर स्टोइक और एपिक्यूरियन दर्शन की छाप थी।

यहाँ के कवियों में कैटलस, ल्यूकेटियस, नाटककारों में ग्रेयस नेवियस, टेटेन्स और प्लेट्स, गद्यकारों में सिसरो, क्विन्टस एनियस, और इतिहासकारों में फैबियम पिक्टर के नाम उल्लेखनीय हैं। कला के क्षेत्र में गणतन्त्र काल में विशेष उन्नति नहीं हुई। कला के क्षेत्र में ये लोग दूसरे देशों के ऋणी हैं। चित्रकला पर मिस्र का प्रभाव है और शिल्प कला पर यूनान का। वास्तव में इस युग की समस्त संस्कृति पर यूनानी छाप बहुत अधिक है।

———

अध्याय | 27

साम्राज्य-काल

(EMPIRE PERIOD)

प्रश्न 1—आगस्टस के सुधारों का वर्णन कीजिये। उसके शासन-काल में कला एवं साहित्य के क्षेत्रों में क्या प्रगति हुई ?

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

Discuss the reforms of Augustus. What progress was made during his reign in the spheres of art and literature ?

(Allahabad University)

प्रश्न 2—"आगस्टस का शासन-काल रोम के इतिहास में सबसे वैभवपूर्ण एवं सम्पन्न युग का प्रतिनिधित्व करता है।" इस कथन को स्पष्ट कीजिये।

"The reign of Augustus represents the most glorious and the most prosperous period of Roman History." Explain.

प्रश्न 3—आगस्टस की मृत्यु-तिथि (14 ई०) तथा डिओक्लिशियन के अभ्युदय-काल (285 ई०) के बीच के वर्षों में रोम-सभ्यता की प्रमुख विशेषताओं का मूल्यांकन कीजिये। (इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

Assess the distinctive features of Roman culture during the years which elapsed between the death of Augustus (14 A. D.) and the rise of Diocletian (285 A. D.)

(Allahabad University)

प्रश्न 4—कांस्टैन्टाइन महान् की प्रधान कृतियों का वर्णन कीजिये। रोम सभ्यता के इतिहास में उसके राज्यकाल का क्या महत्व है ?

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

भाग 1

आगस्टस-काल

31 ई० पू० में आक्टेवियन रोम का सम्राट बना। इसने आगस्टस की उपाधि भी धारण की। इसके शासन से ही रोम में साम्राज्यवादी व्यवस्था का जन्म हुआ। आगस्टस बहुत बड़ा कूटनीतिज्ञ था। गद्दी पर बैठते ही उसने रोम की अराजक स्थिति को दूर करने का प्रयास किया। वह अधिनायकवाद में विश्वास करता था। वह निरंकुश होने के साथ ही साथ दूरदर्शी भी था। अपनी निरंकुशता की भावना को उसने प्रारम्भ में अपने हृदय में ही दबाये रखा। वह सीजर का पतन देख चुका था अतः उसे डर था कि यदि उसने तुरन्त ही एकतन्त्रात्मक शासन की नींव डाली तो जनता विद्रोह कर देगी। उसने एकतन्त्रात्मक शासन की स्थापना तो की किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से। सबसे पहले गणतन्त्र की रक्षा के लिए उसने अपने विचारों को व्यक्त किया जिससे जनता उसकी हितैषी बनी रहे। गणतन्त्र की रक्षा के नाम पर उसने शासन की समस्त शक्तियाँ ग्रहण कर लीं। इस प्रकार वह गणतन्त्रवादियों को अपनी ओर मिलाये रहा। उसने अपने अधिकारों को धीरे-धीरे ही बढ़ाया। 27 ई० पू० से 23 ई० पू० तक वह सेनेट के द्वारा हर वर्ष प्रथम कौंसल निर्वाचित किया गया। प्रथम कौंसल निर्वाचित होने के कारण उसे सेना पर नियन्त्रण रखने, बाह्य नीति पर नियन्त्रण रखने और आन्तरिक मामलों में सर्वोच्च अधिकार प्राप्त हो गये। इम्परेटर उपाधि ने उसकी वैधानिक स्थिति को और भी दृढ़ बना दिया। उसने सेनेट की कार्य-व्यवस्था तथा कानून-निर्माण को वैसा ही बनाये रखने की घोषणा की। शासन का ढांचा वैसा ही बना रहा परन्तु अन्दर ही अन्दर गणतन्त्रात्मक स्वरूप समाप्त होने लगा। इस बात का किसी को आभास भी नहीं हुआ। सेनेट के सदस्य आगस्टस से बहुत प्रसन्न थे अतः उन्होंने उसे सेबैस्टोस की उपाधि से विभूषित किया। इस शब्द का प्रयोग अब तक केवल देवताओं के लिए किया जाता था। धीरे-धीरे सेनेट के समस्त अधिकार आगस्टस को प्राप्त होते गये। 23 ई० पू० में सेनेट ने उसे 'ट्रिब्यूनिशिन पावर्स' प्रदान कर दी जिनके अनुसार वह सेनेट की बैठक बुला सकता था और युद्ध एवं सन्धि का निर्णय स्वयम् ले सकता था। जनता में उसके प्रति श्रद्धा की भावना इतनी अधिक बढ़ गई कि लोग उसमें देवत्व की कल्पना करने लगे। मिस्र के निवासी उसे 'फेरो' और 'टालमी' का उत्तराधिकारी मानते थे। इसी देवत्व की कल्पना के कारण उसकी पूजा प्रारम्भ हुई और 'आगस्टन-काल' की स्थापना हुई। अब आगस्टस की शक्ति को चुनौती देने वाला कोई नहीं रह गया। मन्दिरों में उसकी मूर्तियाँ स्थापित की गईं।

यद्यपि ऑगस्टस को बहुत अधिक अधिकार प्राप्त थे और वह सम्पूर्ण रोम राज्य का सर्वसत्ताधारी बन चुका था परन्तु जनता में अपने त्याग की भावना को फैलाने के लिए उसने न तो कभी कौंसल का पद स्वीकार किया और न डिक्टेटर ही बना। उसने गणतन्त्रात्मक ढाँचे में निरंकुश शासक की भाँति 31 ई० पू० से 14 ई० पू० तक राज्य किया। उसके शासन काल में रोम की इतनी अधिक उन्नति हुई कि उस अकेले सम्राट के शासन काल को एक युग का नाम दिया जाता है। काल्डवेल (Caldwell) लिखता है :—

"Because of his achievements his generation has been called the Age of Augustus."

—Caldwell.

ऑगस्टस ने अपने शासन-काल में रोम में बहुत अधिक सुधार किए। इन सुधारों को हम चार भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(1) राजनीतिक सुधार
(2) सामाजिक सुधार
(3) आर्थिक सुधार
(4) सैनिक सुधार

(1) राजनीतिक सुधार—ऑगस्टस ने अपनी राजधानी रोम में सुधार किये। वह रोम को संसार के सबसे सुन्दर नगर के रूप में देखना चाहता था। इसलिए उसने निम्नलिखित कार्य किये—

(1) रोम को 265 लघुमंडलों में विभाजित कर दिया और हर मंडल के शासन के लिए 4 स्थानीय मजिस्ट्रेटों के निर्वाचन की प्रथा आरम्भ की।
(2) शान्ति-व्यवस्था के लिए पुलिस की संख्या बढ़ा दी।
(3) आग से बचाव के लिए उसने एक विभाग खोला जिसमें 600 व्यक्ति कार्य करते थे।
(4) टाइबर नदी पर बाँध बनवाया जिससे रोम की रक्षा हो सके।
(5) नगर में जल-वितरण और क्रय-विक्रय की उचित व्यवस्था की। क्रय-विक्रय और नाप तौल में होने वाली बेईमानियों को रोकने के लिए उसने राजकीय पदाधिकारियों की नियुक्ति की।
(6) 22 ई० पू० में जब रोम में दुर्भिक्ष पड़ा तो उसने नगर के विभिन्न भागों में मुफ्त अनाज बँटवाया।

ऑगस्टस ने न्याय-व्यवस्था को भी सरल बनाने का प्रयास किया। उसके शासन-काल में न्यायालयों में कार्य सुचारु रूप से होने लगा। न्यायालयों में घूसखोरी और बेईमानी की प्रवृत्ति कम हुई। बेईमानी करने वालों के लिए कठोर दण्ड की

व्यवस्था की गई थो । भ्रष्टाचारियों को कड़ा दण्ड देने की व्यवस्था ने न्याय के क्षेत्र में काफी सहायता दी ।

आगस्टस ने सेनेट के सदस्यों की नवीन सूची बनवाई । उसकी अध्यक्षता में 15 प्रतिनिधि सदस्यों की एक समिति का निर्माण हुआ जिसमें पारित होने पर ही कोई प्रस्ताव सेनेट के सम्मुख रखा जाता था । आगस्टस सीजर की भाँति नागरिकता के अधिक प्रसार का विश्वासी नहीं था । उसने निम्नवर्गीय लोगों और विदेशियों की नागरिकता को छीन लिया । सेनेट में केवल ईमानदार और योग्य व्यक्ति हो जाने लगे ।

उसने प्रान्तों के शासन को भी सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया । प्रान्तों को दो भागों में विभाजित कर दिया गया—

(क) सेनेटोरियल प्राविंसेज

(ख) इम्पीरियल प्राविंसेज

सेनेटोरियल प्राविंसेज सेनेट द्वारा शासित होते थे । इनकी संख्या कम थी । ये वही प्रान्त थे जो पहले से ही रोम राज्य के अंग थे ।

इम्पीरियल प्राविंसेज के शासन के लिये राज्यपाल की नियुक्ति आगस्टस स्वयम् करता था । केवल वही व्यक्ति राज्यपाल नियुक्त किये जाते थे जिन्हें शासन कार्य का पर्याप्त अनुभव हो और जो सेना अथवा शासन के कार्य में ख्याति प्राप्त कर चुके हों । इन गवर्नरों को "लिगैटी" कहा जाता था । इस वर्ग में वे प्रान्त आते थे जिन्हें कुछ समय पूर्व जीतकर रोम साम्राज्य में मिला लिया गया था ।

प्रान्तों की शासन-व्यवस्था में सम्राट स्वयम् अभिरुचि रखता था । शान्ति की व्यवस्था के लिये प्रत्येक प्रान्त में स्थानीय सेना की व्यवस्था की गई थी और प्रान्तीय कर्मचारियों पर कड़ा नियन्त्रण रखा जाता था । गवर्नरों का वेतन-क्रम निश्चित कर दिया गया था । इसके पूर्व गवर्नरों को वेतन नहीं दिया जाता था अतः वे अनुचित साधनों का प्रयोग कर अपना खजाना भरते थे । परन्तु वेतन के निश्चित हो जाने के कारण इस प्रवृत्ति को ठेस लगी । जनता आगस्टस के इन प्रान्तीय सुधारों से बहुत संतुष्ट थी । चारों ओर सुख और शान्ति का साम्राज्य छाया हुआ था और आगस्टस को जय-जयकार होती थी ।

(2) सामाजिक सुधार— आगस्टस-कालीन समाज की दशा बड़ी शोचनीय थी । समाज में भ्रष्टाचार और व्यभिचार का बोलबाला था । समाज में संतानहीनता, तलाक और विवाहहीनता आदि अनेक दोष विद्यमान थे । इन कुरीतियों को दूर करने के लिये उसने कानून बनाए जिन्हें जूलियन धारा के नाम से पुकारा जाता है । इस धारा के अनुसार अग्रलिखित व्यवस्था की गई थी—

(1) अविवाहित पुरुषों पर कर की व्यवस्था की गई थी क्योंकि ऐसा विश्वास था कि इन्हीं के द्वारा समाज में वेश्यावृत्ति तथा व्यभिचार को बढ़ावा मिलता है। पुरुष के विवाह की अधिकतम सीमा 25 वर्ष और स्त्री के विवाह की 20 वर्ष रक्खी गई थी। इस अवस्था तक विवाह न करने वालों को कर देना पड़ता था।

(2) कर के अतिरिक्त अविवाहित लोगों को अन्य क्षति भी उठानी पड़ती थी। अविवाहित व्यक्तियों का पिता की सम्पत्ति पर अधिकार नहीं रहता था।

(3, सन्तानहीनता को निरुत्साहित किया गया था और जिन व्यक्तियों के 3 संतानें होती थीं उन्हें राज्य की ओर से सुविधायें प्रदान की जाती थीं।

(4) व्यभिचारिणी स्त्री के साथ विवाह करना दण्डनीय था। यदि कोई स्त्री व्यभिचारिणी हो तो पुरुष को उसे तलाक़ दे देना पड़ता था।

(5) व्यभिचार और बलात्कार करने वालों के लिये कठोर दण्ड की व्यवस्था की गई थी।

कुछ विद्वानों का मत है कि आगस्टस का स्वयम् का चरित्र बहुत अधिक उज्ज्वल नहीं था परन्तु उसने अपने जीवन के अन्तिम काल के व्यक्तिगत उदाहरणों के द्वारा समाज के सामने आदर्श रखने का प्रयास किया। 8 ई० में उसने अपनी पुत्री जूलिया और दरबारी कवि (ओविड) को देश निकाला दे दिया। उन पर व्यभिचार का आरोप था। अपनी पत्नी (स्क्रिबोनिया) को दुराचार का आरोप लगाकर निकाल दिया।

आर्थिक सुधार—आगस्टस के शासन के पूर्व रोम की आर्थिक नीति बड़ी दोष-पूर्ण थी। राज्य का व्यय आय की अपेक्षा अधिक था। करों को लगाने और वसूल करने की कोई उचित व्यवस्था नहीं थी। आगस्टस ने आर्थिक दशा को सुधारने के लिये दो प्रकार के कर लगाये—भूमि-कर, वाणिज्य-कर। भूमि-कर अनाज और धन के रूप में वसूल किया जाता था और वाणिज्य-कर आय के अनुसार निश्चित किया जाता था।

आगस्टस ने प्राचीन सभी प्रकार के करों को समाप्त करके खानों, जंगलों और चरागाहों पर कर लगाये। करों को ठीक प्रकार से वसूल करने के लिये कर के योग्य सम्पत्ति का विवरण प्राप्त किया गया और करों को वसूल करने के लिये योग्य कर्मचारियों की नियुक्ति की गई। यह कर्मचारी जनता का शोषण नहीं कर सकते थे। बड़े-बड़े नगरों में बिकने वाले माल पर चुङ्गी ली जाती थी। धातु की खानों, नमक उद्योग और मछली व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। इन

समस्त कारणों से राज्य को काफी लाभ हुआ और राजकोष भर गया। धन का खर्च भी आगस्टस ने बहुत कायदे से किया। वह सैनिकों को बहुत अधिक पुरस्कार देता था। उसने प्लेबियन वर्ग की दशा को सुधारने के लिये 150 करोड़ स्वर्ण मुद्रायें खर्च कीं। सार्वजनिक कार्यों पर भी उचित रूप से व्यय किया गया। अतः उसके शासन-काल में रोम की आर्थिक स्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ।

सैनिक सुधार—आगस्टस के पूर्व रोम का सैनिक शक्ति में भी अनेक दोष थे। रोम की कोई स्थायी सेना नहीं थी और आवश्यकतानुसार सैनिकों की भर्ती की जाती थी। आगस्टस ने स्थायी सेना का प्रबन्ध किया। कहा जाता है कि इस सेना में एक लाख पचास हजार सैनिक थे। सैनिकों को तीन कोटियों में विभाजित किया गया था। लिजनरी फोर्स, आक्जिलयरी फोर्स तथा प्रायटोरियन गार्ड। रोम के नागरिकों को लिजनरी फोर्स में रक्खा गया था और उनको कार्यावधि 22 वर्ष निश्चित की गई थी। आक्जिलियरी फोर्स में विजित देशों के सैनिकों को स्थान दिया गया। ये लोग रोम के नागरिक नहीं होते थे परन्तु 25 वर्ष तक सेना में कार्य करने के पश्चात् इनको रोम की नागरिकता प्राप्त हो जाती थी। प्रायटोरियन गार्ड सम्राट की रक्षा का कार्य करते थे। सेना के उच्च पदाधिकारी लिगेटी कहलाते थे जिनकी नियुक्ति सम्राट स्वयम् करता था। सैनिकों की भर्ती, नौकरी और वेतन के नियम भी निर्धारित किये गये थे।

आगस्टस स्वयम् एक सुयोग्य सैनिक था। उसने सीमा प्रान्तों पर अपनी सेनायें तैनात की थीं। अफ्रीका और स्पेन की ओर कुशल सैनिक रक्खे थे। उसने जहाजी बेड़े का भी निर्माण करवाया था। वास्तव में आगस्टस की समस्त शक्ति उसकी सेना में ही निहित थी।

अन्य सुधार—उपर्युक्त सुधारों के अतिरिक्त आगस्टस ने अन्य सुधार भी किये। उसने रोम में अनेक नहरों, पुलों, मन्दिरों का निर्माण करावाया। आग से रक्षा के लिये उसने सबसे पहले फायरबिग्रेड की स्थापना की। उसने समुद्री डाकुओं का दमन करके व्यापार को भी बढ़ावा दिया।

जनता के हित के लिये समस्त कार्यों को पूर्ण करने के पश्चात् आगस्टस ने साम्राज्य विस्तार की योजना बनाई। यद्यपि वह अपने साम्राज्य को बढ़ाने में सफल नहीं हुआ तथापि उसने रोम के साम्राज्य को दृढ़ और शक्तिशाली बनाया। उसने अरब देश को जीतने का प्रयत्न किया परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। उसने जर्मनी पर आक्रमण किया। आरम्भ में उसे सफलता मिली परन्तु अन्त में जर्मनों ने विद्रोह करके रोम के छक्के छुड़ा दिये। जर्मनी पुनः स्वतन्त्र हो गया और रोम का शासन केवल राइन नदी तक ही रह गया। इसके पश्चात् आगस्टस ने साम्राज्य-विस्तार की दिशा में

कोई साहसपूर्ण कदम नहीं उठाया परन्तु अपने विशाल साम्राज्य को जो उत्तर में इंग्लिश चैनल, राइन और डेन्यूब नदी तक, दक्षिण में सहारा के रेगिस्तान तक, पूर्व में काला सागर तथा फरात नदी तक और पश्चिम में अटलांटिक महासागर तक फैला हुआ था, सुदृढ़ बनाने में रत रहा। उसके इन्हीं कार्यों के फलस्वरूप उसकी गणना विश्व के महानतम् राजनीतिज्ञों में होती है। इसी कारण काल्डवेल ने लिखा है—"आगस्टस का स्थान संसार के राजनीतिज्ञों की प्रथम पंक्ति में रखा जाना चाहिये।"

"Augustus, therefore, must always occupy a place in the front rank of the statesmen of the world."

—Caldwell.

आगस्टस-कालीन संस्कृति

साहित्य

आगस्टस-कालीन साहित्य के विषय में ट्रेवर का मत है—"पेरोक्लिज और एलिजाबेथ के युग के समान ही, आगस्टस का भी वह युग था जब महान देशभक्तों का जन्म हुआ, जिन पर राष्ट्र को गर्व है, और उनकी महान सफलताओं का वर्णन संस्कृति के विकास में आता है।"

"Like the Periclean and Elizabethan eras, the Augustan age was a time when the patriotic pride of the whole nation in its great achievement and cultural world mission found expression in a literature of outstanding genius."

— Trever.

इस युग में गद्य, पद्य, इतिहास आदि सभी क्षेत्रों में बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखे गये।

काव्य—काव्य के क्षेत्र में आगस्टस काल की अभूतपूर्व देन है। इस युग में अनेक महाकवि उत्पन्न हुये जिन्होंने रोम की संस्कृति का प्रभाव समस्त विश्व में फैलाया। इन महाकवियों में से कुछ की चर्चा यहाँ की जा रही है—

(1) **वर्जिल**—इसका काल 70 ई० पू० से 19 ई० पू० तक माना जाता है। वह सम्राट आगस्टस का दरबारी कवि था। इसने तीन महत्वपूर्ण ग्रन्थों का सृजन किया—एक्लोग्स, जिआर्जिक्स तथा ईनीड। इन सभी ग्रन्थों में प्रकृति का सुन्दर निरूपण और तत्कालीन रोम के समाज की झलक मिलती है। मानव जीवन की विशिष्ट भावनाओं का चित्रण इन ग्रन्थों में परिलक्षित होता है। 'इनीड' नामक ग्रन्थ वर्जिल की सर्वश्रेष्ठ रचना है। इस ग्रन्थ का सृजन करके वर्जिल रोम का होमर बनना चाहता था परन्तु ग्रन्थ को पूर्ण करने के पूर्व ही उसकी मृत्यु हो गई।

(2) होरेस—होरेस का जन्म 65 ई० पू० इटली में हुआ था। उसका सर्व-प्रथम ग्रन्थ 'इपोड्स' है जिस पर यूनानी साहित्य की छाप परिलक्षित होती है। उसका 'सैटायर्स' नामक ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। इसमें रोम की प्रथाओं के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। होरेसक को सर्वश्रेष्ठ रचना 'ओड्स' है। क्विन्टिलियन के मतानुसार यह रोम के साहित्य का सर्वश्रेष्ठ गीत काव्य है। उसके अन्य ग्रन्थ 'सेकुलर हिम', 'आर्ट आफ पोएट्री' तथा 'एपिस्टिल्स' आदि हैं। अँग्रेजी के कवियों ने होरेस के ग्रन्थों से ही प्रेरणा प्राप्त की है। होरेस रोम का सर्वश्रेष्ठ गीति काव्यकार था। उसको अपनी कृतियों पर गर्व था। उसने स्वयम् लिखा है—

"I have built me a monument more lasting than bronze."

(3) ऐल्बियस-टिबुलस—यह आगस्टस काल का प्रसिद्ध प्रणय-गीतकार था। इसका काल 54 ई० पू० से 19 ई० पू० तक माना जाता है। उसने अपनी डेलिआ नामक प्रेयसी के प्रति बड़े सुरस और सुन्दर गीत लिखे हैं। उसी शैली में वर्णनात्मक के दर्शन होते हैं।

(4) सेक्सटस प्रार्पटियस—यह 50 ई० पू० में हुआ था। इसकी प्रारम्भिक रचनाओं में सीथिया नामक वेश्या के प्रति प्रेम का वर्णन किया गया है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह आगस्टस कालीन सर्वश्रेष्ठ प्रणयगीतकार था। इसका शब्द-चयन सुन्दर है और विषय-विवेचन मार्मिक। इसमें और होरेस में स्पर्द्धा थी क्योंकि दोनों ही आगस्टस के दरबारी कवि थे।

(5) ओविड—बहुत से विद्वान ओविड के सम्मुख सेक्सटस प्रार्पटियस को कोई महत्व नहीं देते। उसे ही वह रोम का सर्वश्रेष्ठ प्रणय-गीतकार मानते हैं। ओविड ने अनेक ग्रन्थों की रचना की जिनमें एमोरेस, हैरोइड्स, क्योर आफ लव, फास्टी तथा मेटैमारफोसज आदि प्रसिद्ध हैं। इसकी सर्वश्रेष्ठ रचना मेटेमारफोसज मानी जाती है। कहा जाता है कि आगस्टस ने 8 ई० में इसे सम्राट की पुत्री जुलिया के साथ व्यभिचार करने के आरोप में देश निकाला दे दिया और उसे अपने जीवन के शेष दिन काला सागर के तट पर बिताने पड़े। यहाँ रहकर उसने 'पोएम्स आफ सैडनेस' नामक ग्रन्थ की रचना की। 17 ई० में उसकी मृत्यु हो गई है। उसके गीतों का प्रभाव मिल्टन, शेक्सपियर आदि अंग्रेजी के श्रेष्ठ साहित्यकारों पर है।

गद्य—आगस्टस काल में गद्य की उतनी अधिक उन्नति नहीं हुई जितनी कि पद्य की। इस युग के गद्यकारों में लिवि (Livy) का नाम सबसे ऊपर लिया जाता है। इस महान इतिहासकार ने रोम का वृहत इतिहास (History of the Roman Empire) लिखा है। कहा जाता है कि इस ग्रन्थ की रचना में 40 वर्ष का समय

लगा और ग्रन्थ के 142 भाग थे परन्तु अब तक 35 भाग ही प्राप्त हुये हैं। उसके इतिहास की विद्वानों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। वैन सिकिल लिखता है—

"In Livy, the age produced a historian who for literary artistry ranks with the greatest masters of his craft in the world."

—Van Sickle.

लिवि के अतिरिक्त इस युग के गद्यकारों में पाम्पियस ट्रोगस और वेरियस फ्लेक्स का नाम भी बड़े आदर से लिया जाता है। पाम्पियस ट्रोगस ने 'हिस्टोरियाई फिलिपिकाई' नामक ग्रन्थ का सृजन किया जिसके 44 भाग थे।

उपर्युक्त साहित्य के अतिरिक्त इस युग में कुछ पारिभाषिक ग्रन्थ भी लिखे गये। इन ग्रन्थकारों में जूलियस हाईजिनस और विट्रवियस का नाम उल्लेखनीय है। विट्रवियस का ग्रन्थ 'आन आर्किटेक्चर' बहुत प्रसिद्ध है।

यूनानी ग्रन्थ— आगस्टस काल में रोम में कुछ ग्रन्थ यूनानी भाषा में भी लिखे गए। इन ग्रन्थकारों में ड़ियोडोरस, डिओनिसियस, निकोलस और स्ट्रेबों आदि के नाम प्रसिद्ध हैं। डियोडोरस ने 'हिस्टारिकल लाइब्रेरी, (Historical Library) डिओनिसियस ने रोमन ऐंटिक्वीटीज (Roman Antiquities) 'आन दि सबलाइम' (On the Sublime) निकोलस ने 'वर्ड हिस्ट्री' (World History) और स्ट्रेबों ने 'जिआग्रेफिका' नामक ग्रन्थों की रचना की है। स्ट्रेबो ने पालनियस इतिहास को भी पूर्ण करने का प्रयास किया।

कला

कला के क्षेत्र में आगस्टस काल में विशेष उन्नति हुई। कला के क्षेत्र में भी इस युग को स्वर्णयुग के नाम से पुकारा जाता है। इस युग में वास्तुकला, तक्षण कला और चित्रकला का विकास हुआ। विभिन्न कलाओं के विकास की चर्चा नीचे की जा रही है—

वास्तुकला रोमन साम्राज्य की सुव्यवस्था के फलस्वरूप रोम में वास्तुकला की विशेष उन्नति हुई। आगस्टस ने रोम के विश्व के सुन्दरतम नगरों में बनाने का प्रयास किया था। उसने रोम में अनेक भवनों का निर्माण करवाया। भवन निर्माण में संगमरमर का प्रयोग अधिक मात्रा में होता था। रोम के अतिरिक्त आगस्टस ने ट्यूरिन तथा आगस्टोहनम नामक नगरों को भी सुन्दर बनाने का प्रयास किया। राजमार्ग बनाने की एक नवीन प्रणाली को इस युग में अपनाया गया था।

आगस्टक को 'रोम के देवालयों का निर्माता और पुनरुद्धारक कहा जाता है। इस युग के मन्दिर में कादकार्ड सैटर्न, कैस्टर, जूलियस, जेनस, जुपिटर कैपिटोलिनस

आदि के मन्दिर प्रसिद्ध हैं। आगस्टस ने संगमरमर का एक अपोलों का मन्दिर भी बनवाया। मार्स का मन्दिर भी अपने सौन्दर्य के कारण बहुत अधिक प्रसिद्ध है।

प्रासादों और मन्दिरों के अतिरिक्त इस युग में जनता के लिये स्थान-स्थान पर स्नानगृह, धर्मशालाएँ और व्यायामगृह बनवाये गए। इन सबमें वास्तुकला का सुन्दर रूप परिलक्षित होता है।

तक्षण कला—आगस्टस काल में दो प्रकार की मूर्तियों का निर्माण किया गया—पोर्ट्रेचर और मानुमेन्टल रिलीफ। प्रथम कोटि की मूर्तियां आकृति-विशेष का प्रतिनिधित्व करती हैं और द्वितीय कोटि की मूर्तियाँ किसी घटना के स्मारक के रूप में बनाई जाती हैं। प्रथम कोटि की मूर्तियों में वेटिकन के संग्रहालय में अब भी सुरक्षित आगस्टस की मूर्ति बहुत प्रसिद्ध है। द्वितीय कोटि की मूर्तियों में एक मूर्ति में आगस्टस को गाल और जर्मनी से लौटता हुआ चित्रित किया गया है। इस मूर्ति में एक स्त्री भी चित्रित की गई है जिसके पास दो बच्चे हैं। साथ ही एक जलूस का भी अंकन किया गया है। इन समस्त मूर्तियों को देखकर आगस्टक काल की तक्षण कला की भूरि-भूरि प्रशंसा करनी पड़ती है।

चित्रकला—आगस्टस काल में चित्रकला की विशेष उन्नति नहीं हुई। पाम्पी तथा प्राइमा में कुछ भित्ति-चित्र अवश्य उपलब्ध हुए हैं जिन पर यूनानी छाप प्रतीत होती है।

विज्ञान

विज्ञान के क्षेत्र में भी आगस्टस काल में विशेष उन्नति हुई। सेनेक नामक वैज्ञानिक ने तूफान, आँधी, वर्षा, इन्द्रधनुष आदि के सम्बन्ध में प्रकाश डाला। उसका कहना था कि अभी वैज्ञानिक ज्ञान अधूरा है और इस क्षेत्र में अभी बहुत कार्य होना है। उसने नक्षत्रों का भी अध्ययन किया। इस युग में प्लिनी नाम का एक महान वैज्ञानिक हुआ जिसने 'हिस्टोरिया नेचुरालिज' नामक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ का वैज्ञानिकों के लिये विशेष महत्व था।

धर्म एवं दर्शन—इस युग में धर्म के क्षेत्र में बहुत अधिक परिवर्तन हुए। सम्राट पूजा का प्रचलन हुआ। लोग उसे अर्द्ध-देवता अथवा कपोलों का अवतार मानने लगे। इस युग में स्टोइक दर्शन और एपिक्यूरियन मत का प्रभाव भी जनता पर पड़ा। रोम के लोग आत्मा की अमरता में विश्वास करने लगे और उनका पुनर्जन्म में भी विश्वास हो गया। 'निओ-पाइथा-गोरियन मत' भी इस युग में प्रचलित था।

आगस्टस के दरबार में दार्शनिकों का आदर होता था। एरियस और सेनेका नाम के दो महान दार्शनिक इस युग में हुए। सेनेका स्टोइक दर्शन में विश्वास करता था परन्तु उसका अन्ध-समर्थक नहीं था।

सामाजिक एवं आर्थिक जीवन—आगस्टस काल के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक सुधारों पर प्रकाश डाला जा चुका है । परन्तु इस युग के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन की अलग से चर्चा कर लेना आवश्यक है ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि आगस्टस कालीन समाज में विलासिता की मात्रा अधिक थी । सामाजिक उत्सवों में बहुत अधिक धन व्यय किया जाता था । फिजूलखर्ची बहुत अधिक थी । आगस्टस के पूर्व में तो एक ऐसी घटना घटी थी कि एक सेनेटर को इस बात के लिये पदच्युत कर दिया गया कि उसने अपने खर्चों को नियन्त्रित करने का प्रयास किया था ! आगस्टस-काल में महिलाओं को पूर्ण स्वतन्त्रता थी परन्तु उनमें भी विलासिता की मात्रा अधिक थी । उनमें पवित्रता नाम की कोई चीज शेष नहीं रह गई थी । कुलीन महिलाएँ अपने बनाव श्रृङ्गार पर बहुत अधिक धन बहाती थीं । इस मनोविनोद के साधनों में घुड़दौड़, तलवार-युद्ध, जंगली जानवरों का युद्ध, अभिनय तथा नृत्य आदि प्रमुख थे । स्त्री भी आमोद-प्रमोद का मुख्य साधन समझी जाती थीं । रोम में विभिन्न जातियों के लोग निवास करते थे और सभी में विलासिता की मात्रा प्रबल होती जा रही थी । आगस्टस ने इस विलासिता और व्यभिचार को रोकने का प्रयास किया परन्तु उसमें उसे अधिक सफलता नहीं मिली ।

रोम में धन-धान्य की कमी न थी । अनेक विजयों के फलस्वरूप रोम को बहुत अधिक धन की प्राप्ति हुई थी । खेती के योग्य भूमि की अधिकता थी । भूमि अधिकतर सामन्त वर्ग के हाथ में थी । पशु पालन की प्रथा भी प्रचलित थी । आगस्टस ने सिचाई के लिये नई नहरों का निर्माण करवाया था फलस्वरूप खेती में पर्याप्त सुधार हुआ था ।

इस युग में व्यापार में भी अधिक उन्नति हुई थी । जल और थल मार्ग ठीक किए गए और समुद्री डाकुओं का भय दूर कर दिया गया था । मजदूरी बहुत सस्ती थी और व्यापारियों की अपनीं समितियाँ होती थीं जिन्हें 'कालेजिआ' कहते थे । एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में माल ले जाने के लिए कर नहीं देना पड़ता था । बैङ्क-प्रथा के प्रचलन ने आर्थिक व्यवस्था को अधिक सुरक्षित बना दिया था । इस युग की आर्थिक उन्नति की बड़ाई करता हुआ ट्रेवर लिखता है—

"In material prosperity the Augustan era was just as truly a golden age as in art and literature, and is was his prosperity that furnished their necessary basis."

—Trever.

इस प्रकार हम देखते हैं आगस्टस-काल में जीवन के विविध क्षेत्रों में बहुत अधिक उन्नति हुई थी । आगस्टस-काल शांतिमय काल था । शांति के समय ही किसी

देश की कला, साहित्य और धर्म का विकास होता है। समाज में विलासिता अवश्य विद्यमान रहती है परन्तु कला और साहित्य की उन्नति में विलासियों का भी बड़ा योगदान रहता है। यही दशा आगस्टस काल में थी। समाज की विलासिता के मध्य काल, और साहित्य ने विशेष प्रगति की। अर्थ के आधिक्य और राजकीय संरक्षण ने इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान किया।

(२) उत्तर आगस्टस कालीन युग

आगस्टस की मृत्यु के उपरान्त रोम में कुछ समय तक शांति व्यवस्था बनी रही। आगस्टस के साम्राज्य में जिस शांति और सुव्यवस्था की स्थापना की गई थी वह उसके उत्तराधिकारियों के शासन काल में भी बनी रही। तत्पश्चात् रोम में सैनिक शासन की स्थापना हुई और फिर एक नये युग का सूत्रपात हुआ जिसे हम उत्तर-रोम साम्राज्य के नाम से पुकारते हैं। आगस्टस के परवर्ती इतिहास को अध्ययन की सुविधा के लिये हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(1) 14 ई० से 180 ई० तक का इतिहास (शांति एवं सुव्यवस्था का काल)
(2) 180 ई० से 284 ई० तक का इतिहास (सैनिक शासन का काल)
(3) 284 ई० से 476 ई० तक का इतिहास (उत्तर रोम साम्राज्य का काल)

शांति एवं सुव्यवस्था का काल

(14 ई० से 180 ई०

आगस्टस की मृत्यु के उपरान्त उसके उत्तराधिकारियों के नेतृत्व में रोमन साम्राज्य पल्लवित होता रहा। इस काल में रोम में बड़ी शांति और सुव्यवस्था थी इसी कारण हमने इसे शांति एवं सुव्यवस्था के काल के नाम से पुकारा है। इस काल के इतिहास को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(क) जूलिओक्लाडियन काल (14 ई०-68 ई०)
(ख, फ्लेवियन काल (68 ई०-96 ई०)
(ग) ऐंटोनाइट काल (96 ई०-180 ई०)

(क) जुलिओक्लाडियन काल

आगस्टस की मृत्यु के उपरान्त उसका दत्तक पुत्र टाइबेरियस रोम का सम्राट बना। सिंहासनारूढ़ होने के समय उसकी अवस्था 56 वर्ष की थी। उसमें एक योग्य शासक के समस्त गुण विद्यमान थे परन्तु वह सुखमय जीवन नहीं व्यतीत कर सका। जब आगस्टस ने टाइबेरियस को गोद लिया था उसी समय उसे जर्मनिकस नाम के एक बालक को गोद लेना पड़ा था जो उसका भतीजा था। टाइबेरियस चाहता था उसके

बाद शासन की बागडोर जर्मेनिकस के हाथ में न आकर उसके पुत्र ड्रूसस के हाथ में आये। इसी में जर्मेनिकस की मृत्यु हो गई और यह अफवाह उड़ा दी गई कि टाइबेरियस ने जर्मेनिकस को जहर देकर मार डाला। इन अफवाहों से ऊबकर उसने शासन की बागडोर सेजनस नामक व्यक्ति को सौंप दी। सेजनस ने 5 वर्ष तक शासन किया परन्तु उसने टाइबेरियस के दो पुत्रों गेमेलस और गेयस के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा। इस षड्यन्त्र का पता टाइबेरियस को चल गया और उसने सेजनस तथा उसके पुत्रों की हत्या करवा दी। टाइबेरियस की मृत्यु 37 ई० में हुई और उसके मरने से पहले ही शासन को दो भागों में बाँटकर गेमेलस तथा गेयस को दे दिया गया था। टाइबेरियस की मृत्यु के पश्चात् सेनेट ने गेमेलस को हटाकर गेयस को राजा बनाया।

गेयस आगे चलकर कालिगुला के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसके साम्राज्य-काल में आगस्टस कालीन स्वर्ण युग के पुन: दर्शन होने लगे। उसने अपने को देवता के रूप में पूजे जाने की आज्ञा दी और येरुसलम में अपनी प्रतिमा स्थापित करवाई। रोम-वासियों को उसने अपनी पूजा के लिये बाध्य किया और फलस्वरूप एक षड्यन्त्र द्वारा उसकी हत्या कर दी गई।

गेयस की हत्या के पश्चात् 41 ई० में क्लाडियस गद्दी पर बैठा। उसने रोम की नागरिकता को बढ़ा दिया और यातायात सम्बन्धी नये सुधार किये। उसने नये बन्दरगाहों का भी निर्माण करवाया। उसका पारिवारिक जीवन सुखमय न था और इस कारण 54 ई० में अल्प आयु में ही परलोक सिधार गया।

54 ई० में नीरो रोम की गद्दी पर बैठा। उसने मुद्रा-नीति में परिवर्तन किये और कृषि की दशा को सुधारने का प्रयास किया। व्यक्तिगत जीवन में वह बहुत अधिक विलासी था फलस्वरूप उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचा गया। यद्यपि षड्यन्त्र सफल नहीं हुआ परन्तु परिस्थितियों से ऊबकर उसने 68 ई० में आत्म-हत्या कर ली। उसके पश्चात् गल्बा, ओथो और विटोलियस नामक व्यक्ति कुछ-कुछ दिनों के लिये गद्दी पर बैठे और 69 ई० में फ्लेवियन वंश का शासन रोम में स्थापित हो गया।

फ्लेवियन काल

फ्लेवियन वंश का संस्थापक वेस्पेसियन था। इसने 69 ई० से 79 ई० तक शासन किया। उसने रोम साम्राज्य को सुसंगठित किया और कुछ नवीन मन्दिरों तथा प्रेक्षागृहों का निर्माण करवाया। 79 ई० में उसका पुत्र टिटस सिंहासनारूढ़ हुआ। यह भी एक लोकप्रिय शासक था परन्तु 81 ई० में ही इसकी मृत्यु हो गई। टिटस की मृत्यु के पश्चात् उसका छोटा भाई डोमिशियन गद्दी पर बैठा। वह प्राचीन परम्पराओं का पालन करने वाला था। उसने रोम में प्रारम्भिक आचार एवं धर्म का पुनरुद्धार करने

का प्रयास किया। वह स्वेच्छाचारी था इसलिये सेनेट के सदस्य उससे जलते थे। इसी कारण 96 ई० में उसकी हत्या कर दी गई और उसके साथ ही फ्लेवियन वंश का अन्त हो गया।

ऐंटोनाइन-काल

इस काल में पाँच सम्राटों ने राज्य किया—नर्वा, ट्रेजन, हैड्रियन, ऐंटोनियस तथा मार्क्स आरेलियस। नर्वा ने 96 ई० से 98 ई० तक राज्य किया। उसने कृषकों की स्थिति को सुधारने और खेती की उपज बढ़ाने का विशेष प्रयास किया। ट्रेजन का शासन 98 ई० से 117 ई० तक रहा। उसने अनेक सार्वजनिक गृहों, मन्दिरों एवं पुलों का निर्माण करवाया। उसने मार्मेनिया और बेबिलोनिया के कुछ नगरों को जीता। उसके पश्चात् 117 ई० में हैड्रियन रोम का सम्राट बना। हैड्रियन के सीमान्त प्रदेशों की सुरक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया और केन्द्रीय शासन को वैज्ञानिक रूप प्रदान किया। उसने टाइबर नदी के किनारे एक राजमहल बनवाया। उसकी मृत्यु 138 ई० में हुई।

हैड्रियन की मृत्यु के बाद ऐन्टोनियस गद्दी पर बैठा। उसने 138 ई० से 161 ई० तक शासन किया। उसके शासन काल में रोम में चारों ओर बहुत अधिक शान्ति रही। सीमान्त प्रदेशों की सुरक्षा के लिये उसने कदम उठाये। 161 ई० में मार्क्स आरेलियस सम्राट बना। इसके शासन काल में रोम में प्लेग फैला। 137 ई० में जर्मन जाति ने रोम पर आक्रमण किया परन्तु उसने आक्रमणकारियों को खदेड़ दिया। इसकी मृत्यु 180 ई० में हुई और उसकी मृत्यु के साथ ही इस युग का अन्त हो गया।

सैनिक शासन का काल
(180 ई०—285 ई०)

180 ई० के पश्चात् रोम में भीषण रक्तपात हुआ। साम्राज्य में चारों ओर लूटपाट और विनाश की प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होने लगीं। साम्राज्य में सैनिक शासन की स्थापना हुई। सैनिक शासन के इस काल को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) सैनिक राजतन्त्र कल (180 ई०—235 ई०)
(2) सैनिक अराजकता का काल (235 ई०—285 ई०)

सैनिक राजतन्त्र

इस युग में सेनेट के पूर्व अधिकार समाप्त कर दिये गये और ताकत के जोर पर ही शासन चला। इस युग का प्रथम सम्राट कमोडियस था। यह मार्कस आरेलियस का

पुत्र था। यह बड़ा अयोग्य और विलासी शासक था। 182 ई० में इसकी हत्या का प्रयास किया गया परन्तु षड्यन्त्रकारी सफल न हो सके। 193 ई० में इसकी हत्या कर दी गई। इसके पश्चात् पार्टिनेक्स रोम की गद्दी पर बैठा परन्तु उसकी भी हत्या कर दी गई। उसके पश्चात् रोम के प्रान्तों में विद्रोह हुआ और अन्त में 193 ई० में शासन की बागडोर सेप्टिमस नामक व्यक्ति के हाथ में आ गई। सेप्टिमस के शासन में सैनिक-शासन पनपा। उसने इक्वेस्ट्रियन वर्ग को बहुत अधिक सुविधायें प्रदान कीं। सैनिकों का वेतन बढ़ा दिया। उसके शासन काल में अनेक विद्वान हुये जिनमें डायोजिनीज, लायरटिअस, एथेनियस और डायोकेसिअस के नाम प्रसिद्ध हैं।

211 ई० में रोम के शासन का भार कैरेकेल्ला पर आया। उसने साम्राज्य को एकरूपता प्रदान करने का प्रयास किया और नागरिकता का क्षेत्र विस्तृत कर दिया। 217 ई० में उसकी हत्या कर दी गई। उसके पश्चात् मैक्रिनस और एलेगेबेलस थोड़े-थोड़े समय के लिये सम्राट बने और 222 ई० में अलेक्जेंडर सेवेरस सिंहासनारूढ़ हुआ। उसके शासन-काल में सेनेट का महत्व बहुत कम हो गया। उसके समय में पारसीक आक्रमण हुआ जिसे बड़ी कठिनाई से उसने रोका। 235 ई० पू० के सैनिक विद्रोह में उसकी हत्या कर दी गई।

सैनिक अराजकता

235 ई० से 285 ई० तक का काल रोम में सैनिक अराजकता का काल कहा जाता है। इस युग में रोम में बहुत अशांति रही है। चारों ओर अराजकता का साम्राज्य रहा और हत्याओं और प्रति हत्याओं का बोलबाला रहा। 235 ई० में शासन की बागडोर मैक्सिमस के हाथ में आई। वह बड़ा क्रूर और अत्याचारी शासक था। उसने शोषित जनता का दमन किया। 238 ई० में उसकी हत्या कर दी गई। इसके पश्चात् 268 ई० तक 13 सम्राट सिंहासनारूढ़ हुये और समाज में विद्रोह की भावना उत्पन्न हुई। बाह्य आक्रमण भी हुये। आर्मेनिया पारसीकों के हाथ में चला गया। 268 ई० में क्लाडियस गोथिअस गद्दी पर बैठा। उसने 270 ई० तक ही शासन किया परन्तु अल्प शासनकाल में ही उसने रोम में शांति स्थापित करने का प्रयास किया। 270 ई० में आरलियन सिंहासनारूढ़ हुआ और उसने भी जनता के हित में कार्य करना चाहा। उसने रोम के चारों ओर एक दीवाल बनवाई। 275 ई० में उसे भी मौत के घाट उतार दिया गया। 275 ई० और 285 ई० के मध्य चार सम्राट हुये। 285 ई० में डिओक्लिशियस रोम की गद्दी पर बैठा और उसके शासनकाल से नये युग का सूत्रपात हुआ।

सभ्यता एवं संस्कृति

(14 ई०—285 ई०)

इस युग की सभ्यता को आरम्भिक रोम-साम्राज्य की सभ्यता के नाम से पुकारा जाता है। आगस्टस को मृत्यु के पश्चात् से डिओक्लिशियन के आविर्भाव तक 271 वर्ष में रोमन की सभ्यता एवं संस्कृति का जो भी विकास हुआ उसकी चर्चा यहाँ की जा रही है।

शासन

इस युग के समस्त सम्राट स्वेच्छाचारी थे। इनके अधिकार बहुत विस्तृत थे। इस युग में सम्राटों के अधिकार इतने अधिक बढ़ गये थे कि सेनेट का महत्व कम हो गया था। वह केवल परामर्शदायिनो संस्था रह गई थी। सम्राट इम्परेटर, सीजर और प्रिसेप की उपाधियों से विभूषित होते थे। सेना का प्रधान सम्राट ही होता था। शासन का समस्त भार उसी के कन्धा पर था और धार्मिक मामलों में भी उसका पूर्ण नियन्त्रण रहता था। युद्ध और शांति आदि के सम्बन्ध में निर्णय लेने का उसे पूर्ण अधिकार था। सम्राट की आलोचना करना अपराध माना जाता था। इस प्रकार इस काल में निरंकुश शासन की स्थापना की गई थी।

सम्राट की सहायता के लिये कई कर्मचारी होते थे। इनमें सचिवों का स्थान प्रमुख था। सचिवों की संख्या 5 थी। सेनेट के सदस्यों को कौंसल तथा प्रो-कौंसल बनाया जाता था। सचिव के नीचे प्रोक्यूरेटर होता था। सेना का कार्य प्रिफेक्ट करता था।

शासन को चलाने के लिये सेना का आश्रय लिया गया था। रोम का नागरिक ही सैनिक हो सकता था। अवकाश प्राप्त करने पर सैनिकों के लिये पेंशन आदि की भी व्यवस्था की गई थी। जल-सेना को भी अधिक महत्व प्रदान किया गया था।

शासन को चलाने के लिये कर लगाये गये थे। यह कर व्यापारिक वस्तुओं, खनिज पदार्थों और भूमि की उपज पर लगाये गये थे। पैतृक सम्पत्ति, नीलाम और दासों की बिक्री पर भी कर लगाया गया था। राजकीय सम्पत्ति को अलग रक्खा गया था। राजकीय भूमि के निरीक्षण के लिये प्रोक्यूरेटर नियुक्त किया जाता था और उसका विभाग अलग होता था।

इस काल में न्याय व्यवस्था के लिये नये कानून बनाये गये थे। रोम के कानून व्यवस्था के विषय में स्वेन ने लिखा है—"रोमन लोगों की सबसे बड़ी देन कानून की एक ऐसी संस्था का निर्माण करना था जो कि कालांतर में न्याय का आधार बनी, जिसकी नींव केवल परम्पराओं पर ही नहीं थी वरन् कारणों पर भी थी।"

"The most outstanding intellectual contribution of the Romans was the formation of a body of a law that became an instrument of justice, based not entirely upon custom, but upon reason as well."

—Swain.

450 ई० पू० में रोम का प्रथम कानून-संग्रह प्रकाशित हुआ। आगस्टस काल में भी कानून के क्षेत्र में काफी प्रगति हुई और उसके परवर्ती शासकों ने भी इस सम्बन्ध में कदम उठाये। इस युग में सम्राट के इच्छानुसार नये कानूनों का निर्माण हुआ। न्यायालयों की सम्पूर्ण शक्ति सम्राट के हाथ में केन्द्रित कर दी गई। कुछ कानून विशेषज्ञों ने ग्रन्थों का सृजन किया जिनमें डोमिशियस उल्पियनस तथा जूलियस पालस उल्लेखनीय हैं। इस युग के कानूनों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) दीवानी कानून (**Jus Givil or Civil Law**)

(2) सामान्य नागरिक कानून (**Law of Peoples**)

(3) प्राकृतिक कानून (**Natural Law**)

दीवानी कानून (Civil Law) रोमन नागरिकों के लिये बनाया गया था। इसका विशेष महत्व था। सामान्य नागरिक कानून सभी लोगों पर लागू होते थे। ये कानून जनता की रक्षा के लिये थे। इन कानूनों द्वारा दास-प्रथा और व्यक्तिगत सम्पत्ति को वैधानिक रूप दिया गया था। एक विद्वान ने लिखा है—

"It was the law which authorized the institutions of slavery and private ownership of property, and defined the principles of purchase and scale partnership and control. It was not superior to the civil law but supplemented it as especially applicable to the alien inhabitants of the Empire."

इस कानून द्वारा क्रय-विक्रय के सिद्धान्त भी निर्धारित कर दिये गये थे परन्तु इस कानून का अधिकार रोम के कुछ विशिष्ट व्यक्तियों पर नहीं था।

प्राकृतिक कानून दार्शनिक विचारधारा से प्रभावित थे। इन कानूनों की व्याख्या जूरी नहीं किया करते थे। वास्तव में इस कानून को हम मानवीय कानून के नाम से भी पुकार सकते हैं। इस कानून के अनुसार मानव-मात्र में कोई भेद नहीं है, दुर्बल को सताना अपराध है, पीड़ितों की रक्षा करना राज्य का कर्त्तव्य है। बिना अपराध के किसी को दण्ड नहीं दिया जा सकता था। इस कानून के अनुसार परिवार में पिता के स्थान को कम कर दिया गया और स्त्री को अपनी सम्पत्ति पर पूर्ण अधिकार प्राप्त हुआ। वास्तव में यह कानून भावात्मकता से ओत-प्रोत था। इस कानून के विषय में बर्न्स ने लिखा है—"रोमन लोगों की सबसे बड़ी देन न्याय के सिद्धान्तों का निरूपण था।"

"This development of the concept of abstract justice as a legal principle was one of the noblest achievement of the Romans."

—Barns.

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस युग की शासन-व्यवस्था की सबसे बड़ी देन तत्कालीन कानून है।

सामाजिक दशा

तत्कालीन रोमन समाज चार वर्गों में विभाजित था—

(1) अभिजात वर्ग

(2) व्यापारी वर्ग

(3) जनसाधारण

(4) दास

इस युग के वर्ग-विभाजन का आधार धन था। धन के आधिक्य और यूनानी प्रभाव के कारण रोम के निवासी आलसी हो गये थे। भौतिकतावादी विचारधारा समाज में प्रबल रूप से विद्यमान थी। अभिजात वर्ग का स्थान समाज में सबसे ऊंचा था। उनके पास भूमि एवं धन अधिक मात्रा में रहता था। उनकी वेशभूषा बहुत अधिक मूल्यवान होती थी। घर के फर्श संगमरमर के बने होते थे। यह वर्ग बहुत अधिक विलासी था। रोम के तत्कालीन समाज और इस वर्ग की दशा का वर्णन करते हुये एक विद्वान ने लिखा है—"वर्ग में सदस्यता की माप धन से होती थी। धनी लोग जनता के दायित्वों से अलग रहते थे और विलासिता का जीवन व्यतीत करते थे। वे आमोद-प्रमोद, रथों की दौड़ आदि में ही रुचि लेते थे। रईसी वातावरण में रहने के कारण वे खाने, पीने में ही मस्त रहते थे। इसकी तुलना में, साधारण जनता की दशा हीन थी।"

"Membership in social groups was determined by the amount of wealth that one possessed. They disassociated themselves from public responsibilities and lived in luxury. Games, gladiatorial combast and chariot races were staged for their amusement. Living in luxurious surroundings, they are and drank to excess in many cases. In contrast the condition of the masses was deplorable."

व्यापारी वर्ग का स्थान अभिजात वर्ग के नीचे आता था। इन व्यापारियों के पास भी धन का आधिक्य था। वे अपनी प्रतिष्ठा को बढ़ाने के लिये अभिजात वर्ग से सदैव होड़ लेते रहते थे। जनसाधारण की स्थिति अच्छी नहीं थी। जन-साधारण में साम्राज्य के प्रति काफी असंतोष विद्यमान था। निरन्तर परिश्रम करने के पश्चात भी

साधारण व्यक्तियों की आय अधिक नहीं होती थी। दास-प्रथा को वैधानिक रूप प्रदान किया गया। दासों की दशा बहुत अधिक गिरी हुई थी। दासों से कृषि, गृह-निर्माण और अन्य गिरे हुये कार्य करवाये जाते थे। इनकी दशा का वर्णन करते हुये प्रो० ब्रीस्ट ने लिखा है—"बड़े-बड़े खेतों पर दासों की अवस्था पशुओं से कुछ ही अच्छी थी। पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्रों के अच्छे परिवार के लोगों को गर्म लोहे से बैलों की तरह दागा जाता था कि उनकी पहचान सदा हो सके। रात को वे बाड़ों में बन्द किये जाते थे और प्रातः आधे पेट खाये हुये पशुओं की भाँति खेतों में काम करने के लिये हंकाये जाते थे; इटली के हरे-भरे खेत जहाँ पहले भूपति अपने हाथ से फसल उगाते थे अब उनमें वह दुःखी लोग काम करते थे जो इस सांसारिक जीवन को नरकमय समझते थे।"

साम्राज्य-काल में स्त्रियों की दशा भी बहुत गिरी हुई थी। गणतन्त्र काल में स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था परन्तु इस युग में स्त्री केवल भोग-विलास की सामग्री रह गई थी। धनी व्यक्ति दासों की स्त्रियों को खरीद लेता था और उनसे अपनी वासना की पूर्ति करता था। इस सम्बन्ध में बार्न्स ने लिखा है—"सुन्दर दासियाँ प्रायः धनी पुरुषों की अनैतिक वासनाओं की पूर्ति में ही लगा दी जाती थीं।"

"A large number of beautiful female slaves from the orient were always a special incitement to sexual irregularity on the part of the wealthier Romans."

— Burns.

समाज में तलाक की प्रथा भी प्रचलित थी। एक व्यक्ति कई स्त्री रख सकता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस युग का रोम का समाज अत्यन्त विलासी और भ्रष्ट था।

आर्थिक जीवन

धन के आधिक्य के कारण आर्थिक क्षेत्र में भी महान परिवर्तन हुये। इस युग में व्यापार को विशेष प्रोत्साहन दिया गया। बड़े-बड़े जहाजों का निर्माण किया गया और समुद्री डाकुओं का दमन किया गया। इस युग में सिकन्दरिया, कार्थेज, इफेसस तथा कोरिन्थ व्यापार के बड़े केन्द्र हो गये थे। समाज में कुछ लोगों के पास इतना धन था कि बड़े-बड़े महाजन सम्राट तक को ऋण देने लगे थे। बैङ्क-प्रथा का प्रचार भली-भाँति हो गया था। एक ही प्रकार की नाप-तौल प्रणाली और एक ही प्रकार के सिक्कों का प्रचलन था। जीविका का मुख्य साधन खेती ही थी। धीरे-धीरे सामान्य कृषकों की भूमि बड़े-बड़े भूमिपतियों के हाथ में आती जा रही थी और जमींदारी प्रथा भी पनप रही थी। छोटे किसान अपनी भूमि को भी कर के रूप में दे देते थे। इनकी दशा का वर्णन करते हुये एक विद्वान ने लिखा है—

"They were forced to give up their property to large land-holders who stood in good favour with the government. There was a constant decrease in the number of small farmers and a continual growth in the size of the landless class."

खेती की मुख्य पैदावार गेहूँ, जौ, लोबिया, ज्वार, बाजरा ही थी।

साहित्य

इस युग में लैटिन और यूनानी दोनों ही भाषाओं के साहित्य का विकास हुआ। पूर्वी रोम-साम्राज्य की भाषा यूनानी थी और पश्चिमी रोम-साम्राज्य में लैटिन का प्रयोग होता था। लैटिन-साहित्य का इस युग में खूब प्रचलन हुआ। इसीलिये इस साहित्य का यह 'रजत काल' कहा जाता है। लैटिन भाषा के लेखकों और उसके साहित्य पर एक विहंगम दृष्टि डालने से पता चलता है कि यूनानी की अपेक्षा लैटिन का प्रयोग अधिक हुआ। सेनेका ने अलंकारिक शैली में अपने नाटकों का सृजन किया, पैट्रोनियस ने अनेक कहानियाँ और उपन्यास लिखे, पार्सियस ने स्टोइक दर्शन को पद्यात्मक शैली में लिखा, टैसिटस ने 'ऐनाल्स' नामक ग्रन्थ लिखा जिसमें रोम के इतिहास की स्पष्ट झाँकी मिलती है। 'हिस्टरीज' नाम का एक अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखा गया। इस काल के लेखकों में जीवनी लेखक 'स्यूटोनियम' का नाम भी उल्लेखनीय है। उसका ग्रन्थ 'लाइव्ज आफ दी ट्वेल्व सीजर्स' बहुत प्रसिद्ध हुआ। व्यंग-प्रधान शैली का महान कवि मार्शल भी इसी युग में हुआ। जुवेनल का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'दि वैनिटी आफ ह्यूमन विशेज' भी इसी युग में लिखा गया। इस ग्रन्थ में दलित वर्ग की दशा का बड़ा मार्मिक चित्रण है।

यूनानी भाषा के साहित्यकारों में प्लूटार्क और लूसियन के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्लूटार्क द्वारा रचित 'लाइव्ज' विश्व साहित्य की अनुपम निधि है। लूसियन का सबसे अधिक प्रसिद्ध ग्रन्थ 'आक्शन आफ फिलासफर्स' है।

शिक्षा एवं विज्ञान

इस युग में शिक्षा की भी प्रगति हुई। रोम की शिक्षा-प्रणाली मौलिक नहीं थी। शिक्षा के क्षेत्र में इस युग में भी यूनानी अग्रणी थे। यूनानियों ने शिक्षा के क्षेत्र में कितनी अधिक उन्नति की थी इस बात का पता स्वेन के इस कथन से चलता है— "गर्वीले रोमन अपने बच्चों को उन ग्रीक लोगों के यहाँ पढ़ने के लिये भेजते थे जिन्हें उन्होंने जीता था और दास बना लिया था।"

"Proud Roman father sent their children to be instructed by the Greeks whom they had conquered and subjected to s avery."

—Swain.

हैड्रियन के समय में एथेन्स में एक विश्वविद्यालय की स्थापना की गई जिसमें यूनानी दर्शन एवं साहित्य की शिक्षा प्रदान की जाती थी। मार्कस आरेलियस इसे रोम साम्राज्य का बौद्धिक केन्द्र बनाने के लिये प्रयत्नशील रहा।

विज्ञान के क्षेत्र में भी इस युग में विशेष उन्नति हुई। रोम की वैज्ञानिक प्रगति के विषय में स्वेन लिखता है—

"Roman contributions in pure science were limited. The important advancement made during the period of supremacy came mostly from the parts of the empire where Greek culture, rather than Roman was dominant."

वैज्ञानिक क्षेत्र में इस युग में यूनानी वैज्ञानिकों का ही अनुसरण किया गया। यूनान विज्ञान के क्षेत्र में अत्यधिक उन्नति कर चुका था। वहाँ के चिकित्सा विज्ञान को अपनाने का प्रयास रोम के निवासियों ने किया। साम्राज्यवादी रोम में 'प्राकृतिक इतिहास' (Natural History) नामक पुस्तक का सृजन किया गया जिसका श्रेय एलरप्लिनी नामक वैज्ञानिक को है।

कला

कला के क्षेत्र में भी इस युग में यूनानी कला को ही आदर्श बनाया गया। परन्तु रोम की कला में कहीं-कहीं मौलिकता के भी दर्शन होते हैं। यद्यपि रोम निवासी यूनानी और एट्रस्कन कला से प्रभावित हुये परन्तु उन्होंने उस कला को एक नवीन रूप प्रदान किया। कोरिन्थियन शैली में बनाये गये यूनानी खम्बों को नवीन रूप दिया गया। एट्रस्कन कला से इन्होंने तोरण-निर्माण सीखा और पूर्व की कला से गुम्बद-निर्माण। इस युग में अनेक राजमार्ग, धर्मशालायें, नाट्यशालायें, स्नान-गृह और मन्दिर आदि बनवाये गये। 'थर्मेई' में रोम की कला स्पष्ट रूप से झलकती है। इसमें ऋतुओं के अनुसार कमरों का ताप बढ़ता-घटता रहता था।

मूर्ति-कला में भी ये लोग यूनान से प्रभावित हुये और यूनानी कला के आधार पर उत्कीर्ण भास्कर का भी निर्माण किया गया। उत्कीर्ण-भास्कर में टिटस का बनाया हुआ एक जलूस का चित्र बहुत सुन्दर है। रोम के बाजारों में जिन्हें फोरम कहा जाता था अनेक प्रकार की कृतियों का निर्माण हुआ। इस युग की मूर्ति-कला में यथार्थ-वादी दृष्टिकोण को अपनाया गया। रोम की कला में विजय-स्तम्भों का विशेष महत्व था। यह साम्राज्य के चिह्न स्वरूप प्रयुक्त होते थे। प्रो० थार्नडाइक (Thorndike) लिखते हैं—"विजय स्तम्भों का निर्माण रोम की निजी विशेषता थी। इनका कोई उपयोग न था परन्तु यह रोमन साम्राज्य के प्रतीक थे।"

"Triumph arch was distinctive product of Rome. It served no useful popular purpose but was a symbol of Roman Empire."

—Thorndike.

उत्तर रोम साम्राज्य

(284 ई०-476 ई०)

इस काल को रोम साम्राज्य के उत्तर का काल कहा जाता है क्योंकि इस काल में नवीन परिवर्तनों और सुधारों द्वारा गिरते हुये रोम-साम्राज्य को नई शक्ति देने का प्रयत्न किया गया। किसी-किसी इतिहास लेखक ने इसे रोम-साम्राज्य के इतिहास में सीमा चिह्न के समान महान माना है। ट्रेवर का मत है—"डियोक्लिशियन कांस्टेन्टाइन का काल रोमन साम्राज्य में पौराणिक माना जाता है।"

"The period of Diocletian and Constantine is epochal in the history of the Roman Empire."

— Trever.

यह समय साम्राज्य को फिर से संगठित करने के प्रयास के लिये प्रसिद्ध है। अराजकता को दूर करके चिरस्थायी शांति और देश की सुरक्षा के लिए उचित साधनों को अपनाने का महान प्रयास इस युग में किया गया। इस युग प्रारम्भ में 53 वर्ष तक दो महान सम्राटों ने शासन का संचालन किया जिनके नाम डिओक्लिशियन और कान्सटेन्टाइन हैं। आगस्टस काल की भाँति इनके शासन को भी गृह-युद्ध और पतन के बाद समृद्धि, शक्ति और संगठन का आरम्भिक परिवर्तनकर्त्ता माना जाता है।

डिओक्लिशियन

(284 ई०-305 ई०)

व्यक्तित्व—वह अत्यन्त अध्यवसायी और राज के कार्यों में रुचि रखने वाला मनुष्य था। अपने कठिन परिश्रम के कारण ही छोटी-सी श्रेणी से उठकर सम्राटपद को प्राप्त किया था। प्रारम्भिक अवस्था में वह केवल एक सैनिक पदाधिकारी था। आगस्टस की भाँति उसने भी वैधानिक शासन को अन्त करके स्वेच्छाचारी शासन का सूत्रपात किया। प्राचीन रोम सम्राटों की भाँति वह सेनेट का अनुचर नहीं था बल्कि वह ऐसा निरंकुश शासक था जिसको जनता ने अपने सभी अधिकार प्रदान कर दिये थे। बर्न्स लिखता है—

"To longer was the doctrine advanced, that the ruler was the mere agent of the senate and the people, he was now

held to be absolutely sovereign, on the assumption that the people had surrendered all power to him."

—Burns.

आगे चलकर वह पारसी शासकों की भाँति दैवीय अधिकारों का पक्षपात करने लगा था।

व्यवहार—वह बहुमूल्य आभूषण और वस्त्र पहनता था और सांस्कृतिक अवसरों पर राजकीय चिह्न धारण करता था। दरबार में उसके सामने आने पर व्यक्तियों को फर्श तक झुक कर सलाम करना पड़ता था। उसका दरबार पारसीक आदर्शों से ओत-प्रोत था। ईरानी राजाओं की भाँति उसने भी राजकीय सेवा के लिये हिजड़ों को नियुक्त किया था तथा अपने स्वेच्छाचारी शासन को मजबूत बनाने के लिये सम्राट की पूजा की भावना का प्रचार किया था।

भावना—आरेलियस की तरह उसने भी राजधर्म के राजनीतिक लाभों के उपयोग करने का प्रयत्न किया और ज्युपिटर कैपिटोलिनस को राजधर्म का मुख्य बिन्दु बनाया जिसके अनुसार राजा सर्वशक्तिमान था और अन्य देवता उसके अधीन थे। उसके इस विश्वास के कारण मनीच धर्म के मानने वालों ने उसे विधर्मी घोषित किया और बहुत से नए मतावलम्बी उसके विरुद्ध हो गये। ईसाइयों के दमन के लिए उसने कड़े कदम उठाये। उसका विश्वास था कि साम्राज्य का स्थायित्व ईश्वर की इच्छा पर निर्भर है और पुराने देवताओं के कोप से ही राज्य का पतन हो सकता है। इसीलिये वह प्राचीन देवताओं को प्रसन्न रखना अत्यन्त आवश्यक समझता था।

नियन्त्रण—समस्त साम्राज्य को अपने नियन्त्रण में रखने के लिये उसने रोम के साम्राज्य को चार भागों में विभाजित किया था—

पहला प्रदेश थ्रेस, एशिया के प्रान्त और मिस्र आदि से युक्त था। इसकी राजधानी निकोमीडिया थी। यहाँ राजा स्वयं निवास करता था।

दूसरे प्रदेश में इटली, स्पेन और अफ्रीका के क्षेत्र सम्मिलित थे। इसकी राजधानी मिलान थी जिसमें सम्राट का प्रतिनिधि मैक्सिमियन रहता था जो अत्यन्त योग्य कर्मचारी था।

तीसरे प्रदेश में बाल्कन प्रायद्वीप तथा डैन्यूब नदी के पास के क्षेत्र सम्मिलित थे। इस क्षेत्र की राजधानी सर्मियस में थी जहाँ सम्राट का प्रतिनिधि गैलेरियस रहता था। गैलेरियस को अपने साथ मिलाए रखने के लिये सम्राट ने अपनी पुत्री का विवाह उसके संग कर दिया था।

चौथे क्षेत्र में साम्राज्य के पश्चिमी प्रांत सम्मिलित थे। इसके ट्रव्ज नामक नगर में सम्राट का प्रतिनिधि कांस्टैन्टियस रहता था जो एक महान सेना नायक और योग्य कूटनीतिज्ञ था।

इन राजधानियों के बन जाने के कारण रोम नगर की महत्ता पर बुरा असर पड़ा और वहां की समृद्धि समाप्त होने लगी। सम्राट अपने शासन-काल के अन्तिम वर्ष में केवल एक बार जुबली समारोह में सम्मिलित होने के लिये रोम गया था। फिर भी यह कहा जा सकता है कि प्रान्तों के इस विभाजन के कारण शासन-सूत्र अत्यन्त दृढ़ हुये। सम्राट को समस्त शासन-सम्बन्धी नीतियों के निर्धारण का अधिकार और सुधारों की रूपरेखा का अधिकार प्राप्त था। अपने कर्मचारियों द्वारा वह प्रत्येक प्रान्त का निरीक्षण करवाता था। इसी कारण उसने साम्राज्य के आन्तरिक विद्रोहों का दमन किया। सन् 296 ई० में एचिलिस नामक व्यक्ति ने मिस्र में विद्रोह किया और अपने को स्वयं सम्राट घोषित करने का प्रयत्न किया। सम्राट ने बड़ी क्रूरता से विद्रोह का दमन किया और एचिलिस के साथियों को कड़ा दण्ड दिया। केवल इतना ही नहीं सभी क्षेत्रों में ग्रहयुद्ध उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों का अन्त कर दिया गया।

सैनिक सुधार—डिओक्लिशियन के सैनिक-सुधार भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। उसके शासन-काल में सैनिकों की संख्या पचास लाख थी जो पचास टुकड़ियों में विभाजित थे और हर प्रान्त में कम से कम दो टुकड़ियाँ मौजूद थीं। सीमावर्ती क्षेत्रों में भी पर्याप्त सेना नियुक्ति की गई। इन प्रदेशों की सुरक्षा के लिये एक शक्तिशाली चल सेना की भी नियुक्ति हुई जिसे 'कनिटाटेन्सेज' कहते थे। जहां आवश्यकता होती थी यह सेना शीघ्रता से जा सकती थी। नागरिकों को सेना में भर्ती होना अनिवार्य था।

प्रादेशिक शासन—प्रदेशों के शासन को दृढ़ रखने के लिये उसने नये-नये कानून बनाए और गुप्तचर विभाग की व्यवस्था की। सम्राट को अपनी नई राजधानी निकोमीडिया से बहुत प्रेम था इसी कारण वहाँ एक राजभवन बनवाया गया। अपनी स्त्री और पुत्री के लिये भी उसने अलग-अलग भवन बनवाये। अन्य नगरों को उसने भी सुन्दर रूप देने की चेष्टा की तथा टूटी-फूटी इमारतों का सुधार किया। प्रत्येक नागरिक को हर पाँचवें वर्ष एक विशेष प्रकार की भेंट सम्राटों को देनी पड़ती था। शासन की आय को बढ़ाने के लिये उसने करों की संख्या बढ़ा दी और कृषकों के अतिरिक्त व्यवसायिनों, दुकानदारों और सौदागरों आदि पर भी कर लगाये गये। बड़े-बड़े भूपतियों का भी एक विशेष प्रकार का कर देना पड़ता था

जिसे 'कैलेशियो लेबिलिस' कहते थे। पुत्र को पिता का ही व्यवसाय करना पड़ता था। उसकी दृष्टि में राज्य का हित नागरिक के हित से बढ़कर था।

अन्य सुधार—कृषि योग्य भूमि का नवीन लेखा तैयार कराया गया और भूमि की उपज के अनुसार उनका वर्गीकरण किया गया तथा कर निर्धारित किए गए। करों को वसूल करने के लिए कर्मचारी जनता पर अधिक से अधिक सख्ती कर सकते थे। किसी को भी शासन की आलोचना करने का अधिकार नहीं था।

301 ई० में उसने एडिक्ट आफ प्राइजेस नाम की राजाज्ञा की घोषणा की। इस आज्ञा के अनुसार वस्तुओं का विक्रय-मूल्य निर्धारित किया गया और जो सौदागर निर्धारित मूल्य से अधिक मूल्य पर वस्तु बेचता था उसे कठोर दण्ड दिया जाता था। श्रमिकों का वेतन भी निश्चित किया गया।

देहावसान 303 ई० में, 20 वर्ष शासन करने के उपरान्त सम्राट का जुबली समारोह मनाया गया। इस समय सम्राट काफी बूढ़ा और कमजोर हो चुका था। दो वर्ष तक शासन करने पर उसने यही उचित समझा कि शासन-कार्यों से अवकाश ग्रहण करना अधिक उचित है। इसलिये वह सलोना नामक स्थान में अपने ही बनवाए हुए एक भव्य भवन में चला गया और जीवन का शेष काल बिताने लगा। 11 वर्ष तक शान्तिमय बिताने के उपरान्त उसका अन्त भी इसी स्थान पर 316 ई० में हुआ।

मूल्यांकन—इतिहासकारों ने उसे स्वेच्छाचारी शासक कहकर उसकी नीतियों की कड़ी आलोचना की है परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि रोम-साम्राज्य की रक्षा के लिए उसने महान सेवा की। उसके सुधारों साम्राज्य में नई जान डालने के लिये महत्वपूर्ण सहयोग दिया। जिन विपरीत परिस्थितियों में उसने जर्जरित साम्राज्य को सुसंगठित किया उसके लिए बहुत अधिक प्रशंसा का अधिकारी है। एक लेखक का मत है—"वह रोम का वास्तविक रक्षक था।"

"He was the real protector of Rome."

कांस्टेन्टाइन
(305 ई०—337 ई०)

इसे कांस्टेन्टाइन महान के नाम से पुकारा जाता है। इनकी गणना विश्व के युगान्तकारी महापुरुषों में की जाती है क्योंकि इसने एक नए काल को सूत्रपात किया। यह एक सिपाही का पुत्र था परन्तु डिओक्लिशियन की मृत्यु के उपरान्त जो उत्तराधिकार का युद्ध हुआ उसमें ये सफल हुआ।

उसकी माता का नाम हेलेना था। वह उसके पिता कांस्टोन्टियस की रखैल थी। इसी के गर्भ से निशा नामम स्थान में उसका जन्म हुआ। कालान्तर में उच्च पद प्राप्त करने के उपरान्त इसके पिता ने हेलेना को छोड़ दिया और अन्त में थिओ-

डोरा नामक महिला से विवाह कर लिया। सौतेली माता का व्यवहार उसके साथ अच्छा न था तथा पिता भी उसकी उपेक्षा करता था। इसी कारण वह अधिक पढ़-लिख नहीं सका। यूनानी भाषा भी वह कठिनाई से बोल पाता था। अपने अध्यवसाय और दृढ़-संकल्प के कारण वह डिओक्लिशियन के दरबार में प्रवेश पा गया और बड़ी कठिनाइयों से उन्नत पद पर अग्रसर हुआ।

व्यवहार—डिओक्लिशियन की भाँति उसने भी निरंकुश नीति का पूरे तौर से अवलम्बन किया। उसके दरबार में शिष्टाचार के पूर्वी आदर्शों का पालन होता था। राजा को सर्वोच्च व्यक्ति मानकर उसका अनुकरण करना, उसके सामने शीश झुकाना सबका कर्त्तव्य था। सेनेट के समस्त अधिकार उसने समाप्त कर दिये थे। दण्डाधीशों की नियुक्ति सम्राट स्वयम् करता था और उन्हें सम्राट की कृपा पर निर्भर रहना पड़ता था। दीवानी और सैनिक शासन को पूर्णतया अलग कर दिया। राजा कर्मचारियों को अपनी इच्छा के अनुसार पदच्युत कर सकता था।

शासन सुधार—उसने डिओक्लिशियन के समय के साम्राज्य विभाजन के भागों को और प्रान्तों पर कठोर नियन्त्रण को यथावत जारी रक्खा। केन्द्र के कर्मचारियों की संख्या और अधिकार बढ़ा दिये गये। क्वेस्टर नामक कर्मचारी के अधिकारों को उसने बहुत अधिक बढ़ा दिया। यह पदाधिकारी सम्राज का परम भक्त और आज्ञापालक था। सम्राट की समस्त आज्ञाएँ और कानूनों की घोषणा इसी पदाधिकारी द्वारा होती थी। ईरान के दरबारों की भाँति इसके दरबार में भी सुन्दर स्त्रियों और हिजड़ों का प्रभाव बढ़ने लगा और वे राजमहल के आन्तरिक षड्यन्त्रों में भी भाग लेने लगे। चारों ओर गुप्तचरों की संख्या बढ़ा दी गई और साधारण से सन्देह पर लोगों को कड़ी सजा और कभी-कभी मृत्यु-दण्ड भी दिया जाता था। राज-परिवार के सेवकों अर्थात् रसोइये, सईस और दास-दासियों आदि का खर्चा बहुत बढ़ा दिया गया। सम्राट प्रायः उन सभी व्यक्तियों को मरवा डालता था जिनकी उत्तराधिकार के लिए उसके पुत्रों का विरोध करने की सम्भावना होती थी। उसने अपने ससुर मेक्समियन को आत्म-हत्या करने के लिए मजबूर किया और बहनोई को मरवा डाला। अपनी पत्नी फास्ता और पुत्र क्रिस्पस को भी उसने मृत्यु-दण्ड की सजा दी। कांस्टैन्टाइन प्राचीन रूढ़ियों के परिवर्तन के पक्ष में था। अतः आवश्यकता पड़ने पर वह पुरानी राजनीतिक एवं सामाजिक संस्थाओं को भी ठुकरा देता था।

सैनिक सुधार—कान्स्टेन्टाइन ने अपने 21 वर्ष के शासन में सैनिक मर्यादा का बहुत विस्तार किया क्योंकि वह समझता था कि सेना के बल पर ही उसका निरंकुश शासन टिक सकता है। सेना को उच्चकोटि की शिक्षा और अभ्यास दिया गया। यद्यपि सैनिकों की संख्या डिओक्लिशियन काल के समान ही थी परन्तु उसने

एक केन्द्रीय सेना का निर्माण किया जिसमें साम्राज्य के उच्च-कोटि के सैनिक रक्खे गये।

अश्वारोही सेना का सङ्गठन भी सुदृढ़ किया गया जिसमें योरुप की विभिन्न लड़ाकू जातियों के सैनिक सम्मिलित थे। अश्वारोही सेना पैदल सेना से अलग कर दी गई। सुदूर देशों को लड़ाइयों में सहायता पहुँचाने के लिए उसने एक अलग सेना की नियुक्ति की यद्यपि प्राचीन चल सेना में भी बहुत से सुधार किये गए थे। सीमान्त प्रदेशों की रक्षा के लिये और भी बहुत सी छोटी-छोटी सेनाएं रक्खी गईं। इन्हीं सेनाओं के बल पर उसने 328 ई० में अलमनी लोगों का राइन नदी के तट पर परास्त किया और उसके पुत्रों ने गोथ जाति के लोगों को परास्त किया।

अन्य सुधार—कांस्टेन्टाइन ने मुद्रा-नीति में बहुत कठोर नियन्त्रण अपनाया। शुद्ध स्वर्ण और रजत मुद्राएँ निर्मित की गईं जिनके कारण साम्राज्य के सभी क्षेत्रों में एकता स्थापित हुई। सेना और निजी खर्च बढ़ने के कारण उसे कई नए कर लगाने पड़े। कृषकों को तरह-तरह के कर देने पड़ते थे और उन्हें एक ही क्षेत्र में रहकर खेती करनी पड़ती थी। वे अपनी इच्छानुसार कृषि-भूमि परिवर्तित नहीं कर सकते थे। इसका फल यह हुआ कि श्रमजीवी भूपतियों के दास बनने के लिये बाध्य हुये। कुलीन वर्ग की तुलना में गरीब लोगों को अधिक कर देना पड़ता था। अभिजात-वर्ग के लोगों से आय-कर वसूल किया जाने लगा। यद्यपि कान्स्टेंटाइन के युग में बाह्य आक्रमण और आन्तरिक कलह का डर बहुत कम हो गया था परन्तु प्रजा को सुख नहीं था। शासन द्वारा जनता दासत्व की बेड़ियों में जकड़ गई। राज्य कर्मचारियों का बोलबाला हुआ और साधारण जनता निराश एव निरुत्साहित हो गई। इसी कारण कांस्टेन्टाइन का शासन अत्यन्त क्रूर और निरकुश शासन कहलाता था।

धार्मिक नीति

सम्राट ने सबसे बड़ा धार्मिक परिवर्तन यह किया कि ईसाई धर्म को राजधर्म घोषित किया और अपनी राजधानी को वर्जिन मेरी को समर्पित किया। प्राचीन देवताओं की प्रतिमाएँ स्थापित करने और उनकी पूजा आदि पर प्रबन्ध लगा दिया गया। ईसाई धर्म पर विश्वास करने वालों को विशेष प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की गईं। अन्य धर्म वालों के लिये अविवाहित रहना और सन्तानहीन होना दण्डनीय था परन्तु ईसाइयों पर यह नियम लागू नहीं था। सम्राट स्वयम् ईसाई धार्मिक सभाओं और कृत्यों की अध्यक्षता करता था। इसका फल यह हुआ कि गरीब जनता ईसाई धर्म की ओर अधिक झुकने लगी। रविवार को छुट्टी दी जाती थी। गिरजाघरों को राजकोष से धन मिलता था और सम्राट ने लैटरन राज-

प्रासाद को पोप को समर्पित कर दिया। सेण्ट पीटर और सेण्टपाल की स्मृति में दो गिरजाघर बनवाए गए। पुराने गिरजाघरों का जीर्णोद्धार किया गया तथा सम्राट ने पेलेस्टीन को धार्मिक यात्रा की। वहाँ उसने जेरुसलम और बेथलेहम गिरजाघर बनवाए। राजधानी में दो गिरजाघर बनवाए गए—

(1) बारह देवदूतों का गिरजाघर, जिसमें कालान्तर में कान्सेटेन्टाइन का शव दफनाया गया।

(2) चर्च आफ होली विस्डम (Church of wholy wisdom) सम्राट की माता हैलिना विशेष रूप से ईसाई धर्म की ओर आकर्षित हुई। सम्राट गिरजाघरों के झगड़ों का स्वयम् निर्णय करता था। वह गिरजाघरों में संगठन और एकता का पक्ष-पाती था और इसके लिए बल प्रयोग को भी बुरा नहीं समझता था। 315 ई० में उसकी अध्यक्षता में निकाइया की धार्मिक सभा हुई जिसमें 300 विशपों ने भाग लिया था। पूर्वी चर्च के लोग उसको गिनती देवदूतों में करते हैं।

नवीन नगर का निर्माण—सम्राट ने अपने नाम को अमर बनाने के लिये तथा रोम की राजनीतिक प्रधानता को दूर करने के लिए एक नवीन नगर की नींव डाली जिसे कांस्टेन्टिनोपुल कहा जाता है। कालान्तर में उसने अपनी राजधानी रोम से हटाकर यहीं बना दी। इस नगर की भौगोलिक स्थिति साम्राज्य के विकास के लिए अनुकूल थी। इस परिवर्तन से पश्चिमी साम्राज्य और रोम नगर के वैभव को धक्का लगा। ब्रेस्टेड के अनुसार —"इस प्रकार कुस्तुनतूनियाँ के निर्माण से रोम और साम्राज्य के पश्चिमी भूमध्य सागर के देशों का मार्ग अविरुद्ध हो गया।"

"Thus the founding of Constantinope sealed the door of Rome and the western Mediterranean lands of the empire."

अनुकूल प्राकृतिक साधन होने के कारण इस नगर पर बाह्य आक्रमण होने की सम्भावना बहुत कम थी। इसके तीन ओर विशाल सागर था और एक ओर स्थल मार्ग से व्यापार करने में बहुत सुविधा थी। शत्रुओं के लिए यह दुर्गम प्रदेश था। कई शताब्दियों तक यह नगर बाहरी आक्रमणों से बचा रहा और 1453 ई० में पहली बार तुर्कों ने इसे जीता। योरुप और पश्चिमी एशिया के व्यापार के मार्गों का यह केन्द्रीय नगर था। सम्राट के कांन्स्टेन्टाइन ने इस नगर को सुसज्जित करने के लिये सेनेट भवन और सार्वजनिक गृह बनवाये। यद्यपि भाषा, सभ्यता और प्रथाओं के विचार से इस नगर में यूनानी तत्व अधिक था परन्तु सम्राट ने इसको कलात्मक वस्तुओं से सजाने में कोई कसर नहीं उठा रक्खी। एशिया माइनर और यूनान से चित्र लाये गए, एथिना देवी, हेलेन और जियस आदि की मूर्तियों का निर्माण यहाँ के कारीगरों ने किया। यूनान के मन्दिरों से संगमरमर लाकर नगर के भवन सजाए गए। इन भवनों में राजा का महल अत्यन्त आकर्षक था जो लगभग 150 एकड़ क्षेत्रफल में बना हुआ था। यह नगर सात पहाड़ियों पर बना हुआ

था और चौदह खण्डों में विभाजित था। कई इतिहासकारों ने एथेन्स, जेरुसलम और रोम के उपरान्त इसी नगर को चौथा स्थान प्रदान किया है।

उत्तर ऐतिहासिक काल में भी 1453 ई० तक कई साम्राज्यों का राजधानी यही नगर बन गया था। ट्रेवर ने इस नगर की प्रशंसा में लिखा है कि संसार के बहुत कम नगर इतने अधिक महत्वशाली हैं और हस्तलाघव की दुहाई देते हैं।

मृत्यु—कांस्टेन्टाइन की मृत्यु 337 ई० में हुई। उसके उपरान्त लगभग 140 वर्ष तक कई राजाओं ने रोम पर राज्य किया। इनमें जूलियन और थिओडिसियस प्रथम विशेष उल्लेखनीय हैं। इस काल का अन्तिम सम्राट आगस्टलस था जिसे 476 ई० में पद से हटा दिया गया। सांस्कृतिक दृष्टि से इस काल का कोई विशेष महत्व नहीं है क्योंकि निरंकुश शासकों के कारण रचनात्मक प्रतिभा का प्रायः नाश हो गया था और कोई श्रेष्ठ ग्रन्थ अथवा उल्लेखनीय निर्माण नहीं हो सका।

सारांश

रोम के इतिहास में आगस्टस का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। वह 31 ई० पू० में गद्दी पर बैठा। धीरे-धीरे उसने सेनेट के समस्त अधिकारों को ले लिया और निरंकुश शासक बन बैठा। उसने अनेक राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सैनिक सुधार किये। रोम को 265 लघुमन्डलों में बांट दिया, पुलिस की संख्या बढ़ा दी, सेनेट के सदस्यों की नवीन सूची बनवाई और प्रान्तों को दो भागों में विभाजित कर दिया। सामाजिक क्षेत्र में उसने अविवाहित पुरुषों पर कर लगाया, संतानहीनता को निरुत्साहित किया और व्यभिचार को रोका। आर्थिक दशा को सुधारने के लिये भूमिकर और वाणिज्य-कर लगाए। प्राचीन सभी करों को समाप्त कर नवीन करों की व्यवस्था की। उसकी सेना में एक लाख पचास हजार सैनिक थे। उसने सैनिकों के वेतन निश्चित किये और 25 वर्ष तक सेना में कार्य करने वाले दासों को भी रोम की नागरिकता प्रदान कर दी। सेना को तीन कोटियों में विभाजित किये—लिजनरी फोर्स अक्जिलियरी फोर्स और प्रायटोरियन गार्ड। उसने अनेक पुलों, नहरों और मन्दिरों का निर्माण करवाया। टाइबर नदी पर बाँध बनवाया और समुद्री डाकुओं का भय दूर किया। जनहित के कार्यों का पूरा करने के पश्चात् वह अपनी विजय यात्रा पर निकला।

उसके युग में साहित्य की विशेष उन्नतिहुई। इस युग के कवियों में वर्जिल होरे, ऐल्बियस टिबुलस, सेक्सटस प्रार्पटियस और ओविड के नाम प्रमुख हैं। गद्यकारों में लिवि और पाल्यिस का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। इस युग में यूनानी भाषा के भी अनेक ग्रन्थ लिखे गये। इन ग्रन्थकारों में डिओडोरस, डिओनिसियस, निकोलय और स्ट्रेबो आदि मुख्य हैं।

आगस्टस को रोम के देवालयों का निर्माता और पुनरुद्धार कहा जाता है। इस युग के मन्दिरों में कादकार्ड सैटर्न, कैस्टर, जूलियस, जेनस, जुपिटर कैपिटोलिनस

आदि के मन्दिर प्रसिद्ध हैं। उसने रोम को सुन्दर बनाने के लिये संगमरमर का प्रयोग किया। इस युग की मूर्तियों में आगस्टस की अकेली मूर्ति और गाल तथा जर्मनी से लौटते हुये उसके जलूस का चित्र उल्लेखनीय है। इस युग में प्लिनी नाम का एक महान वैज्ञानिक हुआ। आगस्टस काल में सम्राट-पूजा का प्रचलन था, एपिक्यूरियन मत और स्टोइक दर्शन का प्रभाव भी जनता पर पड़ा। निओपाइथा गोरियन मत भी प्रचलित हुआ।

आगस्टस के पश्चात् रोम में थोड़े समय तक शांति रही परन्तु फिर सैनिक शासन का आरम्भ हो गया। जुलिओक्लाडियन, प्लेवियन, ऐंटोनाइट कालों के पश्चात् सैनिक शासन का काल आया। इस काल में सैनिक राजतन्त्र का स्थापना हुई और चारों ओर लूट-पाट के दर्शन हुये।

14 ई० और 205 ई० के मध्य रोम के समस्त शासक स्वेच्छाचारी थे। यह इम्परेटर, सीजर और प्रिंसेप की उपाधियों से विभूषित होते थे। समाज चार वर्गों में विभाजित था अभिजात वर्ग, व्यापारी वर्ग, जनसाधारण और दास। वर्ग विभाजन का आधार धन था। समाज में विलास की मात्रा अधिक थी। इस काल में स्त्रियों की दशा बड़ी शोचनीय थी। उन्हें बहुत नीची दृष्टि से देखा जाता था। स्त्रियों को बेचने की प्रथा प्रचलित थी। आर्थिक दृष्टि से रोम वाले काफी संपन्न थे परन्तु धन का बँटवारा ठीक नहीं था। अमीर और अमीर तथा गरीब और गरीब होते जा रहे थे। इस काल में लैटिन साहित्य का बहुत प्रचलन हुआ। इस युग के साहित्यकारों में सेनेका, पेट्रोनियस, टैनियस आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। हैड्रियन के समय में एथेन्स में एक विश्वविद्यालय की स्थापना की गई। वैज्ञानिक शिक्षा की प्रगति की ओर विशेष ध्यान दिया गया। रोम के वैज्ञानिकों ने यूनानी वैज्ञानिकों का अनुकरण किया। साम्राज्यवादी रोम में 'प्राकृतिक इतिहास' नामक एक पुस्तक का सृजन एलरप्लिनी के सुप्रयासों से हुआ। कला पर भी यूनानी प्रभाव परिलक्षित होता है। रोम के विजय-स्तम्भों का विशेष महत्व है।

284 ई० में उत्तर-रोम साम्राज्य की स्थापना हुई। इस युग में डिओक्लिशियन और कॉस्टेन्टाइन ने अश्वारोही सेना का संगठन सुदृढ़ किया। मुद्रा-नीति में कठोर नियन्त्रण का सहारा लिया। इसने ईसाई धर्म को अपनाया और ईसाइयों को विशेष सुविधाएँ प्रदान कीं। दी गिरजाघर बनवाये और कांस्टेन्टनोपुल नामक एक नवीन नगर का निर्माण करवाया। 337 में उसकी मृत्यु हो गई। इसके पश्चात् लगभग 140 वर्ष तक रोम पर कई राजाओं ने राज्य किया परन्तु इस युग में कोई विशेष सांस्कृतिक उन्नति नहीं हुई। साम्राज्य-काल का अन्तिम सम्राट आगस्टस था जिसे 476 ई० में पद से हटा दिया गया।

———

अध्याय | 28

रोम के धर्म और दर्शन

(ईसाई धर्म का उत्थान)

(RELIGION AND PHILOSOPHY OF ROME)
(PROGRESS OF CHRISTIANITY)

प्रश्न 1—रोम में प्रचलित विभिन्न दर्शनों और धर्मों की विवेचना कीजिये।

Discuss the various religions and philosophies of Rome.

प्रश्न 2—रोम-सामाज्य में ईसाई धर्म की उत्पत्ति एवं प्रसार का संक्षिप्त परिचय दीजिये।

Give a brief account of the origin and expansion of Christianity in the Roman Empire.

दर्शन

दर्शन के क्षेत्र में रोम साम्राज्य की कोई मौलिक देन नहीं है। अधिकतर यूनानी तथा हेलेनिस्टिक सिद्धान्तों का प्रचार रोम में हुआ। इनके प्रचार की भाषा लैटिन थी। मुख्य रूप से चार विचारधाराओं का प्रचार रोम साम्राज्य में हुआ—

(1) निओ-पाइथागोरियन मत

(2) स्टोइक मत

(3) निओ-प्लेटोनिक मत

(4) एपीक्यूरियन मत

(1) निओ-पाइथागोरियन मत—इस दर्शन में यूनानी और पूर्वी विचारों का समन्वय है। इनका विश्वास था कि जीवन-मरण का चक्र अवश्यम्भावी है परन्तु आत्मा और परमात्मा स्थायी सत्य हैं। विश्व पदार्थों और तत्वों में विभाजित है आत्मा में दो प्रकार की योनियां होती हैं—

(1) देव-योनि

(2) पिशाच-योनि

देव-योनि व्यक्ति को ज्ञान और बुद्धि देती है। पिशाच योनियाँ मनुष्य को पीड़ा पहुँचाती हैं। इस दर्शन के पोषक साधु जीवन, चमत्कारों, शकुनों और अपशकुनों में विश्वास करते थे। प्रारम्भ में पोसीडोनियस के प्रभाव से सिसरों के ऊपर इस दर्शन का गहरा असर पड़ा। इस दर्शन के मनाने वाले गाँवों और नगरों में घूम-घूमकर प्रचार करते थे। रोम के अन्य दार्शनिकों पर भी इस दर्शन का गहरा प्रभाव पड़ा।

(2) स्टोइक मत—आरम्भिक अवस्था में जनता ने इसका विरोध किया परन्तु साम्राज्य-युग में इस दर्शन को राज्य का संरक्षण मिला और पहली शताब्दी के अन्त तक बहुतांश में इसका प्रचार रोम में हो गया। रोम निवासी इसे केवल दर्शन ही नहीं बल्कि धर्म भी मानते थे। मारकस और आरेलियस सम्राट ने सर्वप्रथम इस दर्मन को प्रोत्साहन दिया। सैनिकों ने भी इस सिद्धान्त का समर्थन किया।

स्टोइक मत के अनुसार मनुष्य को प्रकृति से दूर न रहने का प्रयत्न करना चाहिये अर्थात् भव्य भवनों में निवास, अत्यन्त सुखदायी सेज, गर्मियों में कमरों को ठंडा रखना और जाड़े में गर्म रखना प्राकृतिक नियमों के अनुकूल नहीं है। एपिक्टेटस ने इस दर्शन का प्रचार रोम नगर में किया और उनके अनुयायियों ने उसकी शिक्षाओं को पुस्तकाकार रूप दिया। इस ग्रन्थ का असर ईसाइयों पर भी पड़ा। इस दर्शन के मूल सिद्धान्त प्रकृति पर आधारित थे। संसार प्राकृतिक नियमों के अनुसार पर चलता है, ईश्वर समस्त संसार का पालनकर्त्ता और नियन्त्रक है। मनुष्य का यह धर्म है कि वह अपने में संयम,उत्साह, न्याय, विवेक. दृढ़ता आदि अच्छे गुणों को जागृत करे। नागरिक को आडम्बरपूर्ण जीवन नहीं व्यतीत करना चाहिये तथा उसमें दया और उदारता की भावना सर्वोपरि होनी चाहिये। इस सिद्धान्त के अनुसार सम्मानित जीवन के लिए आर्थिक स्वतन्त्रता की आवश्यकता है और खेती तथा अध्यापन का कार्य सबसे ऊँचा जीविका का साधन है। शिक्षा का उद्देश्य भाई-चारे की भावना का विकास करना और स्वार्थ भावना का परित्याग करना है। स्वार्थ के कारण द्वेष और अशांति की उत्पत्ति होती है।

(3) निओ-प्लेटोनिक मत :- इस मत का जन्मदाता एमोनियस सैकास सिकन्दरिया में जहाज का कर्मचारी था और इसका प्रमुख उन्नायक प्लोटिनस था जो मिस्र में निवास करता था परन्तु आगे चलकर रोम में रहने लगा। इस दर्शन में प्लेटो और अरस्तू की विचारधाराओं पर पूर्वी विचारों की छाप है।

इस मत के अनुसार धर्म में अविश्वास पाप है। लेखनी और वाणी का कर्त्तव्य है कि वह ईश्वर की सत्ता को सिद्ध करे, परन्तु ईश्वर की सत्ता केवल अनुभूतियों द्वारा ही मानी जा सकती है।

(4) एपीक्यूरियन मत :- इस मत के अनुयायी भाई-चारे में विश्वास करते थे और कोई ऐसा काम करना उचित नहीं समझते थे जिससे दूसरों की मानसिक शान्ति में बाधा पड़े। रोम में सबसे पहले ल्यूक्रिटस ने इसका प्रचार किया। राजनीतिक झगड़ों से दूर रहने की इच्छा रखने वाले धनी व्यक्तियों ने इस दर्शन को अपनाया।

धर्म

रोम-साम्राज्य अत्यन्त विस्तृत था और वहाँ कई भाषाओं के बोलने वाले और कई जातियों के लोग निवास करते थे। इन सबमें धार्मिक विभिन्नता होते हुये भी राज्य के प्रति भक्ति का सामान्य गुण था। यही कारण था कि इतने बड़े साम्राज्य में कभी जाति और राष्ट्र के प्रश्नों को लेकर संघर्ष नहीं हुआ। भाषा के प्रश्न पर भी कभी संघर्ष नहीं हुआ यद्यपि साम्राज्य के पश्चिमी भाग में लैटिन और पूर्वी भाग में ग्रीक भाषा बोली जाती थी। सभी व्यक्ति कुछ बातों में समान रूप से विश्वास करते थे। सारे साम्राज्य में सम्राट की पूजा होती थी और यह माना जाता था कि रोम गणतन्त्र का विनाश देवताओं के अभिशाप के कारण हुआ और आगस्टस ने साम्राज्य की स्थापना देवताओं के वरदान से की। इस युग में जुपिटर और मार्स प्रधान देवता माने जाते थे उनके मन्दिर कई स्थानों पर थे और पुजारियों को राज्य की ओर से विशेष प्रकार की सुविधाएँ मिली हुई थीं। यह लोग ज्योतिष में भी विश्वास करते थे। ज्योतिष का फार्मिकस मैटर्नस देव विद्या मानता है और टालमी ने मनुष्य के जीवन पर नक्षत्रों के असर को स्वीकार किया है। उसके अनुसार जूपिटर का प्रभाव फेफड़े और पुरुषेन्द्रिय पर होता है, चन्द्रमा का प्रभाव उदर, जिह्वा और स्त्रियों की जनेन्द्रिय पर होता है, मार्स का प्रभाव कान, गुर्दे और शिराओं पर होता है। सूर्य का असर हृदय, नेत्र, स्नायुयों और मस्तिष्क पर होता है।

जनता के धार्मिक जीवन में अन्ध-विश्वास, जादू-टोने और नग एवं मणियों के प्रभाव का भी स्थान था। जब कोई सप मनुष्य को काट लेता था तो उसके उपचार के लिये अनुष्ठान किए जाते थे। पुजारी झाड़-फूँक करते थे। इतिहास से पता चलता है कि जूलियर सीजर प्रस्थान करन के पूर्व तीन बार एक विशेष प्रकार क मन्त्र का उच्चारण करता था। ईसा से दो शताब्दी पूव रोम निवासियों के इस धार्मिक जीवन में परिवर्तन होने लगा और ईरान, मिस्र तथा अन्य पूर्वी देशों के धर्म भी रोम में अपना स्थान बना रहे थे। उदाहरण के लिये ईसा से दो सौ वर्ष पूर्व रोम में आइसस नाम की मातृ देवी की पूजा हाने लगी थी। रोम की मुद्राओं पर भी इस देवी की आकृति मिलती है। इस देवी का आशीर्वाद सुख देने वाला और श्राप दुःख

का कारण माना जाता था। प्रथम शताब्दी में ई० पू० में ही रोम में सर्पिस की भी पूजा होने लगी थी। कहा जाता है कि जब किलग्रोपात्रा रोम पहुँची थी तब जूलियर सीजर ने सर्पिस की आराधना थी। कालिगुला के समय में भी इसकी पूजा और अनुष्ठान आदि होते थे।

यहूदी धर्म—ईसा से दो शताब्दी पूर्व यहूदी लोगों ने रोम में आने का प्रयत्न किया था परन्तु उस समय वे लोग भगा दिये गये थे। कालान्तर में उन्होंने इस नगर में पुनः प्रवेश किया। प्रथम शताब्दी में बहुत से नगरों में यहूदियों के अनुष्ठान हुआ करते थे। जनता ने इनके एकेश्वरवाद का स्वागत किया और रोम के कुछ उच्च वर्ग के लोग इस धर्म के अनुयायी हो गए। एक लेखक ने लिखा है कि नीरो और उसकी प्रेमिका पोपिया को भी इस धर्म से श्रद्धा थी।

ग्नास्टिक धर्म—यह धर्म तत्कालीन कई धर्मों और दार्शनिक विचार-धाराओं के संयोग से बना था। इसकी बहुत सी शाखाएँ और उपशाखाएँ थीं। इस धर्म का आरम्भ ईसा से पूर्व दूसरी शताब्दी में हुआ था परन्तु चार सौ वर्ष में यह धर्म पूर्वी भूमध्यसागर के क्षेत्रों में प्रधान रूप से फैल गया। इस धर्म के प्रवर्तकों को यह विश्वास था कि उन्हें यह धर्म देवताओं की प्रेरणा से प्राप्त हुआ है। इस धर्म के लगभग 30 शाखाओं के नाम इतिहासकारों को ज्ञात हुये हैं। इस धर्म का सबसे बड़ा आचार्य वेलेन्टियस माना जाता है। इस धर्म के मानने वाले आत्मा को अजर, अमर, लौकिक-जीवन को तत्वहीन, विषयों में आशक्ति को दुखदायी मानते थे और मुक्ति में तथा स्वर्ग नरक में विश्वास करते थे। बहुत से विद्वानों ने इस धर्म के सिद्धान्तों को लेखनीबद्ध किया और सभी का विश्वास था कि ईश्वर की इच्छा के कारण उनमें लिखने की प्रेरणा उत्पन्न हुई है।

मिस्र धर्म—यह जरथुस्ट्र धर्म की एक महत्वपूर्ण शाखा है। पश्चिमी एशिया में जब रोम के सेनानी पहुँचे तो वे इस धर्म से प्रभावित हुए और कालान्तर में एशिया के सैनिक के विभागों में इस धर्म के बहुत से अनुयायी बन गए। इस धर्म का विशिष्ट केन्द्र एशिया माइनर था जहाँ से बहुत से दास पकड़कर रोम लाए गए थे और अपने मालिकों के घरों में उन्होंने इस धर्म को पहुँचाया। व्यापारियों और साइलेशियन डाकुओं ने भी परोक्ष रूप से इस धर्म के प्रचार में सहायता दी।

रोम के निवासियों ने इस धर्म को उसकी कतिपय विशेषताओं के कारण स्वीकार किया। मिस्र देवता रक्षा और प्रकाश का देने वाला था इसीलिये रोम के सैनिकों ने इस धर्म को अपनाया और धीरे-धीरे समस्त मध्य-योरुप और तटवर्ती उत्तर अफ्रीका के देशों में यह धर्म फैल गया तथा ईसाई धर्म का प्रमुख प्रतिद्वन्दी सिद्ध हुआ। इस धर्म के प्रतीक पके हुये गेहूँ की बाली, सूर्य और बैल माने जाते थे। अवेस्ता के अनुसार

अहूर-मज्दा ने बैल को बनाया था और जब बैल मरा तब पशुओं और वनस्पतियों का जन्म हुआ। पुरातत्व के खोजकों ने बहुत सी मूर्तियाँ और लेख इस धर्म से सम्बन्धित प्राप्त किये हैं।

जरथुस्ट्र के धर्म और मिस्र धर्म में काफी मेल-जोल हो गया था। मिस्र धर्म के मानने वाले भी सूर्य की ओर मुँह करके अथवा जलते हुये प्रकाश की ओर मुँह करके मन्त्र-पाठ करते थे और अग्नि की पूजा करते थे। आत्मा की अमरता में उनका विश्वास था और आचरण की पवित्रता मन, वचन की शुद्धता, भक्ति सच्चाई और सच्चरित्र को महत्व देते थे। उनका यह भी विश्वास था कि मनुष्य को अगले जन्म में अपने पिछले भले-बुरे कार्यों का फल मिलता है। रोम में एकेश्वरवाद का प्रचार इसी धर्म के कारण हुआ। आज भी रोम की बहुत-सी परम्पराएँ इसी धर्म का प्रभाव हैं जैसे नक्षत्रों के नाम पर दिनों के नाम और 25 दिसम्बर सुरक्षा देवता की तिथि मानना।

ईसाई धर्म

ईसाई धर्म के आरम्भ होने के पूर्व मानव-समुदाय का भौतिक स्तर बहुत गिरा हुआ था। मनुष्यों को अपने विचार स्वतन्त्रतापूर्वक प्रगट करने का अधिकार नहीं था। मूर्तियों की पूजा होती थी और सम्राट की पूजा की जाती थी। ईसाई धर्म में दैवीय कल्याण की मंगलमयी कामना थी। इसी कारण यह धर्म संसार भर में प्रसिद्ध हुआ और इसने योरोपीय समाज के अन्ध-विश्वासों को दूर किया। प्रो० बर्न्स का मत है— "ईसाइयों का आचार शास्त्र और अन्तरिक्ष विषयक ज्ञान केवल पारलौकिक आधार पर नहीं था, ईसाई लोग भी मानते थे कि जीवन का वास्तविक उद्देश्य आत्मा को मोक्ष प्राप्त करना है जिससे वह अमर हो सके और नरक की यातनाओं से बच सके।"

ईसाई धर्म का आरम्भ—इस धर्म के आरम्भ के विषय में प्रोफेसर शाटवेल (Shotwell) का मत है – "इस विचार से बढ़कर विचारों के इतिहास में कोई विचार नहीं है कि मजदूरों, विचारकों, कलाविदों, दार्शनिकों, कवियों और राजनीतिज्ञों ने संसार त्याग को देव दूतों की वाणी के आधीन कर दिया।"

ईसा मसीह को इस धर्म का प्रवर्तक माना जाता है परन्तु इस धर्म की मूल शिक्षाओं में हिब्रू धर्म की अमंगलदायक शिक्षाएँ ज्यों की त्यों वर्तमान हैं। सारा ईसाई संसार ईसा को ईश्वर का अवतार मानता है। परन्तु ईसा रोम साम्राज्य में उत्पन्न हुये थे। जब इनका जन्म हुआ, आगस्टस रोम का सम्राट था। इनके माता-पिता का नाम मरियम और यूसुफ था जो जुड़िया के एक छोटे से ग्राम में रहते थे। ईसा के माता-पिता बढ़ईगीरी करके अपना जीवन-यापन करते थे। जाति क्रम से

ईसा भी यहूदी थे। रोम निवासियों का यहूदियों के प्रति दासों का सा व्यवहार था। अपने सहवर्गियों को आनन्द की झलक दिखाने के लिये ही एक महान सन्त का जन्म हुआ था। उसका नाम जान दी बैप्टिस्ट था। उन्होंने मानव-समाज को सत्यं, शिवं सुन्दरं का मार्ग बताने के लिये कई स्थानों पर भाषण दिये। तत्कालीन शासकों ने इसे अपना अपमान समझा और यहूदी शासक हैराड ने सन्त जान दी बैप्टिस्ट की हत्या करवा दी। इस प्रकार यद्यपि प्रगति का प्रयत्न रुक गया परन्तु सांस्कृतिक चेतना बनी रही और उसी का गहरा असर महात्मा ईसा पर पड़ा। ईसा ने शोषित मानव-जाति का मूल्य समझा और सब प्रकार के संकटों का सामना बड़ी दृढ़ता से किया। उन्होंने विभिन्न स्थानों पर यात्रा करके अपनी अमृतमय मंगलवाणी से जनता को उपदेश देना आरम्भ किया। पुजारियों, शासकों और धनिक वर्ग ने ईसा को संदेहयुक्त दृष्टि से देखा तथा जनता में उनका स्वस्तिवादन करने लगी। तत्कालीन रोम सम्राट ने ईसा का नवयुवकों को भड़काने तथा सम्राट के प्रति विद्रोह का दोष लगाया और उन्हें राजद्रोह के अपराध में सूली पर चढ़ा दिया गया। ईसा मरकर भी अमर हुए और उनकी मृत्यु के बाद उनके शिष्यों ने यह कथा फैलाई कि ईसा मृत्यु के तीन दिन बाद कब्र से निकल आए हैं।

मुख्य सिद्धान्त—ईसा मसीह ने जनता को मानव-प्रेम का सन्देश दिया और समाज में प्रचलित अन्य-विश्वासों तथा पारस्परिक भेद-भावों को मिटाने में बहुत सफलता प्राप्त की। वह गरीबों की दुखभरी पुकारा को दैवीय प्रेम और वात्सल्य से शान्ति करना चाहते थे। उन्होंने 'स्वर्ग का राज्य' नामक सिद्धान्त इसी उद्देश्य से प्रतिपादित किया। उनका विश्वास था कि ईश्वर सब मनुष्यों के साथ प्रेम और दया का व्यवहार करता है, सभी मनुष्य उसकी सन्तान हैं। जो ईश्वर के इन गुणों को समझता है वही ईश्वर का दर्शन प्राप्त करता है। इससे सिद्ध होता है कि ईसा की धार्मिक शिक्षा में उपेक्षित मानव समाज के लिए अपार प्रेम भरा हुआ था। उन्होंने धन-संग्रह को बात को बुरा बताया, धनवानों की निन्दा की, बाहरी आडम्बरों से घृणा की और आत्म-शुद्धि पर बल दिया। उनकी इस शिक्षा का आधार-भूमि तत्कालीन सम्राटों और धनिक वर्ग का दासों के प्रति अत्याचार था। रोमन साम्राज्य में ईसाइयों पर नाना प्रकार के अत्याचार किए गए परन्तु धार्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना का धारा प्रवाह कोई न रोक सका। इस धर्म के कुछ प्रमुख सिद्धांत निम्नलिखित थे—

(1) अपने शत्रुओं से प्रेम करो।

(2) जो तुम्हें ताड़ना दे उसकी भलाई के लिए ईश्वर से प्रार्थना करो।

(3) जो तुमसे घृणा करे उसे हृदय से लगाने का प्रयत्न करो।

सप्त संस्कार

ईसाई धर्म के प्रवर्तकों ने समय-समय पर संस्कारों का समावेश करके धर्म की मनोवृत्त को पूर्ण करने का प्रयास किया है। अनेक सन्तों और कर्मठ-भक्तों के अथक परिश्रम द्वारा 12वीं शताब्दी तक इन संस्कारों का पूर्ण विकास होता रहा। सत संस्कार निम्नलिखित थे -

(1) नामकरण
(2) प्रमाणीकरण
(3) पाणिग्रहण
(4) आर्डीनेशन
(5) तप
6) अतिशय-अभिषेक
(7) निर्वाण

(1) नामकरण – ईसाई धर्म में सम्मिलित करने के लिए सर्वप्रथम यह संस्करण किया जाता है और ईसाइयों का विश्वास है कि इस संस्कार के सम्पूर्ण होने पर ईसाई अपने पूर्व-जन्म के पापों से मोक्ष पा जाता है।

(2) प्रमाणीकरण—12 वर्ष की अवस्था होने पर बालक का यह संस्कार किया जाता है और इस समय सार्वजनिक रूप से बच्चे का नाम घोषित किया जाता है। यदि यह संस्कार न हो तो किसी भी व्यक्ति को चर्च सहयोग प्रदान करने से मना कर सकता है।

(3) पाणिग्रहण—इस संस्कार द्वारा युवक और युवती प्रणय बन्धन में बँधते हैं और सन्तानोत्पत्ति की इच्छा से सांसारिक जीवन को रसमय बनाते हैं। प्राचीन काल में यह बन्धन तोड़ा नहीं जा सकता था परन्तु अब नवीन विधान के अनुसार पति-पत्नी का सम्बन्ध विच्छेद हो सकता है।

(4) आर्डीनेशन—इस संस्कार द्वारा बिशप पुरोहित के अधिकार को किसी भी योग्य व्यक्ति को दे सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि ईश्वर की कृपा से जनता का सहयोग धर्म को प्राप्त हो सके।

(5) तप—इस संस्कार का मुख्य तत्व प्रायश्चित है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने हृदय को शुद्ध कर सकता है और इस क्रिया से व्यक्ति को आत्मा की सफलता की आशा पर विश्वास हो जाता है।

(6) अतिशय-अभिषेक – यह संस्कार अधिकतर मरणासन्न व्यक्तियों का किया जाता है। उस व्यक्ति को स्नान कराया जाता है। ईसाइयों का विश्वास है कि

मनुष्य के सभी पाप स्नान द्वारा दूर हो सकते हैं और अन्त में उसे नैसर्गिक सुख की अनुभूति होती है।

निर्वाण—यह ईसाई धर्म का अन्तिम संस्कार है। मनुष्य के मरने पर उसकी दिवंगत आत्मा की शान्ति के लिए पादरी ईश्वर की आराधना करता है।

इसी प्रकार के साधनों के द्वारा ईसाई धर्म की नींव मजबूत होती गई और वह आपस के झगड़ों से तथा विपक्षियों को आलोचनाओं को शान्त कर सका।

धार्मिक विश्वास

(1) प्रत्येक ईसाई ईश्वर के तीन रूपों में पूर्ण विश्वास करता है, अर्थात् ईश्वर सारे संसार का पिता, पालनकर्ता और मुक्तिदाता है।

(2) ईसाइयों का यह दृढ़ विश्वास है कि इस संसार में ईश्वर ने ईसा मसीह के रूप में अवतार लिया था।

(3) ईसाई मानव-जीवन के विषय में यह विश्वास करते हैं कि आदि मानव ने कुछ ईश्वरीय आज्ञाओं का उल्लंघन किया था इसी कारण मानव-जाति को ईश्वर का साहचर्य बिना प्रयत्न के नहीं प्राप्त होता।

(4) ईसाइयों का विश्वास है कि ईसा मसीह पूर्ण ईश्वर होते हुए भी संसार में मनुष्य रूप से आए और मनुष्यों में भी वे पूर्ण व्यक्ति कहलाए तथा मानव समाज का उद्धार करने के लिये ही वे फाँसी पर चढ़ गये।

(5) ईसाई मोक्ष प्राप्ति को धार्मिकता की चरम सीमा समझते हैं और बिना ईश्वर के सहयोग के मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता।

(6) ईसाई पुनर्जन्म और प्रलय में भी विश्वास करते हैं। उनका विश्वास है कि जब प्रलय होगी तब ईसा फिर संसार में आवेंगे और मृतकों के कार्यों की परीक्षा करेंगे तथा उनके पाप-कर्मों पर निर्णय देंगे।

(7) ईसाई धर्म में चर्च का बडा महत्व है। ये लोग चर्च को मानव और ईश्वर के बीच की कड़ी समझते हैं और चर्च के ही द्वारा ईश्वर का सम्पर्क मनुष्य को मिलता है।

(8) ईसाई धर्म के सिद्धान्त और विश्वास कई शताब्दियों तक संशोधित और परिवर्धित होते रहे हैं और ज्यों-ज्यों अनुयायियों की संख्या बढ़ती गई संस्कारों और धर्म के मान्य सिद्धांतों को लेकर शिष्यों में विरोधाभास की भावना की अभिवृद्धि हुई और विभिन्न शाखाओं के अनुयायी एक दूसरे की आलोचना-प्रत्यालोचना करने लगे। आलोचक अनुयायी दो श्रेणियों मे विभाजित हो गए—

(1) बुद्धिवादी दल

(2) भाववादी दल

बुद्धिवादी दल के लोग पुरातन और रूढ़िवादी सिद्धांतों की आलोचना करते थे। उनका कथन था कि एक ही व्यक्ति मानव और परमात्मा अर्थात् पुत्र और पिता नहीं हो सकता। वे महात्मा ईसा को केवल धर्म-प्रचारक मानते थे।

भाववादी दल के लोग रहस्यवाद और तपोप्रधान जीवन में विश्वास करते थे और ईसा को ईश्वर से भिन्न नहीं मानते थे। उनका कथन था कि धर्म के रहस्यमय सिद्धांतों में तर्क-वितर्क नहीं करना चाहिये।

ईसाई धर्म का प्रसार

प्रसार का प्रथम चरण—प्रथम शताब्दी में इस धर्म के प्रसार का वास्तविक श्रेय पीटर, पाल और जान आदि प्रचारकों को है। इन सबको ईसामसीह के पुनः आगमन पर पूर्ण विश्वास था और उनका विचार था कि पृथ्वी पर स्वर्ग के निर्माण के लिये ही ईसामसीह का पुनः अवतार होगा। इन्होंने इस धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार यहूदी वर्ग मे किया। इन सिद्धान्तों में मानव की शान्ति का सन्देश निहित था। प्रखर बुद्धिवादी दर्शन, उदात्त विचारों और भोगमयी कामनाओं से विहित ईसा की यह शिक्षाएँ सरलतापूर्वक जनता में मान्य हुई। ईसा के बलिदान ने धार्मिक प्रसार को और भी सरल बना दिया। सेन्टपीटर के नेतृत्व में ईसाई धर्म के मानने वालों की संख्या बढ़ चली और इसी कारण बैपतिस्मा नामक संस्कार का आरम्भ किया गया। सन्त पाल ने ईसा की मुख्य शिक्षाओं की बुद्धिमतापूर्ण समीक्षा की और इस धर्म को चिरन्तन तथा सर्वजनीन बनाने का प्रयास किया। सन्त पाल के कारण रोम साम्राज्य में ईसाई धर्म की जड़ जम गई। ईसा को लोग मुक्तिदाता और मोक्षदाता मानने लगे।

जान नामक प्रचारक ने सन्देश दिया कि पृथ्वी पर ईश्वरीय राज्य के पहले दानवों के राज्य की स्थापना होगी। उसने नीरो के शासन को दानव का शासन घोषित किया और रोम को भ्रष्टाचार का केन्द्र-बिन्दु बतलाया।

द्वितीय चरण—रोम के धनी निवासियों ने ईसाई धर्म का कड़ा विरोध किया परन्तु यह धर्म साम्राज्य के विभिन्न भागों में बड़ी तेजी से फैला। मार्क्स आरेलियस के अनुसार यह पूर्व का सबसे व्यापक धर्म बन रहा था तथा अफ्रीका और इटली में यह मिस्र के धर्म का प्रतिद्वन्दी बन गया था।

तृतीय अवस्था - इस अवस्था को रोम में ईसाई धर्म की विजय का काल माना जाता है। सम्राट कांस्टेन्टाइन ने इस धर्म के प्रति सहिष्णुता दिखलाई और इस धर्म को राजधर्म के रूप में मान्यता प्रदान की। कुछ कानून इस धर्म के हित में बनाए गए और बिशपों को न्यायालयों में स्थान दिया गया। 325 ई० में उसने ईसाइयों की

एक धार्मिक सभा बुलाई तथा कई गिरजाघरों का निर्माण करवाया। सम्राट स्वयं धार्मिक यात्रा के लिए भी गया।

ईसाई धर्म और चर्च

आरम्भिक अवस्था में ईसाइयों का कोई धार्मिक संस्थान नहीं था। सब ईसाई किसी एक सामान्य स्थल पर इकट्ठा होकर धर्म की चर्चा किया करते थे। उपस्थित जनता वयोवृद्ध ईसाइयों के प्रवचनों को अत्यन्त निष्ठा से सुनती थी। धीरे-धीरे उन्हीं स्थानों पर चर्च बनाये गये। प्रोफेसर बर्न्स के अनुसार—"ईसाई सम्प्रदाय का निर्माण मध्य युग की सबसे बड़ी रचना थी··· उसका आरम्भ साधारण था और अनियमित था और प्राय: दया तथा पूजा की आवश्यकताओं की पूर्ति तक स्थानीय अनुयायियों के छोटे-छोटे संस्थानों तक सीमित रहा।"

"The growth of Christian organisation was one of the most important developments of the whole medieval era. "······Its origins were very simple and informal and revolved chiefly about the necessities of worship and charity among small badies of local believers-"

—Burns.

चर्चों के साथ-साथ अन्य पूजा-गृहों का भी निर्माण होने लगा तथा पुजारियों की भी श्रेणियाँ बनने लगीं। पुजारियों के समूह से चर्च के विकास को और भी सरलता मिली। चर्चों का निर्माण निम्नलिखित कारणों से हुआ।

(1) धार्मिक निर्देशों की आवश्यकता

(2) धर्मोपदेशों की संख्या में वृद्धि

(3) संस्कारों का विधान

(4) दैवीय मान्यता

ज्यों-ज्यों ईसा के अनुयायियों की संख्या बढ़ती गई उन्हें एक स्थान पर एकत्रित करने और धार्मिक सिद्धान्तों का उपदेश देने की आवश्यकता बढ़ी। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिये चर्च संस्थानों का आरम्भ हुआ।

धर्म के विकास के साथ-साथ उपदेशकों और प्रचारकों की संख्या में भी वृद्धि हुई। इन सबने एक स्थान पर एकत्रित होकर अपनी प्रसार योजनाओं पर विचार विनिमय करना आवश्यक समझा।

ईसाई धर्म में संस्कारों की प्रथा का प्रचलन पीटर के वैपतिस्मा नामक सिद्धान्त से हुआ। इसके अतिरिक्त इस धर्म में और भी 6 संस्कारों को जोड़ा गया। इन संस्कारों को विधिपूर्वक सम्पन्न करने के लिये पुजारियों की आवश्यकता हुई और इस प्रकार चर्च संस्थान को सम्बल मिला।

ईसाइयों का विश्वास था कि चर्च द्वारा ही मनुष्य को ईश्वर का सहयोग मिल सकता है और सभ्यता का बलिदान प्राप्त हो सकता है। पवित्र आत्मा का आवाहन चर्च में ही होता है इसलिये चर्च का निर्माण होना अत्यन्त आवश्यक है।

उपर्युक्त वर्णन से सिद्ध होता है कि चर्च की आवश्यकता केवल धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये ही नहीं पड़ी बल्कि आगे चलकर राजनीतिक आर्थिक और सामाजिक कारणों से चर्चों का विकास आवश्यक समझा गया। कुछ लोग धार्मिक सभाओं के अध्यक्ष होते थे, दान देते थे और सभा में अनुशासन बनाये रखते थे। कालान्तर में यही लोग बिशप (Bishop) कहलाने लगे। साधारण जनता ने बिशप (Bishop) को दैवीय शक्ति से युक्त समझा। ज्यों-ज्यों पादरी समुदाय की वृद्धि हुई बिशप का मान और भी अधिक बढ़ा। उसे पादरियों का नेता स्वीकार किया गया। विख्यात इतिहासवेत्ता बर्न्स का कथन है—"केवल रोमन पादरियों को राजा के सीधे नियन्त्रण से मुक्त नहीं किया गया बल्कि रोम में कोई भी ऐसा व्यक्ति न बचा जो बिशप से बढ़कर अधिक अधिकारों का उपयोग कर सकता।"

"Not only was the Roman Bishop freed from direct control of the Emperors but it left no one in Rome who could wield greater power than the Bishop.'

— Burns.

चर्च के संगठन में बिशप (Bishop) की मान्यता बहुत अधिक थी। रोम के चर्च का महत्व महान था और उसके अधिकारी बिशप की मान्यता सम्राट से भी अधिक थी। रोम का यह पराभव इसी कारण था कि यहाँ ईसा मसीह ने समस्त कार्य किये और यहीं उन्हें सूली चढ़ाया गया तथा सेन्ट पीटर और पाल ऐसे प्रचारकों की लीला-भूमि भी यही पावन-स्थली थी। इसीलिये समस्त ईसाई वर्ग इस नगर को पवित्रतम तीर्थ स्थान मानता है। धार्मिक विश्वास के साथ ही रोम की राजनीतिक स्थिति भी इसको महान बनाने में सहायक हुई। जब साम्राज्य की राजधानी कुस्तुनतूनियाँ चली गई तब रोम चर्च का बिशप ही रोम का सर्वोच्च अधिकारी माना जाने लगा। उस समय के सम्राटों ने भी चर्च को सम्प्रभु बनाने में पूर्ण सहयोग प्रदान किया। रोमन चर्च के बिशप को आगे चलकर पोप अर्थात् जगतपिता की संज्ञा प्रदान की गई। पोप सन्त पीटर का उत्तराधिकारी माना गया और कालान्तर में उसे ईसाई जगत का सबसे महान अधिकारी और धर्मगुरु माना गया।

इस युग में ईसाई धर्म में संस्कारों का महत्व भी बहुत बढ़ गया था और संस्कारों को विधिपूर्वक कराने के लिये गिरजाघरों के निर्माण की भावना जनता में प्रबलतर हो उठी। गिरजाघरों में पुरोहित और अधिकारी रहते थे और इनके शीर्ष पर

पोप की सर्वोच्च शक्ति होती थी। पोप की सहयोगियों में कई प्रकार के अधिकारी रहते थे। पोप का निधन होने पर कार्डिनलों में से एक पोप चुन लिया जाता था। क्षेत्रों के पादरी जनता के जीवन के साथ सम्पर्क स्थापित करते थे इसलिये यह सेकुलर क्लर्जी (Secular Clergy) थे। पोप के संरक्षण में रहकर आत्म-संयम, पूर्ण ब्रह्मचर और परोपकार आदि के कठोर व्रती पादरी रेगुलर क्लर्जी (Regular Clergy) कहलाते थे। यह भौतिकता से दूर रहते थे और मनुष्यों के कल्याण के लिए त्याग तथा उत्साह से कार्य करते थे। इस वर्ग में अनेक कलाकार, वैज्ञानिक, दार्शनिक और विद्वान उत्पन्न हुये जिनकी अमिट छाप मानव समाज पर आज भी वर्तमान है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रोम में विभिन्न धर्म फलीभूत हुये। जहाँ एक ओर मिस्र धर्म ने रोम में एकेश्वरवादी विचारधारा का प्रतिपादन किया वहाँ दूसरी ओर ईसाई धर्म ने रोम को सदैव के लिये संसार के प्रसिद्ध नगरों के मध्य स्थापित कर दिया।

सारांश

दार्शनिक क्षेत्र में रोम में चार विचारधाराओं का प्रचार मुख्य रूप से हुआ निओ-पाइथोगोरियन, स्टोइक, निओ-प्लेटोनिक और एपीक्यूरियन। रोम साम्राज्य में विभिन्न धर्मों का प्रसार हुआ। आगस्टस युग में जुपिटर और मार्स प्रधान देवता माने जाते थे। रोम नगर में प्रचलित होने वाले धर्म में अन्ध-विश्वासों की मात्रा बहुत अधिक थी। ईसा से दो सौ वर्ष पूर्व रोम में आइसस नाम की देवी की पूजा भी की जाती थी। प्रथम शताब्दी ई० पू० में सर्पिस की पूजा का प्रचलन हुआ। रोम में यहूदी, ग्नास्टिक, मिस्र धर्म भी पनपे। ईसाई धर्म का प्रचार रोम में सबसे अधिक हुआ। इस धर्म के प्रवर्तक ईसा मसीह थे इनके प्रमुख सिद्धान्त थे। अपने शत्रुओं से प्रेम करो, जो तुम्हें ताड़ना दे उसकी भलाई के लिये प्रार्थना करो. जो तुमसे घृणा करे उसे हृदय से लगाने का प्रयत्न करो। इस धर्म में नामकरण, प्रमाणीकरण, पाणिग्रहण, आर्डीनेशन, तप, अतिशय-अभिषेक और निर्वाण नामक सात संस्कार हैं। प्रत्येक ईसाई ईश्वर को संसार के पिता, पालनकर्त्ता और मुक्तिदाता के रूप में देखता है। इस धर्म में चर्च का विशेष महत्व है। इस धर्म के सिद्धान्त कई शताब्दियों तक संशोधित और परिवर्धित होते रहे और आगे चलकर इस धर्म के अनुयायी दो दलों में बँट गये।

रोम में ईसाई धर्म का प्रसार प्रथम शताब्दी में पीटर, पाल और जान ने किया। इसके पश्चात् कान्स्टेन्टाइन ने इस धर्म के प्रति सहिष्णुता दिखलाई और यह

राजधर्म हो गया। 325 ई० में ईसाइयों की एक धार्मिक सभा हुई और कई गिरजा-घरों का निर्माण हुआ। इस धर्म में चर्च को विशेष महत्व प्रदान किया गया। आरम्भ में ईसाई किसी भी खुले स्थान पर आराधना कर लेते थे परन्तु कालान्तर में चर्चों का निर्माण हुआ। आगे चलकर चर्च केवल धर्म के ही वरन् राजनीति के केन्द्र बिन्दु भी बन गये। वहाँ के बिशप बड़े आदर के पात्र समझे जाते थे। रोम के चर्च का बहुत अधिक महत्व था और वहाँ के बिशप की मान्यता सम्राट से भी अधिक थी। समस्त ईसाई वर्ग रोम को पवित्रतम तीर्थस्थान मानता था। आगे चलकर रोमन चर्च के बिशप को पोप की संज्ञा प्रदान की गई और वह ईसाई-जगत का सबसे महान अधिकारी और धर्मगुरु माना गया।

———

अध्याय | 29

रोम-साम्राज्य का पतन और उसकी देन

(FALL OF ROMAN EMPIRE AND ITS CONTRIBUTION)

प्रश्न 1—रोम साम्राज्य के अधःपतन के मूलभूत कारणों का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिये।

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

Analyse critically the fundamental causes of the downfall of Roman Empire.

(Allahabad University)

प्रश्न 2—सांस्कृतिक क्षेत्र में रोम की देन की विवेचना कीजिये।

Discuss the contribution of Rome in cultural field.

प्रश्न 3 "विश्व की विभिन्न सभ्यताएँ रोमन सभ्यता की ऋणी हैं"—इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं ?

"Various civilizations of the world are indebted to Roman culture."—How far do you agree with this statement.

प्रश्न 4—"पश्चिमी विश्व प्राचीन रोम का प्रचुर रूप से ऋणी है"—इस कथानक की विवेचना कीजिये।

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

"The Western world owes a vast debt to ancient Rome."—Discuss.

(Allahabad University)

(1)
रोम साम्राज्य का पतन

अन्य साम्राज्यों की भाँति रोम साम्राज्य का पतन किसी भीषण परिस्थिति अथवा विप्लव या बाह्य आक्रमण के कारण नहीं हुआ बल्कि इस साम्राज्य का पतन धीरे-धीरे 300 वर्ष में हुआ। विल ड्यूराण्ट का कथन है—"कुछ राष्ट्र तो इतने दिन भी न टिक सके जितने दिनों में रोम का पतन हुआ।"

"Some nations have not lasted as long as Rome fell."

—Will Durant.

उपर्युक्त कथन से सिद्ध होता है कि रोम-साम्राज्य का पतन क्रम से हुआ। इस अधःपतन में ईसाई धर्म के प्रचार ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।

ईसाई धर्म ने रोम के प्राचीन धर्म पर कुठाराघात किया और रोम के कला, दर्शन, साहित्य और विज्ञान को नष्ट करने का सफल प्रयत्न किया। राष्ट्रीय भावनायें और प्राचीन मर्यादायें स्वयमेव टूट गईं। ईसाइयों की दया की भावना ने सैनिकों में यह विश्वास उत्पन्न किया कि युद्ध भयंकर अपराध है और विजय महान पाप है। अतः सैनिक युद्ध क्रिया से परांगमुख होने लगे तथा साम्राज्य की एकता और शांति छिन्न-भिन्न होने लगी।

कुछ विद्वानों का विचार है कि ईसाई धर्म का प्रचार रोम के विनाश का कारण नहीं था बल्कि साम्राज्य का विनाश ईसाई धर्म के प्रचार के पहले से ही आरम्भ हो गया था। नीरो के युग में ही अधःपतन अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुका था। अतः ड्यूराण्ट के शब्दों में यह कहना उचित होगा—

"It was an empty shell, when Christianity rose to influence."

अन्य इतिहास लेखकों ने साम्राज्य के पतन के लिये अनेक कारण बताये हैं जिनके सन्दर्भ में मनोविज्ञान, सामाजिक स्थिति, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ आती हैं और इन सभी कारणों ने एक दूसरे पर अपना प्रभाव डाला है। बर्न्स का कथन है—"यह कहना आवश्यक नहीं है कि समस्त सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं ने एक दूसरे पर प्रतिक्रिया की और रोम का पतन इन्हीं के समुच्चय की प्रतिक्रिया का फल है।"

अधिकृत इतिहासकारो ने निम्नलिखित कारणों को साम्राज्य के पतन के लिये उत्तरदायी ठहराया है।

(1) राजनीतिक कारण

(क) रोम साम्राज्य इतना विस्तृत था कि उसे बहुत दिनों तक सूत्र में बाँधना सम्भव नहीं था। साम्राज्य की विशालता स्वयं एक बहुत बड़ा पतन का कारण बन गई। इतने बड़े साम्राज्य में स्थायित्व की आशा करना कल्पना मात्र था। दूर के प्रांतों पर नियन्त्रण असम्भव था। अतः जब रोम सम्राट कमजोर हुये तभी क्षेत्रीय राज्यपालों ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। बर्न्स के अनुसार—

"The Empire had grown too vast for the Roman administrative machinery, and the government too complicated in the face of great in efficiency and waste."

(ख) पहले रोम एक बहुत छोटा सा नगर था और वहाँ की शासन-प्रणाली नगर राज्य के अनुकूल शताब्दियों पूर्व बनाई गई थी। उसी शासन-प्रणाली को साम्राज्य काल में भी सुरक्षित रखा गया जिसका फल यह हुआ कि वह शासन-प्रणाली इतने बड़े साम्राज्य को एक सूत्र में न रख सकी।

(ग) साम्राज्य के प्रशासकों में कई सम्राट ऐसे भी हुये जो नारी सुलभ सौन्दर्य के पुजारी थे और विशाल साम्राज्य को सम्हालने में बिल्कुल अयोग्य सिद्ध हुये। नीरो इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। उसने अपनी कामवासना की पूर्ति के लिये कई सुन्दर स्त्रियों से विवाह किया और हमेशा आनन्द-भोग मे डूबा रहा। अपने भोग के साधन जुटाने के लिये उसने राज्यकोष को मुक्त-हस्थ से लुटाया और जनता का शोषण किया। कमोडियस, मैक्सिमम आदि सम्राट भी विलासिता की इसी श्रेणी में आते हैं जिनके कारण साम्राज्य में चारों ओर रक्तपात और हत्यायें होने लगी थीं।

(घ) साम्राज्य काल में नागरिकों में मतैक्य नहीं था। रोमन लोग अपने को अन्य व्यक्तियों से श्रेष्ठ मानते थे। विभिन्न क्षेत्रों के व्यक्ति तथा दास कहीं के भी नागरिक नहीं माने जाते थे। यद्यपि सीजर ने नागरिकता के क्षेत्र का प्रसार किया था परन्तु आगस्टस ने उस रीति को समाप्त कर दिया और रोमन लोगों को छोड़कर कोई भी रोम का नागरिक नहीं माना जाता था। इस भेद-मूलक भावना का गहरा असर साम्राज्य के पतन पर पड़ा।

(ङ) आगस्टस के उपरान्त प्रायः सभी सम्राट प्रजा को पीड़ा पहुँचाने वाले हुए जिनके कारण जनता में विद्रोह की भावनायें उत्पन्न होने लगीं और साम्राज्य की नींव हिलने लगी।

आर्थिक कारण

आर्थिक सम्पन्नता ही किसी भी राज्य की दृढ़ता की माप है। रोम साम्राज्य की आर्थिक नीति अत्यन्त ढुलमुल थी।

(क) बड़े जमीदारों ने सम्राट का बल पाकर छोटे किसानों की उपजाऊ भूमि को छीन लिया था। छोटे किसान तो भूमि के अभाव में दुखी थे और भूमिपति अपने खेतों का प्रबन्ध नहीं कर पाते थे। इसलिये उपज में कमी हुई और विदेशों से अन्न का आयात बढ़ गया।

(ख) रोमन सभ्यता में उच्च वर्ग के लोगों का विशेष प्रभाव था और यह लोग व्यापार को हीन दृष्टि से देखते थे जिसके कारण विदेशों से व्यापारियों ने आकर साम्राज्य के धन को खूब लूटा। एशियाई देशों की प्रथा के अनुसार यहाँ दासों द्वारा खेती की जाने लगी जिन्हें खेती के विकास में बिल्कुल रुचि न थी। व्यापार के लिये

परम्परागत आधार अनिवार्य कर दिया गया जिसके कारण रुचि के योग्य व्यापार-चयन करने की परम्परा समाप्त हो गई।

(ग) रोम में कुटीर उद्योगों में कभी भी विशेष वृद्धि नहीं हुई क्योंकि यहाँ के व्यापारी निर्यात के पक्ष में नहीं थे।

(घ) शासन की ओर से कर लगाने का कोई स्पष्ट आधार नहीं था और न कर की वसूली के निश्चित नियम थे। फलस्वरूप जनता का शोषण होता था और अधिकारी वर्ग का पोषण होता था।

(ङ) जनता को व्यापार से प्रेम नहीं था इसी कारण यातायात के साधनों का विकास नहीं हुआ और जंगलों तथा जल मार्गों में व्यापारियों को सदैव भय बना रहा। फलस्वरूप अर्थ-व्यवस्था को धक्का लगा।

(च) रोम के निवासी बहुमूल्य धातुओं के बने हुये सिक्कों को बाहर भेजने के पक्ष में नहीं थे। इसलिये आगस्टस के समय में मुद्राओं में घटिया धातुओं का मेल किया गया और मुद्राओं के व्यापक प्रसार का अंत हो गया। व्यापारी वस्तु विनिमय द्वारा व्यापार करने के लिये बाध्य हुये और कर्मचारियों को वेतन भोज्य-पदार्थों और वस्त्रों के रूप में मिलने लगा। मुद्रा की कमी का घातक प्रभाव वस्तुओं के उत्पादन पर पड़ा। सरकारी नीति के कारण नगर निवासी निराशा का अनुभव करने लगे। सामन्तवाद के विकास ने अर्थ व्यवस्था को नष्ट कर दिया।

सामाजिक दोष

नवीन परिवर्तनों के कारण साम्राज्य में बहुत से सामाजिक दोष उत्पन्न हो गये।

(क) साम्राज्य के विस्तार ने अपार लूट का धन रोम में भर दिया। धन की वृद्धि के कारण नागरिकों में विलासिता की भावना उत्पन्न हुई और कंचन, कामनी और सुरा में रोम के निवासी दिनों-दिन डूबते गये।

(ख) विलासिता के साथ-साथ दास-प्रथा भी नग्न-रूप में दिखाई देने लगी। दासों की संख्या में विशाल वृद्धि हुई और इन दासों के साथ उनके मालिक अमानुषिक अत्याचार करते थे। दासों को हिंसक पशुओं के साथ युद्ध करना पड़ता था और विजित देशों की स्त्रियाँ रोम निवासियों की काम वासना का साधन मात्र थीं। दासों के इस चीत्कार से रोम साम्राज्य की दीवारें कम्पित हो रहीं थीं।

(ग) बड़े-बड़े भूमि के स्वामियों ने साधारण कृषकों को गरीबी के गहरे गड्ढे में डाल दिया था। यह गरीब अश्रुपूर्ण नेत्रों से भूमिपतियों और धनिक वर्ग की रंग-रेलियों को देखते थे तथा उनके पेट की ज्वाला शासकों को कोसती थी।

(घ) रोम साम्राज्य में नैतिकता की कोई माप भी नहीं रही थीं। बलात्कार, छल, कपट, दुराचार, प्रवंचना और दूसरे के धन को छीन लेना धनिक वर्ग के साधारण व्यापार हो गए थे जिनके कारण जनता का जीवन धूमिल हो गया था। व्यभिचार की मात्रा इतनी अधिक बढ़ गई थी कि साधारण श्रेणी के लोगों में निसंतान होना एक गुण समझा जाता था और जनता के जीवन में कोई गति ही न रह गई थी। विल ड्यूराण्ट (Will Durant) के अनुसार—

"Moral decay contributed to the dissolution."

सेना का पतन

सेना में विद्रोह की प्रवृत्ति को रोकने के लिये गैलिनस ने एक नियम बनाया था जिसके अनुसार सेनेट वर्ग का कोई भी व्यक्ति सेना में भर्ती नहीं हो सकता था। फलस्वरूप इटली के बाहर के लोग ही सेना में भर्ती किये जाने लगे। इन सैनिकों को रोम से कोई लगाव नहीं था। वे केवल लूट पाट में विश्वास करते थे और सदा वेतन-वृद्धि के लिये प्रयत्नशील रहते थे। अधिकांश सैनिक धनिक समाज से ईर्षा करते थे। इस सेना में साम्राज्य की सुरक्षा की न तो कोई भावना ही थी और न शक्ति थी। मौका मिलने पर प्रान्तों की सेनायें विद्रोह कर देती थीं। आरम्भिक अवस्था में रोम साम्राज्य का निर्माण सैनिक शक्ति से हुआ था और अन्तिम काल में सेना की दुर्बलता के कारण साम्राज्य का स्थायित्व संकट में पड़ गया।

धार्मिक कारण

कुछ इतिहासकारों ने रोम साम्राज्य के पतन में धर्म का भी प्रमुख अंश माना है। यहां के धर्म में आशा की जलती हुई ज्योति न थी बल्कि धर्म द्वारा जनता को हतोत्साह और पतनोन्मुख होने का अधिक बल मिला। ईसाई धर्म का आधार अहिंसा था जिसके कारण ईसाइयों ने बाहर के आक्रमणकारियों के विरुद्ध शस्त्र लेना पाप समझा और बाहर के आक्रमणकारियों के सम्मुख रोम की सेना छिन्न-भिन्न होने लगी।

साहित्यिक कारण

विद्वानों का मत है कि समृद्धि साहित्य ही देश की प्रगति में सहायक होता है और देश को सजीवनी शक्ति देता है। रोम का साहित्य इस श्रेणी का नहीं था जिससे नागरिकों के साम्राज्य के प्रति चेतना उत्पन्न होती और जनता संस्कृति की रक्षा के लिये सन्नद्ध होती।

प्राकृतिक कारण

स्पेन्सर के अनुसार विश्व में प्रत्येक सभ्यता का आरम्भ, विकास और अन्त होता है। यह प्राकृतिक नियम रोम साम्राज्य के इतिहास के विषय में भी सिद्ध हुआ और कालान्तर में साम्राज्य का अन्त हो गया।

चौथी शताब्दी में साम्राज्य की भूमि की उत्पादन शक्ति अनायास बहुत कम हो गई जिसके कारण लोग अपने निवास-स्थानों को छोड़कर अन्य देशों में जाकर रहने लगे। बिशप डायोनिसियस ने लिखा है कि सिकन्दरिया की आबादी जो पहले शासन के गौरव का आधार थी अब घटकर आधी रह गई। लोगों ने अपने बड़े-बड़े खेत बिना मूल्य दान करने की घोषणा कर दी।

दूसरी शताब्दी के अन्त में और तीसरी शताब्दी के मध्य तक रोम में कई बार प्लेग फैला जिसके कारण साम्राज्य की जनसंख्या बहुत घट गई।

बाह्य आक्रमण— साम्राज्य के पतन में बहुत बड़ा अंश बाहरी आक्रमणकारियों का था। इन आक्रमणकारियों में निर्भीक और शक्तिशाली जाति अभिमानी जर्मन, वंडाल, हूण और गोथ जातियों के लोग प्रसिद्ध हैं। उत्तर काल में रोम सम्राटों ने अपनी कमजोरी को छिपाने के लिये जर्मन लोगों को साम्राज्य के अन्दर बसने की आज्ञा प्रदान कर दी और उन्हें सेना में भी भर्ती किया। रोम की सेना ने इनसे बर्बरता का पाठ लिया और इन नये सैनिकों को साम्राज्य के प्रति कोई भक्ति नहीं थी। इस कारण उन्होंने समय समय पर विद्रोह किए। ब्रिस्टेड का कथन है—"साम्राज्य में जंगली रूढ़ियाँ और प्रवृत्तियाँ आ गई थी और रोम की सेना पूर्णतया जंगली हो गई थी।"

"Barbarian life, coustoms and manners were thus introduced in the empire, and the Rome army as a whole was barbarian."

—Breasted.

वंडाल और गोथ लोगों ने भी शासन की जड़ों को हिला दिया। थिओडिसस ने गोथों को राजकीय पदों पर और सेना में भरती किया। वंडाल नेता के साथ तो सम्राट ने अपनी पुत्री का विवाह तक कर दिया। फिर भी यह विदेशी राष्ट्र के हितैषी न हुये।

आक्रमणकारियों में सबसे शक्तिशाली हूण थे। ब्रिस्टेड (Breasted) का लेख इसका प्रमाण है। इन आक्रमणकारियों ने गोथ लोगों को परास्त करके रोम साम्राज्य का अन्त कर डाला।

(2)
रोम साम्राज्य की देन

यूनानी सभ्यता की भाँति रोम सभ्यता का मानवता पर महान ऋण है। बहुत से विद्वान रोम सभ्यता को योरुप की सभी सभ्यताओं की जननी मानते हैं। फ्रीमैन (Freeman) ने लिखा है कि अनेक इतिहास से सम्बन्धित विषयों में रोम के इतिहास

की प्रधानता है और इस सभ्यता ने विश्व के बहुतेरे राष्ट्रों को एकता की कड़ी में बाँधा है तथा पाश्चात्य देश में प्रकाश फैलाया है। वास्तविकता तो यह है कि योरुप में ईसाई धर्म का प्रचार भी रोम साम्राज्य के ही कारण हुआ। ट्रेवर महोदय लिखते हैं— "पाश्चात्य सभ्यता का प्रादुर्भाव रोमन साम्राज्य के पतन पर हुआ।"

"Western civilization was born out of the very martix of the Roman Empire."

—Trever.

भाषा का ऋण—इतिहास से ज्ञात होता है कि मध्य युग में योरोपीय एकता का स्रोत लैटिन भाषा ही थी। पुनर्जागृति के युग में जनता के लगभग 80 प्रतिशत कार्य इसी भाषा में होते थे। रोम के कानून जो अब तक प्रसिद्ध हैं लैटिन भाषा में ही लिखे गये थे। विद्वानों का मत है कि अब भी संसार में लगभग 20 करोड़ व्यक्ति लैटिन भाषा का प्रयोग करते हैं। अँग्रेजी भाषा में लैटिन भाषा के बहुत से शब्द हैं और बहुतेरे शब्दों का प्रारम्भिक रूप लैटिन भाषा के शब्दों में मिलता है। इस भाषा ने जीव-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान और आचारशास्त्र को पारिभाषिक शब्द दिये हैं।

साहित्यिक ऋण—योरुप का साहित्य लैटिन भाषा का अभिन्न अंग है। ट्रेवर का कथन है—"यह संसार के साहित्य में सबसे महान है और अँग्रेजी तथा योरुपीय साहित्य पर उसका गहरा प्रभाव है।"

योरोपीय साहित्य पर लैटिन भाषा के साहित्य की छाप है। अँग्रेजी लेखक सर टामस मूर, बैकन और मिल्टन लैटिन भाषा के प्रकाण्ड पंडित थे। ड्राइडन और शेक्सपियर पर प्लाट्स और टेरीन के साहित्य का प्रभाव पड़ा था। फ्रेंच और अंग्रेजी लेखकों पर रोम के दु:खान्त नाटकों का असर पड़ा। एलिजाबेथ के युग में सेलिका के बहुत से ग्रन्थों के पात्र अभिनय करते हुये दिखाई पड़ते थे। काव्य के क्षेत्र में भी रोम के काव्य का गहरा असर योरोपीय काव्य पर पड़ा था। वर्जिल का ईनीड नामक महाकाव्य योरूप के काव्य रचयिताओं के लिये बाइबिल के समान था। ईनीड योरूप के विद्यालयों में पाठ्य-पुस्तक के रूप में पढ़ाया जाता था। ड्राइडन और कोट्स ने ईनीड का अनुवाद देशी भाषा में किया था। टेनिसन रोम क कवियों में ईनीड के रचयिता को सबसे अधिक मृदु-हृदय कहता था।

राजनीतिक ऋण—बिल ड्यूराण्ट ने लिखा है—"शासन कला में रोम का कोई प्रतिद्वन्दी नहीं है।"

"Rome has had no rival in the art of Government."

—Will Durant.

कालान्तर में योरूप के बहुत से देशों में राज्यों का वर्गीकरण तथा राज्य विभाजन रोम की पद्धति के अनुसार किया गया था। राजनीतिक शब्दावली बहुतांश

में रोम की शब्दावली की ऋणी है। इंग्लैण्ड और जर्मनी के निरंकुश शासकों ने रोम के सम्राटों से स्वेच्छाचारिता की प्रेरणा प्राप्त की थी और राजत्व में देवत्व की कल्पना की थी। वर्तमान साम्राज्यवाद की भावना का आधार भी रोम का साम्राज्य-विस्तार था क्योंकि इसके द्वारा राजनीतिक एकता दृढ़ होती है। फासिस्टवाद के मूल में भी रोम की ही सभ्यता है क्योंकि फासिस्ट सिद्धान्त के मानने वाले राज्यहित को व्यक्ति के हित से बढ़कर मानते हैं। अतः व्यक्तियों का दमन, परम्पराओं का संरक्षण और व्यक्तियों की हत्या को बुरा नहीं माना जाता। यह भावना कांस्टेन्टाइन और डिओक्लिशियन द्वारा ही वर्तमान पीढ़ी में फैली।

कानून का ऋण—लार्ड ब्राइस कहते हैं कि यदि रोम वालों ने कानून पद्धति का सृजन न किया होता तो लोग रोम साम्राज्य को ही भूल जाते। योरुप के विश्व-विद्यालयों में अब तक कहीं-कहीं रोमन ला (Roman Law) पढ़ाया जाता है। विश्व के अन्तर्राष्ट्रीय कानून पर भी रोम का ऋण है। इस कानून ने योरुप के निवासियों को बहुत दिन तक प्रेरणा दी। प्राकृतिक कानूनों का आधारभूत सिद्धांत भी रोम के ही कानून हैं। इसी कारण विद्वान लेखक बर्न्स लिखता है—"कालान्तर में योरुपीय इतिहास के लिये रोम का कानून अत्यन्त आवश्यक प्रतीत हुआ। यह स्पष्ट है कि इसी के आधार पर रोमन कैथोलिक चर्च के धार्मिक नियम बने।"

दार्शनिक एवं धार्मिक ऋण—सिसरो ने स्टोइक विचारधारा का प्रचार योरोपीय देशों में किया था। योरुप के विद्वान सेनिका को अपना प्रिय दार्शनिक मानते थे क्योंकि वे उसके एकेश्वरवाद और नैतिकता की भावना के ऋणी थे धर्म के क्षेत्र में ईसाई धर्म पर राम का महान ऋण है। जैसा कि ट्रवर ने लिखा है—"जिस प्रकार दर्शन शास्त्र में रोमन लोगों का असर है उसी प्रकार पश्चिमी सभ्यता पर भी रोम का असर है।"

"In religion as in philosophy, Western civilization owes a vaste debt to Rome as the great intermediary."

रोम नरेशों की नीति ने ईसाई धर्म को योरूप में फैलने में महान योगदान दिया। वर्तमान युग में यातायात और राजनीतिक सङ्गठन तथा शांति व्यवस्था का नीति पर भी रोम की सभ्यता का ऋण है। रोम के प्राचीन धर्म के प्रभाव के कारण ही प्रतिमाओं और चित्रों की स्थापना, पूजा और प्रकाश की व्यवस्था का ज्ञान योरुप के बहुत से निवासियों को हुआ।

कला सम्बन्धी ऋण—मध्य युग में योरूप के विद्वानों ने रोम की कला का अनुसरण किया। विट्वियस का शिल्प-ग्रन्थ योरूप में सबसे प्रमाणिक ग्रन्थ माना जाता था। इतिहासकारों का कथन है कि रोम की शिल्प और वास्तुकला का प्रभाव अमेरिका

की भवन-निर्माण कला पर पड़ा था और कांस्टेन्टाइन ने जिस प्रकार के स्नानागारों का निर्माण कराया था उसी प्रकार के आगार न्यूयार्क में बनाये गये। रोम के विशाल नाटक-ग्रह, संग्रहालय और पुस्तकालय आदर्श माने जाते थे। तोरण और गुम्बद के निर्माण में रोम के कलाकारों ने काट-छाँट और पच्चीकारों में विशेष दक्षता प्राप्त की थी और इन्हीं का अनुसरण सेन्ट पाल के गिरजाघर में किया गया। अन्य प्रासादों के सौन्दर्य का आधार भी वास्तुकला ही है। इसी कारण हेनरी एस० ल्यूकस कहते हैं—"रोम की सार्वजनिक इमारतें आज भी उस जीवन को घोषित करतीं है जिसके लिये वह बनी थीं। एक सबसे बड़ी इमारत जो प्रथम शताब्दी में बनी थी पेथियन में आज सुरक्षित है।"

"Roman public buildings speak elequently the teeming life for which they were constructed. One of the largest structures of ancient Rome, still preserved is the pathean, built in the first century A. D."

—Henry S. Lucas.

स्पेन के पुलों और सड़कों पर रोम की सभ्यता की स्पष्ट छाप थी। फ्रन्टिनस का इंजीनियरिंग ग्रन्थ प्रमाणिक ग्रन्थ माना जाता था। रोम सम्राटों ने जो मूर्तियाँ बनवाई थीं वह सुन्दरता के लिये बहुत काल तक प्रसिद्ध रहीं। नीरो द्वारा बनवाये हुये भित्ति-चित्र आज भी चित्रकला के उत्तम नमूने माने जाते हैं।

वैज्ञानिक ऋण—रोम निवासियों ने जीवनोपयोगी गणित के अध्ययन की ओर लोगों को आकर्षित किया। प्लिनी के ग्रन्थ योरूप में विशेष रूप से प्रसिद्ध थे। सेलस ने चिकित्सा शास्त्र पर जो ग्रन्थ लिखा था उसका अध्ययन 15 वीं शताब्दी तक योरूप के विश्वविद्यालयों में होता रहा। खगोल, भूगोल आदि पर लिखी हुई रोमन पुस्तकों का योरूप में बहुत मान था। कहा जाता है कि रोम निवासियों ने सर्वप्रथम विश्व-मानचित्र बनाया था। सफाई और जग-स्वास्थ्य रक्षा के लिये जिस प्रकार के चिकित्सालय रोम में बनाये गये थे वह बहुत वर्षों तक पड़ोसी राज्यों में आदर्श की दृष्टि से देखे जाते थे।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि पाश्चात्य सभ्यताओं के विभिन्न अंगों पर रोम की सभ्यता की छाप है। जिन उपादानों का आधार रोम ने किया था उनका आज भी ऐतिहासिक महत्व है तथा अपनी विशेषताओं के कारण प्राचीनकाल के रोम की सभ्यता की आत्मा आधुनिक सभ्यताओं में वर्तमान है। ट्रेवर का यह कथन नितांत सत्य है—"आधुनिक सभ्यता की आत्मा बहुतांश में रोमन ऋणी है।"

"The spirit of modern civilization is over-whelmingly Roman."

—Trever.

सारांश

रोम साम्राज्य के पतन के कारणों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) राजनीतिक (2) आर्थिक (3) सामाजिक (4) सैनिक (5) धार्मिक (6) साहित्यिक (7) प्राकृतिक (8) बाह्य आक्रमण।

राजनीतिक कारणों में मुख्य यह था कि रोम की शासन-व्यवस्था एक छोटे से नगर के लिये उचित थी परन्तु विशाल रोम-साम्राज्य के लिये ठीक नहीं थी। आर्थिक कारणों में मुख्य था कि निम्न और उच्च वर्ग के बीच गहरी खाईं थी। साम्राज्य में विलासिता की मात्रा बहुत अधिक थी। सेना में विभिन्न जातियों के लोग सम्मिलित थे जिन्हें रोम से कोई प्रेम नहीं था। ईसाई धर्म के उत्थान को भी कुछ लोग रोम के पतन का कारण मानते हैं। रोम के साहित्य में वह शक्ति नहीं थी कि जनता को राष्ट्र-प्रेम के लिये उत्तेजित करे। चौथी शताब्दी में रोम साम्राज्म की भूमि की उत्पादन-शक्ति बहुत कम हो गई। दूसरी शताब्दी में कई बार प्लेग फैला। बाह्य आक्रमण भी रोम के पतन का मुख्य कारण थे। इन आक्रमणकारियों में जर्मन, वंडाल और हूण मुख्य थे। गोथ जाति ने भी शासन की जड़ों को हिला दिया।

लैटिन भाषा के रूप में पाश्चात्य देशों को रोम की महान देन है। इस भाषा के साहित्य का प्रभाव अंग्रेजी साहित्यकारों पर विशेष रूप से पड़ा। रोम की राज्य विभाजन की पद्धति ही समस्त पाश्चात्य देशों में प्रचलित हुई। रोमन-कानून विभिन्न देशों के कानूनों का प्रेरणा-स्रोत है। ईसाई धर्म के उत्थान के रूप में रोम की संसार को महान देन है। न्यूयार्क के भवनों पर रोम की कला की छाप है और विज्ञान के क्षेत्र में अन्य पाश्चात्य देशों ने रोम से बहुत कुछ सीखा है।

—·—

भारतीय सभ्यता और संस्कृति

INDIAN CIVILIZATION AND CULTURE

अध्याय | 30

प्राचीन आर्य सभ्यता और संस्कृति

प्रश्न 1–भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषताओं को संक्षेप में लिखिये और आर्यों की प्राचीन सभ्यता का मूल्यांकन कीजिये।

Give a short account of main features of ancient Indian civilization and evaluate the ancient Aryan civilization

प्रश्न 2 - आर्यों के राजनीतिक और सामाजिक जीवन पर प्रकाश डालिये। (लखनऊ विश्वविद्यालय)

Give an account of the political and social life of Aryans

(Lucknow University)

प्रश्न 3 –आर्यों की शासन पद्धति और धार्मिक विश्वासों के विषय में आप क्या जानते हैं ?

(पटना विश्वविद्यालय)

What do you know about the administration and religious beliefs of Aryans ?

(Patna University)

प्रश्न 4 –आर्यों की आदि-सभ्यता के विषय में आप क्या जानते हैं ?

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

What do you know about the earliest culture of Aryans ?

(Allahabad University)

भारतीय सस्कृति की विशेषताएँ

संसार की सभ्यताओं में भारतीय सभ्यता का विशेष महत्व है। जिस समय पाश्चात्य देशों के निवासी बर्बरतापूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे थे उस समय भारत की शस्य-श्यामला भूमि में नवीन संस्कृतियों का अभ्युदय हो रहा था। प्राचीन काल में

यूनानी अपने को अत्यन्त सभ्य समझते थे परन्तु भारतीय सभ्यता को देखकर वे भी अवाक रह गये थे। प्राचीन भारतीय सभ्यता की चकाचौंध के सम्मुख विश्व की अनेक सभ्यताएँ फीकी पड़ जाती हैं। संसार की अन्य सभ्यताओं की भाँति भारतीय सभ्यता की कुछ विशेषताएँ हैं जिनकी चर्चा नीचे की जा रही हैं—

(1) **प्राचीनता** - भारत की सभ्यता अत्यन्त प्राचीन है। सिन्धु घाटी की सभ्यता विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में मानी जाती है। इस सभ्यता की प्राचीनता के सम्बन्ध में राधा कुमुद मुकर्जी लिखते हैं—"सिन्धु नदी की घाटी की सभ्यता न मैसोपोटामियां की सभ्यता से सम्बन्धित है न उसकी देन है। अधिकतर यह विचार होता जा रहा है कि सिन्धु घाटी की सभ्यता संसार की प्राचीनतम सभ्यता थी।"

"The Indus Valley Civilization is not closely connected with, nor borrowed from Mesopotamian Civilization. Opinion is gaining ground that Indus Civilization was the earliest civilization in the world."

—Radha Kumud Mukarji.

(2) **सक्रमता**—भारतीय सभ्यता के इतिहास में एक तारतम्य के दर्शन होते हैं विभिन्न राजनीतिक क्रान्तियों के मध्य यह सभ्यता निरन्तर पनपती रही और इसकी सक्रमता अक्षुण्ण रही।

(3) **समन्वयशीलता**—भारतीय संस्कृति में राजनीतिक, सामाजिक, और धार्मिक सभी क्षेत्रों में समन्वयशीलता के दर्शन होते हैं। वर्णाश्रम में सामाजिक समन्वय की भावना दृष्टिगत होती है। साथ ही इस सभ्यता में ज्ञान, भक्ति और कर्म का समन्वय भी परिलक्षित होता है। इसमें भौतिकतावाद और आध्यात्मवाद, दुःखवाद और सुखवाद के समन्वय के भी दर्शन होते हैं।

(4) **विशाल-हृदयता**—भारतीय-संस्कृति सदैव संकीर्णता से दूर रही है। वह उदारवादी भावना को लेकर चली है। विभिन्न संस्कृतियों के सुन्दर तत्वों को अपनाने में भारतीय कभी नहीं हिचके। विभिन्न जातियाँ यहाँ आईं और उनकी सभ्यता भारतीय सभ्यता में मिल गई।

(5) **धार्मिकता** – भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह धर्म पर आधारित है। भारतीय, धर्म के लिए ही जीवित रहते हैं और धर्म के लिये ही मर मिटते हैं। पुरुषार्थ-चतुष्टय- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में धर्म को विशेष महत्व प्रदान किया गया है। इस सम्बन्ध में एक विद्वान ने लिखा है—

"Indian civilization is the civilization of religious beliefs. Indians have religion in their blood and so nothing can be found in their culture apart from religion."

(6) वर्णाश्रम-व्यवस्था—भारतीय सभ्यता की एक अन्य विशेषता उसकी वर्णाश्रम व्यवस्था है। समस्त समाज को चार वर्णों में विभाजित किया गया था ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र। ब्राह्मणों का कार्य पठन पाठन, क्षत्रियों का कार्य शासन तथा रक्षा, वैश्यों का कार्य व्यापार और शूद्रों का कार्य सेवा था। भारत में यह समस्त वर्ण देश के कल्याण के लिये कार्य करते थे यद्यपि भेद-भाव की भावना थी परन्तु पाश्चात्य दास-व्यवस्था का कलंकित रूप भारत में रखने को नहीं मिला था।

मानव की भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिए उसके जीवन को चार आश्रमों में विभाजित किया गया था—

(1) ब्रह्मचर्य
(2) गृहस्थ
(3 वानप्रस्थ
(4) सन्यास

ब्रह्मचर्य जोवन में बालक शिक्षा प्राप्त करता था, गृहस्थ में मनुष्य धर्म के साथ अर्थ और काम का सेवन करता था। वानप्रस्थ में संसार के प्रति विरक्ति उत्पन्न होती थी और सन्यास आश्रम में व्यक्ति इस जीवन की चिन्ता छोड़कर अगले जन्म के कल्याण के लिए तपस्या करता था। इस व्यवस्था में व्यष्टि की उन्नति के साथ ही समष्टि को उन्नति की कामना की गई थी।

आर्य सभ्यता

20वीं शताब्दी के पूर्व विद्वानों का मत था कि आर्य सभ्यता ही भारत की सबसे प्राचीन सभ्यता है परन्तु सन् 1920-22 के मध्य जब मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा की खुदाई की गई तो यह प्रतीत हुआ कि सिन्धु-घाटी की सभ्यता भारत की प्राचीनतम सभ्यता है। सिन्धु-घाटी की सभ्यता पर समुचित रूप से प्रकाश डाला जा चुका है। उस सभ्यता के पश्चात् भारतीय आर्यों को ही सभ्यता आती है।

आर्य भारत के ही मूल निवासी थे अथवा कहीं बाहर से आये थे, यह प्रश्न बड़ा विवादग्रस्त है। कुछ विद्वान भारत को ही आर्यों का आदि देश मानते हैं, कुछ योरप को आर्यों का आदि देश मानते हैं। परन्तु इसमें किसो को भी सन्देह नहीं कि आर्य अधिकतर पंजाब प्रदेश में रहे और वहीं उन्होंने अपनी सभ्यता का प्रसार किया। सिन्धु सभ्यता का विनाश-काल ही आर्यों का आगमन काल है क्योंकि सिन्धु सभ्यता के ध्वंसावशेषों पर ही आर्य सभ्यता पनपी है।

राजनीतिक दशा

आर्यों के राजनीतिक इतिहास के विषय में अधिक जानकारी नहीं है। उनके राज्य-संगठन आदि के विषय में जो कुछ भी ज्ञात हो सका है उसकी चर्चा आगे की जा रही है।

राज्य का विभिन्न इकाइयों में विभाजन—राज्य की सबसे छोटी इकाई कुटुम्ब थी। कुटुम्ब में पितृसत्तात्मक व्यवस्था थी। कई कुटुम्बों को मिलाकर ग्राम का निर्माण होता था। सम्पूर्ण ग्राम, ग्रामीण के अधीन कार्य करता था। कई ग्रामों के योग से विस का निर्माण होता था। विसों के ऊपर जन होता था। कई विस मिलकर एक जन कहलाते थे। विस का रक्षक गोप होता था।

सम्राट—राजा का पद वंशानुगत होता था परन्तु कभी-कभी राजा का चुनाव भी होता था। तत्कालीन इतिहास का ज्ञान कराने वाले ऐतरेय ब्राह्मण से पता चलता है कि इस काल में शासन-प्रणाली के आधार पर राजाओं के विभिन्न रूप थे यथा भोज्य, स्वराज्य, परमेष्ठय आदि।

वैदिक-कालीन राजाओं के सम्मुख कुछ आदर्श थे जिनके अनुसार ही उन्हें आचरण करना पड़ता था। राजाओं का ध्येय था—"समस्त लोक पर विजय प्राप्त कर समुद्र-पर्यन्त मेखला का स्वामित्व प्राप्त कर एकराट् बनना।"

आर्यों ने शासन की महत्ता को समझ लिया था और इसी कारण राजा को विस्तृत अधिकार प्रदान किये गये थे। कर, राजा ही प्राप्त करता था। न्याय, युद्ध-संचालन तथा दण्ड आदि कार्य भी राजा द्वारा ही सम्पादित होते थे। इन विस्तृत अधिकारों के साथ ही राजा को श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। राज्य में उसको सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। मनु ने राजा की श्रेष्ठता पर प्रकाश डालते हुये कहा है—"**राजा महादेवता है, चाहे वह बालक ही क्यों न हो उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। भगवान ने उसको आठों दिग्पालों के अंश से बनाया है अतः इसके प्रसाद में लक्ष्मी का निवास है तथा कोप में मृत्यु निवास करती है।**"

राजा के विस्तृत अधिकारों को देखते हुए यह नहीं समझना चाहिये कि राज्य में निरंकुश राजतन्त्र की स्थापना की गई थी। वास्तव में वहाँ का राजतन्त्र सीमित-राजतन्त्र था। राजा को जहाँ विस्तृत अधिकार प्राप्त थे वहीं समय-समय पर उसके कार्यों को नियन्त्रित करने के लिये विभिन्न उपदेश दिये जाते थे। कुछ ऐसी संस्थाएँ एवं व्यक्ति थे जो उसके कार्यों पर नियन्त्रण रखते थे। यह नियन्त्रण निम्न-लिखित थे -

(1) राजा के चुनाव की प्रथा—राजा के चुनाव में प्रजा का महत्वपूर्ण स्थान था। प्रजा की श्रद्धा रहने पर ही राजा अपने पद पर बना रह सकता था। यही कारण था कि राजा यथाशक्ति प्रजा की सेवा में लगे रहते थे और प्रजा का समर्थन प्राप्त करने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहते थे। सिंहासनारूढ़ होते समय राजा एक शपथ लेता था जिससे यह स्पष्ट होता था कि राजा प्रजा के अधीन है।

(2) **पुरोहित के अधिकार**—पुरोहित धर्मगुरु एव राजगुरु होता था। उसका पद बड़ा प्रभावशाली था। वह सदैव राजदरबार में उपस्थित रहता था तथा इसकी सलाह के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करता था। इस प्रकार राजा के विस्तृत अधिकारों पर नियन्त्रण रखने के लिये यह महत्वपूर्ण साधन था। प्रोफेसर कीथ का कथन है—"वेदों का पुरोहित भारत में ब्राह्मण धर्म का आदिकर्ता था। इन्हीं ब्राह्मणों ने समय-समय पर प्रबन्धजनित कार्यों में महान योग्यता का परिचय दिया है और इसमें कोई सन्देह का कारण नहीं है कि विश्वामित्र या वशिष्ठ वेद कालीन राज्यों में महान व्यक्ति माने जाते थे।"

(3) **मन्त्रि-परिषद्**—अथर्ववेद तथा तैत्तरीय संहिता से यह आभास मिलता है कि आर्य-काल में राजा को सहायता देने के लिये एक मन्त्रिपरिषद् का निर्माण किया गया था। उसके मन्त्री 'रत्निन' कहलाते थे। इनका शासन में इतना महत्वपूर्ण स्थान था कि एक-एक 'रत्निन' राज्य-मुकुट का एक रत्न माना जाता था।

(4 **सार्वजनिक संस्थाएँ**—शतपथ ब्राह्मण के अनुसार इस काल में सभा तथा समिति दो संस्थाएँ थीं। ये सभाएँ राजा के सिंहासनारोहण एवं उसके कार्यों की देखरेख करती थीं। राजा इन सभाओं की सलाह से कार्य करता था तथा इनके सदस्यों को प्रसन्न रखना राजा के लिये अनिवार्य था। इस प्रकार राजा के कार्यों पर सभा तथा समिति का नियन्त्रण रहता था।

उत्तर-वैदिक कालीन ग्रन्थों से पता चलता है कि पूर्व-वैदिक-काल की भाँति इस काल में भी सभा एवं समिति दो संस्थाओं की व्यवस्था की गई थी। सभा कुछ वयोवृद्ध और अनुभवी लोगों की संस्था थी और समिति सम्पूर्ण प्रजा की। कुछ विद्वानों के मतानुसार सभा में धन-सम्पन्न तथा प्रौढ़ व्यक्ति रहते थे। सभा में प्रत्येक विषय पर निर्णय पर्याप्त वाद-विवाद के पश्चात् बहुमत से होता था। सभा न्याय का कार्य भी करती थी। सभा में कम सदस्य होते थे, परन्तु समिति में सदस्यों की संख्या अधिक होती थी। राजा के निर्वाचन में समिति जनवाणी का प्रतिनिधित्व करती थी। सभा और समिति के सम्राट पर नियन्त्रण की चर्चा करते हुये बाशम् ने लिखा है - "राजा स्वतन्त्र शासक न था, क्योंकि जाति का शासन जातीय परिषद्; सभा या समिति का कार्य था।"

"The raja was not absolute monarch, for the government of the tribe was in part the responsibility of the tribal council, the Sabha and the Samiti."

— Basham.

मजूमदार का मत है—"राजा यद्यपि जनता पर शासन करता था परन्तु बिना जनता की इच्छा के शासन नहीं करता था। जाति का शासन वास्तव में जन समाज करता था जिसकी बैठकों में राजा और राजकुमार भी उपस्थित होते थे।"

"The raja, though the lord of people did not govern without their consent. The business of the tribe was carried out in a popular assembly styled 'Samiti' at which princes and the people were alike present."

—Dr. R. C. Majumdar.

(5) **धार्मिक नियन्त्रण**—राजा को धार्मिक कानूनों के अनुकूल आचरण करना पड़ता था। यही कारण था कि अनेक संस्कारों के समय राजा को सिंहासन से उतर कर ब्राह्मण वर्ग को प्रणाम करना पड़ता था। धार्मिक कानूनों ने राजा को अपनी सीमा में रहने के लिए बाध्य कर दिया था।

न्याय व्यवस्था—इस काल में न्याय का सर्वोच्च अधिकारी राजा होता था। अधिकतर साधारण मुकदमों का निर्णय परिवार अथवा ग्राम में ही हो जाता था। गम्भीर आरोपों पर प्राण-दण्ड और साधारण अपराधों पर कारावास तथा आर्थिक दण्ड दिया जाता था। अपराध कम ही होते थे क्योंकि उच्चकोटि की गुप्तचर-व्यवस्था थी। लोगों को सामाजिक प्रतिष्ठा का भी भय रहता था।

युद्ध-प्रथा आर्यों को भारत की विभिन्न जातियों से भयंकर युद्ध करने पड़े थे। ये युद्ध उनकी युद्ध-प्रणाली का ज्ञान कराते हैं। पैदल तथा रथ-सेना का प्रचार था। हस्त-सेना के प्रयोग के बारे में विद्वानों को सन्देह है। युद्ध में सुदृढ़ धातु के कवच, विभिन्न प्रकार के बाण, भाला, तलवार आदि प्रयुक्त होते थे। चलते फिरते दुर्ग तथा पताका युद्ध के आवश्यक अङ्ग थे। युद्ध आरम्भ होने की सूचना तुरही, ढोल तथा दुंदुभी से दी जाती थी। युद्ध में कुछ नियमों का पालन कठोरता से किया जाता था, उदाहरण के लिये किसी स्त्री, बच्चे अथवा घायल पर आक्रमण नहीं किया जाता था।

सामाजिक व्यवस्था

परिवार एवं गृह—परिवार का स्वामी पिता होता था। वह पत्नी की सहायता से गृहस्थी का सञ्चालन करता था। परिवार के सदस्यों को मर्यादित ढंग से चलाने के लिये मुखिया प्रेम, सहानुभूति तथा दण्ड का आश्रय लेता था। संयुक्त परिवार की प्रथा प्रचलित थी।

घर काठ ही के बनते थे जिनमें साधारण सुविधाओं का ध्यान रक्खा जाता था।

भोजन—आर्यों का मुख्य आहार गेहूँ तथा जौ था। इसके साथ ही वे दूध का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में करते थे। दूध के अनेक प्रकार के खाद्यान्न बनाये जाते

थे। उत्तर-वैदिक-काल में धीरे-धीरे सुरापान तथा मांस-भक्षण का विरोध होने लगा था।

वेशभूषा—आर्य रेशमी, सूती, ऊनी तथा मृगछाला के वस्त्रों का प्रयोग करते थे। कपड़ों पर कशीदाकारी की भी प्रथा थी। स्त्री और पुरुष दोनों ही बाल रखते थे। स्त्रियाँ बालों को सुन्दर ढङ्ग से सजाती थीं। इसके लिये वे पुष्पों का प्रयोग भी करती थीं। जूते, सुअर के चमड़े के बनाये जाते थे। स्त्री और पुरुष दोनों ही आभूषण पहनते थे। आभूषण स्वर्ण, मोती, मणि और शंख के बने होते थे।

मनोरंजन आर्य-जीवन की कल्पना सुख तथा आनन्द से ओत-प्रोत थी। इसके मनोरंजन के साधन द्यूत-क्रीड़ा, घुड़दौड़, रथों की दौड़ थे। नाटक, वीणावादन एवं नृत्य में भी इनकी अभिरुचि थीं। बाँसुरी और संगीत से इन्हें विशेष प्रेम था। इसकी चर्चा करते हुए ए० एल० बाशम ने लिखा है—"वे गान-विद्या से प्रेम करते थे वीणा, सितार, ढोल और अन्य वाद्य यन्त्रों से प्रेम करते थे।"

"They love music and played the flute, lute the harp, accompaniment of symbols and drums. —A. L. Basham.

स्त्रियाँ और पुरुष दोनों ही झाँझ बजा-बजाकर नृत्य करते थे।

स्त्रियों की दशा—आर्यों ने स्त्रियों को पूर्ण स्वतन्त्रता देकर उनका वास्तविक महत्व प्रस्तुत करने का प्रयास किया था। इस काल में एक-पत्नी-विवाह की प्रथा थी। केवल राजवंशों में बहु-विवाह की प्रथा थी। स्त्रियाँ पर्दा नहीं करती थीं। धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों में पुरुषों के साथ स्त्रियाँ भी कार्य करती थीं। बहुत से धार्मिक कृत्य स्त्रियों के बिना पूर्ण ही नहीं माने जाते थे।

वैवाहिक व्यवस्था कन्या विवाह के पूर्ण पिता के नियन्त्रण में रहती थी। विवाह पिता के इच्छानुसार सम्पन्न होता था। कुछ अंशों में कन्या की इच्छा पर भी ध्यान दिया जाता था। विवाह के पश्चात् स्त्री पति के नियन्त्रण में रहती थी। विधवा-विवाह प्रचलित था। यदा-कदा बाल-विवाह भी हुआ करते थे। अन्तर्जातीय विवाह प्रथा थी, सगोत्र विवाह भी हो सकते थे। विवाह को एक पवित्र संस्कार माना जाता था।

वर्ण-व्यवस्था—समाज ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र चार वर्गों में बंटा हुआ था। ब्राह्मण वर्ग का बहुत अधिक सम्मान होता था। ब्राह्मण का कार्य पठन-पाठन, क्षत्री का कार्य युद्ध एव रक्षा, वैश्य का कार्य व्यापार और शूद्र का कार्य सेवा था। शूद्रों को घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। इस व्यवस्था के कारण समाज में जटिलता आ गई।

शिक्षा—विद्यार्थी गुरु-आश्रम में शिक्षा प्राप्त करते थे। विद्यार्थियों की नैतिक एवं शारीरिक उन्नति का भी ध्यान रक्खा जाता था। अधिकतर शिक्षा मौखिक ही

होती थी परन्तु आगे चलकर इन्हें लेखन-कला का भी ज्ञान हो गया था। स्त्री-शिक्षा भी प्रचलित थी।

आर्थिक व्यवस्था

कृषि - आर्य सभ्यता ग्राम्य प्रधान सभ्यता है। इन लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि था। भूमि जोतने के लिए विभिन्न प्रकार के हलों का प्रयोग होता था। उर्वरा शक्ति की वृद्धि के लिये खाद का प्रयोग होता था। अच्छी पैदावार के लिए हवन तथा धार्मिक कृत्य भी किये जाते थे। नवीन अनाजों तथा फलों का ज्ञान भी इन लोगों को होने लगा था।

पशु-पालन—गाय, बैल, घोड़ा, कुत्ता आदि पशु पाले जाते थे। इनमें गाय सबसे मूल्यवान मानी जाती थी। पशुओं की खालों से विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ बनाई जाती थीं। पशुओं की पहचान के लिये उनको विभिन्न रङ्गों से रङ्गा जाता था।

व्यापार एवं उद्योग-धन्धे—उत्तर-वैदिक-कालीन आर्यों ने व्यारियों का एक वर्ग बना लिया था। आन्तरिक व्यापार के साथ ही साथ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार भी होता था। व्यापार के लिये निष्क, शतमात कृत्णाल आदि मुद्राओं का भी प्रयोग होने लगा था।

उत्तर-वैदिक-काल में कार्य क्षमता की वृद्धि हुई थी और आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुये अनेक उद्योग-धन्धों का प्रचलन हुआ था। उस काल में शिकार, पशुपालन, रथ-संचालन, चटाई बनाना, दरी बनाना, लोहे का काम आदि विभिन्न व्यवसाय प्रचलित थे। स्त्रियाँ भी उद्योग-धन्धों में सहायता देती थीं।

धातु ज्ञान में वृद्धि—इस काल में नवीन खोजों की जिज्ञासा के कारण लोगों को अनेक धातुओं का ज्ञान हो गया था। अभी तक केवल सोने का ही ज्ञान था परन्तु उत्तर-वैदिक काल तक ताँबा, लोहा, टीन आदि का उपयोग होने लगा था। इनसे भाँति-भाँति की वस्तुएँ बनने लगीं थीं।

कला एवं विज्ञान

कला और विज्ञान के क्षेत्र में भी आर्यों ने उन्नति की थी। कला के सभी क्षेत्रों के प्रति ये लोग जागरूक थे। ये नवीन खोजों के प्रति सदैव उत्सुक रहते थे। अनेक नवीन नक्षत्रों की खोज की गई थी। चिकित्सा-विज्ञान के क्षेत्र में अनेक रोगों के उपचार की विधि इन्हें ज्ञात थी। औषधियों का प्रयोग ये लोग बड़ी कुशलता से करते थे। आर्य, चिकित्सा-विज्ञान का एक पवित्र कर्म समझते थे। वेदों में ज्योतिष के कई मन्त्र ऐसे आये हैं जिनमें पृथ्वी की आकर्षण शक्ति तथा उसके घूमने का उल्लेख मिलता है।

कला के क्षेत्र में आर्य अनेक प्रकार के बर्तन बनाने लगे थे। बर्तन अधिकतर मिट्टी के ही होते थे। कला में उपयोगिता की ओर विशेष ध्यान दिया गया था।

वैदिक साहित्य

चार वेद विश्व साहित्य की अनुपम निधि हैं। ऋक्, साम, यज और अथर्व वेदों ने संसार को जो कुछ दिया है वह किसी से छिपा नहीं है। उपनिषदों और ब्राह्मणों का अपना अलग महत्व है। वैद्धिक साहित्य में षट्वेदाँग-शिक्षा, निरुक्त, छन्द, व्याकरण, कला, ज्योतिष आदि की भी सर्जना हुई थी।

महाकाव्यों के काल में रामायण और महाभारत नाम के दो ऐसे महान ग्रन्थों का निर्माण हुआ जिन्होंने भारतीय जन-जीवन में नया मोड़ ला दिया। इन ग्रन्थों की जितनी भी प्रशंसा की जाय कम है। इनकी उपयोगिता को मूल्यांकन करते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है

"रामयण और महाभारत के अतिरिक्त अन्य कोई रचना ऐसी नहीं है जिसने जनता के मस्तिष्क पर इतना गहरा असर डाला हो। यदि हम सुदूर अतीत पर दृष्टि डालें तो ज्ञात होगा कि भारतीयों के जीवन पर संस्कृति भाषा का उतना असर नहीं है जितना कि इन दो पुस्तकों के अनुवादों और भाष्यों का।"

धर्म

आर्यों के धर्म के विषय में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं —

(1) प्राकृतिक दृश्यों में दैवीय शक्ति का आभास - आर्य प्राकृतिक दृश्यों को बड़े रहस्यपूर्ण रूप में देखते थे। यही कारण था कि उन्होंने प्रत्येक उस प्राकृतिक दृश्य को जिसने उन्हे आकर्षित किया था, एक देवता के रूप में मान लिया था।

(2) बहुदेववाद—आरम्भ मे आर्यों ने अपने दवताओं को तीन श्रेणियों में बाँट रक्खा था और प्रत्येक श्रेणी में अनेक देवता आते थे। परन्तु आगे चलकर केवल कुछ ही देवताओं का महत्व रह गया था जैसे इन्द्र, वरुण, मारुत, अग्नि, मोम और सरस्वती। इनमें इन्द्र को सर्वश्रेष्ठ और सर्वशक्तिमान माना गया था। वह असुरों के संहारक के रूप में पूजा गया था। वरुण को भी इन्द्र के समान ही महत्व दिया गया था।

देवताओं का मानवीकरण इस काल में यह विश्वास था कि विभिन्न देवता केवल प्रकृति के प्रतीक भाग नहीं है वरन् उनका भी स्थिर मानव रूप है। वे भी मानव की भाँति शरीरधारी हैं।

मूर्ति-पूजा का अभाव - इस काल में मूर्ति-पूजा का कोई उल्लेख नहीं मिलता। उत्तर-वैदिक-काल की कोई मूर्ति भी नहीं मिलती है। इससे पता चलता है कि ये लोग मूर्ति-पूजा में विश्वास नहीं करते थे।

यज्ञ, बलि तथा पुरोहित का महत्व—उत्तर वैदिक कालीन आर्य लोग भाँति-भाँति के यज्ञ करते थे। यज्ञ देवताओं को प्रसन्न करके अपनी इच्छा की पूर्ति के लिये किये जाते थे। अश्वमेघ यज्ञ का महत्वपूर्ण स्थान था। एक यज्ञ में 16-17 पुरोहितों की आवश्यकता होती थी। अतः पुरोहितों का महत्व भी बढ़ रहा था। कोई भी यज्ञ बिना बलि के पूर्ण नहीं होता था। उत्तर-वैदिक कालीन आर्यों का यह विश्वास था कि बलि द्वारा ही देवता को प्रसन्न किया जा सकता है। अश्वमेघ यज्ञ में तो 609 पशुओं की बलि दी जाती थी।

पुनर्जन्म के सिद्धान्त में विश्वास—उपनिषदों के वर्णन से पता चलता है कि आर्य पुनर्जन्म के सिद्धान्त में विश्वास करते थे। पुनर्जन्म कर्मानुसार निश्चित होता है, ऐसा इनका विश्वास था। आर्य-ग्रन्थो के अनुसार वन में तपस्या करके ब्रह्मा को प्राप्त करने वाला व्यक्ति मृत्यु के पश्चात् जन्म-मरण के चक्कर से छूट जाता है। केवल सत्कर्म करके जीवन व्यतीत करने वाला तब तक चन्द्र-लोक में रहता है जब तक उसके सत्कर्मों के फल समाप्त नहीं हो जाते हैं। तत्पश्चात् पुनः जन्म लेता है। दुष्कर्म करने वाला व्यक्ति पशुओं तथा पक्षियों की योनि में जन्म लेता है।

आशावादिता—आर्य धर्म निराशावादी नहीं था। वह संसार को कल्याण-कारी मानता था। आर्य प्रकृति के मूल तत्व को जानने और उनकी व्याख्या करने का प्रयास करते थे। उनके धर्म के अनुसार मानव जीवन का उद्देश्य ईश्वर की प्राप्ति था। ईश्वर की प्राप्ति संसार में सात्विक जीवन व्यतीत करते हुए, सुख तथा शांति से रहकर आराधना करने से ही हो सकती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन आर्य सभ्यता बहुत उन्नतिशील थी। पूर्व-वैदिक काल इस सभ्यता का आरंभिक काल था। उत्तर-वैदिक काल तक आर्य पर्याप्त उन्नति कर गये थे। महाकाव्यों के युग में उनकी संस्कृति का विशेष प्रसार हुआ। भारत की अन्य युगों की सभ्यताएँ प्राचीन आर्य-सभ्यता की ऋणी हैं। प्राचीन आर्य-सभ्यता के विषय में एक विद्वान ने ठीक ही कहा है

"भारत में अनेक सभ्यताओं का विकास हुआ और सभी धीरे-धीरे विलीन हो गई परन्तु प्राचीन आर्य-सभ्यता का प्रभाव भारतीय जन-जीवन पर इतना अधिक पड़ा है कि भारतीय आज भी बड़े गर्व से कहते हैं कि हम आर्यों के वंशज है।"

सारांश

भारतीय संस्कृति की निम्नलिखित विशेषताएं हैं—

(1) प्राचीनता

(2) सक्रमता

(3) समन्वयशीलता

(4) विशाल हृदयता

(5) धार्मिकता

(6) वर्णाश्रम धर्म

आर्य काल में सम्राट को देव-तुल्य माना जाता था परन्तु वह निरंकुश नहीं होता था। उसके चुनाव की प्रथा, पुरोहित के अधिकार, मन्त्रिपरिषद्, सार्वजनिक संस्थायें आदि उस पर नियन्त्रण रखते थे। सम्राट ही न्याय का सर्वोच्च अधिकारी था और सेनापति का कार्य भी वह स्वयं करता था। आर्य-समाज बहुत उन्नत दशा में था। स्त्रियों को पूर्ण स्वतन्त्रता थी। विवाह, पिता की इच्छानुसार होता था। समाज में वर्ण-व्यवस्था विद्यमान थी। कृषि ही मुख्य उद्यम था। इसके अतिरिक्त पशुपालन, व्यापार आदि भी आय के साधन थे। आर्य नवीन खोजों के प्रति सदैव जागरूक थे। ये मिट्टी के बर्तन बनाते थे। चार वेद विश्व साहित्य की अनुपम निधि है। उपनिषदों और ब्राह्मणों का अलग महत्व है। महाकाव्यों में रामायण और महाभारत जैसे ग्रन्थ विश्व साहित्य में अपना अलग स्थान रखते हैं। आर्य बहुदेववादी थे। वे प्राकृतिक दृश्यों में दैवीय शक्तियों के दर्शन करते थे। वे मूर्ति-पूजा, यज्ञ, बलि और पुनर्जन्म में विश्वास करते थे। वे धर्म का पालन करते हुये जीवन के वास्तविक आनन्द को प्राप्त करने के लिये सदैव प्रयत्नशील रहते थे।

———

अध्याय | 31

मौर्य काल

(MAURYAN PERIOD)

प्रश्न 1—मौर्य काल की राजनीतिक और सामाजिक दशा का वर्णन कीजिये।

Describe the political and social life of the people in Mauryan period.

प्रश्न 2– धर्म और कला के क्षेत्र में मौर्य-काल की देन का मूल्यांकन कीजिये।

(पटना विश्वविद्यालय)

Evaluate the contribution of Mauryan period in the field of religion and art.

(Patna University)

प्रश्न 3—मौर्य-सभ्यता पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।

(लखनऊ विश्वविद्यालय)

Write a short essay on Mauryan civilization.

(Lucknow University)

प्रश्न 4—मौर्य-शासन की मुख्य विशेषताओं का संक्षिप्त उल्लेख कीजिये।

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

Describe briefly the main features of Mauryan administration.

(Allahabad University)

322 ई० पू० में चन्द्रगुप्त मौर्य ने नन्द वंश के अन्तिम शासक का नाश करके मौर्य साम्राज्य की स्थापना की। उसके पौत्र अशोक ने साम्राज्य को उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया। उसके राज्य की सीमा उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में चित्तल-दुर्ग जिले तक और उत्तर-पश्चिम में अफगानिस्तान से लेकर पूर्व में बंगाल तक थी। मौर्य साम्राज्य का पतन 184 ई० पू० में हुआ। 322 ई० पू० से 184 ई० के बीच के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक इतिहास की जानकारी हमें कौटिल्य के अर्थशास्त्र

मेगस्थनीज के यात्रा-विवरण तथा अशोक के लेखों से होती है। उसी के आधार पर मौर्य सभ्यता का वर्णन हम नीचे कर रहे हैं।

शासन व्यवस्था

भारत में केन्द्रीय शासन का आरम्भ वास्तव में मौर्य काल से ही मानना चाहिये। मौर्य साम्राज्य के पूर्व भारत की शासन सत्ता छोटे-छोटे राज्यों के हाथ में थी। अनेक राजाओं ने समस्त राज्यों को एक में मिलाने का प्रयत्न किया परन्तु इसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। चन्द्रगुप्त मौर्य ने भारत जैसे विशाल राज्य को एक केन्द्रीय सत्ता के सूत्र में बाँधकर शासन किया। मौर्य सम्राटों ने निरंकुश शासन स्थापित किया था। उस काल की मुद्राओं से यह ज्ञात होता है कि इस युग में निरंकुश राजतन्त्र के साथ ही गण और संघ-शासन की भी व्यवस्था की गई थी। एरियन ने कुछ नगरों का वर्णन कियाहै जहां पर स्वायत्त शासन-व्यवस्था थी। यूनानी विद्वानों का मत है कि बहुत से ऐसे राज्य भी थे जहां कोई राजा नहीं होता था। सत्य तो यह है कि इस युग में पृथक-पृथक संघ राज्य स्थापित किये गये जिनका अपना राजा होता था जो सम्राट का प्रतिनिधि होता था।

सम्राट—मौर्य सम्राट अपने को जनता का रक्षक व सेवक समझते थे। यद्यपि निरंकुश शासन की व्यवस्था की गई और शासन की समस्त शक्ति राजा में ही केन्द्रित की गई थी परन्तु राजा स्वेच्छाचारी नहीं होते थे। चन्द्रगुप्त के गुरु चाणक्य के शब्दों में—"**सुकर्म वह नहीं है जिससे केवल राजा का मनोरञ्जन हो, वास्तविक सुकर्म वह है जिससे प्रजा सुखी व सम्पन्न हो।**" कौटिल्य का यह भी कथन था कि जहाँ राजा नहीं होता वहाँ सबल दुर्बल को खा जाते हैं परन्तु जहाँ राजा होता है वहाँ निर्बल भी सबल हो जाते हैं। (Where there is no Danda-dhar or the sovereign wielding the sceptre of justice, the strong eat up the weak, as it is among fish. But, protected by the king, the weak becomes strong.)

मौर्य सम्राटों के कार्यों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) शासन सम्बन्धी कार्य

(2) न्याय सम्बन्धी कार्य

(3) सैनिक कार्य

शासन सम्बन्धी कार्यों के अन्तर्गत विदेशों से सम्बन्ध स्थापित करना, शासकीय कर्मचारियों की नियुक्ति, गुप्तचरों के द्वारा राज्य की स्थिति का ज्ञान प्राप्त करना आदि कार्य आते थे। इसके अतिरिक्त लोकहित के लिये वह अपना सारा समय राज-दरबार में ही बिताते थे।

सम्राट सर्वोच्च न्यायाधीश की हैसियत से कार्य करता था। साम्राज्य की विभिन्न अदालतों की अपीलें उसके पास आती थीं और उन्हें सुनकर वह उन पर अपना निर्णय देता था। उनका निर्णय ही अन्तिम होता था।

अपनी सेना का संगठन सम्राट स्वयं ही करता था। वह सेनानायक के रूप में स्वयं ही कार्य करता था।

मन्त्रि-परिषद्—यद्यपि राजा निरंकुश शासक था परन्तु उसे राज-कार्य में मन्त्रियों की सलाह और सहायता लेनी पड़ती थी। सम्राट की सहायता के लिये ही मन्त्रि-परिषद् का निर्माण किया गया था। डिओडोरस के अनुसार मन्त्रि-परिषद् के सदस्य सम्राट के 'परामर्शदाता' कहलाते थे। मन्त्रि-परिषद् के सदस्यों की संख्या 12 से 20 तक होती थी। मन्त्रियों की संख्या के बारे में विद्वानों के विभिन्न मत हैं। मनु के अनुसार 12, वृहस्पति के अनुसार 16 और कौटिल्य के अनुसार आवश्यकतानुसार होने चाहिये। मन्त्रि परिषद् का मुख्य कार्य राजा को सलाह देना ही होता था परन्तु उसकी सलाह मानना या न मानना राजा की इच्छा पर निर्भर करता था। मन्त्रि-परिषद् के अधिकांश सदस्य अमात्य नामक अधिकारियों में से चुने जाते थे। मन्त्रि-परिषद् के सदस्यों व इन अमात्यों का जनता से सीधा सम्पर्क बना रहता था। अतः वे राजा को जनहित की ओर ही प्रेरित करते थे। मन्त्रि-परिषद् का एक सेक्रेटरी होता था। कौटिल्य उसे मन्त्रि-परिषदाध्यक्ष कहता है। मन्त्रि-परिषद् के विषय में स्ट्रैबो का मत है—

"मन्त्रि-परिषद् में राज्य की उच्च सत्ता निहित होती है तथा वह न्याय का स्रोत है।"

मौर्य काल की मन्त्रि-परिषद् इसी आदर्श को लेकर निर्मित की गई थी।

अन्य विभाग एवं पदाधिकारी—सरकार की सुदृढ़ता के लिए एक सिविल सर्विस की स्थापना की गई थी। अशोक ने धार्मिक कार्यों के लिये धर्म महामात्रों की नियुक्ति की थी। एक सचिवालय था जिसके अनेक विभाग थे। प्रत्येक विभाग एक उच्च अधिकारी तथा सुपरिंटेन्डेन्ट के अधीन था। कौटिल्य ने इस प्रकार के 30 विभागों का वर्णन किया है जैसे शिक्षा विभाग, सिंचाई विभाग आदि उच्च पदों पर महामात्र या अमात्य नियुक्त होते थे। ये विभाग के अधिकारी होते थे। देहातों के लिये राजुक, नगरों के लिये अस्टयनोमी, जिलों के लिये अग्रतोमी नामक अधिकारी होते थे। कौटिल्य ने 18 विभागाध्यक्षों का उल्लेख किया है—

मन्त्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, दोवारिक, अन्तर्वेशिक, प्रशास्तृ, समाहर्ता, सन्निधाता, प्रदेष्ट्रि, नायक, पौर, व्यावहारिक, कर्मान्तिक, मन्त्रिपरिषदाध्यक्ष, दण्डपाल, दुर्गपाल और अन्तपाल।

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित विभागों के अन्य अध्यक्ष होते थे—कोष, आकार, लोह, लक्षण, लवण, सुवर्ण, कोष्ठागार, पण्य, कुप्य, अयुधागार, पोतव, मान, शुल्क, सूत्र, सीता, सुरा, सूना, मुद्रा, विवीत, द्यूत, गौ, नौ, पत्तन, गणिका, सेना, पत्ति, अश्व, हस्ति, रथ, संस्था, देवता।

शासन समानता के आधार पर ही चलता था। पदों पर नियुक्ति जाति भेद के आधार पर नहीं की जाती थी बल्कि योग्यता के आधार पर ही नियुक्ति होती थी। शासन की दृष्टि में देश का प्रत्येक व्यक्ति समान था। इसी कारण मौर्य-शासन को समस्त जनता का सहयोग प्राप्त था। पदाधिकारियों की नियुक्ति में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं बरता जाता था।

प्रांतीय शासन—सुविधा के लिये साम्राज्य प्रांतों में विभक्त किया गया था। श्री आर० सी० मजूमदार लिखते हैं—"अपने विशाल साम्राज्य के सुप्रबन्ध के लिये मौर्य राजाओं ने अपने राज्य को प्रांतों, जिलों, (जिन्हें अहार कहते थे) विषय एवं प्रदेशों में बाँटा था।"

"For the efficient administration to their huge empire the Mauryans divided their dominions into provinces, subdivided into districts called Ahara. Vishaya and perhaps also Pradesa."

—Dr. R. C. Majumdar.

साम्राज्य के मुख्य प्रांत थे—तक्षशिला, उत्तरीप्रांत, उज्जैन, पश्चिमीप्रांत, स्वर्णगिरि, दक्षिणी प्रान्त और तोशली। प्रान्तों को जिलों में विभक्त किया गया था। जिलों को आहार, विषय या प्रदेश कहा जाता था। प्रान्तों के प्रधान "कुमार" होते थे। यह "कुमार" कोई राजपुत्र या राजवंश से सम्बन्धित व्यक्ति ही होता था। इसकी नियुक्ति सम्राट ही करता था। इसको सहायता के लिये महामात्र होते थे। जो स्थान राजधानी के समीप होते थे उनका शासन राजा स्वयं ही करता था। अशोक के अभिलेखों से यह प्रतीत होता है कि दक्षिण में इसिल तथा समापा और उत्तर प्रदेश में इलाहाबाद के पास कौशाम्बी आदि प्रान्त थे जहाँ के शासकों को प्रादेशिक महापात्र कहते थे। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में सौराष्ट्र भी राज्य का एक प्रांत था जिसका शासक वैश्य पुष्पगुप्त था। कौटिल्य प्रांतीय गवर्नरों के लिये राष्ट्रमुख्य या राष्ट्रपाल अथवा ईश्वर शब्द प्रयुक्त करता है। प्रांतीय-व्यवस्था के फलस्वरूप शासन कार्य में बड़ी सुगमता होती थी।

संघ का शासन—प्रांतों के अतिरिक्त "गण" या सङ्घ भी होते थे जिनका प्रधान राजा कहलाता था। ये सङ्घ सरकार को कर देते थे। जिले का अधिकारी प्रादेशिक या स्थानक होता था।

ग्राम-शासन—गांवों का शासन पचायतों द्वारा होता था। कई गांवों को मिलाकर उनका एक अधिकारी बना दिया जाता था जिसे "गोप" कहते थे। गोप के अतिरिक्त अन्य अधिकारी भी होते थे जैसे वर्गाध्यक्ष, सस्थापक (Village Accountant) अनीकस्थ (Trainer of elephants) चिकित्सक, अश्वदमक (Trainer of horses) जांघिक या दूर देश गतागत जीवी। ये अधिकारी प्रदेष्टि अथवा समाहर्ता के निरीक्षण में कार्य करते थे।

नगर-शासन—कौटिल्य के अर्थशास्त्र में नगर-शासन का उल्लेख भी मिलता है। मेगस्थनीज ने पाटिलपुत्र जैसे सुशोभित नगर का वर्णन किया है। अनेक विदेशी राजदूतों ने भी यहाँ के नगरों की उत्कृष्ठता का वर्णन किया है! नगर का शासन 30 सदस्यों की एक परिषद् द्वारा सम्पन्न होता था। शासन के लिये 6 कमेटियाँ होती थीं। पहली कमेटी व्यापार ता उद्योग धन्धों को देखती थी, दूसरी विदेशी राजदूतों और अन्य विदेशियों की देखभाल करती थी। उनके पासपोर्ट का निरीक्षण करती थी तथा उन पर मोहर लगाती थी। तीसरी कमेटी जनसंख्या व जन्म-मरण का लेखा जोखा रखती थी। चौथी कमेटी बांटों का निरीक्षण करती थी व माल के क्रय-विक्रय का प्रबन्ध करती थी। पाँचवीं कमेटी उत्पादकों पर दृष्टि रखती थो कि कहीं वे नये माल में पुराना माल न मिला दें। छठीं कमेटी राज्य से कर प्राप्त करती थी और सफाई, शिक्षा इत्यादि का भी प्रबन्ध करती थी।

नगर-शासन के प्रधान को "नागरिक" कहते थे जो उपर्युक्त समितियों की सहायता से कार्य करता था। स्ट्रैबो के अनुसार नगर, नगर-अधिकारियों के कार्य समितियों द्वारा सम्पादित किया जाता है। वह लिखता है—

"These duties of the town officials were discharged by Board of five, numbering six Boards in all."

नगर की रक्षा के लिये पुलिस होती थी जो "रक्षिण" कहलाती थी। इस पुलिस का एक काम अवैध वस्तु तथा गैरकानूनी हथियार रखने वालों को पकड़ना था। नगर में अग्नि-कांड को रोकने का पूर्ण प्रबन्ध था। बड़े-बड़े जलकुण्ड तैयार रहते थे जिनसे अग्नि बुझाई जाती मी। किसी व्यक्ति की असावधानी से यद आग लग जाती थी तो अपराधी को 54 पाप दंड देना पड़ता था। जान-बूझकर आग लगाने वालों को अग्नि में जला दिया जाता था।

दंड व्यवस्था—मेगस्थनीज व कौटिल्य दोनों ही के अनुसार राज्य में कठोर दंड का विधान था। अंग-भंग दंड व प्राण-दंड अधिक दिया जाता था। अपराधियों के अपराध स्वीकार न करने पर उन्हें अनेक प्रकार की यातनायें दी जाती थीं। इस प्रकार कठोर दंड-नीति अपनाकर साम्राज्य में शान्ति स्थापित की गई थी। स्ट्रैबो का मत है— "झूठी साक्षी देने वालों के अंग का अग्रभाग काट दिया जाता था। जो दूसरे के शारी-

रिक अंग काटता था उसे जान से मारने के पूर्व अपने हाथों या आँखों से हाथ धोना पड़ता था।"

स्वास्थ्य—राज्य के ऊपर नागरिकों के स्वास्थ्य का पूर्ण दायित्व था। राज्य की ओर से चिकित्सालयों का प्रबन्ध था। यदि किसी चिकित्सक की असावधानी से रोगी की मृत्यु हो जाती थी तो चिकित्सक को दंड भुगतना पड़ता था। डा० मुकर्जी ने लिखा है—"गलत इलाज करने पर, यदि मृत्यु हो जाय तो चिकित्सक को कठोर दंड मिलता था। किसी रोगी का अंग बेकार कर देने पर शल्य चिकित्सक को भी अपना अंग कटवाना पड़ता था।"

सिंचाई—राज्य में एक पृथक विभाग का निर्माण किया गया था जो नहरों तथा तालाबों का निर्माण करवाता था और सिंचाई योग्य भूमि की देखभाल करता था। मेगस्थनीज लिखता है कि जिले के कर्मचारी जमीन की नाप जोख करते थे। देश में अकाल नहीं पड़ते थे। कृषकों को किसी भी प्रकार के कष्ट नहीं दिये जाते थे। इस बात का विशेष ध्यान रक्खा जाता था कि फसल नष्ट न होने पावे। इस प्रकार मेगस्थनीज के वर्णन से स्पष्ट होता है कि सिंचाई विभाग बड़ी निपुणता से कार्य करता था तथा कृषि की उन्नति के लिये राजा भी प्रयत्नशील रहते थे।

सड़क- मौर्य सम्राटों ने यातायात की सुविधा के लिये एक अलग विभाग खोला था जिसका काम सड़कों की मरम्मत कराना व नई सड़कें बनवाना था। सड़कों पर 2000 गज पर पत्थर गाड़ा जाता था। सड़क की चौड़ाई लगभग 32 फीट तक होती थी। व्यापारिक दृष्टि से दक्षिण की ओर जाने वाली सड़कों का विशेष महत्व था। सड़कों के दोनों ओर वृक्ष लगवाये गये थे और स्थान-स्थान पर कुओं और विश्राम-गृहों का निर्माण करवाया गया था। अशोक ने इस ओर विशेष ध्यान दिया था।

गुप्तचर विभाग—मौर्य काल में गुप्तचर विभाग बड़ा शक्तिशाली था। इसमें स्त्री व पुरुष दोनों ही कार्य करते थे। कुछ गुप्तचर भ्रमण करके राज्य की बातों का पता लगाते थे और कुछ स्थायी रूप से एक ही स्थान पर रहते थे। इनके नाम क्रमशः संचार और संस्था थे। राज्य कर्मचारियों के कार्यों के विषय में भी जानकारी रखना इन गुप्तचरों का कार्य था। आन्तरिक व बाह्य शत्रुओं और उनकी शक्ति का पता लगाना इनका कार्य होता था। गुप्तचरों के कार्यों पर दृष्टि रखने के लिये भी गुप्तचर होते थे। यदि गुप्तचरों को सूचना देने में विलम्ब होता था तो उन्हें दंड दिया जाता था। "मुद्रा राक्षस" नाटक इस बात का द्योतक है कि मौर्य-काल में गुप्तचरों का जाल बिछा हुआ था। यहाँ के गुप्तचर विभाग की प्रशंसा करते हुये वी० ए० स्मिथ ने लिखा है—"राजा योग्य जासूसों की नियुक्ति करता था, जो कई प्रकार से भेष बदलकर घूमते थे, इन पर खुफिया संघों का नियन्त्रण उसी प्रकार होता था जैसे आधुनिक जर्मनी में है।"

"The king employed best of spies, masquerading in disguises of all kinds, who were controlled by an espionage bureau, as in modern Germany."

—V. A. Smith.

सेना का संगठन—मौर्यों का सैन्य-संगठन बड़ा सुदृढ़ था। सम्राट स्वयं ही सेना का संचालन करता था। सेल्यूकस के साथ युद्ध में चन्द्रगुप्त ने स्वयं ही सेना का संचालन किया था और कलिंग युद्ध में अशोक स्वयं युद्ध-स्थल में लड़ा था। सेना में 30 सदस्यों की 6 समितियाँ होती थीं जो विभिन्न विभागों की देख-भाल करती थीं। विभाग निम्नलिखित थे—

(1) पैदल विभाग
(2) घुड़सवार विभाग
(3) रथसेना विभाग
(4) हस्तिसेना विभाग
(5) यातायात विभाग
(6) नौ-सेना विभाग

सेना का हस्ति विभाग बड़ा ही शक्तिशाली था। एक हाथी पर तीन धनुर्धर बैठते थे। रथ में 2 सेनानी रहते थे। अशोक की सेना में 60000 पैदल, 30000 घुड़सवार, 80000 रथ तथा 900 हाथी थे। मौर्यों के पास नौ सेना भी थी। अशोक के पश्चात् मौर्यों का सैनिक संगठन काफी कमजोर हो गया क्योंकि अशोक ने युद्ध की निन्दा की थी और युद्ध करना ही बन्द कर दिया था।

राज्य की आय के साधन—राज्य की आय का मुख्य साधन भूमि-कर था। भूमि-कर उपज का $\frac{1}{6}$ भाग होता था। परन्तु परिस्थितियों के अनुसार घटता-बढ़ता भी रहता था इस राज्य-कर को "भाग" कहा जाता था। भूमि-कर के अतिरिक्त राज्य की आय के अन्य साधन भी थे जैसे विक्रय कर, वनों पर कर, सिंचाई कर, दंड के जुर्माने, सीमाओं पर चुङ्गी, घाटों पर कर। इन करों के साथ ही आवश्यकतानुसार राज्य में अन्य कर भी लगाये जा सकते थे।

यह कर विशेष प्रकार के अधिकारियों द्वारा एकत्रित किये जाते थे जिन्हें समाहर्ता कहते थे। इन भिन्न-भिन्न करों द्वारा राज्यकोष में काफी धन जमा हो गया था। राज्य की आय का अधिकतर भाग सेना पर खर्च किया जाता था।

सामाजिक स्थिति

मौर्यकालीन सामाजिक स्थिति का ज्ञान हमें निम्नलिखित बातों से होता है—

वर्ग एवं वर्ण-व्यवस्था—इस काल में वर्ण-व्यवस्था का विकसित रूप

परिलक्षित होता है। कौटिल्य ने ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र चार जातियों का उल्लेख किया है। मेगस्थनीज ने सात वर्गों का वर्णन किया है। प्रथम वर्ग में दार्शनिक आते थे जिनका कार्य यज्ञ कराना शुभ मुहूर्त बताना, तथा ज्योतिष का हिसाब लगाना था। द्वितीय वर्ग कृषकों का था। यह समाज का सबसे बड़ा वर्ग था। तृतीय वर्ग में ग्वाले आदि आते थे। चौथे वर्ग में कारीगर और अन्य छोटे-छोटे उद्योग करने वाले आते थे। पंचम वर्ग सैनिकों का था। सैनिक इजाश्रय में पलते थे और केवल युद्ध के समय में महत्वपूर्ण कार्य करते थे। निरीक्षक वर्ग छठाँ वर्ग था। इसमें गुप्तचर भी आते थे जिनका कार्य सम्राट व उच्च पदाधिकारियों को राज्य की सूचना देना होता था। सातवाँ वर्ग अमात्यों या प्रशासकों का था। गिने चुने लोग ही इस वर्ग में आते थे। इनके ऊपर ही राज्य का संचालन निर्भर करता था।

वैवाहिक व्यवस्था—मौर्य काल में वैवाहिक नियमों के अनुसार कन्या की आयु विवाह के समय बारह वर्ष और वर की आयु 16 सोलह वर्ष होनी चाहिये थी। इससे कम अवस्था की कन्याओं और युवकों का विवाह नहीं होता था। कौटिल्य ने आठ विवाहों का उल्लेख किया है—ब्रह्म शौल्क, प्रजापति, दैव, गन्धर्व, आसुर, राक्षस तथा पिशाच। बहुविवाह प्रथा और तलाक प्रथा भी उस समय प्रचलित था।

स्त्रियों की दशा—मौर्य काल में समाज में स्त्रियों का मान कम था। उन्हें पर्याप्त स्वतन्त्रता प्राप्त थी परन्तु स्त्रियाँ पुरुषों के अधीन हुआ करती थीं। स्त्रियों में अन्ध-विश्वास काफी मात्रा में था। सती-प्रथा नहीं थी परन्तु दहेज-प्रथा प्रचलित थी। स्त्रियाँ राजकीय कार्यों में भी सहायता देती थीं। उदाहरण के लिये वे सम्राट की संरक्षिका नियुक्त होती थीं और गुप्तचरों का भी कार्य करती थीं स्त्रियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। कुछ स्त्रियों में पर्दे की प्रथा भी प्रचलित थी।

खान-पान - मौर्य काल में शाकाहारी व मांसाहारी दोनों ही प्रकार के लोग थे। भोजन को स्वादिष्ट बनाने का विशेष प्रयास किया जाता था। मांस अधिक मात्रा में बेचा तथा खाया जाता था। माँस बेचने वाले अपनी दुकानें अलग रखते थे। यद्यपि अशोक ने माँस का निषेध किया परन्तु उसे अधिक सफलता नहीं मिली। समाज में शराब का प्रचलन था था। शराब बेचने वाले शराब के साथ-साथ वेश्याएँ व दासियाँ भी रखते थे। मदिरा का सेवन सिर्फ मदिरालयों में ही किया जा सकता था। उसके बाहर शराब ले जाने की मनाही थी।

आमोद-प्रमोद—मौर्य काल में समाज में अनेक प्रकार के आमोद प्रमोद के साधन उपलब्ध थे। शिलालेखों से इस बाद का पता चलता है कि उस समय अनेक उत्सव हुआ करते थे जिनमें पुरूषों के साथ ही स्त्रियाँ भी भाग लेती थीं। उत्सवों के मौकों पर सम्राट दान देकर अपनी उदारता का परिचय देते थे। नृत्य, गान तथा

वाद्यों से लोग ग्रामोद-प्रमोद करते थे । लोग पहलवानों को बुलवाकर दंगल भी करते थे । रथों, हाथियों व घोंड़ों की दौड़ होती थो । नाटक भी मनोरंजन का साधन था । कुछ इतिहासकारों का मत है कि शतरंज भी इस युग में प्रचलित थी । ग्राखेट द्वारा भी यह लोग मनोरंजन करते थे ।

ग्रार्थिक दशा

मौर्य-काल ग्रार्थिक गौरव का युग था । देश धन धान्य से पूर्ण था । कृषि, शिल्प, व्यापार ग्रादि ग्रत्यन्त उन्नत दशा में थे । उस युग की ग्रार्थिक स्थिति का पता हमें निम्नलिखित बातों से चलता है—

कृषि—कृषि लोगों का मुख्य धन्धा था । किसान ग्रनाज व फल बहुत ग्रधिक मात्रा में उपजाते थे । सिंचाई की भो ग्रच्छो व्यवस्था की गई थी । सरकार ने गोदामों को बनवाकर उनमें ग्रनाज भरने की व्यवस्था की थी । इनमें भरा हुग्रा ग्रनाज ग्रकाल ग्रादि के पड़ने पर काम ग्राता था । विपत्ति के समय किसानों को राज्य की ग्रोर से बीज मिलते थे तथा ग्रन्य सहायता भी दी जाती थी । इस प्रकार कृषि को उन्नत बनाने का प्रयास किया गया था । ग्रग्नि से जानवरों ग्रौर फसलों को बचाने के लिए भी विशेष व्यवस्था की गई थी ।

उद्योग-धन्धे—इस युग में विभिन्न प्रकार के उद्योग-धन्धे प्रचलित थे । ऊनी, रेशमी तथा सूती सभी प्रकार के वस्त्र बुने जाते थे । विभिन्न प्रकार के ग्रस्त्र-शस्त्रों का निर्माण किया जाता था । जलपोत्र भी बनवाए जाते थे । कपड़े के सम्बन्ध में तो विद्वानों का मत है कि यहाँ के जुलाहे भारत के साथ-साथ विश्व के ग्रनेक देशों की ग्रावश्यकताग्रों को पूरा करते थे । स्ट्रैबों ने लिखा है कि वस्त्रों पर स्वर्ण-निर्मित तारों का काम होता था । इनको कीमती रत्नों से सजाया जाता था । ग्रौर सुन्दर मखमल पर ग्राकर्षक फूल बनाये जाते थे । उत्तरी एवं दक्षिणी भारत के ग्रनेक नगरों में उच्चकोटि की मलमल तैयार की जाती थी । दक्षिणी भारत की विशाल मण्डियाँ प्रति वर्ष सहस्त्रों रुपये का मलमल निर्यात करती थीं । इस प्रकार कपड़े का उद्योग भारत का प्रिय उद्योग था । इसके ग्रतिरिक्त ग्रन्य उद्योग भी प्रचलित थे । ठठेरे, तेली, कुम्हार ग्रादि ग्रपने-ग्रपने पृथक संघों की स्थापना करते थे । राज्य की ग्रोर से इन सङ्घों को ग्रार्थिक सहायता दी जाती थी । योरूप के 'गिल्ड' की ही तरह भारतीय व्यवसाइयों ने ग्रपने को श्रेणियों में विभक्त किया था । सभी उद्योग धन्धे उन्नति के शिखर पर थे इसी कारण देश धन-धान्य पूर्ण था ।

व्यापार—राज्य में यातायात की सुविधाग्रों के कारण ग्रौर उद्योगों के उन्नत दशा में होने से व्यापार भी बहुत उन्नत ग्रवस्था में था । कई बड़ी-बड़ी सड़कों का निर्माण कराया गया था जो देश के व्यापारिक केन्द्रों को जोड़ती थीं । प्रथम

सड़क पाटिलपुत्र से बनारस तथा अन्य उत्तर के नगरों को मिलाती थी। दूसरी पाटिलपुत्र से बनारस तथा उज्जैन होती हुई पश्चिम के बन्दरगाहों तक जाती थी। तीसरी सड़क पाटिलपुत्र को ताम्रलिप्ति के प्रसिद्ध बन्दरगाह से जोड़ती थी। इन सड़कों पर छायादार वृक्ष और कुएं भी थे। राज्य की ओर से इनकी सुरक्षा का पूर्ण ध्यान रखा जाता था। तक्षशिला, उज्जैन, कौशाम्बी, काशी, पाटिलपुत्र इत्यादि नगर महान व्यापारिक केन्द्र थे। इन नगरों से अधिकतर वस्त्र और भोग विलास की सामग्री निर्यात की जाती थीं और चाँदी के बर्तनों, शराब, दासों और सुन्दरियों का आयात होता था। यहाँ के नाविक बड़े साहसी हुआ करते थे।

आर्थिक स्थिति अच्छी होने के कारण यहाँ के नगर भी अत्यन्त भव्य थे। पाटिलपुत्र नगर की लम्बाई 9 मील और चौड़ाई 1॥ मील थी। उसके चारों ओर एक दीवाल थी जिसमें 64 द्वार, 570 बुर्ज थे। राजमहलों की प्रशंसा करते हुए मेगस्थनीज लिखता है कि ये महल मूसा के राजमहलों से भी अधिक सुन्दर थे। यहाँ के धन-धान्य का पता वहाँ के नागरिकों के रहन-सहन से लगता है। ये लोग बड़ा ही विलासमय जीवन व्यतीत करते थे। कौशाम्बी, तक्षशिला, उज्जयिनी आदि अत्यन्त प्रतिष्ठित प्रान्त थे। एरियन, स्ट्रैबो, प्लीनी अदि इतिहासकारों ने इसके महान उत्कर्ष का वर्णन किया है। टालमी एवं एरियन ने पुष्कलावती को भी विशाल एवं घनी आबादी वाला नगर बताया है।

धार्मिक स्थिति

इस युग में वैदिक, जैन और बौद्ध तीनों ही धर्मों का प्रचलन था। मेगेस्थनीज के वर्णन तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र से पता चलता है कि इस युग में वैदिक धर्म के अनुयायी भी कम मात्रा में नहीं थे। चन्द्रगुप्त के युग में यज्ञों और पशु-बलि का प्रचलन था। कहा जाता है कि अशोक भी अपने आरम्भिक जीवन में शैव धर्म को मानने वाला था। इस युग में वेदों, उपनिषदों, और अन्य धर्म-ग्रन्थों का पठन-पाठन भी प्रचलित था। तक्षशिला में वेदों तथा वेदांगों का अध्ययन करवाया जाता था।

जैन धर्म भी इस युग में प्रचलित था। कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त ने बाद में जैन धर्म को स्वीकार कर लिया था। विद्वानों का मत है कि उसने जैन साधुओं की तरह ही उपवास करके अपने प्राणों का परित्याग किया था। जैनियों में संप्रदाय विभाजन हो चुका था। उनमें मूर्ति पूजा का समावेश हो गया था। महावीर में ईश्वरत्व की कल्पना की जाने लगी थी।

इस युग में बौद्ध धर्म की विशेष उन्नति हुई। इस धर्म की उन्नति में अशोक ने महान योगदान दिया। कलिंग विजय के पश्चात् उसने बौद्ध धर्म स्वीकार किया।

बौद्ध धर्म से ही प्रभावित होकर उसने भविष्य में युद्ध न करने की शपथ ग्रहण की और धर्म के प्रसार और प्रचार में ही अपना शेष जीवन लगा दिया। उसने इस धर्म के प्रचारकों को राजकीय सहायता व सब प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की। बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियों के लिये उसने अनेक बिहार, स्तूप आदि बनवाये। धर्म प्रचार के लिए उसने अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को लंका भेजा। वर्मा में भी बौद्ध धर्म का प्रचार उसी के सद्प्रयासों से हुआ। अशोक ने अनेक स्तम्भों, और गुफाओं का निर्माण भी धर्म के प्रचारार्थ करवाया। अनेक शिलालेख लिखवाए और बौद्ध धर्म को पूर्णरूप से राजकीय संरक्षण प्रदान किया। अशोक के बहुत दिनों पश्चात् कनिष्क ही एक ऐसा शासक हुआ जिसने बौद्ध धर्म को मान्यता प्रदान की।

मौर्य-काल में देव पूजा का भी प्रचार था। इन्द्र और वरुण की पूजा की जाती थी। वासुदेव व बलराम की उपासना का उल्लेख पाणिनि ने किया है। वैदिक धर्म में बलि और यज्ञों का भी प्रचलन था परन्तु बाद में अशोक ने मद्यपान और पशु-बलि का निषेध कर दिया था।

शिक्षा एवं साहित्य

मौर्य काल में शिक्षा के क्षेत्र में विशेष उन्नति हुई थी इस युग में तक्षशिला विश्वविद्यालय बहुत उन्नति पर था। शिक्षा का आधार धर्म था। धार्मिक रीतियों पर शिक्षा प्रचलित थी। गुरु के घर ही रहकर शिष्य शिक्षा प्राप्त करता था। पाठन कार्य अचार्य, पुरोहित तथा श्रोत्रिय ही करते थे। अध्यापकों को राज्य की ओर से वेतन मिलता था। विद्यार्थी से धन लेने का अधिकार अध्यापक को नहीं था। अनेक निर्धन विद्यार्थी सेवा व्रत लेकर गुरु के पास रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे। राजकुमारों को भी गुरु के आश्रम में जाकर शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती थी। एक आचार्य या अध्यापक 520 विद्यार्थियों तक को शिक्षा प्रदान कर सकता था। शिक्षा प्रदान करने में अध्यापक का कोई स्वार्थ नहीं होता था।

शिक्षा के क्षेत्र में ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र सभी को समान अधिकार थे। विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती थी जिनमें मुख्य यह थे :—वेद, व्याकरण, धनुर्विद्या, चिकित्सा आदि। अनिवार्य विषयों के अन्तर्गत धर्म-शास्त्र, अलंकार-शास्त्र, व्याकरण आदि आते थे। पाणिनि के समय व्याकरण पर विशेष बल दिया जाता था। बनारस, उज्जैन, तक्षशिला आदि शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे।

मौर्य काल में ब्राह्मी और खरोष्ठी दो प्रकार की लिपियाँ प्रचलित थीं। ब्राह्मी बाईं ओर से दाहिनी ओर और खरोष्ठी दाहिनी ओर से बाईं ओर लिखी जाती थी। ब्राह्मी लिपि ही भारत की राष्ट्रीय लिपि थी और खरोष्ठी लिपि का प्रचलन पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रदेशों में अधिक था।

मौर्य काल में संस्कृत और पाली दोनों ही भाषायें प्रचलित थीं। संस्कृत साहित्यिक भाषा थी और पाली बोलचाल की भाषा थी। संस्कृत भाषा में ही अधिकतर ग्रन्थो की रचना हुई। संस्कृत व्याकरण के नियमों से बधी हुई थी। कुछ बौद्ध ग्रन्थों की रचना पाली भाषा में हुई। अशोक ने पाली को राजभाषा बनाया था और अभिलेखों में इसी भाषा का प्रयोग किया था।

मौर्य-काल को इतिहासकारों ने सूत्र-ग्रन्थों के काल के नाम से पुकारा है क्योंकि इसी काल में गृह्य-सूत्र, धर्म-सूत्र तथा वेदान्त ग्रन्थों की रचना हुई थी। बौद्ध कथावस्तु और त्रिपिटक इसी काल में लिखे गये थे। व्याडि और कत्यायन के व्याकरण ग्रन्थों का निर्माण भी इसी काल में हुआ। रामायण और महाभारत के कई भागों की रचना इसी काल में हुई। बौद्ध विद्वान नागसेन ने भी इसी युग में जन्म लिया। कौटिल्य का अथशास्त्र और भद्रबाहु का अल्पसूत्र इस युग के अनुपम ग्रन्थ हैं।

कला

मौर्य-काल से ही हमें भारतीय कला के वास्तविक रूप के दर्शन होते हैं। मौर्य-काल से पूर्व भारत में कला नही के बराबर ही थी। मौर्य-काल में कला को राजाश्रय प्राप्त हुआ। अशोक महान की छत्रछाया में कला की विशेष उन्नति हुई। अशोक के पूर्व लकड़ी का प्रयोग भवन-निर्माण आदि के लिये किया जाता था। अशोक ने लकड़ी के स्थान पर पाषाणों का प्रयोग किया। अशोक के समय से ही भारतीय भास्कर कला के स्पष्ट दर्शन होते है। इस कला की कुछ अपनी पृथक विशेषतायें हैं। यह कला वैयक्तिक है और इसका उद्देश्य जनसाधारण के मन में मौर्य साम्राज्य की गरिमा की छाप बैठाना था। अशोक के विषय में श्री बी० जी० गोखले ने लिखा है—

"It is only with Ashoka that we can properly begin the history of the art of ancient India. He, it was, who subsituted stone for wood, the common material for building purposes before his time. The Mauryan art best, as it were, on the scene with a tremendous force shown through both its technique and material used."

मौर्यकालीन कला के चार रूप परिलक्षित होते हैं—

(1) राजप्रासाद तथा भव्य भवन

(2 गुफाएँ

(3) स्तूप

(4) स्तम्भ या लाट

राजप्रासाद तथा भव्य भवन—चन्द्रगुप्त मौर्य ने अनेक भवनों का निर्माण करवाया। भवन, स्तम्भ पर ही खड़ा होता था। चीनी यात्री फाह्यान भी इन भवनों को देखकर चकित रह गया था। इन भवनों में विशाल कमरे बने हुये थे। स्तम्भों के ऊपर सोने तथा चाँदी की पालिश की गई थी तथा विभिन्न आकृतियाँ बनी हुई थीं। अशोक का बनवाया हुआ राजमहल तो मनुष्यों द्वारा बनवाया हुआ प्रतीत ही नहीं होता है। फाह्यान कहता है कि यह प्रेतात्माओं द्वारा बनवाया गया होगा।

मौर्य सम्राटों की राजधानी पाटिलपुत्र थी। इस नगर के सम्बन्ध में सेल्यूकस लिखता है कि, "भारतवर्ष का सर्वश्रेष्ठ नगर पाश्चात्य देशों में पाटिलपुत्र कहलाता है। वह गंगा और सोन नदियों के तट पर स्थित है। इस नगरी की बस्ती की लम्बाई में लगभग 15 मील और चौड़ाई में 3 मील है। यह नगरी समानान्तर चतुर्भुज की शक्ल में बनी है। इसके चारों ओर लकड़ी की एक प्राचीर है जिसके बीच में तीर छोड़ने के बहुत से छेद बने हैं। दीवार के साथ चारों तरफ एक खाईं है जो रण के निमित्त और शहर के मैला बहाने के काम आती है। यह गहराई में 45 फीट और चौड़ाई में 600 फीट है। शहर के चारों ओर की प्राचीर 500 बुर्जों से सुशोभित है और उसमें 64 द्वार बने हैं।" इस नगर की प्रशंसा चीनी यात्री फाह्यान ने भी की थी। यहाँ के भव्य भवनों को देखकर फाह्यान इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। अशोक के भवन के विषय में उसने लिखा है—

"नगर में राजा अशोक का राजप्रासाद और सभा भवन है। सब असुरों के बनाये हुये हैं। पत्थर चुनकर दीवारें और द्वार बनाये जाते हैं। उन पर सुन्दर खुदाई और पच्चीकारी है। इस लोक के लोग उसे नहीं बना सकते।"

गुफाएँ– अशोक एक धार्मिक सम्राट था अतः उसने साधुओं के लिये गुफाओं का निर्माण करवाया था। ये गुफाएं बारबरा और नागार्जुन की पहाड़ियों में स्थित थीं। इनको पत्थरों को काटकर बनाया गया था। इनकी दीवारों पर चमकती पालिश की गई थी। यह गुफाएं इस काल की कला के उत्कृष्ठ नमूने हैं।

पहाड़ों को काटकर अनेक प्रकार के मन्दिर तथा चैत्य बनाये गये थे। मौर्यकालीन 'गोपिका कुहाभवन' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिसका निर्माण महाराज दशरथ ने करवाया।

स्तूप—धार्मिक भावना से प्रेरित होकर ही स्तूपों का निर्माण भी करवाया गया था। साधु-सन्तों तथा अन्य महान पुरुषों की अस्थियों पर समाधि रूप में स्तूप

बनाये जाते थे। यह अत्यन्त पवित्र समझे जाते थे। सम्राट अशोक ने 84000 स्तूप बनवाए थे। इनके चारों ओर एक पाषाण का घेरा होता था जिस पर अनेक चित्र अंकित होते थे। चीनी यात्री ह्वेनसाँग ने लगभग 80 विहारों और स्तूपों का अवलोकन किया था। साँची का स्तूप अत्यन्त सुन्दर है। इस स्तूप का व्यास लगभग 121½ फीट तथा ऊंचाई 77½ है। इसके चारों ओर 11 फीट ऊंचाई का एक घेरा बना है। ह्वेनसाँग तक्षशिला के तीन स्तूपों के बारे में लिखता है कि प्रत्येक स्तूप की ऊंचाई 100 फुट थी। इसने श्रीनगर, कपिलवस्तु बनारस, अयोध्या, प्रयाग और कन्नौज के स्तूपों का भी वर्णन किया है।

1873 की खुदाई में कनिंघम को भरहुत में एक बड़े स्तूप के अवशेष प्राप्त हुये। इस स्तूप के चारों ओर भी एक पाषाण-रेलिंग बना था। स्तूप की दीवारों पर उत्कीर्ण की गई गाथाएं चित्रकला की श्रेष्ठता को उद्घोषणा करती थीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन स्तूपों में मौर्य काल की कला का वास्तविक रूप परिलक्षित होता है। मौर्य-कालीन वास्तु-कलाकारों के विषय में एक विद्वान का कथन है—"उन्होंने सम्पूर्ण योग्यता का परिचय ऐसे कामों में दिया। जो लोग इन कार्यों को करते थे वे अपनी कला के ज्ञान के लिये अधिक प्रयत्नशील रहते थे।"

स्तम्भ व लाट—स्तम्भ व लाट मौर्य-कला के अनुपम उदाहरण हैं। इन स्तम्भों का भार लगभग 50 टन तथा ऊंचाई 50 फुट तक है। स्तम्भ के तीन भाग होते थे—

(1) पृथ्वी में गड़ा हुआ भाग
(2) पृथ्वी के ऊपर का गोल तथा
(3) तने पर बना शीर्ष

स्तम्भों का कई फुट भाग पृथ्वी के अन्दर गड़ा होता था। इस अन्दर वाले भाग पर मोरों की आकृतियाँ मिलती हैं।

पृथ्वी के ऊपर का भाग गोल तथा एक ही पाषाण से बना हुआ होता था। धीरे-धीरे ऊपर की ओर इसकी गोलाई कम होती जाती थी। इसके ऊपर की ओर एक ही पत्थर में कटा हुआ शीर्ष होता था।

अशोक के स्तम्भों में शीर्ष के ऊपर सिंह, वृषभ, हस्ति आदि के चित्र बने हुये थे। इन स्तम्भों का शीर्ष कला की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। स्तम्भ के ऊपरी भाग में उल्टा कमल का फूल बना होता था जिसमें पत्तियाँ बड़े ही कलात्मक ढंग से बनाई जाती थीं। इसके किनारे चारों ओर विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ चित्रित की गई थीं। फूल के ऊपर अंगूठी के घेरे की भाँति गोल तथा कहीं-कहीं पर रस्सी की

भाँति ऐंठी हुई किनारी बनी हुई थी। चक्र विशेष रूप से सुन्दर बनाया गया था जो धर्म-चक्र का द्योतक था। सारनाथ स्तम्भ के शीर्ष स्थान पर चार सिंहों की मूर्तियाँ बनी हैं जो मौर्यों की शक्ति और एश्वर्य की परिचायक हैं। शीर्षस्थ पशु कला का विकास बसरा के रमपुरवा में अधिक तथा सारनाथ के सिंहों में और अधिक मिलता है। सारनाथ में चार सिंह पीठ से पीठ सटाए हुये दिखाये हुए है। इनके मुख बाहर की ओर है। सिंहों में बड़ी सजीवता है। इन सिंहों की मांस-पेशियाँ सुडौल और उभरी हुई है। सर जान मार्शल ने सिंहों की कला की प्रशंसा निम्नलिखित शब्दों में की है।

"Sarnath capital is the product of most developed art of which the world was cognizant in the 3rd century B. C... the framework of one who had generations to artistic efforts and experience behind him. In the masterful strength of the crowing lions with their swelling views and tense muscular development and in the spirited realism of the relieves below there is not trace of premitive art."

इस स्तम्भ की प्रशंसा करते हुये वह पुनः लिखते हैं—

"These sculptures are masterpieces in point of both style and technique, the finest carving indeed, that India has yet produced, and unsurpassed, I venture to think, by anything of their kind in the ancient world"

इस युग की भास्कर कला की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं जैसे एक ही पाषाण में स्तम्भों को काटना, उस पर विभिन्न आकृतियों को बनाना और उन उर पालिश करना, इस कला में भावों का प्रकाशन बड़ी कुशलता से किया गया है। महात्मा बुद्ध की अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं जिनमें उनके जीवन सम्बन्धी विभिन्न दशाओं को चित्रित किया गया है। इस युग की मूर्तियों मे बेसनगर की स्त्री की मूर्ति, पटना में प्राप्त मूर्ति और परखम नामक ग्राम में प्राप्त 6 फीट ऊँची मूर्ति विशेष प्रसिद्ध है।

सर जान मार्शल, एन० आर० रे, आदि विद्वान अशोक के युग के कलाकारों पर पारसीपोलिस की स्तम्भ कला की छाप के दर्शन करते हैं परन्तु स्मिथ इस मत के समर्थक नहीं प्रतीत होते। वे पारसीपोलिस के स्तम्भों में उस कलात्मकता के दर्शन नहीं करते जो उन्हें मौर्य काल के स्तम्भों में परिलक्षित होती है। अशोक के स्तम्भों के विषय में स्मिथ ने लिखा है—

"They are chiselled with the extraordinary percision and accuracy which characterise the worksmanship of the Mauryan age and have never been surpassed in Athens or elsewhere."

इसके अतिरिक्त इस काल के अनेक गुफालेख और अभिलेख प्राप्त हुये जो उस युग की कला का दिग्दर्शन कराते हैं। शिला को काट कर बनाया गया धौली का हाथी अति सुन्दर है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न क्षेत्रों में मौर्य काल में विशेष उन्नति हुई। भारतीय संस्कृति का गरिमा में मौर्य काल की विशिष्ट देन है। भारतीय संस्कृति का उज्वलतम रूप मौर्य और गुप्त काल में ही परिलक्षित होता है।

सारांश

मौर्य काल से ही भारत में केन्द्रीय व्यवस्था का आरम्भ हुआ। इस युग में सम्राट को शासन सम्बन्धी, न्याय सम्बन्धी सेना सम्बन्धी सभी प्रकार के अधिकार होते थे। उसकी सहायता के लिये एक मन्त्रि-परिषद होती थी जिसके सदस्यों की संख्या 21 से 20 तक होती थी। अन्य विभागों के अलग-अलग पदाधिकारी होते थे। कौटिल्य ने 18 विभागाध्यक्षों का उल्लेख किया है। शासन की सुविधा के लिये प्रान्तों का निर्माण किया गया था जिनके शासक 'कुमार' होते थे। इनकी नियुक्ति सम्राट द्वारा ही होती थी। गणों या सङ्घों की भी व्यवस्था थी। गाँवों का शासन पंचायतों द्वारा होता था। नगर का शासन 30 सदस्यों की एक समिति द्वारा संचालित होता था। नगर की रक्षा के लिये पुलिस भी होती थी जिसे 'रक्षिण' कहते थे इस युग में कठोर दन्ड का विधान था। गुप्तचर विभाग की भी स्थापना की गई थी। सेना के 6 विभाग होते थे। भूमि कर राज्य की आय का मुख्य साधन था। समाज में वर्ग एवं वर्ण-व्यवस्था विद्यमान थी। कौटिल्य ने आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख किया है। विवाह के लिए वर की आयु 16 वर्ष और कन्या की आयु 12 वर्ष निश्चित थी। इन लोगों में शाकाहारी और मांसाहारी दोनों ही प्रकार के लोग होते थे। इस युग में अनेक उत्सव होते थे। जानवरों की दौड़ें भी आमोद-प्रमोद का साधन थीं। मौर्य काल में कपड़े के उद्योग में विशेष उन्नति हुई थी। यहाँ अस्त्र शस्त्रां का निर्माण भी होता था। अनेक व्यवसायिक सङ्घों की भी स्थापना की गई थी। तक्षशिला, उज्जैन, कौशाम्बी, काशी और पाटिलपुत्र महान व्यापारिक केन्द्र थे।

इस युग में बौद्ध धर्म के साथ ही वैदिक और जैन धर्म का विकास हुआ। चन्द्र-गुप्त के काल में वैदिक धर्म का विकास हुआ परन्तु कहा जाता है कि वह बाद में जैन मतानुयायो हो गया। अशोक के काल में बौद्ध धर्म ने बहुत अधिक उन्नति की अशोक ने बोद्ध धर्म के प्रसार का विशेष प्रयास किया। अपने पुत्र और पुत्री को लंका भेजा और वर्मा में भी इस धर्म का प्रसार किया।

मौर्य काल का तक्षशिला विश्वविद्यालय शिक्षा का प्रधान केन्द्र था। बनारस, उज्जैन आदि में भी शिक्षा का उचित प्रबन्ध था। इस युग की साहित्यिक भाषा

संस्कृति और जन-भाषा पाली थी। अशोक ने अभिलेखों में पाली का ही प्रयोग किया है। इस युग में गृह्य-सूत्र, धर्म-सूत्र तथा वेदान्त ग्रन्थों की रचना हुई। त्रिपिटक इस युग में लिखे गये। व्याडि और कात्यायन के व्याकरण ग्रन्थों की रचना भी इसी काल में हुई। मौर्य कला के दर्शन राजप्रासादों, गुफाओं, स्तूपों और स्तम्भों में होते हैं। पाटलिपुत्र नगर की प्रशंसा अनेक विद्वानों ने की है। पहाड़ों को काटकर अनेक गुफाओं का निर्माण हुआ जिनमें बारबरा और नागार्जुन की गुफाएं मुख्य हैं। सांची, भरहुत, श्रीनगर, कपिलवस्तु, बनारस और अयोध्या के स्तूपों में मौर्य-कला साकार हो उठी है। इस काल की कला का उज्ज्वलतम रूप स्तम्भों में मिलता है। बसरा, रामपुरवा, सारनाथ आदि अनेक स्थानों पर इन स्तम्भोंका निर्माण हुआ। स्तम्भों का सुन्दरतम भाग उनका शीर्ष है। सारनाथ के स्तम्भ के चार सिंहों की प्रशंसा अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने की है। इस युग में महात्मा बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित अनेक मूर्तियों का निर्माण भी हुआ। वेसनगर में प्राप्त स्त्री की मूर्ति, पटना, परखम में प्राप्त मूर्तियां और धौली का हाथी विशेष सुन्दर है।

गुप्त-काल

(GUPTA-PERIOD)

प्रश्न 1—गुप्त-शासन प्रणाली की विशेषताओं का उल्लेख कीजिये ।

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

Mention the salient features of the administrative system of the Guptas.

(Allahabad University)

प्रश्न 2—गुप्त-कालीन कला और साहित्य पर प्रकाश डालिये ।

Give an account of art and literature of Gupta period.

प्रश्न 3—"गुप्त-काल भारतीय इतिहास का स्वर्ण-युग है"—विवेचना कीजिये ।

(लखनऊ विश्वविद्यालय)

Gupt period is the Golden period of Indian History." Discuss.

(Lucknow University)

प्रश्न 4—गुप्त-कालीन संस्कृति पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये ।

Write a short essay on the cultural advancement in the Gupta period.

एक सभ्यता की समाप्ति पर दूसरी नवीन सभ्यता का उदय होना प्रकृति का नियम है । इसी नियम के अनुरूप मध्य-काल की सुसंगठित मौर्य सभ्यता के पतन के पश्चात् अन्य विदेशी सभ्यताओं एवं संस्कृतिओं का भारत में आगमन हुआ । मौर्य-कालीन संस्कृति के पतन ही के साथ समाज अन्धकार की ओर तीव्र गति से बढ़ता गया । इस अव्यवस्थित काल में एक नवीन वंश का अभ्युदय हुआ । गुप्तकालीन शासकों ने विच्छित राजनीतिक व्यवस्था को संगठित रूप प्रदान किया । सामाजिक

प्रगति को ओर ध्यान दिया और साहित्य एवं कला को प्रोत्साहन दिया। सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक एवं कला सम्बन्धी प्रगति के कारण ही यह युग भारतीय इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

राजनीतिक व्यवस्था

सम्राट—गुप्त राजाओं ने विकेन्द्रीकरण की प्रमुख शक्ति छोटे-छोटे राज्यों को समाज करके सभी राज्यों को मिलाकर एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। उस साम्राज्य का प्रधान राजा स्वयं था। गुप्तकालीन साहित्य से यह पता चलता है कि उस काल में केन्द्र का अधिष्ठाता सम्राट निरंकुश था। राज्य के महत्वपूर्ण पदों के अधिकारियों की नियुक्ति राजा ही करता था। सम्मानित व्यक्तियों की उपाधियाँ प्रदान करने का कार्य भी राजा द्वारा ही सम्पादित होता था।

सम्राट का पद वंशानुगत होता था और यह पद पूर्व सम्राट के बड़े पुत्र को ही प्राप्त होता था। परन्तु कभी-कभी बड़े पुत्र की अयोग्यता देखकर सम्राट छोटे पुत्र को भी अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर देता था। सम्राट पद इस युग में बहुत ही महत्वपूर्ण माना जाता था। उसे देवतुल्य समझा जाता था। इसी कारण संपूर्ण शासन का केन्द्र सम्राट ही होता था। सम्राट प्रजा का ऋणी समझा जाता था तथा उस ऋण से मुक्त होने के लिए वह जन-भावनाओं का सम्मान करता था तथा राज्य में शान्ति तथा सुव्यवस्था बनाये रखता था। देश की नीति-निर्धारण का कार्य भी सम्राट ही करता था।

मंत्रि-परिषद्—उस समय शास्त्रानुमोदित मन्त्रि-परिषद् का भी निर्माण किया गया था। इसमें हर विषय के पण्डित होते थे। विभिन्न विभाग होते थे और हर विभाग अलग-अलग मन्त्री के अधीन होता था। यह मन्त्री अपने-अपने विभाग की देखभाल भली प्रकार करते थे। महत्वपूर्ण विषयों पर परिषद् की बैठक में सभी मन्त्रियों की सम्मिलित सलाह ली जाती थी। मन्त्रियों की नियुक्त सम्राट ही करता था।

केन्द्रीय शासन की देखभाल का कार्य एक अधिकारी करता था जिसे 'सर्वाध्यक्ष' कहते थे। उसकी सहायता के लिए अन्य पदाधिकारी भी होते थे।

प्रान्तीय शासन—विशाल साम्राज्य की व्यवस्था केवल एक ही व्यक्ति द्वारा सम्पादित हो जाना दुष्कर था। अतः शासन की सुविधा के लिए साम्राज्य को विभिन्न प्रान्तों में बाँट दिया गया था। प्रान्त 'भुक्ति' कहलाता था। भुक्ति का प्रधान 'भुक्तिपति' कहलाता था। भुक्तिपति राजा के प्रति उत्तरदायी होता था। यह पद राज-परिवार वालों के लिए ही सुरक्षित था।

'भुक्ति' 'विषयों' में विभक्त होता था जिनका प्रधान विषयपति होता था। यह विषय में शांति और सुव्यवस्था रखता था। इसकी सहायता के लिए एक परिषद् होती थी। परिषद् के सदस्यों की नियुक्ति जनता द्वारा होती थी। इस प्रकार शासन के प्रति जनता भी उदासीन न थी।

विषय, ग्रामों तथा नगरों में विभक्ति होते थे। नगरों का उच्च कर्मचारी पुरपाल कहलाता था। यह विषय की परिषद् की सहायता से नगर में शांति तथा सुव्यवस्था रखने का प्रयास करता था। ग्राम का उच्च पदाधिकारी ग्रामिक कहलाता था। उसकी सहायता के लिये एक पंचसमिति होती थी।

न्याय व्यवस्था—गुप्तकालीन सम्राट स्वयं न्याय के सर्वोच्च पदाधिकारी थे। परन्तु इतने बड़े साम्राज्य की न्याय व्यवस्था अकेला सम्राट ही नहीं कर सकता था अतः उसकी सहायता के लिए अन्य छोटे न्यायालय भी होते थे। यह न्यायालय नगरों तथा ग्रामों दोनों में ही होते थे। 'नारद स्मृति' के अनुसार उस समय चार प्रकार के न्यायालय थे—(1) कुक (2) श्रेणी (3) गण (4) राजकीय। प्रथम तीन न्यायालय जनता के अपने होते थे और अन्तिम सरकारी व्यवस्था के लिये होता था। इस काल में जुरी की प्रथा भी प्रचलित थी।

गुप्तकालीन दण्ड व्यवस्था काफी उदार थी परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि न्याय व्यवस्था दुर्बल थी। गुप्तकाल में उदारतापूर्ण व्यवहार के साथ ही साथ उचित दण्ड देने का भी विधान था। अधिकतर दण्ड जुर्माने के रूप में दिया जाता था। अंग भंग तथा प्राण-दंड बहुत कम दिया जाता था। गम्भीर से गम्भीर अपराध के दण्ड को क्षमा करने में गुप्त सम्राट संकोच नहीं करते थे। समाज के हर व्यक्ति को अपराध करने पर दण्ड मिलता था। इसमें किसी प्रकार का पक्षपात नहीं होता गुप्तकालीन न्याय-व्यवस्थ का ही परिणाम था कि उस काल में अपराधों की संख्या बहुत कम हो गई थी। न्याय की दृष्टि से यह युग अति उत्तम युग था। गुप्तकालीन न्याय-व्यवस्था के सम्बन्ध में डा० बी० जी० गोखले का मत है—" न्याय विधान के उद्गम का स्थल शास्त्र स्थानीय प्रथायें रहन सहन थे। राज्यों को न्याय विधान निर्माण का कोई अधिकार न था। राजा केवल प्रशासनिक आज्ञायें निकाल सकता था परन्तु उसके व्यवस्था कार्यों पर भी अधिकार न था और इसी कारण उसे पर न्याय व्यवस्था का उतना ही अधिकार था जितना अन्य लोगों पर, अथवा उस पर अधिक अधिकार था कारण विधान रहित राज्य सबसे बड़ी बुराई या अराजकता थी। निश्चय ही राजा को कुछ व्यक्तिगत अधिकार थे परन्तु वे राज्य धर्म के विरुद्ध नहीं होते थे।"

सैन्य-संगठन—गुप्तकालीन सम्राट साम्राज्यवादी थे। वे वीर थे अतः अपनी योग्यता और चतुराई के आधार पर उन्होंने विशाल सेना का निर्माण किया था। ये सेना उनकी नीति को सफल बनाने का महत्वपूर्ण साधन थीं। गुप्तकाल में रथों का प्रयोग नही होता था। सेना के प्रधान अग घोड़े हाथी तथा पैदल ही थे। आवश्यकता पड़ने पर ऊँट की भी सहायता ली जाती थी। इसका प्रयोग राजपूताना में होता था। दक्षिण के प्रान्तों में नौ सेना का भी प्रबन्ध था। सेना का सर्वोच्च पदाधिकारी सेनापति होता था। उसके नीचे क्रमशः महादण्ड नायक, रणभांडा-कारिक, भटाश्वपति इत्यादि होते थे। सेना की नौकरी के सम्बन्ध में किसी जाति के साथ पक्षपात नहीं होता था। इस प्रकार की एक सेना केन्द्र में राजा के आधीन रहती थी। कुछ सेनाएँ प्रान्तों में भी रहती थीं जो आवश्यकता पड़ने पर सम्राट की सहायता करती थीं।

आन्तरिक सुरक्षा—गुप्तकालीन सम्राट शान्ति-प्रेमी थे। यद्यपि उन्होंने अपनी सीमाओं को बढ़ाने का प्रयास किया परन्तु साम्राज्य में पूर्ण शान्ति रखने की ओर के सदैव चिंतित रहे। यही कारण था कि उन्होंने एक रक्षा विभाग की स्थापना की थी। इसका सर्वोच्च पदाधिकारी 'दण्डपाशाधिकारी' होता था। इसी विभाग के अधीन एक गुप्तचर विभाग भी कार्य करता था। गुप्तचर अपराधियों का पता लगाने में बहुत कुशल होते थे। इस प्रकार की सुरक्षा व्यवस्था के कारण ही गुप्तकाल में अपराध प्रायः नहीं के बराबर होते थे गुप्तकाल में अपराधों की इतनी कम संख्या देखकर एवं जनता का शान्तिपूर्ण जीवन देखकर चीनी यात्री फाह्यान चकित रह गया था।

आय के साधन—विशाल साम्राज्य की व्यवस्था के लिए अतुल धनराशि की आवश्यकता थी। कुछ अभिलेख इस ओर संकेत करते हैं कि राज्य में आय के लिये 18 प्रकार के कर लगाए थे परन्तु इनमें से किसी के भी बारे में पूर्ण जानकारी नहीं प्राप्त होती। इस समय आय का प्रमुख साधन भूमि-कर था जो भूमि के उपजाऊपन के अधार पर 16 प्रतिशत से 15 प्रतिषत तक लिया जाता था। यह अधिकतर अनाज के रूप में लिया जाता था। आयात एवं निर्यात के माल पर चुंगी की भी व्यवस्था की गई थी। देश में तैयार होने वाले माल पर भी कर लगता था। अधीनस्थ राज्यों से प्राप्त हुए उपहार और भेंट भी आय के प्रमुख साधन थे।

सार्वजनिक हित के कार्य—उदार शासकों के लिए उपर्युक्त आवश्यक कार्यों के अतिरिक्त कुछ अन्य लोकोपकारी कार्य भी आवश्यक हो जाते हैं। गुप्त काल में भी इस प्रकार के कार्यों का अभाव न था। गुप्त सम्राटों के प्रजा के हित के लिए सड़कों का निर्माण करवाया, सिंचाई की व्यवस्था की, चिकित्सालय एवं औषधालयों

में निःशुल्क चिकित्सा की व्यवस्था की। राज्य की ओर से शिक्षा तथा दान की व्यवस्था भी की गई। इस प्रकार गुप्त सम्राटों का जनता के प्रति बड़ा सद्भावनापूर्ण व्यवहार था।

सामाजिक दशा

चीनी यात्री फाह्यान बुद्ध जी की जन्म-भूमि का दर्शन करने भारत में आया था। उसने अपनी भारत यात्रा पर एक पुस्तक लिखी है जो गुप्तकालीन समाज की विशद व्याख्या प्रस्तुत करती है। शिला लेखों तथा मुद्राओं द्वारा भी तत्कालीन समाज के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त होता है।

कुटुम्ब—समस्त समाज कुटुम्बों में बँटा हुआ था। कुटुम्ब का स्वामी पिता होता था। वही कुटुम्ब की सम्पत्ति का अधिकारी होता था। पिता के बाद सारी सम्पत्ति पुत्रों में बाँट दी जाती थी। कन्याओं को पिता की सम्पत्ति में से कुछ नहीं मिलता था।

भोजन तथा पेय—गुप्त काल में शाकाहारी भोजन की प्रथा अधिक प्रचलित थी। लोग अधिकतर गेहूँ, जौ और विभिन्न प्रकार के फल तथा सब्जियाँ खाते थे। बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण लोग हिंसा से घृणा करते थे अतः माँसाहारी भोजन न करके शाकाहारी भोजन ही करते थे। चाँडाल या समाज द्वारा वर्जित वर्ग ही मांस-भक्षण करता था। साधारणतया मद्यपान भी नहीं होता था। केवल राजघराने के ही कुछ लोग विदेशी शराब का प्रयोग करते थे।

वस्त्र—गुप्तकालीन पहनावा पूर्णतया भारतीय था। साधारण वर्ग धोती तथा एक ऊपरी वस्त्र पहनता था। राजा और अन्य धनवान व्यक्ति बहुमूल्य कोट और पैजामा आदि पहनते थे। स्त्रियाँ साड़ी तथा दामन पहनती थीं। कुछ स्त्रियाँ साथियनों का अनुकरण करके फ्राक तथा जैकेट पहनती थीं। साधारण वर्ग सूती वस्त्र ही प्रयोग करता था परन्तु धनवान लोग उत्सवों आदि पर रेशमी वस्त्र पहनते थे। भारतीय पहनावा इतना अधिक आकर्षक था कि विदेशी इसे पहनकर गर्व का अनुभव करते थे।

आभूषण और अन्य शृंगार सामग्री—स्त्री तथा पुरुष दोनों ही आभूषणों का प्रयोग करते थे। कालिदास के साहित्य से पता चलता है कि उस काल में सौंदर्य पर विशेष ध्यान दिया जाता था। यही कारण था कि विभिन्न अभूषणों तथा बाली, माला, चूड़ी आदि का प्रयोग होता था। सौंदर्य प्रदर्शन के लिए अन्य वस्तुएँ जैसे ओठों पर रंग, सुगन्धित तेल आदि का भी प्रयोग होता था। बालों को विभिन्न प्रकार से सँवारा जाता था तथा पुष्पों द्वारा सजाया जाता था।

मनोरंजन के साधन—इस युग में लोग सुखमय जीवन व्यतीत करते थे। वे विभिन्न प्रकार के खेल खेलते थे। चौपड़ तथा शतरंज उस समय के प्रिय खेल थे। आखेट द्वारा भी ये लोग आनन्द प्राप्त करते थे। ये लोग मुर्गों की लड़ाई देखने के भी बड़े शौकीन थे। विभिन्न धार्मिक उत्सवों पर विभिन्न प्रकार के नाच गानों द्वारा भी यह लोग मनोरंजन करते थे। उस समय गणिकाएँ भी होती थीं जो नाच-गाकर लोगों का मनोरंजन करती थीं।

जाति-प्रथा—पूर्वकालीन जाति-प्रथा इस समय भी विद्यमान थी। चार जातियाँ थीं—ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र। जातिगत बन्धन इतने कठोर नहीं थे जितने कि पूर्व काल में थे। किसी भी जाति का व्यक्ति केवल अपना जातीय व्यवसाय ही करने को बाध्य नहीं किया जा सकता था जैसे ब्राह्मण पठन-पाठन का कार्य छोड़कर कोई भी कार्य कर सकता था। शूद्र तथा चांडाल वर्ग समाज से बहिष्कृत था। जब ये लोग नगर या गाँव में आते थे तो लकड़ी बजाकर चलते थे जिससे अन्य लोग मार्ग से हट जाँय और उनका स्पर्श न कर सकें।

वैवाहिक व्यवस्था—गुप्तकालीन लेख इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि गुप्त-काल में अन्तर्जातीय विवाह प्रथा प्रचलित थी। अन्तर्जातीय विवाह के अन्तर्गत अनुलोम तथा प्रीतलोम विवाह भी प्रचलित थे। विधवा विवाह भी प्रचलित था। विधवा विवाह वैध था क्योंकि चन्द्रगुप्त ने अपने भाई की विधवा ध्रुवदेवी से विवाह किया था। बहुपति तथा बहुपत्नी की प्रथा भी प्रचलित थी।

दास प्रथा—रोम एवं यूनान की भाँति भारत में भी प्राचीन काल में दास प्रथा प्रचलित थी। ऋण न चुका पाने पर, बन्दी बनने पर, खरीदे जाने पर, लोग दास बना लिये जाते थे। परन्तु भारतीय दास-प्रथा में कठोरता नहीं थी। दास ऋण चुका कर और अपने स्थान पर अन्य किसी व्यक्ति को रखकर दासता से मुक्त हो सकते थे।

स्त्रियों की दशा—गुप्तकाल में नारी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। स्त्रियों को पुरुषों के समान ही शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। यही कारण था कि शील तथा महारिका आदि विदुषी स्त्रियाँ इस काल में हुईं। गुप्तकाल में स्त्रियाँ शासन कार्य में भी सक्रिय भाग लेती थी। इस काल में अनेक स्थानों पर स्त्रियों के मुखिया होने के उदाहरण मिलते हैं। शिक्षित स्त्रियाँ समाज में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त करती थीं। ये केवल घर की चहारदीवारी में बन्द न रहती थीं वरन् सम्पूर्ण समाज का ज्ञान प्राप्त करती थीं। वाद विवाद आदि में भी स्त्रियाँ भाग लेती थीं। विधवा विवाह का प्रचलन भी अब होने लगा था। दक्षिण के अनेक अभिलेखों से पता चलता है कि स्त्रियाँ अन्य ललित कलाओं में भी निपुण होती थीं। पर्दे की

प्रथा नहीं थी। इस प्रकार स्त्रियों को समाज में सम्मानपूर्ण पद प्राप्त था। स्त्रियों की दशा के विषय में आर० सी० मजूमदार ने लिखा है—"ऊंचे वर्ग की स्त्रियाँ कहीं-कहीं प्रशासन में बहुमूल्य सहयोग देतीं थीं। गुप्ता युग में रानी का विशेष स्थान था। विशेष रूप से दक्षिण में स्त्रियाँ राज्यपाल अथवा गाँव की मुखिया भी होती थीं। इस क्षेत्रों में औरतों को एकान्त वास नहीं करना पड़ता था।"

"Women of the upper classes in certain areas took a prominent share in administration. The queen consort clearly occupied an important position in the Gupta Period. Specially in deccan women acted even as governors and head of villages. The seclusion of women was not generally observed in these regions"

—Dr. R. C. Majumdar.

स्त्रियों को इतना महत्वपूर्ण प्राप्त होने के साथ ही साथ हिन्दू समाज का कलंक सती प्रथा इस युग में धीरे-धीरे पनप रहा था।

आर्थिक स्थिति

गुप्त सम्राटों की उदारनीति का परिणाम यह था कि समाज समृद्धिशाली था। शासक वर्ग जनता का रक्त नहीं चूस रहा था फलस्वरूप हर क्षेत्र में प्रगति हो रही थी। चीनी यात्री फाह्यान ने लिखा है कि हर व्यक्ति सुखी था, बहुत थोड़े में ही निर्वाह किया जा सकता था।

कृषि—कृषि इस काल का प्रमुख व्यवसाय था। गेहूँ, चावल, जौ, जूट आदि उत्पन्न किये जाते थे। सिंचाई की सुविधा के लिए गुप्त सम्राटों ने एक नया विभाग खोला था। उत्पादित वस्तुएँ विदेशों को भी भेजी जाती थीं।

उद्योग—अन्न के अतिरिक्त अन्य धातुओं और लकड़ी का कार्य भी इस युग की आय का मुख्य साधन था। दक्षिणी भारत की खानों से अनेक धातुएँ प्राप्त होती थीं जिनसे विभिन्न प्रकार की वस्तुएं तैयार की जाती थीं। हाँथी दांत से भी सुन्दर वस्तुओं का निर्माण किया जाता था। कपड़ा उत्पादन बहुत बड़ी मात्रा में होता था। यहाँ का बना कपड़ा मजबूत और अच्छा होता था अतः उसकी खपत विदेशों में भी थी।

व्यापार—गुप्त काल में आंतरिक तथा वैदेशिक दोनों प्रकार का व्यापार होता था। व्यापार सड़कों और नदियों द्वारा होता था। सड़कों द्वारा व्यापार होने के कारण ही देश में चौड़ी-चौडी सड़कों का निर्माण किया गया था। भड़ौच, उज्जैन, वैशाली, बनारस आदि प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र बनते जा रहे थे। विदेशों से व्यापार करने के लिए बड़े-बड़े बन्दरगाहों का निर्माण किया गया था। भड़ौच, कम्बे, गुजरात आदि प्रमुख बन्दरगाह थे। ये लोग समुद्रों द्वारा निडर होकर व्यापार करते थे। चन्द्रगुप्त द्वारा सौराष्ट्र पर विजय प्राप्त करने और रोम के उत्कर्ष के साथ भारत और रोम

में बड़े अच्छे व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो गये थे। भारतीय माल रोम में बहुत अधिक मात्रा में जाता था। इस प्रकार व्यापार के कारण भारत में धन-धान्य में वृद्धि हो रही थी।

शिल्प सङ्घ—गुप्त काल में छोटे बड़े शिल्पियों ने अपने अलग-अलग सङ्घ बना लिए थे। उनका मुख्य कार्य अपने सदस्यों की आर्थिक दशा को ठीक रखना था। यह सङ्घ सदस्यों के आपसी वाद-विवाद को भी तय करते थे। इन सङ्घों के अपने-अपने नियम होते थे। बहुत से सङ्घ बड़े मालदार होते थे। संघ अपनी संपत्ति को जनहित के कार्यों में लगाते थे तथा मन्दिरों आदि का निर्माण करवाते थे। आवश्यकता पड़ने पर इन संघों के सदस्य शस्त्र भी धारण करते थे तथा संपत्ति की रक्षा करते थे। यह संघ अपने सदस्यों की सहायता से लोगों को शिल्प कला की शिक्षा भी प्रदान करते थे। इस शिक्षा-काल में शिष्य को गुरु के घर रहना पड़ता था। यह संघ अपनी अलग-अलग मोहर रखते थे। इस प्रकार भारतीय आर्थिक व्यवस्था को ठीक रखने में इन संघों का महत्वपूर्ण योग था। इनकी महत्ता को स्पष्ट करते हुये डा० वी० जी० गोखले ने लिखा है—"बहुत से व्यवसायों के तन्त्र थे। वास्तव में तन्त्र प्रथा प्राचीन काल में समष्ठि जीवन की अति प्रसिद्ध इकाई थी। तन्त्रों का निर्माण जभी होता था जब उद्योग स्थानीय रूप ले लेता था और कार्य-कर्त्ता परम्परागत होते थे।

तन्त्र तरह तरह के कार्य करते थे और प्राचीन भारत के आर्थिक जीवन में महत्वपूर्ण थे, उस काल में व्यापार तन्त्र, मूल्य नियन्त्रण तन्त्र, लेन देन आदि के तन्त्र थे।"

धार्मिक दशा

गुप्त काल धार्मिक सहिष्णुता का काल था। इस समय सम्राट यद्यपि ब्राह्मण धर्म को प्रोत्साहन दे रहे थे और स्वयं भी ब्राह्मण धर्म को स्वीकार कर चुके थे परन्तु फिर भी उन्होंने अन्य धर्मावलम्बियों को अपने धर्म को मानने और उसकी उन्नति करने की छूट दे रखी थी। सम्राटों की इस उदार नीति के कारण ही हिन्दू धर्म का इतना अधिक प्रचार हुआ। इस सम्बन्ध में स्मरण रखना चाहिये कि तलवार के जोर पर कोई धर्म नहीं पनपता। धर्म की उन्नति के लिये उदारवादी नीति की आवश्यकता होती है। इस काल में वैदिक धर्म की उन्नति का मुख्य कारण सम्राटों की उदार और सहिष्णु नीति थी। हिन्दू धर्म को समन्वय की भावना और व्यापक दृष्टिकोण के कारण ही उसकी उन्नति हुई। इस धर्म के विषय में ए० एल० बाशम ने लिखा है—"यद्यपि भारतीय स्थानीय परम्परा के पोषक थे परन्तु पाश्चात्य देश वालों का भी स्वागत करते थे। यदि हम सेटेंथोमस के उत्सर्ग को स्वीकार भी कर लें तब उनके अतिरिक्त किसी दूसरे अभारतीय के उत्सर्ग का उदाहरण नहीं मिलता। विभिन्न वर्गों के लोग अपने वर्ग के

कार्यों को, विशेष कर समुद्र तटवर्ती क्षेत्रों में करते थे हिन्दुओं के बहुसमुदाय को इनकी प्रथाओं का ज्ञान नहीं था इसीलिए उनसे विरोध नहीं था। हिन्दू लोगों की सहिष्णुता तो प्रसिद्ध है और इससे दूसरों को जीवित रहने का अवसर मिलता था।"

सम्राट अशोक के पश्चात् बौद्ध धर्म को उचित संरक्षण न मिल सका था। उसके स्थान पर वैदिक धर्म को आश्रय मिला। गुप्त सम्राटों ने वैदिक धर्म के बढ़ते हुये प्रभाव को और अधिक बढ़ा दिया। परन्तु इसके साथ ही बौद्ध और जैन धर्म भी जनता में प्रचलित थे। इन तीनों धर्मों की चर्चा नीचे की जा रही है :—

वैदिक धर्म—गुप्त काल में वैदिक धर्म की बड़ी उन्नति हुई। यह धर्म केवल उत्तरी भारत तक ही सीमित न रहा वरन् दक्षिण भारत में भी इसका प्रचार बढ़ा। वैदिक धर्म के दोनों सम्प्रदायों शैव और वैष्णव को मान्यता प्राप्त हुई। इस काल के लेखों और मुद्राओं में जहाँ एक ओर विष्णु के प्रतीक शंख, चक्र, गदा और पद्म के चिन्ह अंकित हैं वहीं दूसरी ओर अनेक शिवलिंग और शिव जी की मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। गुप्त काल का एक लेख उदयगिरि पहाड़ी में एक गुफा में अंकित है जिसमें लिखा है : —'भक्त्या भगवतः शंभोः गुहामेतामकारयत्'। इस प्रकार के अनेक अन्य लेख भी मिले हैं जो यह स्पष्ट करते हैं ये लोग शैव धर्म को भी मान्यता प्रदान करते थे।

विष्णु और शिव के अतिरिक्त अन्य देवों-देवताओं की आराधना भी इस युग में होती थी। तंत्रवाद का प्रारम्भ वैदिक काल में ही था। परन्तु इसका विकास गुप्त काल में हुआ। इस वाद का उद्देश्य मनुष्य की कुण्डलिनी शक्ति को जगाकर मनुष्य को देवत्व की ओर ले जाना था। इस वाद के द्वारा शक्ति-पूजा को प्रेरणा मिली। परिणामस्वरूप अनेक देवियों यथा काली, चण्डी, दुर्गा आदि की पूजा भी की गई।

वैदिक कालीन प्रकृति पूजा की भावना से प्रेरित होकर इस काल में सूर्य-पूजा भी की जाती थी। इस युग में सूर्य की अनेक मूर्तियों का निर्माण हुआ। मालवा में मन्दसोर में स्थापित सूर्य की मूर्ति बहुत अधिक प्रसिद्ध है।

इस काल में अन्य देवी-देवताओं की पूजा के साथ-ही-साथ तथा यक्ष पूजा भी प्रचलित थी। राजगृह में नाग देवता के लिये एक देवालय बनवाया गया था परन्तु अधिकतर नाग पूजा निम्न वर्ग में ही प्रचलित थी। यक्ष पूजा का भी समाज में प्रचलन था।

गुप्त काल में हिन्दू धर्म के प्रमुख सिद्धान्त अवतारवाद का पूर्ण विकास हो गया था। अब यह माना जाने लगा था कि समय-समय पर राक्षसों का संहार करने और विश्व के कल्याण के लिये विष्णु अवतार धारण करते हैं। कृष्ण विष्णु के ही

अवतार थे। इसमें विश्वास कर लिया गया था परन्तु राम-सीता के अवतार में इस युग तक लोगों का विश्वास नहीं था।

गुप्त काल में बहुत अधिक मन्दिरों का निर्माण किया गया। ये लोग मूर्ति पूजा में विश्वास करते थे। मन्दिरों में व्याख्यान तथा पूजा-पाठ होते रहते थे। यह मन्दिर केवल पूजा-गृह ही नहीं थे वरन् भारतीय सस्कृति के महान गढ़ थे। इनमें शिल्प-कला, चित्रकला आदि के सुन्दर नमूने मिलते हैं।

इस युग में तीर्थ-यात्रा का बहुत प्रचार था। स्त्रियाँ भी तीर्थ-यात्राएँ करती थीं। तीर्थस्थलों पर जाकर दान देने की प्रथा भी थी। लोग पवित्र स्थलों पर अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तत्पर रहते थे।

इस प्रकार आधुनिक वैदिक धर्म के समस्त तथ्यों का समावेश गुप्त काल में ही हो चुका था और उसे राज्य धर्म के रूप में मान्यता प्राप्त हो गई थी।

बौद्ध धर्म—फाह्यान के अनुसार गुप्त काल में बौद्ध धर्म ने सम्राटों का संरक्षण तो खो दिया परन्तु जनता में इस धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा थी। इस प्रकार राजाश्रय से मुक्त होकर भी बौद्ध धर्म प्रगति कर रहा था।

गुप्त काल में बौद्ध धर्म में समन्वय की भावना आ गई थी। हिन्दू धर्म के भी सम्प्रदाय हो गये थे। इस युग में बुद्ध जी मे ईश्वरत्व का आभास कर लिया गया था। बुद्ध जी की मूर्तियों का निर्माण हो चुका था और बौद्ध मन्दिरों की स्थापना साथ ही बौद्ध धर्म में भी पूजा-पाठ, स्तुति, अर्चन आदि प्रचलित हो रहा था। इस प्रकार बौद्ध धर्म के वास्तविक स्वरूप का ह्रास हो रहा था और अब यह धर्म वैदिक धर्म के काफी निकट आता जा रहा था। बौद्ध धर्म म इतने परिवर्तनों के बाद भी उसके अनुयायियों और भिक्षुओं की संख्या कम नहीं थी। काश्मीर तथा पंजाब तो उसके घर ही थे। धनी राजा सभी बौद्ध बिहारों को दान देते थे। आन्ध्र, तामिल, तथा कांची तो बौद्ध स्तूपों तथा बिहारों में भरे पड़े थे। तत्कालीन अजन्ता और एलोरा की कला भी यही सिद्ध करती है कि गुप्त काल में भी बौद्ध धर्म के केन्द्र थे।

जैन धर्म—फाह्यान के वर्णन से पता चलता है कि गुप्त काल में हिन्दू एवं बौद्ध धर्म के साथ-साथ जैन धर्म भी विद्यमान था। जैन धर्म अपने कठोर नियमों के कारण अधिक लोकप्रिय नहीं था। जैनियों ने वाह्य आक्रमणकारियों से अपने धर्म को सुरक्षित रखने के लिए अपने धर्म का प्रचार दक्षिण में करना आरम्भ कर दिया था। हिन्दू धर्म के बढ़ते हुए काल में जैन धर्म भी उसके प्रभाव से मुक्त न रह सका। उसमें भी स्तुति, पूजन, अर्चन, तीर्थ यात्रा आदि का प्रचलन हो गया था।

शिक्षा

गुप्त काल में हर क्षेत्र में इतनी प्रगति हुई इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि यहाँ की शिक्षा-प्रणाली काफी संतोषजनक होगी। इस समय शिक्षा कार्य गुरुकुलों द्वारा संपादित होता था। वेदों की शिक्षा के साथ-ही-साथ पुराण, स्मृति, तर्क, दर्शन, न्याय, व्याकरण आदि की भी शिक्षा दी जाती थी। वाद-विवाद द्वारा शिक्षा प्रदान करने की प्रथा भी प्रचलित थी। आश्रम में दो प्रकार के विद्यार्थी होते थे—प्रथम धन देकर शिक्षा प्राप्त करने वाले और दूसरे गुरु के साथ रहकर उनकी सेवा करके शिक्षा प्राप्त करने वाले। धनवान् व्यक्ति को शिक्षा-आश्रम आर्थिक सहायता देते थे। शिक्षा का द्वार केवल शूद्रों को छोड़कर सबके लिए खुला हुआ था। इस समय तक्षशिला विश्वविद्यालय का प्रभाव कम हो गया था। नालन्दा विश्व विद्यालय की स्थापना इसी समय शुक्रादित्य नामक नरेश ने की थी। बुद्धगुप्त, तथा गतगुप्त आदि ने उसके विकास में प्रोत्साहन दिया। इस विश्वविद्यालय में प्रवेश करने के लिए बड़ी कठिन परीक्षा देनी पड़ती थी। इसमें वादविवाद तथा विमर्श के आधार पर शिक्षा दी जाती थी। इसमें एक बड़ा पुस्तकालय भी था। विश्वविद्यालय में लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान ही अध्यापक हो सकते थे। नालन्दा के अतिरिक्त बनारस, वल्लभि, नासिक आदि में भी विश्व विद्यालय थे।

विज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में भी इस काल में काफी प्रगति हुई थी। आर्य भट्ट ने कई नवीन खोजें की थीं। उसने यह सिद्ध कर दिया था कि पृथ्वी अपनी कीली पर घूमती है। उसने सूर्य ग्रहण और चन्द्र-ग्रहण के सिद्धान्त भी निकाले थे। वैज्ञानिकों में सर्वश्रेष्ठ स्थान आर्य भट्ट को ही प्राप्त है। वह बड़ी ही प्रखर बुद्धि वाला व्यक्ति था। 23 वर्ष की अवस्था में उसने 'आर्य भट्टीयम' की रचना की थी। उस समय यूनानी विद्वान, मिस्र के संरक्षण में जो नवीन ज्योतिष सम्बन्धी खोजें कर रहे थे। उनसे वह पहले से ही अवगत था और उसने पूर्व तथा पश्चिमी में होने वाली खोजों से प्राप्त ज्ञान को पहले ही भारतवासियों को बता दिया था। उसके शिष्यों ने भी उससे ज्ञान प्राप्त करके काफी ख्याति प्राप्त की थी।

दूसरा गणितज्ञ एवं ज्योतिषी वाराहमिहिर था। वह धातु विज्ञान का पंडित था। उसका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वृहतसंहिता' अमूल्य निधि है। इन पुस्तकों में उसने ज्योतिष तथा वनस्पति विज्ञान का विद्वतापूर्ण विवेचन किया है। इसके अतिरिक्त उसने 'लघुजातक', 'वृहज्जातक', और 'पचसिद्धांतिका' नामक अन्य ग्रन्थों की भी रचना की थी।

इस काल में गणित के क्षेत्र में काफी प्रगति हुई। दशमलव प्रणाली का प्रचार इसी समय हुआ। रोम और योरोप को यह सिद्धांत 11 वीं सदी तक नहीं

मालूम था। अरब वालों से योरोप वालों ने इस सिद्धांत को सीखा था और अरब वालों ने यह ज्ञान भारत से ही प्राप्त किया था। जेम्स एड्गर स्वेन का कथन है—"उन्होंने अरब लोगों को बीजगणित के आधारभूत सिद्धान्त बताये। और अरबों ने उनका प्रचार विश्व में किया। जिन संख्याओं को अरबिक कहा जाता है उनका ज्ञान भारतीयों को अरबों के प्रयोग काल से कई शताब्दियाँ पूर्व था।"

"They taught the Arabs the fundamentals of algebra and through the Arabs, taught the whole world. What we know as Arabic numbericals were known in India hundreds of years before they were adopted by the Arabs."

—James Edgar Swain.

आर्य भट्ट का 'आर्य भट्टीयम' नामक ग्रन्थ अंकगणित, बीजगणित तथा ज्यामिति के अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है। इसके अतिरिक्त इस प्रकार के अन्य ग्रन्थ भी प्राप्त हुए हैं। जिनमें गणित के सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण किया गया है। इस प्रकार यह पता चलता है कि इस काल में गणित का ज्ञान काफी प्रचलित हो चुका था।

इस काल में आयुर्वेद-शास्त्र की भी काफी प्रगति हुई थी। चरक तथा सुश्रुत इस काल के चिकित्सक थे। पशु चिकित्सा और विज्ञान में भी इस काल में काफी प्रगति हुई। 'हस्त्यायुर्वेद' नामक ग्रन्थ इसी काल में रचित हुआ। इस युग में वनस्पतिक औषधियाँ ही अधिक काम में लाई जाती थीं। चीरफाड़ विज्ञान भी उन्नत दशा में था। आयुर्वेद शास्त्र का महान आचार्य धनवन्तरि भी इसी युग में हुआ। उनका कोई ग्रन्थ तो उपलब्ध नहीं है परन्तु वह इतना चतुर था कि बहुत कम ही ऐसे रोग थे जिनकी चिकित्सा वह न कर सका हो। आंष्टांग संग्रह, सुश्रुत संहिता, चरक संहिता, नवनीतक् नामक चिकित्सा शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों का सृजन भी इसी युग में हुआ।

रसायन के क्षेत्र में यह काल किसी से पीछे नहीं था। इस सम्बन्ध में कोई निश्चित प्रमाण तो प्राप्त नहीं हुआ परन्तु दिल्ली में स्थिति लौह स्तम्भ इतने वर्षों बाद आज भी अपनी उसी दशा में खड़ा है जैसा वह उस समय था। इससे यह सिद्ध होता कि अवश्य उस काल में इस पर ऐसी पालिश की गई होगी जो इसको नष्ट होने से रोक सकी। इस प्रकार केवल एक यह स्तम्भ ही उस काल के रसायन ज्ञान का परिचय देने के लिए पर्याप्त है।

साहित्य

किसी युग को महान बनाने में उस युग के साहित्य का बहुत बड़ा हाथ होता है। गुप्त काल की महानता का अधिकांश श्रेय इस काल के साहित्य एवं साहित्यकारों को है।

काव्य—काव्य कला को सम्पन्न एवं समृद्ध बनाने का कार्य गुप्तकालीन कवियों द्वारा सम्पन्न हुआ। इस काल के कवियों को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। प्रथम वे जिनके विषय में अभिलेखों द्वारा ही कुछ जान सकते हैं। इस श्रेणी में हरिषेण, वीरसेन तथा वत्स भट्टि प्रमुख हैं। हरिषेण का परिचय समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति से मिलता है। वीरसेन का परिचय उदयगिरि के द्वितीय गुहा-लेख से मिलता है। इस लेख के आधार पर उन्हें व्याकरण, राजनीति तथा दर्शन का मर्मज्ञ माना गया है। वत्सभट्टि मन्दसोर प्रशस्ति के रचयिता थे। ये वेद भी शैली में लिखी गई है।

द्वितीय श्रेणी में वे कवि आते हैं जिनके पूरे-पूरे ग्रन्थ प्राप्त हैं। इस प्रकार के कवियों में कालिदास, मातृगुप्त, भारवि, भट्टि के नाम उल्लेखनीय हैं। कालिदास, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के नौ रत्नों में से थे। इन्होंने 'रघुवंशम्' की रचना इसी काल में की थी। यह संस्कृत का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। इनकी दूसरी अनुपम कृति 'ऋतु संहार' है। इनकी ख्याति को बढाने वाला इनका तीसरा काव्य ग्रन्थ 'मेघदूत' है। यह एक गीति काव्य है जिसमें विरही यक्ष मेघ को दूत बनाकर अपनी प्रियतमा के पास अपना संदेश भेजता है। इन काव्य-ग्रन्थों में कवि ने भाषा, भाव और अलंकारों की जो प्रतिभा दिखलाई है वह आश्चर्यजनक है। इस कवि के मस्तिष्क में भाषा का भण्डार तो था ही साथ ही एक-एक शब्द को प्रयोग करने की वह चतुरता विद्यमान थी कि उसने जो शब्द जहाँ रख दिया है वह वहाँ से बदल देने पर सारे ग्रन्थ को सुन्दरता चली जाती है। उपमाओं के प्रयोग के सम्मुख तो उपमान भी फीके पड़ जाते हैं। कवि को इस महान प्रतिमा का दिग्दर्शन कराते हुए डा० बी० जी गोखले ने लिखा है :—

"As Kalidas lays down his pen after a brilliant display of his poetical and dramatic talents, the best in Sanskrit literature is already accomplished. He creates such high forms of literary composition, that his successors, however eminent in their own right, fall far short of them."

इस युग के दूसरे कवि भारवि ने 'किरातार्जुनीयम' की रचना की। इसमें किरात तथा अर्जुन के युद्ध का सुन्दर वर्णन है। भट्टि ने 'भट्टि काव्य' की रचना की। प्रसिद्ध कवि मातृगुप्त काश्मीर के सम्राट थे।

नाटक—इस काल में संस्कृत के तीन महान नाटकार हुए—कालिदास, शुद्र और विशाखदत्त। कालिदास ने तीन नाटक लिखे—'मालविकाग्निमित्रम्' 'विक्रमोर्वशीयम्', 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्'। इनमें अभिज्ञान शाकुन्तला संस्कृत साहित्य का सबसे उत्कृष्ट नाटक माना जाता है। इसका नायक दुष्यन्त तथा नायिका शकुन्तला है। शूद्रक ने मृच्छकटिकम' की रचना की जिसके द्वारा गुप्तकालीन संस्कृति का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। 'मुद्रा राक्षस' का लेखक 'विशाखदत्त' भी इसी काल में हुआ।

कथा साहित्य— डा० अम्बेदकर का कथन है कि 'पंचतन्त्र' और 'हितोपदेश' की रचना इसी काल में हुई। ये ग्रन्थ केवल भारत में ही नहीं वरन् संसार के अनेक भागों में बहुत प्रचलित हुए और 50 विभिन्न भाषाओं में इनका अनुवाद किया गया।

व्याकरण ग्रन्थ—इस युग में व्याकरण एवं कोष भी बने। चन्द्रगोमिन ने 'चान्द्र व्याकरण' की रचना की। यह ग्रन्थ बड़ा प्रसिद्ध हुआ और तिब्बत में इसका सर्वाधिक प्रचार हुआ। तिब्बतीय भाषा में इसका अनुवाद भी हुआ। अमरसिंह ने 'अमर कोष' की रचना की। दण्डी ने 'काव्यादर्श' में व्याकरण सम्बन्धी नियमों का उल्लेख किया।

धार्मिक ग्रन्थ—किसी भी धर्म की उन्नति में उसके धार्मिक ग्रन्थों का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। गुप्त काल में हर क्षेत्र में प्रगति देखकर पुरोहित तथा अन्य धार्मिक आचार्यों ने भी अपने-अपने धार्मिक ग्रन्थों में संशोधन करके अपने धर्म की प्रगति करने का प्रयास किया। अनेक धार्मिक ग्रन्थों पर अनेक भाष्य एवं टीकाएँ लिखी गईं। याज्ञवलक्य नारद, कात्यायन, एवं बृहस्पति गुप्त काल की महान विभूति थे। इन्होंने हिन्दू कानूनों के आधार पर स्मृतियों की रचना की। इनमें 'याज्ञवलक्य स्मृति' सबसे अधिक प्रसिद्ध है।

कला

सौंदर्य, भाव तथा अभिव्यक्ति तीनों ही दृष्टिकोणों से गुप्तकालीन कला बहुत उच्चकोटि की है। इस युग की कला के जो नमूने प्राप्त होते हैं इससे अन्य सभी कालों के नमूने की तुलना करने पर पता चलता है कि गुप्तकालीन कला शुद्ध भारतीय तथा भारत की सर्वश्रेष्ठ कला थी। गुप्तकाल के पूर्व भारतीय कला में गांधार शैली का धीरे-धीरे ह्रास होने लगा। इस काल की भारतीय कला ने केवल भारत की भावी कला को प्रभावित ही नहीं किया वरन् समस्त संसार की कला इससे प्रभावित हुई। इस काल की कला के चिह्न आज भी संसार के लिए आदर्श बने हुए हैं।

मूर्ति कला—इस काल की शिल्प-कला के विषय में डा० आर० सी० मजूमदार ने लिखा है—"गुप्त काल से हम भारतीय शिल्पकला के गौरवमय काल में प्रविष्ठ होते हैं। शताब्दियों के प्रयत्न से इस कला में पूर्णता मिली और सौंदर्य के स्थाई लक्ष्यों का निरूपण किया गया। इस काल में अन्धकार में टटोलना न था न केवल प्रयोग ही थे बलिक स्पष्ट रूप से उद्देश्य स्थिर किये गये थे, बुद्धिमानी से सोचे गये थे। और आत्मिक सौन्दर्य के स्थाई गुण प्रतिपादित किये गये। इन्हीं आदर्शों पर भविष्य के भारतीय कारीगरों ने प्रयत्न किया। इस प्रकार गुप्त काल भारतीय कला

के क्षेत्र में एक आदर्श के रूप में आया और सुदूर पूर्व तक उन्हीं आदर्शों का पालन होता रहा।"

गुप्तकालीन मूर्तियाँ विदेशी प्रभाव से सर्वथा उन्मुक्त हैं। इनमें विदेशियों की तरह की नग्नता नहीं वरन् वह शुद्ध भारतीयता तथा नैतिकता से पूर्ण है। अलंकृत तथा आभायुक्त मुखमण्डल, भी ने वस्त्र, मुद्रा तथा केश इस काल की कला की विशेषताएँ हैं। इन विशेषताओं से युक्त बुद्ध जी तथा विष्णु और सूर्य देव की अनेक प्रतिमाएँ मिली हैं। सारनाथ में बुद्ध जी की एक प्रतिमा प्राप्त हुई जो कुषाण कालीन गांधार शैली की मूर्तियों से बिलकुल भिन्न है। यह गुप्तकालीन बुद्ध जी की प्रतिमाओं में सर्वाधिक आकर्षक हैं। इसमें बुद्ध जी धर्म-चक्र प्रवर्तन की मुद्रा में बैठे हैं। उनके कंधे पर महीन वस्त्र है, मुख पर गम्भीरता तथा शांति विद्यमान है। दोनों ओर दो देवों की मूर्तियाँ विद्यमान है। बुद्ध जी की मूर्ति के अंग-प्रत्यंग से अनुपम आभा, सौन्दर्य तथा वैराग्य भाव टपक रहा है। इस प्रकार विभिन्न भावों को कला के द्वारा एक ही मूर्ति में समाहित करके इस मूर्ति को बहुत सुन्दर बना दिया गया है। मथुरा एवं अन्य स्थानों पर प्राप्त मूर्तियों में भी बुद्ध जी का करुणा भाव दिखाया गया है।

गुप्त काल तक आते-आते हिन्दू धर्म के समान बौद्ध धर्म में भी विभिन्न किंवदन्तियाँ प्रचलित हो गई थीं। गुप्तकालीन कलाकारों ने इन कथाओं के आधार पर पाषाण को तराश कर विभिन्न दृश्यों को सुन्दर रूप में दिखाया है। इन दृश्यों द्वारा घटनाएँ इतनी स्पष्ट हो जाती हैं जितनी कि पुस्तक द्वारा भी नहीं हो सकतीं।

इस काल की हिन्दू देवताओं की भी अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। यह आदर्शवाद तथा सौन्दर्य से परिपूर्ण है। इनमें विष्णु, शिव तथा सूर्य की प्रतिमाएँ अधिक कलापूर्ण हैं। काशी में गोवर्धन पर्वत धारण किए हुए कृष्ण जी की मूर्ति, मध्य भारत में विष्णु की वराह रूप में पृथ्वी धारण किए हुए मूर्ति, देवगढ़ में विष्णु की शेषनाग पर शयन करते हुए मूर्ति, भरतपुर में 17 फुट ऊँची बलदेव जी की मूर्ति आदि इस काल की कला के सुन्दर नमूने हैं। इनको देखने से पता चलता है कि इस काल के शिल्पकार भावों के प्रदर्शन की विलक्षण प्रतिभा रखते थे। महावीर स्वामी की भी ध्यानावस्था में कुछ मूर्तियाँ प्राप्त हुईं।

इस काल की कुछ नवीन प्रकार की मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं जो पक्की ईंटों की बनी हैं। इस प्रकार की मूर्तियों में केवल देवी देवताओं को ही नहीं वरन् स्त्री पुरुषों की भी मूर्तियाँ मिलती हैं।

स्थापत्य कला—इतने वर्षों तक बर्बर आक्रमणकारियों के हाथों से बचकर कुछ स्तूप एवं भवन आदि आज भी विद्यमान हैं जो उस युग की कला की श्रेष्ठता के

परिचायक हैं। ये स्तूप एवं मन्दिर अपनी सुन्दरता के कारण स्थापत्य कला के क्षेत्र में अपना अलग महत्व रखते हैं। झाँसी में देवगढ़ का मन्दिर, कानपुर में भीतर गाँव का मन्दिर तथा जबलपुर में विष्णु का मन्दिर उस काल की कला के उत्कृष्ठ नमूने हैं तथा आधुनिक कलाकारों ने भी इनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इन मन्दिरों में एक चहारदीवारी के अन्दर देवस्थान बना है। मन्दिरों को देखनेमें पता चलता है कि इसकाल में मन्दिरों के ऊपर ऊँचे कलशों को बनाने की प्रथा थी। इन मन्दिरों की तक्षणकला विशेष रूप से सराहनीय है। इस समय अनेक स्तूपों, गुहा भवनों, गुफाओं एवं स्तम्भों का भी निर्माण हुआ। दक्षिणी भारत में स्थित अजंता, एलोरा और आन्ध्र की गुफाएँ इस काल की स्थापत्य कला को प्रदर्शित करती हैं। इनके अतिरिक्त भौगुल, राजनुरम तथा डंडा बिल्ली की गुफाएँ भी प्रसिद्ध हैं। इस काल में पाषाण स्तम्भों के साथ ही लोह स्तम्भों की भी स्थापना हुई जिनकी संख्या तो अधिक नहीं है पर कला बड़ी ही आश्चर्यजनक है।

मुद्रा कला—गुप्त काल की मुद्रा कला भी बड़ी उच्च कोटि की है। इस काल में भारत धन-धान्य से पूर्ण था अतः सोने और चाँदी के सिक्के चलते थे। उनको बहुत सुन्दर-सुन्दर रूपों में ढाला जाता था। इन पर गुप्त सम्राटों की विभिन्न रूपों में मूर्तियाँ तथा लक्ष्मी, गरुण और सिंह की मूर्ति अंकित की जाती थीं। इनका अंकित करने का ढंग बड़ा सुन्दर तथा आकर्षक था।

धातु कला—गुप्तकालीन मूर्तियों तथा स्तम्भों आदि से पता चलता है कि उस काल में धातु का ज्ञान भी बहुत अधिक था। इस युग की मूर्तियाँ तथा स्तम्भ इतने वर्षों के आँधी, पानी और तूफान को सहकर भी ज्यों के त्यों सुरक्षित हैं। दिल्ली में कुतुबमीनार के पास बना लोह-स्तम्भ उस काल की कला का उत्कृष्ट नमूना है। उसका ऊपरी भाग बहुत ही आकर्षक है। सुल्तानगंज में साढ़े सात फीट ऊँची बुद्ध जी की एक प्रतिमा प्राप्त हुई है। ह्वेनसांग ने भी अपने लेखों में कई अद्भुत स्तम्भों तथा मूर्तियों का वर्णन किया है।

चित्र कला—गुप्तकालीन साहित्य का अध्ययन करने और अजन्ता तथा एलोरा की गुफाओं को देखने से पता चलता है कि गुप्त काल में चित्र कला की भी पर्याप्त उन्नति हुई थी। ऐसा ज्ञात हुआ है कि इस काल में चित्र कला इतनी प्रचलित हो गई थी कि प्रत्येक घर में एक चित्रशाला का होना आवश्यक माना जाता था। इस काल के ग्रन्थों में चित्रकला के विभिन्न अंगों तथा साधनों का उल्लेख मिलता है। इस काल में चित्रों को बनाने के लिए पृष्ठभूमि को भली भांति स्वच्छ करके उस पर चन्दन लगाया जाता था। पृष्ठभूमि को सुन्दर बनाने के लिये उस पर कोई प्राकृतिक दृश्य अंकित किया जाता था। इस काल के चित्रों में भावों का अंकन इस चतुरता से किया गया है कि देखने वाला मूक रह जाता है। इन चित्रों में जीवन

के सभी पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। चित्रों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि लौकिक चित्रों में आध्यात्मिक पक्ष के दर्शन होते हैं। इस काल का चित्र कला की उत्कृष्टता का पता अजंता और एलोरा की गुफाओं में बने चित्रों द्वारा, बाघ के मोहक चित्रों और लंका में प्राप्त चित्रों से चलता है। इनमें अजंता और एलोरा की चित्रकारी दर्शनीय है। अजन्ता के चित्रों में मरती हुई राजकुमारी और 'माता और पुत्र' के चित्र बहुत सुन्दर हैं।

सङ्गीत तथा नृत्य कला—सङ्गीत के क्षेत्र में गुप्त कालीन सम्राटों की जितनी रुचि थी उतनी कदाचित ही किसी युग के सम्राटों में रही हो। गुप्त सम्राटों में समुद्र गुप्त तो स्वयं ही बहुत बड़ा सङ्गीतज्ञ था। सङ्गीत में उसकी स्वयं की रुचि ही तो थी ही साथ ही राज्य में भी सङ्गीत कला की उन्नति का काफी प्रयास किया गया था। इस युग में वीणा, वेणु तथा मृदंग प्रमुख वाद्य-यन्त्र थे। भास ने वीणा को समुद्र से निकला हुआ रत्न बतलाया है। वेणु की प्रशंसा में वात्सायन ने कहा है कि वेणु प्रियतमा को आकर्षित करने का मूल मन्त्र है। धनिकों के घर में विभिन्न प्रकार के वाद्य यन्त्र होते थे। सङ्गीत कला का ज्ञान कराने में उस काल के साहित्य से पर्याप्त सहायता मिलती है। रघुवन्श तथा शाकुन्तलम में तो अनेक स्थलों पर सङ्गीत कला पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

अभिनय—गुप्तकालीन नाटकों का अभिनय भी किया जाता था। इस समय की रङ्गमञ्च सज्जा बड़ी उच्चकोटि की थी। कालिदास के 'मालविकाग्निमित्र' का अभिनय उसके सामने ही हुआ था। सम्राट स्वयम् नाट्य-कला में विशेष अभिरुचि रखते थे और रङ्गशालाओं में जाते थे। अभिनय की सफलता दर्शकों को आनन्द प्रदान करने में समझी जाती थी। शाकुन्तलम् में सूत्रधार कहता है "सभ्यों को आनन्द प्रदान करना अभिनेता का वास्तविक कार्य है। जब तक उन्हें सन्तोष न हो जाय तब तक मैं अपनी कला की श्रेष्ठता में विश्वास नहीं करता।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं था जिसमें इस काल में प्रगति न हुई हो। शिक्षा, साहित्य और कला आदि सभी विषयों की ओर गुप्त सम्राटों का ध्यान गया था। इन क्षेत्रों में प्रगति लाने के प्रयास में उन्होंने किसी प्रकार की क्रान्ति नहीं की वरन् शान्तिपूर्वक प्रयास किया जो इस काल की महत्वपूर्ण विशेषता है। गुप्तकालीन सम्राटों ने जिस अराजकतापूर्ण वातावरण में साम्राज्य को प्राप्त किया था उस वातावरण में परिवर्तन करके भारतीय सस्कृति को उन्नतिशील बनाने का प्रयास उन्हीं के वश की बात थी। शान्ति और सुव्यवस्था के युग में तो सभी सम्राटों ने कला और साहित्य की उन्नति की ओर ध्यान दिया परन्तु अशांतिमय वातावरण को शांतिमय बनाकर संस्कृति के क्षेत्र में इतनी अधिक उन्नति करना निःसन्देह प्रशन्सनीय कार्य था। इस युग की आर्थिक तथा सांस्कृतिक

उन्नति को देखते हुये अनेक इतिहासकारों ने इस काल को भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग कहा है। वे इसके पक्ष मे यह तर्क देते हैं कि जिस प्रकार सोना अपनी चमक से अपने आस-पास के वातावरण को चमकाया करता है उसी प्रकार इस युग को शांति, सुव्यवस्था तथा सांस्कृतिक प्रगति ने भारत की भावी संस्कृति को अलकृत किया। भारतीय समाज को गुप्त काल से बहुत समय तक प्रेरणा मिलती रही और आज के युग में भी गुप्त काल की संस्कृति का विशेष महत्व है। इस युग में भी सर्वतोन्मुखी सर्वाङ्गीण चूड़ान्त विकास हुआ और राष्ट्र की मर्यादा तथा प्रतिष्ठा में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। इस सम्बन्ध में डा० स्मिथ ने लिखा है—

"हिन्दू भारत के इतिहास में महान् गुप्त सम्राटों का काल किसी भी अन्य काल से अधिक सौम्य तथा सन्तोषजनक चित्र प्रस्तुत करता है। ...साहित्य, कला तथा विज्ञान की सामान्य से बहुत अधिक उन्नति हुई और बिना किसी अत्याचार के धर्म में धीरे-धीरे परिवर्तन किया गया।"

इन्हीं समस्त कारणों से यह काल भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग कहलाता है। श्री आर० सी० मजूमदार ने इस युग के विषय में अपने विचार प्रकट करते हुये लिखा है—

"In the case of Guptas it was an intense military and intellectual activity intended to bring about the political unification or Aryavart, the discomfiture of the foreign tormentors of the holyland and an efflorescence of the old Indian culture in all its varied aspects -- religious, poetic, artistic."

सारांश

गुप्त-काल में निरंकुश शासन की व्यवस्था की गई थी। सम्राट का पद वन्शानुगत था। इस युग में शास्त्रानुमोदित मन्त्रि-परिषद् भी होती थी जिसके मन्त्रियों की नियुक्ति सम्राट करता था। केन्द्रीय शासन की देखभाल का कार्य 'सर्वाध्यक्ष' करता था। प्रान्त को 'भुक्ति' कहते थे जो 'विषयों' में विभक्त होता था। 'भुक्ति' का प्रधान 'भुक्तिपति' कहलाता था। इस युग में चार प्रकार के न्यायालय थे—कुक, श्रेणी, गण राजकीय। दण्ड-व्यवस्था काफी उदार थी। सेना का सर्वोच्च पदाधिकारी सेनापति होता था। उसके नीचे महादण्ड नायक, रणभांडाकारिक, भटाश्वपति इत्यादि होते थे। आन्तरिक सुरक्षा के लिए 'दण्डपाशाधिकारी' की नियुक्ति की जाती थी। साम्राज्य में 18 प्रकार के कर लगाये गए थे।

गुप्तकालीन समाज बड़ी उन्नत दशा में था। समस्त समाज कुटुम्बों में बंटा हुआ था। अधिकतर लोग शाकाहारी भोजन ही करते थे। ये लोग बहुमूल्य वस्त्र पहनते थे। साधारण वर्ग धोती तथा ऊपरी वस्त्र पहनता था। कुछ स्त्रियाँ सीथियों का अनुकरण करके फ्राक तथा जैकेट पहनती थीं। स्त्री तथा पुरुष दोनों ही आभूषण पहनते थे। चौपड़ तथा शतरन्ज इस युग के मनोरन्जन के मुख्य साधन थे। जातिगत

बन्धन अपेक्षाकृत कम कठोर हो गये थे। दास-प्रथा में भी कठोरता नहीं थी। स्त्रियों को पुरुषों के समान ही अधिकार थे। विधवा-विवाह का प्रचलन हो गया। कृषि, उद्योग और व्यापार की सभी क्षेत्रों में उन्नति हुई थी। छोटे बड़े शिल्पियों के अपने-अपने संघ होते थे जो अपनी अलग-अलग मोहर रखते थे।

इस युग में वैदिक धर्म ने विशेष उन्नति की। ये लोग विष्णु और शिव के अतिरिक्त अन्य देवी-देवताओं की आराधना भी करते थे। सूर्य-पूजा, नाग-पूजा और यक्ष-पूजा भी प्रचलित थी। इस युग के बौद्ध धर्म पर वैदिक धर्म का प्रभाव है। जैन धर्म भी वैदिक धर्म के प्रभाव से बचा नहीं। इन धर्मों में पूजा-पाठ, अर्चन आदि का प्रचलन हो गया था। इस युग में तक्षशिला विश्वविद्यालय का प्रभाव कम हो गया और नालन्दा विश्वविद्यालय उन्नति कर रहा था। इसके अतिरिक्त वल्लभि, नासिक में भी विश्वविद्यालय थे। इस युग के वैज्ञानिकों में आर्य भट्ट और वाराह-मिहिर के नाम उल्लेखनीय हैं। वाराह मेहिर की बृहत् संहिता बहुत प्रसिद्ध है। चरक और सुश्रुत जैसे महान चिकित्सक भी इसी युग में हुये। इस युग के कवियों में कालि-दास, मातृगुप्त, भारवि, भट्टि आदि के नाम बहुत प्रसिद्ध हैं। कालिदास और शूद्रक ने नाट्य-जगत में उथल-पुथल मचा दी। डा० अम्बेदकर के अनुसार 'पंचतन्त्र' और 'हितोपदेश' की रचना इसी युग में हुई। चन्द्रगोमिन का 'चान्द्र-व्याकरण', अमर सिंह 'अमर-कोष' और दन्डी का 'काव्यादर्श' भी इसी युग की रचनाएँ हैं। याज्ञवलक्य, नारद, कात्यायन और बृहस्पति गुप्त-काल की महान विभूतियाँ थे।

इस युग की मूर्तियों में विदेशी प्रभाव नहीं परिलक्षित होता। महात्मा बुद्ध की प्रतिमाओं में बड़ी सजीवता है। काशी में गोवर्धन पर्वत धारण किये हुये कृष्ण जी की मूर्ति, मध्य भारत की विष्णु मूर्ति, देवगढ़ की शेषनाग पर शयन किये हुये मूर्ति, भरतपुर की बलदेव जी की मूर्ति और विशालकाय सूर्य मूर्ति बहुत सुन्दर है। झांसी में देवगढ़ का मन्दिर, कानपुर में भीतरगाँव का मन्दिर, जबलपुर का विष्णु मन्दिर गुप्त काल की वास्तुकला के सुन्दर नमूने हैं। गुप्त-काल की मुद्राओं पर लक्ष्मी वरुण और सिंह की मूर्तियाँ अंकित हैं। दिल्ली में कुतुबमीनार के पास का लौह-स्तम्भ और सुल्तानगंज में प्राप्त बुद्ध जी की एक प्रतिमा इस युग की धातु-कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। अजन्ता, एलौरा और बाघ की गुफाओं की चित्रकारी बड़ी अनूठी है। सङ्गीत और नृत्य के क्षेत्र में भी इस युग में विशेष उन्नति हुई। समुद्रगुप्त स्वयम् वीणा बजाता था। रघुवंशम् और शाकुन्तलम् के अनेक स्थलों पर सङ्गीत कला पर प्रकाश डाला गया है। इस युग में अभिनय का भी प्रचलन था। कालिदास का 'माल-विकाग्निमित्र' का अभिनय उसके सामने ही हुआ था।

इसी प्रकार विविध क्षेत्रों में गुप्त-काल में विशेष उन्नति हुई थी। इसी कारण यह काल 'स्वर्ण युग' के नाम से पुकारा जाता है।

———

अध्याय | 33

भारतीय संस्कृति और अन्य देश

(INDIAN CULTURE AND THE OTHER COUNTRIES)

प्रश्न 1—अपने अधीत काल में पाश्चात्य जगत् के साथ भारतवर्ष के सांस्कृतिक सम्पर्क पर प्रकाश डालिये।

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

Indicate the cultural contact of India with the Western world during the period af your study.

(Allahabad University)

प्रश्न 2—मध्य एशिया के साथ भारतवर्ष के सांस्कृतिक सम्पर्क के विषय में आप क्या जानते हैं ?

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

What do you know about the cultural contact of India with Central Asia ?

(Allahabad University)

प्रश्न 3—अपने अधीत-काल में दक्षिण-पूर्व एशिया में भारत के सांस्कृतिक प्रभाव का संक्षिप्त उल्लेख कीजिये।

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

Briefly indicate the cultural influence of Indian on South East Asia during the period of your study.

(Allahabad University)

पाश्चात्य विश्व के साथ भारतवर्ष के सम्बन्ध अतीत प्राचीन हैं। इन सम्बन्धों का अध्ययन हम दो रूपों में कर सकते हैं—(अ) प्रागैतिहासिक युग में सम्बन्ध (ब) ऐतिहासिक युग में सम्बन्ध।

(अ) प्रागैतिहासिक युग में पाश्चात्य जगत से सम्बन्ध

विभिन्न इतिहासकार इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि ईसा से लगभग 3 हजार वर्ष पूर्व सिन्धु घाटी की सभ्यता के युग में भारत और सुमेरीय नगरों के बीच

व्यापारिक सम्बन्ध था। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के व्यापारी व्यापार के लिये मेसोपोटेमिया और मिस्र जाते थे। सिन्धु घाटी की सभ्यता और सुमेर की प्राचीन सभ्यता में पर्याप्त समानता के दर्शन होते हैं। सिन्धु घाटी के विशाल अन्नागारों को भाँति ही दजला फरात घाटी के नगरों में विशाल अन्नागर बने हुये थे। 1700 ई० पूर्व के लगभग मिस्र के कब्रों में कुछ भारतीय वस्तुयें प्राप्त हुई हैं जिससे स्पष्ट है कि मिस्र और भारत के सम्बन्ध प्रागैतिहासिक युग में रहे होंगे।

प्रागैतिहासिक युग में मेसोपोटामिया और मिस्र के अतिरिक्त भारतीयों के संबंध यहूदियों से भी रहे। प्राचीन यूनानी ग्रन्थों में भी भारतवासियों का यूनान से सम्बन्ध का उल्लेख मिलता है। यूनानी ग्रन्थों में 'संतलोन' शब्द चन्दन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। भारतीय ग्रन्थों में भी इस शब्द का प्रयोग हुआ है। यहूदी लेखों में भी ऐसी अनेक वस्तुओं के नाम प्राप्त होते हैं जो भारत में प्रचलित शब्दों से मिलते-जुलते हैं और ये नाम इस बात के प्रमाण हैं कि भारतीयों और यहूदियों के अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध थे। डा० मजूमदार ने तो यहाँ तक लिख दिया है कि ऐसा प्रतीत होता है कि ये चीजें भारत से ही लाई गई थीं। उन्होंने स्पष्ट कहा है—

"The use of these Indian names for merchandise raises a strong presumption in favour of their Indian origin."

—Dr. R. C. Majumdar.

प्रागैतिहासिक युग में पाश्चात्य विश्व के साथ सम्पर्क विशेषतः व्यापार विषयक ही था। रालिंसन महोदय ने प्रागैतिहासिक युग में भारत से पश्चिम जाने वाले 3 मार्गों का उल्लेख किया है, पहला मार्ग सिन्धु से दजला फरात के मुहाने तक जाता था। दूसरा ईरान होते हुये अन्तियोक तक जाता था और तीसरा फारस और लाल सागर को पार करके यूनान तक जाता था।

(ब) ऐतिहासिक युग

(1) **भारतवर्ष और फारस**—छठीं शताब्दी ई० पूर्व के बाद फारस और भारत के सम्बन्धों के विषय में हमें पर्याप्त जानकारी प्राप्त है। फारस के बादशाह डेरियस ने भारत के कुछ मार्गों को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया था। उसके शासन काल के बाद से भारत और फारस पर बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया था। सिकन्दर महान ने डेरियस तृतीय की सेना के साथ युद्ध किया था, उसमें भारतीय सैनिक भी थे। इससे स्पष्ट है कि उस समय भारत और फारस एक दूसरे के बहुत निकट आ गये थे।

चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने राज्य में पारसीक साम्राज्य को भी मिला लिया था।

अनेक विद्वानों का मत है कि मौर्य काल की भारतीय वास्तु कला पर पारसीक प्रभाव है। कुछ विद्वान यह भी कहते हैं कि मौर्यों के साम्राज्य-संगठन, शासन-सम्बन्ध और दरबारी शिष्टाचारों आदि पर भो फारसी प्रभाव पड़ा था। भारत के उत्तरी-पश्चिमी भागों में प्रचलित खरोष्ठी लिपि का आविर्भाव फारस के हखाम्शी साम्राज्य की आरमीकी लिपि से ही हुआ। अशोक के शाहबाज गढ़ी और मानसेहरा लेखों में खरोष्ठी लिपि के दर्शन होते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि अशोक के स्तम्भों पर भी पारसीक प्रभाव है।

(2) भारतवर्ष और यूनान—पाँचवीं शताब्दी ई० पूर्व से भारतवासियों और यूनानियों का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ हो गया। यूनानी लेखक हेरोडोटस (484 ई० पूर्व) के ग्रन्थ में भारत का काफी विवरण दिया गया है। टेसियस के रचनाओं में भी भारत का विवरण है। कहा जाता है कि 400 ई० पू० में एक भारतीय दार्शनिक ने सुकरात से भेंट की थो।

सिकन्दर के भारत पर आक्रमणों के फलस्वरूप भारत और यूनान का सम्बन्ध और अधिक दृढ़ हो गया। व्यापार के क्षेत्र में बहुत अधिक उन्नति हुई और यूनानी कला का प्रभाव भारत की कला पर पड़ा। मौर्य काल में भारतीय कलाकारों ने स्थापत्य के क्षेत्र में पत्थरों का प्रयोग शायद यूनानियों के प्रभाव के फलस्वरूप ही किया। इससे पहले भारत में भवन-निर्माण के लिए लकड़ी का प्रयोग किया जाता था। चन्द्रगुप्त मौर्य ने सेल्यूकस की पुत्री से विवाह किया था और उसके दरबार में मेगस्थनीज नामक यूनानी राजदूत रहता था। सेल्यूकस के बाद भी यूनानियों और मौर्यों के सम्बन्ध बने रहे। अशोक ने यवनराज तुषास्फ को सुराष्ट्र प्रान्त का राज्यपाल नियुक्त किया था जिसने सुदर्शन झील के किनारे एक बाँध बनवाया था। अशोक के एक लेख में 5 यूनानी राजाओं का उल्लेख हुआ है जिनके पास उसने अपने धर्म प्रचार के लिये राजदूत भेजे थे। अशोक के समय में हुई तृतीय बौद्ध सभा ने महारक्षित नामक एक दूत को धर्म-प्रचार के लिये यूनान भेजा था।

मौर्य-साम्राज्य के पतन के पश्चात् बैक्ट्रिया के यवनों ने भारत पर आक्रमण किये। इन आक्रमणों में डेमेट्रिअस और मेनेन्डर के आक्रमण उल्लेखनीय हैं। 'मिलिन्द प्रश्न' नामक ग्रन्थ से यह जानकारी प्राप्त होती है कि मेनेन्डर ने शाकल्य (स्यालकोट) को अपनी राजधानी बनाया था। इस ग्रन्थ में शाकल्य को यवन नगर कहा गया है और उसके वैभव का बड़ा विस्तृत वर्णन किया गया है।

बैक्ट्रिया के यवन राजाओं का कार्य भारतोय और यूनानी संस्कृतियों का संगमकाल था। तत्पश्चात् यूनान और भारत के सम्बन्ध बढ़ते ही रहे।

(3) भारत और रोम का सम्बन्ध—ई० पू० पहली शताब्दी में रोम साम्राज्य अत्यधिक प्रख्यात हो गया। ऑगस्टस की शासन-काल (19वीं ई० पू०–14 ई०) रोम के शासन-काल का स्वर्ण-युग था। उसके समय में भारतवर्ष से अनेक राजदूत रोम आये थे। स्ट्रैबो का मत है कि पोरस नामक एक भारतीय राजा ने एक दूत-मन्डल भेजा था। मार्ग की कठिनाइयों को झेलते हुये केवल 3 ही दूत रोम पहुँच पाये थे। स्ट्रैबो ने यह भी लिखा है कि सुदूर दक्षिण में राज्य करने वाले एक पान्ड्य राजा ने भी ऑगस्टस के पास अपना राजदूत भेजा था। ऑगस्टस भी यह चाहता था कि भारत की मित्रता रोम के साथ बनी रहे और रोम भी भारत के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाये रखे। ऑगस्टस के बाद भी भारत के अनेक राजदूतों ने रोम की यात्रा की। प्लिनी का मत है कि क्लाडियस के शासन-काल में 4 भारतीय राजदूत रोम आये थे। बाद में भी भारतीय राजदूतों ने रोम की यात्रा की। रोम व भारत के सम्बन्धों के विषय में विस्तृत जानकारी हमें 'पेरिप्लस ऑफ दि ईरीथियन सी' नामक ग्रन्थ से प्राप्त होती है। इस ग्रन्थ से पता चलता है कि रोम में भारत, अरब यूनान आदि के व्यापारी रहते थे। भारतवर्ष के जहाज फारस और अरब के समुद्र-तट से होते हुये लाल सागर के रास्ते मिस्र और रोम की ओर जाते थे। रोम सम्राटों ने भी जल-मार्ग के द्वारा भारतवर्ष के साथ व्यापार को प्रोत्साहित किया था। तामिल ग्रन्थों से यह जानकारी प्राप्त होती है कि मामल्लपुरम, कोकई और पुहार आदि बन्दरगाहों में रोम के व्यापारी व्यापार के लिये आते थे। रोम में भारत के विलास की सामग्री की बहुत अधिक मांग थी और वहाँ के बाजारों में भारत की मलमल, मोती, जवाहरात, जटामासी और सिल्क भरे रहते थे। प्लिनी ने अत्यन्त दुःख के साथ लिखता है कि उसके देश के निवासी देश की अतुल धनराशि भारतवर्ष भेज देते थे। उसका मत है कि उस युग में लगभग 5 करोड़ मुद्रायें रोम से भारत जाती थीं। पम्पियायी में भारतवर्ष की बनी हुई हाथी दाँत की एक राजलक्ष्मी की मूर्ति प्राप्त हुई है। यह इस बात की द्योतक है कि भारतवर्ष की बहुत सी चीजों को रोम ले जाया जाता था। अरिकमेडू की खुदाई में रोम के एक द्वीप का टुकड़ा प्राप्त हुआ है जो भी दोनों देशों के घनिष्ट सम्बन्ध का परिचायक है।

रोम और भारत के सम्बन्ध व्यापारिक ही प्रतीत होते हैं। इस बात की विशेष जानकारी नहीं है कि भारतीय धर्म एवं दर्शन ने रोम के निवासियों को प्रभावित किया था अथवा नहीं।

(4) भारतवर्ष और मिस्र के सम्बन्ध—प्रागैतिहासिक युग में भारत और मिस्र के सम्बन्ध की चर्चा हम पहले ही कर चुके हैं और लिख चुके हैं कि मिस्र और भारत के घनिष्ट सम्बन्ध थे। मिस्र की संस्कृति भारत की संस्कृति की भाँति संसार की प्राचीनतम संस्कृतियों में से है और प्रागैतिहासिक युग में दोनों संस्कृतियों का एक दूसरे

पर प्रभाव पड़ा था। ऐतिहासिक युग में भी मिस्र और भारत के सम्बन्ध घनिष्ट बने रहे। एथेनास नामक विद्वान के ग्रन्थ से यह जानकारी प्राप्त होती है कि तीसरी शताब्दी ई० पू० में राज्य करने वाले टालमी फिलाडेल्फास के राजमहल में भारतीय स्त्रियाँ,भारतीय शिकारी कुत्ते और भारतीय गायें थीं। इस समय मसाले भी भारत से मिस्र को भेजे जाते थे। बहुमूल्य पत्थर भी भारत से मिस्र को जाते थे। एगाथर्काइडीज ने लिखा है कि सिन्धु के मुहाने पर स्थित पोटन नामक बन्दरगाह से भारतीय सौदागर मिस्र आये थे। अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये अपने राजदूत को मिस्र भेजा था। सिकन्दरिया के क्लीमेण्ट ने बुद्ध का उल्लेख किया है।

भारतवर्ष और मिस्र के सम्बन्ध अधिकतर व्यापारिक ही थे परन्तु संस्कृतिक क्षेत्र में भी दोनों देशों में आदान-प्रदान हुआ था। ऐसा प्रतीत होता है कि मिस्र के निवासी भारतीय सामाजिक जीवन से प्रभावित हुए थे।

पाश्चात्य सम्पर्क का प्रभाव—भारत और पाश्चात्य देशों के सम्बन्धों से भारत को बहुत लाभ हुआ ही साथ ही पाश्चात्य जगत को भी भारतवासियों से सम्बन्धों के फलस्वरूप लाभ हुआ। भारत पर पाश्चात्य जगत का बहुत अधिक सांस्कृतिक प्रभाव पड़ा। कुछ विद्वानों का मत है कि मौर्यकालीन कला पारसीक कला से प्रभावित है। भारतीय कला और गान्धार शैली पर यूनानी प्रभाव है, इसमें किञ्चितमात्र भी संदेह नहीं। कुछ विद्वानों का मत है कि भारतीय मुद्रायें रोम की मुद्राओं के अनुकरण के आधार पर बनायी गयीं। वेबर नामक विद्वान का मत है कि भारतीय नाटकों पर यूनानी नाटकों का प्रभाव है। चिकित्सा शास्त्र के क्षेत्र में भारत यूनान का बहुत ऋणी है। गार्गी संहिता में कहा गया है, "यवन लोग बर्बर हैं परन्तु ज्योतिष शास्त्र का जन्म उनसे हुआ अतएव वे पूज्यनीय हैं।" चिकित्सा शास्त्र में भी पाश्चात्य जगत की भारत को बहुत अधिक देन है।

धार्मिक और दार्शनिक क्षेत्र में भारतवासियों ने पाश्चात्य जगत को प्रभावित किया। बौद्ध धर्म का प्रसार अनेक पाश्चात्य देशों में हुआ और इस धर्म के प्रसार के फलस्वरूप वहाँ के जन-जीवन में परिवर्तन आया। पाइथागोरस भारत के पुनर्जन्म के सिद्धान्त से प्रभावित हुआ था। प्लेटो के रिपब्लिक में भारतीय कर्म सिद्धान्त का प्रतिपादन मिलता है। नियोप्लेटोनिक विचारधारा पर भी भारतीय प्रभाव है। कुछ इतिहासकारों का मत है कि मनीच धर्म बौद्ध धर्म, से प्रभावित था।

केवल धार्मिक और दार्शनिक क्षेत्र में ही भारत ने पाश्चात्य जगत को प्रभावित नहीं किया बल्कि भारतीय साहित्य और कला का प्रभाव भी पाश्चात्य देशों पर पड़ा। पंचतन्त्र का अनेक पश्चिमी देशों में अनुवाद किया गया। इसका अनुवाद सबसे पहले

फारस में हुआ और तत्पश्चात् योरुप में उसका अनुवाद किया गया। दमिश्क के "सेन्टजान" और 'बलराम एण्ड जोजफत' नामक ग्रन्थ में अनेक बौद्ध कथायें प्राप्त होती हैं। भारतीय कला यद्यपि अनेक देशों की ऋणी है परन्तु इस कला का प्रभाव पाश्चात्य कला पर अवश्य पड़ा है।

भारत और मध्य एशिया

भारत और अफगानिस्तान—भारतवर्ष के प्राचीन-काल में मध्य एशिया से अत्यन्त घनिष्ट सांस्कृतिक सम्बन्ध थे। अफगानिस्तान और भारत का सम्बन्ध काफी प्राचीन है। ऋगवेद में उभा, सुवास्तु, क्रमु और गोमती आदि नदियों का उल्लेख हुआ है। इन नदियों की समता क्रमशः काबुल, स्वात, कुरुम, और बोमल नदियों से की जाती है। अफगानिस्तान पर भारत का राजनीतिक प्रभाव पड़ा था और इसलिये सांस्कृतिक क्षेत्र में भी भारतीय संस्कृति ने अफगानिस्तान को प्रभावित किया था। अफगानिस्तान और बलोचिस्तान में ब्राह्मण और बौद्ध दोनों ही धर्म प्रचलित हुये थे। ये दोनों प्रदेश मौर्य साम्राज्य के अन्तर्गत भी रहे थे। अफगानिस्तान की खुदाई में अनेक ऐसी कला-वस्तुयें प्राप्त हुई हैं जिन पर भारतीयता की छाप है। टालमी ने पूर्वी अफगानिस्तान को भारत का ही एक अंग माना था। आगे चलकर अब्दुल फजल ने काबुल और कन्धार को भारत के दो द्वार कहा।

भारत और पूर्वी तुर्किस्तान के राज्य—पूर्वी तुर्किस्तान के दक्षिण भाग में काशगर, यारकन्द, खोतान, शानशान और उत्तरी भाग में तुर्फान, कूची और करसहर आदि राज्य विद्यमान थे। दक्षिण भाग के राज्यों से भारत के बड़े घनिष्ट व्यापारिक सम्बन्ध थे। कासगर, खोतान और शानशान में भारत की ब्राह्मी लिपि का प्रयोग होता था। चतुर्थ शताब्दी में सांस्कृतिक दृष्टि से सम्पूर्ण पूर्वी तुर्किस्तान 'विशाल भारत में' परिवर्तित हो चुका था। पी० सी० बाचगी ने बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा है :—

"The whole of eastern Turkistan from Kasgar right up to frontiers to China had grown up in a short Greater India by the begining of 4th. century A. D.

—Dr. P. C. Bagchi.

पूर्वी तुर्किस्तान में बहुत सी बौद्ध रचनाओं की प्रतिलिपियाँ प्राप्त हुई हैं। काशमीर और कान्धार के बौद्ध विद्वानों ने वहाँ जाकर बौद्ध धर्म का प्रचार किया। भारतीय चिकित्सा-शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ भी पूर्वी तुर्किस्तान के निवासियों के लिये आदर्श थे। भारतीय चिकित्सा-ग्रन्थों का कुछ स्थानीय भाषाओं में अनुवाद किया गया। वहाँ की मूर्तिकला पर भारत की मूर्ति-शैली का प्रभाव दिखलाई पड़ता है। इस क्षेत्र

की बौद्ध मूर्तियाँ भारत की बौद्ध मूर्तियों की याद दिलाती हैं। भारत के अनेक ग्रन्थ पूर्वी तुर्किस्तान में प्राप्त हुये जिनमें 'धम्मपद,' 'उदानवर्ग' और 'सारिपुत्र' प्रकरण विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

मध्य-एशिया के जिन भागों से भारत के घनिष्टतम सम्बन्ध थे उनमें खोतान, कूची और करसहर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अतएव इनकी चर्चा यहाँ अलग से की जा रही है :—

1—खोतान—खोतान और भारतवर्ष का सम्बन्ध बड़ा घनिष्ट था। डा० आर० सी० मजूमदार ने लिखा है—"खोतान मुख्य रूप से भारतीय औपनिवेशीयकरण का एक मुख्य केन्द्र प्रतीत होता है।"

"Khotan seems to be a particularly an important centre of Indian colonization."

—Dr. R. C. Majumdar.

बौद्ध ग्रन्थों से यह जानकारी प्राप्त होती है कि अशोक का पुत्र कुड़ाल अपनी सौतेली माता के अत्याचारों से ऊबकर खोतान भाग गया था। फाह्यान के भारत आगमन के समय खोतान में बौद्ध धर्म का काफी प्रसार हो चुका था। फाह्यान ने गोमती विहार का उल्लेख किया है जिसमें लगभग 3 हजार महायानी बौद्ध भिक्षु रहते थे। उसने यह भी लिखा है कि वहाँ 14 बड़े मठ बने हुये थे। साथ ही कुछ छोटे मठ भी थे। और वहाँ भारतीय रथ-यात्रा की भाँति बौद्ध मूर्तियों का जलूस निकाला जाता था। फाह्यान ने अपनी यात्रा के वर्णन में 'सम्राट के नये मठ' का भी उल्लेख किया है जो लगभग 250 फुट ऊँचा था।

खोतान में संस्कृत की कुछ ऐसी हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं जो भारत में उपलब्ध नहीं है। 433 ई० में धर्मक्षेत्र नामक एक भारतीय विद्वान 'महापरिनिर्वाण-सूत्र' की पाण्डुलिपि की प्राप्ति के लिए खोतान गया था।

2—कूची—कूची भी भारतीय सांस्कृति के प्रसार का बहुत बड़ा केन्द्र था। डा० पी० सी० बागची ने लिखा है :—

"The kingdom of Kuchi played the same important role in the north as that of Khotan in the South."

—Dr. P. C. Bagchi.

कूची के राजा भारतीय नामों को धारण करते थे। भारत से कूची आने वाले व्यक्तियों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण कुमारायण था। कहा जाता है कि कुमारायण जब कूची के राजा के पास पहुँचा तो राजा उसके व्यक्तित्व से बहुत अधिक प्रभावित हुआ

और उसे राजगुरू नियुक्त कर लिया। वहाँ पर जीवा नामक राजकुमारी से उसने विवाह किया।

चतुर्थ शताब्दी के प्रारम्भ में कूची में अनेक बौद्ध स्तूप एवं देवालय थे। चीनी ग्रन्थों में इन स्तूपों, मठों और देवालयों आदि का बड़ा विस्तृत उल्लेख हुआ है। वहाँ के तमु नामक मठ में 170 भिक्षु रहते थे, चेरि नामक मठ में 50, वेनशु के शासक के मठ में 70 और किमेनमु के मठ में 60 भिक्षु रहते थे। ऐल के मठ में 180 भिक्षुणियाँ थीं। कूची अन्य देशों में बौद्ध धर्म के प्रसार का एक बहुत बड़ा केन्द्र था। डा० आर० सी० मजूमदार ने लिखा है :—

"Kuchi was also an important centre for propaganda of Buddhism in other countries."

—Dr. R. C. Majumdar.

कूची में भारतीय ग्रन्थों का अध्ययन बड़ी व्यापक मात्रा में होता था। वहाँ का तन्त्र पद्धति के अनुसार लोग व्याकरण पढ़ते थे। भारतीय चिकित्सा-शास्त्र और ज्योतिष के ग्रन्थों का अध्ययन भी कूची में होता था।

3—करसहर—करसहर भी कूची की भाँति ही भारतीय सांस्कृति के प्रसार का एक बहुत बड़ा केन्द्र था। इसका प्राचीन नाम अग्निदेश था। वहाँ के राजाओं ने भी भारतीय नामों का धारण किया था यथा इन्द्रार्जुन, चन्द्रार्जुन आदि। कूची की तरह भी करसहर में भी बौद्ध धर्म का बहुत अधिक प्रचार हुआ।

4—बज़्क्लिक—बज़्क्लिक भी कूची की तरह बौद्ध धर्म का एक बहुत बड़ा केन्द्र था। इसमें अनेक देवालय थे जिनकी दीवालों पर भिक्षुओं के चित्र बने हुए थे। इन चित्रों में भारतीय भिक्षुओं को पीले वस्त्र धारण किये हुये प्रदर्शित किया गया था। चित्रों के नाम ब्राह्मी लिपि में लिखे हुये प्राप्त हुये हैं। यहाँ दीवालों पर गणेश और कुबेर आदि के चित्र भी प्राप्त हुये हैं।

भारतवर्ष के दक्षिण-पूर्वी एशिया

पुरातत्व सामग्री से यह ज्ञात होता है कि भारत और दक्षिण-पूर्वी एशिया के पारस्परिक सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ट थे। भारतीय सभ्यता के चिह्न सुमात्रा, जावा, बोर्नियो, कम्बोडिया, मलाया और स्याम आदि देशों में प्राप्त हुये हैं। सुमात्रा, स्याम, अनाम और बोर्नियो आदि में भारतीय शैली की बहुत सी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। प्राचीन ग्रन्थों से यह भी पता चलता है कि भारतीय व्यापारी और धर्म के उपासक स्वर्ण-भूमि को जाते थे। उन दिनों ऐसा विश्वास था कि बर्मा, सुमात्रा और जावा में सोना निकलता था। चूँकि वहाँ सोने की खानें थीं और इसीलिए यह स्थान स्वर्ण-भूमि के नाम से पुकारा जाता था। भारतीयों ने अपने व्यापार और संस्कृति की उन्नति

के लिये कालांतर में इन स्थानों पर अपने उपनिवेश भी स्थापित किये थे। यहाँ हम संक्षेप में दक्षिण-पूर्वी एशिया के विभिन्न देशों से भारतीयों के सांस्कृतिक सम्बन्ध की चर्चा कर रहे हैं—

1–कम्बोडिया—भारतीयों ने कम्बोडिया और अनाम नामक स्थानों पर अपने उपनिवेश स्थापित किये थे। पहले कम्बोडिया में जंगली जातियां निवास करती थीं परन्तु जब भारतीय वहां जाकर बस गये तो वहाँ के लोग भी सभ्य हो गये। इन स्थानों पर भारतीय उपनिवेशों की स्थापना प्रथम शताब्दी में ही हो गयी थी। चीनी साधनों से ज्ञात होता है कि सबसे पहले यहाँ कौण्डिण्य नामक एक भारतीय ने अपने राज्य की स्थापना की थो। वह ब्राह्मण धर्म का अनुयायी थी। इसने अपना केन्द्रस्थल फूनान बनाया था और इस प्रकार कम्बोडिया में सबसे पहले फूनान हिन्दू राज्य स्थापित हुआ था। बाद में कम्बुज राज्य स्थापित हुआ और वहाँ इन्द्रवर्मा, यशोवर्मा, सूर्यवर्मा, जयवर्मा आदि अनेक प्रसिद्ध राजाओं ने राज्य किया। यशोधरपुर को उन्होंने अपनी राजधानी बनाया था।

कम्बोडिया के फूनान और कम्बुज दोनों ही राज्यों में शैव धर्म को प्रधानता दी गयी थी परन्तु साथ ही वैष्णव धर्म का भी प्रचार हुआ था। कालांतर में वहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ। इन दोनों ही राज्यों में संस्कृत भाषा का प्रयोग होता था। एक लेख से यह जानकारी प्राप्त होती है कि कम्बुज के एक पुजारी ने शंकराचार्य के ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया था। कम्बुज के राजा यशोवर्मा ने पातन्जलि के माहाभाष्य पर एक टीका लिखी। कम्बोडिया पर भारत के सामाजिक जीवन का भी प्रभाव पड़ा था। वहाँ का साहित्य भी भारतीय प्रभाव से मुक्त नहीं है। हम यह कह सकते हैं कि कम्बोडिया के निवासियों ने भारतीय साहित्य का गहन अध्ययन किया और उसी के आधार पर साहित्य का निर्माण किया। कम्बोडिया की कला पर भी भारतीय प्रभाव देखने को मिलता है। उनकी नगर-निर्माण शैली पूर्णतया भारतीय थी और गुप्तकाल की कला के आदर्श पर वहाँ अनेक सुन्दर इमारतों का निर्माण हुआ था। मूर्तिकला पर भी भारतीय प्रभाव है। कम्बोडिया के रोमलोक और ताकियो नामक स्थानों पर जो बौद्ध मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं वे सारनाथ की बौद्ध प्रतिमा से बहुत कुछ मिलती-जुलती हैं।

2–चम्पा—आधुनिक अनाम में पहले चम्पा का राज्य था। यह पहले बिहार के अन्तर्गत था। इसकी राजधानी अमरावती थी। कम्बोडिया की भांति ही यहां पहले शैव और वैष्णव धर्म का प्रचार हुआ और बाद में बौद्ध धर्म को अपनाया गया। चम्पा में शिव की पूजा महेश्वर, महादेव, अम्ब्रेष, शम्भु, शङ्कर, शर्व, भीम और रुद्र आदि नामों से की जाती थी। विष्णु के लिये गोविन्द, पुरुषोत्तम, माधव, नारायण, विक्रम आदि नाम प्रचलित थे। अन्य भारतीय देवताओं की पूजा भी की जाती थी। चम्पा के

लेखों में ब्रह्मा को चतुरानन कहा गया है। चम्पा की कला भी पूर्णतया भारतीय है। वहां का माइसोन मन्दिर भारतीय कला का सुन्दर उदाहरण है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था का रूप भी चम्पा में देखने को मिलता था और भारतीय समाज की तरह वहां भी चार वर्ण थे।

3-स्वर्णद्वीप (मलाया, सुमात्रा और जावा)—ऐतिहासिक तथ्यों से यह जानकारी प्राप्त होती है कि स्वर्णद्वीप से भारतवर्ष के प्राचीनकाल में अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध थे। ऐसा विश्वास है कि प्रथम शताब्दी से पहले वहा हिन्दू बस गये थे और अनेक हिन्दू वंशों ने वहाँ राज्य किया। शैलेन्द्र वंश का राज्य 12वीं शताब्दी तक रहा। इस वंश के राजाओं के पास एक विशेष जलसेना थी और वे जावा, बोर्नियो, बाला, शैसबीज, फिलीपाइन्स, लङ्का और फारमोसा आदि पर आक्रमण किया करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ समय तक ये राज्य स्वर्णद्वीप के अधीन भी रहे। 11वीं शताब्दी में दक्षिणी भारत के चोल वश के राजा राजेन्द्र चोल ने इस राज्य पर आक्रमण किया, परन्तु उसका कोई निश्चित परिणाम नहीं निकला। इसके बाद वहां के राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया और 15वीं शताब्दी में वहां के राजा ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया।

पहले जावा और सुमात्रा दोनों ही स्थानों पर वैष्णव और शैव धर्म का प्रचार था। शैव धर्म जावा में विशेष रूप से प्रसारित हुआ था। वहां के श्रीसंजय नामक एक राजा ने एक पहाड़ी पर शिवलिंग की स्थापना की थी। शिव एवं विष्णु के साथ ही वहां ब्रह्मा, पार्वती, कार्तिकेय, गणेश आदि की पूजा भी की जाती है। अनेक मन्दिरों में विभिन्न देवी-देवताओं की मूर्तियां प्राप्त हुई हैं।

7वीं शताब्दी के बाद जावा और सुमात्रा में बौद्ध धर्म बहुत तेजी से फैला और शैलेन्द्र वंश के राजाओं ने महायान बौद्ध धर्म को स्वीकार किया। उन्होंने अनेक स्तूपों, मन्दिरों और बौद्ध मूर्तियों का निर्माण करवाया।

जावा और सुमात्रा में संस्कृत भाषा का प्रचार भा। चीनी यात्री इत्सिग का मत है कि उसने श्रीविजय में संस्कृत भाषा का अध्ययन किया था।

4-बाली एवं बोर्नियो—बाली एवं बोर्नियो में भी भारतीय उपनिवेश स्थापित किये गये थे और वहां भी हिन्दू धर्म का प्रसार हुआ था। बाली और बोर्नियो की कला पर भारतीय प्रभाव स्पष्ट है। वहां का सामाजिक जीवन भी भारतीयों से मिलता-जुलता था।

5-ब्रह्मा—ब्रह्मा का सम्बन्ध भी भारत से बहुत पहले से था। अशोक ने बौद्ध धर्म प्रचारकों को ब्रह्मा भेजा था। इसी समय से ब्रह्मा में भारतीय लिपि और सभ्यता का प्रचार बहुत तेजी से हुआ। ब्रह्मा ने बौद्ध धर्म को मान्यता प्रदान की।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों के साथ भारत के सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ रहे और विभिन्न देशों में भारतीय सभ्यता का प्रसार बहुत तेजी से हुआ।

भारत और चीन

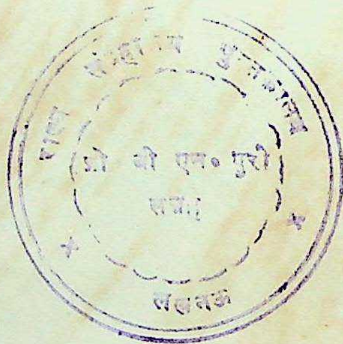
(इस सम्बन्ध में चीन की सभ्यता और संस्कृति भाग का अध्याय 14 देखिये।)

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि प्राचीनकाल में भारतीय संस्कृति का बहुत अधिक प्रसार हुआ। पाश्चात्य जगत्, मध्य एशिया, दक्षिण-पूर्व एशिया और चीन में भारतीय धर्मों, रीति-रिवाजों, परम्पराओं आदि का व्यापक प्रसार हुआ और भारतीय साहित्य एवं कला ने विभिन्न देशों को प्रभावित किया।



मुद्रक : गायत्री प्रेस, दारागंज, इलाहाबाद।




State Museum
Lucknow
7155